श्री

धवला-टीका-समन्वितः

षट्खंडागमः

जीवस्थान-चूलिका

खंड १ भाग ९

पुस्तक ६

सम्पादक

हीरालाल जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री भगवत्-पुष्पदन्त-भूतबलि-प्रणीतः

षट्खंडागमः

श्रीवीरसेनाचार्य-विरचित-धवला-टीका-समन्वितः ।

तस्य

प्रथम-खंडे जीवस्थाने

हिन्दीभाषानुवाद-तुलनात्मकटिप्पण-प्रस्तावनानेकपरिशिष्टैः सम्पादिता

चूलिका

सम्पादकः

अमरावतीस्थ-किंग-एडवर्ड-कालेज-संस्कृताध्यापकः एम्. ए., एल्. एल्. बी., इत्युपाधिधारी

हीरालालो जैनः

सहसम्पादकः

पं. बालचन्द्रः सिद्धान्तशास्त्री

संशोधने सहायकौ

व्या. वा., सा. सू., पं. देवकीनन्दनः सिद्धान्तशास्त्री

*

डा. नेमिनाथ-तनय-आदिनाथः उपाध्यायः एम्. ए., डी. लिट्.

प्रकाशकः

श्रीमन्त सेठ शिताबराय लक्ष्मीचन्द्र

जैन-साहित्योद्धारक-फंड-कार्यालयः

अमरावती (बरार)

वि. सं. २०००] वीर-निर्वाण-संवत् २४७० [ई. स. १९४३

मूल्यं रूप्यक-दशकम्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८५

प्रकाशक—
श्रीमन्त सेठ शितावराय लक्ष्मीचन्द्र,
जैन-साहित्योद्धारक-फंड कार्यालय
अमरावती (बरार)

मुद्रक—
टी. एम्. पाटील
मैनेजर
सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस, अमरावती.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

THE
ṢAṬKHAṆḌĀGAMA

OF

PUṢPADANTA AND BHŪTABALI

WITH

THE COMMENTARY DHAVALĀ OF VĪRASENA

VOL. VI

CHŪLIKĀ

Edited

with introduction, translation, indexes and notes

BY

HIRALAL JAIN, M. A., LL. B.,

C. P. Educational Service, King Edward College, Amraoti.

ASSISTED BY

Pandit **Balchandra** Siddhānta Shāstrī.

With the cooperation of

Pandit **Devakinandan**
Siddhānta Shāstrī

*

Dr. A. N. Upadhye,
M. A., D. Litt.

Published by

Shrimant Seth Shitabrai Laxmichandra,

Jaina Sāhitya Uddhāraka Fund Kāryālaya.

AMRAOTI (Berar).

1943

Price rupees ten only.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Published by—
Shrimant Seth Shitabrai Laxmichandra,
Jaina Sāhitya Uddhāraka Fund Kāryālaya,
AMRAOTI (Berar).

Printed by—
T. M. Patil, *Manager,*
Saraswati Printing Press,
AMRAOTI (Berar).

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय-सूची

	पृष्ठ
प्राक् कथन	१
१ प्रस्तावना	
Introduction	i–iii
१ शंका-समाधान	१
२ विषय-परिचय	११
३ विषय-सूची	३३
४ शुद्धि पत्र	४१

२ मूल, अनुवाद और टिप्पण	पृष्ठ
१ प्रकृतिसमुत्कीर्तन चूलिका	१
२ स्थानसमुत्कीर्तन ,, ...	७९
३ प्रथम महादण्डक	१३३
४ द्वितीय ,, ...	१४०
५ तृतीय ,, ...	१४२
६ उत्कृष्टस्थिति चूलिका	१४५
७ जघन्यस्थिति ,, ...	१८०
८ सम्यक्त्वोत्पत्ति ,, ...	२०३
९ गत्यागति ,, ...	४१८

३
परिशिष्ट

१ सूत्रपाठ	१-३४
प्रकृतिसमुत्कीर्तन सूत्रपाठ	१
स्थानसमुत्कीर्तन ,, ...	४
तीन महादण्डक ,, ...	१३
उत्कृष्टस्थिति ,, ...	१५
जघन्यस्थिति ,, ...	१७
सम्यक्त्वोत्पत्ति ,, ...	१९
गत्यागति ,, ...	२०
२ अवतरणगाथा-सूची	३४
३ न्यायोक्तियां	३५
४ ग्रंथोल्लेख	३५
५ पारिभाषिक शब्दसूची	३६
६ विशेष टिप्पण	४६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राक् कथन

षट्खंडागमके पांचवें भागके प्रकाशित होनेके कोई डेढ वर्ष पश्चात् यह छठवां भाग पाठकोंके हाथ पहुंच रहा है। एक तो चूलिका खंड ही अन्य सब भागोंसे विस्तृत है; दूसरे इसकी सम्यक्त्वोत्पत्ति चूलिकाका विषय बहुत ही सूक्ष्म और कहीं कहीं तो दुरूह ही है जिसके संशोधन व अनुवादादि में विशेष परिश्रम, अवधान और समयकी आवश्यकता पड़ी; और तीसरे इस बीच अनेक असाधारण विघ्न-बाधाएं उपस्थित हुईं जिनके कारण इस भागके प्रकाशित होनेमें पूर्व भागोंकी अपेक्षा कुछ अधिक समय लगा। फिर भी हम इसे पाठकोंके हाथों पहुंचानेमें समर्थ हुए, इसका हमें संतोष है।

जीवस्थान खंडका यह भाग चूलिकारूप है। फिर भी इसका विषय अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमें कर्मसिद्धान्तका परिपूर्ण निरूपण बड़ी उत्तमता और व्यवस्थाके साथ किया गया है जिसको संक्षेपमें समझनेके लिये प्रस्तावनाके अन्तर्गत विषय-परिचय व तत्सम्बन्धी तालिकाओंको एवं विषयसूचीको देखिये। हो सके तो फिर परिशिष्टमें दिये गये सूत्रपाठका पारायण कर जाइये। पारिभाषिक शब्दसूचीको भी देखिये जहां संभवतः आपको अनेक ऐसे शब्द दिखाई देंगे जिनका आप अर्थ समझनेके लिये उत्सुक होकर अमुक पृष्ठको उलट कर देखेंगे। इसके पश्चात् यथावकाश क्रमशः आप ग्रंथका स्वाध्याय करके उसके रसका आस्वादन तो करेंगे ही।

इस भागके भीतर नौ चूलिकायें हैं—प्रकृतिसमुत्कीर्तन, स्थानसमुत्कीर्तन, तीन महादण्डक, उत्कृष्ट स्थिति, जघन्य स्थिति, सम्यक्त्वोत्पत्ति और गति-आगति। इनमें क्रमशः ४६, ११७, २, २, २, ४४, ४३, १६ और २४३ सूत्र पाये जाते हैं। इनकी टीकामें क्रमशः शंका-समाधान आये हैं। धवलाकारने अपनी टीका द्वारा सम्यक्त्वोत्पत्ति चूलिकाको विशेष रूपसे परिपुष्ट किया है। इस भागमें यथास्थान कुल ५१५ सूत्र, २६५ शंका-समाधान, ५५ विशेषार्थ और लगभग ८५० टिप्पण पाये जावेंगे। हर्षका विषय है कि इस भागके साथ छह खंडोंमेंसे प्रथम खंड जीवस्थानकी समाप्ति हो गई।

इस भागके प्रथम २८ फार्मोंका संशोधन, अनुवाद व मुद्रण पं. हीरालालजी शास्त्री की सहायतासे हुआ था। उसके पश्चात् गत जनवरी मासके अन्तमें अकस्मात् उनका इस व्यवस्थासे सम्बन्ध-विच्छेद होगया। अतएव शेष ग्रंथका सम्पादन पं. बालचन्द्रजी शास्त्री की सहायतासे हुआ है। शेष सब सहयोग व व्यवस्था पूर्ववत् चालू रही।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिस वर्षसे इस ग्रंथका प्रकाशन प्रारम्भ हुआ है उसी वर्षसे महायुद्धके कारण मुद्रण सम्बन्धी कठिनाइयां उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी हैं। फिर भी न जाने किस शक्तिके प्रभावसे यह कार्य गतिशील ही बना रहा है, और इस भागके साथ प्रथम खंड जीवस्थानकी समाप्ति कर अपनी दीर्घ यात्राकी एक बड़ी मंजिल पूरी कर चुका है। अब दूसरे खंड खुद्दाबन्धका कार्य चालू हो गया है। इस खंडको आगामी एक ही जिल्दमें समाप्त कर देनेका विचार है। उसके लिये कागज आदिका प्रबन्ध भी प्रायः हो चुका है। प्रयत्न करना मनुष्यका कर्तव्य है, उसकी सफलता विधिविधानके आधीन है।

किंग एडवर्ड कालेज,
अमरावती
११-१२-४३

हीरालाल जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तावना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

INTRODUCTION

The present Volume contains the *Culika* of the first Khaṇḍa Jivaṭṭhāṇa. *Culika* means a supplement which contains matter that is connected with the main topics of the book, but which, for one reason or the other, was not or could not be included within the main sections of the book. There are nine such topics which are associated with the soul-positions, but which were not dealt with within the eight *prarūpaṇas*. They are as follows:—

1 Prakriti samutkirtana

This Cūlikā enumerates the eight Karmas and their subdivisions which amount to 148. The Karmas are energies that are forged by the contact of the soul with matter under specified conditions, and their nature is to hinder or obstruct the manifestation of the soul's natural qualities. Soul, in its nature, is endowed with perfect knowledge which is obscured in varying degrees by the five different kinds of *Jnanavarniya karma*. Similarly the soul's natural insight into things is hindered by nine different varieties of the *Darsanavaraniya Karma*. Soul by itself would be free from the feelings of pleasure or pain if there were not the two kinds of *Vedaniya karma* operating upon it. Delusion and defective conduct are the results of the three kinds of *Darsana Mohaniya* and the twenty five varieties of the *Caritra-Mohaniya* respectively. One is kept bound as a man or a beast, a hellish being or a god, by the four kinds of *Ayu karma* in whose absence the soul would be absolved of the migratory process. All the physical conditions in which one finds himself placed in the world, right from his personal make up down to his external environments, are the result of the working of no less than ninety three varieties of the *Nama karma*. One is placed high or low in society on account of the operation of the two kinds of *Gotra karma*, and one is hindered in the exercise of dispensation or acquisition as well as utility or enjoyment or expression of power by the force of the five kinds of *Antaraya*. These are the $5 + 9 + 2 + 28 + 4 + 93 + 2 + 5 = 148$ Varieties of Karmas explained in the *Prakriti samutkirtana Culika.*

2. Sthana Samutkirtana Culika

Having understood the nature of the Karmas, it becomes necessary to know, out of the many varieties of each main Karma, how many would be contracted simultaneously and under what conditions. This is the topic of the second *Culika.* All the five Jnānāvarnīyas may be forged by any body right up to the 10th spiritual stage when bondage stops. In the case of the Darśanāvaraṇīya, all the nine may be forged during the first two spiritual stages and six or four as one progresses up. Both the Vedaniyas are contracted up to the 13th stage. Of the Mohaniya, one

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

binds 22, 21, 17, 13, 9, 5, 4, 3, 2 or 1 at different stages of spiritual advancement. Of the four Āyu karmas, only one may be bound at a time, while of the Nama Karma 31, 30, 29, 28, 26, 25, 23 or 1 are contracted simultaneously. The Low Gotra karma is forged during the first two spiritual stages, while the High one from the first up to the 10th stage. During the same stages all the five Antarāyas may also be forged.

3-5 The three Maha-dandakas

In the first Mahā daṇḍaka the Karmas are classified according as they are contracted or not contracted by a soul when it is about to attain Right Faith. The commentator has here explained in detail the stages by which bondage becomes less and less as one advances in purity towards the Right Faith.

The second Mahā-daṇḍaka enumerates those varieties of Karmas which a godly or hellish being, except the one in the seventh hell, may contract when about to aquire Right Faith.

The Third Mahā-daṇḍaka enumerates the Karmas that a being in the seventh hell might bind on the point of acquiring *Samyaktva*.

6. Utkristha Sthiti Culika

This *Culika* lays down the maximum period of time for which each karma once bound may subsist. It also deals with the corresponding period of time which must elapse after each bondage, before the same begins to bear its fruit. The maximum duration is to be found in the case of the Darśana Mohaniya which may last for 70 *koda kodi sagaropamas*. The maximum period of the Cāritra-mohaniya is 40, of Jñānāvarṇiya, Darśanāvaraṇiya, Asātā Vedaniya and Antarāya 30, of Nica Gotra and a number of Nāma Karmas 20, and of the rest varying below twenty, till you come to a less than 1 Koḍākoḍi sāgaropama in the case of Āhāra Sarira and Tirthakara, 33 Sāgaropamas in the case of hellish and heavenly existence and only 3 Palyopamas in the case of a man's or a beast's life. The period which must elapse before a Karma ripes up for fruition is calculated at the rate of one hundred years for each Koḍākoḍi sāgaropama, except in the case of Āyu karma where it is determined by the period of life which remains unexhausted at the time when the duration of the next life is determined. (For the measure of different periods of time, see Vol. 3, intro.p. 33)

7. Jaghanya Sthiti Culika

As the foregone Cūlikā deals with the maximum duration of the different Karmas, so the present Cūlikā deals with the minimum periods which vary from slightly less than one *Sagaropama* in the case of the *Darśana Mohaniya* to a few Āvalikas (Kṣudra-bhava-grahaṇa) in the case of the shortest lived man or lower animal.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

8 Samyaktvotpatti Culika

This *Culika* is so called because it describes how and by what steps Right Faith or the correct attitude of the mind is created. It is only when the burden of the Karmas is considerably lightened, firstly, by a gradual process of self-purification which may be almost unconscious, and lastly by a deliberate effort to improve the mind. that the whole layer of ignorance is transformed into three parts which may be called ignorance, semi-ignorance and enlightenment, and they are all laid at rest for a while and the true self reveals itself. When this happens for the first time, the purity is only temporary and the soul soon falls back into one of the three specified states. When a similar course of purification is attempted for a second time, it may be accompanied by right conduct with which the soul climbs considerably higher on the ladder of spiritual progress. And if the soul makes this start not merely with a process of allaying the Karmas (aupaśamika samyktva), but of destroying them (Kṣāyikà Samyaktva) then there is no falling back at all, and one continues to advance in purity within this life and the life beyond, till perfection is reached and the shackles of worldly existence are cast aside once for all. These processes are described in the commentary with extraordinary details and mathematical precision.

9. Gati-agati Culika

The ninth Cūlikā is called *Gati-agati* because it deals chiefly with the migratory processes of the soul. As these are affected to a large extent by the presence or absence of the right attitude of the mind (*Samyaktva*), the work first deals with the sources through which right attitude is generated in the beings in hell or heaven, animal or men. These sources are four, namely, sight of the Jina image, listening to a righteous discourse, memory of the experiences of the past life and the present sufferings. These become available differently under different conditions of existence.

The next topic that is treated in this *Culika* is with what spiritual grades one may enter any particular state of existence or exit out of it. The one noteworthy feature of this topic is that a being with the right attitude of the mind will never enter any hell, lower than the first one, nor become a lower animal. The last topic in this Cūlikā is, being what one is in his present life, what virtues or status can he acquire in the next birth.

With this volume the first Khaṇḍa Jivaṭṭhāna (Soul-positions) comes to an end. The next Volume will present to us the Second Khaṇḍa called *Khudda Bandha* (Bondage in brief).

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शंका-समाधान

पुस्तक १, पृ. ७०

१. शंका—यहां षष्ठभक्त उपवासका अर्थ जो दो दिनका उपवास किया है वह किस प्रकार संभव है ? (नानकचंदजी, खतौली)

समाधान—नियमानुसार दिनमें दो बार भोजनका विधान है। किन्तु उपवास धारण करनेके दिन दूसरी वारका भोजन त्याग दिया जाता है और आगे दो दिनके चार भोजन भी त्याग दिये जाते हैं। इस प्रकार चूंकि दो उपवासोंमें पांच भोजनवेलाओंको छोड़कर छठी वेलापर भोजन ग्रहण किया जाता है, अतएव षष्ठभक्तका अर्थ दो उपवास करना उचित ही है। उदाहरणार्थ, यदि अष्टमी व नवमीका उपवास करना है तो सप्तमीकी एक, अष्टमीकी दो और नवमीकी दो, इस प्रकार पांच भोजनवेलाओंको छोड़कर दशमीके दोपहरको छठी वेलापर पारणा की जायगी।

पुस्तक १, पृ. १९२

२. शंका—यहां उद्धृत गाथा २५ के अनुवादमें योग पदका अर्थ तीनों योग किया है। परन्तु गोम्मटसार गाथा ६४ में उक्त पदका अर्थ केवल काययोग ही किया है। क्या केवलीके तीनों योग हो सकते हैं ? (नानकचंदजी, खतौली)

समाधान—केवलीके तीनों योग होते हैं, इसीलिये उनका अन्तमें निरोध भी किया जाता है। गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा ६४ की जी. प्र. टीकामें योग पदसे सामान्यतया योग और मं. प्र, टीकामें मन, वचन व काय योगोंमें अन्यतम योग लिया गया है।

पुस्तक १, पृ. १९६

३. शंका—यहां सम्पूर्ण भावकर्म और द्रव्यकर्मोंसे रहित होकर सर्वज्ञताको प्राप्त हुए जीवको आगमका व्याख्याता कहा है। क्या तेरहवें गुणस्थानमें सम्पूर्ण द्रव्यकर्म दूर हो जाते है ? (नानकचंदजी, खतौली)

समाधान—सम्पूर्ण कर्मोंसे रहित होनेका अभिप्राय चार घातिया कर्मोंसे रहित होनेका है, अघातियोंसे नहीं, क्योंकि, ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्म ही क्रमशः अज्ञान, अदर्शन, मिथ्यात्व सहित अविरति, और अदानशीलत्वादि दोषोंको उत्पन्न करते हैं जो कि आगमव्याख्याता होनेमें बाधक हैं। (देखो आप्तमीमांसा १, ४-६ व विद्यानन्दिकी टीका अष्टसहस्री)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुस्तक १, पृ. ४०६

४. शंका—जब सौधर्म कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धिपर्यन्त असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि तीनों ही पाये जाते हैं तब सूत्र १७० व १७१ के पृथक् रचनेका क्या कारण है ? (नानकचंदजी, खतौली)

समाधान—अनुदिश एवं अनुत्तरादि उपरिम विमानोंमें सम्यग्दृष्टि जीव ही उत्पन्न होते हैं, मिथ्यादृष्टि नहीं, इस विशेषताके ज्ञापनार्थ ही दोनों सूत्रोंकी पृथक् रचना की गई प्रतीत होती है ।

पुस्तक २, पृ. ४८२

५. शंका—तिर्यंच संयतासंयतोंमें क्षायिक सम्यक्त्वके न होनेका कारण यह बतलाया गया है कि " वहांपर जिन अर्थात् केवली या श्रुतकेवलीका अभाव है " । किन्तु कर्मभूमिमें जहां संयतासंयत तिर्यंच होते हैं वहां केवली व श्रुतकेवलीका अभाव कैसे माना जा सकता है, वहां तो जिन व केवली होते ही हैं ? (नानकचंदजी, खतौली)

समाधान—शंकाकारकी आपत्ति बहुत उचित है । विचार करनेसे अनुमान होता है कि धवलाके ' जिणाणमभावादो ' पाठमें कुछ त्रुटि है । हमने अमरावतीकी हस्तलिखित प्रति पुनः देखी, किन्तु उसमें यही पाठ है । पर अनुमान होता है कि ' जिणाणमभावादो ' के स्थानपर संभवतः ' जिणाणाभावादो ' पाठ रहा है, जिसके अनुसार अर्थ यह होगा कि संयतासंयत तिर्यंच दर्शनमोहनीय कर्मका क्षपण नहीं करते हैं, क्योंकि तिर्यंचगतिमें दर्शनमोहके क्षपण होनेका जिन भगवान्का उपदेश नहीं पाया जाता । (देखो गत्यागति चूलिका सूत्र १६४, पृ. ४७४-४७५)

पुस्तक २, पृ. ५७६

६. शंका—यंत्र १९२ में योगके खानेमें जो अनु. संकेत लिखा गया है उससे क्या अभिप्राय है ? (नानकचंदजी, खतौली)

समाधान—अनु. से अभिप्राय अनुभयका है जिसका प्रकृतमें असत्यमृषा वचन योगसे तात्पर्य है ।

पुस्तक २, पृ. ६२९

७. शंका—पंक्ति १७ में जो संज्ञिक तथा असंज्ञिक इन दोनों विकल्पोंसे रहित स्थान बतलाया है, वह कौनसे गुणस्थानकी अपेक्षा कहा गया है ? (नानकचंदजी, खतौली)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाधान – वहां उक्त दोनों विकल्पोंसे रहित स्थानसे अभिप्राय सयोगी गुणस्थानसे है।

पुस्तक २, पृ. ७२३

८ **शंका**—आभिनिबोधिक और श्रुतज्ञानियोंके आलापोंमें ज्ञान दो और दर्शन तीन कहे हैं, सो दो ज्ञानोंके साथ तीन दर्शनोंकी संगति कैसे बैठती है ? (नानकचंदजी खतौली)

समाधान—चूंकि छद्मस्थोंके ही मति-श्रुत ज्ञान होते हैं और ज्ञान होनेसे पूर्व दर्शन होता है, अतएव जिन मति-श्रुतज्ञानियोंके अवधिदर्शन उत्पन्न हो गया है किन्तु अवधिज्ञान उत्पन्न नहीं हो पाया, उनकी अपेक्षा उक्त दो ज्ञानोंके साथ तीन दर्शनोंकी संगति बैठ जाती है।

पुस्तक ४, पृ. १२६

९. **शंका**—पुस्तक २, पृ. ५००, व ५३१ पर लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंच व मनुष्योंमें चक्षु और अचक्षु इन दोनों दर्शनोंका सद्भाव बतलाया है, किन्तु पुस्तक ४, पृष्ठ १२६, १२७ व ४५४ पर लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंके चक्षुदर्शनका अभाव कहा है। इस विरोधका कारण क्या है।

(नेमीचंद रतनचंदजी, सहारनपुर)

समाधान—पुस्तक २ में लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंके सामान्य आलाप कहे गये हैं, अतएव वहां क्षयोपशम मात्रके सद्भावकी अपेक्षा दोनों दर्शनोंका कथन किया गया है। किन्तु पुस्तक ४ में दर्शनमार्गणाकी अपेक्षा क्षेत्र व कालकी प्ररूपणा करते हुए उक्त विषय आया है, अतएव वहां उपयोगकी खास विवक्षा है। लब्धि-अपर्याप्तकोंमें चक्षुदर्शन लब्धिरूपसे वर्तमान होते हुए भी उसका उपयोग न है और न होना संभव है, क्योंकि पर्याप्ति पूर्ण होनेसे पूर्व ही उस जीवका मरण होना अवश्यंभावी है। यही बात स्वयं धवलाकारने पुस्तक ४ के उक्त दोनों स्थलों पर स्पष्ट कर दी है कि लब्ध्यपर्याप्तक अवस्थामें क्षयोपशम लब्धि उपयोगकी अविनाभावी न होनेसे उसका वहां निषेध किया गया है।

पुस्तक ४, पृ. १५५–१५८ आदि

१०. **शंका**—पुस्तक ३, पृ. ३३–३६ तथा पुस्तक ४, पृ. १५५–१५८ पर कथन है कि स्वयंभूरमण समुद्रके अन्तमें तिर्यग्लोककी समाप्ति नहीं होती किन्तु असंख्यात द्वीप-समुद्रोंसे रुद्ध योजनोंसे संख्यात गुणे योजन आगे जाकर होती है। परन्तु पुस्तक ४, पृष्ठ १६८ पर कहा गया है कि स्वयंभूरमण समुद्रका विष्कंभ एक राजुके अर्ध प्रमाणसे कुछ अधिक है, तथा पृ. १९९ पर स्वयंभूरमणका क्षेत्रफल जगप्रतरका ८२वां भाग बताया गया है, जिससे विदित होता है कि राजुका अन्त स्वयंभूरमण समुद्रपर ही हुआ है। इस विरोधका समाधान क्या है ? (नेमीचंद रतनचंदजी, सहारनपुर)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाधान—भाग ३ पृ. ३६ पर धवलाकारने स्वयं उक्त दोनों मतोंपर विचार किया है जिससे यही प्रकट होता है कि उक्त विषयपर प्राचीन आचार्योंमें मतभेद रहा है जिसके कारण कितनी ही मान्यताएं एक मतपर और कितनी ही दूसरे मतपर अवलम्बित हुई पायी जाती हैं। धवलाकारने अपनी समन्वयबुद्धि द्वारा जहां जिस मतके अनुसार विषयकी संगति बैठती है वहां उसी मतका अवलम्बन लेकर विचार किया है। धवलाकारके अनुसार एक मत तिलोयपण्णत्तिसूत्रके आधारपर और दूसरा परिकर्मसूत्रपर अवलम्बित है। धवलाकारने परिकर्मसूत्रके शब्दोंकी तो प्रथम मतके साथ किसी प्रकार संगति बैठा दी है, पर उनका जो अर्थ दूसरे आचार्योंने किया है उसको उन्होंने केवल प्रकृतमें व्याख्यानाभास कह कर टाल दिया है।

पुस्तक ५, पृ. ८

११. शंका—पल्योपमका असंख्यातवां भाग कितना समय है, वह मुहूर्त या अन्तमुहूर्तसे कितना गुणा या अधिक है, एवं उपशमसम्यग्दृष्टी जीव सासादनसे मिथ्यात्वको प्राप्त होकर पुनः ठीक कितने कालमें फिर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त कर सकता है?

(हुकमचंद जैन, सलावा मेरठ)

समाधान—पल्योपमसे प्रकृतमें अद्धापल्यका ही अभिप्राय है जिसका प्रमाण भाग ३ द्रव्यप्रमाणकी प्रस्तावना पृ. ३५ पर बतलाया जा चुका है। तदनुसार पल्योपमका असंख्यातवां भाग मुहूर्त या अन्तर्मुहूर्तसे असंख्यातगुणा सिद्ध होता है। इससे अधिक स्पष्ट या निश्चित रूपसे उक्त प्रमाण न कहीं बतलाया गया और न छद्मस्थों द्वारा बतलाया ही जा सकता है। उपशमसम्यक्त्वसे सासादन होकर पुनः उपशमसम्यक्त्वकी प्राप्ति संख्यातवर्षकी आयुमें संभव नहीं बतलाई। किन्तु असंख्यात वर्षकी आयुमें संभव बतलायी गई है। (देखो गत्यागति चूलिका सूत्र ६६–७३ की टीका व विशेषार्थ पृ. ४४४–४४५)। इसपरसे इतना ही कहा जा सकता है कि पल्योपमका असंख्यातवां भाग भी असंख्यात वर्षप्रमाण होता है।

पुस्तक ५, पृ. २८

१२ शंका—यहां सातों पृथिवियोंके जीवोंके सम्यक्त्वका उत्कृष्ट अन्तर बतलाते हुए जो उन्हें अन्तिम बार उपशम सम्यक्त्व प्राप्त कराया है और सासादनमें लेजाकर एक और अन्तर्मुहूर्त कम कराया है सो क्यों? यदि उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त न कराकर क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त कराया जाता तो वह सासादन कालका अन्तर्मुहूर्त कम करनेकी आवश्यकता न पड़ती जिससे उत्कृष्ट अन्तर अधिक पाया जा सकता था? (नेमीचंद रतनचंदजी, सहारनपुर)

समाधान—उक्त प्रकरणमें क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त न कराकर उपशम सम्यक्त्व प्राप्त करानेके दो कारण दिखाई देते हैं। एक तो वहां सातों पृथिवियोंका एक साथ कथन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया गया है, और सातवीं पृथिवीसे सम्यक्त्व सहित निर्गमन होना संभव ही नहीं है। दूसरे क्षयोपशम सम्यक्त्व तभी प्राप्त किया जा सकता है जब सम्यक्त्व प्रकृतिका सर्वथा उद्वेलन नहीं हो पाया, और उसकी सत्ता शेष है। अतएव क्षयोपशम सम्यक्त्वके स्वीकार करनेमें उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमका असंख्यातवां भागमात्र काल ही प्राप्त हो सकता है। किन्तु उपशम सम्यक्त्व तभी प्राप्त हो सकता है जब सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियोंकी उद्वेलना पूरी हो चुकती है। अतएव उपशम सम्यक्त्व प्राप्त करानेसे ही उक्त कुछ अन्तर्मुहूर्तोंको छोड़ शेष आयुकालप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त हो सकता है; क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करानेसे नहीं हो सकता।

पुस्तक ५, पृ. ३८

१३. शंका—सूत्र नं. ४० की टीकामें तीन पंचेन्द्रिय तिर्यंच मिथ्यादृष्टियोंका जघन्य अन्तर बतलाते हुए उन्हें केवल एक असंयतसम्यक्त्व गुणस्थानमें ही क्यों प्राप्त कराया? सूत्र नं. ३६ की टीकाके समान यहां भी 'अन्य गुणस्थानमें लेजाकर' ऐसा सामान्य निर्देश कर तृतीय, चतुर्थ व पंचम गुणस्थानको प्राप्त क्यों नहीं कराया? (नेमीचंद रतनचंदजी, सहारनपुर)

समाधान—सूत्र नं. ३६ और ४० की टीकामें केवल कथनशैलीका ही भेद ज्ञात होता है, अर्थका नहीं। यहां सम्यक्त्वसे संभवतः केवल चतुर्थ गुणस्थानका ही अभिप्राय नहीं, किन्तु मिथ्यात्वको छोड़ उन सब गुणस्थानोंसे है जो प्रकृत जीवोंके संभव हैं। यह बात कालानुगमके सूत्र ५८ की टीका (पुस्तक ४ पृ. ३६३) को देखनेसे और भी स्पष्ट हो जाती है जहां उक्त तीनों तिर्यंचोंके मिथ्यात्वसे सम्यग्मिथ्यात्व, असंयतसम्यक्त्व व संयतासंयत गुणस्थानमें जाने-आनेका स्पष्ट विधान है।

पुस्तक ५, पृ. ४०

१४. शंका—सूत्र ४५ में तीन पंचेन्द्रिय तिर्यंच सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर बतलाते हुए अन्तमें प्रथम सम्यक्त्वको ग्रहण कराकर सम्यग्मिथ्यात्वको क्यों प्राप्त कराया, सीधे मिथ्यात्वसे ही सम्यग्मिथ्यात्वको क्यों नहीं प्राप्त कराया? क्या उनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियोंकी उद्वेलना हो जाती है? (नेमीचंद रतनचंदजी, सहारनपुर)

समाधान—हां, वहां उक्त दो प्रकृतियोंकी उद्वेलना हो जाती है। वह उद्वेलना पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र कालमें ही हो जाती है, और यहां तीन पल्योपम कालका अन्तर बतलाया जा रहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुस्तक ५, पृ. ४०

१५ शंका—सूत्र ४५ की टीकामें पंचेन्द्रिय तिर्यंच सासादनोंका ही उत्कृष्ट अन्तर क्यों कहा, पंचेन्द्रिय पर्याप्त और योनिमती तिर्यंच सासादनोंका क्यों नहीं कहा ?

(नेमीचंद रतनचंदजी, सहारनपुर)

समाधान—पृष्ठ ४० के अन्तमें व ४१ के आदिमें टीकाकारने पंचेन्द्रिय पर्याप्त व योनिमतियोंका भी निर्देश किया है एवं उपर्युक्त कथनसे जो विशेषता है वह बतलाई है।

पुस्तक ५, पृ. ५१-५५

१६. शंका—यहां मनुष्यनियोंमें संयतासंयतादि उपशान्तकषायान्त गुणस्थानोंका जो अन्तर कहा गया है वह द्रव्य स्त्रीकी अपेक्षासे कहा गया है या भाव स्त्रीकी ?

(नेमीचंद रतनचंदजी, सहारनपुर)

समाधान—इसका कुछ समाधान पुस्तक ३, पृ. २८–३० (प्रस्तावना) में किया गया है। पर यह समस्त विषय विचारणीय है। इसकी शास्त्रीय चर्चा जैन पत्रोंमें चलाई है।

(देखो जैन संदेश, ता. ११–११–४२ आदि)

पुस्तक ५, पृ. ६२

१७. शंका—सूत्र ९४ की टीकामें भवनवासी आदि देव सासादनोंके अन्तरको ओघके समान कहकर उनके उत्कृष्ट अन्तरमें दो समय और छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण अन्तरकी ओघसे समानता बतलाई है। परन्तु ओघ-निरूपणमें बनिस्बत दोके तीन समयोंको कम किया गया है। इस विरोधकी संगति किस प्रकार बैठायी जाय ?

(नेमीचंद रतनचंदजी, सहारनपुर)

समाधान—सूत्र नं. ९० की टीकामें यद्यपि प्रतियोंमें 'तिहि समएहि' पाठ है, पर विचार करनेसे जान पड़ता है कि वहां 'वेहि समएहि' पाठ होना चाहिये, क्योंकि ऊपर जो व्यवस्था बतलाई है उसमें दो ही समय कम किये जानेका विधान ज्ञात होता है। अतएव सूत्र ९४ की टीकामें जो दो समय कम करनेका आदेश है वही ठीक जान पड़ता है।

पुस्तक ५, पृ. ७३

१८. शंका—यहां अन्तरानुगममें सूत्र १२१, १८६, २०० और २८८ की टीकामें क्रमशः तीन पक्ष तीन दिन व अन्तर्मुहूर्त, दो मास व दिवसपृथक्त्व, दो मास व दिवसपृथक्त्व, तथा तीन पक्ष तीन दिन व अन्तर्मुहूर्तसे गर्भज जीवको संयतासंयत गुणस्थानमें प्राप्त कराया है। क्या गर्भके दिन घट बढ़ भी सकते हैं ? (नेमीचंद रतनचंदजी, सहारनपुर)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाधान—यह भेद उत्तर और दक्षिण प्रतिपत्तियोंके भेदोंपरसे उत्पन्न हुआ है जिसके लिये देखिये पुस्तक ५ अंतरानुगम सूत्र २७ की टीका पृ. ३२.

पुस्तक ५, पृ. ९१

१९. शंका—यहां सूत्र १६९ व उसकी टीकामें वैक्रियिक काययोगियोंमें आदिके चार गुणस्थानोंके अन्तरको मनोयोगियोंके समान कहकर दोनोंमें नाना व एक जीवकी अपेक्षा अन्तराभावकी समानता बतलाई है। परन्तु सूत्र १५४–१५५ में मनोयोगी सासादन व सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण अन्तर बतलाया है। ओघकी अपेक्षा भी (सूत्र ५–६) उक्त दोनों गुणस्थानोंमें वही अन्तर बतलाया गया है। फिर यहां चारों गुणस्थानोंमें जो अन्तरका अभाव कहा गया है वह कैसे घटित होगा? (नेमीचंद रतनचंदजी, सहारनपुर)

समाधान—यहां सूत्र १६९ की टीकामें 'अन्तराभावेण' से यदि 'अन्तर और उसके अभावका अर्थ लिया जाय तो सामञ्जस्य ठीक बैठ जाता है कि सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर तथा उन्हीं गुणस्थानोंके एक जीवकी अपेक्षा एवं मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टियोंके नाना व एक जीवकी अपेक्षा अन्तराभावसे वैक्रियिक काययोगियोंकी मनोयोगियोंसे समानता है।

पुस्तक ५, पृ. ९९

२०. शंका—यहां सूत्र १८९ की टीकामें स्त्रीवेदी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणका अन्तर बतलाते हुए जो कृतकृत्यवेदक होकर अपूर्वकरण उपशामक होना कहा है वह किस अपेक्षासे है, क्योंकि, उपशमश्रेणीका आरोहण क्षायिकसम्यग्दृष्टि या द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि ही करते हैं, वेदकसम्यग्दृष्टि नहीं? (नेमीचंद रतनचंदजी, सहारनपुर)

समाधान—यहां 'कृतकृत्यवेदक होकर अपूर्वकरण उपशामक हुआ' इसका अभिप्राय कृतकृत्यवेदककालको पूर्णकर क्षायिक सम्यक्त्वके साथ अपूर्वकरण उपशामक होनेका है, न कि कृतकृत्यवेदक होनेके अनन्तर समयमें ही अपूर्वकरण उपशामक होनेका। यह बात पुरुषवेदी अपूर्वकरण उपशामकके उत्कृष्ट अन्तरकी प्रक्रियासे भी सिद्ध होती है, जिसके लिये देखिये सूत्र नं. २०३ की टीका।

पुस्तक ५, पृ. १०२

२१. शंका—सूत्र १९७ में पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दृष्टियोंके अन्तरनिरूपणमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुरुषवेदकी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण कर अन्तमें जो देवोंमें उत्पन्न होना कहा है वह कैसे सम्भव है ? पुरुषवेदकी स्थिति पूर्ण हो जानेपर तो देवियोंमें उत्पन्न कराना चाहिये था न कि देवोंमें ?

(नेमीचंद रतनचंदजी, सहारनपुर)

समाधान—यहां 'देवोंमें उत्पन्न हुआ' इसका अभिप्राय देवगतिमें उत्पन्न हुआ समझना चाहिये।

पुस्तक ५, पृ. ११५

२२. शंका—सूत्र २३४ की टीकामें अवधिज्ञानी असंयतसम्यग्दृष्टिकी अन्तर-प्ररूपणामें संज्ञी सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकके अवधिज्ञानका सद्भाव कहा है। परन्तु इसके आगे सूत्र २३७ की टीकामें मति-श्रुतज्ञानी संयतासंयतोंके उत्कृष्ट अन्तरसम्बन्धी शंकाके समाधानमें उक्त जीवोंमें उसीका अभाव भी बतलाया है। इस विरोधका परिहार क्या है ?

(नेमीचंद रतनचंदजी, सहारनपुर)

समाधान—संज्ञी सम्मूर्च्छिम पर्याप्त तिर्यंचोंमें वेदक सम्यक्त्व, संयमासंयम व अवधिज्ञान उत्पन्न होना तो निश्चित है, क्योंकि कालप्ररूपणाके सूत्र १८ की टीकामें संयतासंयतका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल एवं सूत्र २६६ की टीकामें आभिनिबोधिक, श्रुत और अवधिज्ञानियोंका काल उक्त जीवोंमें ही घटित करके बतलाया गया है। उसी प्रकार प्रस्तुत सूत्र २३४ की टीकामें भी वही बात स्वीकृत की गई है। परन्तु सूत्र नं. २३७ की टीकामें जो उन जीवोंमें उक्त गुणोंका निषेध किया गया है वह उपशम सम्यक्त्वकी अपेक्षासे है, क्योंकि उन जीवोंमें उपशम सम्यक्त्वकी प्राप्तिका अभाव है। यही बात आगे सूत्र २८८ में चक्षुदर्शनी संयतासंयतोंका अन्तर बतलाते समय टीकाकारने स्पष्ट की है। किन्तु सूत्र २३७ की टीकाके शंका-समाधानमें उपशम सम्यक्त्वकी अपेक्षा क्यों उत्पन्न हुई यह बात विचारणीय रह जाती है।

पुस्तक ५, पृ. १४७

२३. शंका—यहां सूत्र ३०४ में तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि व असंयतसम्यग्दृष्टिका तथा सूत्र ३०६ में इसी लेश्यावाले सासादन व सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर जो दो सागरोपमप्रमाण ही बतलाया गया है वह कम है, क्योंकि सानत्कुमार-माहेन्द्र कल्पोंकी अपेक्षा उक्त अन्तर सात सागरोपमप्रमाण भी हो सकता था। फिर उसकी यहां उपेक्षा क्यों की गई है ? यही शंका उपर्युक्त लेश्यावाले जीवोंके कालप्ररूपण (पु. ४ पृ. ४६३) में भी उठायी जा सकती है ? (नेमीचंद रतनचंदजी, सहारनपुर)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाधान—उक्त विधानसे यही प्रतीत होता है कि तेजोलेश्यावाला मिथ्यादृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि जीव सानत्कुमार-माहेन्द्र कल्पमें उत्पन्न नहीं होता या उसके अधस्तन विमानमें ही उत्पन्न होता है जहां दो सागरोपम स्थितिकी संभावना है। धवलाकारने उक्त कल्पके अधस्तन विमानमें ही तेजोलेश्याके संभवका उपदेश बतलाया है (देखो पुस्तक ४, पृ. २९६)। फिर भी राजवार्तिक ४-२२ में तथा गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा ५२१ में तेजोलेश्यासहित सानत्कुमार-माहेन्द्र कल्पके अन्तिम पटलमें जानेका विधान पाया जाता है। यह कोई मतभेद ही मालूम होता है।

पुस्तक ५, पृ. २१८

२४. शंका—कोई तिर्यंच जीव मनुष्यायुका बंध करके पश्चात् क्षयोपशम सम्यक्त्व सहित मरण कर मनुष्यगतिको प्राप्त हो सकता है या नहीं? गोम्मटसार जीवकाण्ड, गाथा ५३०-५३१ में इसको स्पष्ट माना है, किन्तु षट्खंडागम जीवट्ठाणकी भावप्ररूपणाके सूत्र ३४ और उसकी टीकासे उसमें कुछ सन्देह होता है? (हुकमचंदजी जैन, सलावा, मेरठ)

समाधान—कृतकृत्यवेदकको छोड़ अन्य क्षयोपशमसम्यक्त्वी तिर्यंच मरण करके एक मात्र देवगतिको ही प्राप्त होता है (देखो गत्यागति चूलिका सूत्र १३१, पृ. ४६४)। यदि उस तिर्यंचने उक्त सम्यक्त्व प्राप्त करनेसे पूर्व देवायुको छोड़ अन्य किसी आयुका बन्ध कर लिया है तो मरणसे पूर्व उसका वह सम्यक्त्व छूट जायगा (देखो गत्यागति चूलिका, सूत्र १६४ टीका, पृ. ४७५)। जीवकाण्डकी गाथा ५३१ में केवल मनुष्य व तिर्यंचोंके भोगभूमिमें अपर्याप्त अवस्थामें सम्यक्त्व होनेका सामान्यसे उल्लेखमात्र है। संस्कृत टीकाकारने वहां क्षायिक व वेदक सम्यक्त्वका विधान किया है जिससे क्षायिक व कृतकृत्यवेदकका अभिप्राय ग्रहण करना चाहिये, अन्य क्षायोपशमिक सम्यक्त्वका नहीं (देखो भाग २, पृ. ४८१)।

पुस्तक ५, पृ. २१८

२५. शंका—यहां सूत्र ३४ की टीकामें जहां देव, नारकी व मनुष्य सम्यग्दृष्टियोंकी उत्पत्ति तिर्यंच व मनुष्योंमें बतलायी है वहां तिर्यंच सम्यग्दृष्टि जीवोंकी भी उत्पत्ति उक्त दोनों प्रकारके जीवोंमें क्यों नहीं बतलायी? क्या मनुष्यके समान बद्धायुष्क क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि तिर्यंच मरकर तिर्यंच व मनुष्योंमें उत्पन्न नहीं हो सकता या मरते समय उसका वह सम्यग्दर्शन छूट जाता है? (नेमीचंद रतनचंदजी, सहारनपुर)

समाधान—इस शंकाका समाधान ऊपरकी शंकाके समाधानमें हो चुका है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुस्तक ५, पृ. २२२

२६. शंका—यहां अपगतवेदविषयक शंका और उसके समाधानसे विदित होता है कि द्रव्य स्त्रीके भी अनिवृत्तिकरणादि गुणस्थान हो सकते हैं। क्या यह ठीक है?

(नेमीचंद रतनचंदजी, सहारनपुर)

समाधान— देखो ऊपर नं. १६ का शंका-समाधान।

पुस्तक ५, पृ. ३०३

२७. शंका—यहां सूत्र १५९ में स्त्रीवेदियों तथा सूत्र १८८ में नपुंसकवेदियोंमें अपूर्वकरण व अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती उपशम सम्यग्दृष्टियोंकी अपेक्षा जो क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंको कम बतलाया है वह किस अपेक्षासे है, क्योंकि, सूत्र १६०-१६१ व १८९-१९० में उपशामकोंकी अपेक्षा क्षपकोंका प्रमाण संख्यातगुणा कहा है। और उपशमश्रेणीपर चढ़नेवाले औपशमिक एवं क्षायिक सम्यग्दृष्टि दोनों हैं जब कि क्षपकश्रेणी चढ़नेवाले क्षायिक सम्यग्दृष्टि ही हैं। अतएव औपशमिक सम्यग्दृष्टियोंकी अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका प्रमाण अधिक होना चाहिये था?

(नेमीचंद रतनचंदजी, सहारनपुर)

समाधान—स्त्रीवेदी व नपुंसकवेदी अपूर्वकरण एवं अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती जीवोंमें क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंकी कमीका कारण उनका अप्रशस्त वेद है। अप्रशस्त वेदके उदय सहित जीवोंमें दर्शनमोहका क्षय करनेवालोंकी अपेक्षा उसका उपशम करनेवाले ही अधिक होते हैं। (देखो अल्पबहुत्वानुगम सूत्र ७५–७६)। एवं उपशामकोंके संचयकालकी अपेक्षा क्षपकोंका काल अधिक होता है।

हस्तलिखित प्रतियोंमें चूलिका-सूत्रोंकी व्यवस्था

प्रस्तुत संस्करणमें भिन्न भिन्न नौ चूलिकाओंके सूत्रोंकी संख्याका क्रम एक दूसरी चूलिकासे सर्वथा स्वतंत्र रखा गया है। यह व्यवस्था हस्तलिखित प्रतियोंमें पाई जानेवाली व्यवस्थासे कुछ भिन्न है। उदाहरणार्थ अमरावतीकी प्रतिमें प्रकृतिसमुत्कीर्तना नामक प्रथम चूलिकामें सूत्रसंख्या १ से ४२ तक पाई जाती है। दूसरी स्थानसमुत्कीर्तन चूलिकामें सूत्र-संख्या १ से ११६ तक दी गई है। इसके आगेकी चूलिकाओंमें सूत्रोंपर चालू संख्याक्रम दिया गया है जिसके अनुसार प्रथम दंडकपर ११७, द्वितीय दंडकपर ११८, तृतीय दंडकपर ११९, उत्कृष्टस्थिति चूलिकामें १२० से १६२ तक, जघन्यस्थितिमें १६३ से २०३ तक,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक्त्वोत्पत्तिमें २०४ से २२० तक, एवं गत्यागतिमें २२० से ३६८ तक सूत्रसंख्या पाई जाती है। ऐसी अवस्थामें हमारे सन्मुख दो प्रकार उपस्थित हुए कि या तो प्रथमसे लेकर नौवीं तक सभी चूलिकाओंमें सूत्रक्रमसंख्या एकसी चालू रखी जावे, या फिर सबकी अलग अलग। यह तो बहुत विसंगत बात होती कि प्रतियोंके अनुसार प्रथम दो चूलिकाओंका सूत्रक्रम पृथक् पृथक् रखकर शेषका एक ही रखा जाय, क्योंकि ऐसा करनेका कोई कारण हमारी समझमें नहीं आया। प्रत्येक चूलिकाका विषय अलग अलग है और अपनी अपनी एक विशेषता रखता है। सूत्रकारने और तदनुसार टीकाकारने भी प्रत्येक चूलिकाकी उत्थानिका अलग अलग बांधी है। अतएव हमें यही उचित जंचा कि प्रत्येक चूलिकाका सूत्रक्रम अपना अपना स्वतंत्र रखा जाय। हस्तलिखित प्रतियों और प्रस्तुत संस्करणमें सूत्रसंख्याओंमें जो वैषम्य है वह हस्त प्रतियोंमें संख्याएं देनेमें त्रुटियोंके कारण उत्पन्न हुआ है। वहां कुछ सूत्रोंपर कोई संख्या ही नहीं है, पर विषयकी संगति और टीकाको देखते हुए वे स्पष्टतः सूत्र सिद्ध होते हैं। कहीं कहीं एक ही संख्या दो बार लिखी गई है। इन सब त्रुटियोंके निराकरणके पश्चात् जो व्यवस्था उत्पन्न हुई वही प्रस्तुत संस्करणमें पाठकोंको दृष्टिगोचर होगी। यदि इसमें कोई दोष या अनधिकार चेष्टा दिखाई दे तो पाठक कृपया हमें सूचित करें।

विषय-परिचय

प्रस्तुत ग्रंथ षट्खंडागमके प्रथम खंड जीवस्थानका अन्तिम भाग है जिसे धवलाकारने चूलिका कहा है। पूर्वमें कहे हुए अनुयोगोंके कुछ विषम स्थलोंका जहां विशेष विवरण किया जाय उसे चूलिका कहते हैं[1]। यहां चूलिकाके नौ अवान्तर विभाग किये गये हैं जिनका परिचय इस प्रकार है—

१ प्रकृतिसमुत्कीर्तन चूलिका

क्षेत्र, काल और अन्तर प्ररूपणाओंमें जो जीवके क्षेत्र व कालसम्बन्धी नाना परिवर्तन बतलाये गये हैं वे विशेष कर्मबन्धके द्वारा ही उत्पन्न हो सकते हैं। वे कर्मबन्ध कौनसे हैं, उन्हींका व्यवस्थित और पूर्ण निर्देश इस चूलिकामें किया गया है। यहां ज्ञानावरण, दर्शनावरण,

१ सम्मत्तेसु अट्ठसु अणियोगद्दारेसु चूलिया किमट्ठमागदा ? पुव्वुत्ताणमट्ठण्णमणिओगद्दाराणं विसमपएस-विवरणट्ठमागदा। पु. ६, पृ. २. चूलिया णाम किं ? एक्कारसअणिओगद्दारेसु सूइदत्थस्स विसेसिऊण परूवणा चूलिया। खुद्दाबंध, अन्तिम महादंडक. उक्तानुक्तदुरुक्तचिन्तनं चूलिका। गो. क. ३९८ टीका.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय, इस क्रमसे आठ प्रधान कर्मोंका स्वरूप बतलाया गया है और फिर उनकी क्रमशः पांच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, ब्यालीस, दो और पांच प्रकृतियां बतलाई गयी हैं। नामकी ब्यालीस प्रकृतियोंके भीतर चौदह प्रकृतियां ऐसी हैं जिनकी पुनः क्रमशः चार, पांच, पांच, पांच, पांच, छह, तीन, छह, पांच, दो, पांच, आठ, चार, और दो, इस प्रकार पैंसठ उत्तरप्रकृतियां हो गईं हैं; अतएव नामकर्मके कुल भेद ६५ + २८ = ९३ हुए, जिससे आठों कर्मोंकी समस्त उत्तरप्रकृतियां एकसौ अड़तालीस (१४८) हुई हैं[१]। इसमें ४६ सूत्र हैं जिनका विषय आग्रायणीय पूर्वकी चयनलब्धिके अन्तर्गत महाकर्मप्रकृतिप्राभृतके सातवें अधिकार बंधनके बन्धविधान नामक विभागान्तर्गत समुत्कीर्तना अधिकारसे लिया गया है[२]।

२ स्थानसमुत्कीर्तन चूलिका

प्रकृतियोंकी संख्या व स्वरूप जान लेनेके पश्चात् यह जानना आवश्यक होता है कि उनमेंसे प्रत्येक मूलकर्मकी कितनी उत्तरप्रकृतियां एक साथ बांधी जा सकती हैं और उनका बंध कौन कौनसे गुणस्थानोंमें संभव है। यह विषय स्थानसमुत्कीर्तन चूलिकामें समझाया गया है। यहां सूत्रोंमें गुणस्थाननिर्देश चौदह विभागोंमें न करके केवल संक्षेपके लिये छह विभागोंमें किया गया है— मिथ्यादृष्टि, सासादन, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयत। इनमेंके प्रथम पांच तो गुणस्थान क्रमसे ही हैं, किन्तु अन्तिम विभाग संयतमें छठवें गुणस्थानसे लेकर ऊपरके यथासंभव सभी गुणस्थानोंका अन्तरभाव है जिनका उपपत्ति सहित विशेष स्पष्टीकरण धवलाकारने किया है। ज्ञानावरणकी पांचों प्रकृतियोंका एक ही स्थान है, क्योंकि मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयत तक सभी उन पांचों ही का बंध करते हैं। दर्शनावरणके तीन स्थान हैं। पहले स्थानमें मिथ्यादृष्टि और सासादन जीव हैं जो समस्त नौ ही प्रकृतियोंका बंध करते हैं। दूसरेमें सम्यग्मिथ्यादृष्टि आदि संयत तकके जीव हैं जो निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धि, इन तीनको छोड़ शेष छह प्रकृतियोंको बांधते हैं। तीसरे स्थानमें वे संयत जीव हैं जो चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवल, इन चार दर्शनावरणोंका ही बंध करते हैं। वेदनीयका एक ही बंधस्थान है, क्योंकि मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयत तक सभी जीव साता और असाता इन दोनों वेदनीयोंका बंध करते हैं। मोहनीय कर्मके दस बन्धस्थान हैं। पहले स्थानमें मिथ्यादृष्टि जीव हैं जो एक साथ बंध योग्य बाईस ही प्रकृतियोंका बंध करते हैं। यहां इस बातका ध्यान रखना

१ देखो आगे दी हुई तालिका।

२ देखो पुस्तक १, पृ. १२७, व प्रस्तावना पृ. ७२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाहिये कि सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व इन दो प्रकृतियोंका तो बंध होता ही नहीं है, वे तो सम्यक्त्व उत्पन्न होते समय मिथ्यात्वके तीन टुकड़े हो जानेसे सत्त्वमें आ जाती हैं। तथा तीन वेदों और हास्य-रति व अरति-शोक इन दो युगलोंमेंसे एक साथ एक ही का बंध सम्भव होता है। मोहनीयके दूसरे बंधस्थानमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीव हैं जो उपर्युक्त बाईसमेंसे एक नपुंसकवेदको छोड़ शेष इक्कीस प्रकृतियोंका बंध करते हैं। तीसरे स्थानमें सम्यग्मिथ्यादृष्टि व असंयतसम्यग्दृष्टि जीव हैं जो उक्त इक्कीसमेंसे चार अनन्तानुबंधी कषायों व स्त्रीवेदको छोड़ शेष सत्तरहका बंध करते हैं। चौथे स्थानमें संयतासंयत जीव हैं जो चार अप्रत्याख्यान कषायोंका भी बंध नहीं करते, केवल शेष तेरहका करते हैं। पांचवें स्थानमें वे संयत जीव हैं जो चार प्रत्याख्यान कषायोंका भी बंध नहीं करते, पर शेष नौका करते हैं। छठवें स्थानमें वे संयत जीव हैं जो मोहनीयकी अन्य प्रकृतियोंको छोड़ केवल चार संज्वलन और पुरुषवेद, इन पांचका ही बंध करते हैं। सातवें स्थानमें वे संयत जीव हैं जो पुरुषवेदको भी छोड़ केवल संज्वलन-चतुष्कको बांधते हैं। आठवें स्थानमें वे संयत हैं जो क्रोध संज्वलनको छोड़ शेष तीनका ही बंध करते हैं। नौवें स्थानवाले वे संयत हैं जो मान संज्वलनका भी बंध करना छोड़ देते हैं व केवल शेष दो का बंध करते हैं। दशवें स्थानमें केवल लोभ संज्वलनका बंध करनेवाले संयत हैं।

आयुकर्मकी चारों प्रकृतियोंके अलग अलग चार बंधस्थान हैं— एक नरकायुको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टिका; दूसरा तिर्यंचायुको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टिका; तीसरा मनुष्यायुको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि, सासादन व असंयतसम्यग्दृष्टिका; और चौथा देवायुको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि, सासादन, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत व संयतका। यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव किसी भी आयुको नहीं बांधता।

नामकर्मके बंधयोग्य प्रकृतियोंकी संख्याके अनुसार आठ बंधस्थान हैं जिनमें क्रमशः ३१, ३०, २९, २८, २६, २५, २३ और १ प्रकृतियोंका बंध किया जाता है। इन स्थानोंका चार गतियोंके अनुसार इस प्रकार निरूपण किया गया है— नरकगति और पंचेन्द्रिय पर्याप्तका बंध करता हुआ मिथ्यादृष्टि जीव २८ प्रकृतियोंको बांधता है (सूत्र ६२)। तिर्यंचगति सहित पंचेन्द्रिय पर्याप्त व उद्योतका बंध करता हुआ मिथ्यादृष्टि जीव अथवा सासादन जीव एवं तिर्यंचगति सहित विकलेन्द्रिय पर्याप्त व उद्योतका बंध करता हुआ मिथ्यादृष्टि जीव भिन्न प्रकारसे ३० प्रकृतियोंको बांधता है (सूत्र ६४, ६६, ६८)। तिर्यंचगति सहित पंचेन्द्रिय पर्याप्तका बंध करता हुआ मिथ्यादृष्टि या सासादनसम्यग्दृष्टि एवं तिर्यंचगति सहित विकलेन्द्रिय पर्याप्तका बंध करता हुआ मिथ्यादृष्टि जीव भिन्न प्रकारसे २९ प्रकृतियोंको बांधता है (सूत्र ७०, ७२, ७४)। तिर्यंचगति सहित एकेन्द्रिय बादर पर्याप्त और आताप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

या उद्योतका बंध करता हुआ मिथ्यादृष्टि २६ प्रकृतियोंको बांधता है (सूत्र ७६)। तिर्यंचगति सहित एकेन्द्रिय पर्याप्त और बादर या सूक्ष्मका बंध करता हुआ, अथवा त्रस एवं अपर्याप्तका बंध करता हुआ मिथ्यादृष्टि भिन्न प्रकारसे २५ प्रकृतियोंको बांधता है (सूत्र ७८, ८०)। तिर्यंचगति सहित एकेन्द्रिय अपर्याप्त और बादर या सूक्ष्मका बंध करता हुआ मिथ्यादृष्टि २३ प्रकृतियां बांधता है (सूत्र ८२)। मनुष्यगति सहित पंचेन्द्रिय और तीर्थंकर प्रकृतियोंको बांधता हुआ असंयत सम्यग्दृष्टि जीव ३० प्रकृतियोंका बंध करता है। मनुष्यगति सहित पंचेन्द्रिय पर्याप्तको बांधता हुआ सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, सासादन व मिथ्यादृष्टि भिन्न प्रकारसे २९ प्रकृतियोंको बांधता है (सू. ८७, ८९, ९१)। मनुष्यगति सहित पंचेन्द्रिय अपर्याप्तको बांधता हुआ मिथ्यादृष्टि २५ प्रकृतियोंका बंध करता है (सू. ९३)। देवगति सहित पंचेन्द्रिय, पर्याप्त, आहारक और तीर्थंकर प्रकृतियोंका बंध करता हुआ अप्रमत्तसंयत या अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती जीव ३१ प्रकृतियोंको बांधता है (सू. ९६)। वही जीव तीर्थंकर प्रकृतिको छोड़कर ३० का एवं आहारकको भी छोड़कर २९ का बंध करता है (सू. ९८, १००)। देवगति सहित पंचेन्द्रिय पर्याप्त तीर्थंकरको बांधता हुआ असंयतसम्यग्दृष्टि या संयतासंयत जीव भी २९ प्रकृतियोंको बांधता है (सू. १०२)। देवगति सहित पंचेन्द्रिय पर्याप्तका बंध करता हुआ अप्रमत्तसंयत, अपूर्वकरण, अथवा मिथ्यादृष्टि, सासादन, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत व संयत जीव २८ प्रकृतियोंका बंध करता है (सू. १०४, १०६)। जब संयत जीव यशःकीर्तिका बंध करता है तब केवल इस एक नामप्रकृतिका ही बंध होता है (सू. १०८)। इस प्रकार यद्यपि एक साथ बंधनेवाली प्रकृतियोंकी संख्याकी अपेक्षा नामकर्मके आठ बंधस्थान हैं तथापि संस्थान, संहनन एवं विहायोगति आदि सात युगलोंके विकल्पोंसे बंधस्थानोंके भेद कई हजारोंपर पहुंच गये हैं (देखो सू. ८९, ९१)।

गोत्रकर्मके केवल दो ही बंधस्थान हैं। मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि जीव नीच-गोत्रका और शेष उच्चगोत्रका बंध करते हैं।

अन्तरायकर्मका केवल एक ही बंधस्थान है क्योंकि मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयत तक सभी जीव पांचों ही अन्तरायोंका बंध करते हैं।

इस चूलिकाका विषय भी प्रथम चूलिकाके समान महाकर्मप्रकृतिप्राभृतके बंधविधानके समुत्कीर्तना अधिकारसे लिया गया है। इसकी सूत्रसंख्या ११७ है।

३. प्रथम महादंडक चूलिका

इस चूलिकामें केवल दो सूत्र हैं जिनमेंसे एकमें ऐसी प्रकृतियां बतलानेकी प्रतिज्ञा की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गई है जिन्हें प्रथमसम्यक्त्वको ग्रहण करनेवाला जीव बांधता है, और दूसरे सूत्रमें वे प्रकृतियां गिनाई गईं हैं तथा यह भी प्रकट कर दिया गया है कि उनका स्वामी मनुष्य या तिर्यंच होता है। इन प्रकृतियोंकी संख्या ७३ है। विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि उक्त जीव आयुकर्मका बंध नहीं करता, एवं आसाता व स्त्री-नपुंसकवेदादि अशुभ प्रकृतियोंको भी नहीं बांधता। धवलाकारने यहां अपनी व्याख्यामें सम्यक्त्वोन्मुख जीवके किस परिणामोंमें किस प्रकार विशुद्धता बढ़ती है और उससे किस प्रकार अशुभतम, अशुभतर व अशुभ प्रकृतियोंका क्रमशः बंधव्युच्छेद होता है इसका विशद निरूपण किया है (देखो पृ. १३५–१३९), और अन्तमें क्षयोपशम आदि पांच लब्धियोंके निर्देश करनेवाली गाथाको उद्धृत करके चूलिका समाप्त की है।

४. द्वितीय महादंडक चूलिका

जिस प्रकार प्रथम दंडकमें तिर्यंच और मनुष्य प्रथमसम्यक्त्वोन्मुख जीवोंके बंध योग्य प्रकृतियां बतलाईं हैं, उसी प्रकार इस दूसरे महादंडकमें प्रथमसम्यक्त्वके अभिमुख, देव और प्रथमादि छह पृथिवियोंके नारकी जीवोंके बंध योग्य प्रकृतियां गिनाई गईं हैं। यहां भी सूत्रोंकी संख्या केवल दो ही है।

५. तृतीय महादंडक चूलिका

इस चूलिकामें सातवीं पृथिवीके नारकी जीवोंके सम्यक्त्वाभिमुख होने पर बंध योग्य प्रकृतियोंका निर्देश किया गया है।

उपर्युक्त तीनों दडकोंका विषय भी उपर्युक्त महाकर्मप्रकृतिप्राभृतके समुत्कीर्तना अधिकारसे लिया गया है।

६. उत्कृष्टस्थिति चूलिका

कर्मोंका स्वरूप व उनके बंध योग्य स्थानोंका ज्ञान हो जाने पर स्वभावतः यह प्रश्न उपस्थित होता है कि एक बार बांधे हुए कर्म कितने काल तक जीवके साथ रह सकते हैं, सब कर्मोंका स्थितिकाल बराबर ही है या कम बढ़, व सब जीव सब समय एक ही समान कर्मस्थिति बांधते हैं या भिन्न भिन्न, एवं बंध होते ही कर्म अपना फल दिखाने लगते हैं या कुछ काल पश्चात्? इन्हीं प्रश्नोंके उत्तर आगेकी दो अर्थात् उत्कृष्टस्थिति और जघन्यस्थिति चूलिकामें दिये गये हैं। उत्कृष्टस्थिति चूलिकामें यह बतलाया गया है कि भिन्न भिन्न कर्मोंका अधिकसे अधिक बंधकाल कितना हो सकता है और कितने कालकी उनमें आबाधा हुआ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करती है अर्थात् बंध होनेके कितने समय पश्चात् उनका विपाक प्रकट होता है। इस काल-निर्देशके लिये आगे दी हुई तालिका देखिये। आबाधाका सामान्य नियम यह है कि प्रत्येक कोडाकोडी सागरके बंधपर एक सौ वर्षोंकी आबाधा होती है। जैसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, असातावेदनीय व अन्तराय कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबंध तीस कोडाकोडी सागरोपमोंका है तो इसी परसे जाना जा सकता है, कि उक्त कर्म बंध होनेसे तीन हजार वर्षोंके पश्चात् उदयमें आवेंगे। पर यह नियम आयुकर्मके लिये लागू नहीं होता क्योंकि वहां अधिकसे अधिक आबाधा अधिकसे अधिक भुज्यमान आयुके तृतीय भागप्रमाण ही हो सकती है (देखो सू. २९ टीका)। जिन कर्मोंकी स्थिति अन्तःकोडाकोडी सागरोपमकी है उनकी आबाधाका प्रमाण एक अन्तर्मुहूर्त माना गया है (देखो सू. ३३–३४)। इस प्रकार आबाधाकालको छोड़कर शेष समस्त कर्मस्थितिकालमें उन कर्मोंका निषेक अर्थात् उदयमें आकर गलन होता है. जिसकी प्रक्रिया धवलाकारने गणितके नियमानुसार विस्तारसे समझाई है। इसमें आबाधाकाण्डक और नानागुणहानि आदि प्रक्रियायें ध्यान देने योग्य हैं (देखो सू. ६ टीका)। इस चूलिकाकी सूत्रसंख्या ४४ है जिनके विषयका संग्रह महाकर्मप्रकृतिके बंधविधानान्तर्गत स्थिति अधिकार अर्धच्छेद प्रकरणसे किया गया है।

७. जघन्यस्थिति चूलिका

जिस प्रकार उपर्युक्त उत्कृष्टस्थिति चूलिकामें कर्मोंकी अधिकसे अधिक स्थिति व आबाधा आदिका विवरण दिया गया है, उसी प्रकार जघन्यस्थिति चूलिकामें कर्मोंकी कमसे कम संभव स्थिति व आबाधा आदिका ज्ञान कराया गया है। यहां धवलाकारने आदिमें ही उत्कृष्ट और जघन्य स्थितियोंके कर्मबंधोंका कारण इस प्रकार बतलाया है कि परिणामोंकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे जो कर्मबंध होता है उसमें स्थिति जघन्य पड़ती है और जितनी मात्रामें परिणामोंमें संक्लेशकी वृद्धि होती है उतनी ही कर्मस्थितिकी वृद्धि होती है। असाता बंधके योग्य परिणामको संक्लेश कहते हैं और साताबंधके योग्य परिणामको विशुद्धि। दूसरे आचार्योंने जो उत्कृष्ट स्थितिसे नीचे नीचेकी स्थितियोंको बांधनेवाले जीवके परिणामको विशुद्धि और जघन्यस्थितिसे ऊपर ऊपरकी स्थितियोंको बांधनेवाले जीवके परिणामको संक्लेश कहा है, उसे धवलाकार ठीक नहीं समझते, क्योंकि वैसा माननेपर तो जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिबंधयोग्य परिणामोंको छोड़ कर शेष मध्यम स्थितियों सम्बन्धी समस्त परिणाम संक्लेश और विशुद्धि दोनों कहे जा सकते हैं, और लक्षणभेदके विना एक ही परिणामको दो भिन्न रूप माननेमें विरोध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आता है। उन्होंने कषायवृद्धिको भी संक्लेशका लक्षण मानना उचित नहीं समझा, क्योंकि विशुद्धिकालमें भी तो कषायवृद्धि होना संभव है और उसीसे सातावेदनीय आदि कर्मोंका भुजाकार बंध होता है। ध्यान देने योग्य बात एक और यह है कि छठवें गुणस्थान तक जिस असातावेदनीय कर्मका बंध होता है उसकी जघन्य स्थिति एक सागरोपमके लगभग $\frac{3}{7}$ भागप्रमाण होती है और जो सातावेदनीय कर्म सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके अन्तिम समयमें बांधा जाता है उसका भी जघन्य स्थितिबंध १२ मुहूर्तसे कम नहीं होता। यद्यपि दर्शनावरणीयका बंध तीस कोड़ाकोडी सागरसे घटकर अन्तर्मुहूर्तमात्र जघन्य स्थिति पर आ जाता है, पर शुभ बंध होनेके कारण सातावेदनीय कर्मकी विशुद्धिके द्वारा भी उतनी अपवर्तना नहीं हो पाती। (देखो सू. ९ टीका)

सूत्रोंमें प्रकृति और स्थिति बंधका विचार तो खूब हुआ, पर प्रदेश और अनुभाग बंधका कहीं परिचय नहीं कराया गया? इसका समाधान धवलाकारने जघन्यस्थिति चूलिकाके अन्तमें किया है कि उक्त प्रकृति और स्थिति बंधकी व्यवस्थासे ही प्रदेश व अनुभाग बंधकी व्यवस्था निकल आती है जिसे उन्होंने वहां समझा भी दिया है। उसी प्रकार उन्होंने सत्त्व, उदय और उदीरणाका स्वरूप भी बंधप्ररूपणाके आधारसे समझा दिया है।

इस चूलिकामें ४३ सूत्र हैं और यह विषय उत्कृष्टस्थिति चूलिकाके समान अर्धच्छेद प्रकरणसे लिया गया है।

८. सम्यक्त्वोत्पत्ति चूलिका

इस चूलिकाको इस समस्त ग्रंथका प्राण कहा जाय तो अनुपयुक्त न होगा। यहां सूत्र केवल १६ ही हैं पर उनमें संक्षेपरूपसे यह महत्त्वपूर्ण समस्त विषय बड़ी ही सावधानीसे सूचित कर दिया गया है। यह विषय चार अधिकारोंमें विभाजित है। पहले सात सूत्रोंमें यह बतलाया गया है कि कोई भी पंचेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तक मिथ्यादृष्टि जीव अपने परिणामोंकी विशुद्धता बढ़ाते हुए क्रमशः समस्त कर्मोंकी स्थितिको घटाते घटाते जब अन्तःकोड़ाकोड़ी प्रमाणसे भी कम कर लेता है तब फिर वह एक अन्तर्मुहूर्त तक मिथ्यात्वका अवघट्टन करता है, अर्थात् उसकी अनुभागशक्तिको घटा कर उसका अन्तरकरण करता है, जिससे मिथ्यात्वके तीन भाग हो जाते हैं सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व। बस, यहीं उस जीवको प्रथम सम्यक्त्वकी प्राप्ति होती है।

आगेके तीन सूत्रोंमें (८-१०) समस्त दर्शनमोहनीयकर्मके उपशमनके अधिकारी जीवका निर्देश किया गया है, जिसमें कहा गया है कि यह क्रिया चारों गतियोंका कोई भी पंचेन्द्रिय संज्ञी गर्भोत्पन्न पर्याप्तक जीव कर सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फिर आगे सूत्र ११ में दर्शनमोहके क्षपणका प्रारंभ करने योग्य स्थान और परिस्थितिको बतलाया है कि अढ़ाई द्वीप-समुद्रोंकी केवल उन पन्द्रह कर्मभूमियोंमें दर्शनमोहका क्षपण प्रारंभ किया जा सकता है जहां जिन भगवान् केवली व तीर्थंकर विद्यमान हों। और १२ वें सूत्रमें यह कह दिया है कि एक वार उक्त परिस्थितिमें क्षपणाकी स्थापना करके उसकी निष्ठापना अर्थात् पूर्ति चारों गतियोंमेंसे किसी भी गतिमें की जा सकती है। ऐसे क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करनेवाले जीवकी योग्यता सूत्र १३–१४ में बतलाई है कि जब वह क्षायिक सम्यक्त्वकी प्राप्तिके उन्मुख होता है तब वह आयुकर्मको छोड़ शेष सात कर्मोंकी स्थितिको अन्तःकोड़ाकोड़ी प्रमाण कर लेता है। यदि सम्यक्त्वके साथ साथ चारित्र अर्थात् देशचारित्र भी ग्रहण करता है तो भी वह जीव सातों कर्मोंकी स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ी प्रमाण करता है। यह अन्तःकोड़ाकोड़ी धवलाकारके स्पष्टीकरणानुसार पूर्वसे बहुत हीन होती है।

आगेके सूत्र १५ और १६ में सकलचारित्र ग्रहणकी योग्यता बतलाई गयी है कि उस समय जीव चारों घातिया कर्मोंकी स्थिति तो अन्तर्मुहूर्त कर लेता है, किन्तु वेदनीयकी बारह मुहूर्त, नाम और गोत्रकी आठ मुहूर्त एवं शेषकी स्थिति भिन्न मुहूर्त करता है।

सूत्रकारके इस संक्षेप निर्देशको धवलाकारने इतना विस्तार दिया है और विषयको इतनी सूक्ष्मता, गम्भीरता और विशालताके साथ समझाया है जितना यह विषय और कहीं प्रकाशित साहित्यमें अब तक हमारे देखनेमें नहीं आया। लब्धिसारका विवेचन भी इसके सन्मुख बहुत स्थूल दिखने लगता है।

धवलाकारने पहले तो पांचों लब्धियोंका स्वरूप समझाया है (पृ. २०४) और फिर सम्यक्त्वके अभिमुख जीव के कितनी प्रकृतियोंकी सत्ता रहती है, उनमें कितना कैसा अनुभाग रहता है, किन प्रकृतियोंका उदय रहता है व चारों गतियोंमें इनमें कितना क्या भेद पड़ता है, इसका खूब खुलासा किया है (पृ. २०७–२१४)। इसके पश्चात् अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण परिणामोंकी विशेषता समझाई है (पृ. २१५–२२२)। सूत्र ५ के आश्रयसे उन्होंने यह बात विस्तारसे बतलाई है कि उक्त परिणामोंमें विशुद्धि बढ़नेके साथ साथ कर्मोंका स्थिति व अनुभाग घात किस प्रकार व किस क्रमसे होता है (पृ. २२२–२३०)। फिर मिथ्यात्वके अवघट्टन या अन्तरकरणकी क्रिया समझाई है व उपशम सम्यक्त्व उत्पन्न होने तक गुणश्रेणी व गुणसंक्रमणादि कार्य बतलाये हैं, तथा पूर्वोक्त समस्त क्रियाओंके कालका अल्पबहुत्व पच्चीस पदोंके दंडक द्वारा बतलाया है (पृ. २३१–२३७)।

क्षायिक सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके योग्य क्षेत्र व जीवका स्पष्टीकरण करते हुए उन्होंने यह बतलाया है कि जिन जीवोंका पन्द्रह कर्मभूमियोंमें ही जन्म होता है, अन्यत्र नहीं, वे ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षपणाके योग्य होते हैं, और चूंकि तिर्यंच उक्त कर्मभूमियोंके अतिरिक्त स्वयंप्रभ पर्वतके परभागमें भी उत्पन्न होते हैं, इससे तिर्यंचमात्र क्षपणाके योग्य नहीं ठहरते (पृ. २४४–२४५)। यद्यपि जिस कालमें जिन, केवली व तीर्थंकर हों वही काल क्षपणाकी प्रस्थापनाके योग्य होता है ऐसा कहनेसे केवल दुषमासुषमा काल ही इसके योग्य ठहरता है, पर कृष्णादिकके तीसरी पृथ्वीसे निकलकर् तीर्थंकरत्व प्राप्त करनेकी जो मान्यता है उसके अनुसार सुषमादुषमा कालमें भी दर्शनमोहका क्षपण किया जा सकता है (पृ. २४६–२४७)। आगे दर्शनमोहके क्षपण करनेके आदिमें अनन्तानुबंधीके विसंयोजनसे लगाकर जो स्थितिबंधापसरण, अनुभागबंधापसरण, स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात व गुणश्रेणी संक्रमण आदि कार्य होते हैं वे खूब विस्तारसे समझाये हैं (पृ. २४८–२६६)। और फिर वे ही कार्य देशचारित्र सहित सम्यक्त्व उत्पन्न करनेवालेके किस विशेषताको लेकर होते हैं यह बतलाया है (पृ. २६८–२८०)। वे ही कार्य सकलचारित्रकी प्राप्तिमें किस विशेषतासे होते हैं यह फिर आगे बतलाया है (पृ. २८१–३१७)। इससे आगे उपशांतकषायसे पतन होनेका क्रमवार विवरण दिया गया है (पृ. ३१७–३३१) और फिर पूर्वोक्त जो पुरुषवेद और क्रोधकषाय सहित श्रेणी चढ़नेका विधान कहा है उसमें अन्य कषायों व अन्य वेदोंसे चढ़नेपर क्या विशेषता उत्पन्न होती है यह बतलाया है (पृ. ३३२–३३५)। तत्पश्चात् श्रेणी चढ़नेसे उतरने तककी समस्त क्रियाओंके कालका अल्पबहुत्व कहा गया है (पृ. ३३५–३४२)।

अब चारित्रमोहकी क्षपणाका विधान आता है जिसमें अपूर्वकरण गुणस्थानसे लेकर समय समयकी क्रियाओंका विशद और सूक्ष्म निरूपण किया गया है और क्रमशः आठ कषाय व निद्रानिद्रादिकका संक्रमण, मनःपर्ययज्ञानावरणादिकका बन्धसे देशघातिकरण, चार संज्वलन और नौ नोकषायोंका अन्तरकरण तथा नपुंसक व स्त्रीवेद तथा सात नोकषायोंका संक्रमण बतलाया गया है (पृ. ३४४–३६४)। इसके आगे अश्वकर्णकरणकालका निरूपण है जिसमें चारों कषायोंके स्पर्द्धकों और फिर उनके अपूर्वस्पर्द्धकों तथा उनकी वर्गणाओंमें अविभागप्रतिच्छेदोंका वर्णन किया गया है (पृ. ३६४–३६८)। इसके पश्चात् अश्वकर्णकरण कालके प्रथम, द्वितीय व तृतीय समयके कार्योंका अल्पबहुत्व, अनुभागसत्वकर्मका अल्पबहुत्व व अपूर्वस्पर्द्धकोंका अल्पबहुत्व देकर अश्वकर्णकरणके अन्तर्मुहूर्तकालका विधान समाप्त किया गया है (३६९–३७३)। यहां अश्वकर्णकरणकालके अन्तमें कर्मोंके स्थितिबन्धका प्रमाण बतलाकर कृष्टिकरणकालका विधान समझाया गया है जिसमें प्रथमसमयवर्ती कृष्टियोंकी तीव्र-मंदताका अल्पबहुत्व, कृष्टियोंके अन्तरोंका अल्पबहुत्व, कृष्टियोंके प्रदेशाग्रकी श्रेणीप्ररूपणा और कृष्टिकरणकालके अन्त समयमें संज्वलनादि कर्मोंके स्थितिबन्धका निरूपण खूब विशद हुआ है (पृ. ३७४–३८१)। कृष्टिकरणकालमें पूर्व और अपूर्व स्पर्धकोंका वेदन होता है, कृष्टियोंका नहीं। जब कृष्टिकरणकाल समाप्त होजाता है, तब

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनके वेदनका काल प्रारम्भ होता है, जिसमें कृष्टियोंके बन्ध, उदय, अपूर्वकृष्टिनिर्माण, प्रदेशाग्र-संक्रमण, एवं सूक्ष्मसाम्परायकृष्टियोंका निर्माण किया जाता है (पृ. ३८२-४०६)।

यह जो विधान बतलाया गया है वह क्रोध कषाय व पुरुषवेदसे उपस्थित होनेवाले जीवका है। अब आगे क्रमसे मान, माया व लोभ तथा स्त्रीवेद व नपुंकसवेदसे उपस्थित हुए क्षपककी विशेषताएं बतलाई गई हैं (पृ. ४०७-४१०)। यह सब सूक्ष्मसाम्पराय तकका कार्य हुआ जिसके अन्तमें कर्मोंके स्थितिबंधका प्रमाण बतलाकर आगे क्षीणकषाय गुणस्थानमें होनेवाले घातिया कर्मोंकी उदीरणा, निद्रा-प्रचलाके उदय और सत्वका व्युच्छेद तथा अन्तमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मोंके सत्त्व व उदयके व्युच्छेदका निर्देश करके सयोग-केवली गुणस्थान प्राप्त कराया गया है (पृ. ४१०-४१२)।

सयोगी जिन सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होते हुए एवं असंख्यातगुणश्रेणी द्वारा प्रदेशाग्र-निर्जरा करते हुए विहार करते हैं व आयुके अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर वे केवलिसमुद्घात करते हैं जिसकी दंड, कपाट, मंथ एवं लोकपूरण क्रियाओंमें होनेवाले कार्य बतलाये गये हैं (पृ. ४१२-४१४)। इसके पश्चात् मन, वचन और काय योगोंके निरोधका विधान है। सूक्ष्मकायका निरोध करते समय अन्तर्मुहूर्त तक अपूर्वस्पर्द्धककरण और फिर अन्तर्मुहूर्त तक कृष्टि-करण क्रियायें भी होती हैं जिनके अन्तमें योगका पूर्णतः निरोध हो जाता है और सर्व कर्मोंकी स्थिति शेष आयुके बराबर हो जाती है। बस, यहीं जीव अयोगी हो जाता है जहां सर्व कर्माश्रवका निरोध, शैलेशी वृत्ति एवं समुच्छिन्नक्रिय-अनिवृत्ति शुक्लध्यान होता है। इस अन्तर्मुहूर्तके द्विचरम समयमें ७३ और अन्तिम समयमें शेष १२ प्रकृतियोंकी सत्ताका विनाश हो जानेसे जीव सर्व कर्मसे वियुक्त होकर सिद्ध हो जाता है।

सूत्रकारने यह विषय दृष्टिवादके पांच अंगोंमेंसे द्वितीय अंग सूत्रपरसे संग्रह किया है (पुस्तक १, पृ. १२०, व प्रस्तावना पृ. ७४)। धवलाकारने उसका जो विस्तार किया है उसके आधारका यद्यपि उन्होंने स्पष्टीकरण नहीं किया, पर मिलानसे निश्चयतः ज्ञात होता है कि उन्होंने वह कषायप्राभृतके चूर्णिसूत्रोंसे लिया है। यथार्थतः बहुतायतसे उन्होंने उक्त चूर्णि-सूत्रोंको ही जैसाका तैसा उद्धृत किया है जैसा कि प्रस्तुत चूलिकामें जगह जगह दी हुई टिप्पणियोंपरसे ज्ञात हो सकेगा।

९ गत्यागति चूलिका

इस चूलिकाके चार विभाग किये जा सकते हैं। पहले ४३ सूत्रोंमें भिन्न भिन्न नारकी तिर्यंच, मनुष्य व देव जिनबिम्बदर्शन, धर्मश्रवण, जातिस्मरण व वेदना इन चारमेंसे किन किन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कारणों द्वारा व कब सम्यक्त्वकी प्राप्ति करते हैं इसका प्ररूपण किया गया है। आगे सूत्र ४४ से ७५ तक उक्त चारों गतियोंमें प्रवेश करने और वहांसे निकलनेके समय जीवके कौन कौन गुणस्थान होना संभव हैं इसका निर्देश किया गया है। सूत्र ७६ से २०२ तक यह बतलाया गया है कि उक्त गतियोंसे भिन्न भिन्न गुणस्थानों सहित निकलकर जीव कौन कौनसी गतियोंमें जा सकता है। फिर सूत्र २०३ से अन्तिम सूत्र २४३ तक यह बतलाया गया है कि उक्त चार गतियोंके जीव उस उस गतिसे निकलकर जिस अन्य गतिमें जावेंगे वहां वे कौन कौनसे गुण प्राप्त कर सकते हैं। ये चारों विषय आगे चार पृथक् तालिकाओंमें स्पष्ट कर दिये गये हैं अतएव उनके विषयमें यहां विशेष कहनेकी आवश्यकता नहीं है।

यह गत्यागतिका विषय सूत्रकारने दृष्टिवादके पांच अंगोंमें प्रथम अंग परिकर्मके चन्द्र-प्रज्ञप्ति आदि पांच भेदोंमेंके अन्तिम भेद वियाहपण्णत्ति (व्याख्याप्रज्ञप्ति) से ग्रहण किया है। (पुस्तक १ पृ. १३०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. प्रकृतिसमुत्कीर्तन, स्थानसमुत्कीर्तन, तीनों दंडक व उत्कृष्ट और जघन्य स्थितियोंकी तालिका

	प्रकृतिसमुत्कीर्तन		बन्धस्थान	प्रथमसम्यक्त्व अभिमुखके बन्धयोग्य है या नहीं	उत्कृष्ट		जघन्य	
	मूलप्रकृति	उ. प्रकृति			स्थिति	आबाधा	स्थिति	आबाधा
१	ज्ञानावरणीय	मतिज्ञाना-वरणादि ५	मिथ्यादृष्टिसे लेकर सू. सां. संयत तक	हैं	३० कोड़ा-कोड़ी सागरोपम	३ वर्ष-सहस्र	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मु.
२	दर्शनावरणीय	१ नि. नि. २ प्र. प्र. ३ स्त्यान.	मिथ्यादृष्टि व सासादन	,,	,,	,,	३/७ सा.×	,,
		४ निद्रा ५ प्रचला	मिथ्यात्वसे अपूर्वकरणके प्र. सप्तम भाग तक	,,	,,	,,	,,	,,
		६ चक्षुद. ७ अचक्षु. ८ अवधि. ९ केवल.	मिथ्यात्वसे सूक्ष्मसाम्प-राय तक	,,	,,	,,	अन्तर्मुहूर्त	,,
३	वेदनीय	१ साता.	मिथ्यात्वसे सयोगी तक	,,	१५ को.	१½ व. स.	१२ मुहू.	,,
		२ असाता.	मिथ्यात्वसे प्रमत्त तक	नहीं	३० ,,	३ ,,	३/७ सा.×	,,
४	मोहनीय (अ) दर्शनमोह.	१ सम्यक्त्व. २ मिथ्यात्व. ३ सम्यग्मि.	× मिथ्यात्व ×	× हैं ×	७० ,,	७ ,,	१/७ सा.×	,,
	(आ) चारित्रमो. (१) कषाय-वेदनीय	अनन्तानु बन्धी क्रोधादि ४	मिथ्यादृष्टि व सासादन	,,	४० ,,	४ ,,	४/७ सा.×	,,
		अप्रत्याख्याना. क्रोधादि ४	मिथ्यादृष्टिसे असंयत सम्यग्दृष्टि तक	,,	,,	,,	,,	,,
		प्रत्याख्याना-वरण क्रोधादि ४	मिथ्यादृष्टिसे संयतासंयत तक	,,	,,	,,	,,	,,

× इसे पल्योपमके असंख्यातवें भागसे हीन ग्रहण करना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृतिसमुत्कीर्तन		बन्धस्थान	प्रथमसम्यक्त्व अभिमुखके बन्धयोग्य है या नहीं	उत्कृष्ट		जघन्य	
मूलप्रकृति	उ. प्रकृति			स्थिति	आबाधा	स्थिति	आबाधा
	संज्वलन क्रोध	मिथ्यादृष्टिसे अनि. क. तक	है	४० को.	४ व. स.	२ मास	अन्तर्मु.
	,, मान	,,	,,	,,	,,	१ मास	,,
	,, माया	,,	,,	,,	,,	१ पक्ष	,,
	,, लोभ	सूक्ष्मसाम्पराय तक	,,	,,	,,	अन्तर्मुहूर्त	,,
(२) नोकषाय वेदनीय	१ स्त्रीवेद	मिथ्यादृष्टि और सासादन	नहीं	१५ को.	१½ व. स.	२/७ सा.×	,,
	२ पुरुषवेद	अनिवृत्ति-करण तक	है	१० ,,	१ ,,	८ वर्ष	,,
	३ नपुंसकवेद	मिथ्यादृष्टि	नहीं	२० ,,	२ ,,	२/७ सा.×	,,
	४ हास्य	अपूर्वक. तक	है	१० ,,	१ ,,	,,	,,
	५ रति	,,	,,	,,	,,	,,	,,
	६ अरति	,,	नहीं	२० को.	२ व. स.	,,	,,
	७ शोक	,,	,,	,,	,,	,,	,,
	८ भय	,,	है	,,	,,	,,	,,
	९ जुगुप्सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,
५ आयु	१ नारकायु	मिथ्यादृष्टि	,,	३३ सा.	१/३ पू. को.	१० व. स.	,,
	२ तिर्यंचायु	मिथ्यादृष्टि और सासादन	,,	३ पल्योपम	,,	क्षुद्रभव	,,
	३ मनुष्यायु	मिश्रको छोड़ असंयत तक	,,	,,	,,	,,	,,
	४ देवायु	अप्रमत्त तक	,,	३३ सा.	,,	१० व. स.	,,
६ नाम (पिंडप्रकृतियां) १ गति	१ नरक	मिथ्यादृष्टि	नहीं	२० को. सा.	२ व. स.	२/७ सा.×	,,
	२ तिर्यंच	मिथ्या. सासा.	सातवीं पृथिवीके नारकी बांधते हैं	,,	,,	,,	,,
	३ मनुष्य	असंयत सम्य. तक	देव नारकी बांधते हैं	१५ को. सा.	१½ व. स.	,,	,,
	४ देव	अप्रमत्त तक	तिर्यंच मनुष्य बांधते हैं	१० ,,	१ व. स.	,,	,,

× इसे पल्योपमके असंख्यातवें भागसे हीन ग्रहण करना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृतिसमुत्कीर्तन		बन्धस्थान	प्रथमसम्यक्त्व अभिमुखके बन्धयोग्य है या नहीं	उत्कृष्ट		जघन्य	
मूलप्रकृति	उ. प्रकृति			स्थिति	आबाधा	स्थिति	आबाधा
(२) जाति	१ एकेन्द्रिय	मिथ्यादृष्टि	नहीं	२० को.	२ व. स.	२/७ सा.×	अन्तर्मु.
	२ द्वीन्द्रिय	,,	,,	१८ ,,	१ ४/५ ,,	,,	,,
	३ त्रीन्द्रिय	,,	,,	,,	,,	,,	,,
	४ चतुरिन्द्रिय	,,	,,	,,	,,	,,	,,
	५ पंचेन्द्रिय	अपूर्वकरण तक	है	२० ,,	२ ,,	,,	,,
(३) शरीर ५ (४) शरीर-बंधन ५ (५) शरीर-संघात ५	१ औदारिक	असं.सम्य.तक	देव नारकी बांधते हैं	,,	,,	,,	,,
	२ वैक्रियिक	अपूर्व. तक	तिर्य. मनुष्य नहीं	,,	,,	२/७ सा.×	,,
	३ आहारक	अप्रमत्त और अपूर्वकरण		अन्तः-कोड़ाकोड़ी	अन्तर्मुहूर्त	अन्तः-कोड़ाकोड़ी	,,
	४ तैजस	अपूर्वक. तक	है	२० को.	२ व.स.	२/७ सा.×	,,
	५ कार्मण	,,	,,	,,	,,	,,	,,
(६) शरीर-संस्थान	१ समचतुरस्र	अपूर्वक. तक	है	१० ,,	१ ,,	१/७ सा.×	,,
	२ न्यग्रोध-परिमंडल	मिथ्या. सासा.	नहीं	१२ ,,	१ १/५ ,,	,,	,,
	३ स्वाति	,,	,,	१४ ,,	१ २/५ ,,	,,	,,
	४ कुब्जक	,,	,,	१६ ,,	१ ३/५ ,,	,,	,,
	५ वामन	,,	,,	१८ ,,	१ ४/५ ,,	,,	,,
	६ हुंड	मिथ्यादृष्टि	,,	२० ,,	२ ,,	,,	,,
(७) शरीरां-गोपांग	१ औदारिक	असंयत सम्य. तक	देव नारकी बांधते हैं	,,	,,	,,	,,
	२ वैक्रियिक	अपूर्व. तक	तिर्य. मनुष्य बांधते हैं	,,	,,	,,	,,
	३ आहारक	अप्रमत्त अपूर्वकरण	नहीं	अन्तः-कोड़ाकोड़ी	अन्तर्मुहूर्त	अन्तः-कोड़ाकोड़ी	,,
(८) शरीर-संहनन	१ वज्रवृषभ-नाराच	असंयत सम्य. तक	देव नारकी बांधते हैं	१० को.	१ व.स.	२/७ सा.×	,,
	२ वज्रनाराच	मिथ्या. सासा.	,,	१२ ,,	१ १/५ ,,	,,	,,
	३ नाराच	,,	,,	१४ ,,	१ २/५ ,,	,,	,,
	४ अर्धनाराच	,,	,,	१६ ,,	१ ३/५ ,,	,,	,,
	५ कीलिक	,,	,,	१८ ,,	१ ४/५ ,,	,,	,,
	६ असंप्राप्त सेवर्त	मिथ्यादृष्टि	,,	२० ,,	२ ,,	,,	,,

× इसे पल्योपमके असंख्यातवें भागसे हीन ग्रहण करना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृतिसमुत्कीर्तन		बन्धस्थान	प्रथमसम्यक्त्व अभिमुखके बन्धयोग्य है या नहीं	उत्कृष्ट		जघन्य	
मूलप्रकृति	उ. प्रकृति			स्थिति	आबाधा	स्थिति	आबाधा
(९) वर्ण	५ कृष्णादि	अपूर्व. तक	है	२० को.	२ व. स.	२/७ सा.×	अन्तर्मु.
(१०) गंध	१ सुरभि २ दुरभि	,,	,,	,,	,,	,,	,,
(११) रस	५ तिक्तादिक	,,	,,	,,	,,	,,	,,
(१२) स्पर्श	८ कर्कशादि	,,	,,	,,	,,	,,	,,
(१३) आनु-पूर्वी	१ नरकगति.	मिथ्यादृष्टि	,,	,,	,,	,,	,,
	२ तिर्यंचगति.	मिथ्या. सासा.	७ वें नरकके जीव बांधते हैं	,,	,,	,,	,,
	३ मनुष्यगति.	असंयत-सम्य. तक	देव नारकी बांधते हैं	१५ को.	१ $\frac{१}{२}$ व.स.	,,	,,
	४ देवगति.	अपूर्व. तक	तिर्यंच मनुष्य बांधते हैं	१० ,,	१ ,,	,,	,,
(१४) विहायोगति	१ प्रशस्त	,,	है	,,	,,	,,	,,
	२ अप्रशस्त	मिथ्या. सासा.	नहीं	२० ,,	२ ,,	,,	,,
(अपिंड प्रकृतियां)	१ अगुरुलघु	अपूर्व. तक	है	,,	,,	,,	,,
	२ उपघात	,,	,,	,,	,,	,,	,,
	३ परघात	,,	,,	,,	,,	,,	,,
	४ उच्छ्वास	,,	,,	,,	,,	,,	,,
	५ आताप	मिथ्यादृष्टि	नहीं	,,	,,	,,	,,
	६ उद्योत	मिथ्या. सासा.	७ वें नरकके जीव विकल्पसे बांधते हैं	,,	,,	,,	,,
	७ त्रस	अपूर्व. तक	है	,,	,,	,,	,,
	८ स्थावर	मिथ्यादृष्टि	नहीं	,,	,,	,,	,,
	९ बादर	अपूर्व. तक	है	,,	,,	,,	,,
	१० सूक्ष्म	मिथ्यादृष्टि	नहीं	१८ ,,	१ $\frac{४}{५}$,,	,,	,,

× इसे पल्योपमके असंख्यातवें भागसे हीन ग्रहण करना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृतिसमुत्कीर्तन		बन्धस्थान	प्रथमसम्यक्त्व अभिमुखके बन्धयोग्य है या नहीं	उत्कृष्ट		जघन्य	
मूलप्रकृति	उ. प्रकृति			स्थिति	आबाधा	स्थिति	आबाधा
	११ पर्याप्त	अपूर्वक. तक	है	२० को.	२ व. स.	२/७ सा. ×	अन्तर्मु.
	१२ अपर्याप्त	मिथ्यादृष्टि	नहीं	१८ ,,	१ ४/५ ,,	,,	,,
	१३ प्रत्येक-शरीर	अपूर्वक. तक	है	२० ,,	२ ,,	,,	,,
	१४ साधारण शरीर	मिथ्यादृष्टि	नहीं	१८ ,,	१ ४/५ ,,	,,	,,
	१५ स्थिर	अपूर्वक. तक	है	१० ,,	१ ,,	,,	,,
	१६ अस्थिर	प्रमत्तसं. ,,	नहीं	२० ,,	२ ,,	,,	,,
	१७ शुभ	अपूर्वक. ,,	है	१० ,,	१ ,,	,,	,,
	१८ अशुभ	प्रमत्तसं. ,,	नहीं	२० ,,	२ ,,	,,	,,
	१९ सुभग	अपूर्वक. ,,	है	१० ,,	१ ,,	,,	,,
	२० दुर्भग	मिथ्या.सासा.	नहीं	२० ,,	२ ,,	,,	,,
	२१ सुस्वर	अपूर्वक. तक	है	१० ,,	१ ,,	,,	,,
	२२ दुःस्वर	मिथ्या.सासा.	नहीं	२० ,,	२ ,,	,,	,,
	२३ आदेय	अपूर्वक. तक	है	१० ,,	१ ,,	,,	,,
	२४ अनादेय	मिथ्या.सासा.	नहीं	२० ,,	२ ,,	,,	,,
	२५ यशःकीर्ति	सूक्ष्मसा. तक	है	१० ,,	१ ,,	८ मुहूर्त	,,
	२६ अयशः-कीर्ति	प्रमत्तसं. ,,	नहीं	२० ,,	२ ,,	२/७ सा. ×	,,
	२७ निर्माण	अपूर्वक. ,,	है	,,	,,	,,	,,
	२८ तीर्थंकर	असंयत सम्यग्दृष्टिसे अपूर्वकरण तक	नहीं	अन्तः-कोड़ाकोड़ी	अन्तर्मुहूर्त	अन्तः-कोड़ाकोड़ी	,,
७ गोत्र	१ उच्च	सूक्ष्मसा. तक	है	१० को.	१ व. स.	८ मुहूर्त	,,
	२ नीच	मिथ्या.सासा.	७ वें नरकके जीव बांधते है	२० ,,	२ ,,	२/७ सा. ×	,,
८ अंतराय	५ दानान्तरायादि	सूक्ष्मसा. तक	है	३० ,,	३ ,,	अन्तर्मुहूर्त	,,

× इसे पल्योपमके असंख्यातवें भागसे हीन ग्रहण करना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. स्थानसमुत्कीर्तनचूलिकानुसार स्थानक्रमसे प्रकृतियोंका बन्ध

१. मिथ्यादृष्टि जीव द्वारा बन्धयोग्य प्रकृतियां

५ ज्ञानावरणीय; ९ दर्शनावरणीय; २ वेदनीय; मिथ्यात्व, १६ कषाय, अन्यतम वेद, हास्य और रति, अथवा अरति और शोक; भय और जुगुप्सा, ये २२ मोहनीय; ४ आयु; नरकगति आदि २८ नामकर्म (सूत्र ६१) अथवा तिर्यंचगति आदि ३०, २९, २६, २५, या २३ नामकर्म (सूत्र ६६–८३) अथवा मनुष्यगति आद २९ या २५ नामकर्म (सूत्र ९१–९४) अथवा देवगति आदि २८ नामकर्म (सूत्र १०६); नीच या उच्च गोत्र; और ५ अन्तराय ।

२. सासादन जीव द्वारा बन्धयोग्य प्रकृतियां

५ ज्ञानावरणीय; ९ दर्शनावरणीय; २ वेदनीय; १६ कषाय, स्त्री व पुरुष वेदमेंसे अन्यतर वेद, हास्य और रति, अथवा अरति और शोक, भय और जुगुप्सा, ये २१ मोहनीय; नारकायुको छोड़ शेष ३ आयु; मनुष्यगति आदि २९ नामकर्म (सूत्र ८९) अथवा देवगति आदि २८ नामकर्म (सूत्र १०६); नीच या उच्च गोत्र; और ५ अन्तराय।

३. सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव द्वारा बन्धयोग्य प्रकृतियां

५ ज्ञानावरणीय; निद्रानिद्रादि ३ को छोड़ शेष ६ दर्शनावरणीय; २ वेदनीय, अप्रत्याख्यानादि १२ कषाय, पुरुषवेद, हास्य और रति, अथवा अरति और शोक, भय और जुगुप्सा, ये १७ मोहनीय; यहां आयुबन्ध होता नहीं; मनुष्यगति आदि २९ नामकर्म (सूत्र ८७); उच्च गोत्र; और ५ अन्तराय ।

४. असंयतसम्यग्दृष्टि जीव द्वारा बन्धयोग्य प्रकृतियां

५ ज्ञानावरणीय; निद्रानिद्रादिको छोड़ शेष ६ दर्शनावरणीय, २ वेदनीय; मिश्रके अनुसार १७ मोहनीय; मनुष्य और देव आयु; मनुष्यगति आदि ३० नामकर्म (सूत्र ८५–८६) अथवा २९ नामकर्म (सूत्र ८७.) अथवा देवगति आदि २९ नामकर्म (सूत्र १०२); उच्च गोत्र और ५ अन्तराय ।

५. संयतासंयत जीव द्वारा बन्धयोग्य प्रकृतियां

५ ज्ञानावरणीय; निद्रानिद्रादि ३ को छोड़ शेष ६ दर्शनावरणीय; २ वेदनीय; प्रत्या-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्त्यानावरणादि ८ कषाय एवं मिश्रके अनुसार शेष ५, ये १३ मोहनीय; देवायु; देवगति आदि २९ नामकर्म (सूत्र १०२); उच्च गोत्र; और ५ अन्तराय ।

६. संयत जीव द्वारा बन्धयोग्य प्रकृतियां

५ ज्ञानावरणीय सूक्ष्मसाम्पराय तक। निद्रानिद्रादि ३ को छोड़ शेष ६ दर्शनावरणीय अपूर्वकरणके प्रथम सप्तम भाग तक, तथा निद्रानिद्रादि ५ को छोड़ शेष ४ अपूर्वकरणके द्वितीय भागसे लेकर सूक्ष्मसाम्पराय तक। असातावेदनीय प्रमत्तसंयत तक, तथा सातावेदनीय सयोगी तक। ४ संज्वलन कषाय एवं मिश्रके अनुसार पुरुषवेदादि ५ ये ९ मोहनीय प्रमत्तसे लेकर अपूर्वकरण तक, एवं ४ संज्वलन और पुरुषवेद ये पांच मोहनीय अनिवृत्तिकरण तक; तथा इसी गुणस्थानमें क्रमशः पुरुषवेदरहित ४ संज्वलन, क्रोध संज्वलनको छोड़ केवल ३ संज्वलन, एवं क्रोध मानको छोड़ केवल २ संज्वलन, सूक्ष्मसाम्परायमें केवल एक लोभसंज्वलन मोहनीय। देवायु अप्रमत्त गुणस्थान तक। देवगति आदि ३१, ३०, २९, या २८ नामकर्म अप्रमत्त व अपूर्वकरण संयतके (सूत्र ९६–१०४), यशःकीर्ति नामकर्म अपूर्वकरणके ७ वें भागसे सूक्ष्मसाम्पराय संयत तक। उच्च गोत्र सक्ष्मसाम्पराय तक। ५ अन्तराय सूक्ष्मसाम्पराय तक।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. भिन्न भिन्न गतियोंमें सम्यक्त्वोत्पत्तिके कारण

(गत्यागति चूलिका सूत्र १–४३)

गति	जिनबिंबदर्शन	धर्मश्रवण	जातिस्मरण	वेदना	काल
नरक					
प्रथम पृथ्वी	×	,,	,,	,,	पर्याप्ति होनेसे अन्तर्मुहूर्त पश्चात्
द्वितीय ,,	×	,,	,,	,,	,,
तृतीय ,,	×	,,	,,	,,	,,
चतुर्थ ,,	×	×	,,	,,	,,
पंचम ,,	×	×	,,	,,	,,
षष्ठ ,,	×	×	,,	,,	,,
सप्तम ,,	×	×	,,	,,	,,
तिर्यंच (पं. सं. ग. प.)	,,	,,	,,	×	दिवसपृथक्त्वके पश्चात्
मनुष्य (ग. प.)	,,	,,	,,	×	आठ वर्षसे ऊपर
प. देव					
भवनवासीसे शतार-सहस्रार	जिनमहिमदर्शन्	,,	,,	देवर्द्धिदर्शन	अन्तर्मुहूर्तसे ,,
आनत–अच्युत	,,	,,	,,	×	,,
नव ग्रैवेयक	×	,,	,,	×	,,
ग्रैवेयकोंसे ऊपरके देव नियमसे सम्यक्त्वी ही होते हैं।					

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. गतियोंमें प्रवेश और निर्गमनसम्बन्धी गुणस्थान
(गत्यागति चूलिका सूत्र ४४-७५)

गति	प्रवेशकालीन गुणस्थान	निर्गमनकालीन गुणस्थान		
नरक				
प्रथम पृथ्वीके नारकी	मिथ्यात्व सम्यक्त्व	मिथ्यात्व सम्यक्त्व	सासादन ×	सम्यक्त्व ×
द्वितीयसे छठवीं पृथ्वी तकके नारकी	मिथ्यात्व	मिथ्यात्व	सासादन	सम्यक्त्व
सातवीं पृथ्वीके नारकी	,,	,,	×	×
तिर्यंच-मनुष्य-देव				
पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त व अपर्याप्त	,, सासादन सम्यक्त्व	,, ,, सम्यक्त्व	सासादन ,, ×	सम्यक्त्व ,, ×
पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती मनुष्यिनी भवनवासी देव-देवियां व्यंतर ,, ज्योतिषी ,, सौधर्म-ईशानवासी देवियां	मिथ्यात्व सासादन	मिथ्यात्व ,,	सासादन ×	सम्यक्त्व ,,
मनुष्य पर्याप्त व अपर्याप्त तथा सौधर्मसे नौ ग्रैवेयक तकके देव	मिथ्यात्व सासादन सम्यक्त्व	,, ,, ,,	सासादन ,, ,,	,, ,, ,,
अनुदिशोंसे सर्वार्थसिद्धि तकके देव	,,	,,	×	×

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. जीव किस गतिसे किस गतिमें जाता है

(गत्यागति चूलिका सूत्र ७६–२०२)

निर्गमन करनेवाला जीवभेद	प्राप्त करने योग्य गतियां				
	नरक	तिर्यंच	मनुष्य	देव	विशेष
नारकी					
मिथ्यादृष्टि	×	पं.सं.ग.प.संख्या.	ग.प.संख्या.	×	
सासादन	×	,,	,,	×	
सम्यग्मिथ्यादृष्टि	×	×	×	×	निर्गमन नहीं होता
सम्यग्दृष्टि	×	×	ग.प.संख्या.	×	
सप्तम पृथिवीस्थ मिथ्यादृष्टि	×	पं.सं.ग.प.संख्या.	×	×	सप्तम पृथिवीमें केवल मिथ्यात्वसे ही निर्गमन होता है।
तिर्यंच					
सं.पं.प.संख्या.मिथ्यादृष्टि	सर्व	सर्व	सर्व	भवनवासीसे शतार-सहस्रार तक	
असंज्ञी पं.प.	प्रथम पृथिवी	,,	,,	भवन.व्यंतर	
१ पं.सं.अप. २ पं.असं.अप. ३ पृथिवी.बा.सू.प.अ. ४ जल. ,, ५ वन.निगोद ,, ६ वन.बा.प्र.प.अप. ७ द्वी.प.अ. ८ त्री. ,, ९ चतु. ,,	×	सर्व संख्या.	सर्व संख्या.	×	
तैज.बा.सू.प.अप. वायु ,, ,,	×	,,	×	×	
सासादन संख्या.	×	एकइं.(पृथि.जल.वन.प्र.बा.सू.), पं.सं.ग.प.संख्या.	ग.प.संख्या. असंख्या.	भवन.से शतार-सहस्रार तक	
सम्यग्मिथ्या. संख्या. असंख्या.	×	×	×	×	निर्गमन नहीं होता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्गमन करनेवाला जीवभेद	प्राप्त करने योग्य गतियँ*				
	नरक	तिर्यंच	मनुष्य	देव	विशेष
सम्यग्दृष्टि संख्या.	×	×	×	सौ. ई. से आरण-अच्युत तक	
मिथ्यादृष्टि असंख्या.	×	×	×	भवन, व्यंतर, ज्योतिषी	
सासादन ,,	×	×	×	,,	
सम्यग्दृष्टि ,,	×	×	×	सौधर्म-ईशान	
मनुष्य					
मनुष्य मिथ्या. संख्या.	सर्व	सर्व	सर्व	भवन. से नौ ग्रैवे. तक	
,, प. ,,	,,	,,	,,	,,	
,, अप.	×	,,	,,	×	
सासादन ,,	×	एकेन्द्रिय (बा. पृथि., जल., वन.प्र.पर्याप्त) पंचेन्द्रिय.सं.ग.प. संख्या. असंख्या.	ग. प. संख्या. असंख्या.	भवन. से नौ ग्रैवे. तक	
सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्या. असंख्या	×	×	×	×	
सम्यग्दृष्टि संख्या.	×	×	×	सौ. ई. से सर्वार्थ-सिद्धि तक	बद्धायुष्कोंकी विवक्षा नहीं की गई
मिथ्या. असंख्या.	×	×	×	भवन., व्यंतर, ज्योतिषी	
सासादन ,,	×	×	×	,,	
सम्यग्दृष्टि ,,	×	×	×	सौधर्म-ईशान	
देव					
भवनत्रिक व सौधर्म-ईशान कल्पवासी मिथ्यादृष्टि	×	एके. (बा.पृ., ज., वन.) सं.ग.प.पं.	ग. प. संख्या.	×	
सासादन	×	,,	,,	×	
सम्यग्मिथ्या.	×	×	×	×	
सम्यग्दृष्टि	×	×	ग. प. संख्या.	×	
सनत्कु. से शतार-सहस्रार मिथ्या. सासादन	×	पं.सं.ग.प.संख्या.	,,	×	प्रथम पृथिवीके समान
सम्यग्मिथ्या.	×	×	×	×	
सम्यग्दृष्टि	×	×	ग. प. संख्या.	×	
आनतसे नौ ग्रैवेयक मिथ्या. सासादन असंयतस.	×	×	,,	×	
सम्यग्मिथ्या.	×	×	×	×	
अनुदिशसे सर्वार्थ. सम्यग्दृष्टि	×	×	ग. प. संख्या.	×	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. गुणोत्पादन (गत्यागति चूलिका, सूत्र २०३–२४३)

किस गतिसे	किस गतिमें आकर	कौनसे गुण उत्पन्न कर सकता है — ज्ञान: मति	श्रुत	अवधि	मनःपर्यय	केवल	सम्यक्त्व: सम्यग्मिथ्यात्व	सम्यक्त्व	संयम: संयमासंयम	संयम	शलाका पुरुष: बलदेव	वासुदेव	चक्रवर्ती	तीर्थंकर	अंतकृत्	योग
नरक																
७	तिर्यंच	×	×	×	×	×	×	×	×	×	×	×	×	×	×	
६	,,	उ.	उ.	उ.	×	×	उ.	उ.	उ.	×	×	×	×	×	×	६
	मनुष्य	,,	,,	,,	×	×	,,	,,	,,	×	×	×	×	×	×	६
५	तिर्यंच	,,	,,	,,	×	×	,,	,,	,,	×	×	×	×	×	×	६
	मनुष्य	,,	,,	,,	उ.	×	,,	,,	,,	उ.	×	×	×	×	×	८
४	तिर्यंच	,,	,,	,,	×	×	,,	,,	,,	×	×	×	×	×	×	६
	मनुष्य	,,	,,	,,	उ.	उ.	,,	,,	,,	उ.	×	×	×	×	उ.	१०
३, २, १	तिर्यंच	,,	,,	,,	×	×	,,	,,	,,	×	×	×	×	×	×	६
	मनुष्य	,,	,,	,,	उ.	उ.	,,	,,	,,	उ.	×	×	×	उ.	उ.	११
तिर्यंच मनुष्य	नरक	,,	,,	,,	×	×	,,	,,	×	×	×	×	×	×	×	५
	तिर्यंच	,,	,,	,,	×	×	,,	,,	उ.	×	×	×	×	×	×	६
	मनुष्य	,,	,,	,,	उ.	उ.	,,	,,	,,	उ.	×	×	×	×	उ.	१०
	देव	,,	,,	,,	×	×	,,	,,	×	×	×	×	×	×	×	५
देव																
भवनत्रिक देव देवियां, सौ. ई. की देवियां	तिर्यंच	,,	,,	,,	×	×	,,	,,	उ.	×	×	×	×	×	×	६
	मनुष्य	,,	,,	,,	उ.	उ.	,,	,,	,,	उ.	×	×	×	×	उ.	१०
सौ. ई. से शतार सहस्रार तकके देव	तिर्यंच	,,	,,	,,	×	×	,,	,,	,,	×	×	×	×	×	×	६
	मनुष्य	,,	,,	,,	उ.	उ.	,,	,,	,,	उ.	उ.	उ.	उ.	उ.	उ.	१४
आनतादि नौ ग्रैवेयक तक	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	१४
अनुदिशसे अपराजित ,,	,,	नि. र.	नि. र.	वि. र.	,,	,,	×	नि. र.	,,	नि. उ.	,,	×	,,	,,	,,	
सर्वार्थसिद्धिके देव	,,	,,	,,	ल. र.	,,	नि. उ.	×	,,	,,	,,	,,	×	,,	,,	नि. उ.	

नोट— संकेतोंका अर्थ – × = नहीं होता । उ. = उत्पन्न कर सकते हैं । नि. उ. = नियमसे उत्पन्न करते हैं । नि. र. = नियमसे रहता है । वि. र. = विकल्पसे रहता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय-सूची

प्रकृतिसमुत्कीर्तनचूलिका

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
१	धवलाकारका मंगलाचरण और प्रतिज्ञा।	१
२	शंका-समाधानपूर्वक चूलिकाका अवतार व उसके भेदोंका निरूपण।	,,
३	प्रकृतिसमुत्कीर्तनकी प्रतिज्ञा।	५
४	प्रकृतिसमुत्कीर्तनके भेदोंका निर्देश तथा मूलप्रकृति व उत्तरप्रकृतिका लक्षण।	,,
५	ज्ञानावरणीयका निर्देश तथा आव्रियमाण और आवारकका निरूपण।	६
६	दर्शन व दर्शनावरणीयका लक्षण व दर्शनका ज्ञानसे पृथक्त्वप्ररूपण।	९
७	वेदनीयका निरूपण।	१०
८	मोहनीयका निरूपण।	११
९	आयु, नाम, गोत्र व अन्तराय कर्मोंका निरूपण।	१२
१०	ज्ञानावरणीयके पांच भेदोंका निर्देश।	१५
११	आभिनिबोधिक ज्ञानका स्वरूप व उसके अवग्रहादि भेद-प्रभेदोंका निरूपण।	१६
१२	श्रुतज्ञान और श्रुतज्ञानावरणीयका लक्षण व श्रुतज्ञानके बीस भेदोंका निरूपण।	२१
१३	अवधिज्ञान और अवधिज्ञानावरणका लक्षण तथा अवधिज्ञानके तीन भेदोंका निर्देश।	२५
१४	मति-श्रुतज्ञानोंसे अवधिज्ञानकी भिन्नता बतला कर उसकी प्रत्यक्षताका निरूपण।	२६
१५	मनःपर्ययज्ञान व उसके भेद तथा अवधि और मनःपर्यय ज्ञानोंका वैशिष्ट्य।	२८
१६	केवलज्ञान और केवलज्ञानावरणीयका स्वरूप एवं केवलीके मतिज्ञानादि चार ज्ञानोंके अभावका निरूपण।	२९
१७	दर्शनावरणीयके नौ भेदोंका एवं दर्शन व उसके भेदोंका निरूपण।	३१
१८	दर्शनके स्वरूपमें भिन्न मतोंका दिग्दर्शन और उनका खण्डन।	३३
१९	सातावेदनीय व असातावेदनीयका लक्षण, उन दोनोंके अभावमें सुख-दुःखाभावरूप आशंकाका समाधान और सातावेदनीयका जीव-पुद्गलविपाकित्वनिरूपण।	३५
२०	मोहनीय कर्मके अट्ठाईस भेदोंका निरूपण, दर्शनमोहनीयका स्वरूप और बन्ध व सत्वकी अपेक्षा उसका वैशिष्ट्य।	३७
२१	सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका निरूपण।	३९
२२	चारित्रमोहनीयके भेद-प्रभेद व उनके भिन्न भिन्न लक्षण।	४७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
२३	आयुकर्मके भेद व उनका लक्षण।	४८
२४	नामकर्मकी ब्यालीस पिण्ड-प्रकृतियोंका पृथक् पृथक् लक्षणनिरूपण।	४९
२५	गति व जाति नामकर्मोंके भेदोंका निरूपण।	६७
२६	शरीर नामकर्मके भेदोंका निरूपण।	६८
२७	बन्धनके भेद।	७०
२८	संघातके भेद।	,,
२९	संस्थान नामकर्मके भेद व उनके लक्षण।	७१
३०	अंगोपांग नामकर्मके भेद व उनके लक्षण।	७२
३१	संहनन नामकर्मके भेद व उनके लक्षण।	७३
३२	वर्ण, गन्ध, रस, और स्पर्श नामकर्मके भेदोंका निरूपण।	७४
३३	आनुपूर्वी आदि नामकर्मके भेदोंका निरूपण।	७६
३४	गोत्र और अन्तराय कर्मके भेदोंका निरूपण।	७७

स्थानसमुत्कीर्तनचूलिका

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
१	स्थानसमुत्कीर्तनकी प्रतिज्ञा।	७९
२	बन्धकस्थानोंके भेद।	८०
३	ज्ञानावरणीयकी पांच प्रकृतियोंका निर्देश व उनके एक बन्धस्थानका निरूपण।	,,
४	दर्शनावरणीय कर्मके तीन बन्धस्थानोंका निरूपण।	८२
५	वेदनीयके एक बन्धस्थानका निरूपण।	८७
६	मोहनीय कर्मके दश स्थानोंका निरूपण।	८८
७	आयुकर्मके बन्धस्थान।	९९
८	नामकर्मके अट्ठाईस प्रकृति-सम्बन्धी स्थान।	१०२
९	तिर्यग्गति नामकर्मके पांच स्थान।	१०४
१०	मनुष्यगति नामकर्मके तीन स्थान।	११७
११	देवगति नामकर्मके पांच स्थान।	१२२
१२	गोत्र कर्मके बन्धस्थान।	१३१
१३	अन्तरायकी पांच प्रकृतियोंका एक बन्धस्थान।	१३२

प्रथममहादण्डकचूलिका

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
१	प्रथमसम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके बध्यमान प्रकृतियोंके कीर्तनकी प्रतिज्ञा।	१३३
२	प्रथमसम्यक्त्वीके द्वारा बध्यमान प्रकृतियोंका निर्देश।	१३३
३	सम्यक्त्वाभिमुख हुए मिथ्यादृष्टि जीवके प्रकृतियोंके बन्धव्युच्छित्तिक्रमका निरूपण।	१३५

द्वितीयमहादण्डकचूलिका

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
१	प्रथमसम्यक्त्वाभिमुख देव और नारकीके बध्यमान प्रकृतियोंका निरूपण।	१४०

तृतीयमहादण्डकचूलिका

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
१	प्रथमसम्यक्त्वाभिमुख सप्तम पृथिवीके नारकी द्वारा बध्यमान प्रकृतियोंका निर्देश।	१४२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
	उत्कृष्टस्थितिचूलिका	
१	उत्कृष्टस्थितिके कथनकी प्रतिज्ञा।	१४५
२	पांच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय, असातावेदनीय और पांच अन्तरायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका निरूपण।	१४६
३	उपर्युक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट आबाधा तथा आबाधाकाण्डकोंका निरूपण।	१४८
४	आबाधासे हीन कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेकका निरूपण।	१५०
५	उत्कृष्ट स्थितिमें प्रदेशरचनाक्रमको बतलाते हुए गुणहानि आदिका निरूपण।	१५२
६	सातावेदनीय, स्त्रीवेद, मनुष्यगति और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वीकी उत्कृष्ट स्थिति।	१५८
७	उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट आबाधा।	१५९
८	मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति व आबाधाका प्रमाण।	,,
९	सोलह कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध व उसकी आबाधा।	१६१
१०	पुरुषवेदादि प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध व उसकी आबाधा।	१६२
११	नपुंसकवेदादि प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध व उसकी आबाधा।	१६३
१२	नारकायु व देवायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध व उसकी आबाधा।	१६६
१३	तिर्यगायु और मनुष्यायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध व उसकी आबाधा।	१६९
१४	द्वीन्द्रियादि प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध व उनके आबाधाप्रमाणको बतलाते हुए इच्छित निषेकोंके भागहारके निकालनेका विधान।	१७२
१५	आहारकशरीर, आहारकशरीरांगोपांग और तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका निरूपण।	१७४
१६	उक्त तीनों प्रकृतियोंके आबाधाकालका प्रमाण।	१७७
१७	न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान और वज्रनाराचसंहननका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध व आबाधा।	,,
१८	स्वातिसंस्थान और नाराचसंहननका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध व आबाधा।	१७८
१९	कुब्जकसंस्थान और अर्धनाराचसंहननका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध व आबाधा।	१७९
	जघन्यस्थितिचूलिका	
१	जघन्यस्थितिके कहनेकी प्रतिज्ञा तथा संक्लेश व विशुद्धिपर विचार।	१८०
२	पांच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, संज्वलनलोभ एवं पांच अन्तरायोंका जघन्य स्थितिबन्ध व आबाधा।	१८२
३	पांच दर्शनावरण और असातावेदनीयका जघन्य स्थितिबन्ध व आबाधा।	१८४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
४	सातावेदनीयका जघन्य स्थितिबन्ध व आबाधा।	१८५
५	मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिबन्ध व आबाधा।	१८६
६	अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषायोंका जघन्य स्थितिबन्ध व आबाधा।	१८७
७	संज्वलन क्रोध, मान और मायाका जघन्य स्थितिबन्ध व अबाधा।	१८८
८	पुरुषवेदका जघन्य स्थितिबन्ध व आबाधा।	१८९
९	स्त्रीवेदादिप्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध व आबाधा।	१९०
१०	नारकायु व देवायुका जघन्य स्थितिबन्ध व आबाधा।	१९३
११	तिर्यगायु और मनुष्यायुका जघन्य स्थितिबन्ध व आबाधा।	,,
१२	नरकगति आदि प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध व आबाधा।	१९४
१३	आहारकशरीर आहारकशरीरांगोपांग और तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य स्थितिबन्ध व आबाधा।	१९७
१४	यशःकीर्ति और उच्च गोत्रके जघन्य स्थितिबन्ध और आबाधाप्रमाणका निरूपण तथा जघन्य व उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध एवं अनुभागबन्धके न कहने रूप शंकाका समाधान।	१९८
१५	सत्त्व, उदय और उदीरणाके न कहनेरूप शंकाका समाधान।	२०१

सम्यक्त्वोत्पत्तिचूलिका

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
१	सम्यक्त्वप्राप्तिके योग्य कर्मस्थिति आदिका निर्देश तथा क्षयोपशमादि चार लब्धियोंका निरूपण।	२०३
२	सम्यक्त्वप्राप्तिके योग्य जीवका निरूपण।	२०६
३	सर्वविशुद्धका लक्षण तथा अधःप्रवृत्त करणविशुद्धियोंका निरूपण।	२१४
४	अपूर्वकरणका निरूपण।	२२०
५	अनिवृत्तिकरणका निरूपण।	२२१
६	अधःप्रवृत्तकरणादि विशुद्धियों द्वारा होनेवाले स्थितिबन्धापसरणादि कार्य।	२२२
७	प्रथमसम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले जीवके द्वारा किये जानेवाले अन्तरकरणका निरूपण।	२३०
८	मिथ्यात्वके तीन भागोंका निरूपण।	२३४
९	पच्चीस पदवाला अल्पबहुत्व	२३६
१०	दर्शनमोहनीय कर्मके उपशामके योग्य गत्यादिकोंका निरूपण।	२३८
११	दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके प्रारम्भ योग्य सामग्री।	२४३
१२	दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके निष्ठापन योग्य गतियोंका निर्देश एवं दर्शनमोहक्षपककी विशेष प्ररूपणा	२४७
१३	प्रथमसमयवर्ती अपूर्वकरणसे लेकर प्रथमसमयवर्ती कृतकृत्य वेदक होने तक अनुभागकाण्डकोत्कीरणकालादि पदोंका अल्पबहुत्व।	२६१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
१४	सम्यक्त्व प्राप्त करनेवाले जीवके ज्ञानावरणादि सात कर्मोंकी स्थिति।	२६६
१५	चारित्रको प्राप्त करनेवाले जीवके ज्ञानावरणादि तीन कर्मोंकी स्थिति।	२६७
१६	संयमासंयम प्राप्तिका विधान।	२७०
१७	अपूर्वकरणसे लेकर एकान्तानुवृद्धिके अन्तिम समय तक स्थितिबन्धादि पदोंका अल्पबहुत्व।	२७४
१८	संयमासंयमलब्धिके स्वामी व अल्पबहुत्व।	२७५
१९	संयमासंयमलब्धिके स्थानोंका निरूपण।	२७६
२०	संयमासंयमलब्धिस्थानोंका अल्पबहुत्व।	२७८
२१	सकलचारित्रके तीन भेदोंका निर्देश करते हुए क्षायोपशमिक चारित्रकी प्राप्तिका विधान।	२८१
२२	संयमलब्धिस्थानोंके तीन भेद व उनका स्वरूप तथा अल्पबहुत्व।	२८३
२३	औपशमिक चारित्रकी प्राप्तिके विधानमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना और दर्शनमोहनीयके उपशमका निरूपण।	२८८
२४	कषायोपशामनाके विधानमें स्थितिकाण्डकादिकोंका निर्देश व प्रमाण।	२९२
२५	स्थितिबन्धका अल्पबहुत्व	२९७
२६	मनःपर्ययज्ञानावरणादिकोंका बन्धसे देशघातित्वनिरूपण।	२९९
२७	बारह कषाय और नौ नोकषायोंके अन्तरकरणका विधान।	३००
२८	अन्तरकरणके प्रथम समयमें होनेवाले सात करणोंका निरूपण।	३०२
२९	नपुंसकवेदके उपशमका निरूपण।	३०३
३०	स्त्रीवेदके उपशमका निरूपण।	३०५
३१	सात नोकषायोंके उपशमका विधान।	३०६
३२	तीन प्रकारके क्रोधके उपशमका निरूपण।	३०८
३३	तीन प्रकारके मानके उपशमका निरूपण।	३०९
३४	तीन प्रकारकी मायाके उपशमका विधान।	३१०
३५	तीन प्रकारके लोभके उपशमविधानमें कृष्टियोंका निरूपण।	३१२
३६	उपशान्तकषायका निरूपण।	३१६
३७	उपशान्तकषायके प्रतिपातका क्रम।	३१७
३८	क्रोधादिके उदयसे उपस्थित पुरुषवेदी आदि उपशामकोंकी विशेषता।	३३२
३९	प्रथमसमयवर्ती अपूर्वकरण उपशामकसे लेकर प्रतिपातावस्थामें अन्तिम समयवर्ती अपूर्वकरण होने तक इसकालमें कालसंयुक्त पदोंका अल्पबहुत्व।	३३५
४०	क्षायिक चारित्रकी प्राप्तिके विधानमें स्थितिकाण्डकादिकोंका निरूपण।	३४२
४१	ज्ञानावरणीयादिकोंकी स्थितिका स्थापन।	,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रम नं. विषय	पृष्ठ नं.
४२ चारित्रमोहनीयकी क्षपणामें अधःप्रवृत्तकरणकालादिकी आवश्यकता।	३४३
४३ प्रथमसमयवर्ती अपूर्वकरणका निरूपण।	३४४
४४ अपूर्वकरणके द्वितीयादि समयोंमें किये जानेवाले कार्य।	३४५
४५ प्रथमसमयवर्ती अनिवृत्तिकरणके आवास।	३४८
४६ अनिवृत्तिकरणके द्वितीयादि समयोंमें किये जानेवाले कार्य एवं ज्ञानावरणादिकोंके स्थितिबन्धका अल्पबहुत्व।	३४९
४७ स्थितिसत्त्वका निरूपण।	३५३
४८ आठ कषाय व निद्रानिद्रादिकोंका संक्रमण और मनःपर्ययज्ञानावरणादिकोंका बन्धसे देशघातिकरणविधान।	३५५
४९ चार संज्वलन और नौ नोकषायोंके अन्तरकरणका विधान।	३५७
५० नपुंसकवेदके संक्रमणका विधान।	३५८
५१ स्त्रीवेदके संक्रमणका विधान।	३६०
५२ सात नोकषायोंके संक्रमणका निरूपण।	३६१
५३ अश्वकरणकालमें अपूर्वस्पर्द्धकोंका निरूपण।	३६४
५४ कृष्टिकरणकालमें क्रोधादिकृष्टियोंका निर्माण, अल्पबहुत्व और उनमें दीयमान प्रदेशाग्रका निरूपण।	३७४
५५ कृष्टिवेदककालमें कृष्टियोंका बंध, उदय, अपूर्वकृष्टियोंका निर्माण, प्रदेशाग्रका संक्रमण और सूक्ष्मकृष्टियोंके निर्माणादिका निरूपण।	३८२
५६ क्रोधादिके उदयसे उपस्थित पुरुषवेदी आदि क्षपकोंकी विशेषता।	४०७
५७ क्षीणकषाय क्षपकका निरूपण।	४११
५८ सयोगकेवलीके निरूपणमें दण्ड कपाटादि समुद्घातोंका स्वरूप।	४१२
५९ योगनिरोधकरणमें अपूर्वस्पर्द्धक और कृष्टियोंके करनेका विधान।	४१४
६० उपान्त्य समयमें व्युच्छिन्न होनेवाली तिहत्तर प्रकृतियां।	४१७
६१ अन्त्य समयमें व्युच्छिन्न होनेवाली बारह प्रकृतियां।	४१७

गति-आगतिचूलिका

१ नरकगतिमें प्रथमसम्यक्त्वोत्पादनकी सामग्री।	४१८
२ तिर्यग्गतिमें प्रथमसम्यक्त्वोत्पत्तिके योग्य सामग्री।	४२४
३ मनुष्यगतिमें प्रथमसम्यक्त्वोत्पत्तिके योग्य सामग्री।	४२८
४ देवगतिमें प्रथमसम्यक्त्वोत्पत्तिके योग्य सामग्री।	४३१
५ नरकगतिमें प्रवेश और निर्गमनके गुणस्थानोंका निरूपण।	४३७
६ तिर्यग्गतिमें प्रवेश और निर्गमनके गुणस्थान।	४४०
७ पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती, मनुष्यिनी, और भवनवासी आदि देवोंके प्रवेश व निर्गमनके गुणस्थान।	४४२
८ मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और सौधर्मादि नवग्रैवेयक विमा-	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
	नवासी देवोंके प्रवेश व निर्गमनके गुणस्थान।	४४३
९	अनुदिशादि सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंके प्रवेश व निर्गमनके गुणस्थान।	४४६
१०	मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंकी आगतिका निरूपण।	४४७
११	सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकियोंकी आगति।	४५०
१२	सम्यग्दृष्टि नारकियोंकी आगति।	४५१
१३	सप्तम पृथिवीके मिथ्यादृष्टि नारकियोंकी आगति।	४५२
१४	सप्तम पृथिवीके सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियोंकी आगति।	४५४
१५	तिर्यंच संज्ञी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त कर्मभूमिजोंकी गति।	४५४
१६	पंचेन्द्रिय तिर्यंच असंज्ञी पर्याप्तोंकी गति।	४५५
१७	पंचेन्द्रिय तिर्यंच संज्ञी व असंज्ञी आदिकोंकी गति।	४५७
१८	तेजस्कायिक व वायुकायिक जीवोंकी गति।	४५८
१९	तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि कर्मभूमिजोंकी गति।	४५८
२०	तिर्यंच सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंकी गति।	४६३
२१	तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टियोंकी गति।	४६४
२२	तिर्यंच मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि भोगभूमिजोंकी गति।	४६६
२३	तिर्यंच सम्यग्मिथ्यादृष्टि व असंयतसम्यग्दृष्टि भोगभूमिजोंकी गति।	४६७
२४	मनुष्य पर्याप्त मिथ्यादृष्टि कर्मभूमिजोंकी गति।	४६८
२५	अपर्याप्त मनुष्योंकी गति।	४६९
२६	मनुष्य सासादनसम्यग्दृष्टियोंकी गति।	४७०
२७	मनुष्य सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि कर्मभूमिजोंकी गति।	४७३
२८	मनुष्य मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि भोगभूमिजोंकी गति।	४७६
२९	मनुष्य सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि भोगभूमिजोंकी गति।	४७७
३०	देव मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टियोंकी आगति।	४७७
३१	देव सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टियोंकी आगति।	४८०
३२	भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवोंकी आगति।	४८१
३३	सनत्कुमारप्रभृति शतारसहस्रार कल्पवासी देवोंकी आगति।	,,
३४	आनतादि नवग्रैवेयकविमानवासी मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंकी आगति।	४८२
३५	अनुदिशादि सर्वार्थसिद्धिविमानवासी असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंकी आगति।	४८३
३६	सप्तम पृथिवीके नारकियोंकी आगति और गुणोंकी प्राप्ति।	४८४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
३७	छठी पृथिवीके नारकियोंकी आगति और गुणोंकी प्राप्ति।	४८५
३८	पंचम पृथिवीके नारकियोंकी आगति और गुणोंकी प्राप्ति।	४८७
३९	चतुर्थ पृथिवीके नारकियोंकी आगति और गुणोंकी प्राप्ति एवं मोक्षका स्वरूप दिखलाते हुए कपिल, नैयायिक, वैशेषिक, सांख्य, मीमांसक और तार्किकोंके मतोंका निराकरण।	४८८
४०	तीन उपरिम पृथिवीके नारकियोंकी आगति और गुणप्राप्ति।	४९१
४१	तिर्यंच और मनुष्योंकी गति एवं गुणोंकी प्राप्ति।	४९२
४२	देवोंकी आगति और गुणोंकी प्राप्ति।	४९४
४३	भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देव-देवियों तथा सौधर्म-ईशानकल्पवासिनी देवियोंकी आगति और गुणोंकी प्राप्ति।	४९५
४४	बौद्धों द्वारा माना हुआ मोक्षस्वरूप एवं उसका निरसन।	४९७
४५	सौधर्मादि सहस्रारकल्पवासी देवोंकी आगति और गुणोंकी प्राप्ति।	"
४६	आनतादि नवग्रैवेयकविमानवासी देवोंकी आगति और गुणोंकी प्राप्ति।	४९८
४७	अनुदिशादि अपराजित विमानवासी देवोंकी आगति और गुणोंकी प्राप्ति।	"
४८	सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवोंकी आगति और गुणोंकी प्राप्ति तथा सिद्धोंमें बुद्धिके अभावादिको माननेवाले मतोंका निरसन।	५००

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुद्धिपत्र

(पुस्तक १)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२३५	१२	(तीन मोड़ेसे उत्पन्न होनेके तृतीय समयवर्ती)	(ऋजुगतिसे उत्पन्न होनेके तृतीयसमयवर्ती)
४०५	२-३	अत्थि सम्माइट्ठी	अत्थि खइयसम्माइट्ठी

(पुस्तक २)

४४९	१३	कापोत गेश्या	कापोत लेश्या
५१३	३०	सब्ध्यपर्याप्तक	लब्ध्यपर्याप्तक
६७४	१३	संज्ञी-अपर्याप्त	असंज्ञी-पर्याप्त
६८४	२०	,,	,,

(आलापोंका)

पृष्ठ	यंत्र नं.	खाना नाम	अशुद्ध	शुद्ध
४४०	२३	कषाय	अक.	उप. क.
४४९	२८	योग	९	११
४७९	६९	जीवसमास	१ सं प.	२ सं. प., स. अ.
५०४	१०२	संज्ञा	क्षीणसं.	अतीतसं.
५१६	११७	योग	औ. १	औ. २
५२२	१२६	वेद	३	१
६३४	२४९	,,	अयोग	अपगत
७०५	३१८	पर्याप्त	५ अ.	६ अ.
७२४	३६६	गुणस्थान	म.	प्र.
८०५	४७४	योग	×	अयोग
८०८	४७७	,,	×	,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृष्ठ	यंत्र नं.	खाना नाम	अशुद्ध	शुद्ध
८४२	५२५	लेश्या	भा. ३	भा. ६
८४७	५३४	जीवसमास	सं. अ.	सं. प.

(पुस्तक ४)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२२	२०	असख्यात	असंख्यात
४९	१२	$\frac{१०८ + ५००}{९६}$	$\frac{१०८ \times ५००}{९६}$
,,	२८	संख्यातगुणे	असंख्यातगुणे
५५	१६	$\frac{३}{३}\frac{०}{२}\frac{३}{०} \div \frac{७}{१}$	$\frac{३}{३}\frac{०}{२}\frac{३}{०} \div \frac{४९}{१}$
५८	४	(प्र. ३) २ हस्त	३ हस्त
६१	५	,, अंगुल १३$\frac{४}{७}$	अंगुल १३$\frac{३}{७}$
९०	२८	$४ \div ^{३}$	$\frac{४}{७}^{३}$
१०६	२३-२४	पाया पाया जाता	पाया जाता
१०८	२६	वैक्रियिकमिश्रकाय-	वैक्रियिककाय-
११७	१६	स्तम्भा-	स्तम्भा-
१२१	२२	बताया नहीं गया है	बताया गया है
१४७	२८	७ × ७ × = ९८	७ × ७ × २ = ९८
१४९	२१-२२	वन वन नहीं	वन नहीं
१९६	१०	८१७८	८१२८
२२२	१५	$२\frac{३}{९}\frac{५}{०}\frac{७}{५}\frac{९}{६}$	$२\frac{३}{८}\frac{५}{९}\frac{७}{२}\frac{९}{८}$
२३१	२४	भवनवासी	ब्यन्तर
२७२	२३	अमम्य	अगम्य
३५४	१८	उपशामकोंके एक समयकी प्ररूपणा	उपशामकोंके उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणा
३६२	१६	सम्यग्दृष्टि	सम्यग्मिथ्यादृष्टि
३८३	१८	उद्वर्तनाघातसे	अपवर्तनाघातसे
३८५	२४	×	इस सूत्रका अर्थ सुगम है, क्योंकि, पहले बहुत वार प्ररूपित किया जा चुका है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृष्ठ नं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४०४	२३	(१०००)	(१००००)
४१३	२०	अपेक्षा एक समय	अपेक्षा जघन्यसे एक समय

(पुस्तक ५)

२३	२८	निकला।	निकला (६)।
२६	१४	सम्यग्मिथ्यादृष्टिका	उक्त दोनों गुणस्थानोंका
५५	२७	चारों क्षपकोंका	चारों क्षपक और अयोगिकेवलियोंका
१०२	२८	जीवोंका जघन्य अन्तर	जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर
२६६	१४	संख्यातगुणित	असंख्यातगुणित

(पुस्तक ६)

१	४	लम्भदि	लब्भदि
१८	४	पयत्त	पयत्तं
१९	७	होज्ज ?	होज्ज ।
,,	२२	हो सके !	हो सके ।
२०	९	अंती	अंतो
२२	२१	एक अक्षरकी उत्पत्तिकी उपचारसे	एक अक्षरसे उत्पन्न श्रुतज्ञानकी उपचारसे
५२	३	-रुक्खसंठाणाहोज्ज	-रुक्खसंठाणा होज्ज
६२	२	होज्ज ण	होज्ज । ण
६९	१	जीवेणोगाह	जीवेणोगाढ
७२	३	पुव्वत्त	पुव्वुत्त
,,	२६-२७	अगोपांग	अंगोपांग
८२	७	चत्तारि पयडिसंबंधि	चत्तारिपयडिसंबंधि
८६	२६	सूक्ष्मसाम्पराथिक	सूक्ष्मसाम्परायिक
१०१	१९-२०	(यहां........है)	×
,,	२३	सुगम है ।	सुगम है । (यहां संयतसे अभिप्राय अप्रमत्त गुणस्थान तकके संयतोंसे है) ।
१४१	५	बंधवाच्छेदो	बंधवोच्छेदो
१५३	६	गोपुच्छाविशेषोंका	गोपुच्छविशेषोंका
१६६	१	पक्खेवसंक्खेव-	पक्खेवसंखेव-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृष्ठ नं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१७०	४	भवदिट्ठीए	भवट्ठिदीए
१७६	२७	प्रकृतिमें	प्रकृतमें
२०६	१०	पढमसम्मत्तं	पढमसम्मत्तं
२१३	१२	तेसि	तेसिं
२१६	२४	२७०	१७०
२३५	६	पढमसम्मत्तं पडिवण्ण-	पढमसम्मत्तप्पडिवण्ण-
२३६	१०	सम्मामिच्छात्ताणं	सम्मामिच्छत्ताणं
२४१	३	दंसणमोहस्स बंधगो	दंसणमोहस्सबंधगो
२४२	१३	हें	हैं
२४५	९	दंसणमोहक्खणं	दंसणमोहक्खवणं
२५५	१०	दूरावकिट्टिणाम	दूरावकिट्टी णाम
२६७	८	वेदणीयं णामं	वेदणीयं मोहणीयं णामं
२९७	७	जादो, मोहणीयवज्जाणं पुण	जादो, सेसाणं पुण
३०५	१४	हुआ था	हुआ था
३१८	२७	बाहिरगो	बाहिरगे
३३१	१२	द्वितीयोपशमसम्यक्त्वको	द्वितीयोपशमसम्यक्त्वकालको
३५६	२८	तीइंदिचउरिंदिय	तीइंदियचउरिंदिय
३६९		उक्कट्टिदं हु	उक्कट्टिदं तु
४१४	१८	निच्छ्वासका	निःश्वासका
४३६	६	ण-	ण,
४४९	३	अत्थि ?	अत्थि ।
५०१	६	मिच्छत्त-	मिच्छंत-
,,	२१	अभावसम्बन्धी मिथ्यात्वरूपी	अभावको माननेवालोंके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिरि-भगवंत-पुप्फदंत-भूदबलि-पणीदो

छक्खंडागमो

सिरि-वीरसेणाइरिय-विरइय-धवला-टीका-समण्णिदो

तस्स

पढमखंडे जीवट्ठाणे

चूलिया

तिहुवणसिरसेहरए भवभयगब्भादु णिग्गदे पणउं ।
सिद्धे जीवट्ठाणस्समलिणगुणचूलियं वोच्छं ॥

कदि काओ पयडीओ बंधदि[1], केवडि कालट्ठिदिएहि कम्मेहि सम्मत्तं लब्भदि वा ण लब्भदि वा, केवचिरेण कालेण वा कदि भाए वा करेदि मिच्छत्तं, उवसामणा वा खवणा वा केसु व खेत्तेसु कस्स व मूले केवडियं वा दंसणमोहणीयं कम्मं खवेंतस्स चारित्तं वा संपुण्णं पडिवज्जंतस्स ॥ १ ॥

त्रिभुवनरूप लोकके शिर पर स्थित शेखरस्वरूप और भव-भयके गर्भसे विनिर्गत ऐसे सिद्धोंको प्रणाम करके जीवस्थान नामक प्रथम खंडकी निर्मल गुणवाली चूलिकाको कहता हूं ॥

सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाला मिथ्यादृष्टि जीव कितनी और किन प्रकृतियोंको बांधता है, कितने काल-स्थितिवाले कर्मोंके द्वारा सम्यक्त्वको प्राप्त करता है, अथवा नहीं प्राप्त करता है, कितने कालके द्वारा मिथ्यात्व कर्मको कितने भागरूप करता है, और किन किन क्षेत्रोंमें तथा किसके पासमें कितने दर्शनमोहनीय कर्मको क्षपण करनेवाले जीवके और सम्पूर्ण चारित्रको प्राप्त होनेवाले जीवके मोहनीय कर्मकी उपशामना तथा क्षपणा होती है ॥ १ ॥

१ कप्रतौ ' कदि काओ सयचाओ बंधदि चारित्तपुण्णपडिवज्जं ' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्मत्तेसु अट्ठसु अणियोगद्दारेसु चूलिया किमट्ठमागदा ? पुव्वुत्ताणमट्ठण्णमणिओगद्दाराणं विसमपएसविवरणट्ठमागदा । एत्थ चोदओ भणदि- अट्ठहि अणिओगद्दारेहि परूविदमेव अट्ठं किं चूलिया परूवेदि, अण्णं वा ? जदि तं चेव परूवेदि, तो पुणरुत्तदोसो। विदीए चोद्दसजीवसमासपडिबद्धं वा परूवेदि, अप्पडिबद्धं वा ? पढमवियप्पे 'चोद्दसण्हं जीवसमासाणं परूवणट्ठदाए तत्थ इमाणि अट्ठ चेव अणिओगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति'[1] त्ति एदस्स सुत्तस्स अवहारणपदस्स विहलत्तं पसज्जदे। कुदो ? चूलियासण्णिदस्स चोद्दसजीवसमासपडिबद्धट्ठपरूवयस्स णवमस्स अणिओगद्दारस्सुवलंभा । विदीए चूलिया जीवट्ठाणादो पुधभूदा होज्ज, चोद्दसजीवसमासपडिबद्धअट्ठे अभणंतस्स जीवट्ठाणववएसविरोहा ?

एत्थ परिहारो उच्चदे- ण ताव पुणरुत्तदोसो, अट्ठाणिओगद्दारेहि अपरूविदस्स तत्थ उत्तत्थणिच्छयजणणस्स अट्ठस्स तदो कथंचि पुधभूदस्स तेहि चेव सूचिदस्स परूवणादो । ण च एवकारपदस्स विहलत्तं, चूलियाए अट्ठाणिओगद्दारेसु अंतब्भावादो ।

शंका—जीवस्थाननामक प्रथम खंडसम्बन्धी आठों अनुयोगद्वारोंके समाप्त हो जाने पर यह चूलिका नामक अधिकार किसलिए आया है ?

समाधान—पूर्वोक्त आठों अनुयोगद्वारोंके विषम-स्थलोंके विवरणके लिये यह चूलिका नामक अधिकार आया है ।

शंका—यहां पर शंकाकार कहता है कि— चूलिकानामक अधिकार आठों अनुयोगद्वारोंसे प्ररूपित ही अर्थको प्ररूपण करता है, अथवा अन्य अर्थको ? यदि उसी ही अर्थको प्ररूपित करता है तो पुनरुक्तदोष आता है । द्वितीय पक्षमें वह चतुर्दश-जीवसमास-प्रतिबद्ध अर्थका प्ररूपण करता है, अथवा चतुर्दश-जीवसमास-अप्रतिबद्ध अर्थका ? प्रथम विकल्पके मानने पर—'चौदह जीवसमासोंके प्ररूपण करनेके लिये उस विषयमें ये आठ ही अनुयोगद्वार जानने योग्य हैं' इस प्रकारके इस सूत्रके अवधारणरूप एवकार-पदके विफलता प्राप्त होती है, क्योंकि चतुर्दश-जीवसमासमें प्रतिबद्ध अर्थका प्ररूपण करनेवाला चूलिकासंज्ञित नवमां अनुयोगद्वार पाया जाता है । द्वितीय पक्षके मानने पर चूलिकानामक अधिकार जीवस्थानसे पृथग्भूत हो जायगा, क्योंकि, चतुर्दश-जीवसमास-प्रतिबद्ध अर्थोंको नहीं कहनेवाले अधिकारके 'जीवस्थान' इस संज्ञाका विरोध है ?

समाधान—यहां पर उक्त शंकाका परिहार किया जाता है—न तो प्रथम पक्षमें दिया गया पुनरुक्त दोष आता है, क्योंकि, आठों ही अनुयोगद्वारोंसे नहीं प्ररूपण किये गये, तथा वहां पर कहे गये अर्थके निश्चय उत्पन्न करनेवाले और जीवस्थानसे कथंचित् पृथग्भूत तथा उन आठों अनुयोगद्वारोंसे ही सूचित अर्थका इस चूलिकानामक अधिकारमें प्ररूपण किया गया है । द्वितीय पक्षके अन्तर्गत प्रथम पक्षमें बतलाई गई एवकार पदकी विफलता भी नहीं आती है, क्योंकि चूलिकाका आठों अनुयोगद्वारोंमें अन्तर्भाव हो जाता है ।

---

१ सत्प्ररू. सू. ५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कधमंतब्भावो ? अट्ठाणिओगद्दारसूइदट्ठपरूवणादो । तं जहा– खेत्त-कालंतरअणिओग-द्दारेहि गदिरागदी सूचिदा । सा वि गदिरागदी पयडिसमुक्कित्तणं ट्ठाणसमुक्कित्तणं च सूचेदि, बंधेण विणा सत्तविहपरियट्टेसु परियट्टणाणुववत्तीदो । पयडि-ट्ठाणसमुक्कित्तणेहि जहण्णुक्कस्सट्ठिदीओ सूचिदाओ, सकसायजीवस्स ट्ठिदिबंधेण विणा पयडिबंधाणुववत्तीदो । अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणमिदि[१] वयणेण पढमसम्मत्तग्गहणं सूचिदं, अण्णहा देसूणद्ध-पोग्गलपरियट्टमेत्तमिच्छत्तट्ठिदीए संभवाभावा । तेण वि पढमसम्मत्तग्गहणेण तिण्णि महादंडया पढमसम्मत्तग्गहणजोग्गखेत्तिंदिय-तिविहकरण-पज्जत्त-ट्ठिदि-अणुभागखंडयादओ सूचिदा होंति । एदेणेव मोक्खो वि सूचिदो । कुदो ? अद्धपोग्गलपरियट्टादो उवरि आलद्ध[२]सम्मत्ताणं संसाराभावा । तेण वि मोक्खेण दंसण-चारित्तमोहणीयखवणविहाणं तज्जोग्गखेत्त-गइ-करण-ट्ठिदीओ च सूचिदा भवंति । ण च तेसिं तत्थ णिण्णओ कदो, तत्थ णिण्णये कीरमाणे सिस्साणं मइवाउलत्तप्पसंगा । ण विदियवियप्पो, अणब्भुवगमादो ।

शंका—चूलिकाका आठों अनुयोगद्वारोंमें अन्तर्भाव कैसे होता है ?

समाधान—क्योंकि, चूलिकानामक अधिकार आठों अनुयोगद्वारोंसे सूचित अर्थका प्ररूपण करता है । उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—क्षेत्रप्ररूपणा, कालप्ररूपणा और अन्तरप्ररूपणा, इन तीन अनुयोगद्वारोंसे गति-आगति नामकी चूलिका सूचित की गई है । वह गति-आगति चूलिका भी प्रकृतिसमुत्कीर्तन और स्थानसमुत्कीर्तन, इन दो अधिकारोंको सूचित करती है, क्योंकि, कर्म-बंधके विना सात प्रकारके परि-वर्तनोंमें परिवर्तन अन्यथा हो नहीं सकता है । प्रकृतिसमुत्कीर्तन और स्थानसमुत्कीर्तन-के द्वारा (कर्मोंकी) जघन्यस्थिति और उत्कृष्टस्थिति नामकी दो चूलिकाएं सूचित की गई हैं, क्योंकि, सकषाय जीवके स्थितिबंधके विना प्रकृतिबंध नहीं हो सकता है । कालप्ररूपणामें कहे गये 'देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन' इस वचनसे प्रथमसम्यक्त्वका ग्रहण सूचित किया गया है । यदि ऐसा न माना जाय, तो देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन-मात्र मिथ्यात्वकी स्थितिका होना संभव नहीं है । उस प्रथमसम्यक्त्व-ग्रहणके द्वारा भी तीन महादंडक, प्रथमसम्यक्त्व-ग्रहण करनेके योग्य क्षेत्र, इंद्रिय, त्रिविधकरणकी प्राप्ति, पर्याप्तकपना, स्थितिखंड और अनुभागखंड आदिक सूचित किये गये हैं । इस ही अधिकारके द्वारा मोक्ष भी सूचित किया गया है, क्योंकि, अर्धपुद्गलपरिवर्तनकालसे ऊपर आलब्धसम्यक्त्व अर्थात् प्राप्त किया है सम्यक्त्वको जिन्होंने, ऐसे जीवोंके संसार का अभाव होता है । उस मोक्षके द्वारा भी दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय कर्मके क्षपणका विधान, उसके योग्य क्षेत्र, गति, करण और स्थितियां सूचित की गई हैं । इन सब बातोंका उन आठ अनुयोगद्वारोंमें निर्णय नहीं किया गया है, क्योंकि, वहां उन सबका निर्णय करने पर शिष्योंके बुद्धि-व्याकुलताका प्रसंग प्राप्त होता । द्वितीय विकल्प भी ठीक नहीं है, क्योंकि, चूलिकाको जीवस्थानसे पृथग्भूत नहीं माना गया है ।

१ कालप्र. सू. ४. २ अ-आ-क प्रतिषु 'अलद्ध–' इति पाठः । म प्रतौ 'आलीढ–' इत्यपि पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सा वि चूलिया एयविहा होदि सामण्णविवक्खाए, पज्जवट्ठियणयादो णवविहा। तं जहा– 'कदि पगडीओ बंधदि' त्ति पदे पगडि-ट्ठाणसमुक्कित्तणसण्णिदाओ[1] दोण्णि चूलियाओ होंति। 'काओ पयडीओ बंधदि' त्ति पदम्हि पढम-विदिय-तदियदंडय-सण्णिदाओ तिण्णि चूलियाओ ट्ठिदाओ। 'केवडिकालट्ठिदिएहि[2] कम्मेहि सम्मत्तं लब्भदि वा ण लब्भदि वा' त्ति पदम्हि जहण्णुक्कस्सट्ठिदिसण्णिदाओ दोण्णि चूलियाओ अवट्ठिदाओ। 'केवचिरेण कालेण कदि भाए वा करेदि मिच्छत्तं, उवसामणा वा खवणा वा केसु व खेत्तेसु कस्स व मूले, केवडियं वा दंसणमोहणीयं कम्मं खवेंतस्स चारित्तं वा संपुण्णं पडिवज्जंतस्स' एदेसु पदेसु अट्ठमी चूलिया। 'वा संपुण्णं[3]' त्ति 'वा' सद्दम्हि गदिरागदी णाम णवमी चूलिया। एवं णव चूलिया होंति। अवांतरभेएण अणेयविहाओ वा। एदासिं णवण्हं चूलियाणमट्ठपरूवणट्ठमुवरिमसुत्तं भणदि–

कदि काओ पगडीओ बंधदि त्ति जं पदं तस्स विहासा ॥ २ ॥

'जहा उद्देसो तहा णिद्देसो' त्ति णायादो पढममुद्दिट्ठस्स पढमं चेव णिद्देसो

वह चूलिका भी सामान्य विवक्षासे एक प्रकारकी है, और पर्यायार्थिक नयसे नौ प्रकारकी है। वह इस प्रकार है—'कितनी प्रकृतियां बांधता है' इस पदमें प्रकृति-समुत्कीर्तन और स्थानसमुत्कीर्तन नामक दो चूलिकाएं समन्वित हैं। 'किन प्रकृतियोंको बांधता है' इस पदमें प्रथम, द्वितीय और तृतीय दंडक नामवाली तीन चूलिकाएं अवस्थित हैं'। 'कितने काल-स्थितिवाले कर्मोंके द्वारा सम्यक्त्वको प्राप्त करता है, अथवा नहीं प्राप्त करता है', इस पदमें जघन्यस्थिति और उत्कृष्टस्थिति नामकी दो चूलिकाएं अवस्थित हैं। 'कितने कालके द्वारा मिथ्यात्वकर्मको कितने भागरूप करता है, और किन क्षेत्रोंमें तथा किसके पासमें कितने दर्शनमोहनीयकर्मको क्षपण करनेवाले और सम्पूर्ण चारित्रको प्राप्त होनेवाले जीवके मोहनीयकर्मकी उपशमना तथा क्षपणा होती है' इन पदोंमें आठवीं चूलिका अन्तर्निहित है। 'वा संपुण्णं' इस वाक्यमें आये हुए 'वा' शब्दमें गति-आगति नामकी नवमीं चूलिका अन्तर्भूत है। इस प्रकार उपर्युक्त सर्व चूलिकाएं नौ होती हैं। अथवा, अवान्तर भेदकी अपेक्षा चूलिकाएं अनेक प्रकारकी हैं।

अब इन नवों चूलिकाओंके अर्थ-प्ररूपणके लिए आचार्य उत्तर सूत्र कहते हैं—

'कितनी और किन प्रकृतियोंको बांधता है' यह जो पूर्वसूत्र-पठित पद है, उसका व्याख्यान किया जाता है ॥ २ ॥

शंका—'जिस प्रकारसे उद्देश होता है, उसी प्रकारसे निर्देश किया जाता है' इस न्यायके अनुसार पहले उद्देश किये गये पदार्थका पहले ही निर्देश होता है, यह

---

१ प्रतिषु 'समण्णिदाओ' इति पाठः। २ प्रतिषु 'केवलि–' इति पाठः।

३ प्रतिषु 'संपुण्णं वा' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होदि त्ति णव्वदे । तदो णाढवेदव्वमिदं सुत्तमिदि ? ण एस दोसो, एदम्हि पदे इमाओ चूलियाओ अवट्ठिदाओ, इमाओ वि ण ट्ठिदाओ त्ति जाणावणट्ठं, 'जहा उद्देसो तहा णिद्देसो' त्ति णायस्स अत्थित्तपरूवणट्ठं च तदारंभादो। विविहा भासा विहासा, परूवणा णिरूवणा वक्खाणमिदि एयट्ठो ।

इदाणिं पगडिसमुक्कित्तणं कस्सामो ॥ ३ ॥

पगडीणं समुक्कित्तणं पगडिसमुक्कित्तणं, पयडिसरूवणिरूवणमिदि जं उत्तं होदि । इदाणिं संपहि, कस्सामो भणिस्सामो त्ति एयट्ठो । पढमं पयडिसमुक्कित्तणं चेव किमट्ठं उच्चदे ? ण, पयडीए अणवगदाए ट्ठाणसमुक्कित्तणादीणमवगमोवायाभावा । ण च अवयविणि अणवगदे अवयवा अवगंतुं सक्किज्जंते, अण्णत्थ तहाणुवलंभा । तम्हा पयडिसमुक्कित्तणमेव पुव्वं परूविज्जदे । तं पि पयडिसमुक्कित्तणं मूलुत्तरपयडिसमुक्कित्तणभेएण दुविहं होइ । संगहियासेसवियप्पा दव्वट्ठियणयणिबंधणा मूलपयडी णाम । पुध पुधा-

---

बात जानी जाती है । अतएव यह सूत्र आरम्भ नहीं करना चाहिए ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, इस पदमें ये चूलिकाएं अवस्थित हैं, और ये चूलिकाएं अवस्थित नहीं हैं, इस बातके ज्ञान करानेके लिए, तथा 'जिस प्रकारसे उद्देश होता है, उसी प्रकारसे निर्देश होता है' इस न्यायके अस्तित्व-प्ररूपणके लिए इस सूत्रका आरम्भ किया गया है।

विविध प्रकारके भाषण अर्थात् कथन करनेको विभाषा कहते हैं। विभाषा, प्ररूपणा, निरूपणा और व्याख्यान, ये सब एकार्थ-वाचक नाम हैं।

अब प्रकृतियोंके स्वरूपका निरूपण करेंगे ॥ ३ ॥

प्रकृतियोंके समुत्कीर्तनको प्रकृतिसमुत्कीर्तन कहते हैं, जिसका कि अर्थ प्रकृतियोंके स्वरूपका निरूपण करना होता है। इस समय अर्थात् आठों प्ररूपणाओंके पश्चात् अब, करेंगे अर्थात् प्रकृतिसमुत्कीर्तन नामकी चूलिकाको कहेंगे, ये शब्द एकार्थक हैं।

शंका—पहले प्रकृतिसमुत्कीर्तनको ही किसलिए कहते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, प्रकृतियोंके अज्ञात होने पर स्थानसमुत्कीर्तन आदिके ज्ञानका कोई उपाय नहीं है। दूसरी बात यह है कि अवयवीके अज्ञात रहनेपर अवयव नहीं जाने जा सकते हैं, क्योंकि, अन्यत्र वैसा पाया नहीं जाता। इसलिए प्रकृतिसमुत्कीर्तनको ही पहले कहते हैं।

वह प्रकृतिसमुत्कीर्तन भी मूलप्रकृतिसमुत्कीर्तन और उत्तरप्रकृतिसमुत्कीर्तनके भेदसे दो प्रकारका होता है। अपने अन्तर्गत समस्त भेदोंका संग्रह करनेवाली और द्रव्यार्थिकनय-निबन्धनक प्रकृतिका नाम मूलप्रकृति है। पृथक् पृथक् अवयववाली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वयवा[1] पज्जवट्ठियणयणिबंधणा उत्तरपयडी णाम। तत्थ मूलपयडिसमुक्कित्तणं पढमं किमट्ठं कीरदे ? ण एस दोसो, मूलपयडीए संगहिदासेसुत्तरपयडीए परूविदाए उत्तर-पयडिपरूवणुववत्तीदो।

तं जहा ॥ ४ ॥

पुच्छासुत्तमेदं किमट्ठं वुच्चदे ? सुत्तकत्तारस्स पमाणत्तपरूवणादो सुत्तस्स पमाणत्तपरूवणट्ठं।

णाणावरणीयं ॥ ५ ॥

णाणमवबोहो अवगमो परिच्छेदो इदि एयट्ठो। तमावारेदि त्ति णाणावरणीयं कम्मं[2]। णाणविणासयमिदि किण्ण उच्चदे ? ण, जीवलक्खणाणं णाण-दंसणाणं विणासाभावा। विणासे वा जीवस्स वि विणासो होज्ज, लक्खणरहिय-लक्खाणुवलंभा[3]। णाणस्स विणासाभावे सव्वजीवाणं णाणत्थित्तं पसज्जदे चे, होदु णाम विरोहाभावा;

तथा पर्यायार्थिकनय-निमित्तक प्रकृतिको उत्तरप्रकृति कहते हैं।

शंका—इन दोनों भेदोंमेंसे मूलप्रकृतिसमुत्कीर्तन पहले किसलिए करते हैं ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, समस्त उत्तरप्रकृतियोंका संग्रह करनेवाली मूलप्रकृतिके प्ररूपण किये जाने पर ही उत्तरप्रकृतियोंकी प्ररूपणा बन सकती है।

वह प्रकृतिसमुत्कीर्तन किस प्रकार है ? ॥ ४ ॥

शंका—यह पृच्छा-सूत्र किसलिए कहते हैं ?

समाधान—सूत्र-कर्ताकी प्रमाणताके प्ररूपणद्वारा सूत्रकी प्रमाणता निरूपण करनेके लिए यह पृच्छा-सूत्र कहा है।

ज्ञानावरणीय कर्म है ॥ ५ ॥

ज्ञान, अवबोध, अवगम और परिच्छेद, ये सब एकार्थ-वाचक नाम हैं। उस ज्ञानको जो आवरण करता है, वह ज्ञानावरणीय कर्म है।

शंका—'ज्ञानावरण' नामके स्थानपर 'ज्ञान-विनाशक' ऐसा नाम क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, जीवके लक्षणस्वरूप ज्ञान और दर्शनका विनाश नहीं होता है। यदि ज्ञान और दर्शनका विनाश माना जाय, तो जीवका भी विनाश हो जायगा, क्योंकि, लक्षणसे रहित लक्ष्य पाया नहीं जाता है।

शंका—ज्ञानका विनाश नहीं माननेपर सभी जीवोंके ज्ञानका अस्तित्व प्राप्त होता है ?

---

१ म प्रतौ 'पुधप्पिदावयवा' इत्यपि पाठः।　　२ स. सि. ८, ४. त. रा. वा. ८, ४.

३ प्रतिषु '-लक्खणाणुवलंभा' इति पाठः।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

' अक्खरस्स अणंतभाओ णिच्चुग्घाडियओ[1] ' इदि सुत्ताणुकूलत्तादो वा । ण सव्वावयवेहि णाणस्सुवलंभो होदु त्ति वोत्तुं जुत्तं, आवरिदणाणभागाणमुवलंभविरोहा । आवरिदणाणभागा सावरणे जीवे किमत्थि आहो णत्थि त्ति । जदि अत्थि, ण ते आवरिदा, सव्वप्पणा संताणमावरिदत्तविरोहा[2] । अह णत्थि, तो वि णावरणं, आवरिज्जमाणाणमभावे आवरणस्सत्थित्तविरोहा इदि ? एत्थ परिहारो उच्चदे– दव्वट्ठियणए अवलंबिज्जमाणे आवरिदणाणभागा सावरणे वि जीवे अत्थि, जीवदव्वादो पुधभूदणाणाभावा, विज्जमाणणाणभागादो आवरिदणाणभागाणमभेदादो वा । आवरिदाणावरिदाणं कधमेगत्तमिदि चे ण, राहु-मेहेहि आवरिदाणावरिदसु-

समाधान—ज्ञानका विनाश नहीं माननेपर यदि सर्व जीवोंके ज्ञानका अस्तित्व प्राप्त होता है तो होने दो, उसमें कोई विरोध नहीं है। अथवा ' अक्षरका अनन्तवां भाग नित्य-उद्घाटित अर्थात् आवरणरहित रहता है ' इस सूत्रके अनुकूल होनेसे सर्व जीवोंके ज्ञानका आस्तित्व सिद्ध है।

शंका—यदि सर्व जीवोंके ज्ञानका अस्तित्व सिद्ध है, तो फिर सर्व अवयवोंके साथ ज्ञानका उपलम्भ होना चाहिए? अर्थात् ज्ञानके सभी भागोंका या पूर्ण ज्ञानका सद्भाव पाया जाना चाहिए?

समाधान—यह कहना उपयुक्त नहीं, क्योंकि, आवरण किये गये ज्ञानके भागोंका उपलम्भ माननेमें विरोध आता है।

शंका—आवरणयुक्त जीवमें आवरण किये गये ज्ञानके भाग क्या हैं, अथवा नहीं हैं? यदि हैं, तो वे आवरित नहीं कहे जा सकते, क्योंकि, सम्पूर्णरूपसे विद्यमान भागोंके आवरण माननेमें विरोध आता है। यदि नहीं हैं, तो उनका आवरण नहीं माना जा सकता, क्योंकि, आव्रियमाण अर्थात् आवरण किये जाने योग्य पदार्थोंके अभावमें आवरणके अस्तित्वका विरोध है?

समाधान—यहां उक्त आशंकाका परिहार करते हैं— द्रव्यार्थिकनयके अवलम्बन करनेपर आवरण किये गये ज्ञानके अंश सावरण जीवमें भी होते हैं, क्योंकि, जीवद्रव्यसे पृथग्भूत ज्ञानका अभाव है, अथवा विद्यमान ज्ञानके अंशसे आवरण किये गये ज्ञानके अंशोंका कोई भेद नहीं है।

शंका—ज्ञानके आवरण किए गए और आवरण नहीं किए गए अंशोंके एकता कैसे हो सकती है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, राहु और मेघोंके द्वारा सूर्यमंडल और चन्द्रमंडलके

१ हवदि हु सव्वजहण्णं णिच्चुग्घाडं णिरावरणं । गो. जी. ३२०.

२ प्रतिषु ' संताणमुवरिदत्तविरोहा ' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्जिदुमंडलभागाणमेगत्तुवलंभा । एवं संते आवरिज्जावारयभावो जुज्जदे, अण्णहा तस्सा-णुवलंभप्पसंगादो । पज्जवट्ठियणए अवलंबिज्जमाणे आवरिज्जमाणणाणभागा णत्थि, तेसिं तदुवलंभाभावा । ण च एदं सुत्तं पज्जवट्ठियणयमवलंबिय ट्ठिदं, तदावरिज्जमाणा-वारयववहाराभावा । किंतु दव्वट्ठियणयमवलंबिय सुत्तमिदमवट्ठिदं, तेणेत्थ आवरिज्जमाणा-वारयभावो ण विरुज्झदे । किमट्ठं णाणमावरिज्जमाणमिदि ? उच्चदे– अप्पणो विरोहि-दव्वसण्णिहाणे संते वि जं णिम्मूलदो ण विणस्सदि, तमावरिज्जमाणं, इदरं चावारयं । ण च णाणस्स विरोहिकम्मदव्वसण्णिहाणे संते णिम्मूलविणासो अत्थि, जीवविणासप्पसंगा । तदो णाणमावरिज्जमाणं, कम्मदव्वं चावारयमिदि उत्तं । कधं पोग्गलेण जीवादो पुध-भूदेण जीवलक्खणं णाणं विणासिज्जदि ? ण एस दोसो, जीवादो पुधभूदाणं घड-पड-त्थंभंधयारादीणं जीवलक्खणणाणविणासयाणमुवलंभा । णाणावारओ पोग्गलक्खंधो पवाह-

---

आवरित और अनावरित भागोंके एकता पाई जाती है ।

इस प्रकार उक्त व्यवस्थाके होनेपर आव्रियमाण और आवारकभाव बन जाता है, अर्थात् ज्ञान तो आवरण करने योग्य और कर्म-पुद्गल आवरण करनेवाले सिद्ध हो जाते हैं । यदि उक्त व्यवस्था न मानी जायगी तो उसके अनुपलम्भका प्रसंग प्राप्त होगा । किन्तु पर्यायार्थिकनयका अवलम्बन करने पर आव्रियमाण ज्ञान-भाग सावरण जीवमें नहीं होते हैं, क्योंकि, वे ज्ञान-भाग उक्त जीवमें नहीं पाये जाते ।

दूसरी बात यह है कि यह सूत्र पर्यायार्थिकनयका अवलम्बन करके स्थित नहीं है, क्योंकि, उसमें आव्रियमाण और आवारक, इन दोनोंके व्यवहारका अभाव है । किन्तु यह सूत्र द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन करके अवस्थित है, इसलिए यहांपर आव्रियमाण और आवारकभाव विरोधको प्राप्त नहीं होता है ।

शंका—ज्ञानको आव्रियमाण किस लिए कहा है ?

समाधान—अपने विरोधी द्रव्यके सन्निधान अर्थात् सामीप्य होनेपर भी जो निर्मूलतः नहीं विनष्ट होता है, उसे आव्रियमाण कहते हैं, और दूसरे अर्थात् आवरण करनेवाले विरोधी द्रव्यको आवारक कहते हैं । विरोधी कर्मद्रव्यके सन्निधान होनेपर ज्ञानका निर्मूल विनाश नहीं होता है, क्योंकि, वैसा माननेपर जीवके विनाशका प्रसंग आता है । इसलिए ज्ञान तो आव्रियमाण है और कर्मद्रव्य आवारक है, ऐसा कहा गया है ।

शंका—जीवद्रव्यसे पृथग्भूत पुद्गलद्रव्यके द्वारा जीवका लक्षणभूत ज्ञान कैसे विनष्ट किया जाता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, जीवद्रव्यसे पृथग्भूत घट, पट, स्तम्भ और अंधकार आदिक पदार्थ जीवके लक्षणस्वरूप ज्ञानके विनाशक पाये जाते हैं ।

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि ज्ञानका आवरण करनेवाला और प्रवाहस्वरूपसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सरूवेण अणाइबंधणबद्धो णाणावरणीयमिदि भण्णदे।

दंसणावरणीयं ॥ ६ ॥

अप्पविसओ उवजोगो दंसणं। ण णाणमेदं, तस्स बज्झट्ठविसयत्तादो। ण च बज्झंतरंगविसयाणमेयत्तं, विरोहा। ण च णाणमेव दुसत्तिसहियं, पज्जयस्स पज्जयाभावा। णाण-दंसणलक्खणो जीवो त्ति तदो इच्छिदव्वो। एदं च दंसणमावरिज्जं[1], विरोहिदव्व-सण्णिहाणे संते वि एदस्स णिम्मूलदो विणासाभावा। भावे वा जीवस्स वि विणासो पसज्जदे, लक्खणविणासे लक्खस्सावट्ठाणविरोहा। ण च णाण-दंसणाणं जीवलक्खणत्तमसिद्धं, दोण्हमभावे जीवदव्वस्सेव अभावप्पसंगो। होदु चे ण, पमाणाभावे पमेयाणं सेसदव्वाणं पि अभावावत्तीदो। उत्तं च–

एक्को मे सस्सदो अप्पा णाण-दंसणलक्खणो।
सेसा दु बहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा[2] ॥ १ ॥

अनादि-बंधन-बद्ध पुद्गल-स्कन्ध 'ज्ञानावरणीय कर्म' कहलाता है।

दर्शनावरणीय कर्म है ॥ ६ ॥

आत्म-विषयक उपयोगको दर्शन कहते हैं। यह दर्शन, ज्ञानरूप नहीं है, क्योंकि, ज्ञान बाह्य अर्थोंको विषय करता है। तथा बाह्य और अन्तरंग विषयवाले ज्ञान और दर्शनके एकता नहीं है, क्योंकि, वैसा माननेमें विरोध आता है। और न ज्ञानको ही दो शक्तियोंसे युक्त माना जा सकता है, क्योंकि, पर्यायके अन्य पर्यायका अभाव माना गया है। इसलिए ज्ञान-दर्शनलक्षणात्मक जीव मानना चाहिए। यह दर्शन आवरण करनेके योग्य है, क्योंकि, विरोधी द्रव्यके सन्निधान होने पर भी इसका निर्मूलसे विनाश नहीं होता है। यदि दर्शनगुणका निर्मूल विनाश होने लगे, तो जीवके भी विनाशका प्रसंग प्राप्त होता है, क्योंकि, लक्षणके विनाश होने पर लक्ष्यके अवस्थानका विरोध है। दूसरी बात यह है कि ज्ञान और दर्शनके जीवका लक्षणत्व असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, दोनोंके अर्थात् ज्ञान और दर्शनके अभाव माननेपर जीवद्रव्यका ही अभाव प्राप्त होता है।

शंका—यदि ज्ञान और दर्शनके अभाव होनेपर जीवद्रव्यका ही अभाव प्राप्त होता है, तो होने दो?

समाधान—नहीं, क्योंकि, (स्व-परव्यवसायात्मक) प्रमाणके अभावमें प्रमेय-स्वरूप शेष द्रव्योंके भी अभावकी आपत्ति आती है। कहा भी है—

ज्ञान-दर्शनलक्षणात्मक मेरा आत्मा एक शाश्वत (नित्य) है। शेष सर्व संयोगलक्षणात्मक भाव बाहरी हैं ॥ १ ॥

---

१ प्रतिषु 'दंसणमुवरिज्जं' इति पाठः। २ भावपा. गा. ५९. मूलाचा. २, ४८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असरीरा जीवघणा उवजुत्ता दंसणे य णाणे य ।
सायारमणायारं लक्खणमेयं तु सिद्धाणं ॥ २ ॥

एदं दंसणमावारेदि त्ति दंसणावरणीयं[1] । जो पोग्गलक्खंधो मिच्छत्तासंजम-कसाय-जोगेहि कम्मसरूवेण परिणदो जीवसमवेदो दंसणगुणपडिबंधओ सो दंसणावरणीयमिदि घेत्तव्वो ।

वेदणीयं ॥ ७ ॥

वेद्यत इति वेदनीयम्[2] । एदीए उप्पत्तीए सव्वकम्माणं वेदणीयत्तं पसज्जदे ? ण एस दोसो, रूढिवसेण कुसलसद्दो व्व अप्पिदपोग्गलपुंजे चेव वेदणीयसद्दप्पउत्तीदो । अथवा वेदयतीति वेदनीयम् । जीवस्स सुह-दुक्खाणुहवणणिबंधणो पोग्गलक्खंधो मिच्छत्तादिपच्चयवसेण कम्मपज्जयपरिणदो जीवसमवेदो वेदणीयमिदि भण्णदे ।

जो अशरीर हैं, जीवघनात्मक हैं अर्थात् शुद्ध जीवप्रदेशात्मक हैं, ज्ञान और दर्शनमें उपयुक्त हैं, वे सिद्ध हैं । इस प्रकार साकार और अनाकार, यह सिद्धोंका लक्षण है ॥ २ ॥

इस प्रकारके दर्शनगुणको जो आवरण करता है, वह दर्शनावरणीय कर्म है । अर्थात् जो पुद्गल-स्कन्ध मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योगोंके द्वारा कर्मस्वरूपसे परिणत होकर जीवके साथ समवायसम्बन्धको प्राप्त है और दर्शनगुणका प्रतिबन्ध करनेवाला है, वह दर्शनावरणीय कर्म है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए ।

वेदनीय कर्म है ॥ ७ ॥

जो वेदन अर्थात् अनुभवन किया जाय, वह वेदनीय कर्म है ।

शंका—इस प्रकारकी व्युत्पत्तिके द्वारा तो सभी कर्मोंके वेदनीयपनेका प्रसंग प्राप्त होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, रूढिके वशसे कुशलशब्दके समान विवक्षित पुद्गल-पुंजमें ही ' वेदनीय ' इस शब्दकी प्रवृत्ति पाई जाती है । अर्थात् जिस प्रकार कुशलशब्दका व्युत्पत्त्यर्थ कुशको लानेवाला होने पर भी उसका रूढार्थ ' चतुर ' लिया जाता है, उसी प्रकार सभी कर्मोंमें वेदनीयता होनेपर भी वेदनीयसंज्ञा एक कर्म-विशेषके लिए रूढ है ।

अथवा, जो वेदन कराता है, वह वेदनीय कर्म है । जीवके सुख और दुःखके अनुभवनका कारण, मिथ्यात्व आदि प्रत्ययोंके वशसे कर्मरूप पर्यायसे परिणत और जीवके साथ समवायसम्बन्धको प्राप्त पुद्गल-स्कन्ध ' वेदनीय ' इस नामसे कहा जाता है ।

---

१ स. सि. ८, ४.; त. रा. वा. ८, ४.

२ प्रतिषु 'वेदणीयं' इति पाठः । वेदयति वेद्यत इति वा वेदनीयम् । स. सि. ८, ४.; त. रा. वा. ८, ४. अक्खाणं अणुभवणं वेयणियं सुहसरूवयं सादं । दुक्खसरूवमसादं तं वेदयदीदि वेदणियं ॥ गो. क. १४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्सत्थित्तं कुदोवगम्मदे ? सुख-दुक्खकज्जण्णहाणुववत्तीदो। ण कज्जं कारणणिरवेक्ख-मुप्पज्जदे, अण्णत्थ तहाणुवलंभा। ण जीवो दुक्खसहावो, जीवलक्खणणाण-दंसणविरोहि-दुक्खस्स जीवसहावत्तविरोहा।

मोहणीयं ॥ ८ ॥

मुह्यत इति मोहनीयम्[1]। एवं संते जीवस्स मोहणीयत्तं पसज्जदि त्ति णासंक-णिज्जं, जीवादो अभिण्णम्हि पोग्गलदव्वे कम्मसण्णिदे उवयारेण कत्तारत्तमारोविय तधा उत्तीदो। अथवा मोहयतीति मोहनीयम्। एवं संते धत्तूर-सुरा-कलत्तादीणं पि मोहणीयत्तं पसज्जदीदि चे ण, कम्मदव्वमोहणीये एत्थ अहियारादो। ण कम्माहियारे धत्तूर-सुरा-कलत्तादीणं संभवो अत्थि। किं कम्मं ? पोग्गलदव्वं। जदि एवं, तो सव्वपोग्गलाणं

शंका—उस वेदनीयकर्मका अस्तित्व कैसे जाना जाता है ?

समाधान—सुख और दुःखरूप कार्य अन्यथा हो नहीं सकते हैं, इस अन्यथा-नुपपत्तिसे वेदनीयकर्मका अस्तित्व जाना जाता है। कारणसे निरपेक्ष कार्य उत्पन्न नहीं होता है, क्योंकि, अन्यत्र उस प्रकार देखा नहीं जाता है।

जीव दुःखस्वभावी नहीं है, क्योंकि, जीवके लक्षणस्वरूप ज्ञान और दर्शनके विरोधी दुःखको जीवका स्वभाव माननेमें विरोध आता है।

मोहनीय कर्म है ॥ ८ ॥

जिसके द्वारा मोहित हो, वह मोहनीय कर्म है।

शंका—इस प्रकारकी व्युत्पत्ति करनेपर जीवके मोहनीयत्व प्राप्त होता है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि, जीवसे अभिन्न और 'कर्म' ऐसी संज्ञावाले पुद्गलद्रव्यमें उपचारसे कर्तृत्वका आरोपण करके उस प्रकारकी व्युत्पत्ति की गई है।

अथवा, जो मोहित करता है, वह मोहनीय कर्म है।

शंका—ऐसी व्युत्पत्ति करनेपर धतूरा, मदिरा और भार्या आदिके भी मोह-नीयता प्रसक्त होती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यहां पर मोहनीयनामक द्रव्यकर्मका अधिकार है, अतएव कर्मके अधिकारमें धतूरा, मदिरा और स्त्री आदिकी संभावना नहीं है।

शंका—कर्म क्या वस्तु है ?

समाधान—कर्म पुद्गल द्रव्य है।

१ मोहयति मुह्यतेऽनेनेति वा मोहनीयम्। स. सि. ८. ४.; त. रा. वा. ८, ४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कम्मत्तं पसज्जदे ? ण, मिच्छत्तादिपच्चएहि[1] जीवे संबद्धाणं जाइ-जरा-मरणादिकज्जकरणे समत्थाणं पोग्गलाणं कम्मत्तब्भुवगमादो । उत्तं च—

जीवपरिणामहेदू कम्मत्तं पोग्गला परिणमंति ।
ण य णाणपरिणदो पुण जीवो कम्मं समादियदि ॥ ३ ॥
जारिसओ परिणामो तारिसओ चेव कम्मबंधो वि ।
वत्थूसु विसम-समसण्णिदेसु अज्झप्पजोएण ॥ ४ ॥

मिच्छत्तादिपच्चएहि कोह-माण-माया-लोहादिकज्जकारित्तेण परिणदा पोग्गला जीवेण सह संबद्धा मोहणीयसण्णिदा होंति त्ति जं उत्तं होदि ।

आउअं ॥ ९ ॥

एति भवधारणं प्रति इत्यायुः[2] । जे पोग्गला मिच्छत्तादिकारणेहि णिरयादिभव-धारणसत्तिपरिणदा जीवणिविट्ठा ते आउअसण्णिदा होंति । तस्स आउअस्स अत्थित्तं

शंका— यदि ऐसा है तो सभी पुद्गलोंके कर्मपना प्रसक्त होता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, मिथ्यात्व आदि बन्ध-कारणोंके द्वारा जीवमें सम्बन्धको प्राप्त, तथा जन्म, जरा और मरण आदि कार्योंके करनेमें समर्थ पुद्गलोंके कर्मपना माना गया है । कहा भी है—

जीवके रागादि परिणामोंके निमित्तसे पुद्गल कर्मरूप परिणत होते हैं । किन्तु ज्ञान-परिणत जीव कर्मको नहीं प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

विषम और सम संज्ञावाली अर्थात् अनिष्ट और इष्ट वस्तुओंमें आत्मसम्बन्धी योगके द्वारा जिस प्रकारका परिणाम होता है, उस प्रकारका ही कर्म-बन्ध भी होता है ॥ ४ ॥

मिथ्यात्व आदि बंध-कारणोंके द्वारा क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कार्य करनेकी शक्तिसे परिणत हुए पुद्गल जीवके साथ सम्बन्धको प्राप्त होकर ' मोहनीय ' संज्ञावाले हो जाते हैं, ऐसा अर्थ कहा गया है ।

आयु कर्म है ॥ ९ ॥

जो भव-धारणके प्रति जाता है, वह आयुकर्म है । जो पुद्गल मिथ्यात्व आदि बंध-कारणोंके द्वारा नरक आदि भव-धारण करनेकी शक्तिसे परिणत होकर जीवमें निविष्ट होते हैं, वे ' आयु ' इस संज्ञावाले होते हैं ।

शंका— उस आयुकर्मका अस्तित्व कैसे जाना जाता है ?

---

१ प्रतिषु '-संचएहि ' इति पाठः ।

२ एत्यनेन नारकादिभवमित्यायुः । स. सि. ८, ४.; त. रा. वा. ८, ४. कम्मकयमोहवड्ढियसंसारम्हि य अणादिजुत्तम्हि । जीवस्स अवट्ठाणं करेदि आऊ हलि व्व णरं ॥ गो. क. ११.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुदोवगम्मदे ? देहट्ठिदिअण्णहाणुववत्तीदो ।

णामं ॥ १० ॥

(नाना मिनोति निर्वर्त्तयतीति नाम[1]।) जे पोग्गला सरीर-संठाण-संघडण-वण्ण-गंधादिकज्जकारया जीवणिविट्ठा ते णामसण्णिदा होंति त्ति उत्तं होदि । तस्स णामकम्मस्स अत्थित्तं कुदोवगम्मदे ? सरीर-संठाण-वण्णादिकज्जभेदण्णहाणुववत्तीदो ।

गोदं ॥ ११ ॥

गमयत्युच्च-नीचकुलमिति गोत्रम्[2] । उच्च-णीचकुलेसु उप्पादओ पोग्गलक्खंधो मिच्छत्तादिपच्चएहि जीवसंबद्धो गोदमिदि उच्चदे ।

अंतरायं चेदि ॥ १२ ॥

अन्तरमेति गच्छति द्वयोः इत्यन्तरायः[3] । दाण-लाह-भोगोवभोगादिसु विग्घ-

---

समाधान—देहकी स्थिति अन्यथा हो नहीं सकती है, इस अन्यथानुपपत्तिसे आयुकर्मका अस्तित्व जाना जाता है ।

नाम कर्म है ॥ १० ॥

जो नाना प्रकारकी रचना निर्वृत्त करता है, वह नामकर्म है । शरीर, संस्थान, संहनन, वर्ण, गंध आदि कार्योंके करनेवाले जो पुद्गल जीवमें निविष्ट हैं, वे 'नाम' इस संज्ञावाले होते हैं, ऐसा अर्थ कहा गया है ।

शंका—उस नामकर्मका अस्तित्व कैसे जाना जाता है ?

समाधान—शरीर, संस्थान, वर्ण आदि कार्योंके भेद अन्यथा हो नहीं सकते हैं, इस अन्यथानुपपत्तिसे नामकर्मका अस्तित्व जाना जाता है ।

गोत्र कर्म है ॥ ११ ॥

जो उच्च और नीच कुलको ले जाता है वह गोत्रकर्म है । मिथ्यात्व आदि बंध-कारणोंके द्वारा जीवके साथ सम्बन्धको प्राप्त, एवं उच्च और नीच कुलोंमें उत्पन्न करानेवाला पुद्गल-स्कन्ध 'गोत्र' इस नामसे कहा जाता है ।

अन्तराय कर्म है ॥ १२ ॥

जो दो पदार्थोंके अन्तर अर्थात् मध्यमें आता है, वह अन्तराय कर्म है । दान, लाभ, भोग और उपभोग-आदिकोंमें विघ्न करनेमें समर्थ तथा स्व-कारणोंके द्वारा जीवके

---

१ नमयत्यात्मानं नम्यतेऽनेनेति वा नाम । स. सि. ८, ४.; त. रा. वा. ८, ४. गदि आदिजीवभेदं देहादी पोग्गलाणभेदं च । गदियंतरपरिणमणं करेदि णामं अणेयविहं ॥ गो. क. १२.

२ उच्चैर्नीचैश्च गूयते शब्द्यत इति वा गोत्रम् । स. सि. ८, ४.; त. रा. वा. ८, ४.; संताणकमेणागयजीवायरणस्स गोदमिदि सण्णा । उच्चं णीचं चरणं उच्चं णीचं हवे गोदं ॥ गो. क. १३.

३ दातृदेयादीनामन्तरं मध्यमेतीत्यन्तरायः । स. सि. ८, ४.; त. रा. वा. ८, ४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करणक्खमो पोग्गलक्खंधो सकारणेहि जीवसमवेदो अंतरायमिदि भण्णदे। एत्तियाओ चेव मूलपयडीओ होंति त्ति जाणावणट्ठमिदि सद्दो पउत्तो। एत्थ उववुज्जंतओ सिलोगो–

हेतावेवम्प्रकारादौ व्यवच्छेदे विपर्यये।
प्रादुर्भावे समाप्तौ च इतिशब्दं विदुर्बुधाः[1] ॥ ५ ॥

तदो अट्ठेव मूलपयडीओ। तं कुदो णव्वदे ? अट्ठ-कम्मजणिदकज्जेहिंतो पुधभूद-कज्जस्स अणुवलंभादो। एदाहि अट्ठहि पयडीहि अणंताणंतपरमाणुसमुदयसमागमेणुप्पण्णाहि एगेगजीवपदेसम्मि संबद्धाणंतपरमाणूहि अणादिसरूवेण संबद्धो अमुत्तो वि मुत्तत्तमुवगओ आइद्धकुलालचक्कं व सत्तसु संसारेसु जीवो संसरदि त्ति घेत्तव्वं।

मेहाविजीवाणुग्गहट्ठं संगहणयमवलंबिय पयडिसमुक्कित्तणं काऊण संपहि मंद-बुद्धिजणाणुग्गहट्ठं[2] ववहारणयपज्जयपरिणदो आइरिओ उवरिमसुत्तं भणदि—

णाणावरणीयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ ॥ १३ ॥

साथ सम्बन्धको प्राप्त पुद्गल-स्कन्ध 'अन्तराय' इस नामसे कहा जाता है। मूलप्रकृतियां इतनी अर्थात् आठ ही होती हैं, इस बातके ज्ञान करानेके लिए सूत्रमें 'इति' यह शब्द प्रयुक्त किया गया है। इस विषयमें यह उपयुक्त श्लोक है—

हेतु, एवं, प्रकार-आदि, व्यवच्छेद, विपर्यय, प्रादुर्भाव और समाप्तिके अर्थमें 'इति' शब्दको विद्वानोंने कहा है ॥ ५ ॥

इसलिए मूलप्रकृतियां आठ ही हैं।

शंका—यह कैसे जाना जाता है कि मूलप्रकृतियां आठ ही हैं ?

समाधान—आठ कर्मोंके द्वारा उत्पन्न होनेवाले कार्योंसे पृथग्भूत कार्य पाया नहीं जाता, इससे जाना जाता है कि मूलप्रकृतियां आठ ही हैं।

अनन्तानन्त परमाणुओंके समुदायके समागमसे उत्पन्न हुई इन आठ प्रकृतियोंके द्वारा एक एक जीव-प्रदेशपर सम्बद्ध अनन्त परमाणुओंके द्वारा अनादिस्वरूपसे सम्बन्धको प्राप्त अमूर्त भी यह जीव मूर्तत्त्वको प्राप्त होता हुआ आविद्ध-कुलाल-चक्रके समान, अर्थात् प्रयोग-प्रेरित कुम्भकारके चक्रके तुल्य, द्रव्यपरिवर्तनादि सात प्रकारके संसारोंमें संसरण या भ्रमण करता है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए।

मेधावी जीवोंके अनुग्रहार्थ संग्रहनयका अवलंबन ले प्रकृतिसमुत्कीर्त्तन करके अब मन्द-बुद्धि जनोंका अनुग्रह करनेके लिए व्यवहारनयरूप पर्यायसे परिणत आचार्य उत्तर सूत्र कहते हैं—

ज्ञानावरणीय कर्मकी पांच उत्तर प्रकृतियां हैं ॥ १३ ॥

---

१ धनं. अनेकार्थनाममाला ३९.

२ प्रतिषु 'मंदबुद्धिओणाणुग्गहट्ठं' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आभिणिबोहियणाणावरणीयं सुदणाणावरणीयं ओहिणाणावरणीयं मणपज्जवणाणावरणीयं केवलणाणावरणीयं चेदि ॥ १४ ॥

णाणावरणीयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ त्ति एदं ण वत्तव्वं, पंचण्हं पयडीणं पुध णामणिद्देसेणेव णाणावरणीयस्स पयडिपंचयत्तब्भुवगमादो ? ण एस दोसो, दव्वट्ठियसिस्साणुग्गहट्ठं णाणावरणीयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ त्ति पदुप्पायणादो । एवं दोसो होज्ज, जदि दोण्णि वि सुत्ताणि[1] एयणयणिबंधणाणि । किंतु पुव्विल्लं दव्वट्ठियसिस्साणुग्गहकारि, पच्छिल्लं पि पज्जवट्ठियणयसिस्साणुग्गहकारि । तदो दो वि सुत्ताणि सहलाणि त्ति ।

अहिमुह-णियमियअत्थावबोहो आभिणिबोहो[2] । थूल-वट्टमाण-अणंतरिदअत्था अहिमुहा । चक्खिंदिए रूवं णियमिदं, सोदिंदिए सद्दो, घाणिंदिए गंधो, जिब्भिंदिए रसो, फासिंदिए फासो, णोइंदिए दिट्ठ-सुदाणुभूदत्था णियमिदा । अहिमुह-णियमिदट्ठेसु

वे पांच प्रकृतियां इस प्रकार हैं—आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय, मनःपर्ययज्ञानावरणीय और केवलज्ञानावरणीय ॥ १४ ॥

शंका—' ज्ञानावरणीय कर्मकी पांच प्रकृतियां होती हैं ' इस प्रकारका सूत्र नहीं कहना चाहिए, क्योंकि, पांचों प्रकृतियोंके पृथक् नाम-निर्देशके द्वारा ही इस बातका ज्ञान हो जाता है कि ज्ञानावरणीयकर्मकी प्रकृतियां पांच ही हैं ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, द्रव्यार्थिकनयावलम्बी शिष्योंके अनुग्रहके लिए ' ज्ञानावरणीयकर्मकी पांच प्रकृतियां होती हैं ' इस प्रकारका सूत्र निर्माण किया गया है । यदि ये दोनों ही सूत्र एक नयके आश्रित होते, तो उक्त प्रकारका यह दोष होता । किन्तु, पहला सूत्र द्रव्यार्थिकनयी शिष्योंका अनुग्रह करनेवाला है, और पिछला सूत्र पर्यायार्थिकनयी शिष्योंका अनुग्रह करनेवाला है । इसलिए ये दोनों ही सूत्र सफल अर्थात् सार्थक हैं ।

अभिमुख और नियमित अर्थके अवबोधको अभिनिबोध कहते हैं । स्थूल, वर्तमान और अनन्तरित अर्थात् व्यवधान-रहित अर्थोंको अभिमुख कहते हैं । चक्षुरिन्द्रियमें रूप नियमित है, श्रोत्रेन्द्रियमें शब्द, घ्राणेन्द्रियमें गन्ध, जिह्वेन्द्रियमें रस, स्पर्शनेन्द्रियमें स्पर्श और नोइन्द्रिय अर्थात् मनमें दृष्ट, श्रुत और अनुभूत पदार्थ नियमित हैं । इस

---

१ प्रतिषु ' सुद्धत्ताणि ' इति पाठः

२ अहिमुहणियमियबोहणमाभिणिबोहियमणिंदिइंदियजं । अवगहईहावाया धारणगा होंति पत्तेगं ॥ गो. जी. ३०५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो बोधो सो अहिणिबोधो । अहिणिबोध एव आहिणिबोधियणाणं[1] । एत्थ णाणं विसेसिज्जमाणं, तस्स सामण्णरूवत्तादो । आहिणिबोहियं विसेसणं, अण्णेहिंतो ववच्छेदकारित्तादो । तेण ण पुणरुत्तदोसो ढुक्कदे ।

तं च आहिणिबोहियणाणं चउव्विहं, अवग्गहो ईहा अवाओ धारणा चेदि[2] । विषय-विषयिसंपातानन्तरमाद्यं ग्रहणमवग्रहः[3] । विसओ बाहिरो अट्ठो, विसई इंदियाणि[4] । तेसिं दोण्हं पि संपादो णाम णाणजणणजोग्गावत्था, तदणंतरमुप्पण्णं णाणमवग्गहो । सो वि अवग्गहो दुविहो, अत्थावग्गहो वंजणावग्गहो चेदि[5] । तत्थ अप्पत्तत्थग्गहणमत्थावग्गहो, जधा चक्खिंदिएण । पत्तत्थग्गहणं वंजणावग्गहो, जधा फासिंदिएण ।

प्रकारके अभिमुख और नियमित पदार्थोंमें जो बोध होता है, वह अभिनिबोध है । अभिनिबोध ही आभिनिबोधिक ज्ञान कहलाता है । यहांपर ' ज्ञान ' यह विशेष्य पद है, क्योंकि, वह सामान्यरूप है । ' आभिनिबोधिक ' यह विशेषण पद है, क्योंकि, वह अन्य ज्ञानोंसे व्यवच्छेद करता है । इसलिए दोनों पदोंके देनेपर भी पुनरुक्त दोष नहीं आता है ।

वह आभिनिबोधिक ज्ञान अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणाके भेदसे चार प्रकारका है । विषय और विषयीके योग्य देशमें प्राप्त होनेके अनन्तर आद्य ग्रहणको अवग्रह कहते हैं । बाहरी पदार्थ विषय है, और इन्द्रियां विषयी कहलाती हैं । इन दोनोंकी ज्ञान उत्पन्न करनेके योग्य अवस्थाका नाम संपात है । विषय और विषयीके संपातके अनन्तर उत्पन्न होनेवाला ज्ञान अवग्रह कहलाता है । वह अवग्रह भी दो प्रकारका है–अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रह । उनमें अप्राप्त अर्थात् अस्पृष्ट अर्थके ग्रहण करनेको अर्थावग्रह कहते हैं, जैसे चक्षुरिन्द्रियके द्वारा रूपको ग्रहण करना । प्राप्त अर्थात् स्पृष्ट अर्थके ग्रहणको व्यंजनावग्रह कहते हैं, जैसे स्पर्शनेन्द्रियके द्वारा स्पर्शको ग्रहण

१ अत्थाभिमुहो निअओ बोहो जो सो मओ अभिणिबोहो । सो चेवाऽऽभिणिबोहिअमहव जहाजोग्गमाउज्जं ॥ तं तेण तओ तम्मि व सो वाऽभिणिबुज्झए तओ वा तं । वि. आ. भा. ८०-८१.

२ अक्षार्थयोगे सत्तालोकोऽर्थाकारविकल्पधीः । अवग्रहो विशेषाकांक्षेहाऽवायो विनिश्चयः ॥ धारणा स्मृतिहेतुस्तन्मतिज्ञानं चतुर्विधम् । लघीय. का. ५-६.

३ स. सि. १, १५.; त. रा. वा. १, १५; लघीय. स्वो. वि., पृ. २. पं. २१. अक्षार्थयोगजाद्वस्तुमात्रग्रहणलक्षणात् । जातं यद्वस्तुभेदस्य ग्रहणं तदवग्रहः ॥ त. श्लो. वा. १, १५, २०.

४ विषयस्तावत् द्रव्यपर्यायात्मार्थः विषयिणो द्रव्यभावेन्द्रियस्य । लघीय. स्वो. वि., पृ. २, पं. २१-२२.

५ वेंजणअत्थअवग्गहभेदा हु हवंति पत्तपत्तत्थे । कमसो ते वावरिदा पढमं ण हि चक्खुमणसाणं ॥ गो. जी. ३०६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवगृहीतस्यार्थस्य विशेषाकांक्षणमीहा[1]। जो अवग्गहेण गहिदो अत्थो, तस्स विसेसा-कंक्खणमीहा। जधा कं पि दट्ठूण किमेसो भव्वो अभव्वो त्ति विसेसपरिक्खा[2] सा ईहा[3]। णेहा संदेहरूवा, विचारबुद्धीदो संदेहविणासुवलंभा। संदेहादो उवरिमा, अवायादो ओरिमा, विच्चाले पयत्ता[4] विचारबुद्धी ईहा णाम। वितर्कः श्रुतमिति[5] वचनादीहा वियक्करूवत्तादो सुदणाणमिदि चे ण एस दोसो, ओग्गहेण पडिग्गहिदत्थालंबणो वियक्को ईहा, भिण्णत्थालंबणो वियक्को सुदणाणमिदि अब्भुवगमादो।

ईहितस्यार्थस्य संदेहापोहनमवायः[6]। पुव्वं किं भव्वो, किमेसो अभव्वो त्ति जो संदेहबुद्धीए विसईकओ जीवो सो एसो अभव्वो ण होदि, भव्वो चेय; भव्वत्ता-विणाभाविसम्मणणाण-सम्मद्दंसण-चरणाणमुवलंभादो, इदि उप्पण्णपच्चओ अवाओ णाम।

करना। अवग्रहसे ग्रहण किये गये अर्थके विशेष जाननेकी आकांक्षा ईहा है। अर्थात् अवग्रहके द्वारा जो पदार्थ ग्रहण किया गया है, उसकी विशेष जिज्ञासाको ईहा कहते हैं। जैसे—किसी पुरुषको देखकर क्या यह भव्य है, अथवा क्या यह अभव्य है, इस प्रकारकी विशेष परीक्षा करनेको ईहाज्ञान कहते हैं। ईहाज्ञान संदेहरूप नहीं है, क्योंकि, ईहात्मक विचार–बुद्धिसे संदेहका विनाश पाया जाता है। संदेहसे उपरितन, अवाय-ज्ञानसे अधस्तन, तथा अन्तरालमें प्रवृत्त होनेवाली विचार–बुद्धिका नाम ईहा है।

शंका—'विशेषरूपसे तर्क करना श्रुतज्ञान है' इस शास्त्र-वचनके अनुसार ईहा वितर्करूप होनेसे श्रुतज्ञान है?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, अवग्रहसे प्रतिगृहीत अर्थके आलम्बन करनेवाले वितर्कको ईहा कहते हैं और भिन्न अर्थका आलम्बन करनेवाला वितर्क श्रुतज्ञान है, ऐसा अर्थ स्वीकार किया गया है।

ईहाज्ञानसे जाने गये पदार्थ-विषयक संदेहका दूर हो जाना अवाय है। पहले ईहाज्ञानसे 'क्या यह भव्य है, अथवा अभव्य है' इस प्रकार जो संदेहरूप बुद्धिके द्वारा विषय किया गया जीव है, सो यह अभव्य नहीं है, भव्य ही है, क्योंकि उसमें भव्यत्वके अविनाभावी सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र गुण पाये जाते हैं, इस प्रकारसे उत्पन्न हुए विश्वस्त ज्ञानका नाम अवाय है।

---

१ स. सि. १, १५, त. रा. वा. १, १५, तद्गृहीतार्थसामान्ये यद्विशेषस्य कांक्षणम्। निश्चयाभिमुखं सेहा संशीतेर्भिन्नलक्षणा॥ त. श्लो. वा. १, १५, ३.   २ प्रतिषु 'एसेसपरिक्खा' इति पाठः।

३ विसयाणं विसईणं संजोगाणंतरं हवे णियमा। अवगहणाणं गहिदे विसेसकंखा हवे ईहा॥ गो. जी. ३०७

४ प्रतिषु 'पमत्ता' इति पाठः।   ५ त. सू. ९, ४३,

६ विशेषनिर्ज्ञानाद्याथात्म्यावगमनमवायः। स. सि. १, १५.; त. रा. वा. १५, ३.; तस्यैव निर्णयोऽवायः। त. श्लो० वा० १, १५, ४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिंगजत्तादो अवायो सुदणाणमिदि णासंकणिज्जं, अवग्गहिदत्थादो पुधभूदत्थालंबणाए लिंगजणिदबुद्धीए णिण्णयरूवाए सुदणाणत्तब्भुवगमादो। अवाओ पुण अवगहिदत्थ-विसओ ईहापच्छायदो, तेण सुदणाणं ण होदि। अवग्गहावायाणं णिण्णयत्तं पडि भेदा-भावा एयत्तं किण्ण होदि इदि चे, होदु तेण एयत्तं, किंतु अवग्गहो णाम विसय-विसइसण्णिवायाणंतरभावी पढमो बोधविसेसो, अवाओ पुण ईहाणंतरकालभावी उप्पण्ण-संदेहाभावरूवो, तेण ण दोण्हमेयत्तं।

निर्णीतस्यार्थस्य कालान्तरे अविस्मृतिर्धारणा[1]। जत्तो णाणादो कालंतरे वि अविस्सरणहेदुभूदो जीवे संसकारो उप्पज्जदि, तण्णाणं धारणा णाम। ण च ओग्गहादि-चउण्हं पि णाणाणं सव्वत्थ कमेण उप्पत्ती, तहाणुवलंभा। तदो कहिं पि ओग्गहो चेय, कहिं पि ओग्गहो ईहा य दो च्चेय[2], कहिं पि ओग्गहो ईहा अवाओ तिण्णि वि होंति,

---

शंका—लिंगसे उत्पन्न होनेके कारण अवाय श्रुतज्ञान है?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि, अवग्रहके द्वारा ग्रहण किये गये पदार्थसे पृथग्भूत अर्थका आलम्बन करनेवाली, निर्णयरूप लिंग-जनित बुद्धिको श्रुतज्ञानपना माना गया है। किन्तु अवायज्ञान अवग्रहसे गृहीत पदार्थको ही विषय करता है और ईहाज्ञानके पश्चात् उत्पन्न होता है, इसलिए वह श्रुतज्ञान नहीं हो सकता है।

शंका—अवग्रह और अवाय, इन दोनों ज्ञानोंके निर्णयत्वके सम्बन्धमें कोई भेद न होनेसे एकता क्यों नहीं है?

समाधान—निर्णयत्वके सम्बन्धमें कोई भेद न होनेसे एकता भले ही रही आवे, किन्तु विषय और विषयीके सन्निपातके अनन्तर उत्पन्न होनेवाला प्रथम ज्ञानविशेष अवग्रह है, और ईहाके अनन्तर-कालमें उत्पन्न होनेवाले संदेहके अभावरूप अवायज्ञान होता है, इसलिए अवग्रह और अवाय, इन दोनों ज्ञानोंमें एकता नहीं है।

अवायज्ञानसे निर्णय किये गये पदार्थका कालान्तरमें विस्मरण न होना धारणा है। जिस ज्ञानसे कालान्तर अर्थात् आगामी कालमें भी अविस्मरणका कारणभूत संस्कार जीवमें उत्पन्न होता है उस ज्ञानका नाम धारणा है। अवग्रह आदि चारों ही ज्ञानोंकी सर्वत्र क्रमसे उत्पत्ति नहीं होती है, क्योंकि, उस प्रकारकी व्यवस्था पाई नहीं जाती है। इसलिए कहीं तो केवल अवग्रह ज्ञान ही होता है; कहीं अवग्रह और ईहा, ये दो ही ज्ञान होते हैं; कहीं पर अवग्रह, ईहा और अवाय, ये तीनों भी ज्ञान होते हैं;

---

१ अवेतस्य कालान्तरेऽविस्मरणकारणं धारणा। स. सि. १, १५. निर्ज्ञातार्थाऽविस्मृतिर्धारणा। त. रा. वा. १, १५, ४. स्मृतिहेतुः सा धारणा। त. श्लो. वा. १, १५, ४.

२ मप्रतौ 'तदो कहिं पि ओग्गहो चेय। धारणा य दो चेय कहिं पि ओग्गहो ईहा य' इति पाठः। अन्यप्रतिषु 'तदो कम्मं पि ओग्गहो धारणा य दो चेय। कहिं पि ओग्गहो ईहा य' इति पाठः।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

कहिं पि ओग्गहो ईहा अवाओ धारणा चेदि चत्तारि वि होंति ।

तत्र बहु-बहुविध-क्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवसेतरभेदेनैकैको द्वादशविधः[1] । तत्थ बहूणमेगवारेण ग्गहणं बहुवग्गहो । ण च एसो अप्पसिद्धो, अक्कमेण जोग्गदेसट्ठिद-पंचण्हमंगुलीणमुवलंभा । एक्कस्सेव वत्थुवलंभो[2] एयावग्गहो । अणेयंतवत्थुवलंभा एयावग्गहो णत्थि । अह अत्थि, एयंतसिद्धी पसज्जदे एयंतग्गाहयपमाणस्सुवलंभा इदि चे, ण एस दोसो, एयवत्थुग्गाहओ अवबोहो एयावग्गहो उच्चदि । ण च विहि-पडिसेह-धम्माणं[3] वत्थुत्तमत्थि जेण तत्थ अणेयावग्गहो होज्ज ? किंतु विहि-पडिसेहारद्धमेयं वत्थू, तस्स उवलंभो एयावग्गहो । अणेयवत्थुविसओ अवबोहो अणेयावग्गहो । पडिहासो पुण सव्वो अणेयंतविसओ चेय, विहि-पडिसेहाणमण्णदरस्सेव अणुवलंभा । बहुपयाराणं

और कहीं पर अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा, ये चारों ही ज्ञान होते हैं ।

उनमें एक एक, अर्थात् अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा—बहु, बहुविध, क्षिप्र अनिःसृत, अनुक्त, ध्रुव और इनके प्रतिपक्षी अर्थात् एक, एकविध, अक्षिप्र, निःसृत, उक्त और अध्रुव, इनके भेदसे बारह प्रकारका है । उनमें बहुत वस्तुओंका एक साथ ग्रहण करना बहु-अवग्रह है । इस प्रकारका यह बहु-अवग्रह अप्रसिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, योग्य देशमें स्थित पांचों अंगुलियोंका एक साथ उपलम्भ पाया जाता है । एक ही वस्तुके उपलम्भको एक-अवग्रह कहते हैं ।

शंका—अनेक धर्मात्मक वस्तुओंके पाये जानेसे एक-अवग्रह नहीं होता है । यदि होता है तो एक धर्मात्मक वस्तुकी सिद्धि प्राप्त होती है, क्योंकि, एक धर्मात्मक वस्तुका ग्रहण करनेवाला प्रमाण पाया जाता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, एक वस्तुका ग्रहण करनेवाला ज्ञान एक-अवग्रह कहलाता है । तथा विधि और प्रतिषेध धर्मोंके वस्तुपना नहीं है, जिससे उनमें अनेक-अवग्रह हो सके ? किन्तु विधि और प्रतिषेध धर्मोंके समुदायात्मक एक वस्तु होती है; उस प्रकारकी वस्तुके उपलम्भको एक-अवग्रह कहते हैं । अनेक वस्तु-विषयक ज्ञानको अनेक-अवग्रह कहते हैं । किन्तु प्रतिभास तो सर्व ही अनेक धर्मोंका विषय करनेवाला होता है, क्योंकि, विधि और प्रतिषेध, इन दोनोंमेंसे किसी एक ही धर्मका अनुपलम्भ है, अर्थात् इन दोनोंमेंसे एकको छोड़कर दूसरा नहीं पाया जाता, दोनों ही प्रधान-अप्रधानरूपसे साथ साथ पाये जाते हैं ।

---

१ बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् ॥ त. सू. १, १६.

२ अ-प्रतौ ' एक्कस्सेव बहुवलंभो '; आ-प्रतौ ' एक्कस्से बहूवलंभो '; क-प्रतौ ' एक्कस्से बहुबलंभो ' इति पाठः ।

३ प्रतिषु ' विहि-पडिसेहं धम्माणं ' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हय-हत्थि-गो-महिसादीणं गहणं बहुविहावग्गहो[1]। एयपयारग्गहणमेयविहावग्गहो। एय-एयविहाणं को विसेसो ? उच्चदे— एगस्स गहणं एयावग्गहो, एगजाईए ट्ठिद-एयस्स बहूणं वा गहणमेयविहावग्गहो। आसुग्गहणं खिप्पावग्गहो, सणिग्गहणमखिप्पा-वग्गहो। अहिमुहअत्थग्गहणं णिसियावग्गहो, अणहिमुहअत्थग्गहणं अणिसियावग्गहो। अहवा उवमाणोवमेयभावेण ग्गहणं णिसियावग्गहो, जहा कमलदलणयणा[2] त्ति। तेण विणा गहणं अणिसियावग्गहो। णियमियगुणविसिट्ठअत्थग्गहणं उत्तावग्गहो। जधा चक्खिंदिएण धवलत्थग्गहणं, घाणिंदिएण सुअंधदव्वग्गहणमिच्चादि। अणियमियगुण-विसिट्ठदव्वग्गहणमउत्तावग्गहो, जहा चक्खिंदिएण गुडादीणं रसस्स ग्गहणं, घाणिंदिएण दहियादीणं रसग्गहणमिच्चादि। णायमणिस्सिदस्स अंतो पददि, एयवत्थुग्गहणकाले चेय तदो पुधभूदवत्थुस्स, ओवरिमभागग्गहणकाले चेय परभागस्स य, अंगुलिगहणकाले

बहुत प्रकारके अश्व, हस्ती, गौ और महिष आदि पदार्थोंका ग्रहण करना बहुविध–अवग्रह है। एक प्रकारके पदार्थका ग्रहण करना एकविध–अवग्रह है।

शंका—एक और एकविधमें क्या भेद है ?

समाधान—एक व्यक्तिरूप पदार्थका ग्रहण करना एक-अवग्रह है; और एक जातिमें स्थित एक पदार्थका, अथवा बहुत पदार्थोंका, ग्रहण करना एकविध-अवग्रह है।

आशु अर्थात् शीघ्रतापूर्वक वस्तुको ग्रहण करना क्षिप्र-अवग्रह है, और शनैः शनैः ग्रहण करना अक्षिप्र-अवग्रह है। अभिमुख अर्थका ग्रहण करना निःसृत-अवग्रह है और अनभिमुख अर्थका ग्रहण करना अनिःसृत-अवग्रह है। अथवा, उपमान-उपमेय भावके द्वारा ग्रहण करना निःसृत-अवग्रह है, जैसे— कमलदल-नयना अर्थात् इस स्त्रीके नयन कमलपत्रके समान हैं। उपमान-उपमेय भावके विना ग्रहण करना अनिःसृत-अवग्रह है। नियमित गुण-विशिष्ट अर्थका ग्रहण करना उक्त-अवग्रह है। जैसे— चक्षुरिन्द्रियके द्वारा धवल पदार्थका ग्रहण करना और घ्राणेन्द्रियके द्वारा सुगन्ध द्रव्यका ग्रहण करना, इत्यादि। अनियमित गुण-विशिष्ट द्रव्यका ग्रहण करना अनुक्त-अवग्रह है। जैसे चक्षुरिन्द्रियके द्वारा गुड़ आदिके रसका ग्रहण करना, और घ्राणेन्द्रियके द्वारा दही आदिके रसका ग्रहण करना। यह अनुक्त–अवग्रह अनिःसृत–अवग्रहके अन्तर्गत नहीं है, क्योंकि, एक वस्तुके ग्रहण–कालमें ही, उससे पृथग्भूत वस्तुका, उपरिम–भागके ग्रहण–कालमें ही परभागका और अंगुलिके ग्रहण-कालमें ही देवदत्तका ग्रहण करना अनिःसृत-अवग्रह

---

१ बहु-बहुविधयोः कः प्रतिविशेषः ? यावता बहुषु बहुविधेष्वपि बहुत्वमस्ति। एकप्रकार-नानाप्रकारकृतो विशेषः। स. सि. १, १६.

२ प्रतिषु ' कमलदले णयणा ' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चेय देवदत्तस्स य गहणस्स अणिस्सिदववदेसादो। णिच्चत्ताए गहणं धुवावग्गहो, तव्विवरीयगहणमद्धुवावग्गहो। एवमीहादीणं पि बारस भेदा परूवेदव्वा। चक्खिंदिय-णोइंदियाणं अट्ठेतालीस आभिणिबोधियणाणवियप्पा होंति, एदेसिं वंजणावग्गहाभावा। सेसिंदियाणं सट्ठी मदिणाणवियप्पा, तत्थ अत्थ-वंजणोग्गहाणं दोण्हं पि संभवादो। एवंविधस्स णाणस्स जमावरणं तमाभिणिवोहियणाणावरणीयं।

सुदणाणस्स आवरणीयं सुदणाणावरणीयं। तत्थ सुदणाणं णाम इंदिएहि गहिदत्थादो तदो पुधभूदत्थग्गहणं, जहा सद्दादो घडादीणमुवलंभो, धूमादो अग्गिस्सुवलंभो वा[1]। तं च सुदणाणं वीसदिविधं। तं जधा — पज्जाओ पज्जायसमासो अक्खरं अक्खरसमासो पदं पदसमासो संघाओ संघायसमासो पडिवत्ती पडिवत्तिसमासो अणियोगो अणियोगसमासो पाहुडपाहुडो पाहुडपाहुडसमासो पाहुडो पाहुडसमासो वत्थू वत्थुसमासो पुव्वं पुव्वसमासो चेदि[2]। खरणाभावा अक्खरं केवलणाणं। तस्स अणंतिम-

---

माना गया है। नित्यतासे अर्थात् निरन्तर रूपसे ग्रहण करना ध्रुव-अवग्रह है और उससे विपरीत ग्रहण करना अध्रुव-अवग्रह है।

इस प्रकार ईहा आदि शेष तीन ज्ञानोंके भी बारह बारह भेद निरूपण करना चाहिये। चक्षुरिन्द्रिय और नो-इन्द्रिय अर्थात् मनके अड़तालीस आभिनिबोधिक ज्ञान-सम्बन्धी विकल्प होते हैं, क्योंकि, चक्षु और मन, इन दोनोंके व्यंजनावग्रहका अभाव है। शेष चारों इन्द्रियोंके साठ मतिज्ञान-सम्बन्धी भेद होते हैं, क्योंकि, उनमें अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रह, इन दोनोंका भी होना संभव है।

इस प्रकारके ज्ञानका जो आवरण करता है उसे आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं।

श्रुतज्ञानके आवरण करनेवाले कर्मको श्रुतज्ञानावरणीय कहते हैं। उनमें इन्द्रियोंसे ग्रहण किये गये पदार्थसे उससे पृथग्भूत पदार्थका ग्रहण करना श्रुतज्ञान है। जैसे—शब्दसे घट आदि पदार्थोंका जानना, अथवा धूमसे अग्निका ग्रहण करना। वह श्रुतज्ञान बीस प्रकारका है। जैसे—पर्याय, पर्याय-समास, अक्षर, अक्षर-समास, पद, पद-समास, संघात, संघात-समास, प्रतिपत्ति, प्रतिपत्ति-समास, अनुयोग, अनुयोग-समास, प्राभृतप्राभृत, प्राभृतप्राभृत-समास, प्राभृत, प्राभृत-समास, वस्तु, वस्तु-समास, पूर्व और पूर्व-समास।

क्षरण अर्थात् विनाशके अभाव होनेसे केवलज्ञान अक्षर कहलाता है। उसका

---

१ अत्थादो अत्थंतरमुवलंभं तं भणंति सुदणाणं। आभिणिबोहियपुव्वं णियमेणिह सद्दजं पमुहं॥ गो. जी. ३१४.

२ पज्जायक्खरपदसंघादं पडिवत्तियाणिजोगं च। दुगवारपाहुडं च य पाहुडयं वत्थु पुव्वं च॥ तेसिं च समासेहि य वीसविहं वा हु होदि सुदणाणं। आवरणस्स वि भेदा तत्तियमेत्ता हवंति त्ति॥ गो. जी. ३१६-३१७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भागो पज्जाओ णाम मदिणाणं। तं च केवलणाणं व णिरावरणमक्खरं च। एदम्हादो सुहुमणिगोदलद्धिअक्खरादो जमुप्पज्जइ सुदणाणं[1] तं पि पज्जाओ उच्चदि, कज्जे कारणोवयारादो। तदो अणंतभागब्भहियं सुदणाणं पज्जयसमासो उच्चइ। अणंतभागवड्ढी असंखेज्जभागवड्ढी संखेज्जभागवड्ढी संखेज्जगुणवड्ढी असंखेज्जगुणवड्ढी अणंतगुणवड्ढि त्ति एसा एक्का छवड्ढी। एरिसाओ असंखेज्जलोगमेत्तीओ छवड्ढीओ गंतूण पज्जायसमाससुदणाणस्स अपच्छिमो वियप्पो होदि। तमणंतेहि रूवेहि गुणिदे अक्खरं णाम सुदणाणं होदि[2]। कधमेदस्स अक्खरववएसो? ण, दव्वसुदपडिबद्धेयक्खरुप्पण्णस्स उवयारेण अक्खरववएसादो। एदस्सुवरि अक्खरवड्ढी चेव होदि, अवराओ वड्ढीओ णत्थि त्ति आइरियपरंपरागदुवदेसादो। केइं पुण आइरिया अक्खरसुदणाणं पि छव्विहाए वड्ढीए वड्ढदि त्ति भणंति, णेदं घडदे, सयल-सुदणाणस्स संखेज्जदिभागादो अक्खरणाणादो

अनन्तवां भाग पर्याय नामका मतिज्ञान है। वह पर्याय नामका मतिज्ञान केवलज्ञानके समान निरावरण और अविनाशी है। इस सूक्ष्म-निगोद-लब्धि-अक्षरसे जो श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है वह भी कार्यमें कारणके उपचारसे पर्याय कहलाता है। इस पर्याय श्रुतज्ञानसे जो अनन्तवें भागसे अधिक श्रुतज्ञान होता है वह पर्याय-समास कहलाता है। अनन्तभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धि, इन छहों वृद्धियोंके समुदायात्मक यह एक षड्-वृद्धि होती है। इस प्रकारकी असंख्यात लोकप्रमाण षड्वृद्धियां ऊपर जाकर पर्याय-समासनामक श्रुतज्ञानका अन्तिम विकल्प होता है। उस अन्तिम विकल्पको अनन्त रूपोंसे गुणित करने पर अक्षर-नामक श्रुतज्ञान होता है।

शंका—उक्त प्रकारके इस श्रुतज्ञानकी 'अक्षर' ऐसी संज्ञा कैसे हुई?

समाधान— नहीं, क्योंकि, द्रव्यश्रुत-प्रतिबद्ध एक अक्षरकी उत्पत्तिकी उपचारसे 'अक्षर' ऐसी संज्ञा है।

इस अक्षर-श्रुतज्ञानके ऊपर एक एक अक्षरकी ही वृद्धि होती है, अन्य वृद्धियां नहीं होती हैं, इस प्रकार आचार्य-परम्परागत उपदेश पाया जाता है। कितने ही आचार्य ऐसा कहते हैं कि अक्षर-श्रुतज्ञान भी छह प्रकारकी वृद्धिसे बढ़ता है। किन्तु उनका यह कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, समस्त श्रुतज्ञानके संख्यातवें भागरूप अक्षर-ज्ञानसे

१ सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स पढमसमयम्हि। हवदि हु सव्वजहण्णं णिच्चुग्घाडं णिरावरणं ॥ ३१९॥ ××× फासिंदियमदिपुव्वं सुदणाणं लद्धिअक्खरयं ॥ ३२१ ॥ गो. जी.

२ अवरुवरिम्मि अणंतमसंखं संखं च भागवड्ढीए। संखमसंखमणंतं गुणवड्ढी होंति हु कमेण ॥ ३२२ ॥ एवं असंखलोगा अणक्खरप्पे हवंति छट्ठाणा। ते पज्जायसमासा अक्खरगं उवरि वोच्छामि ॥ ३३१ ॥ चरिमुव्वंकेणवहिदअत्थक्खरगुणिदचरिममुव्वंकं। अत्थक्खरं तु णाणं होदि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥ ३३२ ॥ गो. जी.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उवरि छवड्ढीणं संभवाभावा। अक्खरसुदणाणादो उवरिमाणं पदसुदणाणादो हेट्ठिमाणं संखेज्जाणं सुदणाणवियप्पाणमक्खरसमासो त्ति सण्णा। तदो एगक्खरणाणे वड्ढिदे पदं णाम सुदणाणं होदि[1]। कुदो एदस्स पदसण्णा? सोलहसयचोत्तीसकोडीओ तेसीदिलक्खा अट्ठहत्तरिसदअट्ठासीदिअक्खरे च घेत्तूण एगं दव्वसुदपदं[2] होदि। एदेहिंतो उप्पण्णभावसुदं पि उवयारेण पदं ति उच्चदि। एदस्स पदस्स सुदणाणस्सुवरि एगक्खरसुदणाणे वड्ढिदे पदसमासो णाम सुदणाणं होदि। एवमेगक्खरादिकमेण पदसमाससुदणाणं वड्ढमाणं गच्छदि जाव संघाओ त्ति। संखेज्जेहि पदेहि संघाओ णाम सुदणाणं होदि[3]। चउहि गईहि मग्गणा होदि। तत्थ णिरयगईए जत्तिएहि पदेहि एगपुढवी परूविज्जदि, तत्तियाणं पदाणं तेहिंतो उप्पण्णसुदणाणस्स य संघायसण्णा त्ति उत्तं होदि। एवं सव्वगईओ सव्वमग्गणाओ च अस्सिदूण वत्तव्वं। एदस्सुवरि अक्खरसुदणाणे वड्ढिदे संघायसमासो णाम सुदणाणं होदि। एवं संघायसमासो वड्ढमाणो गच्छदि जाव एयअक्खरसुदणाणे-

ऊपर छह प्रकारकी वृद्धियोंका होना संभव नहीं है।

अक्षर-श्रुतज्ञानसे उपरिम और पद-श्रुतज्ञानसे अधस्तन श्रुतज्ञानके संख्यात विकल्पोंकी 'अक्षरसमास' यह संज्ञा है। इस अक्षरसमास श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षर-ज्ञानके बढ़नेपर पदनामका श्रुतज्ञान होता है।

शंका—उक्त प्रकारके इस श्रुतज्ञानकी 'पद' यह संज्ञा कैसे है?

समाधान—सोलह सौ चौंतीस करोड़, तेरासी लाख, अठत्तहर सौ अठासी (१६३४८३०७८८८) अक्षरोंको लेकर द्रव्यश्रुतका एक पद होता है। इन अक्षरोंसे उत्पन्न हुआ भावश्रुत भी उपचारसे 'पद' ऐसा कहा जाता है। इस पद नामक श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षर-प्रमित श्रुतज्ञानके बढ़नेपर पद-समास नामक श्रुतज्ञान होता है। इस प्रकार एक एक अक्षर आदिके क्रमसे पद-समास नामका श्रुत-ज्ञान बढ़ता हुआ तब तक जाता है जब तक कि संघात नामका श्रुतज्ञान प्राप्त होता है। इस प्रकार संख्यात पदोंके द्वारा संघात नामक श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है। चारों गति-योंके द्वारा मार्गणा होती है। उनमें जितने पदोंके द्वारा नरकगतिकी एक पृथ्वी निरू-पित की जाती है उतने पदोंकी और उनसे उत्पन्न हुए श्रुतज्ञानकी 'संघात' ऐसी संज्ञा होती है। इसी प्रकार सर्व गतियोंका और सर्व मार्गणाओंका आश्रय करके कहना चाहिए। इस संघात श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षर-प्रमित, श्रुतज्ञानके बढ़नेपर संघात-समास नामक श्रुतज्ञान होता है। इस प्रकार संघात-समास नामक श्रुतज्ञान तब तक

१ एयक्खरादु उवरिं एगेगेणक्खरेण वड्ढंतो। संखेज्जे खलु उड्ढे पदणामं होदि सुदणाणं॥ गो. जी. ३३४.

२ सोलससयचउतीसा कोडी तियसीदिलक्खयं चेव। सत्तसहस्साट्ठसया अट्ठासीदी य पदवण्णा॥ गो. जी. ३३५.

३ एयपदादो उवरिं एगेगेणक्खरेण वड्ढंतो। संखेज्जसहस्सपदे उड्ढे संघादणाम सुदं॥ गो. जी. ३३६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णूणपडिवत्तिसुदणाणेत्ति । जत्तिएहि पदेहि एयगइ-इंदिय-काय-जोगादओ परूविज्जंति, तेसिं पडिवत्तीसण्णा[1] । पडिवत्तीए उवरि एगक्खरसुदणाणे वड्डिदे पडिवत्तिसमासो णाम सुदणाणं होदि । एवं पडिवत्तिसमासो चेव होदूण गच्छदि जाव एगक्खरेणूणअणियोगद्दारसुदणाणेत्ति । जत्तिएहि पदेहि चोद्दसमग्गणाणं पडिबद्धेहि जो अत्थो जाणिज्जदि तेसिं पदाणं तत्थुप्पण्णणाणस्स य अणिओगो त्ति सण्णा[2] । तस्सुवरि एगक्खरसुदणाणे वड्डिदे अणियोगसमासो होदि । एवमणियोगसमाससुदणाणं एगेगक्खरुत्तरवड्डीए वड्डमाणं गच्छदि जाव एगक्खरेणूणपाहुडपाहुडेत्ति । तस्सुवरि एगक्खरसुदणाणे वड्डिदे पाहुडपाहुडं होदि । संखेज्जेहि अणियोगसुदणाणेहि एगं पाहुडपाहुडं णाम सुदणाणं होदि[3] । तस्सुवरि एगक्खरवड्डिदे पाहुडपाहुडसमासो होदि । एदस्सुवरि एगक्खरादिवड्डिकमेण

....

बढ़ता हुआ जाता है जब तक कि एक अक्षरश्रुतज्ञानसे कम प्रतिपत्ति नामक श्रुतज्ञान प्राप्त होता है । जितने पदोंके द्वारा एक गति, इन्द्रिय, काय और योग आदि मार्गणा प्ररूपित की जाती है, उतने पदोंकी 'प्रतिपत्ति' यह संज्ञा है । प्रतिपत्ति नामक श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षर-प्रमाण श्रुतज्ञानके बढ़नेपर प्रतिपत्ति-समास नामक श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है । इस प्रकार प्रतिपत्ति-समास श्रुतज्ञान ही बढ़ता हुआ तब तक चला जाता है, जब तक कि एक अक्षरसे कम अनुयोगद्वार नामक श्रुतज्ञान प्राप्त होता है । चौदह मार्गणाओंसे प्रतिबद्ध जितने पदोंके द्वारा जो अर्थ जाना जाता है, उतने पदोंकी और उनसे उत्पन्न हुए श्रुतज्ञानकी 'अनुयोग' यह संज्ञा है । उस अनुयोग श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षरप्रमाण श्रुतज्ञानके बढ़नेपर अनुयोग-समास नामक श्रुतज्ञान होता है । इस प्रकार अनुयोगसमास नामक श्रुतज्ञान एक एक अक्षरकी उत्तर-वृद्धिसे बढ़ता हुआ तब तक जाता है जब तक कि एक अक्षरसे कम प्राभृतप्राभृत नामक श्रुतज्ञान प्राप्त होता है । उसके ऊपर एक अक्षर-प्रमाण श्रुतज्ञानके बढ़नेपर प्राभृत-प्राभृत नामक श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है । संख्यात अनुयोगद्वाररूप श्रुतज्ञानोंके द्वारा एक प्राभृतप्राभृत नामक श्रुतज्ञान होता है । उस प्राभृतप्राभृत श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षर-प्रमाण श्रुतज्ञानके बढ़नेपर प्राभृतप्राभृत-समास नामक श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है ।

....

१ एक्कदरगदिणिरूवयसंघादसुदादु उवरि पुव्वं वा । वण्णे संखेज्जे संघादे उड्ढम्मि पडिवत्ती ॥ गो. जी. ३३७.

२ चउगइसरूवरूवयपडिवत्तीदो दु उवरि पुव्वं वा । वण्णे संखेज्जे पडिवत्तीउड्ढम्मि अणियोगं ॥ गो. जी. ३३८.

३ चोद्दसमग्गणसंजुदअणियोगादुवरि वड्ढिदे वण्णे । चउरादी अणियोगे दुगवारं पाहुडं होदि ॥ अहियारो पाहुडयं एयट्ठो पाहुडस्स अहियारो । पाहुडपाहुडणामं होदि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥ गो. जी. ३३९–३४०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाहुडपाहुडसमासो गच्छदि जावेगक्खरेणूणपाहुडेत्ति । तस्सुवरि एगक्खरे वड्ढिदे पाहुडो होदि[1] । एदस्सुवरि एगक्खरे वड्ढिदे पाहुडसमासो होदि । एवमेगेगक्खरवड्ढिकमेण पाहुडसमासो गच्छदि जाव एगक्खरेणूणवीसदियपाहुडो त्ति । एदस्सुवरि एगक्खरे वड्ढिदे वत्थुसुदणाणं होदि[2] । तस्सुवरि एगक्खरे वड्ढिदे वत्थुसमासो होदि । एवं वत्थुसमासो गच्छदि जाव एगक्खरेणूणअंतिमवत्थु त्ति । एदस्सुवरि एगक्खरे वड्ढिदे पुव्वं णाम सुदणाणं होदि । तस्सुवरि एगक्खरे वड्ढिदे पुव्वसमासो होदि । एवं पुव्वसमासो गच्छदि जाव लोगबिंदुसारचरिमक्खरं ति । एदस्स सुदणाणस्स आवरणं सुदणाणावरणीयं ।

अवाग्धानादवधिः, अवधिश्च स ज्ञानं च तत् अवधिज्ञानम् । अथवा अवधिर्मर्यादा, अवधेर्ज्ञानमवधिज्ञानम्[3] । तं च ओहिणाणं तिविहं, देसोही परमोही सव्वोही चेदि ।

इसके ऊपर एक अक्षर आदिकी वृद्धिके क्रमसे प्राभृतप्राभृत-समास तब तक बढ़ता हुआ जाता है, जब तक कि एक अक्षरसे कम प्राभृत नामक श्रुतज्ञान प्राप्त होता है। उस प्राभृत श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षरके बढ़नेपर प्राभृत-समास नामक श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है। इस प्रकार एक एक अक्षरकी वृद्धिके क्रमसे प्राभृतसमास नामक श्रुतज्ञान तब तक बढ़ता हुआ जाता है जब तक कि एक अक्षरसे कम वीसवां प्राभृत प्राप्त होता है। इस वीसवें प्राभृतके ऊपर एक अक्षर-प्रमाण श्रुतज्ञानके बढ़नेपर वस्तु नामक श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है। उस वस्तु श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर वस्तु-समास नामक श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है। इस प्रकार वस्तु समास नामक श्रुतज्ञान तब तक बढ़ता हुआ जाता है जब तक कि एक अक्षरसे कम अन्तिम वस्तु नामक श्रुतज्ञान प्राप्त होता है। इस अन्तिम वस्तु श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर पूर्वनामक श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है। उस पूर्वनामक श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर पूर्वसमास नामक श्रुतज्ञान प्राप्त होता है। इस प्रकार पूर्व-समास श्रुतज्ञान बढ़ता हुआ तब तक जाता है, जब तक कि लोकविन्दुसार नामक चौदहवें पूर्वका अन्तिम अक्षर उत्पन्न होता है। इस प्रकारके श्रुतज्ञानका आवरण करने वाला कर्म श्रुतज्ञानावरणीय कहलाता है।

जो नीचेकी ओर प्रवृत्त हो, उसे अवधि कहते हैं। अवधिरूप जो ज्ञान होता है वह अवधिज्ञान कहलाता है। अथवा अवधि नाम मर्यादाका है, इसलिये द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा विषय-सम्बन्धी मर्यादाके ज्ञानको अवधिज्ञान कहते हैं।

१ दुगवारपाहुडादो उवरिं वण्णे कमेण चउवीसे । दुगवारपाहुडे संउड्ढे खलु होदि पाहुडयं ॥ गो. जी. ३४१.

२ वीसं वीसं पाहुड अहियारे एक्कवत्थुअहियारो । एक्केक्कवण्णउड्ढी कमेण सव्वत्थ णायव्वा ॥ गो. जी. ३४२.

३ अवाग्धानादवच्छिन्नविषयाद्वा अवधिः । स. सि. १, ९. अवधिज्ञानावरणक्षयोपशमाद्युभयहेतुसन्निधाने सत्यवधीयतेऽवाग्दधात्यवाग्धानमात्रं वावधिः । अवधिशब्दोऽधःपर्यायवचनः, यथाधः क्षेपणमवक्षेपणं, इत्यधोगतभूयोद्रव्यविषयो ह्यवधिः । अथवावधिर्मर्यादा, अवधिना प्रतिबद्धं ज्ञानमवधिज्ञानम् । त. रा. वा. १, ९.; अवध्यावृतिविध्वंसविशेषादवधीयते । येन स्वार्थोऽवधानं वा सोऽवधिर्नियता स्थितिः ॥ त. श्लो. वा. १, ९, ५.;

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एदेसिं सरूवपरूवणमुवरि करस्सामो। मदि-सुदणाणेहिंतो एदस्स सावहियत्तेण भेदाभावा पुधपरूवणं णिरत्थयमिदि चे, ण एस दोसो, मदि-सुदणाणाणि परोक्खाणि, ओहिणाणं पुण पच्चक्खं; तेण तेहिंतो तस्स भेदुवलंभा। मदिणाणं पि पच्चक्खं दिस्सदीदि चे ण, मदिणाणेण पच्चक्खं वत्थुस्स अणुवलंभा। जो पच्चक्खमुवलब्भइ, सो वत्थुस्स एग-देसो त्ति वत्थू ण होदि। जो वि वत्थू, सो वि ण पच्चक्खेण उवलब्भदि, तस्स पच्च-क्खापच्चक्खपरोक्खमइणाणविसयत्तादो[1]। तदो मदिणाणं पच्चक्खेण ण वत्थुपरिच्छेदयं।

वह अवधिज्ञान देशावधि, परमावधि और सर्वावधिके भेदसे तीन प्रकारका है। इन तीनों भेदोंके स्वरूपका निरूपण आगे करेंगे।

शंका—अवधि अर्थात् मर्यादा-सहित होनेकी अपेक्षा अवधिज्ञानका मतिज्ञान और श्रुतज्ञान, इन दोनोंसे कोई भेद नहीं है; इसलिये इसका पृथक् निरूपण करना निरर्थक है?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, मतिज्ञान और श्रुतज्ञान परोक्ष ज्ञान हैं। किन्तु अवधिज्ञान तो प्रत्यक्ष ज्ञान है। इसलिये उक्त दोनों ज्ञानोंसे अवधिज्ञानके भेद पाया जाता है।

शंका—मतिज्ञान भी तो प्रत्यक्ष दिखलाई देता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मतिज्ञानसे वस्तुका प्रत्यक्ष उपलम्भ नहीं होता है। मतिज्ञानसे जो प्रत्यक्ष जाना जाता है वह वस्तुका एकदेश है; और वस्तुका एकदेश सम्पूर्ण वस्तुरूप नहीं हो सकता है। जो भी वस्तु है वह मतिज्ञानके द्वारा प्रत्यक्षरूपसे नहीं जानी जाती है, क्योंकि, वह प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्षरूप परोक्ष मति-ज्ञानका विषय है। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि मतिज्ञान प्रत्यक्षरूपसे वस्तुका जानने-वाला नहीं है।

अवहीयदि त्ति ओही सीमाणाणेत्ति वण्णियं समये। गो. जी. ३६९. अवायन्ति व्रजन्तीत्यवायाः पुद्गलाः, तान् दधाति जानातीत्यवधिः। अवाग्धानात्पुद्गलपरिज्ञानादित्यर्थः। द्रव्यक्षेत्रकालभावैर्नियतत्वेनावधीयते नियम्यते प्रमीयते परिच्छद्यत इत्यर्थः। अवधानं अवधिः। कोऽर्थः? अधस्ताद्बहुतरविषयग्रहणादवधिरुच्यते। देवाः खलु अवधिज्ञानेन सप्तमनरकपर्यन्तं पश्यन्ति। उपरि स्तोकं पश्यन्ति निजविमानध्वजदंडपर्यन्तमित्यर्थः। स. सि. टि. पृ. ६१. तेणावहीयए तम्मि वाऽवहाणं तओऽवही सो य। मज्जाया जं तीए दव्वाइ परोप्परं मुणइ॥ वि. आ. भा. ८२.

१ प्रत्यक्षं विशदं ज्ञानं त्रिधा × × × इन्द्रियप्रत्यक्षम् अनिन्द्रियप्रत्यक्षम् अतीन्द्रियप्रत्यक्षम्। प्रमाणसं. पृ. ९७. प्रत्यक्षलक्षणं प्राहुः स्पष्टं साकारमञ्जसा। द्रव्यपर्यायसामान्यविशेषार्थात्मवेदनम्॥ ३॥ हिताहिताप्ति-निर्मुक्तिक्षममिन्द्रियनिर्मितम्। यद्देशतोऽर्थज्ञानं तदिन्द्रियाध्यक्षमुच्यते॥ ४॥ सदसज्ज्ञानसंवादविसंवादविवेकतः। सविकल्पाविनाभावी समक्षेतरसम्प्लवः॥ ५॥ लक्षणं सममेतावान् विशेषोऽशेषगोचरम्॥ १६८॥ अक्रमं करणा-तीतमकलङ्कं महीयसाम्॥ १६९॥ (कथं तर्हि मतिज्ञानस्यैवं अवग्रहादिभेदस्य प्रत्यक्षत्वमुक्तं आत्ममात्रापेक्षत्वा-दिति चेदत्राह–) केवलं लोकबुद्ध्यैव मतेर्लक्षणसंग्रहः॥ ४७४॥ न्यायविनिश्चय. पृ. ९३. इन्द्रियार्थज्ञानं

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

जदि एवं, तो ओहिणाणस्स वि पच्चक्ख-परोक्खत्तं पसज्जदे, तिकालगोयराणंतपज्जाएहि उवचियं[1] वत्थू, ओहिणाणस्स पच्चक्खेण तारिसवत्थुपरिच्छेदणसत्तीए अभावादो इदि चे ण, ओहिणाणम्मि पच्चक्खेण वट्टमाणासेसपज्जायविसिट्ठवत्थुपरिच्छित्तीए उवलंभा, तीदाणागद-असंखेज्जपज्जायविसिट्ठवत्थुदंसणादो च । एवं पि तदो वत्थुपरिच्छेदो णत्थि त्ति ओहिणाणस्स पच्चक्ख-परोक्खत्तं पसज्जदे ? ण, उभयणयसमूहवत्थुम्मि ववहारजोगम्मि ओहिणाणस्स पच्चक्खत्तुवलंभा । ण चाणंतवंजणपज्जाए ण घेप्पदि त्ति ओहिणाणं वत्थुस्स एगदेसपरिच्छेदयं, ववहारणयवंजणपज्जाएहि एत्थ वत्थुत्तब्भुवगमादो । ण मदि-

विशेषार्थ—यहांपर जो मतिज्ञानको प्रत्यक्षाप्रत्यक्षात्मक परोक्ष कहा है उसका अभिप्राय यह है कि इन्द्रियोंके द्वारा वस्तुका जितना अंश स्पष्टरूपसे जाना जाता है उतने अंशमें वह ज्ञान प्रत्यक्ष है, और अवशिष्ट जितना अंश नहीं जाना जाता है उसकी अपेक्षा वही ज्ञान अप्रत्यक्ष है । यहां प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष शब्दोंका प्रयोग लोकव्यवहार की अपेक्षासे किया गया है । किन्तु आगममें मतिज्ञानको परोक्ष ही माना है । इन्हीं दोनों अपेक्षाओंसे यहांपर मतिज्ञानको प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्षरूप परोक्ष कहा गया है ।

शंका—यदि ऐसा है तो अवधिज्ञानके भी प्रत्यक्ष-परोक्षात्मकता प्राप्त होती है, क्योंकि, वस्तु त्रिकाल-गोचर अनन्त पर्यायोंसे उपचित है, किन्तु अवधिज्ञानके प्रत्यक्ष द्वारा उस प्रकारकी वस्तुके जाननेकी शक्तिका अभाव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, अवधिज्ञानमें प्रत्यक्षरूपसे वर्तमान समस्त पर्याय-विशिष्ट वस्तुका ज्ञान पाया जाता है, तथा भूत और भावी असंख्यात पर्याय-विशिष्ट वस्तुका ज्ञान देखा जाता है ।

शंका—इस प्रकार माननेपर भी अवधिज्ञानसे पूर्ण वस्तुका ज्ञान नहीं होता है, इसलिये अवधिज्ञानके प्रत्यक्ष-परोक्षात्मकता प्राप्त होती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, व्यवहारके योग्य, एवं द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक, इन दोनों नयोंके समूहरूप वस्तुमें अवधिज्ञानके प्रत्यक्षता पाई जाती है ।

अवधिज्ञान अनन्त व्यंजनपर्यायोंको नहीं ग्रहण करता है, इसलिये वह वस्तुके एकदेशका जाननेवाला है, ऐसा भी नहीं जानना चाहिये, क्योंकि, व्यवहारनयके योग्य व्यंजनपर्यायोंकी अपेक्षा यहां पर वस्तुत्व माना गया है । यदि कहा जाय कि

स्पष्टं हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थं प्रादेशिकं प्रत्यक्षम्, अवग्रहेहावायधारणात्मकम् । अनिन्द्रियप्रत्यक्षम् स्मृतिसंज्ञा-चिन्ताभिनिबोधात्मकम् । अतीन्द्रियप्रत्यक्षं व्यवसायात्मकं स्फुटमवितथमतीन्द्रियमव्यवधानं लोकोत्तरमात्मार्थविषयम् । लघीय. स्वो. वि. का. ६१, पृ. २१. प्रत्यक्षं विशदं ज्ञानं त्रिधेति ब्रुवाणेनापि (अकलंकेन) मुख्यमतीन्द्रियं पूर्णं केवलमपूर्णमवधिज्ञानं मनःपर्ययज्ञानं चेति निवेदितमेव, तस्याक्षमात्मानमाश्रित्य वर्तमानत्वात् । व्यवहारतः पुनरिन्द्रिय-प्रत्यक्षमनिन्द्रियप्रत्यक्षमिति वैशद्यांशसद्भावात् ॥ त. श्लो. वा. १, ११. पृ. १८२.

१ मप्रतौ ' उपरियं ' इति पाठः ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

णाणस्स वि एसो कमो, तस्स वट्टमाणासेसपज्जायविसिट्ठ-वत्थुपरिच्छेयणसत्तीए अभावादो, तस्स पच्चक्खग्गहणणियमाभावादो च । अत्रोपयोगी श्लोकः —

नयोपनयैकान्तानां त्रिकालानां समुच्चयः ।
अविभ्राड्भावसम्बन्धो द्रव्यमेकमनेकधा[1] ॥ ६ ॥

एवंविहस्स ओहिणाणस्स जमावारयं तमोहिणाणावरणीयं ।

परकीयमनोगतोऽर्थो मनः, तस्य पर्यायाः विशेषाः मनःपर्ययाः, तान् जानातीति मनःपर्ययज्ञानम्[2] । तं च मणपज्जवणाणं दुविहं उजुमइ-विउलमइभेएण । तत्थ उजुमई चिंतियमेव जाणदि, णाचिंतियं । चिंतियं पि जाणमाणं उज्जुवेण चिंतियं चेव जाणदि, ण वक्कं चिंतियं । विउलमई पुण चिंतियमचिंतियं पि वक्कचिंतियमवक्कचिंतियं पि जाणदि ।

मतिज्ञानका भी यही क्रम मान लेंगे, सो नहीं माना जा सकता, क्योंकि, मतिज्ञानके वर्तमान अशेष पर्याय-विशिष्ट वस्तुके जाननेकी शक्तिका अभाव है, तथा मतिज्ञानके प्रत्यक्षरूपसे अर्थ-ग्रहण करनेके नियमका अभाव है । इस विषयमें यह उपयोगी श्लोक है—

जो नैगम आदि नय और उनके भेद–प्रभेदरूप उपनयोंके विषयभूत त्रिकालवर्ती पर्यायोंका अभिन्न सम्बन्धरूप समुदाय है, उसे द्रव्य कहते हैं । वह द्रव्य कथंचित् एकरूप और कथंचित् अनेकरूप है ॥ ६ ॥

इस प्रकारके अवधिज्ञानका आवरण करनेवाला जो कर्म है, उसे अवधिज्ञानावरणीय कहते हैं ।

दूसरे व्यक्तिके मनमें स्थित पदार्थ मन कहलाता है । उसकी पर्यायों अर्थात् विशेषोंको मनःपर्यय कहते हैं । उनको जो ज्ञान जानता है वह मनःपर्ययज्ञान कहलाता है । वह मनःपर्ययज्ञान ऋजुमति और विपुलमतिके भेदसे दो प्रकारका है । उनमें ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान मनमें चिन्तवन किये गये पदार्थको ही जानता है, अचिन्तित पदार्थको नहीं । चिन्तित भी पदार्थको जानता हुआ सरलरूपसे चिन्तित पदार्थको ही जानता है, वक्ररूपसे चिन्तित पदार्थको नहीं । किन्तु, विपुलमति मनःपर्ययज्ञान चिन्तित, अचिन्तित पदार्थको भी, तथा वक्र-चिन्तित और अवक्र-चिन्तित पदार्थको भी जानता है ।

---

१ आ. मी. १०७.

२ परकीयमनोगतोऽर्थो मन इत्युच्यते, साहचर्यात्तस्य पर्ययणं परिगमनं मनःपर्ययः । स. सि. १, ९. मनः प्रतीत्य प्रतिसंधाय वा ज्ञानं मनःपर्ययः । त. रा. वा. १, ९, ××× मनःपर्येति योऽपि वा । स मनःपर्ययो ज्ञेयो मनोज्ञार्था मनोगताः । परेषां स्वमनो वापि तदालम्बनमात्रकम् ॥ त. श्लो. वा. १, ९, ७. पज्जवणं पज्जयणं पज्जाओ वा मणम्मि मणसो वा । तस्स व पज्जायादिलाणं मणपज्जवं नाणं ॥ वि. आ. भा. ८३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओहि-मणपज्जवणाणाणं को विसेसो ? उच्चदे— मणपज्जवणाणं विसिट्ठसंजमपच्चयं, ओहिणाणं पुण भवपच्चयं गुणपच्चयं च । मणपज्जवणाणं मदिपुव्वं चेव, ओहिणाणं पुण ओहिदंसणपुव्वं । एसो तेसिं विसेसो[1] । मणपज्जवणाणस्स आवरणं मणपज्जवणाणावरणीयं ।

केवलमसहायमिंदियालोयणिरवेक्खं तिकालगोयराणंतपज्जायसमवेदाणंतवत्थुपरिच्छेदयमसंकुडियमसवत्तं केवलणाणं[2] । णट्ठाणुप्पण्णअत्थाणं कधं तदो परिच्छेदो ? ण, केवलत्तादो बज्झत्थावेक्खाए[3] विणा तदुप्पत्तीए विरोहाभावा । ण तस्स विपज्जयणाणत्तं

शंका—अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान, इन दोनों ज्ञानोंमें क्या भेद है ?

समाधान—मनःपर्ययज्ञान विशिष्ट संयमके निमित्तसे उत्पन्न होता है, किन्तु अवधिज्ञान भवके निमित्तसे और गुण अर्थात् क्षयोपशमके निमित्तसे उत्पन्न होता है। मनःपर्ययज्ञान तो मतिज्ञानपूर्वक ही होता है, किन्तु अवधिज्ञान अवधिदर्शनपूर्वक होता है। यह उन दोनों ज्ञानोंमें भेद है।

इस प्रकारके मनःपर्ययज्ञानका आवरण करनेवाला कर्म मनःपर्ययज्ञानावरणीय कहलाता है।

केवल असहायको कहते हैं। जो ज्ञान असहाय अर्थात् इन्द्रिय और आलोककी अपेक्षा रहित है, त्रिकालगोचर अनन्त पर्यायोंसे समवायसम्बन्धको प्राप्त अनन्त वस्तुओंका जाननेवाला है, असंकुटित अर्थात् सर्वव्यापक है, और असपत्न अर्थात् प्रतिपक्षी रहित है उसे केवलज्ञान कहते हैं।

शंका—जो पदार्थ नष्ट हो चुके हैं, और जो पदार्थ अभी उत्पन्न नहीं हुए हैं, उनका केवलज्ञानसे कैसे ज्ञान हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, केवलज्ञानके सहाय-निरपेक्ष होनेसे बाह्य पदार्थोंकी अपेक्षाके विना उनके, अर्थात् नष्ट और अनुत्पन्न पदार्थोंके, ज्ञानकी उत्पत्तिमें कोई विरोध नहीं है। और केवलज्ञानके विपर्ययज्ञानपनेका भी प्रसंग नहीं आता है, क्योंकि,

---

१ अथानयोरवधिमनःपर्यययोः कुतो विशेष इत्यत आह–स. सि. १, २५. विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनःपर्यययोः ॥ त. सू. १, २५.

२ बाह्येनाभ्यन्तरेण च तपसा यदर्थमर्थिनो मार्गं केवन्ते सेवन्ते तत्केवलं । असहायमिति वा । स. सि. १, ९. बाह्याभ्यन्तरक्रियाविशेषात् यदर्थं केवन्ते तत्केवलम् । अव्युत्पन्नो वाऽसहायार्थः केवलशब्दः । त. रा. वा. १, ९. क्षायोपशमिकज्ञानासहायं केवलं मतम् । यदर्थमर्थिनो मार्गं केवन्ते वा तदिष्यते ॥ त. श्लो. वा. १, ९, ८. संपुण्णं तु समग्गं केवलमसवत्त सव्वभावगयं । लोयालोयवितिमिरं केवलणाणं मुणेदव्वं ॥ गो. जी. ४५९. केवलमेगं सुद्धं सगलमसाहारणं अणंतं च । वि. आ. भा. ८४.

३ प्रतिषु ' बज्झट्ठाए क्खाए ' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पसज्जदे, जहासरूवेण परिच्छित्तीदो । ण गद्दहसिंगेण विउचारो, तस्स अच्चंताभावरूवत्तादो । एदस्स आवरणं केवलणाणावरणीयं । केवलिम्हि[1] किमेक्कं[2] चेव णाणं, आहो पंच वि अत्थि त्ति । ण पढमपक्खो, आवरणिज्जाभावादो चदुण्हमावरणाणमभावप्पसंगादो । ण विइज्जओ पक्खो[3] वि, पच्चक्खापच्चक्ख-परिमियापरिमिय-केवलाकेवल-कमाकमणाणाणमेयत्थ[4] अक्कमेण संभवविरोहा[5] इदि ? एत्थ परिहारो उच्चदे— ण विइज्जपक्खउत्तदोससंभवो, अणब्भुवगमादो । ण पढमपक्खउत्तदोससंभवो वि, आवरणवसेण समुप्पण्णमदिणाणादिचदुण्हमावरणिज्जाणमुवलंभादो । ण खीणावरणिज्जे तेसिं

वह यथार्थस्वरूपसे पदार्थोंको जानता है । और न गधेके सींगके साथ व्यभिचार दोष आता है, क्योंकि, वह अत्यन्त अभावरूप है ।

विशेषार्थ— यहां उक्त शंका-समाधानमें केवलज्ञानके नष्ट और अनुत्पन्न वस्तुओंके जाननेकी शक्तिके सम्बन्धमें तीन बातोंका स्पष्टीकरण किया गया है- चूंकि, केवलज्ञान सहाय-निरपेक्ष है, अतः वह वस्तुकी वर्तमान पर्यायके समान अतीत और अनागत पर्यायोंकी अपेक्षा नहीं रखता । वह स्वभावतः यथार्थ ज्ञायक है, इसलिए उसमें विपर्ययत्व आनेकी संभावना नहीं है । तथा, नष्ट और अनुत्पन्न वस्तुओंका यद्यपि वर्तमानमें सद्भाव नहीं है, तथापि उनका अत्यन्ताभाव नहीं है और इसीलिए अत्यन्ताभाववाले गधेके सींगके साथ उसका व्यभिचार नहीं आता है ।

इस केवलज्ञानके आवरण करनेवाले कर्मको केवलज्ञानावरणीय कहते हैं ।

शंका—केवलीभगवान्में क्या एक ही ज्ञान होता है, अथवा पांचों ही ज्ञान होते हैं । प्रथम पक्ष तो माना नहीं जा सकता, क्योंकि आवरणीय अर्थात् आवरण करने योग्य ज्ञानोंके अभाव होनेसे मतिज्ञानावरणादि चारों आवरण कर्मोंके अभावका प्रसंग आता है । न दूसरा पक्ष भी माना जा सकता है, क्योंकि, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष, परिमित-अपरिमित, असहाय-सहाय और क्रम-अक्रमरूप पांचों ज्ञानोंका एक आत्मामें एक साथ रहनेका विरोध है ?

समाधान—यहां पर उक्त शंकाका परिहार कहते हैं— दूसरे पक्षमें कहा गया दोष तो संभव नहीं है, क्योंकि, वैसा, अर्थात् पांचों ज्ञानोंका एक साथ रहना, माना नहीं गया है । और न प्रथम पक्षमें कहा गया दोष भी संभव है, क्योंकि, आवरणके वशसे उत्पन्न होनेवाले मतिज्ञानादि चारों आवरणीय ज्ञान पाये जाते हैं । क्षीणावरणीय केवली

१ प्रतिषु ' केवलम्हि ' इति पाठः ।

२ अ-आप्रत्योः ' किमिक्कं ' कप्रतौ ' किमेक्कं ' मप्रतौ ' किमिएक्कं ' इति पाठः ।

३ प्रतिषु ' ण विइज्जओ पक्खो ' इति स्थाने ' विइज्जओ ' इति पाठः । मप्रतौ ' ण चिज्जदि पंचो ' इति पाठः । ४ प्रतिषु '-मेयत्थ ' इति पाठः ।

५ केवलस्यासहायत्वादितरेषां च क्षयोपशमनिमित्तत्वाद्यौगपद्याभावः । त. रा. वा. १, ३०, ७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संभवो, आवरणणिबंधणाणं तदभावे संभवविरोहादो[1] ।

दंसणावरणीयस्स कम्मस्स णव पयडीओ ॥ १५ ॥

एदं दव्वट्ठियणयमस्सिदूण ट्ठिदं सुत्तं संगहिदासेसविसेसत्तादो । कधं संगहादो विसेसो णव्वदे ? ण, बीजबुद्धीणं तदो तदवगमे विरोहाभावा ।

पज्जवट्ठियणयाणुग्गहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

णिद्दाणिद्दा पयलापयला थीणगिद्धी णिद्दा पयला य, चक्खुदंसणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं ओहिदंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं चेदि[2] ॥ १६ ॥

तत्थ णिद्दाणिद्दाए तिव्वोदएण रुक्खग्गे विसमभूमीए जत्थ वा तत्थ वा देसे घोरंतो अघोरंतो वा णिब्भरं सुवदि[3] । पयलापयलाए तिव्वोदएण वइट्ठओ वा उब्भवो

भगवान्‌में उनका होना संभव नहीं है, क्योंकि, आवरणके निमित्तसे होने वाले ज्ञानोंका आवरणोंके अभाव होनेपर होना विरुद्ध है ।

दर्शनावरणीय कर्मकी नौ प्रकृतियां हैं ॥ १५ ॥

यह सूत्र द्रव्यार्थिकनयका आश्रय लेकर स्थित है, क्योंकि, उसमें समस्त विशेषोंका संग्रह किया गया है ।

शंका—संग्रहनयसे विशेष कैसे जाना जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, बीज-बुद्धिवाले शिष्योंके संग्रहनयसे विशेषका ज्ञान होनेमें कोई विरोध नहीं है ।

अब पर्यायार्थिक नयवाले शिष्योंके अनुग्रहके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, निद्रा और प्रचला; तथा चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और केवलदर्शनावरणीय, ये नौ दर्शनावरणीय कर्मकी उत्तर-प्रकृतियां हैं ॥ १६ ॥

उनमें निद्रानिद्रा प्रकृतिके तीव्र उदयसे जीव वृक्षके शिखरपर, विषम भूमिपर, अथवा जिस किसी प्रदेशपर घुरघुराता हुआ या नहीं घुरघुराता हुआ निर्भर अर्थात् गाढ़ निद्रामें सोता है । प्रचलाप्रचला प्रकृतिके तीव्र उदयसे बैठा या खड़ा हुआ मुंहसे

१ ××× (केवलज्ञानस्य) क्षायिकत्वात् संक्षीणसकलज्ञानावरणे भगवत्यर्हति कथं क्षायोपशमिकानां ज्ञानानां संभवः । न हि परिप्राप्तसर्वशुद्धौ प्रदेशाशुद्धिरस्ति । त. रा. वा. १, ३०, ८.

२ चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रानिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धयश्च ॥ त. सू. ८, ७.

३ मदखेदक्लमविनोदार्थं स्वापो निद्रा । तस्या उपर्युपरि वृत्तिर्निद्रानिद्रा । स. सि. ८, ७.; त. रा. वा. ८, ७.; त. श्लो. वा. ८, ७. णिद्दाणिद्दुयेण य ण दिट्ठिमुग्घादिदुं सक्को ।। गो. क. २३. णिद्दाणिद्दा य दुक्खपडिबोहा । क. ग्रं. १, ११.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा मुहेण गलमाणलालो पुणो पुणो कंपमाणसरीर-सिरो णिब्भरं सुवदि[1]। थीणगिद्धीए तिव्वोदएण उट्ठाविदो वि पुणो सोवदि, सुत्तो वि कम्मं कुणदि, सुत्तो वि झंक्खइ, दंते कडकडावेइ[2]। णिद्दाए तिव्वोदएण अप्पकालं सुवइ, उट्ठाविज्जंतो लहुं उट्ठेदि, अप्पसद्देण वि चेअइ[3]। पयलाए तिव्वोदएण वालुवाए भरियाइं व लोयणाइं होंति, गरुवभारोड्डुव्वं व सीसं होदि, पुणो पुणो लोयणाइं उम्मिल्ल-णिमिल्लणं कुणंति[4], णिद्दाभरेण पडंतो लहु अप्पाणं साहारेदि, मणा मणा कंपदि, सचेयणो सुवदि। कध-मेदेसिं पंचण्हं दंसणावरणववएसो ? ण, चेयणमवहरंतस्स सव्वदंसणविरोहिणो दंसणा-वरणत्तं पडि विरोहाभावा। किं दर्शनम् ? ज्ञानोत्पादकप्रयत्नानुविद्धस्वसंवेदो दर्शनं

गिरती हुई लार सहित तथा वार-वार कंपते हुए शरीर और शिर-युक्त होता हुआ जीव निर्भर सोता है। स्त्यानगृद्धिके तीव्र उदयसे उठाया गया भी जीव पुनः सो जाता है, सोता हुआ भी कुछ क्रिया करता रहता है, तथा सोते हुए भी बड़बड़ाता है और दांतोंको कड़कड़ाता है। निद्रा प्रकृतिके तीव्र उदयसे जीव अल्प काल सोता है, उठाये जानेपर जल्दी उठ बैठता है और अल्प शब्दके द्वारा भी सचेत हो जाता है। प्रचलाप्रकृतिके तीव्र उदयसे लोचन वालुकासे भरे हुएके समान हो जाते हैं, सिर गुरु-भारको उठाये हुएके समान भारी हो जाता है और नेत्र पुनः पुनः उन्मीलन एवं निमीलन करने लगते हैं। निद्रा प्रकृतिके उदयसे गिरता हुआ जीव जल्दी अपने आपको सम्हाल लेता है, थोड़ा थोड़ा कंपता रहता है और सावधान सोता है।

शंका—इन पांचों निद्राओंके दर्शनावरण संज्ञा कैसे है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, आत्माके चेतन गुणको अपहरण करनेवाले और सर्व-दर्शनके विरोधी कर्मके दर्शनावरणत्वके प्रति कोई विरोध नहीं है।

शंका—दर्शन किसे कहते हैं ?

समाधान—ज्ञानका उत्पादन करनेवाले प्रयत्नसे सम्बद्ध स्व-संवेदन, अर्थात्

१ या क्रियाऽऽत्मानं प्रचलयति सा प्रचला शोकश्रममदादिप्रभवा आसीनस्यापि नेत्रगात्रविक्रियासूचिका। सैव पुनः पुनरावर्तमाना प्रचलाप्रचला। स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ७. पयलापयलुदयेण य वहेदि लाला चलंति अंगाई। गो. क. २४. पयलापयला उ चंकमओ॥ क. ग्रं. १, ११.

२ स्वप्नेऽपि यया वीर्यविशेषाविर्भावः सा स्त्यानगृद्धिः। स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ७. थीणुदयेणुट्ठविदे सोवदि कम्मं करेदि जप्पदि य॥ गो. क. २३. दिणचिंतिअत्थकरणी थीणद्धी अद्धचक्किअद्धबला। क. ग्रं. १, १२.

३ णिद्दुदये गच्छंतो ठाइ पुणो वइसइ पडेइ॥ गो. क. २४. सुहपडिबोहा निद्दा। क. ग्रं. १, ११.

४ पयलुदयेण य जीवो ईसुम्मीलिय सुवेइ सुत्तो वि। ईसं ईसं जाणदि मुहुं मुहुं सोवदे मंदं॥ गो. क. २५. पयला ठिओवविट्ठस्स। क. ग्रं. १, ११.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

आत्मविषयोपयोग इत्यर्थः । नात्र ज्ञानोत्पादकप्रयत्नस्य तंत्रता, प्रयत्नरहितक्षीणावरणान्तरंगोपयोगस्स अदर्शनत्वप्रसंगात् । तत्र चक्षुर्ज्ञानोत्पादकप्रयत्नानुविद्धस्वसंवेदने रूपदर्शनक्षमोऽहमिति संभावनाहेतुश्चक्षुर्दर्शनम् । एतदावृणोतीति चक्षुर्दर्शनावरणीयम् । शेषेन्द्रिय-मनसां दर्शनमचक्षुर्दर्शनम् । तदावृणोतीत्यचक्षुर्दर्शनावरणीयम् । अवधेर्दर्शनं अवधिदर्शनम् । तदावृणोतीत्यवधिदर्शनावरणीयम् । केवलमसपत्नं, केवलं च तद्दर्शनं च केवलदर्शनम् । तस्स आवरणं केवलदर्शनावरणीयम् । बाह्यार्थसामान्यग्रहणं दर्शनमिति केचिदाचक्षते, तन्न, सामान्यग्रहणास्तित्वं प्रत्यविशेषतः श्रुत-मनःपर्ययोरपि दर्शनस्यास्तित्वप्रसंगात्, सामान्यग्रहणमन्तरेण विशेषग्रहणाभावतस्संसारावस्थायां ज्ञान-दर्शनयोरक्रमेण प्रवृत्तिप्रसंगात् । न क्रमप्रवृत्तिरपि, सामान्यनिर्लुठितविशेषाभावतः तत्रावस्तुनि ज्ञानस्य प्रवृत्तिविरोधात् । न च ज्ञानस्य प्रामाण्यं वस्त्वपरिच्छेदकत्वात् ।

आत्मविषयक उपयोगको दर्शन कहते हैं । इस दर्शनमें ज्ञानके उत्पादक प्रयत्नकी पराधीनता नहीं है । यदि ऐसा न माना जाय तो प्रयत्न-रहित, क्षीणावरण और अन्तरंग उपयोगवाले केवलीके अदर्शनत्वका प्रसंग आता है ।

उनमें चक्षुरिन्द्रिय-सम्बन्धी ज्ञानके उत्पन्न करनेवाले प्रयत्नसे संयुक्त स्वसंवेदनके होनेपर ' मैं रूप देखनेमें समर्थ हूं, ' इस प्रकारकी संभावनाके हेतुको चक्षुदर्शन कहते हैं । इस चक्षुदर्शनके आवरण करनेवाले कर्मको चक्षुदर्शनावरणीय कहते हैं । चक्षुरिन्द्रियके अतिरिक्त शेष चार इन्द्रियोंके और मनके दर्शनको अचक्षुदर्शन कहते हैं । इस अचक्षुदर्शनको जो आवरण करता है वह अचक्षुदर्शनावरणीय कर्म है । अवधिके दर्शनको अवधिदर्शन कहते हैं । उस अवधिदर्शनको जो आवरण करता है वह अवधिदर्शनावरणीय कर्म है । केवल यह नाम प्रतिपक्ष-रहितका है । प्रतिपक्ष-रहित जो दर्शन होता है उसे केवलदर्शन कहते हैं । उस केवलदर्शनके आवरण करनेवाले कर्मको केवलदर्शनावरणीय कहते हैं ।

बाह्य पदार्थको सामान्यरूपसे ग्रहण करना दर्शन है, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं । किन्तु वह कथन समीचीन नहीं है, क्योंकि, सामान्य-ग्रहणके अस्तित्वके प्रति कोई विशेषता न होनेसे श्रुतज्ञान और मनःपर्यय-ज्ञान, इन दोनोंको भी दर्शनके अस्तित्वका प्रसंग आता है । अतएव सामान्य-ग्रहणके बिना विशेषके ग्रहणका अभाव होनेसे संसार अवस्थामें ज्ञान और दर्शनकी अक्रम अर्थात् युगपत् प्रवृत्तिका प्रसंग आता है । तथा दर्शनकी उपर्युक्त परिभाषा माननेपर ज्ञान और दर्शनकी संसारावस्थामें क्रमशः प्रवृत्ति भी नहीं बनती है, क्योंकि सामान्यसे रहित विशेष कोई वस्तु नहीं है और अवस्तुमें ज्ञानकी प्रवृत्ति होनेका विरोध है । यदि अवस्तुमें ज्ञानकी प्रवृति मानी जायगी तो ज्ञानके प्रमाणता नहीं मानी जा सकती, क्योंकि वह वस्तुका अपरिच्छेदक है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न च विशेषमात्रं वस्तु, तस्यार्थक्रियाकर्तृत्वाभावात् । ततः सामान्यमात्मा, सकलार्थसाधारणत्वात्तद्विषय उपयोगो दर्शनमिति प्रत्येतव्यम् । केवलज्ञानमेव आत्मार्थावभासकमिति केचित्केवलदर्शनस्याभावमाचक्षते । तन्न, पर्यायस्य केवलज्ञानस्य पर्यायाभावतः सामर्थ्यद्वयाभावात् । भावे वा अनवस्था न कैश्चिन्निवार्यते । तस्मादात्मा स्व-परावभासक इति निश्चेतव्यम् । तत्र स्वावभासः केवलदर्शनम्, परावभासः केवलज्ञानम् । तथा सति कथं केवलज्ञान-दर्शनयोः साम्यमिति चेन्न, ज्ञेयप्रमाणज्ञानात्मकात्मानुभवस्य ज्ञानप्रमाणत्वाविरोधात्[1] । इति शब्दः एतावदर्थे, दर्शनावरणीयस्य कर्मणः एतावत्य एव प्रकृतयो नाधिका इत्यर्थः ।

वेदणीयस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ ॥ १७ ॥

एदं[2] संगहणयसुत्तं, संगहिदासेसविसेसत्तादो । किमट्ठमिदं उच्चदे ? मेहाविज-

केवल विशेष कोई वस्तु भी नहीं है, क्योंकि, उसके अर्थक्रियाकी कर्तृताका अभाव है । इसलिये सामान्य नाम आत्माका है, क्योंकि, वह सकल पदार्थोंमें साधारण रूपसे व्याप्त है । इस प्रकारके सामान्यरूप आत्माको विषय करनेवाला उपयोग दर्शन है, ऐसा निश्चय करना चाहिये ।

केवलज्ञान ही अपने आपका और अन्य पदार्थोंका जाननेवाला है, इस प्रकार मानकर कितने ही लोग केवलदर्शनके अभावको कहते हैं । किन्तु उनका यह कथन युक्ति-संगत नहीं है, क्योंकि, केवलज्ञान स्वयं पर्याय है । पर्यायके दूसरी पर्याय होती नहीं है, इसलिये केवलज्ञानके स्व और परकी जाननेवाली दो प्रकारकी शक्तियोंका अभाव है । यदि एक पर्यायके दूसरी पर्यायका सद्भाव माना जायगा तो आनेवाला अनवस्था दोष किसीके द्वारा भी नहीं रोका जा सकता है । इसलिये आत्मा ही स्व और परका जाननेवाला है, ऐसा निश्चय करना चाहिये । उनमें स्व-प्रतिभासको केवलदर्शन कहते हैं, और पर-प्रतिभासको केवलज्ञान कहते हैं ।

शंका—उक्त प्रकारकी व्यवस्था माननेपर केवलज्ञान और केवलदर्शनमें समानता कैसे रह सकेगी ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, ज्ञेयप्रमाण ज्ञानात्मक आत्मानुभवके ज्ञानके प्रमाण होने में कोई विरोध नहीं है ।

सूत्रके अंतमें दिया गया 'इति' यह शब्द 'एतावत्' अर्थका वाचक है, अर्थात् दर्शनावरणीय कर्मकी इतनी ही प्रकृतियां होती हैं, अधिक नहीं ।

वेदनीय कर्मकी दो प्रकृतियां हैं ॥ १७ ॥

यह सूत्र संग्रहनयके आश्रित है, क्योंकि, समस्त भेदोंको अपनेमें संग्रह करनेवाला है ।

शंका—यह संग्रहनयाश्रित सूत्र किसलिये कहा जा रहा है ?

१ प्र. खा. १, २३. २ प्रतिषु 'एवं' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णाणुग्गहट्ठं । संपहि मंदबुद्धिजणाणुग्गहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

सादावेदणीयं चेव असादावेदणीयं चेव[1] ॥ १८ ॥

सादं सुहं, तं वेदावेदि भुंजावेदि त्ति सादावेदणीयं । असादं दुक्खं, तं वेदावेदि भुंजावेदि त्ति असादावेदणीयं । एत्थ चोदओ भणदि– जदि सुह-दुक्खाइं कम्मेहिंतो होंति, तो कम्मेसु विणट्ठेसु सुह-दुक्खवज्जएण जीवेण होदव्वं, सुह-दुक्खणिबंधणकम्माभावा । सुह-दुक्खविवज्जिओ चेव होदि त्ति चे ण, जीवदव्वस्स णिस्सहावत्तादो अभावप्पसंगा । अह जइ दुक्खमेव कम्मजणियं, तो सादावेदणीयकम्माभावो होज्ज, तस्स फलाभावादो त्ति ? एत्थ परिहारो उच्चदे । तं जहा– जं किं पि दुक्खं णाम तं असादावेदणीयादो होदि, तस्स जीवसरूवत्ताभावा । भावे वा खीणकम्माणं पि दुक्खेण होदव्वं, णाण-दंसणाणमिव कम्मविणासे विणासाभावा । सुहं पुण ण कम्मादो

समाधान—बुद्धिमान् शिष्योंके अनुग्रहके लिये यह सूत्र कहा गया है ।

अब मन्दबुद्धि शिष्योंके अनुग्रहके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

सातावेदनीय और असातावेदनीय, ये दो ही वेदनीय कर्मकी प्रकृतियां हैं ॥ १८ ॥

साता यह नाम सुखका है, उस सुखको जो वेदन कराता है, अर्थात् भोग कराता है, वह सातावेदनीय कर्म है। असाता नाम दुखका है, उसे जो वेदन या अनुभवन कराता है उसे असातावेदनीय कर्म कहते हैं ।

शंका—यहांपर शंकाकार कहता है कि यदि सुख और दुख कर्मोंसे होते हैं तो कर्मोंके विनष्ट हो जाने पर जीवको सुख और दुखसे रहित हो जाना चाहिये, क्योंकि उसके सुख और दुखके कारणभूत कर्मोंका अभाव हो गया है। यदि कहा जाय कि कर्मोंके नष्ट हो जाने पर जीव सुखसे और दुखसे रहित ही हो जाता है, सो कह नहीं सकते, क्योंकि, जीवद्रव्यके निःस्वभाव हो जानेसे अभावका प्रसंग प्राप्त होता है। अथवा, यदि दुखको ही कर्म-जनित माना जाय तो सातावेदनीय कर्मका अभाव प्राप्त होगा, क्योंकि, फिर उसका कोई फल नहीं रहता है ?

समाधान—यहां पर उपर्युक्त आशंका का परिहार कहते हैं। वह इस प्रकार है—दुःख नामकी जो कोई भी वस्तु है वह असातावेदनीय कर्मके उदयसे होती है, क्योंकि, वह जीवका स्वरूप नहीं है। यदि जीवका स्वरूप माना जाय तो क्षीणकर्मा अर्थात् कर्मरहित जीवोंके भी दुःख होना चाहिये, क्योंकि, ज्ञान और दर्शनके समान कर्मके विनाश होनेपर दुखका विनाश नहीं होगा। किन्तु सुख कर्मसे उत्पन्न नहीं होता

---

१ सदसद्वेद्ये ॥ त. सू. ८, ८. यदुदयाद्देवादिगतिषु शारीरमानससुखप्राप्तिस्तत्सद्वेद्यं प्रशस्तं वेद्यं सद्वेद्यमिति । यत्फलं दुःखमनेकविधं तदसद्वेद्यमप्रशस्तं वेद्यमसद्वेद्यमिति । स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ८. महुलित्तखग्गधारालिहणं व दुहाउ वेअणिअं । ओसन्नं सुरमणुए सायमसायं तु तिरिय-निरएसु ॥ क. ग्रं. १२-१३.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

उप्पज्जदि, तस्स जीवसहावत्तादो फलाभावा। ण सादावेदणीयाभावो वि, दुक्खुवसम-हेउसुदव्वसंपादणे[1] तस्स[2] वावारादो। एवं संते सादावेदणीयस्स पोग्गलविवाइत्तं होइ त्ति णासंकणिज्जं, दुक्खुवसमेणुप्पण्णसुवत्थियकणस्स दुक्खाविणाभाविस्स उवयारेणेव लद्धसुहसण्णस्स जीवादो अपुधभूदस्स हेदुत्तणेण सुत्ते तस्स जीवविवाइत्तसुह-हेदुत्ताणमुवदेसादो। तो वि जीव-पोग्गलविवाइत्तं सादावेदणीयस्स पावेदि त्ति चे ण, इट्ठत्तादो। तहोवएसो णत्थि त्ति चे ण, जीवस्स अत्थित्तण्णहाणुववत्तीदो तहोवदेस-त्थित्तसिद्धीए। ण च सुह-दुक्खहेउदव्वसंपादयमण्णं कम्ममत्थि त्ति अणुवलंभादो।

जस्सोदएण जीवो सुहं व दुक्खं व दुविहमणुभवइ।
तस्सोदयक्खएण दु सुह-दुक्खविवज्जिओ होइ ॥ ७ ॥

ण च एदीए गाहाए सह विरोहो, सादावेदणीयादो उप्पण्णसुहाभावं पेक्खिऊण

है, क्योंकि, वह जीवका स्वभाव है, और इसीलिये वह कर्मका फल नहीं है। सुखको जीवका स्वभाव माननेपर सातावेदनीय कर्मका अभाव भी प्राप्त नहीं होता, क्योंकि, दुःख-उपशमनके कारणभूत सुद्रव्योंके सम्पादनमें सातावेदनीय कर्मका व्यापार होता है। इस व्यवस्थाके माननेपर सातावेदनीय प्रकृतिके पुद्गलविपाकित्व प्राप्त होगा, ऐसी भी आशंका नहीं करना चाहिये, क्योंकि, दुःखके उपशमसे उत्पन्न हुए, दुःखके अवि-नाभावी उपचारसे ही सुख संज्ञाको प्राप्त और जीवसे अपृथग्भूत ऐसे स्वास्थ्यके कणका हेतु होनेसे सूत्रमें सातावेदनीय कर्मके जीवविपाकित्वका और सुख-हेतुत्वका उपदेश दिया गया है। यदि कहा जाय कि उपर्युक्त व्यवस्थानुसार तो सातावेदनीय कर्मके जीवविपाकीपना और पुद्गलविपाकीपना प्राप्त होता है, सो भी कोई दोष नहीं, क्योंकि, यह बात हमें इष्ट है। यदि कहा जावे कि उक्त प्रकारका उपदेश प्राप्त नहीं है, सो भी नहीं, क्योंकि, जीवका अस्तित्व अन्यथा बन नहीं सकता है, इसलिये उस प्रकारके उप-देशके अस्तित्वकी सिद्धि हो जाती है। सुख और दुखके कारणभूत द्रव्योंका सम्पादन करनेवाला दूसरा कोई कर्म नहीं है, क्योंकि वैसा कोई कर्म पाया नहीं जाता।

जिसके उदयसे जीव सुख और दुख, इन दोनोंका अनुभव करता है, उसके उदयका क्षय होनेसे वह सुख और दुखसे रहित हो जाता है ॥ ७ ॥

पूर्वोक्त व्यवस्था माननेपर इस गाथाके साथ विरोध भी नहीं आता है, क्योंकि, सातावेदनीय कर्मके उदयसे उत्पन्न होने वाले सुखके अभावकी अपेक्षा उपर्युक्त गाथामें

१ आप्रतौ '-हेउव्वसंपादणे ' कप्रतौ ' हेउदव्वसंपादणे ' इति पाठः।

२ प्रतिषु ' तस्स वावारादो एवं संते सादावेदणीयस्स पोग्गलविवाइत्तं होइ त्ति णासंकणिज्जं ' इति पाठः। मप्रतौ तु स्वीकृतपाठः।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

तत्थ सुह-दुक्खाभावोवदेसादो। दोसु पदेसु एवकारो किमट्ठं कीरदे ? उत्तरोत्तरुत्तर-पयडीणमभावपदुप्पायणट्ठं।

मोहणीयस्स कम्मस्स अट्ठावीसं पयडीओ[1] ॥ १९ ॥

एदं संगहणयसुत्तं संगहिदासेसविसेसत्तादो मेहाविजणाणुग्गहकारी। संपहि मज्झिमबुद्धिजणाणुग्गहट्ठमुत्तरं सुत्तं भणदि—

जं तं मोहणीयं कम्मं तं दुविहं, दंसणमोहणीयं चारित्तमोहणीयं चेव[2] ॥ २० ॥

कधमेदम्हादो मोहणीयस्स कम्मस्स सव्वभेदा अवगम्मंति ? आइरिओवदेसादो। जेत्तिओ एदस्स सुत्तस्स अत्थो तं सव्वमाइरिया परूवेंति। तं परूविज्जमाणं मेहाविणो अवहारयंति। तदो एत्तियमेत्तसुत्तेण कज्जसिद्धीदो वित्थारपरूवणं तेसिमणत्थयमिदि[3]।

मंदबुद्धिजणाणुग्गहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

सुख और दुखके अभाव का उपदेश दिया गया है।

शंका—सूत्रमें दोनों पदों पर एवकार किसलिये किया है ?

समाधान—वेदनीय कर्मकी उत्तरोत्तर उत्तर-प्रकृतियोंका अभाव बतलानेके लिये दो बार एवकार पद दिया है।

मोहनीय कर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियां हैं ॥ १९ ॥

यह संग्रहनयाश्रित सूत्र समस्त विशेषों का संग्रह करनेसे मेधावीजनोंका अनुग्रह करनेवाला है।

अब मध्यम-बुद्धि जनोंके अनुग्रहके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

वह उपर्युक्त मोहनीय कर्म दो प्रकारका है—दर्शनमोहनीय और चारित्र-मोहनीय ॥ २० ॥

शंका—इस सूत्रसे मोहनीयकर्मके सर्व भेद कैसे जाने जाते हैं ?

समाधान—आचार्योंके उपदेशसे। इस सूत्रका जितना अर्थ है वह सब आचार्य प्ररूपण करते हैं। उस निरूपण किये गये अर्थको बुद्धिमान् शिष्य अवधारण कर लेते हैं। इसलिये इतने मात्र सूत्र द्वारा कार्यकी सिद्धि होनेसे बुद्धिमान् शिष्योंके लिये विस्तारसे निरूपण करना अनर्थक है।

अब मन्दबुद्धिजनोंके अनुग्रहके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

---

१ त. सू. ८, ५.   २ त. सू. ८, ९.

३ अ-आप्रत्योः 'तेसिमणण्णत्थयमिदि' इति पाठः।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

जं तं दंसणमोहणीयं कम्मं तं बंधादो एयविहं, तस्स संतकम्मं पुण तिविहं सम्मत्तं मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं चेदि[1] ॥ २१ ॥

दंसणं अत्तागम-पदत्थेसु रुई पच्चओ सद्धा फोसणमिदि एयट्ठो। तं मोहेदि विवरीयं कुणदि त्ति दंसणमोहणीयं। जस्स कम्मस्स उदएण अणत्ते अत्तबुद्धी, अणागमे आगमबुद्धी, अपयत्थे पयत्थबुद्धी, अत्तागमपयत्थेसु सद्धाए अत्थिरत्तं, दोसु वि सद्धा वा होदि तं दंसणमोहणीयमिदि उत्तं होदि। तं बंधादो एयविहं, मिच्छत्तादिपच्चएहि ढुक्कमाणाणं दंसणमोहणीयकम्मक्खंधाणमेगसहावाणमुवलंभा। बंधेण एयविहं दंसणमोहणीयं कधं संतादो तिविहत्तं पडिवज्जदे? ण एस दोसो, जंतएण[2] दलिज्जमाणकोद्दवेसु कोद्दव्व-तंदुलद्धतंदुलाणं व दंसणमोहणीयस्स अपुव्वादिकरणेहि दलियस्स

जो दर्शनमोहनीय कर्म है वह बन्धकी अपेक्षा एक प्रकारका है, किन्तु उसका सत्कर्म तीन प्रकारका है—सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, और सम्यग्मिथ्यात्व ॥ २१ ॥

दर्शन, रुचि, प्रत्यय, श्रद्धा, और स्पर्शन, ये सब एकार्थ-वाचक नाम हैं। आप्त या आत्मामें, आगम और पदार्थोंमें रुचि या श्रद्धाको दर्शन कहते हैं। उस दर्शनको जो मोहित करता है, अर्थात् विपरीत कर देता है, उसे दर्शनमोहनीय कर्म कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे अनाप्तमें आप्त-बुद्धि, और अपदार्थमें पदार्थ-बुद्धि होती है; अथवा आप्त, आगम और पदार्थोंमें श्रद्धानकी अस्थिरता होती है; अथवा दोनोंमें भी अर्थात् आप्त-अनाप्तमें, आगम-अनागममें और पदार्थ-अपदार्थमें श्रद्धा होती है, वह दर्शनमोहनीय कर्म है, यह अर्थ कहा गया है। वह दर्शनमोहनीय बंधकी अपेक्षा एक प्रकारका है, क्योंकि मिथ्यात्व आदि बंध-कारणोंके द्वारा आने वाले दर्शनमोहनीय कर्मके स्कन्धोंका एक स्वभाव पाया जाता है।

शंका—बंधसे एक प्रकारका दर्शनमोहनीय कर्म सत्त्वकी अपेक्षा तीन प्रकारका कैसे हो जाता है?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, जांतेसे (चक्कीसे) दले गये कोदोंमें कोदों, तन्दुल और अर्ध-तन्दुल, इन तीन विभागोंके समान अपूर्वकरण आदि परिणामोंके द्वारा दले गये दर्शनमोहनीयके त्रिविधता पाई जाती है।

---

१ त. सू. ८, ९. तत्र दर्शनमोहनीयं त्रिभेदं सम्यक्त्वं मिथ्यात्वं तदुभयमिति। तद्बन्धं प्रत्येकं भूत्वा सत्कर्मापेक्षया त्रिधा व्यवतिष्ठते। स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ९. दंसणमोहं तिविहं सम्मं मीसं तहेव मिच्छत्तं। सुद्धं अद्धविसुद्धं अविसुद्धं तं हवइ कमसो ॥ क. ग्रं. १, १४.

२ जंतेण कोद्दवं वा पढमुवसमसम्मभावजंतेण। मिच्छं दव्वं च तिधा असंखगुणहीणदव्वकमा ॥ गो. क. २६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिविहत्तुवलंभा । तत्थ अत्तागम-पदत्थसद्धाए जस्सोदएण सिथिलत्तं होदि, तं सम्मत्तं[1] । कधं तस्स सम्मत्तववएसो ? सम्मत्तसहचरिदोदयत्तादो उवयारेण सम्मत्तमिदि उच्चदे । जस्सोदएण अत्तागम-पयत्थेसु असद्धा होदि, तं मिच्छत्तं[2] । जस्सोदएण अत्तागम-पयत्थेसु तप्पडिवक्खेसु य अक्कमेण सद्धा उप्पज्जदि तं सम्मामिच्छत्तं[3] । संदेहो कुदो जायदे ? सम्मत्तोदयादो; सव्वसंदेहो मूढत्तं च मिच्छत्तोदयादो । दंसणमोहणीयं संतदो तिविहमिदि कुदो णव्वदे ? आगमदो लिंगदो य[4] । विवरीदो अहिणिवेसो मूढत्तं संदेहो

उनमें जिस कर्मके उदयसे आप्त, आगम और पदार्थोंकी श्रद्धामें शिथिलता होती है वह सम्यक्त्वप्रकृति है ।

शंका— उस प्रकृतिका ' सम्यक्त्व ' ऐसा नाम कैसे हुआ ?

समाधान— सम्यग्दर्शनके सहचारित उदय होनेके कारण उपचारसे ' सम्यक्त्व ' ऐसा नाम कहा जाता है ।

जिस कर्मके उदयसे आप्त, आगम और पदार्थोंमें अश्रद्धा होती है, वह मिथ्यात्व प्रकृति है । जिस कर्मके उदयसे आप्त, आगम और पदार्थोंमें, तथा उनके प्रतिपक्षियोंमें अर्थात् कुदेव, कुशास्त्र और कुतत्त्वोंमें, युगपत् श्रद्धा उत्पन्न होती है वह सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति है ।

शंका— आप्त, आगम और पदार्थोंमें संदेह किस कर्मके उदयसे उत्पन्न होता है ?

समाधान— सम्यग्दर्शनका घात नहीं करनेवाला संदेह सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयसे उत्पन्न होता है । किन्तु सर्व संदेह, अर्थात् सम्यग्दर्शनका सम्पूर्ण रूपसे घात करनेवाला संदेह, और मूढ़त्व मिथ्यात्व कर्मके उदयसे उत्पन्न होता है ।

शंका— दर्शनमोहनीय कर्म सत्त्वकी अपेक्षा तीन प्रकारका है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—आगमसे और लिंग अर्थात् अनुमानसे जाना जाता है कि दर्शनमोहनीय कर्म सत्त्वकी अपेक्षा तीन प्रकारका है । विपरीत अभिनिवेश, मूढ़ता और

१ तदेव सम्यक्त्वं शुभपरिणामनिरुद्धस्वरसं यदौदासीन्येनावस्थितमात्मनः श्रद्धानं न निरुणद्धि, तद्वेदयमानः पुरुषः सम्यग्दृष्टिरित्यभिधीयते । स. सि.; त. रा. वा. ८, ९.

२ यस्योदयात्सर्वज्ञप्रणीतमार्गपराङ्मुखस्तत्त्वार्थश्रद्धाननिरुत्सुको हिताहितविचारासमर्थो मिथ्यादृष्टिर्भवति तन्मिथ्यात्वम् । स. सि.; त. रा. वा. ८, ९.

३ तदेव मिथ्यात्वं प्रक्षालनविशेषात् क्षीणाक्षीणमदशक्तिकोद्रववत्सामिद्धस्वरसं तदुभयमित्याख्यायते सम्यग्मिथ्यात्वमिति यावत् । स. सि.; त. रा. वा. ८, ९.

४ प्रतिषु ' लिंगयदो ' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि मिच्छत्तस्स लिंगाइं। आगमणागमेसु समभावो सम्मामिच्छत्तलिंगं। अत्तागम-पयत्थसद्धाए सिथिलत्तं सद्धाहाणी वि सम्मत्तलिंगं।

जं तं चारित्तमोहणीयं कम्मं तं दुविहं, कसायवेदणीयं चेव णोकसायवेदणीयं चेव[1] ॥ २२ ॥

पापक्रियानिवृत्तिश्चारित्रम्। घादिकम्माणि पावं। तेसिं किरिया मिच्छत्तासंजम-कसाया। तेसिमभावो चारित्तं। तं मोहेइ आवारेदि त्ति चारित्तमोहणीयं। तं च दुविहं कसाय-णोकसायभेदेण। कुदो दुविहत्तसिद्धी? कसाय-णोकसाएहिंतो पुधभूदतइज्ज-कज्जाणुवलंभादो। एदं संगहणयसुत्तं, संगहिदासेसविसेसत्तादो। पज्जवट्ठियसत्ताणु-ग्गहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि —

जं तं कसायवेदणीयं कम्मं तं सोलसविहं, अणंताणुबंधिकोह-माण-माया-लोहं, अपच्चक्खाणावरणीयकोह-माण-माया-लोहं, पच्च-

---

संदेह, ये मिथ्यात्वके चिन्ह हैं। आगम और अनागमोंमें सम-भाव होना सम्यग्मिथ्यात्वका चिन्ह है। आप्त, आगम और पदार्थोंकी श्रद्धामें शिथिलता और श्रद्धाकी हीनता होना सम्यक्त्वप्रकृतिका चिन्ह है।

जो चारित्रमोहनीय कर्म है वह दो प्रकारका है— कषायवेदनीय और नो-कषायवेदनीय ॥ २२ ॥

पापरूप क्रियाओंकी निवृत्तिको चारित्र कहते हैं। घातिया कर्मोंको पाप कहते हैं। मिथ्यात्व, असंयम और कषाय, ये पापकी क्रियाएं हैं। इन पाप-क्रियाओंके अभावको चारित्र कहते हैं। उस चारित्रको जो मोहित करता है, अर्थात् आच्छादित करता है, उसे चारित्रमोहनीय कहते हैं। वह चारित्रमोहनीय कर्म कषायवेदनीय और नोकषाय-वेदनीयके भेदसे दो प्रकारका है।

शंका—चारित्रमोहनीय कर्म दो प्रकारका ही है, यह कैसे सिद्ध होता है?

समाधान—चूंकि, कषाय और नोकषायोंसे पृथग्भूत तीसरे प्रकारका कोई कार्य नहीं पाया जाता, इससे जाना जाता है कि चारित्रमोहनीय कर्म दो प्रकारका है।

यह सूत्र संग्रहनयके आश्रित है, क्योंकि, अपने समस्त विशेषोंका संग्रह करनेवाला है।

अब पर्यायार्थिक नयवाले जीवोंके अनुग्रहके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

जो कषायवेदनीय कर्म है वह सोलह प्रकारका है— अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ; अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ; प्रत्याख्याना-

---

१ त. सू. ८, ९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्खाणावरणीयकोह-माण-माया-लोहं, कोहसंजलणं, माणसंजलणं, माया-संजलणं लोहसंजलणं चेदि[1] ॥ २३ ॥

दुःखशस्यं कर्मक्षेत्रं कृषंति फलवत्कुर्वन्तीति कषायाः क्रोध-मान-माया-लोभाः। क्रोधो रोषः संरम्भ इत्यनर्थान्तरम्। मानो गर्वः स्तब्धत्वमित्येकोऽर्थः। माया निकृति-र्वंचना अनृजुत्वमिति पर्यायशब्दाः। लोभो गृद्धिरित्येकोऽर्थः। अनन्तान् भवाननुबद्धुं[2] शीलं येषां ते अनन्तानुबन्धिनः। अनन्तानुबन्धिनश्च ते क्रोध-मान-माया-लोभाश्च अनन्तानुबन्धिक्रोध-मान-माया-लोभाः। जेहि कोह माण-माया-लोहेहि अविणट्ठसरूवेहि सह जीवो अणंते भवे हिंडदि तेसिं कोह-माण-माया-लोहाणं अणंताणुबंधी सण्णा त्ति उत्तं होदि[3]। एदेसिमुदयकालो अंतोमुहुत्तमेत्तो चेय, ट्ठिदी चालीससागरोवमकोडा-कोडिमेत्ता चेय। तदो एदेसिमणंतभवाणुबंधित्तं ण जुज्जदि त्ति ? ण एस दोसो, एदेहि जीवम्हि जणिदसंसकारस्स अणंतेसु भवेसु अवट्ठाणब्भुवगमादो। अधवा अणंतो अणुबंधो

वरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ; क्रोधसंज्वलन, मानसंज्वलन, मायासंज्वलन और लोभसंज्वलन ॥ २३ ॥

जो दुखरूप धान्यको उत्पन्न करनेवाले कर्मरूपी खेतको कर्षण करते हैं, अर्थात् फलवाले करते हैं, वे क्रोध, मान, माया और लोभ कषाय हैं। क्रोध, रोष और संरम्भ, इनके अर्थमें कोई अन्तर नहीं है। मान, गर्व और स्तब्धत्व, ये एकार्थ-वाचक नाम हैं। माया, निकृति, वंचना और अनृजुता, ये पर्याय-वाची शब्द हैं। लोभ और गृद्धि, ये दोनों एकार्थक नाम हैं। अनन्त भवोंको बांधना ही जिनका स्वभाव है वे अनन्तानुबन्धी कहलाते हैं। अनन्तानुबन्धी जो क्रोध, मान, माया, लोभ होते हैं वे अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ कहलाते हैं। जिन अविनष्ट स्वरूपवाले, अर्थात् अनादि-परम्परागत क्रोध, मान, माया और लोभके साथ जीव अनन्त भवमें परिभ्रमण करता है, उन क्रोध, मान, माया और लोभ कषायोंकी 'अनन्तानुबन्धी' संज्ञा है, यह अर्थ कहा गया है।

शंका—उन अनन्तानुबन्धी क्रोधादि कषायोंका उदयकाल अन्तर्मुहूर्तमात्र ही है, और स्थिति चालीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण है। अतएव इन कषायोंके अनन्त-भवानुबन्धिता घटित नहीं होती है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, इन कषायोंके द्वारा जीवमें उत्पन्न हुए संस्कारका अनन्त भवोंमें अवस्थान माना गया है। अथवा, जिन क्रोध, मान, माया,

---

१ त. सू. ८, ९, २ अ-आप्रत्योः ' भवाननुबंधं ' कप्रतौ ' भवाननुबंधुं ' इति पाठः।

३ अनन्तसंसारकारणत्वान्मिथ्यादर्शनमनन्तं तदनुबन्धिनोऽनन्तानुबन्धिनः क्रोधमानमायालोभाः। स. सि.; त. रा. वा. ८, ९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जेसिं कोह-माण-माया-लोहाणं ते अणंताणुबंधिकोह-माण-माया-लोहा। एदेहिंतो वड्डिद-संसारो अणंतेसु भवेसु अणुबंधं ण छंडेदि त्ति अणंताणुबंधो संसारो। सो जेसिं ते अणंताणुबंधिणो कोह-माण माया-लोहा। एदे चत्तारि वि सम्मत्त-चारित्ताणं विरोहिणो, दुविहसत्तिसंजुत्तत्तादो। तं कुदो णव्वदे? गुरूवदेसादो जुत्तीदो य। का एत्थ जुत्ती? उच्चदे– ण ताव एदे दंसणमोहणिज्जा[1], सम्मत्त-मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्तेहि चेव आवरियस्स सम्मत्तस्स आवरणे फलाभावादो। ण चारित्तमोहणिज्जा वि, अपच्चक्खाणावरणादीहि आवरिदचारित्तस्स आवरणे फलाभावा। तदो एदेसिमभावो चेय। ण च अभावो, सुत्तम्हि एदेसिमत्थित्तपदुप्पायणादो। तम्हा एदेसिमुदएण सासणगुणुप्पत्तीए

लोभोंका अनुबन्ध (विपाक या सम्बन्ध) अनन्त होता है वे अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ कहलाते हैं। इनके द्वारा वृद्धिंगत संसार अनन्त भवोंमें अनुबन्धको नहीं छोड़ता है, इसलिये 'अनन्तानुबन्ध' यह नाम संसारका है। वह संसारात्मक अनन्तानुबन्ध जिनके होता है वे अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ हैं। ये चारों ही कषाय सम्यक्त्व और चारित्रके विरोधक हैं, क्योंकि, वे सम्यक्त्व और चारित्र, इन दोनोंको घातनेवाली दो प्रकारकी शक्तिसे संयुक्त होते हैं।

शंका––यह कैसे जाना जाता है?

समाधान— गुरुके उपदेशसे और युक्तिसे जाना जाता है कि अनन्तानुबन्धी कषायोंकी शक्ति दो प्रकारकी होती है।

शंका––अनन्तानुबन्धी कषायोंकी शक्ति दो प्रकारकी है, इस विषयमें क्या युक्ति है?

समाधान––उपर्युक्त शंकाका उत्तर कहते हैं— सम्यक्त्व और चारित्र, इन दोनोंको घात करनेवाले ये अनन्तानुबन्धी क्रोधादिक न तो दर्शनमोहनीयस्वरूप माने जा सकते हैं, क्योंकि, सम्यक्त्वप्रकृति, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वके द्वारा ही आवरण किये जानेवाले सम्यग्दर्शनके आवरण करनेमें फलका अभाव है। और न उन्हें चारित्रमोहनीयस्वरूप भी माना जा सकता है, क्योंकि, अप्रत्याख्यानावरण आदि कषायोंके द्वारा आवरण किये गये चारित्रके आवरण करनेमें फलका अभाव है। इसलिये उपर्युक्त प्रकारसे इन अनन्तानुबन्धी क्रोधादि कषायोंका अभाव ही सिद्ध होता है। किन्तु उनका अभाव है नहीं, क्योंकि, सूत्रमें इनका अस्तित्व पाया जाता है। इसलिये इन अनन्तानुबन्धी क्रोधादि कषायोंके उदयसे सासादन भावकी उत्पत्ति अन्यथा हो नहीं सकती है,

---

१ प्रतिषु 'दंसणमोहणीय–' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अण्णहाणुववत्तीदो सिद्धं दंसणमोहणीयत्तं चरित्तमोहणीयत्तं च। ण चाणंताणुबंधिचउक्कवावारो चारित्ते णिप्फलो, अपच्चक्खाणादिअणंतोदयपवाहकारणस्स णिप्फलत्तविरोहा। प्रत्याख्यानं संयमः, न प्रत्याख्यानमप्रत्याख्यानमिति देशसंयमः। पच्चक्खाणस्स अभावो असंजमो संजमासंजमो वि; तत्थ असंजमं मोत्तूण अपच्चक्खाणसद्दो संजमासंजमे चेव वट्टदि त्ति कधं णव्वदे? आवरणसद्दपओगादो। ण च कम्मेहि असंजमो आवरिज्जदि, चारित्तावरणस्स कम्मस्स अचारित्तावरणत्तप्पसंगादो। पारिसेसादो अपच्चक्खाणसद्दो संजमासंजमो चेय। अथवा नञीयमीषदर्थे वर्तते। तथा च न प्रत्याख्यानमित्यप्रत्याख्यानं संयमासंयम इति सिद्धम्। न च नञः ईषदर्थे वृत्तिरसिद्धा[1], न रक्ता न श्वेता युवतिनखाः ताम्राः कुरवका[2] इत्यत्रान्यथा स्ववचनविरोधप्रसंगाद्, अनुदरी कुमारीत्यत्र उदराभावतः कुमार्य्याः मरणप्रसंगाच्च। अत्रोपयोगी श्लोकः—

इस अन्यथानुपपत्तिसे उनके दर्शनमोहनीयता और चारित्र-मोहनीयता, अर्थात् सम्यक्त्व और चारित्रको घात करनेकी शक्तिका होना, सिद्ध होता है। तथा, चारित्रमें अनन्तानुबन्धि-चतुष्कका व्यापार निष्फल भी नहीं है, क्योंकि, अप्रत्याख्यानादिके अनन्त उदयरूप प्रवाहके कारणभूत अनन्तानुबन्धी कषायके निष्फलत्वका विरोध है।

प्रत्याख्यान संयमको कहते है। जो प्रत्याख्यानरूप नहीं है, वह अप्रत्याख्यान है। इस प्रकार 'अप्रत्याख्यान' यह शब्द देशसंयमका वाचक है।

शंका—प्रत्याख्यानका अभाव असंयम है और संयमासंयम (देशसंयम) भी है। उनमें असंयमको छोड़कर अप्रत्याख्यान शब्द केवल संयमासंयमके अर्थमें ही रहता है, यह कैसे जाना जाता है?

समाधान—आवरण शब्दके प्रयोगसे जाना जाता है कि अप्रत्याख्यान शब्द केवल संयमासंयमके अर्थमें रहता है। कर्मोंके द्वारा असंयमका आवरण तो किया नहीं जाता है, अन्यथा चारित्रावरण कर्मके अचारित्रावरणत्वका प्रसंग आजायगा। अतः पारिशेषन्यायसे अप्रत्याख्यान शब्दका अर्थ संयमासंयम ही है। अथवा नञ्जन्य पद ईषत् (अल्प) अर्थमें वर्तमान है। इसलिये जो प्रत्याख्यान नहीं वह अप्रत्याख्यान अर्थात् संयमासंयम है, यह बात सिद्ध हुई। नञ् पदकी ईषत् अर्थमें वृत्ति असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, 'इस युवतिके नख न लाल हैं और न सफेद हैं, किन्तु, ताम्र-वर्णवाले कुरवकके समान हैं' इस प्रयोगमें अन्यथा स्ववचन-विरोधका प्रसंग प्राप्त होगा, तथा 'अनुदरी कुमारी' यहां पर उदरके अभावसे कुमारीके मरणका प्रसंग प्राप्त होगा। इस विषयमें यह उपयोगी श्लोक है—

१ प्रतिषु 'वृत्तेरसिद्धा' इति पाठः।

२ प्रतिषु 'युवतिनखा तांत्राह्निरवकाः' मप्रतौ 'युवतिनखतांत्रांकुरवकाः' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिषेधयति समस्तं प्रसक्तमर्थं तु जगति नोशब्दः ।
स पुनस्तदवयवे वा तस्मादर्थान्तरे वा स्यात् ॥ ८ ॥

अप्रत्याख्यानं संयमासंयमः । तमावृणोतीति अप्रत्याख्यानावरणीयम्[१] । तं चउव्विहं कोह-माण-माया-लोहभेएण । पच्चक्खाणं संजमो महव्वयाइं ति एयट्ठो । पच्चक्खाणमावरेंति त्ति पच्चक्खाणावरणीया कोह-माण माया-लोहा[२] । सम्यक् ज्वलतीति संज्वलनम् । किमत्र सम्यक्त्वम् ? चारित्रेण सह ज्वलनम् । चारित्तमविणासेंता उदयं कुणंति त्ति जं उत्तं होदि[३] । चारित्तमविणासेंताणं संजुलणाणं कधं चारित्तावरणत्तं जुज्जदे ? ण, संजमम्हि मलमुप्पाइय जहाक्खादचारित्तुप्पत्तिपडिबंधयाणं चारित्तावरणत्ताविरोहा । ते वि चत्तारि कोह-माण-माया-लोहभेदेण । कोहाइसु पादेक्कं संजुलणसद्दुचा-

---

जगत्‌में 'न' यह शब्द प्रसक्त समस्त अर्थका तो प्रतिषेध करता है । किन्तु वह प्रसक्त अर्थके अवयव अर्थात् एक देशमें, अथवा उससे भिन्न अर्थमें रहता है, अर्थात् उसका बोध कराता है ॥ ८ ॥

अप्रत्याख्यान संयमासंयमका नाम है । उस अप्रत्याख्यानको जो आवरण करता है उसे अप्रत्याख्यानावरणीय कहते हैं । वह क्रोध, मान, माया और लोभके भेदसे चार प्रकारका है । प्रत्याख्यान, संयम और महाव्रत, ये तीनों एक अर्थवाले नाम हैं । प्रत्याख्यानको जो आवरण करते हैं वे प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया और लोभकषाय कहलाते हैं । जो सम्यक् प्रकार जलता है, उसे संज्वलन कषाय कहते हैं ।

शंका—इस संज्वलन कषायमें सम्यक्‌पना क्या है ?

समाधान—चारित्रके साथ जलना ही इसका सम्यक्‌पना है । अर्थात्, चारित्रको नहीं विनाश करते हुए ये कषाय उदयको प्राप्त होते हैं, यह अर्थ कहा गया है ।

शंका—चारित्रको नहीं विनाश करनेवाले संज्वलन कषायोंके चारित्रावरणता कैसे बन सकती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, ये संज्वलन कषाय संयममें मलको उत्पन्न करके यथाख्यात चारित्रकी उत्पत्तिके प्रतिबंधक होते हैं, इसलिये इनके चारित्रावरणता माननेमें कोई विरोध नहीं है ।

ये संज्वलन कषाय भी क्रोध, मान, माया और लोभके भेदसे चार प्रकारके हैं ।

---

१ यदुदयाद्देशविरतिं संयमासंयमाख्यामल्पामपि कर्तुं न शक्नोति, ते देशप्रत्याख्यानमावृण्वन्तोऽप्रत्याख्यानावरणाः क्रोधमानमायालोभाः । स. सि.; त. रा. वा. ८, ९.

२ यदुदयाद्विरतिं कृत्स्नां संयमाख्यां न शक्नोति कर्तुं ते कृत्स्नं प्रत्याख्यानमावृण्वन्तः प्रत्याख्यानावरणाः क्रोधमानमायलोभाः । स. सि.; त. रा. वा. ८, ९.

३ समेकीभावे वर्तते । संयमेन सहावस्थानादेकीभूय ज्वलन्ति संयमो वा ज्वलत्येषु सत्स्वपीति संज्वलनाः क्रोधमानमायालोभाः । स. सि.; त. रा. वा. ८, ९.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

रणं किमट्ठं ? पच्चक्खाणापच्चक्खाणावरणं व संजलणाणं बंधोदयाभावं पडि पच्चासत्ती णत्थि त्ति जाणावणट्ठं ।

जं तं णोकसायवेदणीयं कम्मं तं णवविहं, इत्थिवेदं पुरिसवेदं णवुंसयवेदं हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगंछा चेदि[1] ॥ २४ ॥

एत्थ णोसद्दो देसपडिसेहओ घेत्तव्वो, अण्णहा एदेसिमकसायत्तप्पसंगादो ।

शंका—क्रोधादिकोंमें प्रत्येक पदके साथ संज्वलन शब्दका उच्चारण किसलिये किया गया है ?

समाधान— प्रत्याख्यानावरण और अप्रत्याख्यानावरण कषायोंके समान संज्वलन कषायोंके बंध और उदयके अभावके प्रति प्रत्यासत्ति नहीं है, इस बातके बतलानेके लिये सूत्रमें क्रोधादि प्रत्येक पदके साथ संज्वलन शब्दका उच्चारण किया गया है ।

विशेषार्थ—सूत्रमें क्रोधादि प्रत्येक पदके साथ संज्वलन शब्दके उच्चारणका अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार चतुर्थ गुणस्थानमें अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ, इन चारों कषायोंकी एक साथ ही बंध-व्युच्छित्ति और एक साथ ही उदय-व्युच्छित्ति होती है; तथा जिस प्रकार पंचम गुणस्थानमें प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ, इन चारों कषायोंकी एक साथ ही बंध-व्युच्छित्ति और एक साथ ही उदय-व्युच्छित्ति होती है, उस प्रकारसे नवमें गुणस्थानमें क्रोधादि चारों संज्वलन कषायोंकी एक साथ न तो बंध-व्युच्छित्ति ही होती है और न उदय-व्युच्छित्ति ही । किन्तु पहले वहांपर क्रोधसंज्वलनकी बंधसे व्युच्छित्ति होती है, पुनः मानसंज्वलनकी, पुनः माया-संज्वलनकी, और सबसे अन्तमें लोभसंज्वलनकी, बंध-व्युच्छित्ति होती है । यही क्रम इनकी उदय-व्युच्छित्तिका भी है । विशेषता केवल यह है कि सूक्ष्म-लोभसंज्वलन कषायकी उदय-व्युच्छित्ति दशवें गुणस्थानके अन्तमें होती है । अतएव यह सिद्ध हुआ कि प्रत्याख्यानावरण और अप्रत्याख्यानावरण कषायोंके समान संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभकषायकी, बंध-व्युच्छित्ति और उदय-व्युच्छित्तिकी अपेक्षा, प्रत्यासत्ति या समानता नहीं है । इसी विभिन्नताके स्पष्टीकरणके लिए सूत्रकारने सूत्रमें क्रोधादि प्रत्येक पदके साथ संज्वलन शब्दका प्रयोग किया है ।

जो नोकषायवेदनीय कर्म है वह नौ प्रकारका है—स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा ॥ २४ ॥

यहां पर, अर्थात् नोकषाय शब्दमें प्रयुक्त नो शब्द, एकदेशका प्रतिषेध करनेवाला ग्रहण करना चाहिये, अन्यथा इन स्त्रीवेदादि नवों कषायोंके अकषायताका प्रसंग प्राप्त होगा ।

१ त. सू. ८, ९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होदु चे ण, अकसायाणं चारित्तावरणत्तविरोहा। ईषत्कषायो नोकषाय इति सिद्धम्। अत्रोपयोगी श्लोकः—

(भावस्तत्परिणामो द्विप्रतिषेधस्तदैक्यगमनार्थः।
नो तद्देशविशेषप्रतिषेधोऽन्यः स्व-परयोगात्॥ ९ ॥)

कसाएहिंतो णोकसायाणं कधं थोवत्तं? ट्ठिदीहिंतो अणुभागदो उदयदो य। उदयकालो णोकसायाणं कसाएहिंतो बहुओ उवलब्भदि त्ति णोकसाएहिंतो कसायाणं थोवत्तं किण्णेच्छिज्जदे? ण, उदयकालमहल्लत्तणेण चारित्तविणासिकसाएहिंतो[1] तम्मल-फलकम्माणं महल्लत्ताणुववत्तीदो। (स्तृणाति आच्छादयति दोषैरात्मानं परं चेति स्त्री[2]। पुरुकर्मणि शेते प्रमादयतीति पुरुषः।) न पुमान्न स्त्री नपुंसकः। एदस्स अहिप्पाओ—

शंका—होने दो, क्या हानि है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, अकषायोंके चारित्रको आवरण करनेका विरोध है।

इस प्रकार ईषत् कषायको नोकषाय कहते हैं, यह सिद्ध हुआ। इस विषयमें यह उपयोगी श्लोक है—

भाव वस्तुके परिणामको कहते हैं। दो वार प्रतिषेध उसी वस्तुकी एकताका ज्ञान कराता है। 'नो' यह शब्द स्व और परके योगसे विवक्षित वस्तुके एकदेशका प्रतिषेधक और विधायक होता है॥ ९॥

शंका—कषायोंसे नोकषायोंके अल्पपना कैसे है?

समाधान—स्थितियोंकी, अनुभागकी और उदयकी अपेक्षा कषायोंसे नोकषायोंके अल्पता पाई जाती है।

शंका—नोकषायोंका उदय-काल कषायों की अपेक्षा बहुत पाया जाता है, इसलिये नोकषायोंकी अपेक्षा कषायोंके अल्पपना क्यों नहीं मान लेते हैं?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उदय-काल की अधिकता होनेसे चारित्र-विनाशक कषायोंकी अपेक्षा चारित्रमें मलको उत्पन्न करनेरूप फलवाले कर्मोंके महत्ता नहीं बन सकती है।

जो दोषोंके द्वारा अपने आपको और परको आच्छादित करती है उसे स्त्री कहते हैं। जो महान् कर्मोंमें शयन करता है, या प्रमत्त होता है उसे पुरुष कहते हैं। जो न पुरुषरूप हो, और न स्त्रीरूप हो उसे नपुंसक कहते हैं। इस उपर्युक्त कथनका

१ कप्रतौ 'कसाएहिंतो बहुओ' इति पाठः।

२ यदुदयात्स्त्रैणान् भावान् प्रतिपद्यते स स्त्रीवेदः। स. सि. ८, ९. यस्योदयात् स्त्रैणान् भावान् मार्दवास्फुटत्वक्लैब्यमदनावेशनेत्रविभ्रमास्फालनसुखपुंस्कामादीन् प्रतिपद्यते स स्त्रीवेदः। त. रा. वा. ८, ९. छादयदि सयं दोसेण यदो छाददि परं वि दोसेण। छादणसीला जम्हा तम्हा सा वण्णिया इत्थी। गो. जी. २७३.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

जेसिं कम्मक्खंधाणमुदएण पुरुसम्मि आकंखा उप्पज्जइ तेसिमित्थिवेदो त्ति सण्णा। जेसिमुदएण महेलियाए उवरि आकंखा उप्पज्जइ तेसिं पुरिसवेदो त्ति सण्णा[1]। जेसिमुदएण इट्टावागग्गिसारिच्छेण दोसु वि आकंखा उप्पज्जइ तेसिं णउंसगवेदो त्ति सण्णा[2]। हसनं हासः। जस्स कम्मक्खंधस्स उदएण हस्सणिमित्तो जीवस्स रागो उप्पज्जइ, तस्स कम्मक्खंधस्स हस्सो त्ति सण्णा[3], कारणे कज्जुवयारादो। रमणं रतिः, रम्यते अनया इति वा रतिः। जेसिं कम्मक्खंधाणमुदएण दव्व-खेत्त-काल-भावेसु रदी समुप्पज्जइ, तेसिं रदि त्ति सण्णा[4]। दव्व-खेत्त-काल-भावेसु जेसिमुदएण जीवस्स अरई समुप्पज्जइ तेसिमरदि त्ति सण्णा[5]। शोचनं शोकः, शोचयतीति वा शोकः। जेसिं कम्मक्खंधाणमुदएण जीवस्स सोगो समुप्पज्जइ तेसिं सोगो त्ति सण्णा[6]। भीतिर्भयम्। जेहिं कम्मक्खंधेहिं उदयमागदेहि जीवस्स भयमुप्पज्जइ तेसिं भयमिदि सण्णा[7], कारणे

अभिप्राय यह है—जिन कर्म-स्कन्धोंके उदयसे पुरुषमें आकांक्षा उत्पन्न होती है उन कर्म-स्कन्धोंकी 'स्त्रीवेद' यह संज्ञा है। जिन कर्म-स्कन्धोंके उदयसे स्त्रीके ऊपर आकांक्षा उत्पन्न होती है उनकी 'पुरुषवेद' यह संज्ञा है। जिन कर्म-स्कन्धोंके उदयसे ईटोंके अवाकी अग्निके समान स्त्री और पुरुष, इन दोनों पर भी आकांक्षा उत्पन्न होती है उनकी 'नपुंसक वेद' यह संज्ञा है। हंसनेको हास्य कहते हैं। जिस कर्म-स्कन्धके उदयसे जीवके हास्य-निमित्तक राग उत्पन्न होता है उस कर्म-स्कन्धकी कारणमें कार्यके उपचारसे 'हास्य' यह संज्ञा है। रमनेको रति कहते हैं, अथवा जिसके द्वारा जीव विषयोंमें आसक्त होकर रमता है उसे रति कहते हैं। जिन कर्म-स्कन्धोंके उदयसे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावोंमें राग-भाव उत्पन्न होता है, उनकी 'रति' यह संज्ञा है। जिन कर्म-स्कन्धोंके उदयसे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावोंमें जीवके अरुचि उत्पन्न होती है उनकी 'अरति' यह संज्ञा है। सोच करनेको शोक कहते हैं। अथवा जो विषाद उत्पन्न करता है, उसे शोक कहते हैं। जिन कर्म-स्कन्धोंके उदयसे जीवके शोक उत्पन्न होता है उनकी 'शोक' यह संज्ञा है। भीतिको भय कहते हैं। उदयमें आये हुए जिन कर्म-स्कन्धोंके द्वारा जीवके भय उत्पन्न होता है उनकी कारणमें कार्यके उपचारसे 'भय'

१ यस्योदयात्पौंस्नान्भावानास्कन्दति स पुंवेदः। स. सि.; त. रा. वा. ८, ९. पुरुगुणभोगे सेदे करोदि लोयम्मि पुरुगुणं कम्मं। पुरुउत्तमो य जम्हा तम्हा सो वण्णिओ पुरिसो ॥ गो. जी. २७२.

२ यदुदयान्नापुंसकान् भावानुपव्रजति स नपुंसकवेदः। स. सि. त.; रा. वा. ८, ९. णेवित्थी णेव पुमं णउंसओ उहयलिंगवदिरित्तो। इट्टावग्गिसमाणगवेदणगरुओ कलुसचित्तो ॥ गो. जी. २७४.

३ यस्योदयाद्धास्याविर्भावस्तद्धास्यम्। स. सि.; त. रा. वा. ८, ९.

४ यदुदयाद्विषयादिष्वौत्सुक्यं सा रतिः। स. सि.; त. रा. वा. ८, ९.

५ अरतिस्तद्विपरीता। स. सि.; त. रा. वा. ८, ९.

६ यद्विपाकाच्छोचनं स शोकः। स. सि.; त. रा. वा. ८, ९.

७ यदुदयादुद्वेगस्तद्भयम्। स. सि.; त. रा वा. ८, ९.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

कज्जुवयारादो । जुगुप्सनं जुगुप्सा । जेसिं कम्माणमुदएण दुगुंछा उप्पज्जदि तेसिं दुगुंछा इदि सण्णा[1] । एदेसिं कम्माणमत्थित्तं कुदो णव्वदे ? पच्चक्खेणुवलंभमाण-अण्णाणादंसणादिकज्जण्णहाणुववत्तीदो ।

आउगस्स कम्मस्स चत्तारि पयडीओ[2] ॥ २५ ॥

एदं दव्वट्ठियणयसुत्तं, संगहिदासेसविसेसत्तादो । कधमेदम्हादो सव्वत्थावगई ? एदमाधारभूदं काऊण एदस्स सयलत्थपदुप्पादयआइरियादो[3] । पज्जवट्ठियणयजणाणु-ग्गहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

णिरयाऊ तिरिक्खाऊ मणुस्साऊ देवाऊ चेदि[4] ॥ २६ ॥

जेसिं कम्मक्खंधाणमुदएण जीवस्स उड्ढगमणसहावस्स णेरइयभवम्मि अवट्ठाणं होदि तेसिं णिरयाउवमिदि सण्णा[5] । जेसिं कम्मक्खंधाणमुदएण तिरिक्खभवस्स अवट्ठाणं

यह संज्ञा है । ग्लानि होनेको जुगुप्सा कहते हैं । जिन कर्मोंके उदयसे ग्लानि उत्पन्न होती है उनकी 'जुगुप्सा' यह संज्ञा है ।

शंका—इन कर्मोंका अस्तित्व कैसे जाना जाता है ?

समाधान—प्रत्यक्षके द्वारा पाये जानेवाले अज्ञान, अदर्शन आदि कार्योंकी उत्पत्ति अन्यथा हो नहीं सकती है, इस अन्यथानुपपत्तिसे उक्त कर्मोंका अस्तित्व जाना जाता है ।

आयुकर्मकी चार प्रकृतियां हैं ॥ २५ ॥

यह संग्रहनयाश्रित सूत्र है, क्योंकि, अपने भीतर समस्त विशेषोंका संग्रह करनेवाला है ।

शंका—इस सूत्रसे सम्पूर्ण अर्थोंका ज्ञान कैसे होता है ?

समाधान—इस सूत्रको आधारभूत करके आगमानुकूल सभी अर्थोंके प्रतिपादन करनेवाले आचार्यसे सम्पूर्ण अर्थोंका ज्ञान प्राप्त होता है ।

अब पर्यायार्थिक नयवाले जीवोंका अनुग्रह करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

नरकायु, तिर्यगायु, मनुष्यायु और देवायु, ये आयुकर्मकी चार प्रकृतियां हैं ॥ २६ ॥

जिन कर्म-स्कन्धोंके उदयसे ऊर्ध्वगमन स्वभाववाले जीवका नारक-भवमें अवस्थान होता है, उन कर्म-स्कन्धोंकी 'नरकायु' यह संज्ञा है । जिन कर्म-स्कन्धोंके उदयसे तिर्यंच-

---

१ यदुदयादात्मदोषसंवरणमन्यदोषस्याधारणं सा जुगुप्सा । स. सि.; त. रा. वा. ८, ९.

२ त. सू. ८, ५.   ३ प्रतिषु 'सयअत्थपदुप्पाइयआइरियादो' इति पाठः ।   ४ त. सू. ८, १०.

५ यद्भावाभावयोर्जीवितमरणं तदायुः । ××× नरकेषु तीव्रशीतोष्णवेदनेषु यन्निमित्तं दीर्घजीवनं तन्नारकायुः । त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, १०.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

होदि तेसिं तिरिक्खाउअमिदि सण्णा[1]। एवं मणुस-देवाउआणं पि वत्तव्वं[2]। जधा घड-पड-थंभादीणं पज्जायाणमवट्ठाणं वइससियमेवं णिरयभवादिपज्जायाणं पि वइससिए अवट्ठाणे जादे को दोसो ? ण, अकारणे अवट्ठाणे संते णियमविरोहादो। देव-णेरइयाणं जहण्णमवट्ठाणं दसवाससहस्साणि, उक्कस्सभवावट्ठाणं तेत्तीसं सागरोवमाणि। तिरिक्ख-मणुसाणं जहण्णमंतोमुहुत्तं, उक्कस्सं तिण्णि पलिदोवमाणि, एसो णियमो ण जुज्जदे, पोग्गलाणं व अणियमेण अवट्ठाणं होज्ज। कधं पुग्गलाणमणियमेण अवट्ठाणं ? एग-वे-तिण्णि समयाइं काऊण उक्कस्सेण मेरुपव्वदादिसु अणादि-अपज्जवसिदसरूवेण संट्ठाणा-वट्ठाणुवलंभा। तम्हा भवावट्ठाणेण सहेउएण होदव्वं, अण्णहा सरीरंतरं गयाणं पि णिरयगदीए उदयप्पसंगादो।

णामस्स कम्मस्स बादालीसं पिंडपयडीणामाइं[3] ॥ २७ ॥

एदस्स संगहणयसुत्तस्स अत्थो जाणिय वत्तव्वो।

भवमें जीवका अवस्थान होता है उन कर्म-स्कन्धोंकी 'तिर्यगायु' यह संज्ञा है। इसी प्रकार मनुष्यायु और देवायुका भी स्वरूप कहना चाहिये।

शंका—जिस प्रकार घट, पट और स्तम्भ आदिक पर्यायोंका अवस्थान वैस्रसिक (स्वाभाविक) होता है, उसी प्रकार नरक-भव आदि पर्यायोंके भी वैस्रसिक अवस्थान होनेपर क्या दोष है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, अकारण अवस्थान माननेपर नियममें विरोध आता है। अर्थात्, देव और नारकोंका जघन्य अवस्थान दश हजार वर्ष और उत्कृष्ट भव-सम्बन्धी अवस्थान तेतीस सागरोपम है, तिर्यंच और मनुष्योंका जघन्य अवस्थान अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अवस्थान तीन पल्योपम है; यह नियम नहीं घटित होता है। और इस नियमके अभावमें पुद्गलोंके समान अनियमसे अवस्थान प्राप्त होगा।

शंका—पुद्गलोंका अनियमसे अवस्थान कैसे है ?

समाधान—पुद्गलोंका एक, दो, तीन समयोंको आदि करके उत्कर्षतः मेरुपर्वत आदिमें अनादि-अनन्तस्वरूपसे एक ही आकारका अवस्थान पाया जाता है।

इसलिये भव-सम्बन्धी अवस्थानको सहेतुक होना चाहिये, अन्यथा अन्य शरीरको गये हुए भी जीवोंके नरकगतिके उदयका प्रसंग प्राप्त होगा।

नाम कर्मकी ब्यालीस पिंडप्रकृतियां हैं ॥ २७ ॥

इस संग्रहनयाश्रित सूत्रका अर्थ जान करके कहना चाहिये।

---

१ क्षुत्पिपासाशीतोष्णादिकृतोपद्रवप्रचुरेषु तिर्यक्षु यस्योदयाद्वसनं तत्तैर्यग्योनं। त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, १०.

२ शारीरमानससुखदुःखभूयिष्ठेषु मनुष्येषु जन्मोदयात् मनुष्यायुषः। शारीरमानससुखप्रायेषु देवेषु जन्मोदयात् देवायुषः। त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ९.   ३ त. सू. ८, ५.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

गदिणामं जादिणामं सरीरणामं सरीरबंधणणामं सरीरसंघादणामं सरीरसंट्ठाणणामं सरीरअंगोवंगणामं सरीरसंघडणणामं वण्णणामं गंधणामं रसणामं फासणामं आणुपुव्वीणामं अगुरुअलहुवणामं उवघादणामं परघादणामं उस्सासणामं आदावणामं उज्जोवणामं विहायगदिणामं तसणामं थावरणामं बादरणामं सुहुमणामं पज्जत्तणामं अपज्जत्तणामं पत्तेयसरीरणामं साधारणसरीरणामं थिरणामं अथिरणामं सुहणामं असुहणामं सुभगणामं दूभगणामं सुस्सरणामं दुस्सरणामं आदेज्जणामं अणादेज्जणामं जसकित्तिणामं अजसकित्तिणामं णिमिणणामं तित्थयरणामं चेदि[1] ॥ २८ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे– गतिर्भवः संसार इत्यर्थः। यदि गतिनामकर्म न स्यात् अगतिर्जीवः स्यात्। जम्हि जीवभावे आउकम्मादो लद्धावट्ठाणे संते सरीरादियाइं कम्माइमुदयं गच्छंति सो भावो जस्स पोग्गलक्खंधस्स मिच्छत्तादिकारणेहि पत्तस्स कम्मभावस्स उदयादो होदि तस्स कम्मक्खंधस्स गति त्ति सण्णा[2]।

गतिनाम, जातिनाम, शरीरनाम, शरीरबंधननाम, शरीरसंघातनाम, शरीरसंस्थाननाम, शरीर-अंगोपांगनाम, शरीरसंहनननाम, वर्णनाम, गंधनाम, रसनाम, स्पर्शनाम, आनुपूर्वीनाम, अगुरुलघुनाम, उपघातनाम, परघातनाम, उच्छ्वासनाम, आतापनाम, उद्योतनाम, विहायोगतिनाम, त्रसनाम, स्थावरनाम, बादरनाम, सूक्ष्मनाम, पर्याप्तनाम, अपर्याप्तनाम, प्रत्येकशरीरनाम, साधारणशरीरनाम, स्थिरनाम, अस्थिरनाम, शुभनाम, अशुभनाम, सुभगनाम, दुर्भगनाम, सुस्वरनाम, दुःस्वरनाम, आदेयनाम, अनादेयनाम, यशःकीर्तिनाम, अयशःकीर्तिनाम, निर्माणनाम और तीर्थकरनाम, ये नामकर्मकी ब्यालीस पिंडप्रकृतियां हैं ॥ २८ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— गति यह नाम भव अर्थात् संसारका है। यदि गतिनामकर्म न हो, तो जीव गतिरहित हो जाय। जिस जीव-भावमें आयुकर्मसे अवस्थानके प्राप्त करनेपर शरीर आदि कर्म उदयको प्राप्त होते हैं वह भाव मिथ्यात्व आदि कारणोंके द्वारा कर्मभावको प्राप्त जिस पुद्गल-स्कन्धके उदयसे उत्पन्न होता है, उस कर्म-स्कन्धकी 'गति' यह संज्ञा है।

१ त. सू. ८, ११.

२ यदुदयादात्मा भवान्तरं गच्छति सा गतिः।। स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो ८, ११.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जातिर्जीवानां सदृशपरिणामः[१]। यदि जातिनामकर्म न स्यात् मत्कुणा मत्कुणैः, वृश्चिका वृश्चिकैः, पिपीलिकाः पिपीलिकाभिः, व्रीहयो व्रीहिभिः, शालयः शालिभिः समाना न जायेरन्। दृश्यते च सादृश्यम्। तदो जत्तो कम्मक्खंधादो जीवाणं भूओ सरिसत्तमुप्पज्जदे, सो कम्मक्खंधो कारणे कज्जुवयारादो जादि त्ति भण्णदे। जदि पारिणामिओ सरिसपरिणामो णत्थि तो सरिसपरिणामकज्जण्णहाणुववत्तीदो तक्कारण-कम्मस्स अत्थित्तं सिज्झेज्ज। किंतु गंगावालुवादिसु पारिणामिओ सरिसपरिणामो उव-लब्भदे, तदो अणेयंतियादो सरिसपरिणामो अप्पणो कारणीभूदकम्मस्स अत्थित्तं ण साहेदि त्ति? ण एस दोसो, गंगवालुआणं पुढविकाइयणामकम्मोदएण सरिसपरि-णामत्तब्भुवगमादो। परमाणुसु सरिसपरिणामो पारिणामिओ उवलब्भदि, तदो हेऊ अणेयंतिओ त्ति ण सक्किज्जदे वोत्तुं, साहणदोसेसु अणेयंतियस्स अभावा। अण्णहाणु-ववत्तिविरहेण साहणस्स ओक्खत्तं जायदे, ण अण्णहा, अव्ववत्थादो। ण च एत्थ अण्ण-हाणुववत्ती णत्थि, उवलंभादो। किं च जदि जीवपडिग्गहिदपोग्गलक्खंधसरिसपरिणामो

जीवोंके सदृश परिणामको जाति कहते हैं। यदि जातिनामकर्म न हो, तो खटमल खटमलोंके साथ, बिच्छू बिच्छुओंके साथ, चींटियां चींटियोंके साथ, धान्य धान्यके साथ और शालि शालिके साथ समान न होगी। किन्तु इन सबमें परस्पर सदृशता दिखाई देती है। इसलिये जिस कर्म-स्कन्धसे जीवोंके अत्यन्त सदृशता उत्पन्न होती है वह कर्म-स्कन्ध कारणमें कार्यके उपचारसे 'जाति' इस नामवाला कहलाता है।

शंका—यदि पारिणामिक सदृश परिणाम नहीं है, तो सदृश परिणामरूप कार्य उत्पन्न हो नहीं सकता, इस अन्यथानुपपत्तिसे उसके कारणभूत कर्मका अस्तित्व भले ही सिद्ध होवे। किन्तु गंगा नदीकी वालुका आदिमें पारिणामिक सदृश परिणाम पाया जाता है, इसलिये हेतुके अनैकान्तिक होनेसे सदृश परिणाम अपने कारणीभूत कर्मके अस्तित्वको नहीं सिद्ध करता है?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, गंगानदीकी वालुकाके पृथिवीकायिक नामकर्मके उदयसे सदृश-परिणामता मानी गई है। परमाणुओंमें सदृश परिणाम स्वाभाविक पाया जाता है, इसलिये उपर्युक्त हेतु अनैकान्तिक है, ऐसा भी नहीं कह सकते, क्योंकि, हेतु-सम्बन्धी दोषोंमें अनैकान्तिक नामके दोषका अभाव है। अन्यथा-नुपपत्तिके अभावसे साधनके अवक्षिप्तता प्राप्त होती है, अन्य प्रकारसे नहीं; क्योंकि, अन्य प्रकारसे माननेपर अव्यवस्था उत्पन्न होती है। यहां पर अन्यथानुपपत्ति न हो, यह बात नहीं है, क्योंकि, यहां वह पाई जाती है। दूसरी बात यह है, कि यदि जीवके

१ तासु नरकादिगतिष्वव्यभिचारिणा सादृश्येनैकीकृतोऽर्थात्मा जातिः। स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पारिणामिओ वि अत्थि, तो हेऊ अणेयंतिओ होज्ज । ण च एवं, तहाणुवलंभा । जदि जीवाणं सरिसपरिणामो कम्मायत्तो ण होज्ज, तो चउरिंदिया हय-हत्थि-वय-वग्घ-छवल्लादि-संठाणा होज्ज, पंचिंदिया वि भमर-मक्कुण-सलहिंदगोव-खुल्लक्ख-रुक्खसंठाणा होज्ज । ण चेवमणुवलंभा, पडिणियदसरिसपरिणामेसु अवट्ठिदरुक्खादीणमुवलंभा च । तदो ण पारिणामिओ जीवाणं सरिसपरिणामो त्ति सिद्धं ।

जस्स कम्मस्स उदएण आहारवग्गणाए पोग्गलक्खंधा तेजा-कम्मइयवग्गण-पोग्गलक्खंधा च सरीरजोग्गपरिणामेहि परिणदा संता जीवेण संबज्झंति तस्स कम्म-क्खंधस्स सरीरमिदि सण्णा[1] । जदि सरीरणाम कम्मं जीवस्स ण होज्ज, तो तस्स असरीरत्तं पसज्जदे । असरीरत्तादो अमुत्तस्स ण कम्माणि, विमुत्त-मुत्ताणं पोग्गलप्पाणं संबंधाभावादो । होदु चे ण, सव्वजीवाणं सिद्धसमाणत्तावत्तीदो संसाराभावप्पसंगा । सरीरट्ठमागयाणं पोग्गलक्खंधाणं जीवसंबद्धाणं जेहि पोग्गलेहि जीवसंबद्धेहि पत्तोदएहि

द्वारा ग्रहण किये गये पुद्गल-स्कन्धोंका सदृश परिणाम पारिणामिक भी हो, तो हेतु अनैकान्तिक होवे ? किन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि, उस प्रकारका अनुपलम्भ है । यदि जीवोंका सदृश परिणाम कर्मके आधीन न होवे, तो चतुरिन्द्रिय जीव घोड़ा, हाथी, भेड़िया, बाघ और छवल्ल आदिके आकारवाले हो जायंगे । तथा पंचेन्द्रिय जीव भी भ्रमर, मत्कुण, शलभ, इन्द्रगोप, क्षुल्लक, अक्ष और वृक्ष आदिके आकारवाले हो जायंगे । किन्तु इस प्रकार हैं नहीं, क्योंकि, इस प्रकारके वे पाये नहीं जाते; तथा प्रतिनियत सदृश परिणामोंमें अवस्थित वृक्ष आदि पाये जाते हैं । इसलिये जीवोंका सदृश परिणाम पारिणामिक नहीं है, यह सिद्ध हुआ ।

जिस कर्मके उदयसे आहारवर्गणाके पुद्गल-स्कन्ध तथा तैजस और कार्मणवर्गणाके पुद्गल-स्कन्ध शरीरयोग्य परिणामोंके द्वारा परिणत होते हुए जीवके साथ सम्बद्ध होते हैं उस कर्म-स्कन्धकी ' शरीर ' यह संज्ञा है । यदि शरीरनामकर्म जीवके न हो, तो जीवके अशरीरताका प्रसंग आता है । शरीर-रहित होनेसे अमूर्त आत्माके कर्मोंका होना भी संभव नहीं है, क्योंकि, मूर्त पुद्गल और अमूर्त आत्माके सम्बन्ध होनेका अभाव है ।

शंका—अमूर्त आत्मा और मूर्त पुद्गल, इन दोनोंका यदि सम्बन्ध नहीं हो सकता, तो न होवे, क्या हानि है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, वैसा माननेपर सभी संसारी जीवोंके सिद्धोंके समान होनेकी आपत्तिसे संसारके अभावका प्रसंग प्राप्त होगा ।

शरीरके लिये आये हुए, जीव-सम्बद्ध पुद्गल-स्कन्धोंका जिन जीव-सम्बद्ध और

१ यदुदयादात्मनः शरीरनिर्वृत्तिस्तच्छरीरनाम । स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परोप्परं बंधो कीरइ तेसिं पोग्गलक्खंधाणं सरीरबंधणसण्णा[1], कारणे कज्जुवयारादो, कत्तारणिद्देसादो वा। जइ सरीरबंधणणामकम्मं जीवस्स ण होज्ज, तो वालुवाकय-पुरिससरीरं व सरीरं होज्ज, परमाणूणमण्णोण्णे बंधाभावा। जेहि कम्मक्खंधेहि उदयं पत्तेहि बंधणणामकम्मोदएण बंधमागयाणं सरीरपोग्गलक्खंधाणं मट्ठत्तं कीरदे तेसिं सरीरसंघादसण्णा[2]। जदि सरीरसंघादणामकम्मं जीवस्स ण होज्ज, तो तिलमोअओ व्व अवुट्ठसरीरो जीवो होज्ज। ण चेवं, तहाणुवलंभा। जेसिं कम्मक्खंधाणमुदएण जाइ-कम्मोदयपरतंतेण सरीरस्स संठाणं कीरदे तं सरीरसंठाणं णाम[3]। सरीरसंठाणणामकम्मा-भावे जीवसरीरमसंठाणं होज्ज। होदु चे ण, संठाणाभावे सरीरस्साभावप्पसंगादो। ण च णिरुहेउअं सरीरसंठाणं, णिरुहेउअस्स संठाणस्स जाईसु णियमविरोहा। ण च

उदय प्राप्त पुद्गलोंके साथ परस्पर बंध किया जाता है उन पुद्गल-स्कन्धोंकी 'शरीरबंधन' यह संज्ञा कारणमें कार्यके उपचारसे, अथवा कर्तृ-निर्देशसे है। यदि शरीरबंधननामकर्म जीवके न हो, तो वालुका द्वारा बनाये गये पुरुष-शरीर (पुतला) के समान जीवका शरीर होगा, क्योंकि, परमाणुओंका परस्परमें बंध नहीं है। उदयको प्राप्त जिन कर्म-स्कधोंके द्वारा बंधननामकर्मके उदयसे बंधके लिये आये हुये शरीर-सम्बन्धी पुद्गल-स्कन्धोंका मृष्टत्व, अर्थात् छिद्र-रहित संश्लेष, किया जाता है, उन पुद्गल-स्कंधोंकी 'शरीरसंघात' यह संज्ञा है। यदि शरीरसंघातनामकर्म जीवके न हो, तो तिलके मोदकके समान अपुष्ट शरीरवाला जीव हो जावे। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, तिलके मोदकके समान संश्लेष-रहित परमाणुओंवाला शरीर पाया नहीं जाता। जातिनाम-कर्मके उदयसे परतन्त्र जिन कर्म-स्कंधोंके उदयसे शरीरका आकार बनता है वह शरीरसंस्थाननामकर्म है। शरीरसंस्थाननामकर्मके अभावमें जीवका शरीर आकृति-रहित हो जायगा।

शंका — शरीरसंस्थाननामकर्मके अभाव माननेपर यदि जीवका शरीर आकृति-रहित होता है, तो होने दो?

समाधान — नहीं, क्योंकि, संस्थानके अभाव माननेपर शरीरके अभावका प्रसंग आता है।

और शरीरसंस्थान निर्हेतुक माना नहीं जा सकता, क्योंकि, द्वीन्द्रिय आदि जातियोंमें निर्हेतुक संस्थानके नियमका विरोध है। तथा जातियोंमें संस्थानका नियम

१ शरीरनामकर्मोदयवशादुपात्तानां पुद्गलानामन्योन्यप्रदेशसंश्लेषणं यतो भवति तद्बन्धननाम। स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

२ यदुदयादौदारिकादिशरीराणां विवरविरहितान्योऽन्यप्रदेशानुप्रवेशेन एकत्वापादनं भवति तत्संघातनाम। स. सि. ८, ११. अविवरभावेनैकत्वकरणं संघातनामकर्म। त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

३ यदुदयादौदारिकादिशरीराकृतिनिर्वृत्तिर्भवति तत्संस्थाननाम। स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णियमो असिद्धो, हय-हत्थि-हरिणेसु संठाणणियमुवलंभा। तदो सिद्धं जीवसरीरसंठाणं सहेउअमिदि। जस्स कम्मक्खंधस्सुदएण सरीरस्संगोवंगणिप्फत्ती होज्ज तस्स कम्मक्खंधस्स सरीरंगोवंगं णाम[1]। एदस्स कम्मस्साभावे अट्ठंगाणमुवंगाणं च अभावो होज्ज। ण चेवं, तहाणुवलंभा। एत्थुवउज्जंती गाहा—

णलया बाहू अ तहा णियंब पुट्ठी उरो य सीसं च।
अट्ठेव दु अंगाइं देहण्णाइं उवंगाइं[2] ॥ १० ॥

शिरसि तावदुपांगानि मूर्द्ध-करोटि-मस्तक-ललाट-शंख-भ्रू-कर्ण-नासिका-नयनाक्षिकूट-हनु-कपोल उत्तराधरोष्ठ-सृक्वणी-तालु-जिह्वादीनि। जस्स कम्मस्स उदएण सरीरे हड्ड-संधीणं णिप्फत्ती होज्ज, तस्स कम्मस्स संघडणमिदि सण्णा[3]। एदस्स कम्मस्स अभावे सरीरमसंघडणं होज्ज देवसरीरं वा। होदु चे ण, तिरिक्ख-मणुससरीरेसु हड्डकलाउवलंभा।

असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, घोड़ा, हाथी और हरिणोंमें संस्थानका नियम पाया जाता है। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि जीवके शरीरका संस्थान सहेतुक है।

जिस कर्म-स्कंधके उदयसे शरीरके अंग और उपांगोंकी, निष्पत्ति होती है उस कर्म-स्कन्धका शरीरांगोपांग' यह नाम है। इस नामकर्मके नहीं माननेपर आठों अंगोंका और उपांगोंका अभाव हो जायगा। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, अंग और उपांगोंका अभाव पाया नहीं जाता है। इस विषयमें यह उपयोगी गाथा है—

शरीरमें दो पैर, दो हाथ, नितम्ब (कमरके पीछेका भाग), पीठ, हृदय और मस्तक, ये आठ अंग होते हैं। इनके सिवाय अन्य (नाक, कान, आंख इत्यादि) उपांग होते हैं ॥ १० ॥

शिरमें मूर्धा, कपाल, मस्तक, ललाट, शंख, भौंह, कान, नाक, आंख, अक्षिकूट, हनु, (ठुड्डी) कपोल, ऊपर और नीचेके ओष्ठ, सृकणी (चाप), तालु और जीभ आदि उपांग होते हैं। जिस कर्मके उदयसे शरीरमें हड्डी और उसकी संधियों अर्थात् संयोग-स्थानोंकी निष्पत्ति होती है, उस कर्मकी 'संहनन' यह संज्ञा है। इस कर्मके अभावमें शरीर देवोंके शरीरके समान संहनन-रहित हो जायगा।

शंका—यदि संहननकर्मके अभावमें शरीर देव-शरीरके समान संहनन-रहित होता है, तो होने दो, क्या हानि है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, तिर्यंच और मनुष्यके शरीरोंमें हाड़ोंका समूह पाया जाता है।

१ यदुदयादंगोपांगविवेकस्तदंगोपांगनाम। स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

२ गो. क. २८. परंतु तत्र चतुर्थचरणे 'देहे सेसा उवंगाइं' इति पाठः।

३ यस्योदयादस्थिबन्धनविशेषो भवति तत्संहनननाम। स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जस्स कम्मस्स उदएण जीवसरीरे वण्णणिप्फत्ती होदि, तस्स कम्मक्खंधस्स वण्णसण्णा[1] । एदस्स कम्मस्साभावे अणियदवण्णं सरीरं होज्ज । ण च एवं, भमर-कलयंठी-हंस-बलायादिसु सुणियदवण्णुवलंभा । ण च णिरुहेउए णियमो होदि, विरोहादो । जस्स कम्मक्खंधस्स उदएण जीवसरीरे जादिपडिणियदो गंधो उप्पज्जदि तस्स कम्मक्खंधस्स गंधसण्णा[2], कारणे कज्जुवयारादो । जदि गंधणामकम्मं ण होज्ज, तो जीवसरीरगंधो अणियदो होज्ज । होदु चे ण, हत्थि-वग्घादिसु णियदगंधुवलंभादो । जस्स कम्मक्खंधस्स उदएण जीवसरीरे जादिपडिणियदो तित्तादिरसो होज्ज तस्स कम्मक्खंधस्स रससण्णा[3] । एदस्स कम्मस्साभावे जीवसरीरे जाइपडिणियदरसो ण होज्ज । ण च एवं, णिंबंब-जंबीरादिसु णियदरसस्सुवलंभादो । जस्स कम्मक्खंधस्स उदएण जीवसरीरे जाइपडिणियदो पासो उप्पज्जदि तस्स कम्मक्खंधस्स पाससण्णा[4],

....

जिस कर्मके उदयसे जीवके शरीरमें वर्णकी उत्पत्ति होती है, उस कर्म-स्कंधकी 'वर्ण' यह संज्ञा है । इस कर्मके अभावमें अनियत वर्णवाला शरीर हो जायगा । किन्तु ऐसा देखा नहीं जाता, क्योंकि, भौंरा, कोइल, हंस और बगुला आदिमें सुनिश्चित वर्ण पाये जाते हैं । परन्तु जो कार्य निर्हेतुक होता है, उसमें कोई नियम नहीं होता है, क्योंकि, निर्हेतुक कार्यमें नियमके माननेका विरोध है । जिस कर्म-स्कन्धके उदयसे जीवके शरीरमें जातिके प्रति नियत गन्ध उत्पन्न होता है, उस कर्म-स्कन्धकी 'गन्ध' यह संज्ञा कारणमें कार्यके उपचारसे की गई है । यदि गन्धनामकर्म न हो, तो जीवके शरीरकी गन्ध अनियत हो जायगी ।

शंका — यदि गन्धनामकर्मके अभावमें जीवके शरीरकी गन्ध अनियत होती है, तो होने दो, क्या हानि है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि हाथी और वाघ आदिमें नियत गन्ध पाई जाती है ।

जिस कर्मस्कन्धके उदयसे जीवके शरीरमें जातिके प्रति नियत तिक्त आदि रस उत्पन्न हो, उस कर्म-स्कन्धकी 'रस' यह संज्ञा है । इस कर्मके अभावमें जीवके शरीरमें जाति-प्रतिनियत रस नहीं होगा । किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, नीम, आम, और नीबु आदिमें नियत रस पाया जाता है । जिस कर्म-स्कन्धके उदयसे जीवके शरीरमें जाति-प्रतिनियत स्पर्श उत्पन्न होता है, उस कर्म-स्कन्धकी कारणमें कार्यके उपचारसे 'स्पर्श'

....

१ यद्धेतुको वर्णविभागस्तद्वर्णनाम । स. सि.; त. रा. वा. ८, ११.

२ यदुदयप्रभवो गंधस्तद्गन्धनाम । स. सि ; त रा. वा. ८, ११.

३ यन्निमित्तो रसविकल्पस्तद्रसनाम । स. सि; त. रा. वा. ८, ११.

४ यस्योदयात्स्पर्शप्रादुर्भावस्तत्स्पर्शनाम । स. सि.; त. रा. वा. ८, ११.

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

कारणे कज्जुवयारादो (जदि पासणामकम्मं ण होज्ज तो जीवसरीरमणियदपासं होज्ज। ण च एवं, सपुप्फफलकमलणालादिसु णियदफासुवलंभादो) पुव्वुत्तरसरीराणमंतरे एग-दो तिण्णि समए वट्टमाणजीवस्स जस्स कम्मस्स उदएण जीवपदेसाणं विसिट्ठो संठाण-विसेसो होदि, तस्स आणुपुव्वि त्ति सण्णा[1]। संठाणणामकम्मादो संठाणं होदि त्ति आणुपुव्विपरियप्पणा णिरत्थिया चे ण, तस्स सरीरगहिदपढमसमयादो उवरि उदय-मागच्छमाणस्स विग्गहकाले उदयाभावा[2]। जदि आणुपुव्विकम्मं ण होज्ज तो विग्गहकाले अणियदसंठाणो जीवो होज्ज। ण च एवं, जादिपडिणियदसंठाणस्स तत्थुवलंभादो। पुव्व-सरीरं छड्डिय सरीरंतरमघेत्तूण ट्ठिदजीवस्स इच्छिदगदिगमणं कुदो होदि? आणुपुव्वीदो। विहायगदीदो किण्ण होदि? ण, तस्स तिण्हं सरीराणमुदएण विणा उदयाभावा।

यह संज्ञा है। यदि स्पर्शनामकर्म न हो, तो जीवका शरीर अनियत स्पर्शवाला होगा। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, कमलके स्वपुष्प, फल और कमल-नाल आदिमें नियत स्पर्श पाया जाता है। पूर्व और उत्तर शरीरोंके अन्तरालवर्त्ती एक, दो और तीन समयमें वर्तमान जीवके जिस कर्मके उदयसे जीव-प्रदेशोंका विशिष्ट आकार-विशेष होता है, उस कर्मकी 'आनुपूर्वी' यह संज्ञा है।

शंका — संस्थाननामकर्मसे आकार-विशेष उत्पन्न होता है, इसलिए आनुपूर्वीकी परिकल्पना निरर्थक है?

समाधान — नहीं, क्योंकि, शरीर-ग्रहण करनेके प्रथम समयसे ऊपर उदयमें आनेवाले उस संस्थाननामकर्मका विग्रहगतिके कालमें उदयका अभाव पाया जाता है।

यदि आनुपूर्वी नामकर्म न हो, तो विग्रहगतिके कालमें जीव अनियत संस्थान-वाला हो जायगा, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, जाति-प्रतिनियत संस्थान विग्रह-कालमें पाया जाता है।

शंका — पूर्व शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरको नहीं ग्रहण करके स्थित जीवका इच्छित गतिमें गमन किस कर्मसे होता है?

समाधान — आनुपूर्वी नामकर्मसे इच्छित गतिमें गमन होता है।

शंका — विहायोगतिनामकर्मसे इच्छित गतिमें गमन क्यों नहीं होता है?

समाधान — नहीं, क्योंकि, विहायोगतिनामकर्मका औदारिकादि तीनों शरीरोंके उदयके विना उदय नहीं होता है।

१ पूर्वशरीराकाराविनाशो यस्योदयाद्भवति तदानुपूर्व्यनाम। स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

२ ननु च तन्निर्माणनामकर्मसाध्यं फलं नानुपूर्व्यनामोदयकृतं? नैष दोषः, पूर्वायुरुच्छेदसमकाल एव पूर्वशरीरनिवृत्तौ निर्माणनामोदयो निवर्तते। तस्मिन्निवृत्तेऽष्टविधकर्म तैजसकार्मणशरीरसंबंधिन आत्मनः पूर्वशरीर-संस्थानाविनाशकारणमानुपूर्व्यनामोदयमुपैति। तस्य कालो विग्रहगतौ जघन्येनैकः समयः, उत्कर्षेण त्रयः समयाः। ऋजुगतौ तु पूर्वशरीराकारविनाशे सति उत्तरशरीरयोग्यपुद्गलग्रहणान्निर्माणनामकर्मोदयव्यापारः। त. रा. वा. ८, ११.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आणुपुव्वी संठाणम्हि वावदा कधं गमणहेऊ होदि त्ति चे ण, तिस्से दोसु वि कज्जेसु वावारे विरोहाभावा। अचत्तसरीरस्स जीवस्स विग्गहगईए उज्जुगईए वा जं गमणं तं कस्स फलं? ण, तस्स पुव्वखेत्तपरिच्चायाभावेण गमणाभावा। जीवपदेसाणं जो पसरो सो ण णिक्कारणो, तस्स आउअसंतफलत्तादो। वण्ण-गंध-रस-फासकम्माणं वण्ण-गंध-रस-पासा सकारणा णिक्कारणा वा। पढमपक्खे अणवत्था। बिदियपक्खे सेसणोकम्मवण्ण-गंध-रस-फासा वि णिक्कारणा होंतु, विसेसाभावा। एत्थ परिहारो उच्चदे— ण पढमे पक्खे उत्तदोसो, अणब्भुवगमादो। ण बिदियपक्खदोसो वि, कालदव्वं व दुस्सहावत्तादो एदेसिमुभयत्थ वावारविरोहाभावा।

शंका—आकार-विशेषको बनाये रखनेमें व्यापार करनेवाली आनुपूर्वी इच्छित गतिमें गमनका कारण कैसे होती है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, आनुपूर्वीका दोनों भी कार्योंके व्यापारमें विरोधका अभाव है। अर्थात् विग्रहगतिमें आकार-विशेषको बनाये रखना और इच्छित-गतिमें गमन कराना, ये दोनों ही आनुपूर्वी नामकर्मके कार्य हैं।

शंका—पूर्व शरीरको न छोड़ते हुए जीवके विग्रहगतिमें, अथवा ऋजुगतिमें जो गमन होता है, वह किस कर्मका फल है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पूर्वशरीरको नहीं छोड़नेवाले उस जीवके पूर्व क्षेत्रके परित्यागके अभावसे गमनका अभाव है। पूर्व शरीरको नहीं छोड़नेपर भी जीव-प्रदेशोंका जो प्रसार होता है वह निष्कारण नहीं है, क्योंकि, वह आगामी भवसम्बन्धी आयुकर्मके सत्त्वका फल है।

शंका—वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श नामकर्मोंके वर्ण, गन्ध, रस, और स्पर्श सकारण होते हैं, या निष्कारण। प्रथम पक्षमें अनवस्था दोष आता है। द्वितीय पक्षके माननेपर शेष नोकर्मोंके वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श भी निष्कारण होना चाहिए, क्योंकि, दोनोंमें कोई भेद नहीं है?

समाधान—यहांपर उक्त शंकाका परिहार कहते हैं—प्रथम पक्षमें कहा गया अनवस्था दोष तो प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि, वैसा माना नहीं गया है। न द्वितीय पक्षमें दिया गया दोष भी प्राप्त होता है, क्योंकि, कालद्रव्यके समान द्विस्वभावी होनेसे इन वर्णादिकके उभयत्र व्यापार करनेमें कोई विरोध नहीं है।

विशेषार्थ—जिस प्रकार कालद्रव्य अपने आपके परिवर्तन और अन्य द्रव्योंके परिवर्तनका कारण होता है, उसी प्रकार वर्णादिक नामकर्म भी अपने वर्णादिकके तथा अपनेसे भिन्न परपुद्गलोंके वर्णादिकके कारण होते हैं। इसीलिए इनको कालद्रव्यके समान द्विस्वभावी कहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणंताणंतेहि पोग्गलेहि आऊरियस्स जीवस्स जेहि कम्मक्खंधेहिंतो अगुरुअलहुअत्तं होदि, तेसिमगुरुअलहुअं ति सण्णा[1], कारणे कज्जुवयारादो। जदि अगुरुअलहुवकम्मं जीवस्स ण होज्ज, तो जीवो लोहगोलओ व्व गरुअओ, अक्कतूलं व हलुओ वा होज्ज। ण च एवं, अणुवलंभादो। अगुरुवलहुअत्तं णाम जीवस्स साहावियमत्थि त्ति चे ण, संसारावत्थाए कम्मपरतंतम्मि तस्साभावा। ण च सहावविणासे जीवस्स विणासो, लक्खणविणासे लक्खविणासस्स णाइयत्तादो। ण च णाण-दंसणे मुच्चा जीवस्स अगुरु-लहुअत्तं लक्खणं, तस्स आयासादीसु वि उवलंभा। किंच ण एत्थ जीवस्स अगुरुलहुत्तं कम्मेण कीरइ, किंतु जीवम्हि भरिओ जो पोग्गलक्खंधो, सो जस्स कम्मस्स उदएण जीवस्स गरुओ हलुवो वा त्ति णावडइ तमगुरुवलहुअं। तेण ण एत्थ जीवविसय-अगुरुलहुवत्तस्स गहणं।

अनन्तानन्त पुद्गलोंसे भरपूर जीवके जिन कर्म-स्कंधोंके द्वारा अगुरुलघुपना होता है, उन पुद्गल-स्कन्धोंकी 'अगुरुलघु' यह संज्ञा कारणमें कार्यके उपचारसे की गई है। यदि जीवके अगुरुलघुकर्म न हो, तो या तो जीव लोहेके गोलेके समान भारी हो जायगा, अथवा आकके तूल (रुई) समान हलका हो जायगा। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, वैसा पाया नहीं जाता है।

शंका—अगुरुलघुत्व तो जीवका स्वाभाविक गुण है, (फिर उसे यहां कर्म-प्रकृतियोंमें क्यों गिनाया)?

समाधान—नहीं, क्योंकि, संसार अवस्थामें कर्म-परतंत्र जीवमें उस स्वाभाविक अगुरुलघु गुणका अभाव है। यदि कहा जाय कि स्वभावका विनाश माननेपर जीवका विनाश प्राप्त होता है, क्योंकि, लक्षणके विनाश होनेपर लक्ष्यका विनाश होता है, ऐसा न्याय है, सो भी यहां यह बात नहीं है, अर्थात् अगुरुलघुनामकर्मके विनाश हो जाने पर भी जीवका विनाश नहीं होता है, क्योंकि, ज्ञान और दर्शनको छोड़कर अगुरु-लघुत्व जीवका लक्षण नहीं है, चूंकि वह आकाश आदि अन्य द्रव्योंमें भी पाया जाता है। दूसरी बात यह है कि यहां जीवका अगुरुलघुत्व कर्मके द्वारा नहीं किया जाता है, किन्तु जीवमें भरा हुआ जो पुद्गल-स्कन्ध है, वह जिस कर्मके उदयसे जीवके भारी या हलका नहीं होता है, वह अगुरुलघु यहां विवक्षित है। अतएव यहां पर जीव-विषयक अगुरुलघुत्वका ग्रहण नहीं करना चाहिए।

१ यस्योदयादयःपिण्डवद् गुरुत्वान्नाधः पतति, न चार्कतूलवल्लघुत्वादूर्ध्वं गच्छति तदगुरुलघुनाम। स. सि.; त. रा. वा. ८, ११.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपेत्य घात उपघातः आत्मघात इत्यर्थः[1]। जं कम्मं जीवपीडाहेउअवयवे कुणदि, जीवपीडाहेदुदव्वाणि वा विसासि-पासादीणि जीवस्स ढोएदि[2] तं उवघादं णाम। के जीवपीडाकार्यवयवा इति चेन्महाशृङ्ग-लम्बस्तन-तुंदोदरादयः। जदि उवघादणामकम्मं जीवस्स ण होज्ज, तो सरीरादो वाद-पित्त-सेंभदूसिदादो जीवस्स पीडा ण होज्ज। ण च एवं, अणुवलंभादो। जीवस्स दुक्खुप्पायणे असादावेदणीयस्स वावारो चे, होदु तस्स तत्थ वावारो, किंतु उवघादकम्मं पि तस्स सहकारिकारणं होदि, तदुदयणिमित्तपोग्गलदव्वसंपादणादो। परेषां घातः परघातः[3]। जस्स कम्मस्स उदएण परघादहेदू सरीरे पोग्गला णिप्फज्जंति तं कम्मं परघादं णाम। तं जहा— सप्पदाढासु[4] विसं, विच्छियपुंछे परदुःखहेउपोग्गलोवचओ, सीह-वग्घच्छवलादिसु णह-दंता, सिंगिवच्छणाहीधत्तूरादओ च परघादुप्पायया।

स्वयं प्राप्त होनेवाले घातको उपघात अर्थात् आत्मघात कहते हैं। जो कर्म अवयवोंको जीवकी पीड़ाका कारण बना देता है, अथवा विष, खड्ग, पाश आदि जीवपीड़ाके कारणस्वरूप द्रव्योंको जीवके लिए ढोता है, अर्थात् लाकर संयुक्त करता है, वह उपघात नामकर्म कहलाता है।

शंका—जीवको पीड़ा करनेवाले अवयव कौन कौन हैं?

समाधान—महाशृंग (बारह सिंगाके समान बड़े सींग), लम्बे स्तन, विशाल तोंदवाला पेट आदि जीवको पीड़ा करनेवाले अवयव हैं।

यदि उपघात नामकर्म जीवके न हो, तो वात, पित्त और कफसे दूषित शरीरसे जीवके पीड़ा नहीं होना चाहिए। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, वैसा पाया नहीं जाता है।

शंका—जीवके दुःख उत्पन्न करनेमें तो असाता-वेदनीयकर्मका व्यापार होता है, (फिर यहां उपघातकर्मको जीव-पीड़ाका कारण कैसे बताया जा रहा है)?

समाधान—जीवके दुःख उत्पन्न करनेमें असातावेदनीयकर्मका व्यापार रहा आवे, किन्तु उपघातकर्म भी उस असातावेदनीयका सहकारी कारण होता है, क्योंकि, उसके उदयके निमित्तसे दुःखकर पुद्गल द्रव्यका सम्पादन (समागम) होता है।

पर जीवोंके घातको परघात कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे शरीरमें परको घात करनेके कारणभूत पुद्गल निष्पन्न होते हैं, वह परघात नामकर्म कहलाता है। जैसे सांपकी दाढ़ोंमें विष, विच्छूकी पूंछमें पर-दुःखके कारणभूत पुद्गलोंका संचय, सिंह, व्याघ्र और छवल्ल (शबल-चीता) आदिमें (तीक्ष्ण) नख और दन्त, तथा सिंगी, वत्स्यनाभि और धत्तूरा आदि विषैले वृक्ष परको दुःख उत्पन्न करनेवाले हैं।

१ यस्योदयात्स्वयंकृतोद्बन्धनमरुत्प्रपतनादिनिमित्त उपघातो भवति तदुपघातनाम। स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

२ प्रतिषु 'दोएदि' इति पाठः।

३ यन्निमित्तः परशस्त्रादेर्व्याघातस्तत्परघातनाम। स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

४ प्रतिषु 'दादासु' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उच्छ्वसनमुच्छ्वासः । जस्स कम्मस्स उदएण जीवो उस्सास-णिस्सासकज्जुप्पायणक्खमो होदि तस्स कम्मस्स उस्सासो त्ति सण्णा[1], कारणे कज्जुवयारादो। जदि उस्सासणामकम्मं ण होज्ज, तो जीवो अणुस्सासो होज्ज। ण च एवं, उस्सास-विरहिदजीवाणुवलंभा। आतपनमातपः। जस्स कम्मस्स उदएण जीवसरीरे आदओ होज्ज, तस्स कम्मस्स आदओ त्ति सण्णा[2]। जदि आदवणामकम्मं ण होज्ज, तो सूरमंडले पुढविकाइयसरीरे आदवाभावो होज्ज। ण च एवं, तहाणुवलंभा। को आदवो णाम? सोष्णः प्रकाशः आतपः। एवं संते तेउकाइयम्मि वि आदावस्स उदओ पावेदि त्ति चे ण, तत्थतणउण्हपभाए तेउकाइयणामकम्मोदएणुप्पण्णाए सयलपहाविणाभावि-उण्हत्ताभावेण साधम्माभावादो। उद्योतनमुद्योतः। जस्स कम्मस्स उदएण जीवसरीरे उज्जोओ उप्पज्जदि तं कम्मं उज्जोवं णाम[3]। जदि उज्जोवणामकम्मं ण होज्ज, तो चंद-णक्खत्त-तारा-खज्जोतादिसु सरीराणमुज्जोवो ण होज्ज। ण च एवमणुवलंभा।

सांस लेनेको उच्छ्वास कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे जीव उच्छ्वास और निःश्वासरूप कार्यके उत्पादनमें समर्थ होता है, उस कर्मकी 'उच्छ्वास' यह संज्ञा कारणमें कार्यके उपचारसे है। यदि उच्छ्वास नामकर्म न हो, तो जीव श्वास रहित हो जाय। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि उच्छ्वाससे रहित जीव पाये नहीं जाते। खूब तपनेको आतप कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे जीवके शरीरमें आताप होता है, उस कर्मकी 'आतप' यह संज्ञा है। यदि आतपनामकर्म न हो, तो पृथिवीकायिक जीवोंके शरीररूप सूर्य-मंडलमें आतापका अभाव हो जाय। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, वैसा पाया नहीं जाता।

शंका— आतप नाम किसका है?

समाधान— उष्णता-सहित प्रकाशको आतप कहते हैं।

शंका— इस प्रकार 'आतप' शब्दका अर्थ करनेपर तेजस्कायिक जीवमें भी आतप कर्मका उदय प्राप्त होता है?

समाधान— नहीं, क्योंकि, तेजस्कायिक नामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई उस अग्निकी उष्णप्रभामें सकल प्रभाओंकी अविनाभावी उष्णताका अभाव होनेसे उसका आतपके साथ समानताका अभाव है।

उद्योतन अर्थात् चमकनेको उद्योत कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे जीवके शरीरमें उद्योत उत्पन्न होता है वह उद्योत नामकर्म है। यदि उद्योत नामकर्म न हो, तो चन्द्र नक्षत्र, तारा और खद्योत (जुगनू नामक कीड़ा) आदिमें शरीरोंके उद्योत (प्रकाश) न होवेगा। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, वैसा पाया नहीं जाता।

१ यद्धेतुरुच्छ्वासस्तदुच्छ्वासनाम। स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

२ यदुदयान्निर्वृत्तमातपनं तदातपनाम। तदादित्ये वर्तते स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

३ यन्निमित्तमुद्योतनं तदुद्योतनाम। तच्चन्द्रखद्योतादिषु वर्तते। स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विहाय आकाशमित्यर्थः । विहायसि गतिः विहायोगतिः[1] । जेसिं कम्मक्खंधाणमुदएण जीवस्स आगासे गमणं होदि तेसिं विहायगदि त्ति सण्णा । तिरिक्ख-मणुसाणं भूमीए गमणं कस्स कम्मस्स उदएण ? विहायगदिणामस्स । कुदो ? विहत्थिमेत्तप्पायजीवपदेसेहि भूमिमोट्टहिय सयलजीवपएसाणमायासे गमणुवलंभा । जस्स कम्मस्स उदएण जीवाणं तसत्तं होदि, तस्स कम्मस्स तसेत्ति सण्णा[2], कारणे कज्जुवयारादो । जदि तसणामकम्मं ण होज्ज, तो बीइंदियादीणमभावो[3] होज्ज । ण च एवं, तेसिमुवलंभा । जस्स कम्मस्स उदएण जीवो थावरत्तं पडिवज्जदि तस्स कम्मस्स थावरसण्णा[4] । जदि थावरणामकम्मं ण होज्ज, तो थावरजीवाणमभावो होज्ज । ण च एवं, तेसिमुवलंभा । जस्स कम्मस्स उदएण जीवो बादरेसु उप्पज्जदि तस्स कम्मस्स बादरमिदि सण्णा[5] । जदि बादरणामकम्मं ण होज्ज, तो बादराणमभावो होज्ज । ण च एवं, पडिहयसरीरजीवाणं पि उवलंभादो ।

विहायस् नाम आकाशका है। आकाशमें गमनको विहायोगति कहते हैं। जिन कर्मस्कन्धोंके उदयसे जीवका आकाशमें गमन होता है, उनकी 'विहायोगति' यह संज्ञा है।

शंका—तिर्यंच और मनुष्योंका भूमिपर गमन किस कर्मके उदयसे होता है ?

समाधान—विहायोगति नामकर्मके उदयसे, क्योंकि, विहस्तिमात्र (बारह अंगुलप्रमाण) पांववाले जीव-प्रदेशोंके द्वारा भूमिको व्याप्त करके जीवके समस्त प्रदेशोंका आकाशमें गमन पाया जाता है।

जिस कर्मके उदयसे जीवोंके त्रसपना होता है, उस कर्मकी 'त्रस' यह संज्ञा कारणमें कार्यके उपचारसे है। यदि त्रसनामकर्म न हो, तो द्वीन्द्रिय आदि जीवोंका अभाव हो जायगा। किन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि, द्वीन्द्रिय आदि जीवोंका सद्भाव पाया जाता है। जिस कर्मके उदयसे जीव स्थावरपनेको प्राप्त होता है, उस कर्मकी 'स्थावर' यह संज्ञा है। यदि स्थावर नामकर्म न हो, तो स्थावर जीवोंका अभाव हो जायगा। किन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि, स्थावर जीवोंका सद्भाव पाया जाता है। जिस कर्मके उदयसे जीव बादरकायवालोंमें उत्पन्न होता है, उस कर्मकी 'बादर' यह संज्ञा है। यदि बादरनामकर्म न हो, तो बादर जीवोंका अभाव हो जायगा। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, प्रतिघाती शरीरवाले जीवोंकी भी उपलब्धि होती है।

१ विहाय आकाशम् । तत्र गतिनिर्वर्तकं तद्विहायोगतिनाम । स. सि.; त. रा वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

२ यदुदयाद् द्वीन्द्रियादिषु जन्म तत्त्रसनाम । स. सि.; त. रा. वा., त. श्लो. वा. ८, ११.

३ प्रतिषु 'बीइंदियाणमभावो' इति पाठः ।

४ यन्निमित्त एकेन्द्रियेषु प्रादुर्भावस्तत्स्थावरनाम । स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

५ अन्यबाधाकरशरीरकारणं बादरनाम । स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जस्स कम्मस्स उदएण जीवो सुहुमत्तं पडिवज्जदि तस्स कम्मस्स सुहुममिदि सण्णा[1]। जदि सुहुमणामकम्मं ण होज्ज, तो सुहुमजीवाणमभावो होज्ज । ण च एवं, सप्पडिवक्खाभावे बादराणं पि अभावप्पसंगादो । जस्स कम्मस्स उदएण जीवो पज्जत्तो होदि तस्स कम्मस्स पज्जत्तेत्ति सण्णा[2]। जदि पज्जत्तणामकम्मं ण होज्ज, तो सव्वे जीवा अपज्जत्ता चेव होज्ज । ण च एवं, पज्जत्ताणं पि उवलंभा । जस्स कम्मस्स उदएण जीवो पज्जत्तीओ समाणेदुं ण सक्कदि तस्स कम्मस्स अपज्जत्तणाम सण्णा[3]। जदि अपज्जत्तणामकम्मं ण होज्ज, तो सव्वे जीवा पज्जत्ता चेव होज्ज । ण च एवं, पडिवक्खाभावे अप्पिदस्स वि अभावप्पसंगा । जस्स कम्मस्स उदएण जीवो पत्तेयसरीरो होदि, तस्स कम्मस्स पत्तेयसरीरमिदि सण्णा[4]। जदि पत्तेयसरीरणामकम्मं ण होज्ज, तो एक्कम्हि सरीरे एगजीवस्सेव उवलंभो ण होज्ज । ण च एवं, णिव्वाहमुवलंभा ।

जिस कर्मके उदयसे जीव सूक्ष्मताको प्राप्त होता है, उस कर्मकी 'सूक्ष्म' यह संज्ञा है। यदि सूक्ष्मनामकर्म न हो, तो सूक्ष्म जीवोंका अभाव हो जाय। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, अपने प्रतिपक्षीके अभावमें बादरकायिक जीवोंके भी अभावका प्रसंग आता है। जिस कर्मके उदयसे जीव पर्याप्त होता है, उस कर्मकी 'पर्याप्त' यह संज्ञा है। यदि पर्याप्तनामकर्म न हो, तो सभी जीव अपर्याप्त ही हो जावेंगे। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, पर्याप्तक जीवोंका भी सद्भाव पाया जाता है। जिस कर्मके उदयसे जीव पर्याप्तियोंको समाप्त करनेके लिए समर्थ नहीं होता है, उस कर्मकी 'अपर्याप्तनाम' यह संज्ञा है। यदि अपर्याप्तनामकर्म न हो, तो सभी पर्याप्तक ही होवेंगे। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, प्रतिपक्षीके अभावमें विवक्षितके भी अभावका प्रसंग आता है। जिस कर्मके उदयसे जीव प्रत्येकशरीरी होता है, उस कर्मकी 'प्रत्येकशरीर' यह संज्ञा है। यदि प्रत्येकशरीरनामकर्म न हो, तो एक शरीरमें एक जीवका ही उपलम्भ न होगा। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, प्रत्येकशरीरी जीवोंका सद्भाव बाधा-रहित पाया जाता है।

१ सूक्ष्मशरीरनिर्वर्तकं सूक्ष्मनाम । स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

२ यदुदयादाहारादिपर्याप्तिनिर्वृत्तिः तत्पर्याप्तिनाम । स. सि. त.; रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

३ षड्विधपर्याप्त्यभावहेतुरपर्याप्तिनाम । स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

४ शरीरनामकर्मोदयान्निर्वर्त्यमानं शरीरमेकात्मोपभोगकारणं यतो भवति तत्प्रत्येकशरीरनाम । स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

जस्स कम्मस्स उदएण जीवो साधारणसरीरो होज्ज, तस्स कम्मस्स साधारणसरीरमिदि सण्णा[1]। जदि साहारणणामकम्मं ण होज्ज, तो सव्वे जीवा पत्तेयसरीरा चेव होज्ज। ण च एवं, पडिवक्खाभावे अप्पिदस्स वि अभावप्पसंगा। जस्स कम्मस्स उदएण रस-रुहिर-मेद-मज्जट्ठि-मांस-सुक्काणं थिरत्तमविणासो अगलणं होज्ज तं थिरणामं[2]। जदि थिरणामकम्मं ण होज्ज, तो एदेसिं गलणमेव होज्ज, थिरत्ताभावा। ण च एवं, हाणि-वड्ढीहि विणा अवट्ठाणदंसणादो। जस्स कम्मस्स उदएण रस-रुहिर-मांस-मेद-मज्जट्ठि-सुक्काणं परिणामो होदि तमथिरणामं[3]। अत्रोपयोगी श्लोकः—

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रवर्त्तते।
मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्ज्ञः शुक्रं ततः प्रजा ॥ ११ ॥

पंचदशाक्षिनिमेषा काष्ठा। त्रिंशत्काष्ठा कला। विंशतिकलो मुहूर्तः। कलाया दशमभागश्च त्रिंशन्मुहूर्तं च भवत्यहोरात्रम्। पंचदश अहोरात्राणि पक्षः। पंचवीसकलासयाइं

जिस कर्मके उदयसे जीव साधारणशरीरी होता है उस कर्मकी 'साधारणशरीर' यह संज्ञा है। यदि साधारणनामकर्म न हो, तो सभी जीव प्रत्येकशरीरी ही हो जावेंगे। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, प्रतिपक्षीके अभावमें विवक्षित जीवके भी अभावका प्रसंग प्राप्त होता है। जिस कर्मके उदयसे रस, रुधिर, मेदा, मज्जा, अस्थि, मांस और शुक्र, इन सात धातुओंकी स्थिरता अर्थात् अविनाश व अगलन हो, वह स्थिरनामकर्म है। यदि स्थिरनामकर्म न हो, तो इन धातुओंका स्थिरताके अभावसे गलना ही होगा। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, हानि और वृद्धिके विना इन धातुओंका अवस्थान देखा जाता है। जिस कर्मके उदयसे रस रुधिर, मांस, मेदा, मज्जा, अस्थि और शुक्र, इन धातुओंका परिणमन होता है, वह अस्थिरनामकर्म है। इस विषयमें यह उपयोगी श्लोक है—

रससे रक्त बनता है, रक्तसे मांस उत्पन्न होता है, मांससे मेदा पैदा होती है, मेदासे हड्डी बनती है, हड्डीसे मज्जा पैदा होती है, मज्जासे शुक्र उत्पन्न होता है और शुक्रसे प्रजा (सन्तान) उत्पन्न होती है ॥ ११ ॥

पन्द्रह नयन-निमेषोंकी एक काष्ठा होती है। तीस काष्ठाकी एक कला होती है। वीस कलाका एक मुहूर्त होता है। तीस मुहूर्त और कलाके दशवें भाग कालप्रमाण एक अहोरात्र (दिन-रात) होता है। पन्द्रह अहोरात्रोंका एक पक्ष होता है। पच्चीस सौ

१ बहूनामात्मनामुपभोगहेतुत्वेन साधारणं शरीरं यतो भवति तत्साधारणशरीरनाम। स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

२ स्थिरभावस्य निर्वर्तकं स्थिरनाम। स. सि.; त. श्लो. वा. यदुदयाद् दुष्करोपवासादितपस्करणेऽपि अंगोपांगानां स्थिरत्वं जायते तत्स्थिरनाम। त. रा. वा. ८, ११.

३ तद्विपरीतमस्थिरनाम। स. सि.; त. श्लो. वा. यदुदयादीषदुपवासादिकरणात् स्वल्पशीतोष्णादिसम्बन्धाच्च अंगोपांगानि कृशीभवन्ति तदस्थिरनाम। त. रा. वा. ८, ११.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चउरसीदिकलाओ च तिहि-सत्तभागेहि परिहीणणवकट्ठाओ च रसो रससरूवेण अच्छिय रुहिरं होदि। तं हि तत्तियं चेव कालं तत्थच्छिय मांससरूवेण परिणमइ। एवं सेसधादूणं पि वत्तव्वं। एवं मासेण रसो सुक्करूवेण परिणमइ। एवं जस्स कम्मस्स उदएण धादूणं कमेण परिणामो होदि तमथिरमिदि उत्तं होदि। एदस्साभावे कमणियमो ण होज्ज। ण च एवं, अणवत्थादो। सत्तधाउहेउकम्माणि वत्तव्वाणि? ण, तेसिं सरीरणामकम्मादो उप्पत्तीए। सत्तधाउविरहिदविग्गहगदीए वि थिराथिराणमुदयदंसणादो णेदासिं तत्थ वावारो त्ति णासंकणिज्जं, सजोगिकेवलिपरघादस्सेव तत्थ अव्वत्तोदएण अवट्ठाणादो। जस्स कम्मस्स उदएण अंगोवंगणामकम्मोदयजणिदअंगाणमुवंगाणं च सुहत्तं होदि तं सुहं णाम[1]। अंगोवंगाणमसुहत्तणिव्वत्तयमसुहं णाम[2]।

चौरासी कलाप्रमाण, तथा तीन बटे सात भागोंसे परिहीन नौ काष्ठाप्रमाण (२५८४ क. ८६/७ का.) काल तक रस रसस्वरूपसे रहकर रुधिररूप परिणत होता है। वह रुधिर भी उतने ही काल तक रुधिररूपसे रहकर मांसस्वरूपसे परिणत होता है। इसी प्रकार शेष धातुओंका भी परिणमन-काल कहना चाहिए। इस तरह एक मासके द्वारा रस शुक्ररूपसे परिणत होता है। इस प्रकार जिस कर्मके उदयसे धातुओंका क्रमसे परिमणन होता है, वह 'अस्थिर' नामकर्म कहा गया है। इस अस्थिरनामकर्मके अभावमें धातुओंके क्रमशः परिवर्तनका नियम न रहेगा। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, वैसा माननेपर अनवस्था प्राप्त होती है।

शंका— सातों धातुओंके कारणभूत पृथक् पृथक् कर्म कहना चाहिए ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, उन सातों धातुओंकी शरीरनामकर्मसे उत्पत्ति होती है।

शंका— सप्त धातुओंसे रहित विग्रहगतिमें भी स्थिर और अस्थिर प्रकृतियोंका उदय देखा जाता है, इसलिए इनका वहांपर व्यापार नहीं मानना चाहिए ?

समाधान— ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि, सयोगिकेवली भगवान्में परघात प्रकृतिके समान विग्रहगतिमें उन प्रकृतियोंका अव्यक्त उदयरूपसे अवस्थान रहता है।

जिस कर्मके उदयसे आंगोपांगनामकर्मोदयजनित अंगों और उपांगोंके शुभपना (रमणीयत्व) होता है, वह शुभनामकर्म है। अंग और उपांगोंके अशुभताका उत्पन्न

१ यदुदयाद्रमणीयत्वं तच्छुभनाम। स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

२ तद्विपरीतमशुभनाम। स. सि.; त. श्लो. वा. द्रष्टुः श्रोतुश्चारमणीयकरं अशुभनाम। त. रा. वा. ८, ११.

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

त्थी-पुरिसाणं सोहग्गणिव्वत्तयं सुभगं णाम[1]। तेसिं चेव दूहवभावणिव्वत्तयं दूहवं णाम[2]। एइंदियादिसु अव्वत्तचेट्ठेसु कधं सुहव-दूहवभावा णज्जंते? ण, तत्थ तेसिमव्वत्ताणमागमेण अत्थित्तसिद्धीदो। सुस्सरो णाम महुरो णाओ। जस्सोदएण जीवाणं महुरसरो होदि तं कम्मं सुस्सरं णाम[3]। अमहुरो सरो दुस्सरो, जहा गद्दहुट्ट[4]-सियालादीणं। जस्स कम्मस्स उदएण जीवे दुस्सरो होदि तं कम्मं दुस्सरं णाम[5]। आदेयता ग्रहणीयता बहुमान्यता इत्यर्थः। जस्स कम्मस्स उदएण जीवस्स आदेयत्तमुप्पज्जदि तं कम्ममादेयं णाम[6]। तव्विवरीयभावणिव्वत्तयकम्ममणादेयं णाम[7]। जसो गुणो, तस्स उब्भावणं कित्ती।

करनेवाला अशुभनामकर्म है। स्त्री और पुरुषोंके सौभाग्यको उत्पन्न करनेवाला सुभगनामकर्म है। उन स्त्री-पुरुषोंके ही दुर्भगभाव अर्थात् दौर्भाग्यको उत्पन्न करनेवाला दुर्भगनामकर्म है।

शंका—अव्यक्त चेष्टावाले एकेन्द्रिय आदि जीवोंमें सुभगभाव और दुर्भगभाव कैसे जाने जाते हैं?

समाधान—नहीं, क्योंकि, एकेन्द्रिय आदिमें अव्यक्तरूपसे विद्यमान उन भावोंका अस्तित्व आगमसे सिद्ध है।

सुस्वर नाम मधुर नाद (शब्द) का है। जिस कर्मके उदयसे जीवोंका मधुर स्वर होता है वह सुस्वर नामकर्म कहलाता है। अमधुर स्वरको दुःस्वर कहते हैं। जैसे—गधा, ऊंट और सियाल आदि जीवोंका अमधुर स्वर होता है। जिस कर्मके उदयसे जीवके बुरा स्वर उत्पन्न होता है वह दुःस्वर नामकर्म कहलाता है। आदेयता, ग्रहणीयता और बहुमान्यता, ये तीनों शब्द एक अर्थवाले हैं। जिस कर्मके उदयसे जीवके बहुमान्यता उत्पन्न होती है, वह आदेयनामकर्म कहलाता है। उससे अर्थात् बहुमान्यतासे विपरीत भाव (अनादरणीयता) को उत्पन्न करनेवाला अनादेयनामकर्म है। यश नाम गुणका है, उस गुणके उद्भावनको (प्रकटीकरणको) कीर्त्ति कहते हैं। जिस

---

१ यदुदयादन्यप्रीतिप्रभवस्तत्सुभगनाम। स. सि.। विरूपाकृतिरपि सन् यदुदयात्परेषां प्रीतिहेतुर्भवति तत्सुभगनाम। त. रा. वा. ८, ११.

२ यदुदयाद्रूपादिगुणोपेतोऽप्यप्रीतिकरस्तद् दुर्भगनाम। स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

३ यन्निमित्तं मनोज्ञस्वरनिर्वर्तनं तत्सुस्वरनाम। स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

४ प्रतिषु 'गद्धहुट्ट' इति पाठः।

५ तद्विपरीतं दुःस्वरनाम। स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

६ प्रभोपेतशरीरकारणमादेयनाम। स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

७ निष्प्रभशरीरकारणमनादेयनाम। स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

जस्स कम्मस्स उदएण संताणमसंताणं वा गुणाणमुब्भावणं लोगेहि कीरदि, तस्स कम्मस्स जसकित्तिसण्णा[1] । जस्स कम्मस्सोदएण संताणमसंताणं वा अवगुणाणं उब्भावणं जणेण कीरदे, तस्स कम्मस्स अजसकित्तिसण्णा[2] । नियतं मानं निमानं । तं दुविहं पमाणणिमिणं संठाणणिमिणमिदि । जस्स कम्मस्स उदएण जीवाणं दो वि णिमिणाणि होंति, तस्स कम्मस्स णिमिणमिदि सण्णा[3] । जदि पमाणणिमिणणामकम्मं ण होज्ज, तो जंघा-बाहु-सिर-णासियादीणं वित्थारायामा लोयंतविसप्पिणो होज्ज । ण चेवं, अणुवलंभा । तदो कालमस्सिदूण जाइं च जीवाणं पमाणणिव्वत्तयं कम्मं पमाणणिमिणं णाम । जदि संठाणणिमिणकम्मं णाम ण होज्ज, तो अंगोवंग-पच्चंगाणि संकर-वदियरसरूवेण[4] होज्ज । ण च एवं, अणुवलंभा । तदो कण्ण-णयण-णासियादीणं सजादिअणुरूवेण अप्पप्पणो ट्ठाणे जं णियामयं तं संठाणणिमिणमिदि ।

कर्मके उदयसे विद्यमान या अविद्यमान गुणोंका उद्भावन लोगोंके द्वारा किया जाता है, उस कर्मकी 'यशःकीर्त्ति' यह संज्ञा है । जिस कर्मके उदयसे विद्यमान या अविद्यमान अवगुणोंका उद्भावन लोक द्वारा किया जाता है, उस कर्मकी 'अयशःकीर्त्ति' यह संज्ञा है । नियत मानको निर्माण कहते हैं । वह दो प्रकारका है—प्रमाणनिर्माण और संस्थान-निर्माण । जिस कर्मके उदयसे जीवोंके दोनों ही प्रकारके निर्माण होते हैं, उस कर्मकी 'निर्माण' यह संज्ञा है । यदि प्रमाणनिर्माणनामकर्म न हो, तो जंघा, बाहु, शिर और नासिका आदिका विस्तार और आयाम लोकके अन्त तक फैलनेवाले हो जावेंगे । किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, उस प्रकारसे पाया नहीं जाता है । इसलिए कालको और जातिको आश्रय करके जीवोंके प्रमाणको निर्माण करनेवाला प्रमाणनिर्माण नामकर्म है । यदि संस्थाननिर्माण नामकर्म न हो, तो अंग, उपांग और प्रत्यंग संकर और व्यतिकर-स्वरूप हो जावेंगे । किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, वैसा पाया नहीं जाता है । इसलिए कान, आंख, नाक आदि अंगोंका अपनी जातिके अनुरूप अपने अपने स्थानपर जो नियामक कर्म है, वह संस्थाननामकर्म कहलाता है ।

विशेषार्थ—ऊपर जो संस्थाननिर्माण नामकर्मके अभावमें अंग-उपांगोंके संकर-व्यतिकर स्वरूप होनेका वर्णन किया है, उसका अभिप्राय यह है कि यदि संस्थाननिर्माण नामकर्म न माना जायगा, तो बाधक या नियामक कारणके अभावमें किसी एक अंगके स्थानपर सभी अंगोंके उत्पन्न होनेसे संकरदोष आ सकता है । तथा नियामक कारणके न रहनेसे नाकद्वारा आंखका कार्य और आंखद्वारा कानका कार्य भी होने लगेगा, इस-

---

१ पुण्यगुणख्यापनकारणं यशःकीर्त्तिनाम । स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

२ तत्प्रत्यनीकफलमयशःकीर्त्तिनाम । स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

३ यन्निमित्तात्परिनिष्पत्तिस्तन्निर्माणम् । स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो ८, ११.

४ सर्वेषां युगपत्प्राप्तिः संकरः । परस्परविषयगमनं व्यतिकरः । न्या. कु. च., पृ. २६० (उद्धृतम्)

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

जस्स कम्मस्स उदएण जीवस्स तिलोगपूजा होदि तं तित्थयरं णाम[1]।

जं तं गदिणामकम्मं तं चउव्विहं, णिरयगदिणामं तिरिक्खगदिणामं मणुसगदिणामं देवगदिणामं चेदि ॥ २९ ॥

जस्स कम्मस्स उदएण णिरयभावो[2] जीवाणं होदि, तं कम्मं णिरयगदि त्ति उच्चदि[3], कारणे कज्जुवयारादो। एवं सेसगईणं पि वत्तव्वं[4]।

जं तं जादिणामकम्मं तं पंचविहं, एइंदियजादिणामकम्मं बीइंदियजादिणामकम्मं तीइंदियजादिणामकम्मं चउरिंदियजादिणामकम्मं पंचिंदियजादिणामकम्मं चेदि ॥ ३० ॥

एइंदियाणमेइंदिएहि एइंदियभावेण जस्स कम्मस्स उदएण सरिसत्तं होदि तं कम्ममेइंदियजादिणामं[5]। तं पि अणेयपयारं, अण्णहा जंबु-णिंब-जंबीर-कयम्बंबिलियां-

लिए इन्द्रियोंका परस्पर विषय-गमन होनेसे व्यतिकर दोष भी प्राप्त होगा। अतएव दोनों दोषोंके परिहारके लिए संस्थाननिर्माण नामकर्मका मानना आवश्यक है।

जिस कर्मके उदयसे जीवकी त्रिलोकमें पूजा होती है, वह तीर्थंकर नामकर्म है।

जो गतिनामकर्म है वह चार प्रकारका है— नरकगतिनामकर्म, तिर्यग्गतिनामकर्म, मनुष्यगतिनामकर्म और देवगतिनामकर्म ॥ २९ ॥

जिस कर्मके उदयसे नारकभाव जीवोंके होता है, वह कर्म कारणमें कार्यके उपचारसे 'नरकगति' इस नामसे कहलाता है। इसी प्रकार शेष गतियोंका भी अर्थ कहना चाहिए।

जो जातिनामकर्म है वह पांच प्रकारका है— एकेन्द्रियजातिनामकर्म, द्वीन्द्रियजातिनामकर्म, त्रीन्द्रियजातिनामकर्म, चतुरिन्द्रियजातिनामकर्म और पंचेन्द्रियजातिनामकर्म ॥ ३० ॥

जिस कर्मके उदयसे एकेन्द्रिय जीवोंकी एकेन्द्रिय जीवोंके साथ एकेन्द्रियभावसे सदृशता होती है, वह एकेन्द्रियजातिनामकर्म कहलाता है। वह एकेन्द्रियजातिनामकर्म भी अनेक प्रकारका है। यदि ऐसा न माना जाय, तो जामुन, नीम, आम, निम्बू,

१ आर्हन्त्यकारणं तीर्थकरत्वनाम। स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

२ प्रतिषु 'णिरयाभावो' इति पाठः।

३ यन्निमित्त आत्मनो नारको भावस्तन्नरकगतिनाम। स. सि.; त. रा. वा.; ८, ११.

४ एवं शेषेष्वपि योज्यम्। स. सि.; त. रा. वा. ८, ११.

५ यदुदयादात्मा एकेन्द्रिय इति शब्द्यते तदेकेन्द्रियजातिनाम। स. सि.; त. रा. वा. ८, ११.

६ अ-कप्रत्योः 'कयम्बंबिलया' आप्रतौ 'कयम्बिबिलसियाविलया' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सालि-वीहि-जव-गोहूमादिजादीणं भेदाणुववत्तीदो[1]। जस्स कम्मस्स उदएण जीवाणं बीइंदियत्तणेण समाणत्तं होदि तं कम्मं बीइंदियणामं। तं पि अणेयपयारं, अण्णहा संख-माउवाहय-खुल्ल-वराडयारिट्ठ- सुत्ति-गंडुवाला-कुक्खिकिमियादिजादीणं[2] भेदाणुववत्तीदो। जस्स कम्मस्स उदएण जीवाणं तीइंदियभावेण समाणत्तं होदि तं तीइंदियजादिणामकम्मं। तं च अणेयपयारं, अण्णहा कुंथु-मक्कुण-जूअ-विच्छिय-गोम्हिंदगोव-पिपीलियादिजादि-भेदाणुववत्तीदो[3]। जस्स कम्मस्स उदएण जीवाणं चउरिंदियभावेण समाणत्तं होदि तं कम्मं चउरिंदियजादिणामं। तं च अणेयपयारं, अण्णहा भमर-महुवर-सलहय-पयंग-दंसमसय-मच्छियादिजादिभेदाणुववत्तीदो[3]। जस्स कम्मस्स उदएण जीवाणं पंचिंदिय-जादिभावेण समाणत्तं होदि तं पंचिंदियजादिणामकम्मं। तं चाणेयपयारं, अण्णहा मणुस-देव-णेरइय-सीह-हय-हत्थि-वय-वग्घ-छवल्लादिजादिभेदाणुववत्तीदो।

जं तं सरीरणामकम्मं तं पंचविहं, ओरालियसरीरणामं वेउव्वियसरीरणामं आहारसरीरणामं तेयासरीरणामं कम्मइयसरीरणामं चेदि ॥ ३१ ॥

कदम्ब, इमली, शालि, धान्य, जौ, और गेहूं आदि जातियोंका भेद नहीं हो सकता है। जिस कर्मके उदयसे जीवोंकी द्वीन्द्रियत्वकी अपेक्षा समानता होती है वह द्वीन्द्रियजातिनामकर्म कहलाता है। वह भी अनेक प्रकारका है, अन्यथा शंख, मातृवाह, क्षुल्लक, वराटक (कौंडी), अरिष्ट, शुक्ति, (सीप), गंडोला और कुक्षि-कृमि (पेटमें उत्पन्न होनेवाला कीड़ा) आदि जातियोंका भेद नहीं बन सकता है। जिस कर्मके उदयसे जीवोंकी त्रीन्द्रियभावकी अपेक्षा समानता होती है, वह त्रीन्द्रियजातिनामकर्म है। वह भी अनेक प्रकारका है, अन्यथा, कुंथु, मत्कुण (खटमल) जूं, बिच्छू, गोम्ही, इन्द्रगोप, और पिपीलिका (चींटी) आदि जातियोंका भेद हो नहीं सकता है। जिस कर्मके उदयसे जीवोंकी चतुरिन्द्रियभावकी अपेक्षा समानता होती है वह चतुरिन्द्रियजाति-नामकर्म है। वह कर्म अनेक प्रकारका है, अन्यथा भ्रमर, मधुकर, शलभ, पतंग, दंश-मशक और मक्खी आदि जातियोंका भेद नहीं हो सकता है। जिस कर्मके उदयसे जीवोंकी पंचेन्द्रियजातित्वके साथ समानता होती है, वह पंचेन्द्रियजातिनामकर्म है। वह कर्म अनेक प्रकारका है, अन्यथा, मनुष्य, देव, नारकी, सिंह, अश्व, हस्ती, वृक, व्याघ्र और चीता आदि जातियोंका भेद बन नहीं सकता है।

जो शरीरनामकर्म है वह पांच प्रकारका है— औदारिकशरीरनामकर्म, वैक्रियिकशरीरनामकर्म, आहारकशरीरनामकर्म, तैजसशरीरनामकर्म और कार्मणशरीरनामकर्म ॥ ३१ ॥

---

१ सत्प्ररूप. (भाग १) पृ. २४१. २ सत्प्ररूप. (भाग १) पृ. २४३. ३ सत्प्ररूप. (भाग १) पृ. २४५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जस्स कम्मस्स उदएण आहारवग्गणाए पोग्गलक्खंधा जीवेणोगाहदेसट्ठिदा रस-रुहिर-मांस-मेदट्ठि-मज्ज-सुक्कसहावओरालियसरीरसरूवेण परिणमंति तस्स ओरालियसरीरमिदि सण्णा[2]। जस्स कम्मस्स उदएण आहारवग्गणाए खंधा अणिमादिअट्ठगुणोवलक्खियसुहासुहप्पयवेउव्वियसरीरसरूवेण परिणमंति तस्स वेउव्वियसरीरमिदि सण्णा[3]। जस्स कम्मस्स उदएण आहारवग्गणाए खंधा आहारसरीरसरूवेण परिणमंति तस्स आहारसरीरमिदि सण्णा[4]। जस्स कम्मस्स उदएण तेजइयवग्गणक्खंधा णिस्सरणाणिस्सरण-पसत्थापसत्थप्पयतेयासरीरसरूवेण परिणमंति तं तेयासरीरं णाम[5], कारणे कज्जुवयारादो। जस्स कम्मस्स उदओ कुंभंडफलस्स वेंटो व्व सव्वकम्मासयभूदो तस्स कम्मइयसरीरमिदि सण्णा[6]।

जिस कर्मके उदयसे जीवके द्वारा अवगाह-देशमें स्थित आहारवर्गणाके पुद्गल-स्कन्ध रस, रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा, और शुक्र स्वभाववाले औदारिक शरीरके स्वरूपसे परिणत होते हैं, उस कर्मकी 'औदारिकशरीर' यह संज्ञा है। जिस कर्मके उदयसे आहारवर्गणाके स्कन्ध अणिमा आदि गुणोंसे उपलक्षित शुभाशुभात्मक वैक्रियिकशरीरके स्वरूपसे परिणत होते हैं, उस कर्मकी 'वैक्रियिकशरीर' यह संज्ञा है। जिस कर्मके उदयसे आहारवर्गणाके स्कन्ध आहारशरीरके स्वरूपसे परिणत होते हैं उस कर्मकी 'आहारशरीर' यह संज्ञा है। जिस कर्मके उदयसे तैजसवर्गणाके स्कन्ध निस्सरण-अनिस्सरणात्मक और प्रशस्त-अप्रशस्तात्मक तैजसशरीरके स्वरूपसे परिणत होते हैं, वह कारणमें कार्यके उपचारसे तैजसशरीरनामकर्म कहलाता है। जिस कर्मका उदय कूष्मांडफलके वेंटके समान सर्व कर्मोंका आश्रयभूत हो, उस कर्मकी 'कार्मणशरीर' यह संज्ञा है।

---

१ प्रतिषु 'णोगाद' इति पाठः।

२ उदारं स्थूलं, उदारे भवमौदारिकम्। उदारं प्रयोजनमस्येति वा औदारिकम्। स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. २, ३६.

३ अष्टगुणैश्वर्ययोगादेकानेकाणुमहच्छरीरविविधकरणं विक्रिया। सा प्रयोजनमस्येति वैक्रियिकम्। स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. २, ३६.

४ सूक्ष्मपदार्थनिर्ज्ञानार्थमसंयमपरिजिहीर्षया वा प्रमत्तसंयतेनाह्रियते निर्वर्त्यते तदित्याहारकम्। स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. २, ३६.

५ यत्तेजोनिमित्तं तेजसि वा भवं तत्तैजसम्। स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. २, ३६.

६ कर्मणां कार्यं कार्मणम्। स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. २, ३६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जं तं सरीरबंधणणामकम्मं तं पंचविहं, ओरालियसरीरबंधणणामं वेउव्वियसरीरबंधणणामं आहारसरीरबंधणणामं तेजासरीरबंधणणामं कम्मइयसरीरबंधणणामं चेदि ॥ ३२ ॥

जस्स कम्मस्स उदएण ओरालियसरीरपरमाणू अण्णोण्णेण बंधमागच्छंति तमोरालियसरीरबंधणं णाम । एवं सेससरीरबंधणाणं पि अत्थो वत्तव्वो ।

जं तं सरीरसंघादणामकम्मं तं पंचविहं, ओरालियसरीरसंघादणामं वेउव्वियसरीरसंघादणामं आहारसरीरसंघादणामं तेयासरीरसंघादणामं कम्मइयसरीरसंघादणामं चेदि ॥ ३३ ॥

जस्स कम्मस्स उदएण ओरालियसरीरक्खंधाणं सरीरभावमुवगयाणं बंधणणामकम्मोदएण एगबंधणबद्धाण मट्ठत्तं होदि तमोरालियसरीरसंघादं णाम । एवं सेससरीरसंघादाणं पि अत्थो वत्तव्वो ।

जं तं सरीरसंठाणणामकम्मं तं छव्विहं, समचउरससरीरसंठाणणामं णग्गोहपरिमंडलसरीरसंठाणणामं सादियसरीरसंठाणणामं खुज्जसरीरसंठाणणामं वामणसरीरसंठाणणामं हुंडसरीरसंठाणणामं चेदि ॥३४॥

जो शरीरबंधननामकर्म है वह पांच प्रकारका है– औदारिकशरीरबंधननामकर्म, वैक्रियिकशरीरबंधननामकर्म, आहारकशरीरबंधननामकर्म तैजसशरीरबंधननामकर्म और कार्मणशरीरबंधननामकर्म ॥ ३२ ॥

जिस कर्मके उदयसे औदारिकशरीरके परमाणु परस्पर बन्धको प्राप्त होते हैं, उसे औदारिकशरीरबन्धन नामकर्म कहते हैं । इस प्रकार शेष शरीरसम्बन्धी बन्धनोंका भी अर्थ कहना चाहिए ।

जो शरीरसंघातनामकर्म है वह पांच प्रकारका है—औदारिकशरीरसंघातनामकर्म, वैक्रियिकशरीरसंघातनामकर्म, आहारकशरीरसंघातनामकर्म, तैजसशरीरसंघातनामकर्म और कार्मणशरीरसंघातनामकर्म ॥ ३३ ॥

शरीरभावको प्राप्त तथा बन्धननामकर्मके उदयसे एक बन्धन-बद्ध औदारिक शरीरके स्कन्धोंका जिस कर्मके उदयसे छिद्र-राहित्य होता है वह औदारिकशरीरसंघात नामकर्म है । इसी प्रकार शेष शरीर-संघातोंका भी अर्थ कहना चाहिए ।

जो शरीरसंस्थाननामकर्म है वह छह प्रकारका है—समचतुरस्रशरीरसंस्थाननामकर्म, न्यग्रोधपरिमंडलशरीरसंस्थाननामकर्म, स्वातिशरीरसंस्थाननामकर्म, कुब्जशरीरसंस्थाननामकर्म, वामनशरीरसंस्थाननामकर्म और हुंडशरीरसंस्थाननामकर्म ॥ ३४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समं चतुरस्रं समचतुरस्रं समविभक्तमित्यर्थः । जस्स कम्मस्स उदएण जीवाणं समचउरससंठाणं होदि तस्स कम्मस्स समचउरससंठाणमिदि सण्णा[1] । णग्गोहो वड-रुक्खो, तस्स परिमंडलं व परिमंडलं जस्स सरीरस्स तण्णग्गोहपरिमंडलं । णग्गोहपरि-मंडलमेव सरीरसंठाणं णग्गोहपरिमंडलसरीरसंठाणं[2] आयतवृत्तमित्यर्थः । स्वातिर्वल्मीकः शाल्मलिर्वा, तस्य संस्थानमिव संस्थानं यस्य शरीरस्य तत्स्वातिशरीरसंस्थानम्[3], अहो विसालं उवरि सण्णमिदि जं उत्तं होदि । कुब्जस्य शरीरं कुब्जशरीरम् । तस्य कुब्ज-शरीरस्य संस्थानमिव संस्थानं यस्य तत्कुब्जशरीरसंस्थानम् । जस्स कम्मस्स उदएण साहाणं दीहत्तं मज्झस्स रहस्सत्तं च होदि तस्स खुज्जसरीरसंठाणमिदि सण्णा[4] । वामनस्य शरीरं वामनशरीरम् । वामनशरीरस्य संस्थानमिव संस्थानं यस्य तद्वामनशरीरसंस्थानम्[5] ।

समान चतुरस्र अर्थात् सम-विभक्तको समचतुरस्र कहते हैं । जिस कर्मके उदयसे जीवोंके समचतुरस्रसंस्थान होता है उस कर्मकी 'समचतुरस्रसंस्थान' यह संज्ञा है । न्यग्रोध वटवृक्षको कहते हैं, उसके परिमंडलके समान परिमंडल जिस शरीरका होता है उसे न्यग्रोधपरिमंडल कहते हैं । न्यग्रोध-परिमंडलरूप ही जो शरीरसंस्थान होता है, वह न्यग्रोधपरिमंडल अर्थात् आयत-वृत्त शरीरसंस्थाननामकर्म है । स्वाति नाम वल्मीक या शाल्मली वृक्षका है । उसके आकारके समान आकार जिस शरीरका है, वह स्वातिशरीरसंस्थान है । अर्थात् यह शरीर नाभिसे नीचे विशाल और ऊपर सूक्ष्म या हीन होता है । कुबड़े शरीरको कुब्ज-शरीर कहते हैं । उस कुब्जशरीरके संस्थानके समान संस्थान जिस शरीरका होता है, वह कुब्जशरीरसंस्थान है । जिस कर्मके उदयसे शाखाओंके दीर्घता और मध्य भागके ह्रस्वता होती है, उसकी 'कुब्जशरीरसंस्थान' यह संज्ञा है । बौनेके शरीरको वामनशरीर कहते हैं । वामनशरीरके संस्थानके समान संस्थान जिससे होता है, वह वामनशरीर-

१ तत्रोर्ध्वाधोमध्येषु समप्रविभागेन शरीरावयवसंनिवेशव्यवस्थापनं कुशलशिल्पिनिर्वर्तितसमस्थितिचक्रवत् अवस्थानकरं समचतुरस्रसंस्थाननाम । त. रा. वा. ८, ११.

२ नाभेरुपरिष्टाद् भूयसो देहसंनिवेशस्याधस्ताच्चाल्पीयसो जनकं न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थाननाम न्यग्रोधा-कारसमताप्रापित्वादन्वर्थम् । त. रा. वा. ८, ११.

३ तद्विपरीतसंनिवेशकरं स्वातिसंस्थाननाम वल्मीकतुल्याकारं । त. रा. वा. ८, ११. आदिरिहोत्सेधाख्यो नाभेरधस्तनो देहभागो गृह्यते, ततः सह आदिना नाभेरधस्तनभागेन यथोक्तप्रमाणलक्षणेन वर्तत इति सादि, विशेषणान्यथानुपपत्या विशिष्टार्थलाभः । अपरे तु साचीति पठन्ति, तत्र साचीति समयविदः शाल्मलीतरुमाचक्षते, ततः साचीव यत्संस्थानं तत्साचि, यथा शाल्मलीतरोः स्कन्धकाण्डमतिपुष्टं उपरि च न तदनुरूपा महाविशालता तद्वदस्यापि संस्थानस्याधोभागः परिपूर्णो भवति, उपरिभागस्तु न तथेति भावः । कर्मप्रकृति. पृ. ४.

४ पृष्ठप्रदेशभाविबहुपुद्गलप्रचयविशेषलक्षणस्य निर्वर्तकं कुब्जकसंस्थाननाम । त. रा. वा. ८, ११.

५ सर्वांगोपांगह्रस्वव्यवस्थाविशेषकारणं वामनसंस्थाननाम । त. रा. वा. ८, ११.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जस्स कम्मस्स उदएण साहाणं जं रहस्सत्तं कायस्स दीहत्तं च होदि तं वामणसरीरसंठाणं होदि । विसमपासाणभरियदइओ व्व विस्सदो[1] विसमं हुंडं । हुंडस्स सरीरं हुंडसरीरं, तस्स संठाणमिव संठाणं जस्स तं हुंडसरीरसंठाणं णाम[2] । जस्स कम्मस्स उदएण पुव्वुत्त-पंचसंठाणेहिंतो वदिरित्तमण्णसंठाणमुप्पज्जइ एक्कत्तीसभेदभिण्णं तं हुंडसंठाणसण्णिदं होदि त्ति णादव्वं ।

जं तं सरीरअंगोवंगणामकम्मं तं तिविहं ओरालियसरीरअंगो-वंगणामं वेउव्वियसरीरअंगोवंगणामं आहारसरीरअंगोवंगणामं चेदि ॥ ३५ ॥

संस्थान है। जिस कर्मके उदयसे शाखाओंके ह्रस्वता और शरीरके दीर्घता होती है, वह वामनशरीरसंस्थाननामकर्म है। विषम अर्थात् समानता-रहित अनेक आकारवाले पाषाणोंसे भरी हुई मशकके समान सर्व ओरसे विषम आकारको हुंड कहते हैं। हुंडके शरीरको हुंडशरीर कहते हैं। उसके संस्थानके समान संस्थान जिससे होता है, उसका नाम हुंडशरीरसंस्थान है। जिस कर्मके उदयसे पूर्वोक्त पांच संस्थानोंसे व्यतिरिक्त, इकतीस भेद-भिन्न अन्य संस्थान उत्पन्न होता है, वह शरीर हुंडसंस्थानसंज्ञावाला है, ऐसा जानना चाहिए।

विशेषार्थ—आगे स्थानसमुत्कीर्तन चूलिकाके सूत्र ६८ की टीकामें धवलाकारने कहा है कि—“सव्वावयवेसु णियदसरूवपंचसंठाणेसु वे-तिण्णि-चदु-पंचसंठाणाणं संजोगेणं हुंडसंठाणमणेयभेदभिण्णमुप्पज्जदि” अर्थात् सर्व अवयवोंमें प्रथम पांच संस्थानोंका स्वरूप नियत होनेपर दो, तीन, चार व पांच संस्थानोंके संयोगसे हुंडसंस्थान अनेक भेद-भिन्न उत्पन्न होता है। इस निर्देशके आधारसे हुंडसंस्थानको ध्रुव मानकर हुंडसंस्थानके द्विसंयोगी आदि भंग कुल मिलकर इकतीस उत्पन्न होते हैं, जो इस प्रकार हैं–

द्विसंयोगी भंग $\frac{५}{१} = ५$; त्रिसंयोगी भंग $\frac{५ \times ४}{१ \times २} = १०$;

चतुःसंयोगी भंग $\frac{५ \times ४ \times ३}{१ \times २ \times ३} = १०$; पंचसंयोगी भंग $\frac{५ \times ४ \times ३ \times २}{१ \times २ \times ३ \times ४} = ५$;

छसंयोगी भंग $\frac{५ \times ४ \times ३ \times २ \times १}{१ \times २ \times ३ \times ४ \times ५} = १.$

इस प्रकार हुंडसंस्थानके समस्त संयोगी भंग ५+१०+१०+५+१=३१ होते हैं।

जो शरीर-अगोपांगनामकर्म है वह तीन प्रकारका है– औदारिकशरीरअगोपांग-नामकर्म, वैक्रियिकशरीरअगोपांगनामकर्म और आहारकशरीर-अगोपांगनामकर्म ॥ ३५ ॥

---

१ आप्रतौ ‘ वस्स सव्वं दो ’ इति पाठः । अ-क-प्रत्योः ‘ वस्सदो ’ इति पाठः ।

२ सर्वांगोपांगानां हुंडसंस्थितत्वात् हुंडसंस्थाननाम । त. रा. वा. ८, ११.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जस्स कम्मस्स उदएण ओरालियसरीरस्स अंगोवंग-पच्चंगाणि उप्पज्जंति तं ओरालियसरीरअंगोवंगणामं । एवं सेसदोसरीरअंगोवंगाणं पि अत्थो वत्तव्वो । तेजा-कम्मइयसरीरअंगोवंगाणि णत्थि, तेसिं कर-चरण-गीवादिअवयवाभावा ।

जं तं सरीरसंघडणणामकम्मं तं छव्विहं, वज्जरिसहवइरणारायणसरीरसंघडणणामं वज्जणारायणसरीरसंघडणणामं णारायणसरीरसंघडणणामं अद्धणारायणसरीरसंघडणणामं खीलियसरीरसंघडणणामं असंपत्तसेवट्टसरीरसंघडणणामं चेदि ॥ ३६ ॥

संहननमस्थिसंचयः, ऋषभो वेष्टनम्, वज्रवदभेद्यत्वाद्वज्रऋषभः । वज्रवन्नाराचः वज्रनाराचः, तौ द्वावपि यस्मिन् वज्रशरीरसंहनने तद्वज्रऋषभवज्रनाराचशरीरसंहननम् । जस्स कम्मस्स उदएण वज्जहड्डाइं वज्जवेट्ठेण वेढियाइं वज्जणाराएण खीलियाइं च होंति तं वज्जरिसहवइरणारायणसरीरसंघडणमिदि उत्तं होदि[1] । एसो चेव हड्डबंधो वज्जरिसहवज्जिओ जस्स कम्मस्स उदएण होदि तं कम्मं वज्जणारायणसरीरसंघडणमिदि भण्णदे[2] ।

जिस कर्मके उदयसे औदारिकशरीरके अंग, उपांग और प्रत्यंग उत्पन्न होते हैं, वह औदारिकशरीर-अंगोपांगनामकर्म है। इसी प्रकार शेष दो अर्थात् वैक्रियिक और आहारक शरीरसम्बन्धी अंगोपांगोंका भी अर्थ कहना चाहिए। तैजस और कार्मणशरीरके अंगोपांग नहीं होते हैं, क्योंकि, उनके हाथ, पांव, गला आदि अवयवोंका अभाव है।

जो शरीरसंहनन नामकर्म है वह छह प्रकारका है—वज्रऋषभवज्रनाराचशरीरसंहनन नामकर्म, वज्रनाराचशरीरसंहनन नामकर्म, नाराचशरीरसंहनन नामकर्म, अर्धनाराचशरीरसंहनन नामकर्म, कीलकशरीरसंहनन नामकर्म और असंप्राप्तासृपाटिकाशरीरसंहनन नामकर्म ॥ ३६ ॥

हड्डियोंके संचयको संहनन कहते हैं। वेष्टनको ऋषभ कहते हैं। वज्रके समान अभेद्य होनेसे 'वज्रऋषभ' कहलाता है। वज्रके समान जो नाराच है वह वज्रनाराच कहलाता है। ये दोनों ही, अर्थात् वज्रऋषभ और वज्रनाराच, जिस वज्रशरीरसंहननमें होते हैं, वह वज्रऋषभवज्रनाराच शरीरसंहनन है। जिस कर्मके उदयसे वज्रमय हड्डियां वज्रमय वेष्टनसे वेष्टित और वज्रमय नाराचसे कीलित होती हैं, वह वज्रऋषभवज्रनाराच शरीरसंहनन है, ऐसा अर्थ कहा गया है। यह उपर्युक्त अस्थिबन्ध ही जिस कर्मके उदयसे वज्रऋषभसे रहित होता है, वह कर्म 'वज्रनाराचशरीरसंहनन' इस

१ तत्र वज्राकारोभयास्थिसंधि प्रत्येकं मध्ये वलयबन्धनं सनाराचं सुसंहतं वज्रर्षभनाराचसंहननम् । त. रा. वा. ८, ११. ××× रिसहो पट्टो अ कीलिआ वज्जं । उभओ मक्कडबंधो नारायं इममुरालंगे । क. ग्रं. १, ३९.

२ तदेव वलयबंधनविरहितं वज्रनाराचसंहननं । त. रा. वा. ८, ११.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जस्स कम्मस्स उदएण वज्जविसेसणरहिदणारायण-खीलियाओ हड्डसंधीओ हवंति तं णारायणसरीरसंघडणं णाम[1]। जस्स कम्मस्स उदएण हड्डसंधीओ णाराएण अद्धविद्धाओ हवंति तं अद्धणारायणसरीरसंघडणं णाम[2]। जस्स कम्मस्स उदएण अवज्जहड्डाइं खीलियाइं हवंति तं खीलियसरीरसंघडणं णाम[3]। (जस्स कम्मस्स उदएण अण्णोण्णमसंपत्ताइं सरिसिवहड्डाइं[4] व छिराबद्धाइं हड्डाइं हवंति तं असंपत्तसेवट्टसरीरसंघडणं णाम[5])

जं तं वण्णणामकम्मं तं पंचविहं, किण्हवण्णणामं णीलवण्णणामं रुहिरवण्णणामं हालिद्दवण्णणामं सुक्किलवण्णणामं चेदि[6] ॥३७॥

जस्स कम्मस्स उदएण सरीरपोग्गलाणं किण्हवण्णो उप्पज्जदि तं किण्हवण्णं णाम। एवं सेसवण्णाणं पि अत्थो वत्तव्वो।

जं तं गंधणामकम्मं तं दुविहं, सुरहिगंधं दुरहिगंधं चेव[7] ॥ ३८॥

नामसे कहा जाता है। जिस कर्मके उदयसे वज्र-विशेषणसे रहित नाराच-कीलें और हड्डियोंकी संधियां होती हैं वह नाराचशरीरसंहनन नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे हाड़ोंकी सन्धियां नाराचसे आधी विधी हुई होती हैं, वह अर्धनाराचशरीरसंहनन नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे वज्र-रहित हड्डियां और कीलें होती हैं वह कीलकशरीरसंहनन नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे सरीसृप अर्थात् सर्पकी हड्डियोंके समान परस्परमें असंप्राप्त और शिराबद्ध हड्डियां होती हैं, वह असंप्राप्तासृपाटिकाशरीरसंहनन नामकर्म है।

जो वर्णनामकर्म है वह पांच प्रकारका है— कृष्णवर्ण नामकर्म, नीलवर्ण नामकर्म, रुधिरवर्ण नामकर्म, हारिद्रवर्ण नामकर्म और शुक्लवर्ण नामकर्म ॥ ३७ ॥

जिस कर्मके उदयसे शरीरसम्बन्धी पुद्गलोंका कृष्णवर्ण उत्पन्न होता है, वह कृष्णवर्णनामकर्म है। इसी प्रकार शेष वर्णनामकर्मोंका भी अर्थ कहना चाहिए।

जो गन्धनामकर्म है वह दो प्रकारका है— सुरभिगन्ध और दुरभिगन्ध ॥ ३८ ॥

---

१ तदेवोभयं वज्राकारबंधनव्यपेतमवलयबन्धनं सनाराचं नाराचसंहननं। त. रा. वा. ८, ११.

२ तदेवैकपार्श्वे सनाराचं इतरत्रानाराचं अर्धनाराचसंहननं। त. रा. वा. ८, ११.

३ तदुभयमंते सकीलकं कीलिकासंहननं। त. रा. वा. ८, ११.

४ प्रतिषु 'सरिसिवद्णाइं' इति पाठः।

५ अंतरसंप्राप्तपरस्परास्थिसंधि बहिःसिरास्नायुमांसघटितं असंप्राप्तासृपाटिकासंहननं। त. रा. वा. ८, ११.

६ तत्पंचविधं— शुक्लवर्णनाम कृष्णवर्णनाम नीलवर्णनाम रक्तवर्णनाम हरिद्र्णनाम (हारिद्रवर्णनाम) चेति। स. सि.; त. रा. वा. ८, ११.

७ तद्द्विविधं सुरभिगन्धनाम असुरभिगन्धनाम। स. सि.; त. रा. वा. ८, ११.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

जस्स कम्मस्स उदएण सरीरपोग्गला सुअंधा होंति तं सुरहिगंधं णाम । जस्स कम्मस्स उदएण सरीरपोग्गला दुग्गंधा होंति तं दुरहिगंधं णाम ।

जं तं रसणामकम्मं तं पंचविहं, तित्तणामं कडुवणामं कसायणामं अंबणामं महुरणामं चेदि[1] ॥ ३९ ॥

जस्स कम्मस्स उदएण सरीरपोग्गला तित्तरसेण परिणमंति तं तित्तं णाम । एवं सेसरसाणमत्थो वत्तव्वो ।

जं तं पासणामकम्मं तं अट्ठविहं, कक्खडणामं मउवणामं गुरुअणामं लहुअणामं णिद्धणामं लुक्खणामं सीदणामं उसुणणामं चेदि[2] ॥ ४० ॥

जस्स कम्मस्स उदएण सरीरपोग्गलाणं कक्खडभावो होदि तं कक्खडं णाम । एवं सेसफासाणं पि अत्थो वत्तव्वो ।

जिस कर्मके उदयसे शरीरसम्बन्धी पुद्गल सुगन्धित होते हैं, वह सुरभिगन्ध नामकर्म है । जिस कर्मके उदयसे शरीरसम्बन्धी पुद्गल दुर्गन्धित होते हैं, वह दुरभिगन्ध नामकर्म है ।

जो रसनामकर्म है वह पांच प्रकारका है—तिक्तनामकर्म, कटुकनामकर्म, कषायनामकर्म, आम्लनामकर्म और मधुरनामकर्म ॥ ३९ ॥

जिस कर्मके उदयसे शरीरसम्बन्धी पुद्गल तिक्तरससे परिणत होते हैं, वह तिक्तनामकर्म है । इसी प्रकार शेष रसनामकर्मोंका अर्थ कहना चाहिए ।

जो स्पर्शनामकर्म है वह आठ प्रकारका है—कर्कशनामकर्म, मृदुकनामकर्म, गुरुकनामकर्म लघुकनामकर्म, स्निग्धनामकर्म, रूक्षनामकर्म, शीतनामकर्म और उष्णनामकर्म ॥ ४० ॥

जिस कर्मके उदयसे शरीरसम्बन्धी पुद्गलोंके कर्कशता होती है, वह कर्कशनामकर्म है । इसी प्रकार शेष स्पर्शनामकर्मोंका अर्थ कहना चाहिए ।

---

१ तत्पंचविधं– तिक्तनाम कटुकनाम कषायनाम आम्लनाम मधुरनाम चेति । स. सि.; त. रा. वा. ८, ११.

२ तदष्टविधं– कर्कशनाम मृदुनाम गुरुनाम लघुनाम स्निग्धनाम रूक्षनाम शीतनाम उष्णनाम चेति । स. सि.; त. रा. वा. ८, ११.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जं तं आणुपुव्वीणामकम्मं तं चउव्विहं, णिरयगदिपाओग्गाणुपुव्वीणामं तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वीणामं मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वीणामं देवगदिपाओग्गाणुपुव्वीणामं चेदि ॥ ४१ ॥

जस्स कम्मस्स उदएण णिरयगइं गयस्स जीवस्स विग्गहगईए वट्टमाणयस्स णिरयगइपाओग्गसंठाणं होदि तं णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वीणामं[1]। एवं सेसआणुपुव्वीणं पि अत्थो वत्तव्वो।

अगुरुअलहुअणामं उवघादणामं परघादणामं उस्सासणामं आदावणामं उज्जोवणामं ॥ ४२ ॥

एदासिमेत्थ णिद्देसो किमट्ठो ? णामस्स कम्मस्स बादालीसं पिंडपयडीओ त्ति णिद्देसो पाधण्णपदत्थो त्ति जाणावणट्ठो। कुदो ? एदासिं पिंडपयडित्ताभावा।

जं तं विहायगइणामकम्मं तं दुविहं, पसत्थविहायोगदी अप्पसत्थविहायोगदी चेदि ॥ ४३ ॥

जो आनुपूर्वी नामकर्म है वह चार प्रकारका है—नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म, तिर्यग्गतिप्रायाग्योनुपूर्वी नामकर्म, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म और देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म ॥ ४१ ॥

जिस कर्मके उदयसे नरकगतिको गये हुए और विग्रहगतिमें वर्तमान जीवके नरकगतिके योग्य संस्थान होता है, वह नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म है। इसी प्रकार शेष आनुपूर्वी नामकर्मोंका भी अर्थ कहना चाहिए।

अगुरुलघु नामकर्म, उपघात नामकर्म, परघात नामकर्म, उच्छ्वास नामकर्म, आताप नामकर्म और उद्योत नामकर्म ॥ ४२ ॥

शंका—यहांपर इन प्रकृतियोंका निर्देश किसलिए किया है ?

समाधान—'नामकर्मकी ब्यालीस पिंडप्रकृतियां हैं' यह निर्देश प्राधान्यपदकी अपेक्षा है, इस बातके बतलानेके लिए यहांपर उक्त प्रकृतियोंका निर्देश किया गया है, क्योंकि, सूत्रमें बतलाई गई इन प्रकृतियोंके पिंडप्रकृतिताका अभाव है। अर्थात् ये प्रकृतियां भेद-रहित हैं।

जो विहायोगति नामकर्म है वह दो प्रकारका है—प्रशस्तविहायोगति और अप्रशस्तविहायोगति ॥ ४३ ॥

---

१ यदा छिन्नायुर्मनुष्यस्तिर्यग्वा पूर्वेण शरीरेण वियुज्यते तदैव नरकभवं प्रत्यभिमुखस्य तस्य पूर्वशरीरसंस्थानानिवृत्तिकारणं विग्रहगतावुदेति तन्नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम। त. रा. वा. ८, ११.

२ तद्द्विविधं–प्रशस्ताप्रशस्तभेदात्। स. सि.; त. रा. वा. ८, ११.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

जस्स कम्मस्स उदएण जीवाणं सीह-कुंजर-वसहाणं व पसत्था गई होज्ज, तं पसत्थविहायगदी णाम[1]। जस्स कम्मस्स उदएण खरोट्ट-सियालाणं व अप्पसत्था गई होज्ज, सा अप्पसत्थविहायोगदी णाम[2]।

तसणामं थावरणामं बादरणामं सुहुमणामं पज्जत्तणामं, एवं जाव णिमिण-तित्थयरणामं चेदि ॥ ४४ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो पुव्वं परूविदो। ण पुणरुत्तदोसो वि, एदाओ पिंडपगडीओ ण होंति त्ति जाणावणट्ठं पुणो परूवणादो।

गोदस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ, उच्चागोदं चेव णिच्चागोदं चेव[3] ॥ ४५ ॥

जस्स कम्मस्स उदएण उच्चागोदं होदि तमुच्चागोदं[4]। गोत्रं कुलं वंशः संतान-

---

जिस कर्मके उदयसे जीवोंके सिंह, कुंजर, और वृषभ (बैल) के समान प्रशस्त गति होवे, वह प्रशस्तविहायोगति नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे गर्दभ, ऊंट और सियालोंके समान अप्रशस्तगति होवे, वह अप्रशस्तविहायोगति नामकर्म है।

त्रस नामकर्म, स्थावर नामकर्म, बादर नामकर्म, सूक्ष्म नामकर्म, पर्याप्त नामकर्म, इनको आदि लेकर निर्माण और तीर्थंकर नामकर्म तक। अर्थात् अपर्याप्त नामकर्म, प्रत्येकशरीर नामकर्म, साधारणशरीर नामकर्म, स्थिर नामकर्म, अस्थिर नामकर्म, शुभ नामकर्म, अशुभ नामकर्म, सुभग नामकर्म, दुर्भग नामकर्म, सुस्वर नामकर्म, दुःस्वर नामकर्म, आदेय नामकर्म, अनादेय नामकर्म, यशःकीर्ति नामकर्म, अयशःकीर्ति नामकर्म, निर्माण नामकर्म और तीर्थंकर नामकर्म ॥ ४४ ॥

इस सूत्रका अर्थ पहले अर्थात् २८ वें सूत्रकी व्याख्यामें निरूपण किया जा चुका है। तथापि दुबारा यहां उक्त प्रकृतियोंके कहनेपर पुनरुक्तदोष नहीं आता है, क्योंकि, ये सूत्र-पठित प्रकृतियां पिंडप्रकृतियां नहीं हैं, इस बातके बतलानेके लिए उनका पुनः प्ररूपण किया गया है।

गोत्रकर्मकी दो प्रकृतियां हैं— उच्चगोत्र और नीचगोत्र ॥ ४५ ॥

जिस कर्मके उदयसे जीवोंके उच्चगोत्र होता है, वह उच्चगोत्रकर्म है। गोत्र, कुल,

---

१ वरवृषभद्विरदादिप्रशस्तगतिकारणं प्रशस्तविहायोगतिनाम। त. रा. वा. ८, ११.

२ उष्ट्रखराद्यप्रशस्तगतिनिमित्तमप्रशस्तविहायोगतिनाम। त. रा. वा. ८, ११.

३ उच्चैर्नीचैश्च। त. सू. ८, १२.

४ यस्योदयाल्लोकपूजितेषु कुलेषु जन्म तदुच्चैर्गोत्रम्। स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, १२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मित्येकोऽर्थः । जस्स कम्मस्स उदएण जीवाणं णीचगोदं होदि तं णीचगोदं णाम[1] ।

अंतराइयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ, दाणंतराइयं लाहंतराइयं भोगंतराइयं परिभोगंतराइयं वीरियंतराइयं चेदि[2] ॥ ४६ ॥

जस्स कम्मस्स उदएण देंतस्स विग्घं होदि तं दाणंतराइयं । जस्स कम्मस्स उदएण लाहस्स विग्घं होदि तल्लाहंतराइयं । जस्स कम्मस्स उदएण भोगस्स विग्घं होदि तं भोगंतराइयं । सकृद् भुज्यत इति भोगः, ताम्बूलाशन-पानादिः[3] । जस्स कम्मस्स उदएण परिभोगस्स विग्घं होदि तं परिभोगंतराइयं । पुनः पुनः परिभुज्यत इति परिभोगः, स्त्रीवस्त्राभरणादिः । जस्स कम्मस्स उदएण वीरियस्स विग्घं होदि तं वीरियंतराइयं णाम । वीर्यं[4] बलं शुक्रमित्येकोऽर्थः ।

एवं पयडिसमुक्कित्तणं णाम पढमा चूलिया समत्ता ।

वंश और संतान, ये सब एकार्थवाचक नाम हैं । जिस कर्मके उदयसे जीवोंके नीचगोत्र होता है, उसे नीचगोत्रनामकर्म कहते हैं ।

अन्तरायकर्मकी पांच प्रकृतियां हैं— दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, परिभोगान्तराय और वीर्यान्तराय ॥ ४६ ॥

जिस कर्मके उदयसे दान देते हुए जीवके विघ्न होता है, वह दानान्तरायकर्म है। जिस कर्मके उदयसे लाभमें विघ्न होता है, वह लाभान्तरायकर्म है । जिस कर्मके उदयसे भोगमें विघ्न होता है, वह भोगान्तरायकर्म है । जो वस्तु एक वार भोगी जाती है वह भोग है, जैसे ताम्बूल, भोजन, पान आदि । जिस कर्मके उदयसे परिभोगमें विघ्न होता है, वह परिभोगान्तरायकर्म है । जो वस्तु पुनः पुनः भोगी जाती है वह परिभोग है, जैसे स्त्री, वस्त्र, आभूषण आदि । जिस कर्मके उदयसे वीर्यमें विघ्न होता है, वह वीर्यान्तरायकर्म है । वीर्य, बल, और शुक्र, ये सब एकार्थक नाम हैं ।

इस प्रकार प्रकृतिसमुत्कीर्तन नामकी प्रथम चूलिका समाप्त हुई ।

---

१ यदुदयाद् गर्हितेषु कुलेषु जन्म तन्नीचैर्गोत्रम् । स. सि.; त. रा. वा., त. श्लो. वा. ८, १२.

२ दानलाभभोगोपभोगवीर्याणाम् । त. सू. ८, १३.

३ भुक्त्वा परिहातव्यो भोगो भुक्त्वा पुनश्च भोक्तव्यः । उपभोगोऽशनवसनप्रभृतिः पंचेन्द्रियो विषयः ॥ रत्नक. ३, ३७. भोगः सेव्यः सकृदुपभोगस्तु पुनः पुनः स्रगम्बरवत् ॥ सागार. ५, १४.

४ यदुदयाद्दातुकामोऽपि न प्रयच्छति, लब्धुकामोऽपि न लभते, भोक्तुमिच्छन्नपि न भुंक्ते, उपभोक्तुमभिवाञ्छन्नपि नोपभुंक्ते, उत्सहितुकामोऽपि नोत्सहते, त एते पंचान्तरायस्य भेदाः । स. सि.; त. रा. वा. ८, १३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एत्तो ट्ठाणसमुक्कित्तणं वण्णइस्सामो ॥ १ ॥

किं स्थानम् ? तिष्ठन्त्यस्यां संख्यायामस्मिन् वा अवस्थाविशेषे प्रकृतयः इति स्थानम्[1]। ठाणं ठिदी अवट्ठाणमिदि एयट्ठो। समुक्कित्तणं वण्णणं परूवणमिदि उत्तं होदि। ट्ठाणस्स समुक्कित्तणा ट्ठाणसमुक्कित्तणा, तं वण्णइस्सामो कस्सामो त्ति उत्तं होदि। ठाणसमुक्कित्तणा किमट्ठमागदा ? पुव्वं पयडिसमुक्कित्तणाए जाओ पयडीओ परूविदाओ तासिं बंधो किमक्कमेण होदि, किं कमेणेत्ति पुच्छिदे एवं होदि त्ति जाणावणट्ठं ट्ठाणसमुक्कित्तणा आगदा[2]।

तं जहा ॥ २ ॥

सा ठाणसमुक्कित्तणा कधं उच्चदि त्ति पुच्छिदे एवं उच्चदि त्ति जाणावेंतो ताव ट्ठाणाणं चेव सरूवसंखाणं परूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

अब इससे आगे स्थानसमुत्कीर्तनका वर्णन करेंगे ॥ १ ॥

शंका – स्थान किसे कहते हैं ?

समाधान—जिस संख्यामें, अथवा जिस अवस्थाविशेषमें, प्रकृतियां ठहरती हैं, उसे 'स्थान' कहते हैं।

स्थान, स्थिति और अवस्थान, ये तीनों एकार्थक हैं। समुत्कीर्तन, वर्णन और प्ररूपण, इनका अर्थ एक ही कहा गया है। स्थानकी समुत्कीर्तनाको स्थानसमुत्कीर्तना कहते हैं। उसका वर्णन अर्थात् व्याख्यान करेंगे, यह अर्थ कहा गया है।

शंका—यह स्थानसमुत्कीर्तना नामकी चूलिका किसलिए आई है ?

समाधान—पहले प्रकृतिसमुत्कीर्तना नामकी चूलिकामें जिन प्रकृतियोंका प्ररूपण कर आए हैं, उन प्रकृतियोंका बन्ध क्या एक साथ होता है, अथवा क्रमसे होता है, ऐसा पूछने पर 'इस प्रकार होता है' यह बात बतलानेके लिए यह स्थानसमुत्कीर्तना नामकी चूलिका आई है।

वह स्थानसमुत्कीर्तन किस प्रकार है ? ॥ २ ॥

वह स्थानसमुत्कीर्तना किस प्रकार कही जाती है, ऐसा पूछनेपर 'इस प्रकार कही जाती है' यह बतलाते हुए आचार्य पहले स्थानोंके ही स्वरूप-संख्यानका निरूपण करनेके लिए उत्तर-सूत्र कहते हैं—

---

१ किं स्थानम् ? एकस्य जीवस्यैकस्मिन् समये संभवंतीनां समूहः। गो. क. जी. प्र. ४५१.

२ तत्किमर्थमागतं ? पूर्वं प्रकृतिसमुत्कीर्तने याः प्रकृतयः उक्तास्तासां बन्धः क्रमेणाक्रमेण वेति प्रश्ने एवं स्यादिति ज्ञापयितुं। गो. क. जी. प्र. ४५१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा ॥ ३ ॥

तं पयडिट्ठाणं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा होदि, एदेहिंतो वदिरित्त-बंधगाणमभावा[1]। एत्थ पढमाए अत्थे छट्ठी दट्ठव्वा, तेण मिच्छादिट्ठिट्ठाणमिदि संबंधेदव्वं। कधं तस्स ट्ठाणववएसो? तिष्ठन्त्यस्मिन् बंधहेतुप्रकृतय इति स्थानशब्दस्य व्युत्पत्तेः। संजदस्सेत्ति वुत्ते अट्ठ वि संजदगुणट्ठाणाणि घेत्तव्वाणि, संजदभावं पडि भेदाभावा। णवमं गुणट्ठाणं (ण) घेप्पदि, तस्स बंधगत्ताभावा।

णाणावरणीयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ, आभिणिबोधियणाणावरणीयं सुदणाणावरणीयं ओधिणाणावरणीयं मणपज्जवणाणावरणीयं केवलणाणावरणीयं चेदि ॥ ४ ॥

वह स्थान मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयतसम्बन्धी है ॥ ३ ॥

वह स्थान अर्थात् प्रकृतिस्थान, मिथ्यादृष्टिके, अथवा सासादनसम्यग्दृष्टिके, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टिके, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टिके, अथवा संयतासंयतके, अथवा संयतके होता है; क्योंकि, इनसे अतिरिक्त अन्य बन्धकोंका अभाव है। यहां, अर्थात् मिथ्यादृष्टि आदि पदोंमें, प्रथमाके अर्थमें षष्ठी विभक्ति जानना चाहिए, अतएव मिथ्यादृष्टिस्थान, सासादनसम्यग्दृष्टिस्थान, इत्यादि प्रकारसे सम्बन्ध करना चाहिए।

शंका—मिथ्यादृष्टि आदि बन्धकोंके 'स्थान' यह नाम कैसे हुआ?

समाधान—'बन्धकी कारणभूत प्रकृतियां जिस बन्धक जीवमें रहती हैं' इस प्रकार स्थान शब्दकी व्युत्पत्ति करनेसे मिथ्यादृष्टि आदि बन्धकोंके 'स्थान' यह नाम सार्थक हो जाता है।

'संयतसम्बन्धी स्थान' ऐसा कहनेपर प्रमत्तसंयत आदि आठ ही संयत-गुणस्थानोंको ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, संयतभावकी अपेक्षा उनमें कोई भेद नहीं है। यहां नवमां, अर्थात् अयोगिकेवली गुणस्थान, नहीं ग्रहण किया गया है, क्योंकि, उसके बन्धकपनेका अभाव है।

ज्ञानावरणीय कर्मकी पांच प्रकृतियां हैं–आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय, मनःपर्ययज्ञानावरणीय और केवलज्ञानावरणीय ॥ ४ ॥

---

१. छसु सगविहमट्ठविहं कम्मं बंधंति तिसु य सत्तविहं। छव्विहमेकट्ठाणे तिसु एक्कमबंधगो एक्को ॥ गो. क. ४५२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुणरुत्तत्तादो ण वत्तव्वमिदं सुत्तं ? ण, सव्वेसिं जीवाणं सरिसणाणावरणीय-कम्मक्खओवसमाभावा[1]। (जदि सव्वेहि जीवेहि गहिदत्थो टंकुक्किण्णक्खरं व ण विणस्सदि तो पुणरुत्तदोसो होज्ज।) ण च एवं, जलालिहियक्खरस्सेव[2] गहिदत्थस्स केसु वि विणासुवलंभादो। तदो भट्ठसंसकारसिस्ससंभालणट्ठं वत्तव्वमिदं सुत्तं।

एदासिं पंचण्हं पयडीणं एक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ॥ ५ ॥

एदासिं पुव्वुत्तपंचण्हं-पगडीणं बंधमाणस्स जीवस्स एक्कम्हि अवत्थाविसेसे पंचसंखुवलक्खिए ट्ठाणमवट्ठाणं होदि। एवकारो किमट्ठो ? एक्क-बे-तिण्णि-चत्तारि-संखुवलक्खियअवत्थाए अवट्ठाणपडिसेहट्ठो।

तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा सम्मामिच्छा-दिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा ॥ ६ ॥

शंका—पहले प्रकृतिसमुत्कीर्तनचूलिकामें कहे जानेके कारण पुनरुक्त होनेसे यह सूत्र पुनः नहीं कहना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सभी जीवोंके सदृश ज्ञानावरणीयकर्मके क्षयोपशमका अभाव है। यदि सर्व जीवोंके द्वारा ग्रहण किया गया, अर्थात् जाना गया, अर्थ टांकीसे उकेरे गये अक्षरके समान नहीं विनष्ट होता, तो पुनरुक्त दोष होता। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, जलमें लिखे गये अक्षरके समान ग्रहण किये गये अर्थका कितने ही जीवोंमें विनाश पाया जाता है। इसलिए भ्रष्ट संस्कारवाले शिष्यके स्मरण करानेके लिए यह सूत्र कहना चाहिए।

इन पांचों प्रकृतियोंके बंध करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ५ ॥

इन, अर्थात् पूर्व सूत्रमें कही गई पांचों प्रकृतियोंके बांधनेवाले जीवका 'पांच' इस संख्यासे उपलक्षित एक ही अवस्था-विशेषमें स्थान अर्थात् अवस्थान होता है।

शंका—सूत्रमें एवकारपद किसलिए दिया है ?

समाधान—ज्ञानावरणीय कर्मकी एक, दो, तीन और चार संख्यासे उपलक्षित प्रकृतिसम्बन्धी अवस्थामें बन्धक जीवोंके अवस्थानका प्रतिषेध करनेके लिए सूत्रमें एवकार पद दिया है। अर्थात् दशवें गुणस्थान तक पांचों ही प्रकृतियोंका बन्ध होता रहता है।

वह बन्धस्थान मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयत-सम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयतके होता है ॥ ६ ॥

---

१ प्रतिषु 'सरिसधारणावरणीयकम्मक्खओ-' इति पाठः। २ प्रतिषु 'जलाणिहय-' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तं पंचसंखुवलक्खियभावाधारबंधट्ठाणमेदेसिं उत्तगुणट्ठाणाणं होदि, ण अण्णेसिं, एदेहिंतो पुधभूदगुणट्ठाणाभावा। संजदेत्ति उत्ते सुहुमसांपराइयसंजदंताणं गहणं, उवरिमाणं णाणावरणबंधाभावा।

दंसणावरणीयस्स कम्मस्स तिण्णि ट्ठाणाणि, णवण्हं छण्हं चदुण्हं ठाणमिदि[1] ॥ ७ ॥

एदं संगहणयसुत्तं, सव्वविसेसाधारत्तादो। एदस्सत्थो उच्चदे– णवपयडिसंबंधि एक्कं ट्ठाणं, छप्पयडिसंबंधि विदियं ट्ठाणं, चत्तारि पयडिसंबंधि तदियं ठाणं। पयडिं पडि भेदाभावा ट्ठाणभेदो ण जुज्जदि त्ति चे ण, णव-छ-चदुसंखाविसिट्ठपयडिसमूहाणमेयत्तविरोहा। किं च भिण्णगुणाधारत्तादो चाणेयत्तं ट्ठाणाणं[2]। पज्जवणयाणुग्गहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

वह पांच संख्यासे उपलक्षित भावोंका आधारभूत बन्धस्थान इन सूत्रोक्त गुणस्थानवाले बन्धक जीवोंके होता है, अन्यके नहीं; क्योंकि इनसे पृथग्भूत गुणस्थानोंका अभाव है। यहां 'संयत' ऐसा कहनेपर सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत गुणस्थान तकके बन्धक जीवोंका ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, इससे ऊपरके गुणस्थानवाले जीवोंके ज्ञानावरणीयकर्मका बन्ध नहीं होता है।

दर्शनावरणीय कर्मके तीन बन्धस्थान हैं— नौ प्रकृतिसम्बन्धी, छह प्रकृतिसम्बन्धी और चार प्रकृतिसम्बन्धी बन्धस्थान ॥ ७ ॥

यह संग्रहनयाश्रित सूत्र है, क्योंकि, वह अपने अन्तर्गत सर्व विशेषोंका आधारभूत है। इसका अर्थ कहते हैं— दर्शनावरणीयकर्मकी नौ प्रकृतिसम्बन्धी एक स्थान है, स्त्यानगृद्धि आदि तीन प्रकृतियोंको छोड़कर शेष छह प्रकृतिसम्बन्धी दूसरा स्थान है, और चक्षुदर्शनावरण आदि चार प्रकृतिसम्बन्धी तीसरा स्थान है।

शंका— प्रकृतियोंके प्रति भेदका अभाव होनेसे स्थानका भेद करना युक्ति-संगत नहीं है?

समाधान— नहीं, क्योंकि, नौ, छह और चार संख्यासे विशिष्ट प्रकृतियोंके समूहोंके एकताका विरोध है। दूसरी बात यह है कि भिन्न गुणस्थानोंके आधारसे स्थानोंके एकता नहीं है, अर्थात् अनेकता या विभिन्नता है। अतएव स्थानका भेद युक्ति-संगत है।

अब पर्यायार्थिक नयवाले जीवोंके अनुग्रहके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

१ णव छक्क चदुक्कं य य विदियावरणस्स बंधठाणाणि। गो. क. ४५९.

२ णव सासणो त्ति बंधो छच्चेव अपुव्वपढमभागो त्ति। चत्तारि होंति तत्तो सुहुमकसायस्स चरिमो त्ति। गो. क. ४६०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्थ इमं णवण्हं ट्ठाणं, णिद्दाणिद्दा पयलापयला थीणगिद्धी णिद्दा पयला य चक्खुदंसणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं ओहिदंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं चेदि ॥ ८ ॥

(दंसणावरणीयस्स कम्मस्स उत्तरपयडीणं णामणिद्देसो संखा च पयडिसमुक्कित्तणाए सव्वमेदं परूविदं, पुणो एत्थ किमट्ठं उच्चदे ? ण एस दोसो, मंदबुद्धिसिस्ससंभालणट्ठत्तादो । अधवा णेदाओ पयडीणं सण्णाओ, किंतु पयडिबंधकारणट्ठाणस्स सत्तीणं सण्णाओ । तेण ण पुणरुत्तदोसो ।)

एदासिं णवण्हं पयडीणं एक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ॥ ९ ॥

एदासिं पुव्वुत्तणवपयडीणं एक्कम्हि चेव भावे ट्ठाणमवट्ठाणं होदि, बंधमाणस्स जीवस्स एदासिं पयडीणं बंधस्स वा । को सो एक्को भावो ? णवण्हं पयडीणं बंधहेदुसम्मत्ताभावो ।

दर्शनावरणीयकर्मके उक्त तीन बन्धस्थानोंमें निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, निद्रा, और प्रचला, तथा चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और केवलदर्शनावरणीय, इन नौ प्रकृतियोंका समुदायात्मक यह प्रथम बन्धस्थान है ॥ ८ ॥

शंका—दर्शनावरणीयकर्मकी उत्तर प्रकृतियोंका नामनिर्देश और संख्या, यह सब प्रकृतिसमुत्कीर्तना नामकी प्रथम चूलिकामें निरूपण किया जा चुका है, फिर यहां उसे किसलिए कहा जा रहा है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, मन्दबुद्धिवाले शिष्योंको पूर्वोक्त अर्थका स्मरण करानेके लिए वह सब यहां पर पुनः निरूपण किया जा रहा है । अथवा ये निद्रानिद्रा आदि संज्ञाएं प्रकृतियोंकी नहीं हैं, किन्तु प्रकृतिबन्धके कारणभूत स्थानकी शक्तियोंकी संज्ञाएं हैं, इसलिए उनके पुनः कथन करनेपर भी कोई पुनरुक्त दोष नहीं आता है ।

इन नौ प्रकृतियोंके बंध करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ९ ॥

इन पूर्व सूत्रोक्त नौ प्रकृतियोंका एक ही भावमें स्थान या अवस्थान होता है, अथवा, बंध करनेवाले जीवके इन नवों प्रकृतियोंके बंधका एक ही स्थान या भाव है ।

शंका—वह एक भाव कौनसा है ?

समाधान—वह एक भाव दर्शनावरणीय कर्मकी नवों प्रकृतियोंके बन्धका कारणभूत सम्यक्त्वका अभाव है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा[1] ॥ १० ॥

एक्कस्स ट्ठाणस्स णवपयडिणिप्पण्णस्स एदे सामिणो होंति। किमट्ठं सामित्तं उच्चदे ? ण, सम्मत्ताभावं पडि[2] एयत्तं पडिवण्णट्ठाणम्हि समुप्पण्णएगेयंतबुद्धिमोसारिय अणेयत्तबुद्धिसमुप्पायणट्ठत्तादो।

तत्थ इमं छण्हं ट्ठाणं, णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-थीणगिद्धीओ वज्ज णिद्दा य पयला य चक्खुदंसणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं ओहिदंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं चेदि ॥ ११ ॥

णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-थीणगिद्धीओ वज्ज छण्हं ट्ठाणं होदि त्ति उत्ते सेसपयडीओ इमाओ होंति त्ति णव्वदे, तदो तासिं णिद्देसो अणत्थओ त्ति ? ण एस दोसो, अइजडसिस्ससंभालणट्ठत्तादो।

वह नौ प्रकृतिरूप प्रथम बन्धस्थान मिथ्यादृष्टिके और सासादनसम्यग्दृष्टिके होता है ॥ १० ॥

नौ प्रकृतियोंसे निष्पन्न होनेवाले एक, अर्थात् प्रथम, बन्धस्थानके मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि, ये दोनों स्वामी होते हैं।

शंका—यहां स्वामित्व किसलिए कहा जा रहा है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सम्यक्त्वके अभावकी अपेक्षा एकत्वको प्राप्त स्थानमें उत्पन्न होनेवाली एक स्वामिस्वरूप एकान्तबुद्धिको दूर करके 'उसके स्वामी अनेक हैं' इस प्रकारकी अनेकत्वस्वरूप बुद्धिको उत्पन्न करानेके लिए यहां स्वामित्वका कथन किया जा रहा है।

दर्शनावरणीय कर्मके उक्त तीन बन्धस्थानोंमें निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धिको छोड़कर निद्रा और प्रचला, तथा चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय, और केवलदर्शनावरणीय, इन छह प्रकृतियोंका समुदायात्मक दूसरा बन्धस्थान है ॥ ११ ॥

शंका—निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धि, इन तीनको छोड़कर शेष छह प्रकृतियोंका दूसरा स्थान होता है, ऐसा सूत्र कहनेपर शेष प्रकृतियां ये होती हैं, यह जाना जाता है, अतएव उन प्रकृतियोंका नाम-निर्देश करना अनर्थक है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, अति जड़बुद्धि शिष्योंको सम्हालनेके लिए सूत्रमें उन प्रकृतियोंका नाम-निर्देश किया गया है।

---

१ णव सासणो त्ति। गो. क. ४६० २ प्रतिपु 'सम्मत्ताभावपयडि' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एदासिं छण्हं पयडीणं एक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ॥ १२ ॥

कधमेत्थ ट्ठाणस्स एयत्तं ? छण्हं पयडीणं बंधजोग्गभावं पडि भेदाभावा । बंधमाणस्सेत्ति उत्ते जीवस्स बज्झमाणस्स वा कम्मस्स ग्गहणं ।

तं सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा ॥ १३ ॥

संजदस्सेत्ति उत्ते अपुव्वकरणद्धाए पढमसत्तमभागट्ठिदसंजदाणं ति गहणं । एदासिं पयडीणं बंधस्स जदि एदे सव्वे सामिणो हवंति तो कधमेकम्हि अवट्ठाणं, बहुअस्स एयत्तविरोहादो ? ण एस दोसो, बहूणं पि एदेसिं छप्पयडिबंधपरिणामेण समाणाणमेयत्ताविरोहा ।

इन छह प्रकृतियोंके बंध करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान होता है ॥ १२ ॥

शंका—यहांपर छह प्रकृतियोंवाले स्थानके एकत्व कैसे सम्भव है ?

समाधान—छहों प्रकृतियोंके बन्ध योग्य भावकी अपेक्षा कोई भेद न होनेसे छह प्रकृतियोंवाले स्थानके एकत्व बन जाता है ।

'बन्धमानके' ऐसा कहनेपर बंध करनेवाले जीवका, अथवा बंधनेवाले कर्मका ग्रहण करना चाहिए ।

वह छह प्रकृतिरूप द्वितीय बन्धस्थान सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयतके होता है ॥ १३ ॥

सूत्रमें 'संयतके' ऐसा पद कहनेपर अपूर्वकरण गुणस्थानके प्रथम सप्तम भागमें अर्थात् अपूर्वकरणके सात भागोंमेंसे प्रथम भागमें स्थित संयतोंका ग्रहण करना चाहिए ।

शंका – इन उपर्युक्त छह प्रकृतियोंके बन्धके यदि सूत्रोक्त ये सब सम्यग्मिथ्यादृष्टि आदि स्वामी होते हैं, तो फिर कैसे उन सबका एक भावमें अवस्थान हो सकता है, क्योंकि बहुतोंके एकत्वका विरोध है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, छह प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाले इन बहुतसे भी स्वामियोंके छह प्रकृतियोंके बन्ध-परिणामकी अपेक्षा समानता होनेसे एकत्व माननेमें कोई विरोध नहीं है ।

---

१ छच्चेव अपुव्वपढमभागो त्ति । गो. क. ४६०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्थ इमं चदुण्हं ट्ठाणं, णिद्दा य पयला य वज्ज चक्खुदंसणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं ओधिदंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं चेदि ॥ १४ ॥

णेदं सुत्तं णिप्फलं, वज्जिज्जमाणपयडिपरूवणाए विणा अप्पिदचदुपयअवगमे उवायाभावा। वदिरेगेण अवगदविधीदो पयडिणिद्देसो णिप्फलो त्ति णासंकणिज्जं, दव्वट्ठियसिस्साणुग्गहट्ठं णिद्दिट्ठस्स तस्स णिप्फलत्तविरोहा।

एदासिं चदुण्हं पयडीणं एक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ॥ १५ ॥

एदाओ चत्तारि पयडीओ बंधमाणस्स एक्कं चेव ट्ठाणं होदि त्ति एत्थ संबंधो कायव्वो, पढमाए अत्थे पाययम्मि छट्ठी-सत्तमीणं पउत्तीए संभवादो। सेसं सुगमं।

तं संजदस्स ॥ १६ ॥

कुदो ? अपुव्वकरणादिसुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदंतमहारिसीसु एदासिं बंधुवलंभा[1]।

दर्शनावरणीय कर्मके उक्त तीन बन्धस्थानोंमें निद्रा और प्रचलाको छोड़कर चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और केवलदर्शनावरणीय, इन चार प्रकृतियोंके समुदायात्मक तीसरा बन्धस्थान है ॥ १४ ॥

यह सूत्र निष्फल नहीं है, क्योंकि, छोड़ी जानेवाली प्रकृतियोंकी प्ररूपणाके विना विवक्षित चार पदोंके जाननेमें और कोई उपाय नहीं है। व्यतिरेकद्वारा विधीयमान प्रकृतियोंके ज्ञात हो जानेसे पुनः सूत्रमें प्रकृतियोंका नाम-निर्देश करना निष्फल है, ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि, द्रव्यार्थिकनयवाले शिष्योंके अनुग्रहार्थ उस निर्दिष्ट प्रकृतिनिर्देशके निष्फलताका विरोध है।

इन चार प्रकृतियोंके बन्ध करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥१५॥

यहांपर इस प्रकार अर्थका सम्बन्ध करना चाहिए कि इन चार प्रकृतियोंको बांधनेवाले जीवका एक ही स्थान होता है, क्योंकि, प्रथमा विभक्तिके अर्थमें प्राकृतभाषामें षष्ठी और सप्तमी विभक्तियोंकी प्रवृत्तिका होना संभव है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

वह चार प्रकृतिरूप तृतीय बंधस्थान संयतके होता है ॥ १६ ॥

क्योंकि, अपूर्वकरणके सात भागोंमेंसे द्वितीय भागसे आदि लेकर सूक्ष्मसाम्परायिक शुद्धिसंयत तक महा ऋषियोंमें इन चारों प्रकृतियोंका बन्ध पाया जाता है।

१ चत्तारि होंति तत्तो सुहुमकसायस्स चरिमो त्ति। गो. क. ४६०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहूणं संजदाणं संजदस्सेत्ति एगवयणेण णिद्देसो कधं घडदे ? ण, तेसिं बहूणं पि संजदत्तणेण एयत्ताविरोहा । ण च एयत्तमणेयत्तं वा अण्णोण्णेण पुधभूदमत्थि, अणुवलंभादो ।

वेदणीयस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ, सादावेदणीयं चेव असादावेदणीयं चेव ॥ १७ ॥

(विस्सरणालुवसिस्ससंभालणट्ठमिदं सुत्तं, बज्झमाणपयडिमेत्तंतरंगकारणपदुप्पायणट्ठं वा ।) सेसं सुगमं ।

एदासिं दोण्हं पयडीणं एक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ॥ १८ ॥

सादासादवेदणीयपयडीणं दोण्हं पि जुगवं बंधो णत्थि, तेसिं बंधकारणविसोहि-संकिलेसाणमक्कमेण पउत्तीए अभावादो । तेणेदेसिं दोण्हमेगं ठाणमिदि ण घडदे; किंतु दोण्हं वे ट्ठाणाणि त्ति वत्तव्वं ? बंधकारणविसोहि-संकिलेसाणं च भेदादो होदु णाम वेदणीयस्स मूलपयडीए सादावेदणीयमसादावेदणीयमिदि वेण्णि ट्ठाणाणि, दोण्ह-

....

शंका—'संयतके' इस एक वचनके द्वारा अपूर्वकरणादि बहुतसे संयतोंका निर्देश कैसे घटित होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, बहुतसे भी उन संयतोंका संयतत्वकी अपेक्षा एकत्व माननेमें कोई विरोध नहीं है । दूसरी बात यह है कि एकत्व और अनेकत्व परस्परमें पृथग्भूत नहीं हैं, क्योंकि, वे भिन्न पाये नहीं जाते हैं । अर्थात् वस्तुओंमें संग्रह नयसे अभेद विवक्षा होनेपर एकत्व और व्यवहार नयसे भेदविवक्षा होनेपर अनेकत्वका कथन किया जाता है ।

वेदनीयकर्मकी दो ही प्रकृतियां हैं–सातावेदनीय और असातावेदनीय ॥ १७ ॥

विस्मरणशील शिष्योंको स्मरण करानेके लिए, अथवा बंधनेवाली प्रकृतिमात्रके अन्तरंग कारणको बतलानेके लिए यह सूत्र रचा गया है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

इन दोनों प्रकृतियोंके बन्ध करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान होता है ॥ १८ ॥

शंका—सातावेदनीय और असातावेदनीय, इन दोनों ही प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध नहीं होता है, क्योंकि, उन दोनों प्रकृतियोंके बंधके कारणभूत विशुद्धि और संक्लेश परिणामोंकी एक साथ प्रवृत्तिका अभाव है । इसलिए इन दोनों प्रकृतियोंका एक स्थान है, यह बात घटित नहीं होती है; किन्तु दोनों प्रकृतियोंके दो स्थान कहना चाहिए ?

समाधान—यदि बन्धके कारणभूत विशुद्धि और संक्लेश परिणामोंके भेदसे वेदनीयकर्मकी मूल प्रकृतिके सातावेदनीय और असातावेदनीय, ये दो स्थान होते हों, तो भले ही होवें, क्योंकि, दोनों प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध नहीं होता है, तथा मूल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मक्कमेण बंधाभावा, मूलपयडिवदिरित्तुत्तरपयडीणमभावादो च । किंतु गंथयारेण एसो भेदो ण विवक्खिओ । को पुण गंथयारस्स अहिप्पाओ ? उच्चदे— एदेसिं दोण्हं पि एक्कम्हि चेव ट्ठाणं होदि त्ति उत्ते एक्कसंखावट्ठिदत्तादो एक्कम्हि चेव ट्ठाणमिदि घेत्तव्वं, अण्णहा ट्ठाणस्स एयत्तविरोहादो । सेसं सुगमं ।

तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा ॥ १९ ॥

संजदस्सेत्ति वुत्ते जाव सजोगिभयवंतो ताव घेत्तव्वं, ण परदो; तत्थेदस्स बंधाभावा । सेसं सुगमं ।

मोहणीयस्स कम्मस्स दस ट्ठाणाणि, बावीसाए एक्कवीसाए सत्तारसण्हं तेरसण्हं णवण्हं पंचण्हं चदुण्हं तिण्हं दोण्हं एक्किस्से ट्ठाणं चेदि[1] ॥ २० ॥

प्रकृतिसे व्यतिरिक्त वेदनीयकर्मकी अन्य उत्तर प्रकृतियोंका अभाव है । किन्तु ग्रन्थकारने इस भेदकी विवक्षा नहीं की है ।

शंका—तो फिर ग्रन्थकारका अभिप्राय क्या है ?

समाधान—सातावेदनीय और असातावेदनीय, इन दोनों ही प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान होता है, ऐसा कहनेपर एक संख्या अवस्थित होनेसे एक ही भावमें अवस्थान है, अर्थात् दोनों प्रकृतियोंका एक ही बन्धस्थान है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए । यदि यह अर्थ ग्रहण नहीं किया जायगा, तो वेदनीयकर्मके बन्धस्थानकी एकताका विरोध आयगा । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

वह वेदनीय कर्मसम्बन्धी बन्धस्थान मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयतके होता है ॥ १९ ॥

सूत्रमें 'संयतके' ऐसा सामान्य पद कहने पर सयोगिभगवन्त तकके संयतोंका ग्रहण करना चाहिए, आगेके संयतोंका नहीं, क्योंकि, वहांपर अर्थात् अयोगिभगवन्तके इस स्थानके बन्धका अभाव है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

मोहनीयकर्मके दश बन्धस्थान हैं— बाईस प्रकृतिसम्बन्धी, इक्कीस प्रकृतिसम्बन्धी, सत्तरह प्रकृतिसम्बन्धी, तेरह प्रकृतिसम्बन्धी, नौ प्रकृतिसम्बन्धी, पांच प्रकृतिसम्बन्धी, चार प्रकृतिसम्बन्धी, तीन प्रकृतिसम्बन्धी, दो प्रकृतिसम्बन्धी और एक प्रकृतिसम्बन्धी बन्धस्थान ॥ २० ॥

---

१ बावीसमेक्कवीसं सत्तारस तेरसेव णव पंच । चदुतियदुगं च एक्कं बंधट्ठाणाणि मोहस्स ॥ गो. क. ४६३.

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

एदं दव्वट्ठियणयसुत्तं । कुदो ? बीजीभूदत्तादो ।

तत्थ इमं बावीसाए ट्ठाणं, मिच्छत्तं सोलस कसाया इत्थिवेद-पुरिसवेद-णउंसयवेद तिण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्सरदि-अरदिसोग दोण्हं जुगलाणमेक्कदरं भय-दुगुंछा। एदासिं बावीसाए पयडीणं एक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ॥ २१ ॥

मिच्छत्त-सोलसकसाया धुवबंधिणो, उदएणेव बंधेण परोप्परेण विरोहाभावा । तेण तत्थ एगदरसद्दो ण पउत्तो । इत्थि-पुरिस-णवुंसयवेदाणं हस्सरदि-अरदिसोगजुगलाणं च उदएणेव बंधेण वि विरोहो अत्थि त्ति जाणावणट्ठमेक्कदरसद्दपओओ कओ । भय-दुगुंछासु पुण ण कओ, बंधं पडि विरोहाभावा । एदासिमेक्कम्हि[1] चेव अवट्ठाणं होदि । कत्थ ? बावीसाए । कधमेक्कम्हि आहाराहेयभावो ? ण, संखाणादो संखेज्जस्स कथंचि

यह द्रव्यार्थिकनयाश्रित सूत्र है, क्योंकि, वह अपने अन्तर्निहित समस्त अर्थोंके बीजपदस्वरूप है ।

मोहनीय कर्मसम्बन्धी उक्त दश बन्धस्थानोंमें मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी आदि सोलह कषाय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद इन तीनों वेदोंमेंसे कोई एक वेद, हास्य और रति, तथा अरति और शोक इन दोनों युगलोंमेंसे कोई एक युगल, भय और जुगुप्सा, इन बाईस प्रकृतियोंका एक बन्धस्थान होता है । इन बाईस प्रकृतियोंके बन्ध करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ २१ ॥

मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी आदि सोलह कषाय, ये सत्तरह ध्रुवबन्धी प्रकृतियां हैं, क्योंकि, उदयके समान बन्धकी अपेक्षा परस्परमें उनका कोई विरोध नहीं है । इसलिए इनके साथमें 'एकतर' इस शब्दका प्रयोग नहीं किया गया है । स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद इन तीनों वेदोंका, तथा हास्य-रति और अरति-शोक इन दोनों युगलोंका उदयके समान बन्धके साथ भी विरोध है, यह बात बतलानेके लिए इनके साथमें 'एकतर' शब्दका प्रयोग किया गया है । किन्तु भय और जुगुप्सा, इन दोनों प्रकृतियोंके साथमें 'एकतर' शब्दका प्रयोग नहीं किया गया है, क्योंकि, बन्धके प्रति उनका परस्परमें कोई विरोध नहीं है। इन बाईस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान होता है।

शंका — उक्त प्रकृतियोंका किस एक भावमें अवस्थान है ?

समाधान — बाईस प्रकृतियोंके समुदायात्मक एक भावमें अवस्थान है ।

शंका — एक ही वस्तुमें आधार और आधेय भाव कैसे बन सकता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, संख्यानसे संख्येय कथंचित् पृथग्भूत होता है,

१ प्रतिषु 'एक्कं हि' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुधभूदस्स आधारत्ताविरोहा।

तं मिच्छादिट्ठिस्स ॥ २२ ॥

कुदो ? मिच्छत्तस्सण्णत्थ बंधाभावा। तं पि कुदो ? अण्णत्थ मिच्छत्तोदयाभावा। ण च कारणेण विणा कज्जस्सुप्पत्ती अत्थि, अइप्पसंगादो। तम्हा मिच्छादिट्ठी चेव सामी होदि। एत्थ बंधभंगा छ (६)[1]।

इसलिए उसके आधारपना होनेमें कोई विरोध नहीं है।

वह बाईस प्रकृतिरूप प्रथम बन्धस्थान मिथ्यादृष्टिके होता है ॥ २२ ॥

क्योंकि, मिथ्यात्वप्रकृतिका मिथ्यादृष्टि जीवके सिवाय अन्यत्र बन्ध नहीं होता है। और इसका भी कारण यह है कि अन्यत्र मिथ्यात्वप्रकृतिका उदय नहीं होता है, तथा कारणके विना कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती है। यदि ऐसा न माना जाय तो अतिप्रसंग दोष प्राप्त होगा। इसलिए यही सिद्ध होता है कि इस बाईस प्रकृतिरूप प्रथम बन्धस्थानका स्वामी मिथ्यादृष्टि जीव ही है। यहांपर बन्धसम्बन्धी भंग या भेद छह (६) होते हैं।

विशेषार्थ—यहां पर जो बाईस प्रकृतिरूप बन्धस्थानके छह भंग बतलाये हैं, वे इस प्रकार होते हैं— उक्त बाईस प्रकृतियोंमें, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्सा, ये उन्नीस प्रकृतियां ध्रुवबन्धी हैं, अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थानमें इनका बंध निरन्तर होता ही रहता है। शेष तीनों वेद और हास्य-रति तथा अरति-शोक ये दोनों युगल अध्रुवबंधी और सप्रतिपक्षी हैं, अर्थात् एक साथ एक जीवमें तीन वेदोंमेंसे किसी एक ही वेदका और दोनों युगलोंमेंसे किसी एक युगलका बंध होता है। अतएव नाना जीवोंकी अपेक्षा तीनों वेदों और दोनों युगलोंके विकल्पसे परस्पर गुणा करनेपर (३×२=६) छह भंग हो जाते हैं, जो कि क्रमशः इस प्रकार हैं—

	१ +	१६ +	१ +	२ +	२	= २२
१	मिथ्यात्व	सोलह कषाय	पुरुषवेद	हास्य–रति	भय–जुगुप्सा	२२
२	,,	,,	स्त्रीवेद	,,	,,	२२
३	,,	,,	नपुंसकवेद	,,	,,	२२
४	,,	,,	पुरुषवेद	अरति–शोक	,,	२२
५	,,	,,	स्त्रीवेद	,,	,,	२२
६	,,	,,	नपुंसकवेद	,,	,,	२२

जिस प्रकार यहांपर उक्त छह भंगोंकी उत्पत्ति बतलाते हुए उनका क्रमशः उच्चारणक्रम बतलाया गया है, उसी प्रकार आगे भी जहां जहां भंगोंका उल्लेख आया है, वहांपर भी भंगोंका यही क्रम जानना चाहिए।

१ छब्बावीसे। गो. क. ४६७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्थ इमं एक्कवीसाए[1] ट्ठाणं मिच्छत्तं णवुंसयवेदं वज्ज ॥ २३ ॥

एत्थ णउंसयवेदं च इदि चसद्दो कायव्वो, अण्णहा समुच्चयस्स अवगमोवाया-भावा ? ण, चसद्देण विणा वि तदवगमादो । वदिरेगपज्जवट्ठियणयाणुग्गहट्ठमेदं सुत्तं भणिय विहिणयाणुग्गहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि[2]—

सोलस कसाया इत्थिवेद पुरिसवेदो दोण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्स-रदि-अरदिसोग दोण्हं जुगलाणमेक्कदरं भय-दुगुंछा । एदासिं एक्क-वीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ॥ २४ ॥

एक्कवीसाए इदि संबंधे छट्ठी। एदासिं पयडीणं एक्कम्हि चेव ट्ठाणमिदि[3] उत्ते एक्कवीसाए त्ति घेत्तव्वं, एक्कवीसपयडिबंधपाओग्गपरिणामे वा । सेसं सुगमं । एत्थ भंगा चत्तारि (४)[4] ।

मोहनीय कर्मसम्बन्धी उक्त दश बन्धस्थानोंमें प्रथम बन्धस्थानकी बाईस प्रकृतियोंमेंसे मिथ्यात्व और नपुंसकवेदको छोड़ देनेपर यह इक्कीस प्रकृतिरूप द्वितीय बन्धस्थान होता है ॥ २३ ॥

शंका—यहां सूत्रमें 'और नपुंसकवेदको' इस प्रकार 'च' शब्दका अध्याहार करना चाहिए, अन्यथा समुच्चयार्थके जाननेका और कोई उपाय नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, 'च' शब्दके विना भी समुच्चय अर्थका ज्ञान हो जाता है ।

व्यतिरेकरूप पर्यायार्थिक नयवाले जीवोंके अनुग्रहके लिए यह सूत्र कहकर अब विधिरूप द्रव्यार्थिक नयवाले जीवोंके अनुग्रहके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

अनन्तानुबन्धी आदि सोलह कषाय, स्त्रीवेद और पुरुषवेद इन दोनों वेदोंमेंसे कोई एक वेद, हास्य-रति और अरति-शोक इन दोनों युगलोंमेंसे कोई एक युगल, भय और जुगुप्सा, इन इक्कीस प्रकृतियोंके बन्ध करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ २४ ॥

'एक्कवीसाए' यह सम्बन्धमें षष्ठी विभक्ति है। इन प्रकृतियोंका एकमें ही अवस्थान है, ऐसा कहनेपर इक्कीस प्रकृतियोंके समूहात्मक बन्धस्थानमें अवस्थान होता है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए। अथवा इक्कीस प्रकृतियोंके बन्धयोग्य परिणाममें अवस्थान होता है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए। शेष सूत्रार्थ सुगम है। यहांपर उक्त दोनों वेद और हास्यादि दोनों युगलों विकल्पसे (२×२=४) चार भंग होते हैं।

---

१ अ-आ प्रत्योः 'एक्कवीसावीसाए' इति पाठः । २ प्रतिषु 'विहिणाया-' इति पाठः ।
३ प्रतिषु 'एक्कम्हि अवट्ठाणमिदि' इति पाठः । ४ चदु इगिवीसे । गो. क. ४६७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तं सासणसम्मादिट्ठिस्स ॥ २५ ॥

कुदो ? उवरि अणंताणुबंधिचदुक्कस्स इत्थिवेदस्स य बंधाभावा । तं पि कुदो ? तत्थ अणंताणुबंधीणमुदयाभावा । ण च कारणेण विणा कज्जं संभवदि, विरोहादो ।

तत्थ इमं सत्तरसण्हं ट्ठाणं अणंताणुबंधिकोह-माण-माया-लोभं इत्थिवेदं वज्ज ॥ २६ ॥

एक्कवीसपयडीसु अणंताणुबंधिचदुक्के अवणिदे सत्तारस पयडीओ हवंति । एदं सुत्तं वदिरेगणयाणुग्गहट्ठं । ताओ कदमाओ त्ति पुच्छिदमंदबुद्धिसिस्साणुग्गहट्ठमुत्तर-सुत्तं भणदि—

बारस कसाय पुरिसवेदो हस्सरदि-अरदिसोग दोण्हं जुगलाण-मेक्कदरं भय-दुगुंछा । एदासिं सत्तरसण्हं पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ॥ २७ ॥

तम्हि एक्कम्हि सत्तारससंखाए एदासिं बंधजोग्गजीवपरिणामे वा त्ति घेत्तव्वं ।

वह इक्कीस प्रकृतिरूप द्वितीय बन्धस्थान सासादनसम्यग्दृष्टिके होता है ॥ २५ ॥

क्योंकि, दूसरे गुणस्थानसे ऊपर अनन्तानुबन्धी-चतुष्कका और स्त्रीवेदका बन्ध नहीं होता है । और इसका भी कारण यह है कि ऊपरके गुणस्थानोंमें अनन्तानुबन्धी कषायोंके उदयका अभाव है । तथा कारणके विना कार्य संभव नहीं है, क्योंकि, वैसा माननेपर विरोध आता है ।

मोहनीयकर्मसम्बन्धी उक्त दश बन्धस्थानोंमें द्वितीय बन्धस्थानकी इक्कीस प्रकृतियोंमेंसे अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ और स्त्रीवेदको छोड़नेपर यह सत्तरह प्रकृतिरूप तृतीय बन्धस्थान होता है ॥ २६ ॥

पूर्व सूत्रोक्त इक्कीस प्रकृतियोंमेंसे अनन्तानुबन्धी-चतुष्कके निकाल देनेपर सत्तरह प्रकृतियां होती हैं । यह सूत्र व्यतिरेकनयवाले जीवोंके अनुग्रहके लिए कहा गया है ।

वे सत्तरह प्रकृतियां कौनसी हैं, ऐसा पूछनेवाले मन्द-बुद्धि शिष्योंके अनुग्रहार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

अप्रत्याख्यानावरणीय आदि बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य-रति और अरति-शोक इन दोनों युगलोंमेंसे कोई एक युगल, भय और जुगुप्सा, इन सत्तरह प्रकृतियोंके बन्ध करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ २७ ॥

उस एक सत्तरह संख्यामें, अथवा इन सत्तरह प्रकृतियोंके बन्धयोग्य जीवके परिणाममें उनका अवस्थान है, यह अर्थ ग्रहण करना चाहिए । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेसं सुगमं । भंगा दोण्णि (२)[1] ।

तं सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा ॥ २८ ॥

कुदो ? उवरि अपच्चक्खाणचदुक्कस्स बंधाभावा । तं पि कुदो ? सोदयाभावा । तदो एदाणि दो गुणट्ठाणाणि एदस्स बंधट्ठाणस्स सामित्तं पडिवज्जंति ।

तत्थ इमं तेरसण्हं ट्ठाणं अपच्चक्खाणावरणीयकोध-माण-माया-लोभं वज्ज ॥ २९ ॥

वज्जेत्ति उत्ते वज्जिय इदि घेत्तव्वं । सेसं सुगमं । पुव्वुत्तसत्तारसपयडीसु[2] अपच्चक्खाणचदुक्के अवणिदे तेरस पयडीओ हवंति । ताओ कदमाओ त्ति भत्तीए पुच्छिदे तस्साणुग्गहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि, पुव्वमणुमाणेण अवगयट्ठस्स दढीकरणट्ठं वा ।

यहांपर हास्यादि दोनों युगलोंके विकल्पसे (२) दो भंग होते हैं ।

यह सत्तरह प्रकृतिरूप तृतीय बन्धस्थान सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टिके होता है ॥ २८ ॥

क्योंकि, चतुर्थ गुणस्थानसे ऊपर अप्रत्याख्यानावरणीय कषायचतुष्कका बन्ध नहीं होता है । और इसका भी कारण यह है कि वहांपर स्वोदय अर्थात् अप्रत्याख्यानावरण कषायके उदयका अभाव है । इसलिए सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि, ये दोनों गुणस्थान इस सत्तरह प्रकृतिरूप बन्धस्थानके स्वामित्वको प्राप्त होते हैं ।

मोहनीय कर्मसम्बन्धी उक्त दश बन्धस्थानोंमें तृतीय बन्धस्थानकी सत्तरह प्रकृतियोंमेंसे अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया और लोभको छोड़नेपर यह तेरह प्रकृतिरूप चतुर्थ बन्धस्थान होता है ॥ २९ ॥

'वज्ज' ऐसा कहनेपर 'वज्जिय' अर्थात् 'छोड़कर' ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए । शेष सूत्रार्थ सुगम है । पूर्वोक्त सत्तरह प्रकृतियोंमेंसे अप्रत्याख्यानावरणीय कषाय-चतुष्कके घटा देनेपर तेरह प्रकृतियां होती हैं ।

वे तेरह प्रकृतियां कौनसी हैं, इस प्रकार भक्तिसे पूछनेपर उस शिष्यके अनुग्रहके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं । अथवा, पहले अनुमानसे जिस तेरह प्रकृतिरूप अर्थको जाना है, उसीके दृढ़ीकरणके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

---

१ दो दो हवंति छट्ठो त्ति । गो. क. ४६७.

२ प्रतिषु 'पउत्तसत्ता पयडीसु' इति पाठः ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

अट्ठ कसाया पुरिसवेदो हस्सरदि-अरदिसोग दोण्हं जुगलाणमेक्कदरं भय-दुगुंछा। एदासिं तेरसण्हं पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ॥ ३० ॥

एक्कम्हि कधं? तेरससंखाए। कधं तेरसण्हमेयत्तं? संखासामण्णावेक्खाए, तेरसण्हं पयडीणं बंधपाओग्गपरिणामे वा। सेसं सुगमं। एत्थ भंगा दोण्णि (२)[1]।

तं संजदासंजदस्स ॥ ३१ ॥

कुदो? उवरि पच्चक्खाणचदुक्कस्स बंधाभावा। तं पि कुदो? तत्थ तस्सुदयाभावा। तेण संजदासंजदो चेव सामी होदि।

तत्थ इमं णवण्हं ट्ठाणं पच्चक्खाणावरणीयकोह-माण-माया-लोहं वज्ज ॥ ३२ ॥

प्रत्याख्यानावरणीय आदि आठ कषाय, पुरुषवेद, हास्य-रति और अरति-शोक इन दोनों युगलोंमेंसे कोई एक युगल, भय और जुगुप्सा, इन तेरह प्रकृतियोंके बन्ध करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ३० ॥

शंका — एकमें ही अवस्थान कैसे होता है?

समाधान—एक अर्थात् तेरह संख्यामें समुदायकी अपेक्षा तेरह प्रकृतियोंका अवस्थान होता है।

शंका—तेरह प्रकृतियोंके एकत्व कैसे संभव है?

समाधान—'तेरह' इस संख्या-सामान्यकी अपेक्षासे तेरह प्रकृतियोंके एकत्व संभव है। अथवा तेरह प्रकृतियोंके बन्ध-योग्य परिणाममें उक्त तेरह प्रकृतियोंका अवस्थान होता है, इस अपेक्षासे उनके एकत्व बन जाता है। शेष सूत्रार्थ सुगम है। यहांपर हास्यादि दोनों युगलोंके विकल्पसे (२) दो भंग होते हैं।

उक्त तेरह प्रकृतिरूप चतुर्थ बन्धस्थान संयतासंयतके होता है ॥ ३१ ॥

क्योंकि, पंचम गुणस्थानसे ऊपर प्रत्याख्यानावरणीय कषाय-चतुष्कका बन्ध नहीं होता है। और इसका भी कारण यह है कि ऊपरके गुणस्थानोंमें प्रत्याख्यानावरणीय कषायके उदयका अभाव है। इसलिए तेरह प्रकृतिरूप बन्धस्थानका स्वामी संयतासंयत ही होता है।

मोहनीय कर्मसम्बन्धी उक्त दश बन्धस्थानोंमें चतुर्थ बन्धस्थानकी तेरह प्रकृतियोंमेंसे प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया और लोभकषायको छोड़नेपर यह नौ प्रकृतिरूप पंचम बन्धस्थान होता है ॥ ३२ ॥

---

१ दो दो हवंति छद्दो त्ति। गो. क. ४६७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेरससु पयडीसु पच्चक्खाणचदुक्के अवणिदे णव पयडीओ हवंति । वदिरेग-मुहेण णवपयडिट्ठाणं परूविय 'अन्वय-व्यतिरेकाभ्यां वस्तुनिर्णयः' इति न्यायात् अण्णयमुहेण परूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

चदुसंजुलणा पुरिसवेदो हस्सरदि-अरदिसोग दोण्हं जुगलाण-मेक्कदरं भय-दुगुंछा । एदासिं णवण्हं पयडीणमेक्कम्हि[1] चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ॥ ३३ ॥

सुगममेदं । भंगा दोण्णि (२)[2] ।

तं संजदस्स ॥ ३४ ॥

संजदस्सेत्ति उत्ते पमत्तादि-अपुव्वंताणं संजदाणं गहणं, उवरि छण्णोकसायाणं बंधाभावादो णवण्हं ट्ठाणस्स संभवाभावा ।

तत्थ इमं पंचण्हं ट्ठाणं हस्सरदि-अरदिसोग-भयदुगुंछं वज्ज ॥ ३५ ॥

पूर्वोक्त तेरह प्रकृतियोंमेंसे प्रत्याख्यानावरणीय कषाय-चतुष्कके घटानेपर नौ प्रकृतियां होती हैं ।

व्यतिरेकमुखसे नौ प्रकृतिरूप बन्धस्थानको निरूपण करके 'अन्वय और व्यति-रेकसे वस्तुका निर्णय होता है, इस न्यायके अनुसार अन्वयमुखसे उसी स्थानको निरूपण करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

चारों संज्वलनकषाय, पुरुषवेद, हास्य-रति और अरति-शोक इन दोनों युग-लोंमेंसे कोई एक युगल, भय और जुगुप्सा, इन नौ प्रकृतियोंके बन्ध करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ३३ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है । यहांपर हास्यादि दोनों युगलोंके विकल्पसे (२) दो भंग होते हैं ।

वह नौ प्रकृतिरूप पंचम बन्धस्थान संयतके होता है ॥ ३४ ॥

'संयतके' ऐसा सामान्य पद कहनेपर प्रमत्तसंयतसे आदि लेकर अपूर्वकरण गुणस्थान तकके संयतोंका ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि उससे ऊपर छह नोकषायोंका बन्ध नहीं होता है, इसलिए वहांपर नौ प्रकृतिरूप बन्धस्थानका होना संभव नहीं है ।

मोहनीयकर्मसम्बन्धी उक्त दश बन्धस्थानोंमें पंचम बन्धस्थानकी नौ प्रकृतियोंमेंसे हास्य, रति, अरति, शोक, भय, और जुगुप्साको छोड़नेपर यह पांच प्रकृतिरूप छठा बन्धस्थान होता है ॥ ३५ ॥

---

१ प्रतिषु '-मेक्कं हि' इति पाठः । २ दो दो हवंति छट्ठो त्ति । गो. क. ४६७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णवसु एदासु चत्तारि पयडीओ अवणिदे अवसेसाओ पंच होंति। अत्थावत्तीदो पेक्खापुव्वयारिसिस्सेहि जदिवि अवगदाओ सेसपंचपयडीओ, तो वि सद्दाणुसारि-सिस्साणुग्गहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

चदुसंजलणं पुरिसवेदो। एदासिं पंचण्हं पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ॥ ३६ ॥

तत्थ पंचसंखाए, पंचपयडिबंधजोग्गपरिणामे वा। सेसं सुगमं।

तं संजदस्स ॥ ३७ ॥

कुदो? अण्णत्थ पंचपयडिबंधाभावा।

तत्थ इमं चदुण्हं ट्ठाणं पुरिसवेदं वज्ज ॥ ३८ ॥

पंचसु पयडीसु पुरिसवेदे अवणिदे अवसेसाओ चत्तारि हवंति।

इन उपर्युक्त नौ प्रकृतियोंमेंसे हास्यादि चार प्रकृतियोंको कम कर देनेपर अवशेष पांच प्रकृतियां रह जाती हैं।

यद्यपि प्रेक्षापूर्वकारी अर्थात् बुद्धि-प्रधान शिष्योंके द्वारा अर्थापत्तिसे शेष पांच प्रकृतियां जान ली गई हैं, तो भी शब्दनयानुसारी शिष्योंके अनुग्रहके लिए आचार्य उत्तर सूत्र कहते हैं—

क्रोध आदि चारों संज्वलन कषाय और पुरुषवेद, इन पांचों प्रकृतियोंके बंध करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ३६ ॥

उस 'एक ही भावमें' इस पदका अर्थ 'पांच प्रकृतिरूप संख्यामें, अथवा पांच प्रकृतियोंके बन्धयोग्य परिणाममें' ऐसा लेना चाहिए। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

वह पांच प्रकृतिरूप छठा बन्धस्थान संयतके होता है ॥ ३७ ॥

क्योंकि, संयतके सिवाय अन्यत्र इस पांच प्रकृतिरूप बन्धस्थानका अभाव है।

विशेषार्थ— यहांपर यद्यपि संयत-सामान्यको ही इस बन्धस्थानका स्वामी बतलाया गया है, तथापि उसका अभिप्राय अनिवृत्तिकरण संयतसे ही है। तथा यही बात आगे कहे जानेवाले चार, तीन और दो प्रकृतिरूप बन्धस्थानोंके स्वामित्वमें भी जानना चाहिए। एक प्रकृतिरूप बन्धस्थानका स्वामी सूक्ष्मसाम्परायसंयत है। इससे आगे न किसी मोहप्रकृतिका बन्ध ही होता है और न उदय या सत्त्व ही रहता है।

मोहनीय कर्मसम्बन्धी उक्त दश बन्धस्थानोंमें छठे बन्धस्थानकी पांच प्रकृति-योंमेंसे पुरुषवेदको छोड़नेपर यह चार प्रकृतिरूप सातवां बन्धस्थान होता है ॥ ३८ ॥

पूर्व सूत्रोक्त पांच प्रकृतियोंमेंसे पुरुषवेदके घटा देनेपर अवशेष चार प्रकृतियां रहती हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जदि वि तेसिं णामाणि अत्थावत्तीदो पमाणाणुसारिसिस्सेहि अवगदाणि, तो वि सद्दाणुसारिसिस्साणुग्गहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

चदुसंजलणं, एदासिं चदुण्हं पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ॥ ३९ ॥

सुगममेदं ।

तं संजदस्स ॥ ४० ॥

एदं पि सुगमं ।

तत्थ इमं तिण्हं ट्ठाणं कोधसंजलणं वज्ज ॥ ४१ ॥

चदुसु पयडीसु कोधसंजलणे अवणिदे अवसेसाओ तिण्णि पयडीओ हवंति । सेसं सुगमं ।

माणसंजलणं मायासंजलणं लोभसंजलणं, एदासिं तिण्हं पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ॥ ४२ ॥

सुगममेदं ।

यद्यपि उन चारों प्रकृतियोंके नाम अर्थापत्तिसे प्रमाणानुसारी शिष्योंके द्वारा जान लिए गये हैं, तथापि शब्दानुसारी शिष्योंके अनुग्रहार्थ आचार्य उत्तर सूत्र कहते हैं—

क्रोधसंज्वलन, मानसंज्वलन, मायासंज्वलन और लोभसंज्वलन, इन चारों प्रकृतियोंके बन्ध करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ३९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वह चार प्रकृतिरूप सातवां बन्धस्थान संयतके होता है ॥ ४० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

मोहनीय कर्मसम्बन्धी उक्त दश बन्धस्थानोंमें सप्तम बन्धस्थानकी चार प्रकृतियोंमेंसे क्रोधसंज्वलनके छोड़नेपर यह तीन प्रकृतिरूप आठवां बन्धस्थान होता है ॥४१॥

चारों संज्वलन प्रकृतियोंमेंसे क्रोधसंज्वलनके घटा देनेपर अवशेष तीन प्रकृतियां रह जाती हैं । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

मानसंज्वलन, मायासंज्वलन और लोभसंज्वलन, इन तीनों प्रकृतियोंके बन्ध करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान होता है ॥ ४२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तं संजदस्स ॥ ४३ ॥

एदं पि सुगमं ।

तत्थ इमं दोण्हं ट्ठाणं माणसंजलणं वज्ज ॥ ४४ ॥

मायासंजलणं लोभसंजलणं, एदासिं दोण्हं पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ॥ ४५ ॥

तं संजदस्स ॥ ४६ ॥

तत्थ इमं एक्किस्से ट्ठाणं मायसंजलणं वज्ज ॥ ४७ ॥

लोभसंजलणं, एदिस्से एक्किस्से पयडीए एक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ॥ ४८ ॥

तं संजदस्स ॥ ४९ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

आउअस्स कम्मस्स चत्तारि पयडीओ ॥ ५० ॥

वह तीन प्रकृतिरूप अष्टम बन्धस्थान संयतके होता है ॥ ४३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

मोहनीय कर्मसम्बन्धी उक्त दश बन्धस्थानोंमें अष्टम बन्धस्थानकी तीन प्रकृतियोंमेंसे मानसंज्वलनको छोड़नेपर यह दो प्रकृतिरूप नवमां बन्धस्थान होता है ॥ ४४ ॥

मायासंज्वलन और लोभसंज्वलन, इन दोनों प्रकृतियोंके बन्ध करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ४५ ॥

वह दो प्रकृतिरूप नवम बन्धस्थान संयतके होता है ॥ ४६ ॥

मोहनीय कर्मसम्बन्धी उक्त दश बन्धस्थानोंमें नवम बन्धस्थानकी दो प्रकृतियोंमेंसे मायासंज्वलनको छोड़नेपर यह एक प्रकृतिरूप दशवां बन्धस्थान होता है ॥ ४७ ॥

लोभसंज्वलन, इस एक प्रकृतिके बन्ध करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ४८ ॥

वह एक प्रकृतिरूप दशवां बन्धस्थान संयतके होता है ॥ ४९ ॥

ये सब सूत्र सुगम हैं ।

आयु कर्मकी चार प्रकृतियां होती हैं ॥ ५० ॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

एदं संगहणयाणुग्गहकारि सुत्तं, उवरि उच्चमाणासेसत्थमवगाहिय अवट्ठाणादो।

णिरआउअं तिरिक्खाउअं मणुसाउअं देवाउअं चेदि ॥ ५१ ॥

ण चेदं णिरत्थयं सुत्तं, विस्सरणालुअसिस्ससंभालणट्ठत्तादो।

जं तं णिरयाउअं कम्मं बंधमाणस्स ॥ ५२ ॥

एदस्स 'एक्कम्हि चेव अवट्ठाणं होदि' त्ति अज्झाहारो कायव्वो, अण्णहा सुत्तस्स अकिरियत्तावत्तीदो। कत्थ अवट्ठाणं ? एक्कसंखाए, णिरयाउबंधपाओग्गपरिणामे वा। किमट्ठमेत्थ एक्कम्हि चेव ट्ठाणमिदि वेदणीयस्सेव ण परूविदं ? ण एस दोसो, संखं पडुच्च चदुण्हं पयडीणमेक्कम्हि चेव ठाणं होदि; परिणामं पडुच्च आउअस्स कम्मस्स चत्तारि ट्ठाणाणि होंति त्ति जाणावणट्ठं तहा अउत्तीदो।

यह सूत्र संग्रहनयवाले जीवोंका अनुग्रहकारी है, क्योंकि, आगे कहे जानेवाले समस्त अर्थको अवगाहन करके, अर्थात् अपने अन्तर्गत करके, अवस्थित है।

नारकायु, तिर्यगायु, मनुष्यायु और देवायु, ये आयुकर्मकी चार प्रकृतियां हैं ॥ ५१ ॥

यह सूत्र निरर्थक नहीं है, क्योंकि, वह विस्मरणशील शिष्योंके स्मरणार्थ बनाया गया है।

आयुकर्मकी चार प्रकृतियोंमें जो नारकायु कर्म है, उसके बन्ध करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ५२ ॥

इस सूत्रमें 'एकमें ही अवस्थान होता है' इस वाक्यका अध्याहार करना चाहिए। अन्यथा सूत्रके निष्क्रियताकी आपत्ति प्राप्त होती है।

शंका—नारकायुके बन्ध करनेवाले जीवका कहांपर अवस्थान होता है ?

समाधान—एक संख्यामें, अथवा नारकायुके बन्धयोग्य परिणाममें उसका अवस्थान होता है।

शंका—यहांपर वेदनीय कर्मके समान 'एकमें ही अवस्थान होता है' इतना वाक्य आचार्यने सूत्रमें किसलिए नहीं कहा ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, संख्याकी अपेक्षा चारों आयुकर्मकी प्रकृतियोंका एकमें ही अवस्थान होता है। किन्तु परिणामकी अपेक्षा आयुकर्मके चार स्थान होते हैं। यह बतलानेके लिए सूत्रमें उक्त प्रकारका वाक्य आचार्यने नहीं कहा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तं मिच्छादिट्ठिस्स ॥ ५३ ॥

तं बंधट्ठाणं मिच्छादिट्ठिस्स चेव होदि, मिच्छत्तोदएण विणा णिरआउअस्स बंधाभावा ।

जं तं तिरिक्खाउअं कम्मं बंधमाणस्स ॥ ५४ ॥

एदस्स अत्थो पुव्वं व परूवेदव्वो ।

तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा ॥ ५५ ॥

तं बंधट्ठाणमेदेसिं दोण्हं गुणट्ठाणाणं होदि, एदेसु तिरिक्खाउअबंधपाओग्ग-परिणामुवलंभा ।

जं तं मणुसाउअं कम्मं बंधमाणस्स ॥ ५६ ॥

सुगममेदं ।

तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा ॥ ५७ ॥

वह बन्धस्थान मिथ्यादृष्टिके होता है ॥ ५३ ॥

वह अर्थात् नारकायुके बन्धवाला एक प्रकृतिरूप बन्धस्थान मिथ्यादृष्टि जीवके ही होता है, क्योंकि, मिथ्यात्वकर्मके उदयके विना नारकायुका बन्ध नहीं होता है ।

जो तिर्यगायु कर्म है, उसके बन्ध करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ५४ ॥

इस सूत्रका अर्थ भी पूर्व सूत्रके समान कहना चाहिए ।

वह तिर्यगायुके बन्धरूप एक प्रकृतिवाला स्थान मिथ्यादृष्टि और सासादन-सम्यग्दृष्टिके होता है ॥ ५५ ॥

वह बन्धस्थान इन सूत्रोक्त दोनों गुणस्थानवर्ती जीवोंके होता है, क्योंकि, इन दोनों गुणस्थानोंमें तिर्यगायुके बांधनेयोग्य परिणाम पाए जाते हैं ।

जो मनुष्यायु कर्म है, उसके बन्ध करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ५६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वह मनुष्यायुके बन्धरूप एक प्रकृतिवाला स्थान मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टिके होता है ॥ ५७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुदो ? उवरिमगुणट्ठाणेसु मणुसाउअबंधपरिणामाभावा। सम्मामिच्छादिट्ठिम्हि[1] चत्तारि वि आउआणि बंधसरूवेण णत्थि त्ति घेत्तव्वं। कुदो ? तत्थेक्कस्स वि आउअस्स सामित्तपरूवणाभावा।

जं तं देवाउअं कम्मं बंधमाणस्स ॥ ५८ ॥

सुगममेदं।

तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा ॥ ५९ ॥

एदं पि सुगमं।

णामस्स कम्मस्स अट्ठ ट्ठाणाणि, एक्कत्तीसाए तीसाए एगूणतीसाए अट्ठवीसाए छव्वीसाए पणुवीसाए तेवीसाए एक्किस्से ट्ठाणं चेदि[2] ॥ ६० ॥

एदं संगहणयसुत्तं, बीजपदत्तादो। कधमेदम्हादो उवरि उच्चमाणसव्वत्थावगमो ?

क्योंकि, असंयतसम्यग्दृष्टिसे ऊपरके गुणस्थानोंमें मनुष्यायुके बांधने योग्य परिणामोंका अभाव है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें चारों ही आयुकर्म बन्धस्वरूपसे नहीं हैं, ऐसा अर्थ जानना चाहिए। इसका कारण यह है कि उस गुणस्थानमें एक भी आयुकर्मके वन्धका स्वामित्व नहीं बतलाया गया है।

जो देवायु कर्म है, उसे बन्ध करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान होता है ॥ ५८ ॥

यह सूत्र सुगम है। (यहां संयतसे अभिप्राय अपूर्वकरण गुणस्थानके प्रथम छह भागों तकके संयतोंसे ही है।)

वह देवायुके बन्धरूप एक प्रकृतिवाला स्थान मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयतके होता है ॥ ५९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

नामकर्मके आठ बन्धस्थान हैं— इकतीस प्रकृतिसम्बन्धी, तीस प्रकृतिसम्बन्धी उनतीस प्रकृतिसम्बन्धी अट्ठाईस प्रकृतिसम्बन्धी, छब्बीस प्रकृतिसम्बन्धी, पच्चीस प्रकृतिसम्बन्धी, तेईस प्रकृतिसम्बन्धी और एक प्रकृतिसम्बन्धी बन्धस्थान ॥ ६० ॥

यह संग्रहनयाश्रित सूत्र है, क्योंकि, वह बीजपदस्वरूप है।

शंका—इसके ऊपर कहे जानेवाले सर्व अर्थोंका ज्ञान इस सूत्रसे कैसे होता है ?

---

१ प्रतिषु 'सम्मामिच्छादिट्ठीहि' इति पाठः।

२ तेवीसं पणवीसं छव्वीसं अट्ठवीसमुगतीसं। तीसेक्कतीसमेवं एक्को बंधो दुसेदिम्हि ॥ गो. क. ५२१. तेवीस पंचवीसा छव्वीसा अट्ठवीस गुणतीसा। तीसेक्कतीस एगं पडिग्गहा अट्ठ णामस्स ॥ कम्म प. सं. २४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ण एस दोसो, एदस्सुवरि सव्वत्थं परूवयंतआइरियवक्खाणादो तदवगमविरोहाभावा।

विसेसरुइसिस्साणुग्गहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

तत्थ इमं अट्ठावीसाए ट्ठाणं, णिरयगदी पंचिंदियजादी वेउव्वियतेजा-कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं वेउव्वियसरीरअंगोवंगं वण्ण-गंध-रस-फासं णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासं अप्पसत्थविहायगई तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-अथिर-असुह-दुहव-दुस्सर-अणादेज्ज-अजसकित्ति-णिमिणणामं। एदासिं अट्ठावीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ ६१ ॥

णिरयगदीए सह एइंदिय-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियजादीओ किण्ण बज्झंति? ण, णिरयगइबंधेण सह एदासिं बंधाणं उत्तिविरोहादो। एदेसिं संताणमक्कमेण एय-

---

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, इस सूत्रके ऊपर उसके अन्तर्निहित सर्व अर्थका प्ररूपण करनेवाले आचार्योंके व्याख्यानसे उन अर्थोंके जाननेमें कोई विरोध नहीं है।

अब विशेष-रुचिवाले शिष्योंके अनुग्रहके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

नामकर्मके उक्त आठ बन्धस्थानोंमें यह अट्ठाईस प्रकृतिसम्बन्धी बन्धस्थान है— नरकगति[1], पंचेन्द्रियजाति[2], वैक्रियिकशरीर[3], तैजसशरीर[4], कार्मणशरीर[5], हुंड-संस्थान[6], वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग[7], वर्ण[8], गन्ध[9], रस[10], स्पर्श[11], नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी[12], अगुरुलघु[13], उपघात[14], परघात[15], उच्छ्वास[16], अप्रशस्तविहायोगति[17], त्रस[18], बादर[19], पर्याप्त[20], प्रत्येकशरीर[21], अस्थिर[22], अशुभ[23], दुर्भग[24], दुःस्वर[25], अनादेय[26], अयशःकीर्ति[27], और निर्माणनाम[28]। इन अट्ठाईस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है॥ ६१ ॥

शंका—नरकगतिके साथ एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जाति-नामवाली प्रकृतियां क्यों नहीं बंधती हैं?

समाधान—नहीं, क्योंकि, नरकगतिके बन्धके साथ इन द्वीन्द्रियजाति आदि प्रकृतियोंके बंधनेका विरोध है।

शंका—इन प्रकृतियोंके सत्त्वका एक साथ एक जीवमें अवस्थान देखा जाता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवम्हि उत्तिदंसणादो ण विरोहो त्ति चे, होदु संतं पडि विरोहाभावो, इच्छिज्ज-माणत्तादो। ण बंधेण अविरोहो, तधोवदेसाभावा। ण च संतम्मि विरोहाभावं दट्ठूण बंधम्हि वि तदभावो वोत्तुं सक्किज्जइ, बंध-संताणमेयत्ताभावा। णिरयगईए सह जासि-मक्कमेण उदओ अत्थि ताओ णिरयगईए सह बंधमागच्छंति त्ति केई भणंति, तण्ण घडदे, थिर-सुहाणं धुवोदयत्तणेण णिरयगदीए सह उदयमागच्छंताणं णिरयगदीए सह बंधप्पसंगादो। ण च एवं, सुहाणमसुहेहि सह बंधाभावा। तदो णिरयगदीए जासि-मुदओ णत्थि, एयंतेण तासिं बंधो णत्थि चेव। जासिं पुण उदओ अत्थि, तासिं णिरयगदीए सह केसिं पि बंधो[1] होदि, केसिं पि ण होदि त्ति घेत्तव्वं। एवमण्णासिं पि णिरयगदीए बंधेण सह विरुद्धबंधपयडीणं परूवणा कादव्वा।

णिरयगइं पंचिंदिय-पज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छा-दिट्ठिस्स ॥ ६२ ॥

है, इसलिए बन्धका विरोध नहीं होना चाहिए ?

समाधान—सत्त्वकी अपेक्षा उक्त प्रकृतियोंके एक साथ रहनेका विरोध भले ही न हो, क्योंकि, वैसा माना गया है। किन्तु बन्धकी अपेक्षा उन प्रकृतियोंके एक साथ रहनेमें विरोधका अभाव नहीं है, अर्थात् विरोध ही है, क्योंकि, उस प्रकारका उपदेश नहीं पाया जाता है। और सत्त्वमें विरोधका अभाव देखकर बन्धमें भी उनका अभाव नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि, बन्ध और सत्त्वमें एकत्वका विरोध है, अर्थात् बन्ध और सत्त्व ये दोनों एक वस्तु नहीं हैं।

कितने ही आचार्य यह कहते हैं कि नरकगतिनामक नामकर्मकी प्रकृतिके साथ जिन प्रकृतियोंका युगपत् उदय होता है, वे प्रकृतियां नरकगतिनाम प्रकृतिके साथ बन्धको प्राप्त होती हैं। किन्तु उनका यह कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, वैसा मानने पर ध्रुव-उदय-शील होनेसे नरकगतिनाम प्रकृतिके साथ उदयमें आनेवाले स्थिर और शुभ नामकर्मोंका नरकगतिके साथ बन्धका प्रसंग आता है। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, शुभ प्रकृतियोंका अशुभ प्रकृतियोंके साथ बन्धका अभाव है। इसलिए नरकगतिके साथ जिन प्रकृति-योंका उदय नहीं है, एकान्तसे उनका बन्ध नहीं ही होता है। किन्तु जिन प्रकृतियोंका एक साथ उदय होता है, उनका नरकगतिके साथ कितनी ही प्रकृतियोंका बन्ध होता है और कितनी ही प्रकृतियोंका नहीं होता है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए। इसी प्रकार अन्य भी नरकगतिके बन्धके साथ विरुद्ध पड़नेवाली बन्ध-प्रकृतियोंकी प्ररूपणा करना चाहिए।

वह अट्ठाईस प्रकृतिरूप बन्धस्थान, पंचेन्द्रियजाति और पर्याप्त नामकर्मसे संयुक्त नरकगतिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टिके होता है ॥ ६२ ॥

---

१ प्रतिषु ' केसिं पबंधो ' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तं बंधट्ठाणं कस्स होदि त्ति पुच्छिदे मिच्छादिट्ठिस्स होदि। कुदो? उवरिम-गुणट्ठाणेसु णिरयगदीए बंधाभावा।

तिरिक्खगदिणामाए पंच ट्ठाणाणि, तीसाए एगूणतीसाए छव्वीसाए पणुवीसाए तेवीसाए ट्ठाणं चेदि ॥ ६३ ॥

तिरिक्खगदिणामाए पयडीए त्ति संबंधो कायव्वो। एदं संगहणयसुत्तं, एदम्मि उवरि उच्चमाणसव्वत्थसंभवादो।

तत्थ इमं पढमत्तीसाए ट्ठाणं, तिरिक्खगदी पंचिंदियजादी ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीरं छण्हं संट्ठाणाणमेक्कदरं ओरालियसरीर-अंगोवंगं छण्हं संघडणाणमेक्कदरं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगदि-पाओग्गाणुपुव्वी अगुरुवलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-उज्जोवं दोण्हं विहायगदीणमेक्कदरं तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुभासुभाणमेक्कदरं सुहव-दुहवाणमेक्कदरं सुस्सर-दुस्सराणमेक्कदरं

वह बन्धस्थान किसके होता है, ऐसा पूछनेपर उत्तर दिया जाता है कि वह बन्धस्थान मिथ्यादृष्टि जीवके होता है, क्योंकि, उपरिम गुणस्थानोंमें नरकगतिके बन्धका अभाव है।

तिर्यग्गतिनामकर्मके पांच बन्धस्थान हैं— तीस प्रकृतिसम्बन्धी, उनतीस प्रकृतिसम्बन्धी, छब्बीस प्रकृतिसम्बन्धी, पच्चीस प्रकृतिसम्बन्धी और तेवीस प्रकृति-सम्बन्धी बन्धस्थान ॥ ६३ ॥

यहां 'तिर्यग्गतिनामा नामकर्मकी प्रकृतिके' इस प्रकार सम्बन्ध करना चाहिए। यह संग्रहनयाश्रित सूत्र है, क्योंकि, आगे कहे जानेवाले सर्व अर्थ इसमें संभव हैं।

नामकर्मके तिर्यग्गतिसम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह प्रथम तीस प्रकृति-रूप बन्धस्थान है— तिर्यग्गति[१], पंचेन्द्रियजाति[२], औदारिकशरीर[३], तैजसशरीर[४], कार्मण-शरीर[५], छहों संस्थानोंमेंसे कोई एक[६], औदारिकशरीर-अंगोपांग[७], छहों संहननोंमेंसे कोई एक[८], वर्ण[९], गन्ध[१०], रस[११], स्पर्श[१२], तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी[१३], अगुरुलघु[१४], उपघात[१५], परघात[१६], उच्छ्वास[१७], उद्योत[१८], दोनों विहायोगतियोंमेंसे कोई एक[१९], त्रस[२०], बादर[२१], पर्याप्त[२२], प्रत्येकशरीर[२३], स्थिर और अस्थिर इन दोनोंमेंसे कोई एक[२४], शुभ और अशुभ इन दोनोंमेंसे कोई एक[२५], सुभग और दुर्भग इन दोनोंमेंसे कोई एक[२६], सुस्वर और

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

आदेज्ज–अणादेज्जाणमेक्कदरं जसकित्ति–अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामं च । एदासिं पढमतीसाए पयडीणं एक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ ६४ ॥

एदासिं उत्तासेसपयडीणं एक्कम्हि चेव तीससंखाणम्मि एदासिमक्कमेण बंध-जोग्गपरिणामे वा ट्ठाणमवट्ठाणं होदि । सेसं सुगमं । एत्थ भंगपमाणं ४६०८[1] ।

तिरिक्खगदिं पंचिंदिय-पज्जत्त-उज्जोवसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स ॥ ६५ ॥

तं मिच्छादिट्ठिस्सेत्ति एदं चेव वत्तव्वं, णेदरं, पयडिणिद्देसेणेव तदवगमादो ? ण एस दोसो, मंदबुद्धिसिस्साणुग्गहट्ठं तदुप्पत्तीदो । एदं बंधट्ठाणमुवरिमाणं णत्थि[2] ।

दुःस्वर इन दोनोंमेंसे कोई एक[27], आदेय और अनादेय इन दोनोंमेंसे कोई एक[28], यशःकीर्त्ति और अयशःकीर्त्ति इन दोनोंमेंसे कोई एक[29] और निर्माण नामकर्म[30] । इन प्रथम तीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ६४ ॥

इन सूत्रोक्त समस्त प्रकृतियोंका एक ही तीस-संख्यामें, अथवा इनके युगपत् बंधनेयोग्य परिणाममें स्थान अर्थात् अवस्थान होता है । शेष सूत्रार्थ सुगम है । यहांपर भंगोंका प्रमाण चार हजार छह सौ आठ (४६०८) है ।

विशेषार्थ—यहांपर छह संस्थान, छह संहनन, तथा विहायोगति, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय और यशःकीर्त्ति, इन सात युगलोंके विकल्पसे ६×६×२×२×२×२×२×२×२=४६०८ छयालीस सौ आठ भंग होते हैं ।

वह प्रथम तीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान, पंचेन्द्रियजाति, पर्याप्त और उद्योत नामकर्मसे संयुक्त तिर्यग्गतिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टिके होता है ॥ ६५ ॥

शंका—'वह बन्धस्थान मिथ्यादृष्टि जीवके होता है' इतना वाक्य ही सूत्रमें कहना चाहिए, अन्य (शेष) नहीं, क्योंकि, प्रकृतियोंके नाम-निर्देशसे ही उसका ज्ञान हो जाता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, मन्द-बुद्धि शिष्योंके अनुग्रहके लिए उसकी रचना हुई है ।

यह बन्धस्थान उपरिम, अर्थात् सासादनसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानवर्त्ती जीवोंके

१ संठाणे संहडणे विहायजुम्मे य चरिमछज्जुम्मे । अविरुद्धेक्कदरादो बंधट्ठाणेसु भंगा हु ॥ ५३२ ॥ सण्णिस्स मणुस्सस्स य ओघेक्कदरं तु मिच्छभंगा हु । छादालसयं अट्ठ य ××× ॥ गो. क. ५३६.

२ प्रतिषु '-मुवरिमा णत्थि' इति पाठः ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

कुदो ? हुंडसंठाण-असंपत्तसेवट्टसंघडणाणं सासणे बंधाभावा।

तत्थ इमं विदियत्तीसाए ट्ठाणं, तिरिक्खगदी पंचिंदियजादी ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं वज्ज पंचण्हं संठाणाणमेक्कदरं ओरालियसरीरअंगोवंगं असंपत्तसेवट्टसंघडणं वज्ज पंचण्हं संघडणाणमेक्कदरं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुव-लहुव-उवघाद-परघाद-उस्सास-उज्जोवं दोण्हं विहायगदीणमेक्कदरं तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुहासुहाणमेक्कदरं सुहव-दुहवाणमेक्कदरं सुस्सर-दुस्सराणमेक्कदरं आदेज्ज-अणादेज्जाणमेक्कदरं जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामं । एदासिं विदियत्तीसाए पयडीणं एक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ ६६ ॥

पुव्विल्लतीसट्ठाणादो कधमेदस्स भेदो ? हुंडसंठाण-असंपत्तसेवट्टसरीर-

---

नहीं होता है, क्योंकि, सासादन तथा उससे ऊपर किसी भी गुणस्थानमें हुंडसंस्थान और असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन, इन प्रकृतियोंके बन्धका अभाव है।

नामकर्मके तिर्यग्गतिसम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह द्वितीय तीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान है— तिर्यग्गति[1], पंचेन्द्रियजाति[2], औदारिकशरीर[3], तैजसशरीर[4], कार्मणशरीर[5], हुंडसंस्थानको छोड़कर शेष पांचों संस्थानोंमेंसे कोई एक[6], औदारिकशरीर-अंगोपांग[7], असंप्राप्तासृपाटिकासंहननको छोड़कर शेष पांचों संहननोंमेंसे कोई एक[8], वर्ण[9], गन्ध[10], रस[11], स्पर्श[12], तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी[13], अगुरुलघु[14], उपघात[15], परघात[16], उच्छ्वास[17], उद्योत[18], दोनों विहायोगतियोंमेंसे कोई एक[19], त्रस[20], बादर[21], पर्याप्त[22], प्रत्येकशरीर[23], स्थिर और अस्थिर इन दोनोंमेंसे कोई एक[24], शुभ और अशुभ इन दोनोंमेंसे कोई एक[25], सुभग, और दुर्भग, इन दोनोंमेंसे कोई एक[26], सुस्वर और दुस्वर इन दोनोंमेंसे कोई एक[27], आदेय और अनादेय इन दोनोंमेंसे कोई एक[28], यशःकीर्त्ति और अयशःकीर्ति इन दोनोंमेंसे कोई एक[29], तथा निर्माणनामकर्म[30]। इन द्वितीय तीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ६६ ॥

शंका—पूर्वोक्त तीस प्रकृतिवाले बन्धस्थानसे इस तीस प्रकृतिवाले बन्धस्थानका भेद किस प्रकार है ?

समाधान—हुंडसंस्थान और असंप्राप्तासृपाटिकाशरीरसंहनन, इन दो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संघडणाणमभावेण । तीसाहारं पडि ण भेद इदि चे ण, छस्संठाण-संघडणपडिबद्ध-तीसठाणादो पंचसंठाण-संघडणपडिबद्धतीसट्ठाणस्स एयत्तविरोहा । सेसं सुगमं ।

तिरिक्खगदिं पंचिंदिय-पज्जत्त-उज्जोवसंजुत्तं बंधमाणस्स तं सासणसम्मादिट्ठिस्स ॥ ६७ ॥

अंतिमसंठाण-संघडणाणि सासणस्स किण्ण बंधमागच्छंति ? ण, तत्थ जोग्गतिव्व-संकिलेसाभावा । सेसं सुगमं । एत्थ भंगपमाणं ३२००[1] ।

तत्थ इमं तदियतीसाए ट्ठाणं, तिरिक्खगदी बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय तिण्हं जादीणमेक्कदरं ओरालिय-तेया-कम्मइयसरीरं हुंड-

प्रकृतियोंके अभावकी अपेक्षा पूर्वोक्त बन्धस्थानसे इस बन्धस्थानका भेद है ।

शंका—' तीस ' इस संख्यारूप आधारकी अपेक्षा तो कोई भेद नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, छह संस्थानों और छह संहननोंसे प्रतिबद्ध तीस प्रकृतिरूप बन्धस्थानसे, अर्थात् उसकी अपेक्षा, अथवा उसके साथ पांच संस्थानों और पांच संहननोंसे प्रतिबद्ध तीस प्रकृतिरूप बन्धस्थानके एकत्वका विरोध है । अर्थात् प्रकृतियोंकी संख्या दोनों स्थानोंमें तीस ही होनेपर भी उक्त प्रकार विभिन्न प्रकृतियोंवाले दो बन्धस्थान एक नहीं हो सकते हैं ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

वह द्वितीय तीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान पंचेन्द्रियजाति, पर्याप्त और उद्योत नामकर्मसे संयुक्त तिर्यग्गतिको बांधनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टिके होता है ॥ ६७ ॥

शंका—अन्तिम संस्थान अर्थात् हुंडसंस्थान और अन्तिम संहनन अर्थात् असं-प्राप्तासृपाटिकासंहनन सासादनसम्यग्दृष्टिके क्यों नहीं बन्धको प्राप्त होते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, वहांपर, अर्थात् दूसरे गुणस्थानमें, उन दोनों प्रकृतियोंके बन्ध-योग्य तीव्र संक्लेश नहीं होता है ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है । यहांपर पांच संस्थान, पांच संहनन, तथा उक्त विहायोगति आदि सात युगलोंके विकल्पसे ५×५×२×२×२×२×२×२×२=३२०० बत्तीस सौ भंग होते हैं ।

नामकर्मके तिर्यग्गतिसम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह तृतीय तीस प्रकृति-रूप बन्धस्थान है— तिर्यग्गति[1], द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, और चतुरिन्द्रिय-जाति इन तीन जातियोंमेंसे कोई एक[2], औदारिकशरीर[3], तैजसशरीर[4], कार्मणशरीर[5],

१ विदिये बत्तीससयभंगा ॥ गो. क. ५३६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संठाणं ओरालियसरीरअंगोवंगं असंपत्तसेवट्टसरीरसंघडणं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सास-उज्जोवं अप्पसत्थविहायगदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुभासुभाणमेक्कदरं दुभग-दुस्सर-अणादेज्जं जस-कित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामं । एदासिं तदियतीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ ६८ ॥

विगलिंदियाणं बंधो उदओ वि हुंडसंठाणमेवेत्ति सुत्ते उत्तं । णेदं घडदे, विगलिंदियाणं छस्संठाणुवलंभा ? ण एस दोसो, सव्वावयवेसु णियदसरूवपंचसंठाणेसु वे-तिण्णि-चदु-पंचसंठाणाणं संजोगेण हुंडसंठाणमणेयभेदभिण्णमुप्पज्जदि । ण च पंच-संट्ठाणाणि[1] पच्चवयवमेरिसाणि त्ति णज्जंते, संपहि तथाविधोवदेसाभावा । ण च तेसु अविण्णादेसु एदेसिमेसो संजोगो त्ति णादुं सक्किज्जदे । तदो सव्वे वि[2] विगलिंदिया हुंड-

हुंडसंस्थान[6], औदारिकशरीर-अंगोपांग[7], असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन[8], वर्ण[9], गन्ध[10], रस[11], स्पर्श[12], तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी[13], अगुरुलघु[14], उपघात[15], परघात[16], उच्छ्वास[17], उद्योत[18], अप्रशस्तविहायोगति[19], त्रस[20], बादर[21], पर्याप्त[22], प्रत्येकशरीर[23], स्थिर और अस्थिर इन दोनोंमेंसे कोई एक[24], शुभ और अशुभ इन दोनोंमेंसे कोई एक[25], दुर्भग[26], दुःस्वर[27], अनादेय[28], यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति इन दोनोंमेंसे कोई एक[29], तथा निर्माणनामकर्म[30] । इन तृतीय तीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ६८ ॥

शंका—विकलेन्द्रिय जीवोंके हुंडसंस्थान इस एक प्रकृतिका ही बन्ध और उदय होता है, यह सूत्रमें कहा है । किन्तु यह घटित नहीं होता, क्योंकि, विकलेन्द्रिय जीवोंके छह संस्थान पाये जाते हैं ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, सर्व अवयवोंमें नियत स्वरूपवाले पांच संस्थानोंके होनेपर दो, तीन, चार, और पांच संस्थानोंके संयोगसे हुंडसंस्थान अनेक भेद-भिन्न उत्पन्न होता है । वे पांच संस्थान प्रत्येक अवयवके प्रति इस प्रकारके आकारवाले होते हैं, यह नहीं जाना जाता है, क्योंकि, आज उस प्रकारके उपदेशका अभाव है । और, उन संयोगी भेदोंके नहीं ज्ञात होनेपर इन जीवोंके 'अमुक संस्थानोंके संयोगात्मक यह भंग है, यह नहीं जाना जा सकता है । अतएव सभी विकलेन्द्रिय

१ प्रतिषु 'पंच संट्ठाणाणि' इति पाठो नास्ति । म प्रतौ तु 'पंच ट्ठाणाणि' इति पाठः ।

२ प्रतिषु 'सव्वेहि' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संठाणा वि होंता ण णज्जंति त्ति सिद्धं ।

विगलिंदियाणं बंधो उदओ वि दुस्सरं चेव होदि त्ति सुत्ते उत्तं । भमरादओ सुस्सरा वि दिस्संति, तदो कधमेदं घडदे? ण, भमरादिसु कोइलासु व महुरसराणुवलंभा। भिण्णरुचीदो केसिं पि जीवाणममहुरो वि सरो महुरो व्व रुच्चइ त्ति तस्स सरस्स महुरत्तं किण्ण इच्छिज्जदि ? ण एस दोसो, पुरिसिच्छादो वत्थुपरिणामाणुवलंभा । ण च णिंबो केसिं पि रुच्चदि त्ति महुरत्तं पडिवज्जदे, अव्ववत्थावत्तीदो । एत्थ भंगा चउवीसा (२४) ।

....

जीव हुंडसंस्थानवाले होते हुए भी आज नहीं जाने जाते हैं, यह बात सिद्ध हुई ।

विशेषार्थ — उक्त कथनका अभिप्राय यह है कि यद्यपि विकलेन्द्रिय जीवोंके एक हुंडकसंस्थान ही माना गया है, तथापि उनमें संभव अवयवोंकी अपेक्षा अन्य भी संस्थान हो सकते हैं, क्योंकि, प्रत्येक अवयवमें भिन्न भिन्न संस्थानका प्रतिनियत स्वरूप माना गया है । किन्तु आज यह उपदेश प्राप्त नहीं है कि उनके किस अवयवमें कौनसा संस्थान किस आकाररूपसे होता है । अतएव विकलेन्द्रिय जीवोंमें अंगोपांगोंकी संख्या-वृद्धिके अनुसार मूल संस्थान एक हुंडकके साथ साथ अवयवसम्बन्धी संस्थानोंके द्विसंयोगी, त्रिसंयोगी, चतुःसंयोगी और पंचसंयोगी भेदोंके निमित्तसे छहों संस्थानोंकी संभावना होने पर भी आगममें इन संयोगी संस्थान-भेदोंकी विवक्षा नहीं की गई है, और इसलिए उनके एक मात्र हुंडकसंस्थान ही बतलाया गया है । द्विसंयोगी आदि भंगोंके लिए देखो इसी भागके पृष्ठ ७२ परका विशेषार्थ ।

शंका—विकलेन्द्रिय जीवोंके बन्ध भी और उदय भी दुःस्वर प्रकृतिका होता है, यह सूत्रमें कहा है। किन्तु भ्रमर आदि कुछ विकलेन्द्रिय जीव सुस्वरवाले भी दिखलाई देते हैं, इसलिए यह बात कैसे घटित होती है कि उनके सुस्वरप्रकृतिका बन्ध या उदय नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, भ्रमर आदिमें कोकिलाओंके समान मधुर स्वर नहीं पाया जाता है ।

शंका—भिन्न रुचि होनेसे कितने ही जीवोंके अमधुर स्वर भी मधुरके समान रुचता है । इसलिए उसके, अर्थात् भ्रमरके स्वरके मधुरता क्यों नहीं मान ली जाती है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, पुरुषोंकी इच्छासे वस्तुका परिणमन नहीं पाया जाता है । नीम कितने ही जीवोंको रुचता है; इसलिए वह मधुरताको नहीं प्राप्त हो जाता है, क्योंकि, वैसा माननेपर अव्यवस्था प्राप्त होती है ।

यहांपर तीन जाति, तथा स्थिर, शुभ और यशःकीर्त्ति, इन तीन युगलोंके विकल्पसे (३×२×२×२=२४) चौवीस भंग होते हैं ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

तिरिक्खगदिं विगलिंदिय-पज्जत्त-उज्जोवसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स ॥ ६९ ॥

सुगममेदं ।

तत्थ इमं पढमऊणतीसाए ट्ठाणं । जधा, पढमतीसाए भंगो । णवरि उज्जोवं वज्ज । एदासिं पढमऊणतीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ ७० ॥

ऊणतीसाए त्ति उत्ते एगूणतीसाए त्ति घेत्तव्वं, दोआदीहि ऊणतीसाए गहणं ण होदि । कुदो ? रूढिबलभावादो । जहा इदि उत्ते तं जहा इदि सिस्सपुच्छावयणं त्ति घेत्तव्वं । सेसं सुगमं ।

तिरिक्खगदिं पंचिंदिय-पज्जत्तसंजुत्तं (बंधमाणस्स तं) मिच्छादिट्ठिस्स ॥ ७१ ॥

एदं पुव्वुत्तबंधट्ठाणसामित्तसुत्तं सुगममिदि ण एत्थ किंचि उच्चदे ।

वह तृतीय तीस प्रकृतिरूप बंधस्थान विकलेन्द्रिय, पर्याप्त और उद्योत नामकर्मसे संयुक्त तिर्यग्गतिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके होता है ॥ ६९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

नामकर्मके तिर्यग्गतिसम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमेंसे यह प्रथम उनतीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान है । वह किस प्रकार है ? वह प्रथम तीस प्रकृतिसम्बन्धी बन्धस्थानके समान प्रकृति-भंगवाला है । विशेषता यह है कि यहां उद्योतप्रकृतिको छोड़ देना चाहिए । इन प्रथम उनतीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ७० ॥

'उनतीस' ऐसा कहनेपर 'एक कम तीस' यह अर्थ ग्रहण करना चाहिए, दो आदिसे कम तीसका ग्रहण नहीं होता है, क्योंकि, रूढ़िके बलसे ऐसा ही अर्थ लिया जाता है । 'यथा' ऐसा पद कहनेपर 'वह किस प्रकार है ?' इस प्रकार शिष्यका पृच्छावचन यह अर्थ ग्रहण करना चाहिए । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

वह प्रथम उनतीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान पंचेन्द्रिय और पर्याप्त नामकर्मसे संयुक्त तिर्यग्गतिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके होता है ॥ ७१ ॥

यह पहले कहे हुये बन्धस्थानके स्वामित्वका सूत्र सुगम है, अतएव यहांपर कुछ भी नहीं कहा जाता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्थ इमं विदियएगूणतीसाए ट्ठाणं। जधा, विदियत्तीसाए भंगो। णवरि उज्जोवं वज्ज। एदासिं विदीए ऊणतीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ ७२ ॥

सुगममेदमणंतरमेव उत्तत्थत्तादो।

तिरिक्खगदिं पंचिंदिय-पज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं सासणसम्मादिट्ठिस्स॥ ७३ ॥

सुगममेदं सामित्तसुत्तं।

तत्थ इमं तदियऊणतीसाए ठाणं। जधा, तदियतीसाए भंगो। णवरि उज्जोवं वज्ज। एदासिं तदियऊणतीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ ७४ ॥

एदं वि सुगमं।

तिरिक्खगदिं विगलिंदिय-पज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स ॥ ७५ ॥

नामकर्मके तिर्यग्गतिसम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह द्वितीय उनतीस प्रकृतिसम्बन्धी बन्धस्थान है। वह किस प्रकार है? वह द्वितीय तीस प्रकृतिसम्बन्धी बन्धस्थानके समान प्रकृति-भंगवाला है। विशेषता यह है कि यहां उद्योतप्रकृतिको छोड़ देना चाहिए। इन द्वितीय उनतीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ७२ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, अनन्तर ही इसका अर्थ कहा जा चुका है।

वह द्वितीय उनतीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान पंचेन्द्रिय और पर्याप्त नामकर्मसे संयुक्त तिर्यग्गतिको बांधनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवके होता है ॥ ७३ ॥

यह स्वामित्वसम्बन्धी सूत्र सुगम है।

नामकर्मके तिर्यग्गतिसम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह तृतीय उनतीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान है। वह किस प्रकार है? वह तृतीय तीस प्रकृतिसम्बन्धी बन्धस्थानके समान प्रकृति-भंगवाला है। विशेषता यह है कि यहां उद्योतप्रकृतिको छोड़ देना चाहिए। इन तृतीय उनतीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ७४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

वह तृतीय उनतीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान विकलेन्द्रिय और पर्याप्त नामकर्मसे संयुक्त तिर्यग्गतिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके होता है ॥ ७५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुगममेदं ।

तत्थ इमं छव्वीसाए ट्ठाणं, तिरिक्खगदी एइंदियजादी ओरालिय-तेया-कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासं आदावुज्जोवाणमेक्कदरं (थावर-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं) सुहासुहाणमेक्कदरं दुहव-अणादेज्जं जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामं । एदासिं छव्वीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ ७६ ॥

एइंदियाणमंगोवंगं किण्ण परूविदं ? ण, तेसिं णलय-बाहू-णिदंब-पट्ठि-सीसोराणमभावादो तदभावा । एइंदियाणं छ संठाणाणि किण्ण परूविदाणि ? ण, पच्चवयवपरूविदलक्खणपंचसंठाणाणं समूहसरूवाण छसंठाणत्थित्तविरोहा । भंगा सोलस (१६) ।

....

यह सूत्र सुगम है ।

नामकर्मके तिर्यग्गतिसम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह छब्बीस प्रकृतिसम्बन्धी बन्धस्थान है— तिर्यग्गति[1], एकेन्द्रियजाति[2], औदारिकशरीर[3], तैजसशरीर[4], कार्मणशरीर[5], हुंडसंस्थान[6], वर्ण[7], गन्ध[8], रस[9], स्पर्श[10], तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी[11], अगुरुलघु[12], उपघात[13], परघात[14], उच्छ्वास[15], आतप और उद्योत इन दोनोंमेंसे कोई एक[16], स्थावर[17], बादर[18], पर्याप्त[19], प्रत्येकशरीर[20], स्थिर और अस्थिर इन दोनोंमेंसे कोई एक[21], शुभ और अशुभ इन दोनोंमेंसे कोई एक[22], दुर्भग[23], अनादेय[24], यशःकीर्त्ति और अयशःकीर्त्ति इन दोनोंमेंसे कोई एक[25], तथा निर्माण नामकर्म[26] । इन छब्बीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ७६ ॥

शंका—एकेन्द्रिय जीवोंके अंगोपांग क्यों नहीं बतलाये ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, उनके पैर, हाथ, नितम्ब, पीठ, शिर और उर (हृदय) का अभाव होनेसे अंगोपांग नहीं होते हैं ।

शंका—एकेन्द्रियोंके छहों संस्थान क्यों नहीं बतलाए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, प्रत्येक अवयवमें प्ररूपित लक्षणवाले पांच संस्थानोंको समूहस्वरूपसे धारण करनेवाले एकेन्द्रियोंके पृथक् पृथक् छह संस्थानोंके अस्तित्वका विरोध है ।

यहां पर आतप, स्थिर, शुभ और यशःकीर्त्ति, इन चार युगलोंके विकल्पसे (२×२×२×२=१६) सोलह भंग होते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिरिक्खगदिं एइंदिय-बादर-पज्जत्त-आदाउज्जोवाणमेक्कदर-संजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स ॥ ७७ ॥

कुदो ? अण्णेसिमेइंदियजादीए बंधाभावा ।

तत्थ इमं पढमपणुवीसाए ट्ठाणं, तिरिक्खगदी एइंदियजादी ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगदि-पाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-थावरं बादर-सुहुमाणमेक्कदरं पज्जत्तं पत्तेग-साधारणसरीराणमेक्कदरं थिराथिराण-मेक्कदरं सुहासुहाणमेक्कदरं दुहव-अणादेज्जं जसकित्ति-अजसकित्तीण-मेक्कदरं णिमिणणामं । एदासिं पढमपणुवीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ ७८ ॥

अगुरुअलहुअत्तं णाम सव्वजीवाणं पारिणामियमत्थि, सिद्धेसु खीणासेसकम्मेसु वि तस्सुवलंभा । तदो अगुरुलहुअकम्मस्स फलाभावा तस्साभावो इदि ? एत्थ

वह छब्बीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान एकेन्द्रियजाति, बादर, प्रत्येकशरीर, आतप और उद्योत, इन दोनोंमेंसे किसी एकसे संयुक्त तिर्यग्गतिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके होता है ॥ ७७ ॥

क्योंकि, अन्य गुणस्थानवर्ती जीवोंके एकेन्द्रियजातिका बन्ध नहीं होता है।

नामकर्मके तिर्यग्गतिसम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह प्रथम पच्चीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान है— तिर्यग्गति[1], एकेन्द्रियजाति[2], औदारिकशरीर[3], तैजसशरीर[4], कार्मणशरीर[5], हुंडसंस्थान[6], वर्ण[7], गन्ध[8], रस[9], स्पर्श[10], तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी[11], अगुरुलघु[12], उपघात[13], परघात[14], उच्छ्वास[15], स्थावर[16], बादर और सूक्ष्म इन दोनोंमेंसे कोई एक[17], पर्याप्त[18], प्रत्येकशरीर और साधारणशरीर इन दोनोंमेंसे कोई एक[19], स्थिर और अस्थिर इन दोनोंमेंसे कोई एक[20], शुभ और अशुभ इन दोनोंमेंसे कोई एक[21], दुर्भग[22] अनादेय[23], यशःकीर्त्ति और अयशःकीर्त्ति इन दोनोंमेंसे कोई एक[24] और निर्माणनामकर्म[25]। इन प्रथम पच्चीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ७८ ॥

शंका— अगुरुलघुत्व नामका गुण सर्व जीवोंके पारिणामिक है, क्योंकि, अशेष कर्मोंसे रहित सिद्धोंमें भी उसका सद्भाव पाया जाता है। इसलिए अगुरुलघु नामकर्मका कोई फल न होनेसे उसका अभाव मानना चाहिए ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिहारो उच्चदे— होज्ज एसो दोसो, जदि अगुरुअलहुअं जीवविवाई होदि । किंतु एदं पोग्गलविवाई, अणंताणंतपोग्गलेहि गरुवपासेहि आरद्धस्स सरीरस्स अगुरुअलहुअत्तुप्पायणादो । अण्णहा गरुअसरीरेणोट्ठद्धो जीवो उट्ठेदुं पि ण सक्केज्ज । ण च एवं, सरीरस्स अगुरु-अलहुअत्ताणमणुवलंभा । सेसं सुगमं । एत्थ भंगा वत्तीसं (३२)[1] ।

तिरिक्खगदिं एइंदिय-पज्जत्त-बादर-सुहुमाणमेक्कदरं संजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स ॥ ७९ ॥

कुदो ? उवरिमाणमेइंदियबादर-सुहुमाणं बंधाभावा । सेसं सुगमं ।

तत्थ इमं विदियपणुवीसाए ट्ठाणं, तिरिक्खगदी वेइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदियचदुण्हं जादीणमेक्कदरं ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं ओरालियसरीरअंगोवंगं असंपत्तसेवट्टसरीर-

---

समाधान—यहांपर उक्त शंकाका परिहार कहते हैं— यह उपर्युक्त दोष प्राप्त होता, यदि अगुरुलघु नामकर्म जीवविपाकी होता । किन्तु यह कर्म पुद्गलविपाकी है, क्योंकि, गुरुस्पर्शवाले अनन्तानन्त पुद्गल-वर्गणाओंके द्वारा आरब्ध शरीरके अगुरु-लघुताकी उत्पत्ति होती है । यदि ऐसा न माना जाय, तो गुरु-भारवाले शरीरसे संयुक्त यह जीव उठनेके लिए भी नहीं समर्थ होगा । किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, शरीरके केवल हलकापन और केवल भारीपन पाया नहीं जाता ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है । यहांपर बादर, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ और यशःकीर्त्ति, इन पांच युगलोंके विकल्पसे (२×२×२×२×२=३२) बत्तीस भंग होते हैं ।

वह प्रथम पच्चीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान एकेन्द्रियजाति, पर्याप्त, बादर और सूक्ष्म, इन दोनोंमेंसे किसी एकसे संयुक्त तिर्यग्गतिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके होता है ॥ ७९ ॥

क्योंकि, उपरिम गुणस्थानवर्त्ती जीवोंके एकेन्द्रियजाति, बादर और सूक्ष्म, इन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

नामकर्मके तिर्यग्गतिसम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह द्वितीय पच्चीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान है— तिर्यग्गति[1], द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति और पंचेन्द्रियजाति, इन चारों जातियोंमेंसे कोई एक[2], औदारिकशरीर[3], तैजसशरीर[4], कार्मणशरीर[5], हुंडसंस्थान[6], औदारिकशरीर-अंगोपांग[7], असंप्राप्तासृपाटिकाशरीरसंहनन[8],

---

१ प्रतिषु ' वीस (२०) ' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संघडणं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअ-लहुअ-उवघाद-तस-बादर-अपज्जत्त-पत्तेयसरीर-अथिर-असुभ-दुहव[1]-अणादेज्ज-अजसकित्ति-णिमिणं । एदासिं विदियपणुवीसाए पयडीण-मेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ ८० ॥

परघादुस्सास-विहायगदि-सर[2]णामाणमेत्थ बंधो णात्थि । कुदो ? अपज्जत्तबंधेण सह विरोहा, अपज्जत्तकाले एदेसिमुदयाभावादो च । जेसिं जत्थ उदओ अत्थि तेसिं चेव तत्थ बंधो । ण थिर-सुहेहि अणेयंतो[3], सुहासुहपयडीणं अधुवबंधीणमक्कमेण बंधा-भावा । सेसं सुगमं । एत्थ भंगा चत्तारि (४) ।

तिरिक्खगदिं तस-अपज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छा-दिट्ठिस्स ॥ ८१ ॥

सुगममेदं ।

वर्ण[9] गन्ध[10], रस[11] स्पर्श[12], तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी[13] अगुरुलघु[14], उपघात[15], त्रस[16] बादर[17], अपर्याप्त[18], प्रत्येकशरीर[19], अस्थिर[20], अशुभ[21], दुर्भग[22], अनादेय[23], अयशःकीर्त्ति[24] और निर्माण नामकर्म[25] । इन द्वितीय पच्चीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ८० ॥

परघात, उच्छ्वास, विहायोगति और स्वर नामकर्म, इन प्रकृतियोंका इस बन्ध-स्थानमें बन्ध नहीं है, क्योंकि, इन प्रकृतियोंके बन्धका अपर्याप्तप्रकृतिके बन्धके साथ विरोध है, तथा अपर्याप्तकालमें इन परघात आदि प्रकृतियोंका उदय नहीं पाया जाता है । जिन प्रकृतियोंका जहांपर उदय होता है, उन प्रकृतियोंका ही वहांपर बन्ध होता है । उक्त कथनमें स्थिर और शुभ प्रकृतियोंके द्वारा अनेकान्त दोष नहीं आता है, क्योंकि, अध्रुवबंधी शुभ और अशुभ प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध नहीं होता है । शेष सूत्रार्थ सुगम है । यहांपर द्वीन्द्रियादि चार जातियोंके विकल्पसे (४) चार भंग होते हैं ।

वह द्वितीय पचीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान त्रस और अपर्याप्त नामकर्मसे संयुक्त तिर्यग्गतिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके होता है ॥ ८१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ प्रतिषु ' माहव ' इति पाठः ।   २ प्रतिषु ' -सरीर- ' इति पाठः ।

३ प्रतिषु ' अणेयंता ' इति पाठः ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

तत्थ इमं तेवीसाए ट्ठाणं, तिरिक्खगदी एइंदियजादी ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-थावरं बादर-सुहुमाणमेक्कदरं अपज्जत्तं पत्तेय-साधारणसरीराणमेक्कदरं अथिर-असुह-दुहव-अणादेज्ज-अजसकित्ति-णिमिणं । एदासिं तेवीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ ८२ ॥

एत्थ संघडणस्स बंधो किण्ण उत्तो ? ण, एइंदिएसु संघडणस्सुदयाभावा । एत्थ भंगा चत्तारि (४) । सेसं सुगमं ।

तिरिक्खगदिं एइंदिय-अपज्जत्त-बादर-सुहुमाणमेक्कदरसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स[2] ॥ ८३ ॥

नामकर्मके तिर्यग्गतिसम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह तेवीस प्रकृति-सम्बन्धी बन्धस्थान है— तिर्यग्गति[1], एकेन्द्रियजाति[2], औदारिकशरीर[3], तैजसशरीर[4], कार्मणशरीर[5], हुंडसंस्थान[6], वर्ण[7], गन्ध[8], रस[9], स्पर्श[10], तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी[11], अगुरुलघु[12], उपघात[13], स्थावर[14], बादर और सूक्ष्म इन दोनोंमेंसे कोई एक[15], अपर्याप्त[16], प्रत्येकशरीर और साधारणशरीर इन दोनोंमेंसे कोई एक[17], अस्थिर[18], अशुभ[19], दुर्भग[20], अनादेय[21], अयशःकीर्ति[22] और निर्माण नामकर्म[23] । इन तेवीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ८२ ॥

शंका — यहांपर, अर्थात् तेवीस प्रकृतिरूप बन्धस्थानमें, संहननकर्मका बन्ध क्यों नहीं कहा ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, एकेन्द्रिय जीवोंमें संहननकर्मका उदय नहीं होता है ।

यहांपर बादर और प्रत्येकशरीर इन दो युगलोंके विकल्पसे (२×२=४) चार भंग होते हैं । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

वह तेवीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान एकेन्द्रियजाति, अपर्याप्त, तथा बादर और सूक्ष्म इन दोनोंमेंसे किसी एकसे संयुक्त तिर्यग्गतिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके होता है ॥ ८३ ॥

२ भूबादरतेवीसं बंधंतो सव्वमेव पणुवीसं । बंधदि मिच्छाइट्ठी एवं सेसाणमाणेज्जो ॥ गो. क. ५६५.

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

सुगममेदं ।

मणुसगदिणामाए तिण्णि ट्ठाणाणि, तीसाए एगूणतीसाए पणुवीसाए ट्ठाणं चेदि ॥ ८४ ॥

एदं संगहणयस्स सुत्तं, उवरि उच्चमाणसव्वत्थस्स आधारभावेण अवट्ठाणादो ।

तत्थ इमं तीसाए ट्ठाणं, मणुसगदी पंचिंदियजादी ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीरं समचउरससंठाणं ओरालियसरीरअंगोवंगं वज्जरिसहसंघडणं वण्ण-गंध-रस-फासं मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुहासुहाणमेक्कदरं सुभग-सुस्सर-आदेज्जं जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणं तित्थयरं । एदासिं तीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ ८५ ॥

तित्थयरेण सह अजसकित्तीए अप्पसत्थाए तेण सह उदयमणागच्छमाणाए

यह सूत्र सुगम है ।

मनुष्यगति नामकर्मके तीन बन्धस्थान हैं— तीस प्रकृतिसम्बन्धी, उनतीस प्रकृतिसम्बन्धी और पच्चीस प्रकृतिसम्बन्धी बन्धस्थान ॥ ८४ ॥

यह संग्रहनयका सूत्र है, क्योंकि, ऊपर कहे जानेवाले सर्व अर्थके आधाररूपसे इसका अवस्थान है ।

नामकर्मके मनुष्यगतिसम्बन्धी उक्त तीन बन्धस्थानोंमें यह तीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान है— मनुष्यगति[१], पंचेन्द्रियजाति[२], औदारिकशरीर[३], तैजसशरीर[४], कार्मणशरीर[५], समचतुरस्रसंस्थान[६], औदारिकशरीर-अंगोपांग[७], वज्रवृषभनाराचसंहनन[८], वर्ण[९], गन्ध[१०], रस[११], स्पर्श[१२], मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी[१३], अगुरुलघु[१४], उपघात[१५], परघात[१६], उच्छ्वास[१७], प्रशस्तविहायोगति[१८], त्रस[१९], बादर[२०], पर्याप्त[२१], प्रत्येकशरीर[२२], स्थिर और अस्थिर इन दोनोंमेंसे कोई एक[२३], शुभ और अशुभ इन दोनोंमेंसे कोई एक[२४], सुभग[२५] सुस्वर[२६], आदेय[२७], यशःकीर्त्ति और अयशःकीर्त्ति इन दोनोंमेंसे कोई एक[२८], निर्माण[२९], और तीर्थंकर नामकर्म[३०] । इन तीस प्रकृतियोंके बन्धस्थानका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ८५ ॥

शंका—तीर्थंकर प्रकृतिके साथ उदयमें नहीं आनेवाली अप्रशस्त अयशःकीर्तिका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कधं बंधो ? ण, तेसिमुदयाणं व बंधाणं विरोहाभावा। दुभग-दुस्सर-अणादेज्जाणं धुवबंधित्तादो संकिलेसकाले वि बज्झमाणेण तित्थयरेण सह किण्ण बंधो ? ण, तेसिं बंधाणं तित्थयरबंधेण सम्मत्तेण य सह विरोधादो। संकिलेसकाले वि सुभग-सुस्सर-आदेज्जाणं चेव बंधुवलंभा। एत्थ भंगा अट्ठ (८)।

मणुसगदिं पंचिंदिय-तित्थयरसंजुत्तं बंधमाणस्स तं असंजदसम्मादिट्ठिस्स ॥ ८६ ॥

सुगममेदं सामित्तसुत्तं।

तत्थ इमं पढमएगूणतीसाए ट्ठाणं। जधा, तीसाए भंगो। णवरि विसेसो तित्थयरं वज्ज। एदासिं पढमएगूणतीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ ८७ ॥

सुगममेदं।

उसके साथ बन्ध कैसे संभव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उनके उदयके समान बन्धका कोई विरोध नहीं है।

शंका—संक्लेश-कालमें भी बंधनेवाले तीर्थंकर नामकर्मके साथ ध्रुवबंधी होनेसे दुर्भग, दुःस्वर और अनादेय, इन प्रकृतियोंका बन्ध क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उन प्रकृतियोंके बन्धका तीर्थंकर प्रकृतिके बंधके साथ और सम्यग्दर्शनके साथ विरोध है। संक्लेश-कालमें भी सुभग, सुस्वर और आदेय प्रकृतियोंका ही बन्ध पाया जाता है।

यहांपर स्थिर, शुभ और यशःकीर्त्ति, इन तीन युगलोंके विकल्पसे (२×२×२=८) आठ भंग होते हैं।

वह तीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान पंचेन्द्रियजाति और तीर्थंकरप्रकृतिसे संयुक्त मनुष्यगतिको बांधनेवाले असंयतसम्यग्दृष्टिके होता है ॥ ८६ ॥

यह स्वामित्वसम्बन्धी सूत्र सुगम है।

नामकर्मके मनुष्यगतिसम्बन्धी उक्त तीन बन्धस्थानोंमें यह प्रथम उनतीस प्रकृतिसम्बन्धी बन्धस्थान है। वह किस प्रकार है ? वह तीस प्रकृतिसम्बन्धी बन्धस्थानके समान प्रकृति-भंगवाला है। विशेषता यह है कि यहां तीर्थंकरप्रकृतिको छोड़ देना चाहिए। इन प्रथम उनतीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ८७ ॥

यह सूत्र सुगम है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणुसगदिं पंचिंदिय-पज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा ॥ ८८ ॥

बंधट्ठाणाणं सामित्तं किमट्ठं उच्चदे ? ण, अण्णहा अउत्तसमाणदावत्तीदो । सेसं सुगमं ।

तत्थ इमं विदियाए एगूणतीसाए ट्ठाणं, मणुसगदी पंचिंदियजादी ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं वज्ज पंचण्हं संठाणाणमेक्कदरं ओरालियसरीरअंगोवंगं असंपत्तसेवट्टसंघडणं वज्ज पंचण्हं संघडणाणमेक्कदरं वण्ण-गंध-रस-फासं मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहु-उवघाद-परघाद-उस्सासं दोण्हं विहायगदीणमेक्कदरं तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुभासुभाणमेक्कदरं सुहव-दुहवाणमेक्कदरं सुस्सर-दुस्सराणमेक्कदरं आदेज्ज-अणादेज्जाणमेक्कदरं

वह प्रथम उनतीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान पंचेन्द्रियजाति और पर्याप्तनामकर्मसे संयुक्त मनुष्यगतिको बांधनेवाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टिके होता है ॥ ८८ ॥

शंका—बन्धस्थानोंका स्वामित्व किसलिए कहते हैं ?

समाधान— नहीं, अन्यथा अनुक्त-समानताकी आपत्ति प्राप्त होती है। अर्थात् यदि बन्धस्थानोंका स्वामित्व नहीं कहा जायगा तो फिर बन्धस्थानोंका कहना भी नहीं कहनेके समान हो जायगा ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

नामकर्मके मनुष्यगतिसम्बन्धी उक्त तीन बन्धस्थानोंमें यह द्वितीय उनतीस प्रकृतिसम्बन्धी बन्धस्थान है— मनुष्यगति[1], पंचेन्द्रियजाति[2], औदारिकशरीर[3], तैजसशरीर[4], कार्मणशरीर[5], हुंडसंस्थानको छोड़कर शेष पांच संस्थानोंमेंसे कोई एक[6], औदारिकशरीर-अंगोपांग[7], असंप्राप्तासृपाटिकासंहननको छोड़कर पांच संहननोंमेंसे कोई एक[8], वर्ण[9], गन्ध[10], रस[11], स्पर्श[12], मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी[13], अगुरुलघु[14], उपघात[15], परघात[16], उच्छ्वास[17], दोनों विहायोगतियोंमेंसे कोई एक[18], त्रस[19], बादर[20], पर्याप्त[21], प्रत्येकशरीर[22], स्थिर और अस्थिर इन दोनोंमेंसे कोई एक[23], शुभ और अशुभ इन दोनोंमेंसे कोई एक[24], सुभग और दुर्भग इन दोनोंमेंसे कोई एक[25], सुस्वर और दुःस्वर इन दोनोंमेंसे कोई एक[26], आदेय और अनादेय इन दोनोंमेंसे कोई एक[27], यशःकीर्त्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणं । एदासिं विदियएगूणतीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ ८९ ॥

सेसं सुगमं । भंगा बत्तीससयं (३२००) ।

मणुसगदिं पंचिंदिय-पज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं सासणसम्मादिट्ठिस्स ॥ ९० ॥

एदं पि सुगमं ।

तत्थ इमं तदियएगुणतीसाए ठाणं, मणुसगदी पंचिंदियजादी ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीरं छण्हं संट्ठाणाणमेक्कदरं ओरालियसरीर-अंगोवंगं छण्हं संघडणाणमेक्कदरं वण्ण-गंध-रस-फासं मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सासं दोण्हं विहायगदीणमेक्कदरं तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुहासुहाणमेक्कदरं सुभग-दुभगाणमेक्कदरं सुस्सर-दुस्सराणमेक्कदरं

और अयशःकीर्त्ति इन दोनोंमेंसे कोई एक[२८], और निर्माण नामकर्म[२९] । इन द्वितीय उनतीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ८९ ॥

शेष सूत्रार्थ सुगम है । केवल भंग यहांपर पांच संस्थान, पांच संहनन, तथा विहायोगति आदि उक्त सात युगलोंके विकल्पसे (५×५×२×२×२×२×२×२×२=३२००) बत्तीस सौ होते हैं ।

वह द्वितीय उनतीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान पंचेन्द्रियजाति और पर्याप्त नामकर्मसे संयुक्त मनुष्यगतिको बांधनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवके होता है ॥ ९० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

नामकर्मके मनुष्यगतिसम्बन्धी उक्त तीन बन्धस्थानोंमें यह तृतीय उनतीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान है— मनुष्यगति[१], पंचेन्द्रियजाति[२], औदारिकशरीर[३], तैजसशरीर[४], कार्मणशरीर[५], छहों संस्थानोंमेंसे कोई एक[६], औदारिकशरीर-अंगोपांग[७], छहों संहननोंमेंसे कोई एक[८], वर्ण[९], गन्ध[१०], रस[११], स्पर्श[१२], मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी[१३], अगुरुलघु[१४], उपघात[१५], परघात[१६], उच्छ्वास[१७], दोनों विहायोगतियोंमेंसे कोई एक[१८], त्रस[१९], बादर[२०], पर्याप्त[२१], प्रत्येकशरीर[२२], स्थिर और अस्थिर इन दोनोंमेंसे कोई एक[२३], शुभ और अशुभ इन दोनोंमेंसे कोई एक[२४], सुभग और दुर्भग इन दोनोंमेंसे कोई एक[२५], सुस्वर और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदेज्ज-अणादेज्जाणमेक्कदरं जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिण-णामं। एदासिं तदियएगूणतीसाए पगडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥९१॥

कम्हि अवट्ठाणं? एगूणतीसाए संखाए, एगूणतीसपयडिबंधपाओग्गपरिणामे वा। भंगा छादालसयं अट्ठुत्तरं (४६०८)। सेसं सुगमं।

मणुसगदिं पंचिंदिय-पज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छा-दिट्ठिस्स ॥ ९२ ॥

एदं पि सुगमं।

तत्थ इमं पणुवीसाए ट्ठाणं, मणुसगदी पंचिंदियजादी ओरा-लिय-तेजा-कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं ओरालियसरीरअंगोवंगं असंपत्त-सेवट्टसंघडणं वण्ण-गंध-रस-फासं मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअ-

दुःस्वर इन दोनोंमेंसे कोई एक[२६], आदेय और अनादेय इन दोनोंमेंसे कोई एक[२७], यशःकीर्त्ति और अयशःकीर्त्ति इन दोनोंमेंसे कोई एक[२८] और निर्माणनामकर्म[२९]। इन तृतीय उनतीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है॥ ९१ ॥

शंका — उक्त बन्धस्थानका किसमें अवस्थान होता है?

समाधान — उनतीसरूप संख्यामें, अथवा उनतीस प्रकृतियोंके बन्ध-योग्य परिणाममें अवस्थान होता है।

यहांपर छह संस्थान, छह संहनन, तथा विहायोगति आदि उक्त सात युगलोंके विकल्पसे (६×६×२×२×२×२×२×२×२=४६०८) छयालीस सौ आठ भंग होते हैं। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

वह तृतीय उनतीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान पंचेन्द्रियजाति और पर्याप्त नामकर्मसे संयुक्त मनुष्यगतिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके होता है ॥ ९२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

नामकर्मके मनुष्यगतिसम्बन्धी उक्त तीन बन्धस्थानोंमें यह पच्चीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान है— मनुष्यगति[१], पंचेन्द्रियजाति[२], औदारिकशरीर[३], तैजसशरीर[४], कार्मण-शरीर[५], हुंडसंस्थान[६], औदारिकशरीर-अंगोपांग[७], असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन[८], वर्ण[९], गन्ध[१०], रस[११], स्पर्श[१२], मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी[१३], अगुरुलघु[१४], उपघात[१५], त्रस[१६],

१ प्रतिषु 'तीससद' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लहुअ-उवघाद-तस-बादर-अपज्जत्त-पत्तेयसरीर-अथिर-असुभ-दुभग-अणादेज्ज-अजसकित्ति-णिमिणं। एदासिं पणुवीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ ९३ ॥

अपज्जत्तेण सह थिरादीणि[1] किण्ण बज्झंति? ण, संकिलेसद्धाए बज्झमाणअपज्जत्तेण सह थिरादीणं विसोहिपयडीणं बंधविरोहा। सेसं सुगमं।

मणुसगदिं पंचिंदियजादि-अपज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स ॥ ९४ ॥

सुगममेदं।

देवगदिणामाए पंच ट्ठाणाणि, एक्कत्तीसाए तीसाए एगुणतीसाए अट्ठवीसाए एक्किस्से ट्ठाणं चेदि ॥ ९५ ॥

एदं संगहणयसुत्तं, उवरि उच्चमाणमसेसमत्थमवगाहिय अवट्ठिदत्तादो।

बादर[17], अपर्याप्त[18], प्रत्येकशरीर[19], अस्थिर[20], अशुभ[21], दुर्भग[22], अनादेय[23], अयशःकीर्त्ति[24] और निर्माण नामकर्म[25]। इन पच्चीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ९३ ॥

शंका—अपर्याप्तप्रकृतिके साथ स्थिर आदि प्रकृतियां क्यों नहीं बंधती हैं?

समाधान—नहीं, क्योंकि, संक्लेश-कालमें बंधनेवाले अपर्याप्त नामकर्मके साथ स्थिर आदि विशोधि-कालमें बंधनेवाली शुभ प्रकृतियोंके बंधका विरोध है।

शेष सूत्रार्थ सुगम है।

वह पच्चीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान पंचेन्द्रियजाति और अपर्याप्त नामकर्मसे संयुक्त मनुष्यगतिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके होता है ॥ ९४ ॥

यह सूत्र सुगम है।

देवगति नामकर्मके पांच बन्धस्थान हैं— इकतीस प्रकृतिसम्बन्धी, तीस प्रकृतिसम्बन्धी, उनतीस प्रकृतिसम्बन्धी, अट्ठाईस प्रकृतिसम्बन्धी और एक प्रकृतिसम्बन्धी बन्धस्थान ॥ ९५ ॥

यह संग्रहनयके आश्रित सूत्र है, क्योंकि, ऊपर कहे जानेवाले अशेष अर्थको अवगाहन करके अवस्थित है।

---

१ प्रतिषु ' थिराथिरादीणि ' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्थ इमं एक्कत्तीसाए ट्ठाणं, देवगदी पंचिंदियजादी वेउव्विय-आहार-तेजा-कम्मइयसरीरं समचउरससंठाणं वेउव्विय-आहारअंगोवंगं वण्ण-गंध-रस-फासं देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासं पसत्थविहायगदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिण-तित्थयरं । एदासिमेक्कत्तीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ ९६ ॥

देवगदीए सह छ संघडणाणि किण्ण बज्झंति ? ण, देवेसु संघडणाणमुदयाभावा । सेसं सुगमं ।

देवगदिं पंचिंदिय-पज्जत्त-आहार-तित्थयरसंजुत्तं बंधमाणस्स तं अप्पमत्तसंजदस्स वा अपुव्वकरणस्स वा ॥ ९७ ॥

सुगममेदं ।

नामकर्मके देवगतिसम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह इकतीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान है— देवगति[१], पंचेन्द्रियजाति[२], वैक्रियिकशरीर[३], आहारकशरीर[४], तैजसशरीर[५], कार्मणशरीर[६], समचतुरस्रसंस्थान[७], वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग[८], आहारकशरीर-अंगोपांग[९], वर्ण[१०], गन्ध[११], रस[१२], स्पर्श[१३], देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी[१४], अगुरुलघु[१५], उपघात[१६], परघात[१७], उच्छ्वास[१८], प्रशस्तविहायोगति[१९], त्रस[२०], बादर[२१], पर्याप्त[२२], प्रत्येकशरीर[२३], स्थिर[२४], शुभ[२५], सुभग[२६], सुस्वर[२७], आदेय[२८], यशःकीर्ति[२९], निर्माण[३०] और तीर्थकर[३१]। इन इकतीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ९६ ॥

शंका—देवगतिके साथ छह संहनन क्यों नहीं बंधते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, देवोंमें संहननोंके उदयका अभाव है ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

वह इकतीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान पंचेन्द्रियजाति, पर्याप्त, आहारकशरीर और तीर्थकर नामकर्मसे संयुक्त देवगतिको बांधनेवाले अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण संयतके होता है ॥ ९७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

तत्थ इमं तीसाए ठाणं । जधा, एक्कत्तीसाए भंगो । णवरि विसेसो तित्थयरं वज्ज । एदासिं तीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ ९८ ॥

एत्थ अत्थिरादीणं किण्ण बंधो होदि ? ण, एदासिं विसोहीए बंधविरोहा । सेसं सुगमं ।

देवगदिं पंचिंदिय-पज्जत्त-आहारसंजुत्तं बंधमाणस्स तं अप्पमत्त-संजदस्स वा अपुव्वकरणस्स वा ॥ ९९ ॥

सुगममेदं ।

तत्थ इमं पढमएगूणतीसाए ट्ठाणं । जधा, एक्कत्तीसाए भंगो । णवरि विसेसो, आहारसरीरं वज्ज । एदासिं पढमएगूणतीसाए पयडीणं एक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ १०० ॥

नामकर्मके देवगतिसम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह तीस प्रकृतिसम्बन्धी बन्धस्थान है । वह किस प्रकार है ? वह इकतीस प्रकृतिसम्बन्धी बन्धस्थानके समान प्रकृति-भंगवाला है । विशेषता केवल यह है कि यहां तीर्थंकर प्रकृतिको छोड़ देना चाहिए । इन तीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ९८ ॥

शंका—यहांपर अस्थिर आदि प्रकृतियोंका बन्ध क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, इन अस्थिर आदि अशुभ प्रकृतियोंका विशुद्धिके साथ बंधनेका विरोध है ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है

वह तीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान पंचेन्द्रियजाति, पर्याप्त और आहारकशरीरसे संयुक्त देवगतिको बांधनेवाले अप्रमत्तसंयतके अथवा अपूर्वकरणसंयतके होता है ॥ ९९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

नामकर्मके देवगतिसम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह प्रथम उनतीस प्रकृतिसम्बन्धी बन्धस्थान है । वह किस प्रकार है ? वह इकतीस प्रकृतिसम्बन्धी बन्धस्थानके समान प्रकृति-भंगवाला है । विशेषता केवल यह है कि यहां आहारकशरीर और आहारक-अंगोपांगको छोड़ देना चाहिए । इन प्रथम उनतीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ १०० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वज्ज[1] वज्जिदव्वमिदि घेत्तव्वं । सेसं सुगमं ।

देवगदिं पंचिंदिय-पज्जत्त-तित्थयरसंजुत्तं बंधमाणस्स तं अप्पमत्तसंजदस्स वा अपुव्वकरणस्स वा ॥ १०१ ॥

सुगममेदं ।

तत्थ इमं विदियएगुणतीसाए ट्ठाणं, देवगदी पंचिंदियजादी वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीरं समचउरससंठाणं वेउव्वियसरीरअंगोवंगं वण्ण-गंध-रस-फासं देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासं पसत्थविहायगदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुभासुभाणमेक्कदरं सुभग-सुस्सर-आदेज्जं जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिण-तित्थयरं । एदासिमेगुणतीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ १०२ ॥

'वज्ज' इस पदका 'छोड़ना चाहिए' यह अर्थ ग्रहण करना चाहिए। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

वह प्रथम उनतीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान पंचेन्द्रियजाति, पर्याप्त और तीर्थकर प्रकृतिसे संयुक्त देवगतिको बांधनेवाले अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण संयतके होता है ॥ १०१ ॥

यह सूत्र सुगम है।

नामकर्मके देवगतिसम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह द्वितीय उनतीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान है— देवगति[1], पंचेन्द्रियजाति[2], वैक्रियिकशरीर[3], तैजसशरीर[4], कार्मणशरीर[5], समचतुरस्रसंस्थान[6], वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग[7], वर्ण[8], गन्ध[9], रस[10], स्पर्श[11], देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी[12], अगुरुलघु[13], उपघात[14], परघात[15], उच्छ्वास[16], प्रशस्तविहायोगति[17], त्रस[18], बादर[19], पर्याप्त[20], प्रत्येकशरीर[21], स्थिर और अस्थिर इन दोनोंमेंसे कोई एक[22], शुभ और अशुभ इन दोनोंमेंसे कोई एक[23], सुभग[24], सुस्वर[25], आदेय[26], यशःकीर्त्ति और अयशःकीर्ति इन दोनोंमेंसे कोई एक[27], निर्माण[28], और तीर्थंकर नामकर्म[29]। इन द्वितीय उनतीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ १०२ ॥

१ प्रतिषु 'वज्जं' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवगदीए सह उज्जोवस्स किण्ण बंधो होदि ? ण, देवगदीए तस्स उदयाभावा, तिरिक्खगदिं मोत्तूण अण्णगदीहि सह तस्स बंधविरोधादो च । देवेसु उज्जोवस्सुदयाभावे देवाणं देहदित्ती कुदो होदि ? वण्णणामकम्मोदयादो । उज्जोउदयजाददेहदित्ती सुट्ठु त्थोवा, पाएण थोवावयवपडिणियदा, तिरिक्खगदिउदयसंबद्धा च । तेण उज्जोउदओ तिरिक्खेसु चेव, ण देवेसु; विरोहादो । भंगा अट्ठ ८ । सेसं सुगमं ।

देवगदिं पंचिंदिय-पज्जत्त-तित्थयरसंजुत्तं बंधमाणस्स तं असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा ॥ १०३ ॥

सुगममेदं ।

तत्थ इमं पढमअट्ठावीसाए ट्ठाणं, देवगदी पंचिंदियजादी वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीरं समचउरससंठाणं वेउव्वियअंगोवंगं वण्ण-

---

शंका — देवगतिके साथ उद्योतप्रकृतिका बन्ध क्यों नहीं होता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, देवगतिमें उद्योतप्रकृतिके उदयका अभाव है, और तिर्यग्गतिको छोड़कर अन्य गतियोंके साथ उसके बंधनेका विरोध है ।

शंका — देवोंमें उद्योतप्रकृतिका उदय नहीं होनेपर देवोंके शरीरमें दीप्ति (कान्ति) कहांसे होती है ?

समाधान — देवोंके शरीरोंमें दीप्ति वर्णनामकर्मके उदयसे होती है ।

उद्योतप्रकृतिके उदयसे उत्पन्न होनेवाली देहकी दीप्ति अत्यन्त अल्प, प्रायः स्तोक (थोड़े) अवयवोंमें प्रतिनियत और तिर्यग्गति नामकर्मके उदयसे संबद्ध होती है । इसलिए उद्योतप्रकृतिका उदय तिर्यंचोंमें ही होता है, देवोंमें नहीं, क्योंकि, वैसा माननेमें विरोध आता है । यहांपर स्थिर, शुभ और यशःकीर्ति, इन तीन युगलोंके विकल्पसे (२×२×२=८) आठ भंग होते हैं । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

वह द्वितीय उनतीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान पंचेन्द्रियजाति, पर्याप्त और तीर्थंकर प्रकृतिसे संयुक्त देवगतिको बांधनेवाले असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयतके होता है ॥ १०३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

नामकर्मके देवगतिसम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह प्रथम अट्ठाईस प्रकृतिरूप बन्धस्थान है— देवगति[1], पंचेन्द्रियजाति[2], वैक्रियिकशरीर[3], तैजसशरीर[4], कार्मणशरीर[5], समचतुरस्रसंस्थान[6], वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग[7], वर्ण[8], गन्ध[9], रस[10], स्पर्श[11],

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गंध-रस-फासं देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासं पसत्थविहायगदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिणणामं । एदासिं पढमअट्ठवीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ १०४ ॥

एत्थ अजसकित्तीए बंधो णत्थि, पमत्तगुणट्ठाणे तिस्से बंधविणासादो। सेसं सुगमं ।

देवगदिं पंचिंदिय-पज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं अप्पमत्तसंजदस्स वा अपुव्वकरणस्स वा ॥ १०५ ॥

एदं पि सुगमं ।

तत्थ इमं विदियअट्ठावीसाए ट्ठाणं, देवगदी पंचिंदियजादी वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीरं समचउरससंठाणं वेउव्वियसरीरअंगोवंगं वण्ण-गंध-रस-फासं देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-

---

देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी[१२], अगुरुलघु[१३], उपघात[१४], परघात[१५], उच्छ्वास[१६], प्रशस्तविहायोगति[१७], त्रस[१८], बादर[१९], पर्याप्त[२०], प्रत्येकशरीर[२१], स्थिर[२२], शुभ[२३], सुभग[२४], सुस्वर[२५] आदेय[२६], यशःकीर्ति[२७] और निर्माण नामकर्म[२८]। इन प्रथम अट्ठाईस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ १०४ ॥

यहांपर अयशःकीर्तिका बन्ध नहीं होता है, क्योंकि, प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उसके बन्धका विनाश हो जाता है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

वह प्रथम अट्ठाईस प्रकृतिरूप बन्धस्थान पंचेन्द्रियजाति और पर्याप्त नामकर्मसे संयुक्त देवगतिको बांधनेवाले अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरणसंयतके होता है ॥ १०५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

नामकर्मके देवगतिसम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह द्वितीय अट्ठाईस प्रकृतिरूप बन्धस्थान है— देवगति[१], पंचेन्द्रियजाति[२], वैक्रियिकशरीर[३], तैजसशरीर[४], कार्मणशरीर[५], समचतुरस्रसंस्थान[६], वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग[७], वर्ण[८], गन्ध[९], रस[१०], स्पर्श[११], देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी[१२], अगुरुलघु[१३], उपघात[१४], परघात[१५], उच्छ्वास[१६], प्रशस्तविहायो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परघाद-उस्सासं पसत्थविहायगदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुभासुभाणमेक्कदरं सुभग-सुस्सर-आदेज्जं जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणं । एदासिं विदियअट्ठावीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ १०६ ॥

एत्थ भंगा अट्ठ (८) । सेसं सुगमं ।

देवगदिं पंचिंदिय-पज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा ॥ १०७ ॥

संजदस्सेत्ति उत्ते पमत्तसंजदग्गहणं । कुदो ? उवरिमाणमथिरासुभ-अजसकित्तीणं बंधाभावा । सेसं सुगमं ।

तत्थ इमं एक्किस्से ट्ठाणं जसकित्तिणामं । एदिस्से पयडीए एक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ १०८ ॥

गति[17], त्रस[18], बादर[19], पर्याप्त[20], प्रत्येकशरीर[21], स्थिर और अस्थिर इन दोनोंमेंसे कोई एक[22], शुभ और अशुभ इन दोनोंमेंसे कोई एक[23], सुभग[24], सुस्वर[25], आदेय[26], यशःकीर्त्ति और अयशःकीर्त्ति इन दोनोंमेंसे कोई एक[27] और निर्माण नामकर्म[28] । इन द्वितीय अट्ठाईस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ १०६ ॥

यहांपर स्थिर, शुभ और यशःकीर्त्ति, इन तीन युगलोंके विकल्पसे (२×२×२=८) आठ भंग होते हैं ।

वह द्वितीय अट्ठाईस प्रकृतिरूप बन्धस्थान पंचेन्द्रियजाति और पर्याप्त नामकर्मसे संयुक्त देवगतिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयतके होता है ॥ १०७ ॥

'संयतके' ऐसा कहनेपर प्रमत्तसंयतका ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, उपरिम गुणस्थानवर्ती जीवोंके अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्त्ति, इन प्रकृतियोंका बंध नहीं होता है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

नामकर्मके देवगतिसम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यशःकीर्त्ति नामकर्मसम्बन्धी यह एक प्रकृतिरूप बन्धस्थान है । इस एक प्रकृतिरूप बन्धस्थानका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ १०८ ॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

बंधमाणस्स तं संजदस्स ॥ १०९ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

होदु णाम एगतीसाए तीसाए एगुणतीसाए अट्ठावीसाए त्ति चदुण्हं ट्ठाणाणं देवगदीए सह बंधो, ण एक्किस्से । कुदो ? देवगदिबंधस्स[1] पंचिंदियजादिआदिअट्ठावीसपयडि-बंधाविणाभावित्तणेण एगत्तविरोहादो चे[2], ण एस दोसो, इट्ठत्तादो । ण सुत्तविरोहो होदि, तस्स गुणट्ठाणणिबंधणत्तेण भूदपुव्वणयं पडुच्च संजुत्तपदुप्पायणे वावदस्स देवगदिबंधाभावे वि अणियट्टिम्हि कोधसंजलणबंधोवरमे वि अधापवत्तसंकमपवुत्ति[3] व्व तदुववत्तीदो ।

....

वह एक प्रकृतिरूप बन्धस्थान उसी एक यशःकीर्त्ति प्रकृतिका बन्ध करनेवाले संयतके होता है ॥ १०९ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

विशेषार्थ—यहांपर संयतसे अभिप्राय अपूर्वकरण गुणस्थानके सातवें भागसे लेकर सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्त्ती संयतसे है, क्योंकि, केवल एक यशःकीर्त्ति नाम-कर्मको छोड़कर शेष समस्त नामकर्मकी प्रकृतियां अपूर्वकरणके छठवें भागमें बन्धसे व्युच्छिन्न हो जाती हैं, परन्तु यशःकीर्त्ति प्रकृति दशवें गुणस्थान तक बंधती रहती है ।

शंका—इकतीस, तीस, उनतीस और अट्ठाईस, इन चार बन्धस्थानोंका देव-गतिके साथ बन्ध भले ही हो, किन्तु एक प्रकृतिरूप बन्धस्थानका बन्ध देवगतिके साथ नहीं हो सकता है, क्योंकि, देवगतिका बन्ध पंचेन्द्रियजाति आदि अट्ठाईस प्रकृति-योंके बन्धका अविनाभावी है । और इसीलिए उसके साथ एक प्रकृतिरूप बन्धस्थानके एकत्वका विरोध है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, यह बात इष्ट है । तथा, वैसा मानने-पर सूत्रके साथ विरोध भी नहीं आता है, क्योंकि, गुणस्थान-निबंधनक होनेसे, अर्थात् उसी अपूर्वकरण गुणस्थानसे संबंध रखनेके कारण, भूतपूर्वनयकी अपेक्षा संयुक्त प्रतिपादनमें व्यापार करनेवाले उस सूत्रकी देवगतिका बन्ध नहीं होनेपर भी, अनिवृत्ति-करण गुणस्थानमें क्रोधसंज्वलनके बन्धसे उपरम (व्युच्छिन्न) होनेपर भी अधःप्रवृत्त-संक्रमणकी प्रवृत्तिके समान सार्थकता बन जाती है ।

....

१ प्रतिषु 'देवगदिबंधयस्स' इति पाठः ।   २ प्रतिषु 'च' इति पाठः ।

३ संजलणतिये पुरिसे अधापवत्तो य सव्वो य । गो. क. ४२४. संसारत्था जीवा सबंधजोगाण तद्दल-पमाणा । संकामे तणुरूवं अहापवत्तीए तो णाम । पं. सं. ७६. ध्रुवबन्धिनीनां स्वबंधयोग्यानां प्रकृतीनाम् अध्रुव-बन्धिन्यस्तु सर्वा अपि योग्या एव, तासां दलं, तत्प्रमाणात्स्तोकात्स्तोकं तदनुरूपं संक्रामयति, यथाप्रवृत्त्या यथा-हीन-मध्यमोत्कृष्टयोगानां प्रवृत्तिस्तथा तथा संक्रामयति कर्मदलं, अतोऽस्यैतन्नाम इति गाथार्थः । पं. सं. ७६ स्वो. टीका. निद्राद्विकोपघाताशुभवर्णादिनवकहास्य-रति-भय-जुगुप्सानां स्वपूर्वकरणस्वबंधव्यवच्छेदादारभ्य गुणसंक्रमः प्रवर्तते । पं. सं. ७७ मलय. टीका. जत्थ जासिं पयडीणं बंधो संभवदि तत्थ तासिं पयडीणं बंधे संते असंते वि अधापवत्त-

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

एवं संते अपुव्वकरणम्हि णिद्दा-पयलाणं बंधवोच्छेदे जादे अधापवत्तसंकमो पसज्जदि त्ति णासंकणिज्जं, तस्स सव्वसंकमपुव्वसेससंतकम्मविसयस्स तदभावे[1] तस्स वि अभावादो।

शंका—ऐसा माननेपर तो अपूर्वकरण गुणस्थानमें निद्रा और प्रचला, इन दोनोंके बन्ध-व्युच्छेद होनेपर अधःप्रवृत्तसंक्रमणका प्रसंग प्राप्त होता है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि, सर्वसंक्रमणसे पूर्व शेष प्रकृतियोंके सत्त्वको विषय करनेवाले उस अधःप्रवृत्तसंक्रमणका सर्वसंक्रमणके अभावमें उसका भी अभाव रहता है।

विशेषार्थ—यहांपर प्रश्न यह है कि, नामकर्मके देवगतिसंबंधी जो पांच बन्ध-स्थान बतलाये गये हैं उनमें प्रथम चार तो बराबर देवगतिसे संबंध रखते हैं, किन्तु यह यशःकीर्ति प्रकृतिसंबंधी बन्धस्थान तो देवगतिके साथ बंधनेवाला नहीं कहा गया, तब फिर उसे देवगतिसंबंधी बंधस्थानोंमें क्यों गिनाया है ? इसका समाधान इस प्रकार किया गया है- यद्यपि यह ठीक है कि यहां देवगतिके बंधका सम्बन्ध नहीं है, तथापि यशःकीर्त्तिप्रकृतिके बंध करनेवाले जीवका उससे पूर्व उसी गुणस्थानमें देवगतिके बंधसे सम्बन्ध रहा है, अतः भूतपूर्व-न्यायसे उसे देवगतिसम्बन्धी भंगोंमें सम्मिलित कर लिया है। इस भूतपूर्व न्यायका यहां आचार्यने एक दृष्टांत दिया है कि यद्यपि अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें जब क्रोधसंज्वलनकषायके बंधकी व्युच्छित्ति हो जाती है, तब अधःप्रवृत्तसंक्रमण नहीं होना चाहिये, क्योंकि, यह संक्रमण बंधयोग्य कालमें ही होता है। पर तो भी उसमें क्रोधसंज्वलन कषायसंबंधी अधःप्रवृत्तसंक्रमण कुछ काल तक होता ही रहता है जबतक कि उस कषायका सर्वसंक्रमण न हो जाय। इसी प्रकार देव-गतिबन्धका विराम हो जानेपर भी उसकी परम्पराको भूतपूर्व न्यायसे मान लेनेमें कोई विरोध नहीं आता।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें क्रोधसंज्वलनसम्बन्धी अधःप्रवृत्तसंक्रमणके उदा-हरण परसे एक यह शंका उठ खड़ी हुई कि जिस प्रकार अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें क्रोधसंज्वलनकी बंधव्युच्छित्ति होने पर भी उसमें अधःप्रवृत्तसंक्रमण होता रहता है, उसी प्रकार अपूर्वकरण गुणस्थानमें निद्रा-प्रचलाके बंधव्युच्छेद हो जाने पर भी उनमें

संकमो होदि। एसो णियमो बंधपयडीणं। ×××× णिद्दा-पयला य अप्पसत्थवण्ण-गंध रस-फास-उवघादाणं अधापवत्तसंकमो गुणसंकमो चेदि दो चेव संकमा। तं जहा– णिद्दा-पयलाणं मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरणस्स पढमसत्तमभागो त्ति ताव अधापवत्तसंकमो, एत्थ एदासिं बंधुवलंभादो। उवरिं जाव सुहुमसांपराइयचरिमसमयो त्ति ताव गुणसंकमो, बंधाभावादो। ××× तिण्णं संजलणाणं पुरिसवेदस्स च मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति अधापवत्तसंकमो, चरिमट्ठिदिखंडयचरिमफालीए एदासिं सव्वसंकमो। धवला, संकमअधिकार, कप्रति पत्र १३६३ आदि.

१ णिद्दा पयला असुहं वण्णचउक्कं च उवघादे॥ सत्तण्हं गुणसंकममधापवत्तो ××। गो. क. ४२१-४२२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोदस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ, उच्चागोदं चेव णीचागोदं चेव ॥ ११० ॥

णेदं सुत्तं पुणरुत्तदोसेण दूसिज्जदि, विस्सरणालुअसिस्सस्स संभालणट्ठं पुणो पुणो परूवणाए दोसाभावा।

जं तं णीचागोदं कम्मं ॥ १११ ॥

बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा ॥ ११२ ॥

कुदो ? उवरि णीचागोदस्स बंधाभावा।

जं तं उच्चागोदं कम्मं ॥ ११३ ॥

तमेगं ठाणमिदि अज्झाहारो कायव्वो।

अधःप्रवृत्तसंक्रमण होना चाहिये ? इस शंकाका आचार्यने इस प्रकार निवारण किया है कि उक्त अधःप्रवृत्तसंक्रमणकी प्रवृत्ति तो केवल सर्वसंक्रमणसे पूर्व सत्तामें वर्तमान शेष सब कर्मोंको विषय करती है। किन्तु जिन कर्मोंका सर्वसंक्रमण होता ही नहीं है उनमें यहां अधःप्रवृत्तसंक्रमण नहीं हो सकता। ऐसी केवल चार ही प्रकृतियां हैं– क्रोधसंज्वलन, मानसंज्वलन, मायासंज्वलन और पुरुषवेद– जिनका अधःप्रवृत्तसंक्रमण और सर्वसंक्रमण होता है। निद्रा, प्रचला, अशुभ वर्णादि चार और उपघात, इन सात प्रकृतियोंका अधःप्रवृत्तसंक्रमण और गुणसंक्रमण ही होता है, सर्वसंक्रमण नहीं। (देखो गो. क. ४१९.–४२८।) निद्रा और प्रचलाका मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लगाकर अपूर्वकरणके प्रथम सप्तम भाग तक तो अधःप्रवृत्तसंक्रमण होता है, और वहां उनकी बंधव्युच्छित्ति हो जाने पर उनका अधःप्रवृत्तसंक्रमण बाधित होकर ऊपर सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान तक गुणसंक्रमण होता है। अतः उनकी बन्धव्युच्छित्तिके पश्चात् उनका अधःप्रवृत्तसंक्रमण नहीं होता।

गोत्र कर्मकी दो ही प्रकृतियां हैं– उच्चगोत्र और नीचगोत्र ॥ ११० ॥

यह सूत्र पुनरुक्त दोषसे दूषित नहीं होता है, क्योंकि, विसरणशील शिष्योंके स्मारणार्थ पुनः पुनः प्ररूपण करने पर भी कोई दोष नहीं है।

जो नीचगोत्रकर्म है, वह एक प्रकृतिरूप बन्धस्थान है ॥ १११ ॥

वह बन्धस्थान नीचगोत्रकर्मको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवके होता है ॥ ११२ ॥

क्योंकि, इससे ऊपर नीचगोत्रका बन्ध नहीं होता है।

जो उच्चगोत्रकर्म है, वह एक प्रकृतिरूप बन्धस्थान है ॥ ११३ ॥

यहां वह एक प्रकृतिरूप बन्धस्थान है, इस वाक्यका ऊपरसे अध्याहार करना चाहिए।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा ॥ ११४ ॥

सुगममेदं ।

अंतराइयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ, दाणंतराइयं लाहंतराइयं भोगंतराइयं परिभोगंतराइयं वीरियंतराइयं चेदि ॥ ११५ ॥

सुगममेदं ।

एदासिं पंचण्हं पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ ११६ ॥

एदं पि सुगमं ।

बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा ॥ ११७ ॥

सुगममेदं ।

एवं ठाणसमुक्कित्तणा णाम विदिया चूलिया समत्ता ।

वह बन्धस्थान उच्चगोत्रकर्मको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयतके होता है ॥ ११४ ॥

यह सूत्र सुगम है। (यहां संयतसे १० वें गुणस्थान तकके संयतोंका अभिप्राय है।)

अन्तराय कर्मकी पांच प्रकृतियां हैं— दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, परिभोगान्तराय और वीर्यान्तराय ॥ ११५ ॥

यह सूत्र सुगम है।

इन प्रकृतियोंके समुदायात्मक पांच प्रकृतिसम्बन्धी बन्धस्थानका एक ही भावमें अवस्थान होता है ॥ ११६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

वह बन्धस्थान उन पांचों अन्तरायप्रकृतियोंके बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयतके होता है ॥ ११७ ॥

यह सूत्र सुगम है। (यहां संयतसे १० वें गुणस्थान तकके संयतोंका अभिप्राय है।)

इस प्रकार स्थानसमुत्कीर्त्तना नामकी द्वितीय चूलिका समाप्त हुई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इदाणिं पढमसम्मत्ताभिमुहो जाओ पयडीओ बंधदि ताओ पयडीओ कित्तइस्सामो ॥ १ ॥

पयडिसमुक्कित्तणं ट्ठाणसमुक्कित्तणं च भणिदाणंतरं तिण्णिमहादंडयपरूवणा किमट्ठमागदा? पढमसम्मत्ताभिमुहमिच्छादिट्ठीहि बज्झमाणपयडीओ जाणावणट्ठमागदा। पुव्विल्लदो चूलियाओ किमट्ठमागदाओ? ण, ताहि विणा उवरिमचूलियावगमणे उवाया-भावा। ण च पयडीणं सरूवमजाणंतस्स[1] तव्विसेसो जाणाविदुं सक्किज्जदे, अण्णत्थ तहाणुवलंभा। उवरि भण्णमाणचूलियाणमाहारभूददोचूलियाओ भणिदूण पढमसम्मत्ताभि-मुहत्तणेण महत्तं संपत्तजीवेहि बज्झमाणत्तादो वा।

पंचण्हं णाणावरणीयाणं णवण्हं दंसणावरणीयाणं सादावेदणीयं मिच्छत्तं सोलसण्हं कसायाणं पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछा। आउगं

अब प्रथमोपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करनेके अभिमुख जीव जिन प्रकृतियोंको बांधता है, उन प्रकृतियोंको कहेंगे ॥ १ ॥

शंका—प्रकृतिसमुत्कीर्तन और स्थानसमुत्कीर्तनको कहनेके अनन्तर तीन महा-दंडकोंकी प्ररूपणा किसलिए आई है?

समाधान—प्रथमोपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करनेके अभिमुख मिथ्यादृष्टि जीवोंके द्वारा बंधनेवाली प्रकृतियोंके ज्ञान करानेके लिए यह तीन महादंडकोंकी प्ररूपणा आई है।

शंका—तो फिर पहली दो चूलिकाएं किसलिए आई हैं?

समाधान – नहीं, क्योंकि, उन पहली दो चूलिकाओंके विना आगे आनेवाली चूलिकाओंके समझनेका अन्य उपायका नहीं है। प्रकृतियोंके स्वरूपको नहीं जानने-वाले व्यक्तिको उनका विशेष नहीं बतलाया जा सकता है, क्योंकि, अन्यत्र वैसा पाया नहीं जाता। अथवा आगे कहे जानेवाली चूलिकाओंके आधारभूत दो चूलिकाओंको कहकर प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख होनेके कारण महत्वको संप्राप्त जीवोंके द्वारा बंधनेवाली होनेसे उन बध्यमान प्रकृतियोंका यहां वर्णन किया जाता है।

प्रथमोपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करनेके अभिमुख संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच अथवा – मनुष्य, पांचों ज्ञानावरणीय, नवों दर्शनावरणीय, सातावेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी आदि सोलह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, इन प्रकृतियोंको बांधता है।

[1] प्रतिषु 'सरूवजाणंतस्स' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च ण बंधदि । देवगदि-पंचिंदियजादि-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीरं समचउरससंठाणं वेउव्वियअंगोवंगं वण्ण-गंध-रस-फासं देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगदि-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिण-उच्चागोदं पंचण्हमंतराइयाणमेदाओ पयडीओ बंधदि पढमसम्मत्ताभिमुहो सण्णिपंचिंदियतिरिक्खो वा मणुसो वा[१] ॥ २ ॥

पंचण्हं णाणावरणीयाणमिच्चादी छट्ठीबहुवयणणिद्देसा विदियाए विहत्तीए अत्थे दट्ठव्वा । 'आउगं च ण बंधदि' एत्थतणचसद्दो समुच्चयत्थे दट्ठव्वो, आउगं च अण्णाओ च ण बंधदि त्ति । काओ अण्णाओ ? असाद-इत्थी-णउंसयवेद-आउचउक्क-अरदि-सोग-णिरय-तिरिक्ख-मणुसगइ एइंदिय-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियजादि-ओरालिया-हारसरीर-णग्गोहपरिमंडल-सादिय-खुज्ज-वामण-हुंडसंठाण-ओरालियाहारसरीरंगोवंग-छ-

आयुकर्मको नहीं बांधता है । देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, देवगति-प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्त्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पांचों अन्तराय, इन प्रकृतियोंको बांधता है ॥ २ ॥

'पंचण्हं णाणावरणीयाणं' इत्यादि षष्ठी विभक्तिके बहुवचनका निर्देश द्वितीया विभक्तिके अर्थमें जानना चाहिए । 'आउगं च ण बंधदि' इस वाक्यमें प्रयुक्त 'च' शब्द समुच्चयार्थक जानना चाहिए, जिसके अनुसार यह अर्थ होता है कि आयुकर्मको और अन्य प्रकृतियोंको नहीं बांधता है ।

शंका—वे अन्य प्रकृतियां कौनसी हैं जिन्हें प्रथम सम्यक्त्वके अभिमुख हुआ संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अथवा मनुष्य नहीं बांधता ?

समाधान—असातावेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, आयुचतुष्क, अरति, शोक, नरकगति, तिर्यग्गति, मनुष्यगति, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, आहारकशरीर, न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान, स्वातिसंस्थान, कुब्जकसंस्थान, वामनसंस्थान, हुंडकसंस्थान, औदारिकशरीर-अंगोपांग,

१ घादिति सादं मिच्छं कसाय पुंहस्सरदि भयस्स दुगं । अपमत्तडवीसुच्चं बंधंति विसुद्धणरतिरिया ॥ देवतसवण्णअगुरुचउक्कं समचउरतेजकम्मइयं । सग्गमणं पंचिंदी थिरादिछण्णिमिणमडवीसं ॥ लब्धि. २०-२१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संघडण-णिरय-तिरिक्ख-मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वी आदाउज्जोव-अप्पसत्थविहायगदि-थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साधारण-अथिर-असुभ-दुभग-दुस्सर-अणादेज्ज-अजसकित्ति-तित्थयर-णीचागोदमिदि एदाओ ण बंधदि, विसुद्धतमपरिणामत्तादो। तित्थयराहारदुगं ण बंधदि, सम्मत्त-संजमाभावादो।

एत्थ विसोधीए वड्ढमाणाए सम्मत्ताहिमुहमिच्छादिट्ठिस्स पयडीणं बंधवोच्छेदकमो उच्चदे– सव्वो सम्मत्ताहिमुहमिच्छादिट्ठी सागरोवमकोडाकोडीए अंतो ठिदिं बंधदि[1], णो बाहिद्धा। तदो सागरोवमसदपुधत्तं हेट्ठा ओसरिदूण णिरआउअस्स बंधवोच्छेदो होदि[2]।

आहारकशरीर-अंगोपांग, छहों संहनन, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारणशरीर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति, तीर्थंकर और नीचगोत्र, इन प्रकृतियोंको विशुद्धतम परिणाम होनेसे पूर्वोक्त जीव नहीं बांधता है। तीर्थंकर और आहारकद्विकको सम्यक्त्व और संयमका अभाव होनेसे नहीं बांधता है।

अब यहां विशुद्धिके बढ़नेपर प्रथम सम्यक्त्वके अभिमुख मिथ्यादृष्टि जीवके प्रकृतियोंके बंध-व्युच्छेदका क्रम कहते हैं— सभी अर्थात् चारों गतिसंबंधी कोई भी प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख मिथ्यादृष्टि जीव एक कोड़ाकोड़ी सागरोपमके भीतरकी स्थिति अर्थात् अन्तःकोडाकोडी सागरोपमकी स्थितिको बांधता है। इससे बाहिर, अर्थात् अधिककी, कर्मस्थितिको नहीं बांधता। इस अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम स्थितिबंधसे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे अपसरणकर नारकायुका बन्धव्युच्छेद होता है।

विशेषार्थ— अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम स्थितिबंधसे नारकायुकी बन्ध-व्युच्छित्ति पर्यन्त क्रम इस प्रकार पाया जाता है— उक्त स्थितिबंधसे पल्यके संख्यातवें भागसे हीन स्थितिको अन्तर्मुहूर्त तक समानता लिए हुए ही बांधता है। फिर उससे पल्यके संख्यातवें भागसे हीन स्थितिको अन्तर्मुहूर्त तक बांधता है। इस प्रकार पल्यके संख्यातवें भागरूप हानिके क्रमसे एक पल्य हीन अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम स्थितिको अन्तर्मुहूर्त तक बांधता है। इसी पल्यके संख्यातवें भागरूप हानिके क्रमसे ही स्थितिबन्धापसरण करता हुआ दो पल्यसे हीन, तीन पल्यसे हीन, इत्यादि स्थितिको अन्तर्मुहूर्त तक बांधता

१ सम्मत्तहिमुहमिच्छो विसोहिवड्ढीहिं वड्ढमाणो हु। अंतोकोडाकोडिं सत्तण्हं बंधणं कुणई ॥ लब्धि. ९.

२ तस्मादन्तःकोटीकोटिसागरोपमप्रमितात् स्थितिबन्धात् पल्यसंख्यातैकभागोनां स्थितिमन्तर्मुहूर्तं यावत्सनामेव बध्नाति। पुनस्ततः पल्यसंख्यातैकभागोनामपरां स्थितिमन्तर्मुहूर्तं यावत् बध्नाति। एवं पल्यसंख्यातैकभागहानिक्रमेण पल्योनामन्तःकोटीकोटिसागरोपमस्थितिमन्तर्मुहूर्तं यावद्बध्नाति। एवं पल्यसंख्यातैकभागहानिक्रमेणैव पल्यद्वयोनां पल्यत्रयोनामित्यादिस्थितिमन्तर्मुहूर्तं यावद्बध्नाति। तथा सागरोपमहीनां द्विसागरोपमहीनां त्रिसागरोपमहीनां इत्यादिसप्ताष्टशतलक्षणसागरोपमपृथक्त्वहीनामन्तःकोटीकोटिस्थितिमन्तर्मुहूर्तं यावद्बध्नाति तदा एकं नारकायुःप्रकृतिबन्धापसरणस्थानं भवति, तदा नारकायुर्बन्धव्युच्छित्तिर्भवतीत्यर्थः। लब्धि. गा. १०. टी.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण तिरिक्खाउअस्स बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण मणुसाउअस्स बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण देवाउअस्स बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण णिरयगदि-णिरयगदिपाओग्गाणुपुव्वीणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो होदि । तदो सागरोवमसदपुधत्तं हेट्ठा ओसरिदूण सुहुम-अपज्जत्त-साहारणसरीराणं अण्णोण्णसंजुत्ताणमेक्कसराहेण तिण्हं पयडीणं बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण सुहुम-अपज्जत्त-पत्तेयसरीराणं तिण्हमण्णोण्णसंजुत्ताणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण बादर-अपज्जत्त-साधारणसरीराणमण्णोण्णसंजुत्ताणं तिण्हं पयडीणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण बादर-अपज्जत्त-पत्तेयसरीराणं तिण्हमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसदपुधत्तं ओसरिदूण बेइंदिय-अपज्जत्ताणमण्णोण्णसंजुत्ताणं दोण्हं पयडीणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण तेइंदिय-अपज्जत्ताण-

....

है । पुनः इसी क्रमसे आगे आगे स्थितिबंधका ह्रास करता हुआ एक सागरसे हीन, दो सागरसे हीन, तीन सागरसे हीन, इत्यादि क्रमसे सात आठ सौ सागरोपमोंसे हीन अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिको जिस समय बांधने लगता है उस समय एक नारकायुप्रकृति बन्धसे व्युच्छिन्न होती है । नारकायुकी बंध-व्युच्छित्तिके पश्चात् तिर्यगायुकी बन्ध-व्युच्छित्ति तक उपर्युक्त क्रमसे ही स्थितिबंधका ह्रास होता है और जब वह ह्रास सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमित हो जाता है तब तिर्यगायुकी बन्ध-व्युच्छित्ति होती है । यही क्रम आगे भी जानना चाहिये । इस प्रकारसे स्थितिके ह्रास होनेको स्थितिबंधापसरण कहते हैं ।

उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे अपसरणकर तिर्यगायुका बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर मनुष्यायुका बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर देवायुका बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वी, इन दोनों प्रकृतियोंका एक साथ बंध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर परस्पर-संयुक्त सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणशरीर, इन तीन प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे जाकर सूक्ष्म, अपर्याप्त और प्रत्येकशरीर, इन परस्पर-संयुक्त तीनों प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर बादर, अपर्याप्त और साधारणशरीर, इन परस्पर-संयुक्त तीनों प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर बादर, अपर्याप्त और प्रत्येकशरीर, इन तीन प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर द्वीन्द्रियजाति और अपर्याप्त, इन परस्पर-संयुक्त दोनों प्रकृतियोंका एक साथ बंध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर त्रीन्द्रियजाति और अपर्याप्त, इन परस्पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मण्णोण्णसंजुत्ताणं दोण्हं पयडीणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो। तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण चदुरिंदिय-अपज्जत्ताणमण्णोण्णसंजुत्ताणमेक्कसराहेण दोण्हं पयडीणं बंधवोच्छेदो। तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण असण्णिपंचिंदिय-अपज्जत्ताणमण्णोण्णसंजुत्ताणं दोण्हं पयडीणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो[1]। तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण सण्णिपंचिंदिय-अपज्जत्ताणमण्णोण्णसंजुत्ताणं दोण्हं पयडीणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो। तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण सुहुम-पज्जत्त-साधारणाणमण्णोण्णसंजुत्ताणं तिण्हं पयडीणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो। तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण सुहुम-पज्जत्त-पत्तेयसरीराणमण्णोण्णसंजुत्ताणं तिण्हं पयडीणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो। तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण बादर-पज्जत्त-साधारणसरीराणं तिण्हं पयडीणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो। तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीराणं एइंदिय-आदाव-थावराणं च एदासिं छण्हं पयडीणमण्णोण्णसंबद्धाणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो। तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण वेइंदिय-पज्जत्ताणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो। तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण तेइंदिय-पज्जत्ताणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो। तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण

संयुक्त दोनों प्रकृतियोंका एक साथ बंध-व्युच्छेद होता है। उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर चतुरिन्द्रियजाति और अपर्याप्त, इन परस्पर-संयुक्त दोनों प्रकृतियोंका एक साथ बंध-व्युच्छेद होता है। उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर असंज्ञी पंचेन्द्रियजाति और अपर्याप्त, इन परस्पर-संयुक्त दोनों प्रकृतियोंका एक साथ बंध-व्युच्छेद होता है। उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर संज्ञी पंचेन्द्रियजाति और अपर्याप्त, इन परस्पर-संयुक्त दोनों प्रकृतियोंका एक साथ बंध-व्युच्छेद होता है। उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर सूक्ष्म, पर्याप्त और साधारण, इन परस्पर-संयुक्त तीनों प्रकृतियोंका एक साथ बंध-व्युच्छेद होता है। उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर सूक्ष्म, पर्याप्त और प्रत्येकशरीर, इन परस्पर-संयुक्त तीनों प्रकृतियोंका एक साथ बंध-व्युच्छेद होता है। उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर बादर, पर्याप्त और साधारणशरीर, इन तीनों प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है। उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर बादर, पर्याप्त और प्रत्येकशरीर, तथा एकेन्द्रिय, आताप और स्थावर, इन परस्पर-संबद्ध छहों प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है। उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर द्वीन्द्रियजाति और पर्याप्त, इन दोनों प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है। उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतर कर त्रीन्द्रियजाति और पर्याप्त, इन दोनों प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है। उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर चतुरिन्द्रियजाति और पर्याप्त, इन दोनों

१ आऊ पडि णिरयदुगे सुहुमतिये सुहुमदोण्णि पत्तेयं। बादरजुद दोण्णि पदे अपुण्णजुद वितिचसण्णिसण्णीसु ॥ लब्धि. ११.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चदुरिंदिय-पज्जत्ताणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण असण्णिपंचिंदिय-पज्जत्ताणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो[1] । तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण तिरिक्खगदि-(तिरिक्खगदि-) पाओग्गाणुपुव्वी-उज्जोवाणं तिण्हं पयडीणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण णीचागोदस्स बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण अप्पसत्थविहायगदि-दुभग-दुस्सर-अणादेज्जाणं चदुण्हं पयडीणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण हुंडसंठाण-असंपत्तसेवट्टसरीरसंघडणाणं दोण्हं पयडीणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण णवुंसयवेदबंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण वामण-संठाण-खीलियसरीरसंघडणाणं दोण्हं पयडीणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो[2] । तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण खुज्जसंठाण-अद्धणारायणसरीरसंघडणाणं दोण्हं पयडीणं एक्कसराहेण बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण इत्थिवेदबंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण सादियसंठाण-णारायणसरीरसंघडणाणं दोण्हं पयडीणमेक्कसराहेण

....

प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर असंज्ञी पंचेन्द्रियजाति और पर्याप्त, इन दोनों प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और उद्योत, इन तीनों प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर नीचगोत्रका बंध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेय, इन चारों प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर हुंडसंस्थान और असंप्राप्तासृपाटिकाशरीरसंहनन, इन दोनों प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर नपुंसकवेदका बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर वामनसंस्थान और कीलितशरीरसंहनन, इन दोनों प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर कुब्जसंस्थान और अर्धनाराचशरीरसंहनन, इन दोनों प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर स्त्रीवेदका बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतर कर स्वातिसंस्थान और नाराचशरीरसंहनन, इन दोनों प्रकृतियोंका

....

१ अट्ठ अपुण्णपदेसु वि पुण्णेण जुदेसु तेसु तुरियपदे । एइंदिय आदावं थावरणामं च मिलिदव्वं ॥ लब्धि. १२.

२ तिरिगदुगुज्जोवो वि य णीचे अपसत्थगमणदुभगतिए । हुंडासंपत्ते वि य णओसए वामखीलीए ॥ लब्धि. १३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण णग्गोधपरिमंडलसंठाण-वज्जणारायण-सरीरसंघडणाणं दोण्हं पयडीणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण मणुसगदि-ओरालियसरीर-ओरालियसरीरअंगोवंग-वज्जरिसहवइरणारायणसरीर-संघडण-मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वीणं पंचण्हं पयडीणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो[1] । तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण असादावेदणीय-अरदि-सोग-अथिर-असुभ-अजसकित्तीणं छण्हं पयडीणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो ।

कुदो एस बंधवोच्छेदकमो ? असुह-असुहयर-असुहतमभेएण पयडीणमवट्ठाणादो । एसो पयडिबंधवोच्छेदकमो विसुज्झमाणाणं भव्वाभव्वमिच्छादिट्ठीणं साहारणो[2] । किंतु तिण्णि करणाणि भव्वमिच्छादिट्ठिस्सेव, अण्णत्थ तेसिमणुवलंभादो । भणिदं च—

खयउवसमो विसोही देसण पाओग्ग करणलद्धी य ।
चत्तारि वि सामण्णा करणं पुण होइ सम्मत्ते[3] ॥ १ ॥

एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर न्यग्रोध-परिमंडलसंस्थान और वज्रनाराचशरीरसंहनन, इन दोनों प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीर-अंगोपांग, वज्रवृषभवज्रनाराचशरीरसंहनन और मनुष्यगति-प्रायोग्यानुपूर्वी, इन पांचों प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ, और अयशःकीर्त्ति, इन छहों प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है ।

शंका—यह प्रकृतियोंके बन्ध-व्युच्छेदका क्रम किस कारणसे है ?

समाधान—अशुभ, अशुभतर और अशुभतमके भेदसे प्रकृतियोंका अवस्थान माना गया है । उसी अपेक्षासे यह प्रकृतियोंके बन्ध-व्युच्छेदका क्रम है ।

यह प्रकृतियोंके बन्ध-व्युच्छेदका क्रम विशुद्धिको प्राप्त होनेवाले भव्य और अभव्य मिथ्यादृष्टि जीवोंके साधारण अर्थात् समान है । किन्तु अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, ये तीन करण भव्य मिथ्यादृष्टि जीवके ही होते हैं, क्योंकि, अन्यत्र अर्थात् अभव्य जीवोंमें वे पाये नहीं जाते हैं । कहा भी है—

क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य और करण, ये पांच लब्धियां होती हैं । उनमेंसे प्रारंभकी चार तो सामान्य हैं, अर्थात् भव्य और अभव्य जीव, इन दोनोंके होती हैं । किन्तु पांचवीं करणलब्धि सम्यक्त्व उत्पन्न होनेके समय भव्य जीवके ही होती है ॥ १ ॥

१ खुज्जद्धं णाराए इत्थीवेदं य सादिणाराए । णग्गोधवज्जणाराए मणुओरालदुगवज्जे ॥ लब्धि. १४.

२ अथिर सुभग जस अरदी सोय असादे य होंति चोतीसा । बंधोसरणट्ठाणा भव्वाभव्वेसु सामण्णा ॥ लब्धि. १५.

३ लब्धि. ३. परं तत्र चतुर्थचरणे ' करणं सम्मत्तचारित्ते ' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एदासु पयडीसु बंधेण वोच्छिण्णासु अवसेसपयडीओ पुव्वपरूविदाओ तिरिक्ख-मणुसमिच्छादिट्ठी सम्मत्ताहिमुहो ताव बंधदि जाव मिच्छादिट्ठिचरिमसमयं पत्तो त्ति ।

एवं तदियचूलिया समत्ता ।

चउत्थी चूलिया

तत्थ इमो विदियो महादंडओ कादव्वो भवदि ॥ १ ॥

पढमदंडयादो अभिण्णस्स कधमेदस्स विदियत्तं ? ण, पयडिभेदेण सामित्तभेदेण च भेदुवलंभा ।

पंचण्हं णाणावरणीयाणं णवण्हं दंसणावरणीयाणं सादावेदणीयं मिच्छत्तं सोलसण्हं कसायाणं पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछा । आउअं च ण बंधदि । मणुसगदि-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाणं ओरालियसरीरअंगोवंगं वज्जरिसहसंघडणं वण्ण-गंध-रस-फासं मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-

---

इन उपर्युक्त प्रकृतियोंके बन्धसे व्युच्छिन्न होनेपर पूर्व प्ररूपित अवशिष्ट प्रकृतियोंको सम्यक्त्वके अभिमुख तिर्यंच और मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव तब तक बांधता है, जबतक कि वह मिथ्यादृष्टि गुणस्थानके अन्तिम समयको प्राप्त होता है ।

इस प्रकार तीसरी चूलिका समाप्त हुई ।

उन तीन महादंडकोंमेंसे यह द्वितीय महादंडक कहने योग्य है ॥ १ ॥

शंका— प्रथम महादंडकसे अभिन्न इस दंडकके द्वितीयपना कैसे है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, प्रकृतियोंके भेदसे और स्वामित्वके भेदसे दोनों दंडकोंमें भेद पाया जाता है ।

प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख देव, अथवा नीचे सातवीं पृथिवीके नारकीको छोड़कर शेष नारकी जीव, पांचों ज्ञानावरणीय, नवों दर्शनावरणीय, सातावेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी आदि सोलह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, इन प्रकृतियोंको बांधता है । किन्तु आयुकर्मको नहीं बांधता है । मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय-जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीर-अंगोपांग, वज्रऋषभनाराचसंहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज जसकित्ति-णिमिण-उच्चागोदं पंचण्हमंतराइयाणं एदाओ पयडीओ बंधदि पढमसम्मत्ताहिमुहो अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइयं वज्ज देवो वा णेरइओ वा ॥ २ ॥

पढममहादंडए जधा ओरालियसरीर-ओरालियसरीरअंगोवंगाणं बंधवोच्छेदो जादो, तधा ताए चेव विसोहीए वट्टमाणाणं देव-णेरइयाणं तासिं पयडीणं बंधवोच्छेदो किण्ण जादो ? उच्चदे — ण विसोही एकल्लिया मणुस-तिरिक्खगइउदएण सहकारिकारणेण वज्जिया तेसिं बंधवोच्छेदकरणक्खमा, कारणसामग्गीदो उप्पज्जमाणस्स कज्जस्स वियलकारणादो समुप्पत्तिविरोहा । देव-णेरइएसु तासिं धुवबंधित्तसंभवादो च ण बंधवोच्छेदो । एवं वज्जरिसहसंघडणस्स विणासे कारणं वत्तव्वं । 'आउगं च ण बंधदि' त्ति च-सद्दो समुच्चयट्ठत्तादो अण्णाओ च पयडीओ अबज्झमाणाओ सूचेदि । ताओ कदमाओ ? असादावेदणीय-इत्थि-णउंसयवेद-अरदि-सोग-आउचउक्क-णिरय—

अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्त्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पांचों अन्तराय, इन प्रकृतियोंको बांधता है ॥ २ ॥

शंका — प्रथम महादंडकमें जिस प्रकार औदारिकशरीर और औदारिकशरीर-अंगोपांग, इन प्रकृतियोंका बन्ध-व्युच्छेद हुआ है, उस प्रकार उसी ही विशुद्धिमें वर्तमान देव और नारकियोंके उन प्रकृतियोंका बन्ध-व्युच्छेद क्यों नहीं होता ?

समाधान—सहकारी कारणरूप मनुष्यगति और तिर्यग्गतिके उदयसे वर्जित (रहित) अकेली विशुद्धि उन प्रकृतियोंके बन्ध-व्युच्छेद करनेमें समर्थ नहीं है, क्योंकि, कारण-सामग्रीसे उत्पन्न होनेवाले कार्यकी विकल कारणसे उत्पत्तिका विरोध है। अर्थात् जो कार्य कारण-सामग्रीकी सम्पूर्णतासे उत्पन्न होता है, वह कारण-सामग्रीकी अपूर्णतासे उत्पन्न नहीं हो सकता है। दूसरी बात यह है कि देव और नारकियोंमें औदारिकशरीर आदि उन प्रकृतियोंका ध्रुवबंध संभव है, इसलिए उनका बन्ध-व्युच्छेद नहीं होता है।

इसी प्रकार वज्रऋषभनाराचसंहननके बन्ध-व्युच्छेदमें कारण कहना चाहिए। 'आउगं च ण बंधदि' इस वाक्यमें पठित 'च' शब्द समुच्चयार्थक है, अतएव नहीं बंधनेवाली अन्य भी प्रकृतियोंको सूचित करता है।

शंका — वे नहीं बंधनेवाली प्रकृतियां कौन सी हैं ?

समाधान — असातावेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक, आयु-चतुष्क,

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

तिरिक्ख-देवगदि-एइंदिय-बेइंदिय-तेइंदिय-चदुरिंदियजादि-वेउव्विय-आहारसरीरं समचउरससंठाणं वज्ज पंच संठाणं वेउव्वियाहारसरीर-अंगोवंगं वज्जरिसहसंघडणं वज्ज पंच संघडणं णिरय-तिरिक्ख-देवगइपाओग्गाणुपुव्वी अप्पसत्थविहायगई आदाउज्जोव-थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साहारण-अथिर-असुह-दुभग-दुस्सर-अणादेज्ज-अजसकित्ति-णीचागोद-तित्थयरमिदि । एदासिं बंधवोच्छेदक्कमो जहा पढममहादंडए उत्तो तथा वत्तव्वो ।

एवं चउत्थी चूलिया समत्ता ।

पंचमी चूलिया

तत्थ इमो तदिओ महादंडओ कादव्वो भवदि[1] ॥ १ ॥

एदस्स तदियत्तमउत्ते वि जाणिज्जदि, पुव्वं दोण्हं दंडयाणमुवलंभा ? ण, जुत्तिवादे अकुसलसद्दाणुसारिसिस्साणुग्गहट्ठत्तादो ।

पंचण्हं णाणावरणीयाणं णवण्हं दंसणावरणीयाणं सादावेदणीयं

नरकगति, तिर्यग्गति, देवगति, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, समचतुरस्रसंस्थानको छोड़कर शेष पांच संस्थान, वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग, आहारकशरीर-अंगोपांग, वज्रऋषभनाराचसंहननको छोड़कर शेष पांच संहनन, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अप्रशस्तविहायोगति, आताप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारणशरीर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्त्ति, नीचगोत्र और तीर्थकर, ये नहीं बंधनेवाली प्रकृतियां हैं ।

इन प्रकृतियोंके बन्ध-व्युच्छेदका क्रम जिस प्रकार प्रथम महादंडकमें कहा है, उसी प्रकार यहांपर कहना चाहिए ।

इस प्रकार चौथी चूलिका समाप्त हुई ।

उन तीन महादंडकोंमेंसे यह तृतीय महादंडक कहने योग्य है ॥ १ ॥

शंका — इस महादंडकके तृतीयपना नहीं कहने पर भी जाना जाता है, क्योंकि, इसके दो पूर्व दंडक पाये जाते हैं ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, युक्तिवादमें अकुशल ऐसे शब्दनयानुसारी शिष्योंके अनुग्रहके लिए यहांपर इस महादंडकके पूर्व 'तृतीय' यह शब्द कहा है ।

प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख ऐसा नीचे सातवीं पृथिवीका नारकी मिथ्यादृष्टि जीव, पांचों ज्ञानावरणीय, नवों दर्शनावरणीय, सातावेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानु-

---

१ प्रतिषु 'भणदि' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिच्छत्तं सोलसण्हं कसायाणं पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछा । आउगं च ण बंधदि । तिरिक्खगदि-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइय-सरीर-समचउरससंठाण-ओरालियंगोवंग—वज्जरिसहसंघडण-वण्ण-गंध—रस-फास-तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुव-उवघाद-(परघाद-) उस्सासं । उज्जोवं सिया बंधदि, सिया ण बंधदि । पसत्थविहाय-गदि-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-(सुभ-) सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिण-णीचागोद-पंचण्हमंतराइयाणं एदाओ पयडीओ बंधदि पढमसम्मत्ताहिमुहो अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइओ[1] ॥ २ ॥

तिरिक्खगदि-तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी-उज्जोव-णीचागोदाणं एत्थ कधं ण बंधो वोच्छिण्णो ? ण, सत्तमपुढविणेरइयमिच्छादिट्ठिस्स सेसगदिबंधं पडि भवसंकिलेसेण अजोग्गस्स तिरिक्खगदि-तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी-णीचागोदे मुच्चा सव्वकाल-

---

बन्धी आदि सोलह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, इन प्रकृतियोंको बांधता है । किन्तु आयुकर्मको नहीं बांधता है । तिर्यग्गति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीर-अंगोपांग, वज्रऋषभनाराचसंहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, इन प्रकृतियोंको बांधता है । उद्योत प्रकृतिको कदाचित् बांधता है और कदाचित् नहीं बांधता है । प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्त्ति, निर्माण, नीचगोत्र और पांचों अन्तरायकर्म, इन प्रकृतियोंको बांधता है ॥ २ ॥

शंका—तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, और नीचगोत्र, इन प्रकृतियोंकी यहांपर बन्ध-व्युच्छित्ति क्यों नहीं होती ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, भव-सम्बन्धी संक्लेशके कारण शेष गतियोंके बन्धके प्रति अयोग्य, ऐसे सातवीं पृथिवीके नारकी मिथ्यादृष्टिके तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और नीचगोत्रको छोड़कर सदाकाल इनकी प्रतिपक्षस्वरूप अन्य प्रकृतियोंका

---

१ तं णरदुगुच्चहीणं तिरियदुणीचजुदपयडिपरिमाणं । उज्जोवेण जुदं वा सत्तमखिदिगा हु बंधंति ॥ लब्धि. २३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मण्णासिमेदासिं पडिवक्खपयडीणं बंधाभावा। ण च विसोहीवसेण धुवबंधीणं बंधवोच्छेदो होदि, णाणावरणादीणं पि तदो बंधवोच्छेदप्पसंगा। ण च एवं, अणवत्थावत्तीदो। 'आउअं च ण बंधदि' त्ति च-सद्देण सूचिदअबज्झमाणपयडीओ एत्थ जाणिय वत्तव्वाओ।

एवं पंचमी चूलिया समत्ता।

एवं 'कदि काओ पयडीओ बंधदि' त्ति जं पदं तस्स वक्खाणं समत्तं।

....

बन्ध नहीं होता है। तथा विशुद्धिके वशसे ध्रुवबन्धी प्रकृतियोंका बन्ध-व्युच्छेद नहीं होता है, अन्यथा उसी विशुद्धिके वशसे ज्ञानावरण आदि प्रकृतियोंके भी बन्ध-व्युच्छेदका प्रसंग आता है। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, वैसा माननेपर अनवस्था दोष आता है।

'आउअं च ण बंधदि' इस वाक्यमें पठित 'च' शब्दके द्वारा सूचित अबध्यमान प्रकृतियां यहां जानकर कहना चाहिए।

विशेषार्थ—'च' शब्दसे सूचित प्रकृतियां इस प्रकार हैं— असातावेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक, नरकगति, मनुष्यगति, देवगति, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान, स्वातिसंस्थान, कुब्जकसंस्थान, वामनसंस्थान, हुंडकसंस्थान, वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग, आहारकशरीर-अंगोपांग, वज्रनाराचसंहनन, नाराचसंहनन, अर्धनाराचसंहनन, कीलितसंहनन, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारणशरीर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्त्ति, तीर्थंकर और उच्चगोत्र। इन प्रकृतियोंको प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख हुआ सातवीं पृथिवीका मिथ्यादृष्टि नारकी नहीं बांधता है।

इस प्रकार पांचवीं चूलिका समाप्त हुई।

इस प्रकार 'कितनी और किन प्रकृतियोंको बांधता है' यह जो सूत्रोक्त पद है, उसका व्याख्यान समाप्त हुआ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

केवडि कालट्ठिदीएहि कम्मेहि सम्मत्तं लब्भदि वा ण लब्भदि वा, ण लब्भदि त्ति विभासा ॥ १ ॥

एदस्सत्थो– कम्मेहि केवडिकालट्ठिदीएहि संतेहि जीवो सम्मत्तं लहदि, केवडिकालट्ठिदीएहि कम्मेहि सम्मत्तं ण लहदि त्ति एसा पुच्छा। एदस्स पुच्छासुत्तस्स दव्वट्ठियणयमवलंबिय अवट्ठाणादो संगहिदासेसपयदत्थस्स वक्खाणे कीरमाणे तत्थ जं ण लहदि त्ति पदं तस्स विहासा कीरदे। तासिं ठिदीणं परूवणं कुणंतो उकस्सठिदिवण्णणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

एत्तो उक्कस्सयट्ठिदिं वण्णइस्सामो ॥ २ ॥

किमट्ठमेत्थ ट्ठिदिपरूवणा कीरदे? ण, अणवगदाए कम्मट्ठिदीए संगहिदासेसट्ठिदिविसेसाए एसा ट्ठिदी सम्मत्तग्गहणजोग्गा एसा वि ण जोग्गा त्ति परूवणाए उवायाभावा, उक्कस्सट्ठिदिं बंधंतो पढमसम्मत्तं[1] ण पडिवज्जदि त्ति जाणावणट्ठं वा

'कितने काल-स्थितिवाले कर्मोंके द्वारा सम्यक्त्वको प्राप्त करता है, अथवा नहीं प्राप्त करता है,' इस वाक्यके अन्तर्गत 'अथवा नहीं प्राप्त करता है' इस पदकी व्याख्या करते हैं ॥ १ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं-- कितने कालस्थितिवाले कर्मोंके होते हुए जीव सम्यक्त्वको प्राप्त करता है, और कितने कालस्थितिवाले कर्मोंके होते हुए सम्यक्त्वको नहीं प्राप्त करता है, यह एक प्रश्न है। इस पृच्छासूत्रके द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन कर अवस्थान होनेसे संगृहीत समस्त प्रकृत अर्थका व्याख्यान किये जाने पर उसमें जो 'सम्यक्त्वको नहीं प्राप्त करता है' यह पद है, उसकी विभाषा की जाती है।

उन स्थितियोंका प्ररूपण करते हुए आचार्य कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिके वर्णनके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

अब इससे आगे उत्कृष्ट स्थितिको वर्णन करेंगे ॥ २ ॥

शंका—यहांपर कर्मोंकी स्थितिका निरूपण किसलिए किया जा रहा है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, समस्त स्थितिविशेषोंका संग्रह करनेवाली कर्मस्थितिके ज्ञात नहीं होनेपर, यह स्थिति सम्यक्त्वको ग्रहण करनेके योग्य है और यह स्थिति सम्यक्त्वको ग्रहण करनेके योग्य नहीं है, इस प्रकारकी प्ररूपणा करनेका और कोई उपाय न होनेसे; अथवा कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधनेवाला जीव प्रथमोपशमसम्यक्त्वको नहीं प्राप्त करता है, इस बातका ज्ञान करानेके लिए, कर्मोंकी उत्कृष्ट

१ प्रतिषु 'पढमत्तण' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्कस्सट्ठिदिपरूवणा कीरदे। का ठिदी णाम? जोगवसेण कम्मस्सरूवेण परिणदाणं पोग्गलक्खंधाणं कसायवसेण जीवे एगसरूवेणावट्ठाणकालो ट्ठिदी णाम। तस्स उक्कस्सट्ठिदी चेव पढमं किमट्ठं उच्चदे? ण, उक्कस्सट्ठिदीए संगहिदासेसट्ठिदिविसेसाए परूविदाए सव्वट्ठिदीणं परूवणासिद्धीदो।

तं जहा ॥ ३ ॥

पंचण्हं णाणावरणीयाणं णवण्हं दंसणावरणीयाणं असादावेदणीयं पंचण्हमंतराइयाणमुक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ[1] ॥ ४ ॥

एदेसिं उत्तकम्माणं उक्कस्सिया ट्ठिदी तीसं सागरोवमकोडाकोडीमेत्ता होदि। तत्थ एगसमयपबद्धपरमाणुपोग्गलाणं किं सव्वेसिं पि तीसं सागरोवमकोडाकोडी होदि, आहो ण[2] होदि त्ति? पढमपक्खे उवरि उच्चमाणआबाहा-णिसेयसुत्ताणमभावप्पसंगो,

---

स्थितिका निरूपण किया जा रहा है।

शंका—स्थिति किसे कहते हैं?

समाधान—योगके वशसे कर्मस्वरूपसे परिणत पुद्गल-स्कन्धोंका कषायके वशसे जीवमें एक स्वरूपसे रहनेके कालको स्थिति कहते हैं।

शंका—उस कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति ही पहले किसलिए कहते हैं?

समाधान—नहीं, क्योंकि, समस्त स्थितिविशेषोंकी संग्रह करनेवाली उत्कृष्ट स्थितिके प्ररूपण किये जानेपर सर्व स्थितियोंके निरूपण की सिद्धि होती है।

वह उत्कृष्ट स्थिति किस प्रकार है? ॥ ३ ॥

पांचों ज्ञानावरणीय, नवों दर्शनावरणीय, असातावेदनीय और पांचों अन्तराय, इन कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम है ॥ ४ ॥

इन सूत्रोक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण होती है।

शंका—इस स्थितिबंधमें एक समयमें बंधे हुए क्या सभी पुद्गल-परमाणुओंकी स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम होती है, अथवा सबकी नहीं होती है? प्रथम पक्षके माननेपर आगे कहे जानेवाले आबाधा और निषेकसम्बन्धी सूत्रोंके अभावका प्रसंग आता है, क्योंकि, समान स्थितिवाले कर्म-स्कन्धोंमें आबाधा, निषेक और विशेष

---

१ आदितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटिकोटयः परा स्थितिः ॥ त. सू. ८, १४. तीसं कोडाकोडी तिघादितदिएसु ॥ गो. क. १२७.

२ प्रतिषु '-कोडाकोडी आहूण' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाणट्ठिदिकम्मक्खंधेसु आबाधा-णिसेग-विसेसाणमत्थित्तविरोहा । विदियपक्खे णाणावरणादीणं तीसं सागरोवमकोडाकोडी ट्ठिदि त्ति ण घडदे, तदो समऊणादिट्ठिदीणं पि तत्थुवलंभादो ? एत्थ परिहारो उच्चदे । तं जहा– ण ताव एगसमयपबद्धपरमाणु-पोग्गलाणं पुध पुध णाणावरणविवक्खा एत्थ अत्थि[2], णाणावरणस्स अणंतियप्पसंगादो । ण णिसेयं पडि णाणावरणववएसो अत्थि, तस्स असंखेज्जत्तप्पसंगादो । तदो मदि-सुद-ओहि-मणपज्जव-केवलणाणावरणसामण्णस्स मदि-सुद-ओहि-मणपज्जव-केवलणाणावरणत्त-मिच्छिज्जदे, अण्णहा णाणावरणपयडीणं पंचयत्तविरोहादो । एत्थ वि ण पढमपक्खउत्त-दोसो, अणब्भुवगमादो । ण विदियपक्खउत्तदोसो वि, तदो समऊणादिट्ठिदीणं उक्कस्स-ट्ठिदीदो दव्वट्ठियणयावलंबणे[3] अपुधभूदाणं पुधणिद्देसाणुववत्तीदो ।

अर्थात् हानिवृद्धि प्रमाण (चय) के अस्तित्व माननेमें विरोध आता है । द्वितीय पक्षके माननेपर ज्ञानावरणादि सूत्रोक्त कर्मोंकी तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण स्थिति घटित नहीं होती है, क्योंकि, उस उत्कृष्ट स्थितिसे एक समय कम आदि स्थितियां भी उन कर्मोंमें पाई जाती हैं ?

समाधान — यहां पर उक्त आशंकाका परिहार कहते हैं । वह इस प्रकार है— यहांपर न तो एक समयमें बंधे हुए पुद्गल-परमाणुओंके पृथक् पृथक् ज्ञानावरण-कर्मकी विवक्षा है, क्योंकि, वैसा माननेपर ज्ञानावरणकर्मके अनन्तताका प्रसंग आता है । न यहांपर एक एक निषेकके प्रति 'ज्ञानावरण' ऐसा व्यपदेश (नाम) किया गया है, क्योंकि, वैसा माननेपर ज्ञानावरण कर्मके असंख्येयताका प्रसंग आता है । इसलिए मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, और केवलज्ञानके आवरणसामान्यके मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल-ज्ञानावरणता मानी गई है । अर्थात् यहां मति, श्रुत आदि ज्ञानावरणोंके भेद-प्रभेदोंकी विवक्षा नहीं की गई; किन्तु, मति, श्रुत आदि पांच भेदोंकी सामान्यसे ही विवक्षा की गई है । यदि ऐसा न माना जाय, तो ज्ञानावरणकी प्रकृतियोंके 'पांच' इस संख्याका विरोध आता है । तथा ऐसा माननेपर भी प्रथम पक्षमें कहा गया दोष नहीं आता है, क्योंकि, वैसा माना नहीं गया है । अर्थात् एक समयमें बंधे हुए पांचों ज्ञानावरणीय कर्मोंके समस्त पुद्गल-परमाणुओंकी स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण ही स्वीकार नहीं की गई है । इसी प्रकार द्वितीय पक्षमें कहा गया दोष नहीं आता है, क्योंकि, द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करने पर उस उत्कृष्ट स्थितिसे अपृथग्भूत एक समय कम, दो समय कम आदि स्थितियोंके पृथक् निर्देशकी आवश्यकता नहीं रहती ।

१ दोगुणहाणिपमाणं णिसेयहारो दु होइ तेणं हिदे । इट्ठे पढमणिसेये विसेसमागच्छदे तत्थ ॥ गो. क. ९२८.

२ कप्रतौ 'णत्थि' इति पाठः ।

३ प्रतिषु '-लंबणो' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संपहि दव्वट्ठियणयदेसणाए वाउलिदचित्तस्स पज्जवट्ठियणयसिस्सस्स मदिवाउलं[1]-विणासणट्ठं पज्जवट्ठियणयदेसणा कीरदे—

तिण्णि वाससहस्साणि आबाधा ॥ ५ ॥

ण बाधा अबाधा, अबाधा चेव आबाधा । जम्हि समयपबद्धम्हि तीसं सागरोवमकोडाकोडिट्ठिदीया परमाणुपोग्गला अत्थि, ण तत्थ एगसमयकालट्ठिदीया परमाणुपोग्गला संभवंति, विरोहादो । एवं दो तिण्णि आदिं कादूण जा उक्कस्सेण तिण्णि वाससहस्समेत्तकालट्ठिदिया[2] त्ति परमाणुपोग्गला णत्थि । कुदो ? सहावदो । 'न हि स्वभावाः परपर्यनुयोगार्हाः[3]' । एसा उक्कस्सिया आबाहा[4] । एगसमयपबद्धो तीसं सागरोवमकोडाकोडीट्ठिदिपोग्गलक्खंधेहि अप्पणो असंखेज्जदिभागेहि सहिदो ओकड्डणाए विणा ट्ठिदिक्खएणेत्तियं कालं उदयं णागच्छदि त्ति उत्तं होदि[5] । समऊण-दुसमऊणादि-तीसं सागरोवमकोडाकोडीणं पि एसा आबाधा होदि जाव समऊणाबाधाकंडएणूण-

अब, द्रव्यार्थिकनयकी देशनासे व्याकुलित चित्तवाले, पर्यायार्थिकनयी शिष्यकी बुद्धि-व्याकुलताको दूर करनेके लिए आचार्य पर्यायार्थिकनयकी देशना करते हैं—

पूर्व सूत्रोक्त ज्ञानावरणीयादि कर्मोंका आबाधाकाल तीन हजार वर्ष है ॥ ५ ॥

बाधाके अभावको अबाधा कहते हैं और अबाधा ही आबाधा कहलाती है। जिस समयप्रबद्धमें तीस कोड़ाकोडी सागरोपम स्थितिवाले पुद्गलपरमाणु होते हैं, उस समयप्रबद्धमें एक समयप्रमाण काल-स्थितिवाले पुद्गलपरमाणु रहना संभव नहीं हैं, क्योंकि, वैसा माननेमें विरोध आता है। इसी प्रकार उस उत्कृष्ट स्थितिवाले समय-प्रबद्धमें दो समय, तीन समयको आदि करके तीन हजार वर्ष-प्रमित काल-स्थितिवाले भी पुद्गल परमाणु नहीं हैं, क्योंकि, ऐसा स्वभाव ही है, और 'स्वभाव अन्यके प्रश्न-योग्य नहीं हुआ करते हैं' ऐसा न्याय है। पूर्व सूत्रोक्त कर्मोंकी यह उत्कृष्ट आबाधा है। एक समयप्रबद्ध अपने असंख्यातवें भागप्रमाण तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम स्थितिवाले पुद्गल-स्कंधोंसे सहित होता हुआ अपकर्षणके द्वारा विना स्थिति-क्षयके इतने, अर्थात् तीन हजार वर्ष-प्रमित, काल तक उदयको नहीं प्राप्त होता है, यह अर्थ कहा गया है। एक समय कम तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम, दो समय कम तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम, इत्यादि क्रमसे एक समय-हीन आबाधाकांडकसे कम तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम-प्रमित उत्कृष्ट स्थिति

१ प्रतिषु 'मदिवाउल-' इति पाठः । २ प्रतिषु '-मेत्तकालट्ठिदिया' इति पाठः ।

३ प्रतिषु 'परपर्यनियोगार्हाः' इति पाठः ।

४ उक्कस्सट्ठिदिबंधे सयलाबाहा हु सव्वठिदिरयणा । तक्काले दीसदि तोऽधोऽधो बंधट्ठिदीणं च ॥ आबाधाणं बिदियो तदियो कमसो हि चरमसमयो दु । पढमो बिदियो तदियो कमसो चरिमो णिसेओ दु ॥ गो. क. ९४०-९४१.

५ कम्मसरूवेणागयदव्वं ण य एदि उदयरूवेण । रूवेणुदीरणस्स व आबाहा जाव ताव हवे ॥ गो. क. १५५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्कस्सट्ठिदि त्ति । कधमाबाधाकंडयस्सुप्पत्ती ? उक्कस्साबाधं विरलिय उक्कस्सट्ठिदिं समखंडं करिय दिण्णे रूवं पडि आबाधाकंडयपमाणं पावेदि[1] । तत्थ रूवूणाबाधाकंडय-मेत्तट्ठिदीओ जाओ उक्कस्सट्ठिदीदो जा ओहट्टंति ताव सा चेव उक्कस्सिया आबाधा होदि । एगाबाधाकंडएणूणउक्कस्सट्ठिदिं बंधमाणस्स समऊणतिण्णिवाससहस्साणि आबाधा होदि । एदेण सरूवेण सव्वट्ठिदीणं पि आबाधापरूवणं जाणिय कादव्वं । णवरि दोहिं आबाधाकंडएहिं ऊणियमुक्कस्सट्ठिदिं बंधमाणस्स आबाधा उक्कस्सिया दुसमऊणा होदि । तीहि आबाधाकंडएहि ऊणियमुक्कस्सट्ठिदिं बंधमाणस्स आबाधा उक्कस्सिया

तकके पुद्गलस्कंधोंकी भी यही, अर्थात् तीन हजार वर्षकी, आबाधा होती है ।

शंका — आबाधाकांडककी उत्पत्ति कैसे होती है ?

समाधान — उत्कृष्ट आबाधाकालको विरलन करके उसके ऊपर उत्कृष्ट स्थितिके समान खंड करके एक एक रूपके प्रति देनेपर आबाधाकांडकका प्रमाण प्राप्त होता है ।

उदाहरण — मान लो उत्कृष्ट स्थिति ३० समय; अबाधा ३ समय । तो $\frac{१०}{१}\ \frac{१०}{१}\ \frac{१०}{१}$ अर्थात् $\frac{३०}{३} = १०$ यह आबाधाकांडकका प्रमाण हुआ । और उक्त स्थितिबन्धके भीतर ३ आबाधाके भेद हुए ।

विशेषार्थ — कर्म-स्थितिके जितने भेदोंमें एक प्रमाणवाली आबाधा होती है, उतने स्थितिभेदोंके समुदायको आबाधाकांडक कहते हैं । विवक्षित कर्म-स्थितिमें आबाधाकांडकका प्रमाण जाननेका उपाय यह है कि विवक्षित कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिमें उसीकी उत्कृष्ट आबाधाका भाग देनेपर जो भजनफल आता है, तत्प्रमाण ही उस कर्म-स्थितिमें आबाधाकांडक होता है । यही बात ऊपर विरलन-देयके क्रमसे समझाई गई है । इस प्रकार जितने स्थितिके भेदोंका एक आबाधाकांडक होता है, उतने स्थितिभेदोंकी आबाधा समान होती है । यह कथन नाना समयप्रबद्धोंकी अपेक्षासे है ।

उन कर्मस्थितिके भेदोंमें एक समय, दो समय आदिके क्रमसे जब तक एक समय हीन आबाधाकांडकमात्र तक स्थितियां उत्कृष्ट स्थितिसे कम होती हैं तब तक उन सब स्थितिविकल्पोंकी वही, अर्थात् तीन हजार वर्ष-प्रमित, उत्कृष्ट आबाधा होती है । एक आबाधाकांडकसे हीन उत्कृष्ट स्थितिको बंधनेवाले समयप्रबद्धके एक समय कम तीन हजार वर्ष की आबाधा होती है । इसी प्रकार सभी कर्म-स्थितियोंकी भी आबाधा-सम्बन्धी प्ररूपणा जानकर करना चाहिए । विशेषता केवल यह है कि दो आबाधाकांडकोंसे हीन उत्कृष्ट स्थितिको बांधनेवाले जीवके समयप्रबद्धकी उत्कृष्ट आबाधा दो समय कम होती है । तीन आबाधाकांडकोंसे हीन उत्कृष्ट स्थितिको बांधनेवाले जीवके समयप्रबद्धकी उत्कृष्ट

---

१ जेट्ठाबाहोवट्टियजेट्ठं आबाहकंडयं ॥ गो. क. १४७.

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

तिसमऊणा। चउहि आबाधाकंडएहि ऊणियमुक्कस्सट्ठिदिं बंधमाणस्स आबाधा उक्कस्सिया चदुसमऊणा। एवं णेदव्वं जाव जहण्णट्ठिदि त्ति। सव्वाबाधाकंडएसु वीचारट्ठाणत्तं पत्तेसु समऊणाबाधाकंडयमेत्तट्ठिदीणमवट्ठिदा आबाधा होदि त्ति घेत्तव्वं।

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ[1] ॥ ६ ॥

आबाधाए अवगदाए तदुवरि कम्मणिसेगो[2] होदि त्ति अउत्ते वि जाणिज्जदि,

आबाधा तीन समय कम होती है। चार आबाधाकांडकोंसे हीन उत्कृष्ट स्थितिको बांधनेवाले समयप्रबद्धकी उत्कृष्ट आबाधा चार समय कम होती है। इस प्रकार यह क्रम विवक्षित कर्मकी जघन्य स्थिति तक ले जाना चाहिए। इस प्रकार सर्व आबाधाकांडकोंके वीचारस्थानत्व, अर्थात् स्थितिभेदोंको, प्राप्त होनेपर एक समय कम आबाधाकांडकमात्र स्थितियोंकी आबाधा अवस्थित, अर्थात् एक सी, होती है, यह अर्थ जानना चाहिए।

उदाहरण—मान लो उत्कृष्ट स्थिति ६४ समय और उत्कृष्ट आबाधा १६ समय है। अतएव आबाधाकांडका प्रमाण $\frac{६४}{१६}$ = ४ होगा।

मान लो जघन्य स्थिति ४५ समय है। अतएव स्थितिके भेद ६४ से ४५ तक होंगे जिनकी रचना आबाधाकांडकोंके अनुसार इस प्रकार होगी—

(१)	६४,	६३,	६२,	६१ —	उत्कृष्ट आबाधा	
(२)	६०,	५९,	५८,	५७ —	एक समय कम	,,
(३)	५६,	५५,	५४,	५३ —	दो ,,	,,
(४)	५२,	५१,	५०,	४९ —	तीन ,,	,,
(५)	४८,	४७,	४६,	४५ —	चार ,,	,,

ये पांच आबाधाके भेद हुए। आबाधाकांडक ४ × ५ (आबाधा-भेद) = २० स्थिति-भेद। स्थिति-भेद २० − १ = १९ वीचारस्थान।

इन्हीं वीचारस्थानोंको उत्कृष्ट स्थितिमेंसे घटाने पर जघन्यस्थिति प्राप्त होती है। स्थितिकी क्रमहानि भी इतने ही स्थानोंमें होती है। इस प्रकार 'जेट्ठाबाहोवट्टिय.' (गो. क. १४७) के अनुसार गणितक्रमसे निकले हुए स्थितिके भेदोंको वीचारस्थान समझना चाहिए।

पूर्वोक्त ज्ञानावरणादि कर्मोंका आबाधाकालसे हीन कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेककाल होता है ॥ ६ ॥

शंका—आबाधाके जान लेनेपर उसके ऊपर अर्थात् आबाधाकालके पश्चात् कर्म-

१ आबाहूणियकम्मट्ठिदीणिसेगो दु सत्तकम्माणं। गो. क. १६०, ९१९.

२ निषेचनं निषेकः कम्मपरमाणुक्खंधणिक्खेवो णिसेगो णाम। धवला, अ. प्र. प. ९४०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तदो णेदं सुत्तं वत्तव्वमिदि ? ण, पवयणे अणुमाणस्स पमाणस्स पमाणत्ताभावादो। आगमो हि णाम केवलणाणपुरस्सरो पाएण अणिंदियत्थविसओ अचिंतियसहाओ जुत्तिगोयरादीदो। तदो ण तत्थ लिंगबलेण किंचि वोत्तुं सक्किज्जदि। तम्हा सुत्तमिदमाढवेदव्वं चेव। अधवा आबाधादो उवरि णिसेयरचणा होदि त्ति जदि वि जुत्तीए णव्वदि, तो वि किमुवरिमसव्वट्ठिदीसु परमाणुपोग्गलरचणा समाणा होदि, आहो असमाणा त्ति ण णव्वदे। तदो पदेसरयणासरूवपदंसणट्ठं वा आढवेदव्वमिदं सुत्तं। संपहि उक्कस्सट्ठिदीए पदेसरचणक्कमं परूवेमो। तं जहा– समयपबद्धस्स सव्वपदेसा अभवसिद्धिएहि अणंतगुणा, सिद्धाणमणंतभागमेत्ता जदि वि होंति, तो वि संदिट्ठीए तिसट्ठिसदमेत्ता त्ति ते घेत्तव्वा ६३००[1]। एत्थ णाणागुणहाणिसलागा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता होंति। तं जहा– पढमणिसेओ अवट्ठिदहाणीए जेत्तियमद्धाणं गंतूण अद्धं होदि तमद्धाणं गुणहाणि त्ति उच्चदि। तस्स एगा सलागा णिक्खिविदव्वा। पुणो तत्तियं चेव अद्धाण-

निषेक होता है, यह बात नहीं कहनेपर भी जानी जाती है, अतएव यह सूत्र नहीं कहना चाहिए ?

समाधान – नहीं, क्योंकि, प्रवचन (परमागम) में अनुमान प्रमाणके प्रमाणता नहीं मानी गई है। जो केवलज्ञानपूर्वक उत्पन्न हुआ है, प्रायः अतीन्द्रिय पदार्थोंको विषय करनेवाला है, अचिन्त्य-स्वभावी है और युक्तिके विषयसे परे है, उसका नाम आगम है। अतएव उस आगममें लिंग अर्थात् अनुमानके बलसे कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। इसलिए यह सूत्र बनाना ही चाहिए। अथवा, आबाधासे ऊपर निषेक-रचना होती है, यह बात यद्यपि युक्तिसे जानी जाती है, तथापि क्या ऊपरकी सर्व स्थितियोंमें पुद्गल-परमाणुओंकी रचना समान होती है, अथवा असमान होती है, यह बात नहीं जानी जाती है। अतएव प्रदेश-रचनाके स्वरूपको बतलानेके लिए यह सूत्र बनाना ही चाहिए।

अब उत्कृष्ट स्थितिकी प्रदेश-रचनाके क्रमको कहते हैं। वह इस प्रकार है— यद्यपि एक समयप्रबद्धके सर्व प्रदेश अभव्यसिद्धिक जीवोंसे अनन्तगुणित और सिद्ध जीवोंके अनन्तवें भागमात्र होते हैं, तथापि संदृष्टिमें उन्हें तिरेसठ सौ (६३००) संख्या-प्रमाण ग्रहण करना चाहिए। यहां, अर्थात् एक समयप्रबद्धमें, नानागुणहानिशलाकाएं पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र होती हैं। उनका स्पष्टीकरण यह है—प्रथम निषेक अवस्थित हानिसे जितनी दूर जाकर आधा होता है, उस अध्वानको 'गुणहानि' कहते हैं। उस गुणहानिकी एक शलाका पृथक् स्थापन करना चाहिए। पुनः उतने ही अध्वान-

१ दव्वं ठिदिगुणहाणिणद्धाणं दलसला णिसेयछिदी। अण्णोण्णगुणसला वि य जाणेज्जो सव्वठिदिरयणे ॥ तेवट्ठि च सयाइं अडदाला अट्ठ छक्क सोलसयं। चउसट्ठिं च विजाणे दव्वादीणं च संदिट्ठी ॥ गो. क. ९२३-९२४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुवरि गंतूण पक्खेवो पदणिसेयस्स चदुभागो होदि। एदमद्धाणं विदिया दुगुणहाणि त्ति विदिया सलागा णिक्खिविदव्वा। एवं णेयव्वं जाव कम्मट्ठिदिचरिमगुणहाणि त्ति। एदासिं सलागाणं सव्वसमासो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो मोहणीयणाणागुणहाणि-सलागाणं तिण्णिसत्तभागमेत्ता त्ति उत्तं होदि। मोहणीयणाणागुणहाणिसलागा पुण परमगुरूवदेसेण पलिदोवमवग्गसलागद्धछेदेणूणपलिदोवमद्धछेदणयमेत्ता[1]। णाणागुणहाणि-सलागाहि कम्मट्ठिदिम्हि भागे हिदे गुणहाणी (आगच्छदि। सा) सव्वकम्माणं समाणा[2]। कुदो? भज्जमाणाणुसारिभागहारादो। सव्वमेदं दव्वं पढमणिसेयपमाणेण कीरमाणे दिवड्ढगुणहाणिमेत्ता पढमणिसेया होंति। कुदो? पढमगुणहाणिम्हि पदिददव्वादो विदियादिगुणहाणीसु पदिददव्वस्स दुभाग-चदुब्भागत्तादिदंसणादो। तं पि कुदो?

प्रमाण ऊपर जाकर प्रक्षेप पद-निषेकके, अर्थात् प्रथम गुणहानिसम्बन्धी प्रथम निषेकके, चतुर्भागप्रमाण हो जाता है। इस अध्वानको दूसरी दुगुणहानि कहते हैं, अतएव उसकी दूसरी शलाका पृथक् स्थापन करना चाहिए। इस प्रकार यह क्रम कर्मस्थितिकी अन्तिम गुणहानि प्राप्त होने तक ले जाना चाहिए। इन शलाकाओंका समस्त जोड़ पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र होता है, जो कि मोहनीयकर्मकी नानागुणहानिशलाकाओंके तीन बटे सात $\frac{3}{7}$) भागप्रमाण होता है, यह अर्थ कहा गया है। मोहनीयकर्मकी नानागुण-हानिशलाकाएं तो परम गुरुके उपदेशानुसार पल्योपमकी वर्गशलाकाओंके अर्धच्छेदोंसे कम पल्योपमके अर्धच्छेदोंके प्रमाण होती हैं।

उदाहरण — मान लो, पल्योपम = ६५५३६ है। इसके अनुसार पल्योपमकी वर्ग-शलाका ४, पल्योपमके अर्धच्छेद १६, और पल्योपमकी वर्गशलाकाओंके अर्धच्छेद २ होंगे। अतः मोहनीयकर्मकी नानागुणहानिशलाकाएं १६ − २ = १४ होंगी। और ज्ञानावरणादि कर्मोंकी नानागुणहानिशलाकाएं १४ × $\frac{3}{7}$ = ६ होंगी।

नानागुणहानि-शलाकाओंके द्वारा कर्म-स्थितिमें भाग देनेपर गुणहानिका प्रमाण आता है। वह गुणहानि सर्व कर्मोंकी समान होती है, क्योंकि भज्यमान राशिके अनुसार भागहार होता है। यह सर्व द्रव्य प्रथम निषेकके प्रमाणसे करनेपर डेढ़ गुण-हानि-प्रमित प्रथम निषेकप्रमाण होता है। इसका कारण यह है कि प्रथम गुणहानिमें पतित द्रव्यसे द्वितीयादि गुणहानियोंमें पतित द्रव्य द्विभाग, चतुर्भाग आदि क्रमसे देखा जाता है। और इसका भी कारण यह है कि एक एक, गुणहानिके प्रति आधे,

---

१ प्रतिषु '-णयता' इति पाठः।

२ सव्वासिं पयडीणं णिसेयहारो य एयगुणहाणी। सरिसा हवंति ××× ॥ गो. क. ९३२.

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

गुणहाणिं पडि अद्धद्धकमेण गोवुच्छविसेसाणं गमणुवलंभा[1]। तं हि अवट्ठिदेण णिसेग-भागहारेण दोगुणहाणिपमाणेण[2] विहज्जमाणपढमणिसेयाणमद्धद्धुवलंभादो णव्वदे। एवमागददेसूणदिवड्ढ[3]गुणहाणीए संदिट्ठीए पणुवीसरूवूणसोलहसदाणं अट्ठावीससदभाग-मेत्ताए $\frac{१५७५}{१२८}$ समयपबद्धे भागे (हिदे) पढमणिसेओ आगच्छदि। एवं सव्वणिसेयाणं भागहारो जाणिय उप्पादेदव्वो।

आधेके आधे, इत्यादि क्रमसे गोपुच्छा-विशेषोंका गमन पाया जाता है। यह बात भी दोगुणहानिप्रमाण अवस्थित निषेकभागहारसे विभज्यमान प्रथम निषेकोंके उत्तरोत्तर आधे आधे प्रमाण पाये जानेसे जानी जाती है। इस प्रकार आये हुए देशोन डेढ़ गुण-हानिके प्रमाणसे, जो कि संदृष्टिमें पच्चीससे कम सोलह सौके एक सौ अट्ठाईसवें भागमात्र $\frac{१५७५}{१२८}$ होता है, उससे समयप्रबद्धमें भाग देनेपर (पांच सौ बारह ५१२ संख्या-प्रमाण) प्रथम निषेक आता है।

इस प्रकार सर्व निषेकोंके भागहार जान करके उत्पन्न करना चाहिए।

उदाहरण—द्रव्य ६३००; भागहार $\frac{१५७५}{१२८}$। ६३०० × $\frac{१२८}{१५७५}$ = ५१२. यह प्रथम-निषेकका प्रमाण है। डेढ़ गुणहाणिका प्रमाण यथार्थतः ८ + ४ = १२ होता है। पर संदृष्टिमें जो भागहार बतलाया है वह डेढ़ गुणहानिसे अधिक होता है– $\frac{१५७५}{१२८}$ = १२ $\frac{३९}{१२८}$ तो भी इसे डेढ़ गुणहानिसे कुछ अधिक (देसाहिय) न कहकर कुछ कम (देसूण) कहा है। आगे भी यही बात पायी जाती है। किन्तु अभिप्राय स्पष्ट है।

विशेषार्थ— आगे सूत्र नं. ३२ की टीकामें उद्धृत गाथाके द्वारा द्वितीयादि निषेकोंके भागहार उत्पन्न करनेकी रीति यह बतलाई गयी है कि प्रथम निषेकके भागहारमें इच्छित निषेकका भाग और प्रथम निषेकका गुणा करनेसे इच्छित निषेकका भागहार निकल आता है। इस नियमके अनुसार प्रथम गुणहानिके द्वितीयादि सात निषेकोंके भागहार निम्न प्रकार हुए— $\overset{२}{\frac{१५७५}{१२८} \times \frac{५१२}{४८०}}$; $\overset{३}{\frac{१५७५}{१२८} \times \frac{५१२}{४४८}}$; $\overset{४}{\frac{१५७५}{१२८} \times \frac{५१२}{४१६}}$; $\overset{५}{\frac{१५७५}{१२८} \times \frac{५१२}{३८४}}$; $\overset{६}{\frac{१५७५}{१२८} \times \frac{५१२}{३५२}}$; $\overset{७}{\frac{१५७५}{१२८} \times \frac{५१२}{३२०}}$; $\overset{८}{\frac{१५७५}{१२८} \times \frac{५१२}{२८८}}$.

किन्तु इस नियमके अनुसार अभीष्ट निषेकका भागहार उत्पन्न करनेके लिए उस निषेकका प्रमाण पहलेसे ही ज्ञात होना चाहिये।

१ आबाहं बोलाविय पढमणिसेगम्मि देय बहुगं तु। तत्तो विसेसहीणं विदियस्सादिमणिसेओ त्ति॥ बिदिये बिदियणिसेगे हाणी पुव्विल्लहाणिअद्धं तु। एवं गुणहाणिं पडि हाणी अद्धद्धयं होदि॥ गो. क. १६१-१६२. तथा ९२०-९२१.

२ दोगुणहाणिपमाणं णिसेयहारो दु होइ॥ गो. क. ९२८. ३ प्रतिषु '-उवड्ढ-' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एत्थ णिसेगाणं संदिट्ठी ५१२ | ४८० | ४४८ | ४१६ | ३८४ | ३५२ | ३२० | २८८ | २५६ | २४० | २२४ | २०८ | १९२ | १७६ | १६० | १४४ | १२८ | १२० | ११२ | १०४ | ९६ | ८८ | ८० | ७२ | ६४ | ६० | ५६ | ५२ | ४८ | ४४ | ४० | ३६ | ३२ | ३० | २८ | २६ | २४ | २२ | २० | १८ | १६ | १५ | १४ | १३ | १२ | ११ | १० | ९ । एसा संदिट्ठी आबाहूणकम्मट्ठिदीए । सयलकम्मट्ठिदीए किण्ण होदि ? ण, आबाहब्भंतरे पदेसणिसेयाभावादो । ण च एवं घेप्पमाणे चरिमगुणहाणिअद्धाणं तीहि वाससहस्सेहि ऊणयं होदि, णाणागुणहाणिसलागाहि आबाहूणकम्मट्ठिदीए ओवट्टिदाए एयगुणहाणिआयामपमाणुवलंभादो । ण च णिसेगट्ठिदीए कम्मट्ठिदिएयत्तमसिद्धं[1],

यहांपर सर्व निषेकोंकी संदृष्टि इस प्रकार है—

गुणहानि आयाम	प्रथम गुणहानि	द्वितीय गुण.	तृतीय गुण.	चतुर्थ गुण.	पंचम गुण.	षष्ठ गुण.
१	५१२	२५६	१२८	६४	३२	१६
२	४८०	२४०	१२०	६०	३०	१५
३	४४८	२२४	११२	५६	२८	१४
४	४१६	२०८	१०४	५२	२६	१३
५	३८४	१९२	९६	४८	२४	१२
६	३५२	१७६	८८	४४	२२	११
७	३२०	१६०	८०	४०	२०	१०
८	२८८	१४४	७२	३६	१८	९
सर्व द्रव्य	३२०० +	१६०० +	८०० +	४०० +	२०० +	१०० = ६३००

यह संदृष्टि आबाधाकालसे हीन कर्मस्थितिकी है ।

शंका—यह संदृष्टि समस्त कर्मस्थितिकी क्यों नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, आबाधाकालके भीतर प्रदेशोंकी निषेक-रचनाका अभाव होता है । तथा ऐसा माननेपर अन्तिम गुणहानिका अध्वान तीन हजार वर्षोंसे कम भी नहीं होता है, क्योंकि, नाना-गुणहानि-शलाकाओंसे आबाधा-रहित कर्म-स्थितिके अपवर्तित करनेपर एक गुणहानिके आयाम, अर्थात् कालका प्रमाण प्राप्त होता है ।

विशेषार्थ—यहां टीकाकार द्वारा दी हुई निषेकोंकी संदृष्टि निम्न कल्पनाओंके आधारसे की गई है— उत्कृष्टस्थिति = ६४ समय; आबाधा = १६ समय; निषेक-स्थिति ६४ − १६ = ४८ समय; समयप्रबद्धमें पुद्गलपरमाणुओंकी संख्या ६३०० ।

तथा, निषेक-स्थितिका कर्म-स्थितिसे एकत्व असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि,

१ प्रतिषु ' कम्मट्ठिदीएतमसिद्धं ' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णिसेयाहियारे णिसेगट्ठिदीए चेव कम्मट्ठिदि त्ति ववहारदंसणादो, कम्मपदेसा चिट्ठंति एत्थ इदि ट्ठिदिसद्दउप्पत्तिअवलंबमाणादो वा। तेण णाणागुणहाणिसलागाहि कम्मट्ठिदीए ओवट्टिदाए एगगुणहाणिमद्धाणं आगच्छदि त्ति जं पुव्वाइरियवक्खाणं तण्ण विरुज्झदे। संपुण्णाए कम्मट्ठिदीए णाणागुणहाणिसलागाहि ओवट्टिदाए एगगुणहाणिअद्धाणमागच्छदि त्ति किण्ण घेप्पदे ? ण, तिण्हं वाससहस्साणं णिसेगट्ठिदीसु असंताणं फलभावेण मज्झिम-रासिम्हि पवेसाणुववत्तीदो। तम्हा णिसेगट्ठिदिं चेव कम्मट्ठिदि त्ति घेत्तूण एयगुणहाणि-अद्धाणं साहेयव्वं।

निषेकके अधिकारमें निषेक-स्थितिमें ही कर्म-स्थितिका व्यवहार देखा जाता है। अथवा, 'कर्म-प्रदेश जिसमें ठहरते हैं' इस प्रकार स्थिति शब्दकी व्युत्पत्तिके अवलम्बन करनेसे भी निषेक-स्थितिको कर्म-स्थिति कहना बन जाता है। अतएव 'नाना-गुणहानि-शलाकाओंसे कर्म-स्थितिके अपवर्त्तित करनेपर एक गुणहानिका अध्वान (आयाम) आता है' इस प्रकार जो पूर्वाचार्योंका व्याख्यान है, वह भी विरोधको नहीं प्राप्त होता है।

शंका—'सम्पूर्ण कर्म-स्थितिको नाना-गुणहानिशलाकाओंसे अपवर्त्तित करने-पर एक गुणहानिका आयाम आता है' ऐसा क्यों नहीं मान लेते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, फल देनेकी अपेक्षा निषेक-स्थितियोंमें अविद्यमान तीन हजार वर्षोंका मध्यम राशिमें, अर्थात् भज्यमान राशिमें, प्रवेश नहीं हो सकता। इसलिए निषेक-स्थितिको ही कर्म-स्थिति मानकर एक गुणहानिका आयाम सिद्ध करना चाहिए।

विशेषार्थ—यहां सूत्रकारने निषेकोंके स्थिति-भेदोंको उत्पन्न करनेके पहले निषेक-स्थितिका निर्णय किया है कि उत्कृष्ट स्थितिमेंसे आबाधाकालको घटा देनेपर निषेक-स्थिति शेष रह जाती है। इस निषेक-कालमें धवलाकारने गुणहानियों आदिके द्वारा निषेक-स्थितियोंका निर्णय किया है। यहां प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि दूसरे आचार्योंने तो कर्म-स्थिति और निषेक-स्थितिका भेद न करके कर्म-स्थितिमें ही नाना-गुणहानियोंका भाग देकर गुणहानि-आयाम उत्पन्न करनेका उपदेश दिया है; अतएव प्रस्तुत उपदेशका उक्त व्याख्यानसे विरोध उत्पन्न होता है ? इसका समाधान धवला-कारने इस प्रकार किया है कि पूर्व आचार्योंका भी वहां कर्मस्थितिसे अभिप्राय इसी निषेक-कालसे रहा है, क्योंकि, निषेक अधिकारमें निषेकस्थितिके लिए ही कर्मस्थिति शब्दका व्यवहार देखा जाता है। आबाधाकालको पृथक् किये विना कर्मस्थितिमें नाना-गुणहानियोंका भाग तो दिया ही नहीं जा सकता, क्योंकि, आबाधाकालमें तो निषेक-रचना होती ही नहीं है, और इसलिए उस कालको शामिल करनेकी कोई सार्थकता नहीं। इस प्रकार पूर्वाचार्योंके उपदेशसे भी कोई विरोध नहीं आता और निषेक-रचनाके गणितमें भी कोई बाधा उत्पन्न नहीं होती।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एत्थ णिसेयक्कमो उच्चदे । तं जहा– णाणागुणहाणिसलागगच्छमेगादिदुगुण-संकलणमाणिय तीए समयपबद्धे भागे हिदे जं लद्धं तेण अंतादिधणे गुणिदे पढमादिगुण-हाणिदव्वं होदि । तम्हि एगगुणहाणीए तीहि चउब्भागेहि एगरूवस्स चउब्भागेण-ब्भहिएहि भागे हिदे पढमणिसेओ होदि । तम्हि दोगुणहाणीहि भागे हिदे गोउच्छ-

---

अब यहां निषेक-क्रमको कहते हैं । वह इस प्रकार है— नानागुणहानि-शलाकाओंको गच्छ मानकर तत्प्रमाण एकको आदि लेकर दुगनी दुगनी संख्या लो और उसका योग करलो । इस संकलनका जो फल आवे, उससे समयप्रबद्धमें भाग देनेपर जो लब्ध होगा उससे पूर्वोक्त दुगुण-क्रमके अंतिम आदिधनमें गुणा करनेसे क्रमशः प्रथम, द्वितीय आदि गुणहानियों का द्रव्य प्राप्त होगा ।

उदाहरण—समयप्रबद्ध = ६३००; नानागुणहानिशलाका = ६; अतएव गुणहानि-शलाका-गच्छका एकादि-द्विगुण-संकलन हुआ— १ २ ३ ४ ५ ६

१ + २ + ४ + ८ + १६ + ३२ = ६३.

$\frac{६३००}{६३}$ = १०० । अतः ६ गुणहानियोंका द्रव्य इस प्रकार होगा—

१०० × ३२ = ३२००	प्रथम गुणहानिका द्रव्य.	
१०० × १६ = १६००	द्वितीय	,,
१०० × ८ = ८००	तृतीय	,,
१०० × ४ = ४००	चतुर्थ	,,
१०० × २ = २००	पंचम	,,
१०० × १ = १००	षष्ठ	,,
६३००	समस्त द्रव्यका प्रमाण.	

इन गुणहानियोंके द्रव्योंमेंसे किसी भी एक गुणहानिसंबंधी द्रव्यमें गुणहानि-प्रमाण (आयाम) के त्रिचतुर्थांशमें एक रूपका चतुर्थभाग ($\frac{१}{४}$) और मिलाकर उसका भाग देने पर विवक्षित गुणहानिका प्रथम निषेक निकल आवेगा ।

उदाहरण— गुणहानि आयाम = ८.

८ × $\frac{३}{४}$ + $\frac{१}{४}$ = ६$\frac{१}{४}$ = $\frac{२५}{४}$ इसका पूर्वोक्त गुणहानि द्रव्योंमें भाग देनेसे निकलेगा—

प्रथम गुणहानिका	= ३२०० × $\frac{४}{२५}$ = ५१२	प्रथम निषेक
द्वितीय ,,	= १६०० × $\frac{४}{२५}$ = २५६	,,
तृतीय ,,	= ८०० × $\frac{४}{२५}$ = १२८	,,
चतुर्थ ,,	= ४०० × $\frac{४}{२५}$ = ६४	,,
पंचम ,,	= २०० × $\frac{४}{२५}$ = ३२	,,
षष्ठ ,,	= १०० × $\frac{४}{२५}$ = १६	,,

प्रत्येक गुणहानिके प्रथम निषेकमें दो गुणहानियोंका भाग देनेसे उस गुणहानिका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विसेसो आगच्छदि[1]। पुणो पढमणिसेगं रूऊणगुणहाणिमेत्तट्ठाणेसु ठविय एगादि-एगुत्तरकमेण गोवुच्छविसेसेसु परिवाडीए अवणिदेसु बिदियादिणिसेगा होंति।

गोपुच्छोंका विशेष (चय-प्रमाण) आता है।

उदाहरण— दोगुणहानि (निषेकहार) = ८ × २ = १६। अतएव प्रत्येक गुणहानिका विशेष (चय) इस प्रकार होगा —

प्रथम गुणहानिका	५१२/१६ = ३२	विशेष या चयका प्रमाण.
द्वितीय ,,	२५६/१६ = १६	,,
तृतीय ,,	१२८/१६ = ८	,,
चतुर्थ ,,	६४/१६ = ४	,,
पंचम ,,	३२/१६ = २	,,
षष्ठ ,,	१६/१६ = १	,,

विशेषार्थ—गौकी पूंछ मूलमें विस्तीर्ण और क्रमशः नीचेकी ओर संक्षिप्त होती है। अतएव जहां किसी संख्या-समुदायमें संख्याएं उत्तरोत्तर घटती हुई पाई जाती हैं तहां उन संख्याओंको उपमानका उपमेयमें उपचारसे गोपुच्छ कहते हैं। उन संख्याओंके बीच जो व्यवस्थित हानिप्रमाण होता है उसे विशेष या चय कहते हैं।

पुनः प्रथम निषेकको एक कम गुणहानिप्रमाण स्थानोंमें रखकर उनमेंसे एकादि एकोत्तर क्रमसे गोपुच्छोंके विशेषोंको यथाक्रमसे घटानेपर द्वितीय, तृतीय आदि निषेक प्राप्त होते हैं।

उदाहरण—गुणहानि = ८। ८-१ = ७। अतएव गुणहानियोंके द्वितीयादि निषेक इस प्रकार होंगे—

गुणहानि	२	३	४	५	६	७	८
	५१२	५१२	५१२	५१२	५१२	५१२	५१२
	३२	६४	९६	१२८	१६०	१९२	२२४
१	४८०	४४८	४१६	३८४	३५२	३२०	२८८
	२५६	२५६	२५६	२५६	२५६	२५६	२५६
	१६	३२	४८	६४	८०	९६	११२
२	२४०	२२४	२०८	१९२	१७६	१६०	१४४
	१२८	१२८	१२८	१२८	१२८	१२८	१२८
	८	१६	२४	३२	४०	४८	५६
३	१२०	११२	१०४	९६	८८	८०	७२
	६४	६४	६४	६४	३४	६४	६४
	४	८	१२	१६	२०	२४	२८
४	६०	५६	५२	४८	४४	४०	३६

१ दोगुणहाणिपमाणं णिसेयहारो दु होइ तेण हिदे। इट्ठे पढमणिसेये विसेसमागच्छदे तत्थ॥ गो. क. ९२८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्रोपयोगिगणितसूत्रम्—

प्रक्षेपकसंक्षेपेण विभक्ते यद्धनं समुपलब्धम् ।
प्रक्षेपास्तेन गुणाः प्रक्षेपसमानि खंडानि ॥ १ ॥

एवं रूवूण-दुरूऊणादिकम्मट्ठिदीणं णिसेगरचणा अव्वामोहेण[1] कायव्वा ।

सादावेदणीय-इत्थिवेद-मणुसगदि-मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्विणा-माणमुक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो पण्णारस सागरोवमकोडाकोडीओ[2] ॥७॥

कुदो ? पारिणामियादो । सेसं सुगमं ।

	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३२
	२	४	६	८	१०	१२	१४
५	३०	२८	२६	२४	२२	२०	१८
	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६
	१	२	३	४	५	६	७
६	१५	१४	१३	१२	११	१०	९

इस विषयका उपयोगी गणितसूत्र यह है—

यदि किसी राशिके विवक्षित राशिप्रमाण खंड करना हो, तो उन खंड-प्रमाणों (प्रक्षेपकों) को जोड़ लो और उससे राशिमें भाग दे दो। इस भागसे जो धन लब्ध आवे, उससे उन प्रक्षेपोंका गुणा करनेसे क्रमशः प्रक्षेपोंके प्रमाण खंड प्राप्त हो जावेंगे ॥ १ ॥

उदाहरण—राशि ६३०० के हमें ६ ऐसे खंड चाहिये, जो क्रमशः उत्तरोत्तर दुगुने हों। अतएव हमारे प्रक्षेपोंका योग हुआ १ + २ + ४ + ८ + १६ + ३२ = ६३. $\frac{६३००}{६३}$ = १०० इस संख्यामें क्रमशः प्रक्षेपोंका गुणा करनेसे हमें १००, २००, ४००, ८००, १६००, ३२०० इस प्रकार उत्तरोत्तर द्विगुण द्विगुणप्रमाण ६ खंड मिल जावेंगे, जिनका समस्त योग ६३०० ही होगा। यह नियम किसी भी राशिके किसी भी प्रमाण कितने ही खंड करनेके लिये उपयोगी होगा।

इसी प्रकार एक समय कम, दो समय कम आदि कर्म-स्थितियोंकी भी निषेक-रचना विना किसी व्यामोहके कर लेना चाहिये।

सातावेदनीय, स्त्रीवेद, मनुष्यगति और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म, इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागरोपम है ॥ ७ ॥

क्योंकि, यह स्थितिबन्ध पारिणामिक (स्वाभाविक) है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

१ प्रतिषु ' अद्धामोहेण ' इति पाठः ।

२ सादित्थीमणुदुगे तदद्धं तु । गो. क. १२८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पण्णारस वाससदाणि आबाधा ॥ ८ ॥

पण्णारससागरोवमकोडाकोडीमेत्तट्ठिदिसमयपबद्धम्हि कम्मपदेसाणं मज्झे सुट्ठु जदि जहण्णट्ठिदीओ कम्मपदेसा होज्ज तो वि[1] समयाहियपण्णारसवाससदमेत्तट्ठिदीओ होज्ज, णो हेट्ठा, तत्थ तहाविहपरिणामपदेसाणमसंभवादो। तेरासियकमेण पण्णारसवास-सदमेत्तआबाधाए आगमणं उच्चदे– तीसं सागरोवमकोडाकोडीमेत्तकम्मट्ठिदीए जदि आबाधा तिण्णि वाससहस्साणि मेत्ताणि लब्भदि, तो पण्णारससागरोवमकोडाकोडिमेत्त-ट्ठिदीए किं लभामो त्ति फलेण इच्छं गुणिय पमाणेणोवट्टिदे पण्णारसवाससदमेत्ता आबाधा होदि।

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ॥ ९ ॥

सुगममेदं।

मिच्छत्तस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो सत्तरि सागरोवमकोडा-कोडीओ[2] ॥ १० ॥

उक्त सातावेदनीय आदि चारों कर्म-प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका आबाधाकाल पन्द्रह सौ वर्ष है ॥ ८ ॥

पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण स्थितिवाले समयप्रबद्धमें कर्मप्रदेशोंके भीतर यदि अच्छी तरह जघन्य स्थितिवाले कर्म-प्रदेश होवें, तो भी एक समय अधिक पन्द्रह सौ वर्षप्रमाण स्थितिवाले कर्म-प्रदेश ही होंगे, इससे नीचेकी स्थितिके नहीं होंगे; क्योंकि, उन कर्म-प्रकृतियोंमें उस प्रकारके परिमाणवाले प्रदेशोंका होना असंभव है। अब त्रैराशिक क्रमसे पन्द्रह सौ वर्षप्रमाण आबाधाके लानेकी विधि कहते हैं— यदि तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण कर्म-स्थितिकी आबाधा तीन हजार वर्षप्रमाण प्राप्त होती है, तो पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण कर्म-स्थितिकी आबाधा कितनी प्राप्त होगी, इस प्रकार फलराशिसे इच्छाराशिको गुणित करके प्रमाणराशिसे अपवर्तित करनेपर पन्द्रह सौ वर्षप्रमाण आबाधा प्राप्त होती है। $\frac{१५ \times ३०००}{३०} = १५००$ वर्ष।

उक्त कर्मोंके आबाधाकालसे हीन कर्मस्थितिप्रमाण उन कर्मोंका कर्म-निषेक होता है ॥ ९ ॥

यह सूत्र सुगम है।

मिथ्यात्वकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम है ॥ १० ॥

---

१ प्रतिषु 'सो वि' इति पाठः।

२ सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥ त. सू. ८, १५, सत्तरि दंसणमोहे। गो. क. १२८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुदो ? अदीवअप्पसत्थत्तादो । एत्थ गुणहाणिपमाणं णाणावरणीयगुणहाणिसमाणं, जहाणायं भज्ज-भागहारवड्ढीणमुवलंभादो । णाणागुणहाणिसलागा पुण पलिदोवमवग्गसलागद्धछेदणेणूणपलिदोवमद्धछेदणयमेत्ता । एदाओ णाणागुणहाणिसलागाओ सिद्धाओ कादूण एदाहिंतो सव्वकम्माणं णाणागुणहाणिसलागाओ तेरासियकमेण उप्पादेदव्वाओ ।

सत्तवाससहस्साणि आबाधा ॥ ११ ॥

सत्तवाससहस्सेहि मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिम्हि भागे हिदे आबाधाकंडयमागच्छदि । एदं च सव्वकम्माणं सरिसं[1], जहाणायं भज्ज-भागहाराणं वड्ढि-हाणिदंसणादो ।

क्योंकि, यह मिथ्यात्वकर्म अत्यन्त अप्रशस्त है । यहापर गुणहानिका प्रमाण ज्ञानावरणीयकर्मकी गुणहानिके समान ही है, क्योंकि, भाज्य और भागहार दोनोंमें अनुरूप वृद्धि पायी जाती है । केवल नानागुणहानिशलाकाएं पल्योपमकी वर्गशलाकाओंके अर्धच्छेदोंसे कम पल्योपमके अर्धच्छेद-प्रमाण होती हैं । इन नानागुणहानिशलाकाओंको सिद्ध मानकर इनके द्वारा सर्व कर्मोंकी नाना गुणहानिशलाकाएं त्रैराशिकक्रमसे उत्पन्न कर लेना चाहिए ।

उदाहरण— मान लो पल्योपम = ६५५३६. अतएव पल्योपमकी वर्गशलाका = ४; पल्योपमके अर्धच्छेद = १६; पल्योपमकी वर्गशलाकाओंके अर्धच्छेद = २. अतः मिथ्यात्वकर्मकी नानागुणहानिशलाकाओंका प्रमाण होगा— १६ – २ = १४.

इस प्रमाणको लेकर अन्य कर्मोंकी नानागुणहानिशलाकाएं त्रैराशिकक्रमसे इस प्रकार निकाली जा सकती हैं—

७० को. को. सा. स्थितिवाले मिथ्यात्वकर्मकी नानागुणहानिशलाकाएं १४ होती हैं, तो ३० को. को. सा. स्थितिवाले ज्ञानावरणीयकर्मकी नानागुणहानिशलाकाएं कितनी होंगी— $\frac{३० \times १४}{७०}$ = ६.

उसी प्रकार १५ को. को. सा. स्थितिवाले सातावेदनीय आदि कर्मोंकी नानागुणहानि-वर्गशलाकाएं— $\frac{१५ \times १४}{७०}$ = ३, तथा ४० को. को. सा. स्थितिवाले कषायोंकी— $\frac{४० \times १४}{७०}$ = ८ होंगी । इत्यादि.

मिथ्यात्वकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका आबाधाकाल सात हजार वर्ष है ॥ ११ ॥

सात हजार वर्षोंसे मिथ्यात्व कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिमें भाग देनेपर आबाधाकांडकका प्रमाण आता है । यह आबाधाकांडक सर्व कर्मोंका सदृश है, क्योंकि, भाज्य और भागहारोंके यथान्याय अर्थात् अनुरूप वृद्धि और हानि देखी जाती है ।

१ प्रतिषु ' सरीर ' इति पाठः ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

उक्कस्सट्ठिदीदो जाव समऊणाबाधाकंडयं ऊणं होदि ताव सा चेव उक्कस्साबाधा। आबाधाकंडएणूणउक्कस्सट्ठिदीए पुण समऊणा सत्तवाससहस्साणि आबाधा होदि। एवमेसा चेव आबाधा अवट्ठिदा होदूण गच्छदि जाव अवरेगं समऊणाबाधाकंडयमाणं जादं ति। एवं हेट्ठा वि जाणिदूण वत्तव्वं।

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ॥ १२ ॥

सुगममेदं।

सोलसण्हं कसायाणं उक्कस्सगो ट्ठिदिबंधो चत्तालीसं सागरोवमकोडाकोडीओ[1] ॥ १३ ॥

विशेषार्थ — पृष्ठ १४९ पर उत्कृष्ट स्थितिमें उत्कृष्ट आबाधाका भाग देकर आबाधाकांडक निकालनेकी विधि उदाहरण देकर बतला आये हैं। चूंकि उत्कृष्ट स्थिति और उत्कृष्ट आबाधाका अनुपात एक कोड़ाकोड़ी सागरकी स्थिति पर सौ वर्ष की आबाधा निश्चित है, अतएव जिस प्रमाणमें उत्कृष्ट स्थिति बढ़ेगी उसीके अनुरूप उसका आबाधाकाल भी बढ़ेगा और फलतः भजनफल अर्थात् आबाधाकांडकका प्रमाण वही रहेगा।

उदाहरण— उत्कृष्ट स्थिति ३० समय और आबाधा काल ३ समय कल्पित करके आबाधाकांडक $\frac{३०}{३}$ = १० आता है। उसी प्रकार ७० समयकी उत्कृष्ट स्थिति और तदनुरूप ७ समयकी आबाधा कल्पित करके भी आबाधाकांडकका प्रमाण $\frac{७०}{७}$ = १० ही आवेगा।

उत्कृष्ट स्थितिमेंसे (एक समय कम, दो समय कम, आदिके क्रमसे) जब तक एक समय-हीन आबाधाकांडक कम होता है तब तक वही उत्कृष्ट आबाधा होती है। किन्तु एक आबाधाकांडकसे हीन उत्कृष्ट स्थितिकी आबाधा एक समय कम सात हजार वर्ष होती है। इस प्रकार यही आबाधा अवस्थित होकर तब तक जाती है, जब तक कि एक और दूसरा एक समय कम आबाधाकांडकका प्रमाण प्राप्त होता है। इसी प्रकार नीचे भी जान करके आबाधाका प्रमाण कहना चाहिए।

मिथ्यात्वकर्मके आबाधाकालसे हीन कर्म-स्थितिप्रमाण उसका कर्म-निषेक होता है ॥ १२ ॥

यह सूत्र सुगम है।

अनन्तानुबन्धी आदि सोलह कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध चालीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम है ॥ १३ ॥

---

१ चरित्तमोहे य चत्तालं ॥ गो. क. १२८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुदो ? चारित्तमोहणीयत्तादो । मोहणीयत्तं पडि सामण्णत्तादो मिच्छत्तट्ठिदि-समाणा कसायट्ठिदी किण्ण संजादा ? ण, सम्मत्त-चारित्ताणं भेदेण भेदमुवगदकम्माणं पि समाणत्तविरोहादो ।

चत्तारि वाससहस्साणि आबाधा ॥ १४ ॥

तं जहा– सत्तरिसागरोवमकोडाकोडिमेत्तट्ठिदीए जदि सत्तवाससहस्समेत्ता आबाहा लब्भदि तो चालीससागरोवमकोडाकोडीमेत्तट्ठिदीए किं लभदि त्ति फलेण इच्छं गुणिय पमाणेण भागे हिदे चत्तारि वाससहस्साणि आबाधा लब्भदि ।

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ॥ १५ ॥

सुगममेदं ।

पुरिसवेद-हस्स-रदि-देवगदि-समचउरससंठाण-वज्जरिसहसंघडण-देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी-पसत्थविहायगदि-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-

---

क्योंकि, ये सोलहों कषाय चारित्रमोहनीय अर्थात् सम्यक्चारित्र गुणको घात करनेवाले हैं ।

शंका— मोहनीयत्वकी अपेक्षा समान होनेसे मिथ्यात्वकर्मकी स्थितिके समान ही कषायोंकी स्थिति क्यों नहीं हुई ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सम्यक्त्व और चारित्रके भेदसे भेदको प्राप्त हुए कर्मोंके भी समानता होनेका विरोध है ।

अनन्तानुबन्धी आदि सोलहों कषायोंका उत्कृष्ट आबाधाकाल चार हजार वर्ष है ॥ १४ ॥

वह इस प्रकार है-- सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण कर्म-स्थितिकी यदि सात हजार वर्षप्रमाण आबाधा प्राप्त होती है, तो चालीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण कर्म-स्थितिकी कितनी आबाधा प्राप्त होगी, इस प्रकार फलराशिके द्वारा इच्छाराशिको गुणित करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर चार हजार वर्षप्रमाण आबाधा प्राप्त होती है। $\frac{४० \times ७०००}{७०} = ४०००$ वर्ष.

सोलहों कषायोंके आबाधाकालसे हीन कर्म-स्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता है ॥ १५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

पुरुषवेद, हास्य, रति, देवगति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभनाराचसंहनन, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशः-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदेज्ज-जसकित्ति-उच्चागोदाणं उक्कस्सगो ट्ठिदिबंधो दससागरोवम-कोडाकोडीओ[1] ॥ १६ ॥

कुदो ? पयडिविसेसादो । एत्थ णाणागुणहाणिसलागाणं गुणहाणीए च[2] पमाणं तेरासिएण आणेदूण सोदाराणं पबोहो कायव्वो ।

दसवाससदाणि आबाधा ॥ १७ ॥

सुगममेदं ।

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ॥ १८ ॥

एदं पि सुगमं ।

णउंसयवेद-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा णिरयगदी तिरिक्खगदी एइंदिय-पंचिंदियजादि-ओरालिय-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-हुंड-

कीर्त्ति और उच्चगोत्र, इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध दश कोड़ाकोड़ी सागरोपम है ॥ १६ ॥

क्योंकि, प्रकृतिविशेष होनेसे उनका उक्त स्थितिबन्ध होता है । यहांपर नानागुणहानिशलाकाओंका और गुणहानिका प्रमाण त्रैराशिकविधिसे लाकर श्रोताओंको समझाना चाहिए ।

उदाहरण—७० को. को. सा. स्थितिवाले मिथ्यात्व कर्मकी नानागुणहानिशलाकाएं यदि १४ होती हैं, तो १० को. को. सा. स्थितिवाले पुरुषवेद आदि कर्मोंकी ना. गु. हा. शलाकाएं कितनी होंगी— $\frac{१० \times १४}{७०} = २$. अब हम यदि यहां उत्कृष्ट स्थितिको १६ मान लें तो एक गुणहानिका प्रमाण $\frac{१६}{२} = ८$ आजाता है ।

पुरुषवेद आदि उक्त कर्मप्रकृतियोंकी आबाधा दश सौ वर्ष है ॥ १७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त प्रकृतियोंके आबाधाकालसे हीन कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता है ॥ १८ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, नरकगति, तिर्यग्गति, एकेन्द्रियजाति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर,

१ हस्सरादिउच्चपुरिसे थिरछक्के सत्थगमणदेवदुगे । तस्सद्धं । गो. क. १३२.

२ प्रतिषु ' गुणहाणि एव ' इति पाठः ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

संठाण-ओरालिय-वेउव्वियसरीरअंगोवंग—असंपत्तसेवट्टसंघडण--वण्ण--गंध-रस-फास-णिरयगदि-तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-आदाव-उज्जोव-अप्पसत्थविहायगदि-तस-थावर-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-अथिर-असुभ-दुब्भग-दुस्सर[1]-अणादेज्ज-अजस-कित्ति-णिमिण-णीचागोदाणं उक्कस्सगो ट्ठिदिबंधो वीसं सागरोवम-कोडाकोडीओ[2] ॥ १९ ॥

कुदो ? पयडिविसेसादो । ण च सव्वाइं कज्जाइं[3] एयंतेण बज्झत्थमवेक्खिय चेव उप्पज्जंति, सालिबीजादो जवंकुरस्स वि उप्पत्तिप्पसंगा । ण च तारिसाइं दव्वाइं तिसु वि कालेसु कहिं पि अत्थि, जेसिं बलेण सालिबीजस्स जवंकुरुप्पायणसत्ती होज्ज, अणवत्थापसंगादो । तम्हा कम्हि वि अंतरंगकारणादो चेव कज्जुप्पत्ती होदि त्ति णिच्छओ कायव्वो । गुणहाणीए असंखेज्जपलिदोवमपढमवग्गमूलमेत्ताए सव्वकम्माणं

हुंडसंस्थान, औदारिकशरीर-अंगोपांग, वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग, असंप्राप्तासृपाटिका-संहनन, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्त्ति, निर्माण, और नीचगोत्र, इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध वीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम है ॥ १९ ॥

क्योंकि, प्रकृतिविशेष होनेसे इन सूत्रोक्त प्रकृतियोंका यह स्थितिबन्ध होता है। सभी कार्य एकान्तसे बाह्य अर्थकी अपेक्षा करके ही नहीं उत्पन्न होते हैं, अन्यथा शालि-धान्यके बीजसे जौके अंकुरकी भी उत्पत्तिका प्रसंग प्राप्त होगा। किन्तु उस प्रकारके द्रव्य तीनों ही कालोंमें किसी भी क्षेत्रमें नहीं हैं कि जिनके बलसे शालि-धान्यके बीजके जौके अंकुरको उत्पन्न करनेकी शक्ति हो सके। यदि ऐसा होने लगेगा तो अनवस्था दोष प्राप्त होगा। इसलिए कहीं पर भी अन्तरंग कारणसे ही कार्यकी उत्पत्ति होती है, ऐसा निश्चय करना चाहिए।

पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलमात्र एवं सर्व कर्मोंकी समान प्रमाणवाली

१ प्रतिषु 'अथिरअसुभगदुस्सर' इति पाठः

२ विंशतिर्नामगोत्रयोः ॥ त. सू. ८, १६. अरदीसोगे संढे तिरिक्खभयणिरयतेजुरालदुगे। वेगुव्वादावदुगे णीचे तसवण्णअगुरुतिचउक्के ॥ इगिपंचिंदियथावरणिमिणासग्गमणअथिरछक्काणं। वीसं कोडाकोडीसागरणामाणमुक्कस्सं ॥ गो. क. १३०-१३१.

३ प्रतिषु 'पंचाइं' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाणाए अप्पिदुक्कस्सट्ठिदिम्हि भागे हिदे णाणादुगुणहाणिसलागा होंति । णाणादुगुणहाणिसलागाहि अप्पिदकम्मट्ठिदिम्हि भागे हिदे गुणहाणी होदि । रूवूण-दुरूऊणादिकम्मट्ठिदीसु अवसाणगुणहाणी विकला होदि । तत्थ णादूग णाणागुणहाणिसलागाओ वत्तव्वाओ ।

वेवाससहस्साणि आबाधा ॥ २० ॥

एत्थ तेरासियं काऊग आबाधा आबाधाकंडयाणि च आणेदव्वाणि । आबाधावड्ढि हाणिट्ठाणं अवट्ठिदाबाधाए ट्ठिदीणमद्धाणं च पुव्वं व परूवेदव्वं ।

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ॥ २१ ॥

....

गुणहानिका विवक्षित उत्कृष्ट स्थितिमें भाग देनेपर नानादुगुणहानिशलाकाएं उत्पन्न होती हैं । नानादुगुणहानिशलाकाओंके द्वारा विवक्षित कर्मस्थितिमें भाग देनेपर गुणहानिका प्रमाण आता है । एक समय कम, दो समय कम आदि कर्मस्थितियोंमें अन्तिम गुणहानि विकल अर्थात् उत्तरोत्तर हीन होती है । यहांपर जानकर नानागुणहानिशलाकाएं कहना चाहिए, अर्थात् कर्मनिषेकोंका विवरण करना चाहिए ।

उदाहरण—मान लो यहां उत्कृष्टस्थिति = ४८; आबाधाकाल = १६, और गुणहानि आयाम = ८ है । तो नानागुणहानियोंका प्रमाण होगा – $\frac{४८ - १६}{८} = \frac{३२}{८} = ४$. अब यदि कर्मस्थिति १ कम हुई तो नानागुणहानियां हुईं $\frac{३१}{८}$ अर्थात् तीन गुणहानियोंका आयाम तो ८ ही रहेगा, किन्तु अन्तिम गुणहानिका आयाम ७ होगा । यदि कर्मस्थिति २ कम हुई तो अन्तिम गुणहानि-आयाम ६ रह जायगा । इसी क्रमसे जितनी स्थिति कम होगी उसी प्रमाणसे अन्तिम गुणहानि हीन होती जायगी ।

नपुंसकवेदादि पूर्व सूत्रोक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट कर्म-स्थितिका आबाधाकाल दो हजार वर्ष है ॥ २० ॥

यहांपर त्रैराशिक करके आबाधा और आबाधाकांडकोंको ले आना चाहिए । आबाधाके वृद्धि और हानिसम्बन्धी स्थान, तथा अवस्थित आबाधाके होनेपर स्थितियोंके आयामका प्रमाण पूर्वके समान प्ररूपण करना चाहिए । (देखो सूत्र ५ का विशेषार्थ) ।

नपुंसकवेदादि पूर्व सूत्रोक्त प्रकृतियोंके आबाधाकालसे हीन कर्म-स्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता है ॥ २१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एत्थ वेण्णिवाससहस्सूणकम्मट्ठिदिगुणहाणीसु पक्खेवसंक्खेवत्थसुत्तादो पुव्वं व पदेसरयणं कादव्वं । सेसं सुगमं ।

णिरयाउ-देवाउअस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो तेत्तीसं सागरोवमाणि[2] ॥ २२ ॥

एसा देव-णेरइयाणं आउअस्स उक्कस्सणिसेयट्ठिदी । कुदो ? देव-णेरइएसु सम्माइट्ठि-मिच्छाइट्ठीणं गुणट्ठिदीए सुत्ते तेत्तीससागरोवमपमाणणिद्देसादो । किमट्ठमेत्थ णिरय-देवाउआणमुक्कस्सट्ठिदिपरूवणाए आबाहाए सह उक्कस्सणिसेयट्ठिदी ण उत्ता ? ण, एत्थ णिसेयट्ठिदिमणवेक्खिय आबाधापउत्ती होदि त्ति परूवणफलत्ता । जधा णाणावरणादीणमाबाधा[4] णिसेयट्ठिदिपरतंता, एवमाउअस्स आबाधा णिसेयट्ठिदी अण्णोण्णायत्ताओ ण होंति त्ति जाणावणट्ठं णिसेयट्ठिदी चेव परूविदा । पुव्वकोडितिभागमादिं

यहांपर दो हजार वर्षप्रमाण आबाधाकालसे हीन कर्मस्थितिकी गुणहानियोंमें 'प्रक्षेपकसंक्षेपेण' इत्यादि करणसूत्रके अनुसार पूर्वके समान प्रदेश-रचना करना चाहिए। शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

नारकायु और देवायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तेतीस सागरोपम है ॥ २२ ॥

यह देव और नारकियोंके आयुकी उत्कृष्ट निषेक-स्थिति है, क्योंकि, देव और नारकियोंमें यथाक्रमसे सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंकी गुणस्थानसम्बन्धी स्थितिका सूत्रमें अर्थात् कालानुयोगद्वारसूत्रमें तेतीस सागरोपमप्रमाण निर्देश किया गया है ।

शंका—यहांपर नारकायु और देवायुकी उत्कृष्ट स्थिति-प्ररूपणामें आबाधाके साथ उत्कृष्ट निषेक-स्थिति किसलिए नहीं कही ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, यहांपर अर्थात् आयुकर्मकी स्थितिमें निषेकस्थितिकी अपेक्षा न करके आबाधाकी प्रवृत्ति होती है, इस बातका प्ररूपण करना ही उत्कृष्ट स्थिति-प्ररूपणामें आबाधाके साथ उत्कृष्ट निषेकस्थिति न कहनेका फल है । जिस प्रकार ज्ञानावरणादि कर्मोंकी आबाधा निषेक-स्थितिके परतंत्र है, उस प्रकार आयुकर्मकी आबाधा और निषेक-स्थिति परस्पर एक दूसरेके आधीन नहीं हैं, यह बात बतलानेके लिए यहांपर आयुकर्मकी निषेक-स्थिति ही प्ररूपण की गई है । इसका यह अर्थ होता है कि पूर्वकोटी वर्षके त्रिभाग अर्थात् तीसरे भागको आदि करके असंक्षेपाद्धा अर्थात्

---

१ प्रतिषु '-वाससहस्साण-' इति पाठः ।

२ त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ॥ त. सू. ८, १७. सुरणिरयाऊणोघं ॥ गो. क. १३३.

३ अप्रतौ '-देवाण्ण' आप्रतौ 'देवाऊण' इति पाठः ।

४ प्रतिषु '-णाणावरणाणमाबाधा' इति पाठः ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

कादूण जाव असंखेपद्धा[1] त्ति एदेसु आबाधावियप्पेसु देव-णेरइयाणं आउअस्स उक्कस्स-णिसेयट्ठिदी संभवदि त्ति उत्तं होदि[2]।

पुव्वकोडितिभागो आबाधा ॥ २३ ॥

पुव्वकोडितिभागमादिं कादूण जाव असंखेपद्धा त्ति। जदि एदे आबाधावियप्पा आउअस्स सव्वणिसेयट्ठिदीसु होंति, तो पुव्वकोडितिभागो चेव उक्कस्सणिसेयट्ठिदीए किमट्ठं उच्चदे ? ण, उक्कस्साबाधाए विणा उक्कस्सणिसेयट्ठिदीए चेव उक्कस्सट्ठिदी

जिससे छोटा (संक्षिप्त) कोई काल न हो, ऐसे आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक जितने आबाधाकालके विकल्प होते हैं, उनमें देव और नारकियोंके आयुकी उत्कृष्ट निषेक-स्थिति संभव है।

विशेषार्थ— देवायुका बंध मनुष्य या तिर्यंच गतिमें ही हो सकता है, नरक या देवगतिमें नहीं। और आगामी आयुका बंध शीघ्रसे शीघ्र भुज्यमान आयुके $\frac{2}{3}$ भाग व्यतीत होनेपर तथा अधिकसे अधिक मृत्युके पूर्व होता है। कर्मभूमिज मनुष्य या तिर्यंचकी उत्कृष्ट आयु एक कोटिपूर्व वर्ष की है। अतएव देवायुका बंध भुज्यमान आयुके $\frac{1}{3}$ भाग शेष रहनेपर हो सकता है और यही काल देवायुके स्थितिबंधका उत्कृष्ट आबाधा-काल होगा। मरते समय ही आयुका बंध होनेसे असंक्षेप-अद्धारूप जघन्य आबाधाकाल प्राप्त होता है। इन दोनों मर्यादाओंके बीच देवायुकी आबाधाके मध्यम विकल्प संभव हैं। भोगभूमिज प्राणियोंके आगामी आयुका बंध आयुके केवल ६ मास तथा अन्यमतानुसार ९ मास, शेष रहनेपर होता है।

नारकायु और देवायुका उत्कृष्ट आबाधाकाल पूर्वकोटिवर्षका त्रिभाग (तीसरा भाग) है ॥ २३ ॥

पूर्वकोटिके त्रिभागसे लेकर असंक्षेपाद्धा पर्यंत आबाधाका प्रमाण होता है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए।

शंका—यदि पूर्वकोटी वर्षके त्रिभागको आदि करके असंक्षेपाद्धा काल तक संभव सब आबाधाके भेद आयुकर्मकी सर्व निषेक-स्थितियोंमें होते हैं, तो पूर्वकोटी वर्षके त्रिभागप्रमाण ही यह उत्कृष्ट आबाधाकाल उत्कृष्ट निषेक-स्थितिमें किसलिए कहते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उत्कृष्ट आबाधाकालके विना उत्कृष्ट निषेक-स्थिति-संबंधी उत्कृष्ट कर्म-स्थिति प्राप्त नहीं होती है, यह बात बतलानेके लिए यह उत्कृष्ट आबाधाकाल कहा गया है। अर्थात् यद्यपि आयुकर्मके संबंधमें उत्कृष्ट निषेकस्थिति और

१ जहण्णओ आउअबंधकालो जहण्णविस्समणकालपुरस्सरो असंखेपद्धा णाम। धवला. अ. प्र. प. १३४१. न विद्यते अस्मादन्यः संक्षेपः असंक्षेपः, स चासौ अद्धा च असंक्षेपाद्धा आवल्यसंख्येयभागमात्रत्वात्। गो. क. जी. प्र. टी. १५८.

२ पुव्वाणं कोडितिभागादासंखेप अद्ध वोत्ति हवे। आउस्स य आबाहा ण ट्ठिदिपडिभागमाउस्स ॥ गो. क. १५८.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

ण होदि त्ति जाणावणट्ठमुक्कस्साबाधाउत्तीदो ।

आबाधा ॥ २४ ॥

पुव्वुत्ताबाधाकालब्भंतरे णिसेयट्ठिदीए बाधा णत्थि । जधा णाणावरणादीणं आबाधापरूवयसुत्तेण बाधाभावो सिद्धो, एवमेत्थ वि सिज्झदि, किमट्ठं विदियवारमाबाधा उच्चदे ? ण, जधा णाणावरणादिसमयपबद्धाणं बंधावलियवदिक्कंताणं ओकड्डण-परपयडि-संकमेहि बाधा अत्थि, तधा आउअस्स ओकड्डण-परपयडिसंकमादीहि बाधाभावपरूवणट्ठं विदियवारमाबाधाणिद्देसादो ।

कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ[1] ॥ २५ ॥

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो त्ति किमट्ठमेत्थ ण परूविदं ?

उत्कृष्ट आबाधाकालका अविनाभावी संबंध नहीं है, जैसा कि अन्य कर्मोंका है । तथापि आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति तो तभी जानी जा सकती है जब उत्कृष्ट आबाधाके साथ उत्कृष्ट निषेकस्थितिका योग किया जाय । इसीलिये इन दोनों उत्कृष्ट स्थितियोंका मेल करना आवश्यक है ।

आबाधाकालमें नारकायु और देवायुकी निषेक-स्थिति बाधा-रहित है ॥ २४ ॥

पूर्व सूत्रोक्त आबाधा-कालके भीतर विवक्षित किसी भी आयुकर्मकी निषेक-स्थितिमें बाधा नहीं होती है ।

शंका — जिस प्रकार ज्ञानावरणादि कर्मोंकी आबाधाका प्ररूपण करनेवाले सूत्रसे बाधाका अभाव सिद्ध है, उसी प्रकार यहांपर भी बाधाका अभाव सिद्ध होता है, फिर दूसरी बार 'आबाधा' यह सूत्र किसलिए कहा है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, जिस प्रकार बंधावलि-व्यतिक्रान्त अर्थात् जिनका बंध होनेपर एक आवलीप्रमाण काल व्यतीत हो गया है, ऐसे ज्ञानावरणादि कर्मोंके समयप्रबद्धोंके अपकर्षण और पर प्रकृति-संक्रमणके द्वारा बाधा होती है, उस प्रकार आयुकर्मके आबाधाकालके पूर्ण होनेतक अपकर्षण और पर-प्रकृति-संक्रमण आदिके द्वारा बाधाका अभाव है, अर्थात् आगामी भवसम्बन्धी आयुकर्मकी निषेकस्थितिमें कोई व्याघात नहीं होता है, इस बातके प्ररूपण करनेके लिए दूसरी बार 'आबाधा' इस सूत्रका निर्देश किया है ।

नारकायु और देवायुकी कर्म-स्थितिप्रमाण उन कर्मोंका कर्म-निषेक होता है ॥ २५ ॥

शंका — यहांपर 'आबाधा कालसे रहित कर्मस्थिति ही उन कर्मोंकी निषेक-स्थिति है' इस प्रकार प्ररूपण किसलिए नहीं किया ?

१ आउस्स णिसेगो पुण सगट्ठिदी होदि णियमेण । गो. क. १६०.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

ण, विदियवारमाबाधाणिद्देसेण आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो होदि त्ति सिद्धीदो। कुदो ? अण्णहा विदियवारआबाधाणिद्देसाणुववत्तीदो।

तिरिक्खाउ-मणुसाउअस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो तिण्णि पलिदोवमाणि[1] ॥ २६ ॥

एसा वि णिसेयट्ठिदी चेव णिद्दिट्ठा। कुदो ? तिरिक्ख-मणुसेसु तिण्णि पलिदोवममेत्ताए ओरालियसरीरउक्कस्सट्ठिदीए उवलंभादो। किमट्ठमाबाधाए सह णिसेगुक्कस्सट्ठिदी ण परूविदा ? ण, णिसेगाबाधाओ अण्णोण्णायत्ताओ ण होंति त्ति जाणावणट्ठं तधा णिद्देसादो। एदस्स भावो— उक्कस्साबाधाए जहण्णणिसेयट्ठिदिमादिं कादूण जावुक्कस्सणिसेयट्ठिदी ताव बंधदि। एवं समऊण-दुसमऊणुक्कस्साबाधादीणं पि परूवेदव्वं जाव असंखेपद्धा त्ति[2]। पुव्वकोडितिभागादो आबाधा अहिया किण्ण होदि ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, दूसरी वार 'आबाधा' इस सूत्रके निर्देश-द्वारा 'आबाधाकालसे रहित कर्म-स्थिति ही उन कर्मोंकी निषेक-स्थिति होती है,' यह बात सिद्ध हो जाती है। और यदि वैसा न माना जाय, तो दूसरी वार 'आबाधा' इस सूत्रके निर्देशकी उपपत्ति बन नहीं सकती है।

तिर्यगायु और मनुष्यायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तीन पल्योपम है ॥ २६ ॥

यह भी निषेक-स्थिति ही निर्दिष्ट की गई है, क्योंकि, तिर्यंच और मनुष्योंमें तीन पल्योपममात्र औदारिकशरीरकी उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है।

शंका— आबाधाके साथ निषेकोंकी उत्कृष्ट स्थिति किसलिए नहीं निरूपण की गई ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, यहां निषेककाल और आबाधाकाल परस्पर एक दूसरेके आधीन नहीं होते हैं, यह जतलानेके लिए उस प्रकारसे निर्देश किया गया है, अर्थात् आबाधाके साथ निषेकोंकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं बतलाई गई है।

इस उपर्युक्त कथनका भाव यह है— उत्कृष्ट आबाधाके साथ जघन्य निषेक-स्थितिको आदि करके उत्कृष्ट निषेक-स्थिति तक जितनी निषेक-स्थितियां हैं, वे सब बंधती हैं। इसी प्रकार एक समय कम, दो समय कम (इत्यादि रूपसे उत्तरोत्तर एक एक समय कम करते हुए) असंक्षेपाद्धा काल तक उत्कृष्ट आबाधा आदिकी प्ररूपणा करनी चाहिए।

शंका—आयुकर्मकी आबाधा पूर्वकोटीके त्रिभागसे अधिक क्यों नहीं होती है ?

१ ××× णरतिरियाऊण तिण्णि पल्लाणि। उक्कस्सट्ठिदिबंधो। गो. क. १३३.

२ पुव्वाणं कोडितिभागादासंखेपद्ध वो त्ति हवे। आउस्स य आबाहा ण ट्ठिदिपडिभागमाउस्स ॥ गो. क. १५८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उच्चदे– ण ताव देव-णेरइएसु बहुसागरोवमाउट्ठिदिएसु पुव्वकोडितिभागादो अधिया आबाधा अत्थि, तेसिं छम्मासावसेसे भुंजमाणाउए असंखेपद्धापज्जवसाणे संते परभवियमाउअं बंधमाणाणं तदसंभवा। ण तिरिक्ख-मणुसेसु वि तदो अहिया आबाधा अत्थि, तत्थ पुव्वकोडीदो अहियभवट्ठिदीए अभावा। असंखेज्जवस्साऊ तिरिक्ख-मणुसा अत्थि त्ति चे ण, तेसिं देव-णेरइयाणं व भुंजमाणाउए छम्मासादो अहिए संते परभविआउअस्स बंधाभावा[1]। संखेज्जवस्साउआ वि तिरिक्ख-मणुसा कदलीघादेण वा अधट्ठिदिगलणेण[2] वा जाव भुंजावभुत्ताउट्ठिदीए अद्धपमाणेण तदो हीणपमाणेण वा भुंजमाणाउअं ण कदं ताव ण परभवियमाउवं बंधंति। कुदो ? पारिणामियादो। तम्हा उक्कस्साबाधा पुव्व-

समाधान—कहते हैं— न तो अनेक सागरोपमोंकी आयुस्थितिवाले देव और नारकियोंमें पूर्वकोटिके त्रिभागसे अधिक आबाधा होती है, क्योंकि उनकी भुज्यमान आयुके (अधिकसे अधिक) छह मास अवशेष रहनेपर (तथा कमसे कम) असंक्षेपाद्धाकालके अवशेष रहनेपर आगामी भवसम्बन्धी आयुको बांधनेवाले उन देव और नारकियोंके पूर्वकोटिके त्रिभागसे अधिक आबाधाका होना असंभव है। न तिर्यंच और मनुष्योंमें भी इससे अधिक आबाधा संभव है, क्योंकि, उनमें पूर्वकोटीसे अधिक भवस्थितिका अभाव है।

शंका—(भोगभूमियोंमें) असंख्यात वर्षकी आयुवाले तिर्यंच और मनुष्य होते हैं, (फिर उनके पूर्वकोटीके त्रिभागसे अधिक आबाधाका होना संभव क्यों नहीं है)?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उनके देव और नारकियोंके समान भुज्यमान आयुके छह माससे अधिक होनेपर पर-भवसम्बन्धी आयुके बंधका अभाव है, (अतएव पूर्वकोटिके त्रिभागसे अधिक आबाधाका होना संभव नहीं है)।

तथा, संख्यात वर्षकी आयुवाले भी तिर्यंच और मनुष्य कदलीघातसे, अथवा अधःस्थितिके गलनसे, अर्थात् विना किसी व्याघातके समय समय प्रति एक एक निषेकके खिरनेसे, जब तक भुज्य और अवभुक्त आयुस्थितिमें भुक्त आयु-स्थितिके अर्धप्रमाणसे, अथवा उससे हीन प्रमाणसे भुज्यमान आयुको नहीं कर देते हैं, तबतक पर-भवसम्बन्धी आयुको नहीं बांधते हैं, क्योंकि, यह नियम पारिणामिक है। इसलिए आयुकर्मकी उत्कृष्ट

१ बंधंति देव-नारय असंखतिरिनर छमाससेसाऊ। परभविआउं सेसा निरुवक्कम तिभागसेसाऊ॥ सोवक्कमाउआ पुण सेसतिभागे अहव नवमभागे। सत्तावीसइमे वा अंतमुहुत्तंतिमे वावि॥ बृहत्संग्रहणीसूत्रम् ३२७-३२८,

२ अ-कप्रत्योः 'अत्थट्ठिदीगलणेण' आप्रतौ 'अत्थि चि ठिदीगलणेण' इति पाठः। मप्रतौ 'अद्धट्ठिदी गलणेण' इति पाठः। जं कम्मं जिस्से ट्ठिदीए णिसित्तमणोकड्डिदमणुक्कड्डिदं तिस्से चेव ट्ठिदीए उदए दिस्सइ तमधाणिसेयट्ठिदिपत्तयं। ××× जहाणिसेयसरूवेणावट्ठिदस्स ट्ठिदिक्खएणोदयमागच्छंतस्स णाणासमय-पबद्धसंबद्धपदेसपुंजस्स अत्थाणुगओ पयदववएसो त्ति भणिदं होइ। जयध. अ. प. ५२९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोडितिभागादो अहिया णत्थि त्ति घेत्तव्वं ।

पुव्वकोडितिभागो आबाधा ॥ २७ ॥

अणेगाबाधाणं संभवे संते वि एत्थ पुव्वकोडितिभागो चेव आबाधा होदि, अण्णहा उक्कस्सट्ठिदीए अणुववत्तीदो इदि जाणावणट्ठं एदस्स सुत्तस्स अवयारो । सेसं सुगमं ।

आबाधा ॥ २८ ॥

पुव्वकोडितिभागो आबाधा त्ति एदेणेव सुत्तेण पुव्वकोडितिभागम्हि बाधाभावे अवगदे संते पुणो आबाधा इदि किमट्ठं उच्चदे ? ण, जधा णाणावरणादीणमाबाधाए अब्भंतरे ओकड्डण-उक्कड्डण-परपयडिसंकमेहि णिसेयाणं बाधा होदि, तधा आउअस्स बाधा णत्थि त्ति जाणावणट्ठं पुणो आबाधापरूवणादो ।

कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ॥ २९ ॥

सुगममेदं ।

आबाधा पूर्वकोटीके त्रिभागसे अधिक नहीं होती है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए ।

तिर्यगायु और मनुष्यायुका उत्कृष्ट आबाधाकाल पूर्वकोटीका त्रिभाग है ॥२७॥

अनेक आबाधा-विकल्पोंके संभव होनेपर भी यहां पूर्वकोटी-त्रिभागमात्र ही आबाधा होती है यह कथन किया गया है, क्योंकि, अन्यथा उत्कृष्ट स्थिति बन नहीं सकती है, इस बातके बतलानेके लिए इस सूत्रका अवतार हुआ है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

आबाधाकालमें तिर्यगायु और मनुष्यायुकी निषेक-स्थिति बाधा-रहित है ॥२८॥

शंका—‘ तिर्यगायु और मनुष्यायुकी उत्कृष्ट आबाधा पूर्वकोटीका त्रिभाग है, ’ इस उपर्युक्त सूत्रसे ही पूर्वकोटीके त्रिभागमें बाधाका अभाव जान लेनेपर पुनः ‘ आबाधा ’ यह सूत्र किसलिए कहते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, जिस प्रकार ज्ञानावरणादि कर्मोंकी आबाधाके भीतर अपकर्षण, उत्कर्षण और पर-प्रकृतिसंक्रमणके द्वारा निषेकोंके बाधा होती है, उस प्रकार आयुकर्मकी बाधा नहीं होती है, यह जतलानेके लिए पूर्वसूत्रद्वारा आबाधाके कहे जानेपर भी पुनः आबाधाका प्ररूपण किया गया है ।

तिर्यगायु और मनुष्यायुकी कर्म-स्थितिप्रमाण ही उनका कर्म-निषेक होता है ॥ २९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-वामणसंठाण-खीलियसंघडण-सुहुम-अपज्जत्त-साधारणणामाणं उक्कस्सगो ट्ठिदिबंधो अट्ठारससागरोवमकोडाकोडीओ[1] ॥ ३० ॥

एदमुक्कस्सट्ठिदिं गुणहाणीए सव्वकम्माणं पमाणेण समाणाए भागे हिदे एत्थतणणाणागुणहाणिसलागाओ उप्पज्जंति। एदाहि णाणागुणहाणिसलागाहिं कम्मट्ठिदिम्हि भागे हिदे एया दुगुणवड्ढी आगच्छदि। सेसं सुगमं।

अट्ठारसवाससदाणि आबाधा ॥ ३१ ॥

कुदो ? सागरोवमकोडाकोडीए वाससदमाबाधा होदि, तं तेरासियकमेणागदअट्ठारसेहि गुणिदे अट्ठारसवाससदमेत्तआबाधुप्पत्तीदो। एदाए कम्मट्ठिदिम्हि भागे हिदे आबाधाकंडओ होदि।

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ॥ ३२ ॥

द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, वामनसंस्थान, कीलकसंहनन, सूक्ष्मनाम, अपर्याप्तनाम और साधारणनाम, इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अट्ठारह कोड़ाकोड़ी सागरोपम है ॥ ३० ॥

इस सूत्रोक्त उत्कृष्ट स्थितिमें सर्व-कर्मोंके प्रमाणसे समान गुणहानिके द्वारा भाग देनेपर यहांपरकी, अर्थात् उक्त कर्म-स्थितिकी, नानागुणहानिशलाकाएं उत्पन्न हो जाती हैं। इन नानागुणहानिशलाकाओंके द्वारा कर्म-स्थितिमें भाग देनेपर एक दुगुणवृद्धि अर्थात् गुणहानि-आयामका प्रमाण आ जाता है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

पूर्व सूत्र-कथित द्वीन्द्रियजाति आदि प्रकृतियोंका उत्कृष्ट आबाधाकाल अट्ठारह सौ वर्ष है ॥ ३१ ॥

क्योंकि, एक कोड़ाकोड़ी सागरोपमकी आबाधा सौ वर्ष होती है। उसे त्रैराशिक-क्रमसे प्राप्त अट्ठारह रूपोंसे गुणित करनेपर अट्ठारह सौ वर्षप्रमाण आबाधाकालकी उत्पत्ति होती है। इस आबाधाके द्वारा कर्म-स्थितिमें भाग देनेपर आबाधाकांडकका प्रमाण उत्पन्न होता है।

उक्त कर्मोंके आबाधाकालसे हीन कर्मस्थितिप्रमाण उन कर्मोंका कर्म-निषेक होता है ॥ ३२ ॥

१ अट्ठारसकोडकोडी वियलाणं सुहुमतिण्हं च। गो. क. १२९.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

एत्थ दिवड्ढगुणहाणीए[1] किंचूणाए समयपबद्धम्हि भागे हिदे पढमणिसेओ होदि । विदियणिसेयभागहारो पुव्वभागहारादो सादिरेओ होदि । एवं गुणहाणिअब्भंतर-सव्वणिसेयाणं भागहारा साहेयव्वा । एत्थुवउज्जंती गाहा —

इच्छिदणिसेयभत्तो पढमणिसेयस्स भागहारो जो[2] ।
पढमणिसेयेण गुणो तहिं तहिं होइ अवहारो ॥ २ ॥

एदीए गाहाए इच्छिदणिसेगाणं भागहारो आणेदव्वो । विदियगुणहाणि-पढमणिसेयस्स भागहारो किंचूणतिण्णिगुणहाणिमेत्तो । कुदो ? पढमगुणहाणि-पढमणिसेयादो विदियगुणहाणिपढमणिसेयस्स अद्धत्तादो । एवमुवरिमगुणहाणिं पडि

यहांपर, अर्थात् उक्त निषेक-स्थितिमें, कुछ कम डेढ़ गुणहानिसे समयप्रबद्धमें भाग देनेपर प्रथम निषेकका प्रमाण होता है । दूसरे निषेकका भागहार पूर्व निषेकके भागहारसे सातिरेक होता है । इस प्रकार विवक्षित गुणहानिके भीतर सर्व निषेकोंके भागहार सिद्ध करना चाहिए । इस विषयमें यह उपयोगी गाथा है—

प्रथम निषेकका जो भागहार हो उसमें इच्छित निषेकका भाग देने तथा प्रथम निषेकसे गुणा करनेपर भिन्न भिन्न निषेकोंका भागहार उत्पन्न होता है ॥ २ ॥

इस गाथाके द्वारा इच्छित निषेकोंका भागहार ले आना चाहिए ।

उदाहरण— द्रव्य = ६३००; प्रथम निषेक = ५१२; प्रथम निषेकका भागहार = $\frac{१५७५}{१२८}$ (देखो सूत्र नं. ६ की टीका व विशेषार्थ) । अतः प्रस्तुत नियमके अनुसार द्वितीय निषेकका भागहार होगा— $\frac{१५७५}{१२८} \times \frac{५१२}{४८०} = \frac{३१५}{२४}$ । इस भागहारका द्रव्यमें भाग देनेसे इच्छित निषेक ४८० प्राप्त होगा । $\frac{६३००}{१} \times \frac{२४}{३१५} = ४८०$ द्वितीय निषेकका प्रमाण । इसी प्रकार अन्य निषेकोंका भागहार उत्पन्न किया जा सकता है । (देखो पृ. १५३ का विशेषार्थ)

दूसरी गुणहानिके प्रथम निषेकका भागहार कुछ कम तीन गुणहानिप्रमाण है, क्योंकि, प्रथम गुणहानिके प्रथम निषेकसे दूसरी गुणहानिका प्रथम निषेक आधा होता है ।

विशेषार्थ— यथार्थतः दूसरी गुणहानिके प्रथम निषेकका भागहार तीन गुणहानि-प्रमाणसे कुछ कम न होकर कुछ अधिक होता है । उदाहरणार्थ— $\frac{१५७५}{१२८} \times \frac{५१२}{२५६} = \frac{१५७५}{६४}$ यह दूसरी गुणहानिके प्रथम निषेकका भागहार है, क्योंकि, द्रव्य ६३०० में इसका भाग देनेपर निषेकका प्रमाण $६३०० \div \frac{१५७५}{६४} = २५६$ प्राप्त होता है । किन्तु यह भागहार $२४\frac{३९}{६४}$ है जो तीन गुणहानि प्रमाण $८ \times ३ = २४$ से कुछ अधिक है ।

इस प्रकार उपरिम गुणहानिके प्रति भागहार दुगुण-दुगुणादि क्रमसे अन्तिम

१ प्रतिषु ' ओवड्ढगुणहाणीए ' इति पाठः । २ प्रतिषु ' जे ' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भागहारो दुगुण-दुगुणादिकमेण गच्छदि जाव चरिमगुणहाणिपढमणिसेगो त्ति। सव्वगुणहाणिविदियादिणिसेयाणं भागहारपरूवणं जाणिय परूवेदव्वं। एवं सव्वकम्माणं पि वत्तव्वं।

आहारसरीर–आहारसरीरंगोवंग–तित्थयरणामाणमुक्कस्सगो ट्ठिदिबंधो अंतोकोडाकोडीए[1] ॥ ३३ ॥

कुदो? सम्माइट्ठिबंधत्तादो। अंतोकोडाकोडीए त्ति उत्ते[2] सागरोवमकोडाकोडिं संखेज्जकोडीहि खंडिदएगखंडं होदि त्ति घेत्तव्वं। एदिस्से ट्ठिदीए अंतोमुहुत्तमेत्ता-बाधादो पण्णवणोवाओ— दससागरोवमकोडाकोडीणमाबाधं वस्ससहस्सं ट्ठविय मुहुत्ते

....

गुणहानिका प्रथम निषेक प्राप्त होने तक चला जाता है

उदाहरण—प्रथम गुणहानिके प्रथम निषेकका भागहार = $\frac{१५७५}{१२८}$, द्वि. गु. के प्र. नि. का भागहार $\frac{१५७५}{६४}$; तृ. गु. के प्र. नि. का भागहार $\frac{१५७५}{३२}$; चतु. गु. के प्र. नि. का भागहार $\frac{१५७५}{१६}$; पंचम गु. के प्र. नि. का भागहार $\frac{१५७५}{८}$; षष्ठम गु. के प्र. नि. का भागहार $\frac{१५७५}{४}$। इस प्रकार स्पष्टतः भागहार एक गुणहानिसे दूसरी गुण-हानिमें दुगुना होता चला गया है।

समस्त गुणहानियोंके द्वितीय, तृतीय आदि निषेकोंके भागहारोंकी प्ररूपणा जान करके कहना चाहिए। इसी प्रकार सर्व कर्मोंकी भी उक्त सब रचना कहना चाहिए।

आहारकशरीर, आहारकशरीर-अंगोपांग और तीर्थंकर नामकर्म, इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम है ॥ ३३ ॥

क्योंकि, इन प्रकृतियोंका सम्यग्दृष्टि जीवके ही बन्ध होता है, (और सम्यग्दृष्टिके अन्तःकोड़ाकोड़ीसे अधिक बन्ध होता नहीं है)। 'अन्तःकोड़ाकोड़ी' ऐसा कहनेपर एक कोड़ाकोड़ी सागरोपमको संख्यात कोटियोंसे खंडित करनेपर जो एक खंड होता है, वह अन्तःकोड़ाकोड़ीका अर्थ ग्रहण करना चाहिए। अन्तर्मुहूर्तमात्र आबाधाके द्वारा इस स्थितिके प्रज्ञापन अर्थात् जाननेका उपाय यह है— दश कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमित कर्मस्थितिकी आबाधा एक हजार वर्ष स्थापित करके

....

१ ×× अंतकोडाकोडी आहारतित्थयरे। गो. क. १३२.

२ प्रतिषु 'उत्त' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कदे अट्ठलक्खाहियकोडिमेत्ता मुहुत्ता होंति । तेसिं पमाणमेदं १०८००००० । एदेहि ओवट्टिददससागरोवमकोडाकोडिमेत्तट्ठिदी जदि एदेसिं तिण्हं कम्माणं होज्ज, तो एदिस्से ट्ठिदीए एगमुहुत्तमेत्ता आबाधा पावेदि । पुव्वुत्तभागहारेण दसगुणेणोवट्टिददससागरोवमकोडाकोडीमेत्ता ट्ठिदी जदि होदि, तो मुहुत्तस्स दसमभागो आबाधा होज्ज। ण च एदेसिमेत्तियमेत्ताबाधा होदि, असंजदसम्मादिट्ठिउक्कस्सट्ठिदिबंधादो संतादो वि संखेज्जगुणमिच्छाइट्ठिधुवट्ठिदीए संखेज्जंतोमुहुत्तमेत्ताबाधापसंगादो । ण च एवं, तत्तो संखेज्जगुणपंचिंदियअपज्जत्तुक्कस्सट्ठिदीए वि अंतोमुहुत्तमेत्ताबाधुवलंभा[1] । तदो संखेज्ज-

उसके मुहूर्त करनेपर आठ लाखसे अधिक एक कोटिप्रमाण मुहूर्त होते हैं । उनका प्रमाण यह है— १०८००००० ।

विशेषार्थ—चूंकि एक अहोरात्रमें ३० मुहूर्त होते हैं, तो मध्यम प्रतिपत्तिसे एक वर्षके ३६० दिनोंमें कितने मुहूर्त होंगे, इस प्रकार त्रैराशिक करनेपर १०८०० मुहूर्त प्राप्त होते हैं । इस प्रमाणको १००० वर्षोंसे गुणा करनेपर १०८००००० एक करोड़ आठ लाख मुहूर्त सिद्ध हो जाते हैं ।

इन मुहूर्तोंसे अपवर्तन की गई दश कोड़ाकोड़ी सागरोपममात्र स्थिति यदि इन सूत्रोक्त तीनों कर्मोंकी हो तो इस स्थितिकी एक मुहूर्तमात्र आबाधा प्राप्त होती है ।

उदाहरण— $\frac{१००००००००००००००००}{१०८०००००} = ९२५९२५९२\frac{६४}{१०८}$ इतने सागरोपमप्रमित स्थितिकी आबाधा एक मुहूर्त होती है ।

दश-गुणित पूर्वोक्त भागहारसे अपवर्तित दश कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमित स्थिति यदि उक्त तीनों कर्मोंकी हो, तो उनकी आबाधा मुहूर्तका दशवां भाग होगी । किन्तु इन आहारकशरीरादि तीनों कर्मोंकी इतनी आबाधा नहीं होती है, अन्यथा असंयतसम्यग्दृष्टिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे और उत्कृष्ट स्थितिसत्त्वसे भी संख्यातगुणी मिथ्यादृष्टिकी ध्रुवस्थितिके संख्यात अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा होनेका प्रसंग आता है । किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि उससे संख्यातगुणी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकी उत्कृष्ट स्थितिके

१ ××× संजदस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । संजदासंजदस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । तस्सेव उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । **असंजदसम्मादिट्ठिपज्जत्तयस्स** जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । तस्सेव अपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । तस्सेव पज्जत्तयस्स **उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । सण्णिमिच्छाइट्ठिपंचिंदिय**-पज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । तस्सेव अपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । **तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो** । ××× पंचिंदियाणं सण्णीण मिच्छाइट्ठीणमपज्जत्तयाणं सत्तण्णं कम्माणमाउववज्जाण**मंतोमुहुत्तमाबाधं** मोत्तूण जं पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं बहुगं । जं विदियसमए णिसित्तं पदेसग्गं तं विसेसहीणं । जं तदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं । एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जावउक्कस्सेण **अंतोकोडाकोडीओ** वि ॥ धवला अ. प. ९४०-५४३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोडीहिं खंडिददससागरोवमकोडाकोडी उक्कस्सट्ठिदी होदि त्ति सिद्धं ।

....

भी अन्तर्मुहूर्तमात्र आबाधा पाई जाती है। इसलिए संख्यात कोटियोंसे खंडित अर्थात् भाजित दश कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट स्थिति सूत्रोक्त तीनों कर्मोंकी पृथक् पृथक् होती है, यह बात सिद्ध हुई।

विशेषार्थ—सूत्रकारने जो आहारकशरीरादि तीन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम बतलाया है, उसीको धवलाकारने यहां और भी सूक्ष्मतासे समझानेका प्रयत्न किया है कि यहां अन्तःकोड़ाकोड़ीसे अभिप्राय एक सागरोपम कोड़ाकोड़ीके संख्यातवें भागसे है, न कि एक कोटि सागरोपमसे ऊपर और एक कोड़ाकोड़ी सागरोपमसे नीचे किसी भी मध्यवर्त्ती संख्यासे, जैसा कि सामान्यतः माना जाता है। और इसका कारण उन्होंने यह दिया है कि यदि यहां अन्तःकोड़ाकोड़ीका प्रमाण ९२५९२५९२ $\frac{६४}{१०८}$ सागरोपमोंका दशवां भाग भी लेवें, तो उसका आबाधाकाल मुहूर्तके $\frac{१}{१०}$ वां भाग पड़ेगा। किन्तु यदि यही प्रमाण ग्रहण किया जाय तो असंयतसम्यग्दृष्टि, संज्ञी पंचेन्द्रियमिथ्यादृष्टि और संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि अपर्याप्तकोंके स्थितिबन्धका जो संख्यातगुणित क्रमसे अल्पबहुत्व बतलाया गया है, उसके अनुसार संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि अपर्याप्तकोंका आबाधाकाल संख्यात मुहूर्त प्राप्त होगा। उदाहरणार्थ — धवलामें (अ. प्रति पत्र ९४०–९४३ पर) संयतका उत्कृष्ट[1], संयतासंयतका जघन्य[2] व उत्कृष्ट[3], असंयतसम्यग्दृष्टि पर्याप्तका जघन्य[4], इसीके अपर्याप्तका जघन्य[5] व उत्कृष्ट[6], इसीके पर्याप्तका उत्कृष्ट[7], संज्ञी मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय पर्याप्तका जघन्य[8], इसीके अपर्याप्तका जघन्य[9], और इसीके अपर्याप्तका उत्कृष्ट[10] स्थितिबन्ध उत्तरोत्तर संख्यातगुणा बतलाया गया है। अब यदि हम संयतके अन्तःकोड़ाकोड़ी स्थितिबन्धका प्रमाण एक कोटी सागरोपम ही मान लें, और तदनुसार उसके आबाधाकालका प्रमाण मुहूर्तका $\frac{१}{१०}$ वां भाग मान लें, तो जघन्य संख्यात गुणितक्रमसे भी संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध १×२×२×२×२×२×२×२×२×२ = ५१२ कोटी सागरोपम और उसकी आबाधाका प्रमाण $\frac{१}{१०}$ ×२×२×२×२×२×२×२×२×२ = $\frac{५१२}{१०}$ = ५१$\frac{१}{५}$ मुहूर्त होगा। किन्तु आगममें संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त मिथ्यादृष्टिका आबाधाकाल भी अन्तर्मुहूर्त ही माना गया है। इससे सिद्ध हो जाता है कि प्रकृतिमें अन्तकोड़ाकोड़ीका प्रमाण एक कोटि सागरोपमसे भी बहुत नीचे ही ग्रहण करना चाहिए। तभी उससे उत्तरोत्तर संख्यातगुणित स्थितिबन्धोंकी आबाधा भी अन्तर्मुहूर्त ही सिद्ध हो सकेगी। इस प्रकार धवलाकारका यह कथन सर्वथा युक्तिसंगत है कि सूत्रोक्त तीनों कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यात कोटियोंसे भाजित सागरोपम कोड़ाकोड़ी ग्रहण करना चाहिए।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

एदं वक्खाणं पाहुडचुण्णिसुत्तेण अपुव्वकरणपढमसमयट्ठिदिबंधस्स सागरोवम-कोडीलक्खपुधत्तपमाणं परूवयंतेण विरुज्झदे त्ति[1] णासंकणिज्जं, तस्स तंतंतरत्तादो। अधवा सग-सगजादिपडिबद्धट्ठिदिबंधेसु आबाधासु च एसो तेरासियणियमो, ण अण्णत्थ, खवगसेडीए अंतोमुहुत्तट्ठिदिबंधाणमाबाधाभावप्पसंगादो। तम्हा सग-सगुक्कस्सट्ठिदि-बंधेसु सग-सगुक्कस्साबाधाहि ओवट्टिदेसु आबाधाकंडयाणि आगच्छंति त्ति घेत्तव्वं। तदो एत्थ अंतोमुहुत्ताबाधाए वि संतीए अंतोकोडाकोडी ट्ठिदिबंधो होदि त्ति।

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ ३४ ॥

आबाधाकंडएण उक्कस्सट्ठिदिम्हि[2] भागे हिदे आबाधा होदि।

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ॥ ३५ ॥

सुगममेदं।

णग्गोधपरिमंडलसंठाण-वज्जणारायणसंघडणणामाणं उक्कस्सगो ट्ठिदिबंधो वारस सागरोवमकोडाकोडीओ[3] ॥ ३६ ॥

यह व्याख्यान, अपूर्वकरण गुणस्थानके प्रथम समयकी स्थितिबन्धका सागरोपम-कोटिलक्षपृथक्त्व प्रमाणके प्ररूपण करनेवाले कसायपाहुडचूर्णिसूत्रसे विरोधको प्राप्त होता है, ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि, वह तंत्रान्तर अर्थात् दूसरा सिद्धान्तग्रन्थ या मत है। अथवा, अपनी अपनी जातिसे प्रतिबद्ध स्थितिबन्धोंमें और आबाधाओंमें यह त्रैराशिकका नियम लागू होता है, अन्यत्र नहीं, अन्यथा, क्षपकश्रेणीमें होनेवाले अन्तर्मुहूर्तप्रमित स्थितिबन्धोंकी आबाधाके अभावका प्रसंग प्राप्त होता है। इसलिए अपने अपने उत्कृष्ट स्थितिबन्धोंको अपनी अपनी उत्कृष्ट आबाधाओंसे अपवर्तन करनेपर आबाधाकांडक आ जाते हैं, ऐसा नियम ग्रहण करना चाहिए। अतएव यह सिद्ध हुआ कि यहांपर, अर्थात् उक्त तीनों कर्मोंकी स्थितिमें, अन्तर्मुहूर्तमात्र आबाधाके होनेपर भी स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण होता है।

पूर्व सूत्रोक्त आहारकशरीरादि प्रकृतियोंका आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्तमात्र है ॥ ३४ ॥

आबाधाकांडकसे उत्कृष्ट स्थितिमें भाग देनेपर आबाधा प्राप्त होती है।

उक्त तीनों कर्मोंके आबाधाकालसे हीन कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता है ॥ ३५ ॥

यह सूत्र सुगम है।

न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान और वज्रनाराचसंहनन, इन दोनों नामकर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध बारह कोड़ाकोड़ी सागरोपम है ॥ ३६ ॥

१ अप्रतौ ' विरुज्झोदीत्ति ' इति पाठः। २ प्रतिषु ' उक्कस्सट्ठिदिता ' इति पाठः।

३ संठाणसंहदीणं चरिमस्सोघं दुहीणमादि त्ति। गो. क. १२९.

णामत्तणेण भेदे इदरणामकम्मेहिंतो असंते वि किमट्ठं ट्ठिदिभेदो ? ण, पयडि-विसेसेण भिण्णाणं[1] ट्ठिदिभेदं पडि विरोधाभावा। सेसं सुगमं।

बारसवाससदाणि आबाधा ॥ ३७ ॥

एगेण आबाधाकंडएण अप्पिदुक्कस्सट्ठिदिम्हि भागे हिदे बारसवाससदमेत्ता आबाधा होदि।

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ॥ ३८ ॥

सुगममेदं।

सादियसंठाण-णारायसंघडणणामाणमुक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो चोद्दस-सागरोवमकोडाकोडीओ ॥ ३९ ॥

एदं पि सुगमं।

चोद्दसवाससदाणि आबाधा ॥ ४० ॥

शंका—नामत्वकी अपेक्षा इतर नामकर्मोंसे भेद नहीं होनेपर भी उक्त प्रकृतियोंकी स्थितिमें भेद किसलिए है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, प्रकृति-विशेषकी अपेक्षासे भिन्नताको प्राप्त प्रकृतियोंके स्थिति-भेद माननेमें कोई विरोध नहीं है।

शेष सूत्रार्थ सुगम है।

न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान और वज्रनाराचसंहनन, इन दोनों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट आबाधाकाल बारह सौ वर्ष है ॥ ३७ ॥

एक आबाधाकांडकसे विवक्षित उत्कृष्ट स्थितिमें भाग देनेपर बारह सौ वर्ष-प्रमाण आबाधा प्राप्त होती है।

उक्त दोनों कर्मोंके आबाधाकालसे हीन कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता है ॥ ३८ ॥

यह सूत्र सुगम है।

स्वातिसंस्थान और नाराचसंहनन, इन दोनों नामकर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध चौदह कोड़ाकोड़ी सागरोपम है ॥ ३९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

उक्त दोनों कर्मोंका उत्कृष्ट आबाधाकाल चौदह सौ वर्ष है ॥ ४० ॥

---

१ प्रतिषु 'विणाणं' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तं जधा– दसकोडाकोडीसागरोवमाणं जदि दसवाससदमेत्ताबाधा लब्भदि, तो चोद्दसकोडाकोडीसागरोवमेसु किं लभामो त्ति फलगुणिदमिच्छं पमाणेणोवट्टिदे चोद्दसवाससदाणि[1] आबाधा होदि।

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ॥ ४१ ॥

सुगममेदं।

खुज्जसंठाण-अद्धणारायणसंघडणणामाणमुक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो सोलससागरोवमकोडाकोडीओ ॥ ४२ ॥

एदं पि सुगमं।

सोलसवाससदाणि आबाधा ॥ ४३ ॥

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ॥ ४४ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि।

एवं छट्ठी चूलिया समत्ता।

वह इस प्रकार है— दश कोड़ाकोड़ी सागरोपम स्थितिवाले कर्मोंकी आबाधा यदि दश सौ (१०००) वर्षप्रमाण प्राप्त होती है, तो चौदह कोड़ाकोड़ी सागरोपम स्थितिवाले कर्मोंमें कितनी आबाधा प्राप्त होगी, इस प्रकार इच्छाराशिको फलराशिसे गुणा करके प्रमाणराशिसे अपवर्तन करनेपर चौदह सौ (१४००) वर्षप्रमाण आबाधा प्राप्त होती है। $\frac{१४ \times १०००}{१०} = १४००.$

स्वातिसंस्थान और नाराचसंहनन, इन दोनों नामकर्मोंके आबाधा-कालसे हीन कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता है ॥ ४१ ॥

यह सूत्र सुगम है।

कुब्जकसंस्थान और अर्धनाराचसंहनन, इन दोनों नामकर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सोलह कोड़ाकोड़ी सागरोपम है ॥ ४२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

उक्त दोनों कर्मोंका उत्कृष्ट आबाधाकाल सोलह सौ वर्ष है ॥ ४३ ॥

उक्त दोनों कर्मोंके आबाधाकालसे हीन कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता है ॥ ४४ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं।

इस प्रकार छठी चूलिका समाप्त हुई।

---

१ प्रतिषु ' वाससहस्साणि ' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एत्तो जहण्णट्ठिदिं वण्णइस्सामो ॥ १ ॥

तं जहा ॥ २ ॥

उक्कस्सविसोहीए जा ट्ठिदी बज्झदि सा जहण्णिया होदि, सव्वासिं ट्ठिदीणं पसत्थभावाभावादो । संकिलेसवड्ढीदो सव्वपयडिट्ठिदीणं वड्ढी होदि, विसोहिवड्ढीदो तासिं चेव हाणी होदि[1] । को संकिलेसो णाम ? असादबंधजोग्गपरिणामो संकिलेसो णाम । का विसोही ? सादबंधजोग्गपरिणामो । उक्कस्सट्ठिदीदो हेट्ठिमट्ठिदीयो बंधमाणस्स परिणामो विसोहि त्ति उच्चदि, जहण्णट्ठिदीदो उवरिमबिदियादिट्ठिदीओ बंधमाणस्स परिणामो संकिलेसो त्ति के वि आइरिया भणंति, तण्ण घडदे । कुदो ? जहण्णुक्कस्सट्ठिदिपरिणामे मोत्तूण सेसमज्झिमट्ठिदीणं सव्वपरिणामाणं पि संकिलेस-विसोहित्तप्पसंगादो । ण च एवं, एक्कस्स परिणामस्स लक्खणभेदेण विणा दुभावविरोहादो ।

अब इससे आगे जघन्य स्थितिका वर्णन करेंगे ॥ १ ॥

वह किस प्रकार है ? ॥ २ ॥

उत्कृष्ट विशुद्धिके द्वारा जो स्थिति बंधती है, वह जघन्य होती है, क्योंकि सर्व स्थितियोंके प्रशस्त भावका अभाव है । संक्लेशकी वृद्धिसे सर्व प्रकृतिसम्बन्धी स्थितिकी वृद्धि होती है, और विशुद्धिकी वृद्धिसे उन्हीं स्थितियोंकी हानि होती है ।

शंका— संक्लेश नाम किसका है ?

समाधान— असाताके बंध-योग्य परिणामको संक्लेश कहते हैं ।

शंका-- विशुद्धि नाम किसका है ?

समाधान— साताके बंध-योग्य परिणामको विशुद्धि कहते हैं ।

कितने ही आचार्य ऐसा कहते हैं कि उत्कृष्ट स्थितिसे अधस्तन स्थितियोंको बांधनेवाले जीवका परिणाम 'विशुद्धि' इस नामसे कहा जाता है, और जघन्य स्थितिसे उपरिम द्वितीय, तृतीय आदि स्थितियोंको बांधनेवाले जीवका परिणाम 'संक्लेश' कहलाता है । किन्तु उनका यह कथन घटित नहीं होता है; क्योंकि, जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिके बांधनेके योग्य परिणामोंको छोड़कर शेष मध्यम स्थितियोंके बांधने योग्य सर्व परिणामोंके भी संक्लेश और विशुद्धिताका प्रसंग आता है । किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, एक परिणामके लक्षणभेदके विना द्विभाव अर्थात् दो प्रकारके होनेका विरोध है ।

---

१ सव्वट्ठिदीणमुक्कस्सओ दु उक्कस्ससंकिलेसेण । विवरीदेण जहण्णो आउगतियवज्जियाणं तु ॥ गो. क. १३४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकिलेस-विसोहीणं वड्ढमाण-हायमाणलक्खणेण भेदो ण विरुज्झदि त्ति चे ण, वड्ढि-हाणि-धम्माणं परिणामत्तादो जीवदव्वावट्ठाणाणं परिणामंतरेसु असंभवाणं परिणामलक्खणत्त-विरोहादो। ण च कसायवड्ढी संकिलेसलक्खणं, ट्ठिदिबंधउड्ढीए अण्णहाणुववत्तीदो, विसोहिअद्धाए वड्ढमाणकसायस्स वि संकिलेसत्तप्पसंगादो। ण च विसोहिअद्धाए कसाय-उड्ढी णत्थि त्ति वोत्तुं जुत्तं, सादादीणं भुजगारबंधाभावप्पसंगा। ण च असाद-सादबंधाणं संकिलेस-विसोहीओ मोत्तूण अण्णकारणमत्थि, अणुवलंभा। ण कसायउड्ढी असादबंध-

शंका—वर्धमान स्थितिको संक्लेशका तथा हायमान स्थितिको विशुद्धिका लक्षण मान लेनेसे भेद विरोधको नहीं प्राप्त होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, परिणामस्वरूप होनेसे जीव-द्रव्यमें अवस्थानको प्राप्त और परिणामान्तरोंमें असंभव ऐसे वृद्धि और हानि, इन दोनों धर्मोंके परिणाम-लक्षणत्वका विरोध है।

विशेषार्थ—यहां शंकाकारका मत यह है कि जघन्यसे उत्कृष्टकी ओर स्थिति-बंधके योग्य परिणामको संक्लेश और उत्कृष्टसे जघन्यकी ओर स्थितिबंधके योग्य परि-णामको विशुद्धि कहते हैं, इस प्रकार वर्धमान स्थितिबंधको संक्लेश तथा हीयमान स्थितिबंधको विशुद्धिका लक्षण मान लेनेसे कोई विरोध उत्पन्न नहीं होता। किन्तु धवलाकारने इस मतका इस प्रकार निराकरण किया है कि स्थितियोंकी वृद्धि और हानि स्वयं जीवके परिणाम हैं जो क्रमशः संक्लेश और विशुद्धिरूप परिणामकी वृद्धि और हानिसे उत्पन्न होते हैं। और एक परिणाम दूसरे परिणामका लक्षण नहीं बन सकता। अतएव वे संक्लेश और विशुद्धिके लक्षण नहीं माने जा सकते। स्थितियोंकी वृद्धि और हानि तथा संक्लेश और विशुद्धिकी वृद्धि और हानिमें कार्य-कारण सम्बन्ध अवश्य है, पर लक्षण-लक्ष्य सम्बन्ध नहीं माना जा सकता।

कषायकी वृद्धि भी संक्लेशका लक्षण नहीं है, क्योंकि, अन्यथा स्थितिबंधकी वृद्धि बन नहीं सकती है, तथा, विशुद्धिके कालमें वर्धमान कषायवाले जीवके भी संक्लेशत्वका प्रसंग आता है। और, विशुद्धिके कालमें कषायोंकी वृद्धि नहीं होती है, ऐसा कहना भी युक्त नहीं है, क्योंकि, वैसा मानने पर साता आदिके भुजाकारबंधके अभावका प्रसंग प्राप्त होगा। तथा, असाता और साता, इन दोनोंके बन्धका संक्लेश और विशुद्धि, इन दोनोंको छोड़कर अन्य कोई कारण नहीं है, क्योंकि, वैसा कोई कारण पाया नहीं जाता है। कषायोंकी वृद्धि केवल असाताके बन्धका कारण नहीं है, क्योंकि, उसके,

१ अल्पप्रकृतिकं बध्नन्नंतरसमये बहुप्रकृतिकं बध्नाति तदा भुजाकारबन्धः स्यात् ॥ गो. क. ५६९. टीका.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कारणं, तक्काले सादस्स वि बंधुवलंभा । ण हाणी, तिस्से वि साहारणत्तादो । किं च विसोहीओ उक्कस्सट्ठिदिम्हि थोवा होदूण गणणाए वड्ढमाणाओ आगच्छंति जाव जहण्णट्ठिदि त्ति । संकिलेसा पुण जहण्णट्ठिदिम्हि थोवा होदूण उवरि पक्खेवउत्तरकमेण वड्ढमाणा[1] गच्छंति जा उक्कस्सट्ठिदि त्ति । तदो संकिलेसेहिंतो विसोहीओ पुधभूदाओ त्ति दट्ठव्वाओ । तदो ट्ठिदमेदं सादबंधजोग्गपरिणामो विसोहि त्ति ।

पंचण्हं णाणावरणीयाणं चदुण्हं दंसणावरणीयाणं लोभसंजलणस्स पंचण्हमंतराइयाणं जहण्णओ ट्ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तं[2] ॥ ३ ॥

अर्थात् कषायोंकी वृद्धिके कालमें साताका बन्ध भी पाया जाता है । इसी प्रकार कषायोंकी हानि केवल साताके बन्धका कारण नहीं है, क्योंकि, वह भी साधारण है, अर्थात् कषायोंकी हानिके कालमें असाताका भी बन्ध पाया जाता है ।

विशेषार्थ—पूर्वमें थोड़ी प्रकृतियोंका बन्ध होकर पश्चात् अधिक प्रकृतियोंके बन्ध होनेको भुजाकार बन्ध कहते हैं । जैसे उपशांतकषाय गुणस्थानमें केवल एक सातावेदनीय कर्मका बन्ध होता है । वहांसे दशवें सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें आने पर आयु और मोहको छोड़कर शेष छह मूल प्रकृतियोंका बन्ध होने लगता है । दशवेंसे नवमें व आठवें गुणस्थानमें आने पर आयुको छोड़कर शेष सात मूल प्रकृतियोंका बन्ध होने लगता है । आठवें गुणस्थानसे नीचे आने पर आठों ही प्रकृतियोंका बन्ध संभव हो जाता है । यह भुजाकार बन्ध है । यहां पर भुजाकार बन्धके उक्त स्थानोंमें विशुद्धि होने पर भी कषायोंकी वृद्धि है और इसीसे वे भुजाकार बन्धस्थान संभव होते हैं । कषायोंकी वृद्धि होने पर भी वहां सातावेदनीय कर्मका बन्ध होता है । तथा कषायोंकी हानि होने पर भी छठवें गुणस्थान तक असाताका बन्ध होता रहता है । अतः कषाय-वृद्धिको संक्लेशका लक्षण नहीं माना जा सकता ।

दूसरी बात यह है कि विशुद्धियां उत्कृष्ट स्थितिमें अल्प होकर गणनाकी अपेक्षा बढ़ती हुई जघन्य स्थिति तक चली आती हैं । किन्तु संक्लेश जघन्य स्थितिमें अल्प होकर ऊपर प्रक्षेप-उत्तर क्रमसे, अर्थात् सदृश प्रचयरूपसे, बढ़ते हुए उत्कृष्ट स्थिति तक चले जाते हैं । इसलिए संक्लेशोंसे विशुद्धियां पृथग्भूत होती हैं, ऐसा अभिप्राय जानना चाहिए । अतएव यह स्थित हुआ कि साताके बन्धयोग्य परिणामका नाम विशुद्धि है ।

पांचों ज्ञानावरणीय, चक्षुदर्शनावरणादि चारों दर्शनावरणीय, लोभसंज्वलन और पांचों अन्तराय, इन कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३ ॥

१ तत्र काले संभवंतो विशुद्धिकषायपरिणामाः असंख्यातलोकमात्राः सन्ति । ते च तत्प्रथमसमयमादिं कृत्वा उपर्युपरि सर्वत्र सदृशप्रचयवृद्ध्या वर्धन्ते । गो. क. ८९९. टीका.

२ शेषाणामन्तर्मुहूर्ता: ॥ त. सू. ८, २०. भिण्णमुहुत्तं तु ठिदी जहण्णयं सेसपंचण्हं ॥ गो. क. १३९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुदो ? कसायक्खवयस्स चरिमसमयबंधत्तादो । एत्थ गुणहाणीओ णत्थि, पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तट्ठिदीए विणा गुणहाणीए असंभवादो ।

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ ४ ॥

आबाधाकंडएण असंखेज्जपलिदोवमपढमवग्गमूलमेत्तेण अप्पिदट्ठिदिम्हि भागे हिदे आबाधा आगच्छदि त्ति पुव्वमसइं परूविदं । संपहि अंतोमुहुत्तमेत्तट्ठिदीए आबाहाकंडयादो असंखेज्जगुणहीणाए कधमाबाधा उवलब्भदे ? ण एस दोसो, सग-सगजादिपडिबद्धाबाधाकंडएहि सग-सगट्ठिदीसु ओवट्टिदासु सग-सगआबाधासमुप्पत्तीदो । ण च सव्वजादीसु आबाधाकंडयाणं सरिसत्तं[1], संखेज्जवस्सट्ठिदिबंधेसु अंतोमुहुत्तमेत्तआबाधोवट्टिदेसु संखेज्जसमयमेत्तआबाधाकंडयदंसणादो । तदो संखेज्जरूवेहि जहण्णट्ठिदिम्हि भागे हिदे संखेज्जावलियमेत्ता णिसेगट्ठिदीदो[2] संखेज्जगुणहीणा जहण्णाबाधा होदि

क्योंकि, कषायोंके क्षपण करनेवाले जीवके (दशवें गुणस्थानके) अन्तिम समयमें इस जघन्य स्थितिका बन्ध होता है । यहांपर अर्थात् इस जघन्य स्थितिमें गुणहानियां नहीं होती हैं, क्योंकि, पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र स्थितिके विना गुणहानिका होना असंभव है ।

पूर्व सूत्रोक्त ज्ञानावरणीयादि पन्द्रह कर्मोंका जघन्य आबाधाकाल अन्तमुहूर्त है ॥ ४ ॥

शंका— पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलमात्र आबाधाकांडकसे विवक्षित स्थितिमें भाग देने पर आबाधा आजाती है, यह बात पहले अनेक बार प्ररूपण की गई है । अब, आबाधाकांडकसे असंख्यात गुणित हीन अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थितिकी आबाधा कैसे उपलब्ध होती है ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, अपनी अपनी जातियोंमें प्रतिबद्ध आबाधाकांडकोंके द्वारा अपनी अपनी स्थितियोंके अपवर्त्तित करनेपर अपनी अपनी, अर्थात् विवक्षित प्रकृतियोंकी, आबाधा उत्पन्न होती है । तथा, सर्व जातिवाली प्रकृतियोंमें आबाधाकांडकोंके सदृशता नहीं है, क्योंकि, संख्यात वर्षवाले स्थितिबन्धोंमें अन्तर्मुहूर्तमात्र आबाधासे अपवर्तन करनेपर संख्यात समयमात्र आबाधाकांडक उत्पन्न होते हुए देखे जाते हैं । इसलिए संख्यात रूपोंसे जघन्य स्थितिमें भाग देनेपर निषेकस्थितिसे संख्यातगुणित हीन संख्यात आवलिमात्र जघन्य आबाधा होती है, यह अर्थ

१ प्रतिषु ' सरीरत्तं ' इति पाठः ।

२ अ-आ प्रत्योः '-मेत्ताणि सगट्ठिदीदो ' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्ति घेत्तव्वं ।

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ॥ ५ ॥

सुगममेदं ।

पंचदंसणावरणीय-असादावेदणीयाणं जहण्णगो ट्ठिदिबंधो सागरोवमस्स तिण्णि सत्तभागा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणया ॥ ६ ॥

तं जहा — सत्तरिसागरोवमकोडाकोडिट्ठिदिबंधमिच्छत्तस्स जदि एत्थ एक्कसागरोवममेत्तो उक्कस्सो ट्ठिदिबंधो लब्भदि तो तीससागरोवम (-कोडाकोडि-) मेत्तुक्कस्सट्ठिदिबंधदंसणावरणादीणं किं ठिदिबंधं लभामो त्ति फलगुणिदमिच्छं पमाणेणोवट्टिदे सागरोवमस्स तिण्णि सत्तभागा आगच्छंति[1] । पुणो तत्थ आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तेण आबाधट्ठाणविसेसेण रूवाहिएण एगमाबाधाकंडयं गुणिय रूऊणं कादूण

ग्रहण करना चाहिए ।

पूर्व सूत्रोक्त ज्ञानावरणीयादि पन्द्रह कर्मोंके आबाधाकालसे हीन जघन्य कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता है ॥ ५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

निद्रानिद्रादि पांच दर्शनावरणीय और असातावेदनीय, इन कर्म-प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध पल्योपमके असंख्यातवें भागसे हीन सागरोपमके तीन बटे सात भागप्रमाण है ॥ ६ ॥

यह इस प्रकार है — यहांपर अर्थात् एकेन्द्रिय जीवोंमें सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपमके स्थितिबन्धवाले मिथ्यात्वकर्मका यदि एक सागरोपममात्र उत्कृष्ट स्थितिबन्ध प्राप्त होता है, तो तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपममात्र उत्कृष्ट स्थितिबन्धवाले दर्शनावरणीयादि कर्मोंका क्या स्थितिबन्ध प्राप्त होगा, इस प्रकार इच्छाराशिको फलराशिसे गुणित कर प्रमाणराशिसे अपवर्तन करनेपर एक सागरोपमके सात भागोंमेंसे तीन भाग आते हैं । उदाहरण— $\frac{३० \times १}{७०} = \frac{३}{७}$

पुनः उसमें एक रूपसे अधिक, आवलीके असंख्यातवें भागमात्र आबाधास्थानविशेषके द्वारा एक आबाधाकांडकको गुणा करके, और उसमेंसे एक कम करके प्राप्त

१ जदि सत्तरिस्स एत्तियमेत्तं किं होदि तीसियादीणं । इदि संपाते सेसाणं इगिविगलेसु उभयठिदी ॥ गो. क. १४५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लद्धवीचारट्ठाणाणि अवणिदे जहण्णओ ट्ठिदिबंधो होदि[1] । सेसं सुगमं ।

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ ७ ॥

तं जधा— एगेणाबाधाकंडएण समऊणजहण्णट्ठिदिम्हि भागे हिदे लद्धं रूवाहियं जहण्णाबाधा होदि । किमट्ठं जहण्णट्ठिदी समऊणं करिय आबाधाकंडएण भागो घेप्पदे? ण, पुव्वं समऊणाबाधाकंडएण विणा जहण्णत्तमुवगदत्तादो ।

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ॥ ८ ॥

सुगममेदं ।

सादावेदणीयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो वारस मुहुत्ताणि[2] ॥९॥

हुए वीचारस्थानोंको उक्त राशिमेंसे घटानेपर जघन्य स्थितिबन्ध होता है ।

उदाहरण— मान लो उत्कृष्ट स्थिति = ६४; आबाधा = १६; आबाधाकांडक = $\frac{६४}{१६}$ = ४; आबाधाके स्थानोंका विशेष = ४ (देखो उत्कृष्टस्थितिचूलिका, सूत्र ५ की टीका)। अतएव जघन्य स्थिति होगी— (४ + १) × ४ − १ = १९ वीचारस्थान; ६४ − १९ = ४५ जघन्य स्थितिबंध ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

पूर्व सूत्रोक्त निद्रानिद्रादि छह कर्म-प्रकृतियोंका जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ७ ॥

वह इस प्रकार है— एक आबाधाकांडकके द्वारा एक समय कम जघन्य स्थितिमें भाग देनेपर जो राशि लब्ध हो, उसमें एक जोड़नेपर जघन्य आबाधा होती है ।

उदाहरण— मान लो जघन्य स्थिति = ४५; आबाधाकांडक = ४ । अतएव (४५ − १) ÷ ४ + १ = १२ जघन्य आबाधा ।

शंका— जघन्य स्थितिको एक समय कम करके उसमें आबाधाकांडकके द्वारा भाग किसलिए देते हैं ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, पहले एक समय कम आबाधाकांडकके विना जघन्यता मानी गई है ।

पूर्व सूत्रोक्त निद्रानिद्रादि छह कर्मोंके आबाधाकालसे हीन जघन्य कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता है ॥ ८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सातावेदनीयका जघन्य स्थितिबन्ध बारह मुहूर्त है ॥ ९ ॥

---

१ जेट्ठाबाहोवट्टियजेट्ठं आबाहकंडयं तेण । आबाहवियप्पहदेणेगूणेगूणजेट्ठमवरठिदी ॥ गो. क. १४७.

२ अपरा द्वादश मुहूर्ता वेदनीयस्य ॥ त. सू. ८, १८. बारस य वेयणीये ॥ गो. क. १३९.

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

कुदो ? सुहुमसांपराइयचरिमसमयबंधादो । तीसियस्स दंसणावरणीयस्स अंतोमुहुत्तमेत्तट्ठिदिं बंधमाणो सुहुमसांपराइओ तीसियवेदणीयभेदस्स सादावेदणीयस्स पण्णारससागरोवमकोडाकोडीउक्कस्सट्ठिदिअस्स कधं वारसमुहुत्तियं जहण्णट्ठिदिं बंधदे ? ण, दंसणावरणादो सुहस्स सादावेदणीयस्स विसोधीदो सुट्ठु ट्ठिदिबंधोवट्टणाभावा ।

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ १० ॥

कुदो ? संखेज्जरूवेहि वारसमुहुत्तेसु[1] ओवट्टिदेसु अंतोमुहुत्तुवलंभादो ।

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ॥ ११ ॥

सुगममेदं ।

मिच्छत्तस्स जहण्णगो ट्ठिदिबंधो सागरोवमस्स सत्त सत्तभागा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणिया ॥ १२ ॥

क्योंकि, सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती क्षपक संयतके अन्तिम समयमें यह जघन्य बंध होता है ।

शंका—तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमकी उत्कृष्ट स्थितिवाले दर्शनावरणीय कर्मकी अन्तर्मुहूर्तमात्र जघन्य स्थितिको बांधनेवाला सूक्ष्मसांपराय संयत तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमकी उत्कृष्ट स्थितिवाले वेदनीयकर्मके भेदस्वरूप पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमित उत्कृष्ट स्थितिवाले सातावेदनीयकर्मकी बारह मुहूर्तवाली जघन्य स्थितिको कैसे बांधता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, दर्शनावरणीय कर्मकी अपेक्षा शुभ प्रकृतिरूप सातावेदनीय कर्मकी विशुद्धिके द्वारा स्थितिबन्धकी अधिक अपवर्तनाका अभाव है । अर्थात् सातावेदनीय पुण्य प्रकृति है, अतएव विशुद्धिके द्वारा उसकी स्थितिका घात अधिक नहीं होता है । किन्तु दर्शनावरणीय पाप प्रकृति है, अतएव विशुद्धिसे उसकी स्थितिका अधिक घात होता है ।

सातावेदनीय कर्मका जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १० ॥

क्योंकि, संख्यात रूपोंसे बारह मुहूर्तोंके अपवर्तन करनेपर अन्तर्मुहूर्तकी प्राप्ति होती है ।

सातावेदनीय कर्मके आबाधाकालसे हीन जघन्य कर्म-स्थितिप्रमाण उसका कर्म-निषेक होता है ॥ ११ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मिथ्यात्वकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध पल्योपमके असंख्यातवें भागसे हीन सागरोपमके सात बटे सात भागप्रमाण है ॥ १२ ॥

---

१ प्रतिषु ' वारसमुहुत्ते ' इति पाठः ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

आवलियाए असंखेज्जदिभागेण बादरेइंदियपज्जत्ताणमाबाधट्ठाणविसेसेण रूवाहिएण एगमाबाधाकंडयं गुणिय रूऊणं कादूण सागरोवमम्हि सोहिदे मिच्छत्तजहण्णट्ठिदिसमुप्पत्तीदो। बादरेइंदियअपज्जत्तएसु सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्तेसु वा मिच्छत्तस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो किण्ण होदीदि चे ण, एदेसु वीचारट्ठाणाणं बहुत्ताभावा।

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ १३ ॥

कुदो? समऊणजहण्णट्ठिदिम्हि आबाधाकंडएण भागे हिदे लद्धरूवाहियस्स जहण्णाबाधत्तब्भुवगमादो।

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ॥ १४ ॥

सुगममेदं।

बारसण्हं कसायाणं जहण्णओ ट्ठिदिबंधो सागरोवमस्स चत्तारि सत्तभागा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणया ॥ १५ ॥

किमट्ठं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण सागरोवमचत्तारिसत्तभागाणमूणत्तं

क्योंकि, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके आबाधास्थानविशेषस्वरूप एक रूप अधिक, आवलीके असंख्यातवें भागसे एक आबाधाकांडकको गुणा करके उसमेंसे एक कम करके सागरोपममेंसे घटा देनेपर मिथ्यात्वकर्मकी जघन्य स्थिति उत्पन्न होती है।

शंका—बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें, अथवा सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवोंमें, मिथ्यात्वकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध क्यों नहीं होता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें, अथवा सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवोंमें, वीचारस्थानोंकी बहुलताका अभाव है।

मिथ्यात्वकर्मका जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १३ ॥

क्योंकि, एक समय कम जघन्य स्थितिमें आबाधाकांडकसे भाग देनेपर जो राशि लब्ध हो, उसमें एक रूप अधिक करनेपर उत्पन्न राशिको जघन्य आबाधाकाल माना है।

मिथ्यात्वकर्मके आबाधाकालसे हीन जघन्य कर्म-स्थितिप्रमाण उसका कर्म-निषेक होता है ॥ १४ ॥

यह सूत्र सुगम है।

अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषायोंका जघन्य स्थितिबन्ध पल्योपमके असंख्यातवें भागसे हीन सागरोपमके चार बटे सात भागप्रमाण है ॥ १५ ॥

शंका—सागरोपमके चार बटे सात भागोंको पल्योपमके असंख्यातवें भागसे

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

उच्चदे ? ण, बादरेइंदियपज्जत्तएसु वीचारट्ठाणाणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताणं चेव वेदणासुत्तम्हि णिद्दिट्ठत्तादो ।

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ १६ ॥

कुदो ? आबाधाकंडएण ओवट्टिदसमऊणजहण्णट्ठिदिम्हि समयाधियम्हि जहण्णाबाधुवलंभादो । सेसं सुगमं ।

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ॥ १७ ॥

एदं पि सुगमं ।

कोधसंजलण-माणसंजलण-मायसंजलणाणं जहण्णओ ट्ठिदिबंधो वे मासा मासं पक्खं[1] ॥ १८ ॥

जधासंखेण कोधसंजलणस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो वे मासा, माणस्स मासो, मायाए पक्खो त्ति घेत्तव्वो । किमट्ठं पुध पुध संजलणसद्दुच्चारणं कीरदे ?

हीन करना किसलिए कहते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, वेदनासूत्रमें बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंमें वीचारस्थान पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र ही निर्दिष्ट किये गये हैं । (और उत्कृष्ट स्थितिमेंसे वीचारस्थानोंको घटाने पर जघन्य स्थिति प्राप्त होती है ।)

अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषायोंका जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १६ ॥

क्योंकि, आबाधाकांडकके द्वारा एक समय कम जघन्य स्थितिको अपवर्तन करके पुनः उसमें एक समय अधिक करनेपर जघन्य आबाधाकी उपलब्धि होती है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

उक्त बारह कषायोंके आबाधाकालसे हीन जघन्य कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता है ॥ १७ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

क्रोधसंज्वलन, मानसंज्वलन और मायासंज्वलन, इन तीनोंका जघन्य स्थितिबन्ध क्रमशः दो मास, एक मास और एक पक्ष है ॥ १८ ॥

यथासंख्य, अर्थात् संख्याके क्रमानुसार, क्रोधसंज्वलनका जघन्य स्थितिबन्ध दो मास, मानसंज्वलनका एक मास और मायासंज्वलनका एक पक्ष होता है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए ।

शंका—क्रोध आदि पदोंके साथ पृथक् पृथक् संज्वलनशब्दका उच्चारण किसलिए किया है ?

---

१ दुगेकदलमासं कोहतिये ॥ गो. क. १४०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ण, भिण्णट्ठाणेसु बंधवोच्छेदपदंसणट्ठं पुध पुध तस्सुच्चारणादो, पज्जवट्ठियणए अवलंबिज्जमाणे तिण्णमेगत्तविरोधादो वा पुध पुधुच्चारणं कीरदे ।

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ १९ ॥

संखेज्जरूवेहिं जहण्णट्ठिदिम्हि भागे हिदे जहण्णाबाधुवलंभादो ।

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ॥ २० ॥

सुगममेदं ।

पुरिसवेदस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो अट्ठ वस्साणि[1] ॥ २१ ॥

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ २२ ॥

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ॥ २३ ॥

एदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

समाधान — नहीं, क्योंकि, भिन्न भिन्न स्थानोंमें इन तीनों संज्वलन कषायोंका बंध-व्युच्छेद बतलानेके लिए पृथक् पृथक् उसका, अर्थात् संज्वलनशब्दका, उच्चारण किया है। (विशेषके लिए देखो इसी भागके पृ० ४५ का विशेषार्थ)। अथवा पर्यायार्थिक नयके अवलंबन किये जानेपर तीनों कषायोंके एकताका विरोध है, अर्थात् तीनों एक नहीं हो सकते, इसलिए क्रोध आदि पदोंके साथ संज्वलनशब्दका पृथक् पृथक् उच्चारण किया है।

क्रोधादि तीनों संज्वलनकषायोंका जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १९ ॥

क्योंकि, संख्यात रूपोंसे जघन्य स्थितिमें भाग देनेपर जघन्य आबाधा प्राप्त होती है।

क्रोधादि तीनों संज्वलनकषायोंके आबाधाकालसे हीन जघन्य कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता है ॥ २० ॥

यह सूत्र सुगम है।

पुरुषवेदका जघन्य स्थितिबन्ध आठ वर्ष है ॥ २१ ॥

आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २२ ॥

आबाधाकालसे हीन जघन्य कर्मस्थितिप्रमाण उसका कर्म-निषेक होता है ॥ २३ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम हैं।

---

१ पुरिसस्स य अट्ठ य वस्सा जहण्णट्ठिदी ॥ गो. क. १४०.

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

इत्थिवेद-णउंसयवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-तिरिक्खगइ-मणुसगइ-एइंदिय-बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीरं छण्हं संठाणाणं ओरालियसरीरअंगोवंगं छण्हं संघडणाणं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगइ-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-आदाउज्जोव-पसत्थविहायगदि-अप्पसत्थविहायगदि-तस-थावर-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-पत्तेय-साहारणसरीर-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-दुभग-सुस्सर-दुस्सर-आदेज्ज-अणादेज्ज-अजसकित्ति-णिमिण-णीचागोदाणं जहण्णगो ट्ठिदिबंधो सागरोवमस्स बे-सत्तभागा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणया ॥ २४ ॥

णवुंसयवेद-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-पंचिंदियजादिआदीणं जहण्णओ ट्ठिदिबंधो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणूणसागरोवमस्स बे-सत्तभागमेत्तो होदु णाम, एदासिं वीससागरोवमकोडाकोडीमेत्तुक्कस्सट्ठिदिदंसणादो । किंतु इत्थिवेद-हस्स-रदि-थिर-सुभ-

---

स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, तिर्यग्गति, मनुष्यगति, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, छहों संस्थान, औदारिकशरीर-अंगोपांग, छहों संहनन, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, प्रशस्तविहायोगति, अप्रशस्तविहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येकशरीर, साधारणशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, अनादेय, अयशःकीर्त्ति, निर्माण और नीचगोत्र, इन प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध पल्योपमके असंख्यातवें भागसे कम सागरोपमके दो बटे सात भाग है ॥ २४ ॥

शंका—नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा और पंचेन्द्रियजाति आदि प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबंध पल्योपमके असंख्यातवें भागसे कम सागरोपमके दो बटे सात भागमात्र भले ही रहा आवे, क्योंकि, इन प्रकृतियोंकी बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट स्थिति देखी जाती है । किन्तु स्त्रीवेद, हास्य, रति, स्थिर शुभ, सुभग,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुभग-सुस्सरादीणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणूण-सागरोवमवेसत्तभागमेत्तजहण्ण-ट्ठिदिबंधो ण घडदे, एदासिं वीससागरोवमकोडाकोडीमेत्तुक्कस्सट्ठिदीए अभावादो ? ण, जदि वि एदासिमप्पणो उक्कस्सट्ठिदी वीससागरोवमकोडाकोडीमेत्ता णत्थि, तो वि मूलपयडिउक्कस्सट्ठिदिअणुसारेण ओहट्टमाणाणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणूण-सागरोवमवेसत्तभागमेत्तजहण्णट्ठिदिबंधाविरोहा। ण च इत्थिवेद-हस्स-रदीयो कसाय-बंधाणुसारिणीया, णोकसायस्स तदणुसरणविरोहा। एसा जहण्णट्ठिदी बादरेइंदियपज्जत्तएसु

और सुस्वर आदि प्रकृतियोंका पल्योपमके असंख्यातवें भागसे कम सागरोपमके दो बटे सात भागमात्र जघन्य स्थितिबन्ध नहीं घटित होता है, क्योंकि, इन स्त्रीवेदादि प्रकृतियोंकी वीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिका अभाव है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, यद्यपि इन स्त्रीवेद आदिकी अपनी उत्कृष्ट स्थिति वीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण नहीं है, तो भी मूल प्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थितिके अनुसार ह्रासको प्राप्त होती हुई इन प्रकृतियोंका पल्योपमके असंख्यातवें भागसे कम सागरोपमके दो बटे सात भागमात्र जघन्यस्थितिके बंधनेमें कोई विरोध नहीं है। तथा, स्त्रीवेद, हास्य और रति, ये प्रकृतियां कषायोंके बन्धका अनुसरण करनेवाली नहीं हैं, क्योंकि, नोकषायके कषाय-बन्धके अनुसरणका विरोध है।

विशेषार्थ—यहां शंकाकारका अभिप्राय यह है कि इस सूत्रमें जिन प्रकृतियोंकी एक ही प्रमाणवाली जघन्य स्थिति बतलाई गई है उनमेंसे नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, तिर्यंचगति, एकेन्द्रियजाति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिक, तैजस और कार्मण-शरीर, हुंडकसंस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, सृपाटिकासंहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्त्ति, निर्माण और नीचगोत्र, इन प्रकृतियोंका तो उत्कृष्ट स्थितिबन्ध २० कोड़ाकोड़ी सागर बतलाया गया है, इसलिए इनका एकेन्द्रियसम्बन्धी उत्कृष्ट स्थिति-बन्ध $\frac{२० \times १}{७०} = \frac{२}{७}$ कोड़ाकोड़ी सागरोपम और जघन्य स्थितिबन्ध उसमेंसे वीचार-स्थानोंका प्रमाण पल्योपमका असंख्यातवां भाग कम करनेसे प्राप्त हो जायगा। किन्तु सूत्रोक्त अन्य प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तो २० कोड़ाकोड़ी सागरोपमसे हीन है। जैसे- द्वितीय, त्रीन्द्रिय व चतुरिन्द्रियजाति, वामनसंस्थान, कीलितसंहनन, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणका १८ कोड़ाकोड़ी सागर, कुब्जकसंस्थान, और अर्धनाराचसंहननका १६ कोड़ाकोड़ी सागर, स्त्रीवेद, मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीका १५ कोड़ाकोड़ी सागर, स्वातिसंस्थान और नाराचसंहननका १४, न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान और वज्रनाराचसंहननका १२, तथा हास्य, रति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभनाराचसंहनन, प्रशस्तविहायोगति, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर और आदेयका १० कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पाये जानेसे नियमानुसार उनका जघन्य स्थिति बन्ध भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वविसुद्धेसु घेत्तव्वा, अण्णत्थ सव्वजहण्णट्ठिदिबंधस्स अणुवलंभादो । किं कारणं ? जादिविसोहीओ अवेक्खिय ट्ठिदिबंधस्स जहण्णत्तसंभवादो ।

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ २५ ॥

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ॥ २६ ॥

सुगमाणि दो वि सुत्ताणि ।

....

सूत्रोक्त एकरूप न होकर क्रमशः पल्योपमके असंख्यातवें भागसे हीन $\frac{१८}{७०}$, $\frac{१६}{७०}$, $\frac{१५}{७०}$, $\frac{१४}{७०}$, $\frac{१२}{७०}$ और $\frac{१०}{७०}$ कोड़ाकोड़ी सागरोपम होना चाहिये ? इस शंकाका धवलाकारने यह समाधान किया है कि उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति बराबर २० कोड़ाकोड़ी सागरोपम न होने पर भी उनकी मूलप्रकृतिकी अपेक्षा सामान्यरूपसे उत्कृष्टस्थिति २० कोड़ाकोड़ी सागरोपम मानी गई है, और उसी मूलप्रकृति सामान्यकी अपेक्षा नपुंसकवेदादि और स्त्रीवेदादिकी जघन्यस्थिति एकसी मान लेनेमें कोई विरोध नहीं आता । यहांपर पुनः यह दूसरी शंका उठ खड़ी हुई कि यदि मूलप्रकृतिके सामान्यकी अपेक्षा नामकर्मकी उक्त उत्तर प्रकृतियोंकी जघन्यस्थिति एकसी ग्रहण की गई सो तो ठीक है, पर स्त्रीवेद, हास्य और रति तो चारित्रमोहनीयके भेदरूप नोकषाय हैं, और इसलिए उन्हें कषायोंका अनुसरण करना चाहिये । कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति ४० कोड़ाकोड़ी सागरोपम है । अतएव उक्त इन नोकषायोंकी सूत्रोक्त जघन्य स्थिति सिद्ध नहीं होती । इसका धवलाकारने यह समाधान किया है कि नोकषाय कषायोंका अनुसरण नहीं करते । प्रकृतिसमुत्कीर्तन चूलिकामें कहा जा चुका है कि " स्थितियोंकी, अनुभागकी और उदयकी अपेक्षा कषायोंसे नोकषायोंके अल्पता पाई जाती है । " (देखो इसी भागका पृ. ४६.) ।

यह सूत्रोक्त जघन्यस्थिति सर्वविशुद्ध बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंमें ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, अन्यत्र सर्वजघन्य स्थितिबन्ध पाया नहीं जाता है ।

शंका— बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंके सिवाय अन्यत्र सर्वजघन्य स्थितिबन्ध नहीं पाये जानेका क्या कारण है ?

समाधान— विशिष्ट जातियोंकी विशुद्धियोंको देखकर ही स्थितिबन्धके जघन्यता संभव है । इसलिए बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंके सिवाय उसका अन्यत्र पाया जाना संभव नहीं है ।

पूर्व सूत्रोक्त स्त्रीवेदादि प्रकृतियोंका जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५ ॥

उक्त प्रकृतियोंके आबाधाकालसे हीन जघन्य कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्मनिषेक होता है ॥ २६ ॥

ये दोनों सूत्र सुगम हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णिरयाउअ-देवाउअस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो दसवाससहस्साणि[1] ॥ २७ ॥

सुगममेदं ।

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ २८ ॥

पुव्वकोडितिभागे वि भुज्जमाणाउए संते[2] देव-णेरइयदसवाससहस्सआउट्ठिदिबंध-संभवादो पुव्वकोडितिभागो आबाधा त्ति किण्ण परूविदो ? ण, एवं संते जहण्णट्ठिदीए अभावप्पसंगादो ।

आबाधा ॥ २९ ॥

कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ॥ ३० ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

तिरिक्खाउअ-मणुसाउअस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो खुद्दाभवग्गहणं[3] ॥ ३१ ॥

नारकायु और देवायुका जघन्य स्थितिबन्ध दश हजार वर्ष है ॥ २७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

नारकायु और देवायुका जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २८ ॥

शंका — भुज्यमान आयुमें पूर्वकोटीका त्रिभाग अवशिष्ट रहने पर भी देव और नारकसम्बन्धी दश हजार वर्षकी जघन्य आयुस्थितिका बन्ध संभव है, फिर 'पूर्वकोटिका त्रिभाग आबाधा है' ऐसा सूत्रमें क्यों नहीं प्ररूपण किया ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, ऐसा माननेपर जघन्य स्थितिके अभावका प्रसंग आता है। अर्थात् पूर्वकोटिका त्रिभागमात्र आबाधाकाल जघन्य आयुस्थिति-बन्धके साथ संभव तो है, पर जघन्य कर्मस्थितिका प्रमाण लानेके लिये तो जघन्य आबाधाकाल ही ग्रहण करना चाहिए, उत्कृष्ट नहीं ।

आबाधाकालमें नारकायु और देवायुकी कर्मस्थिति बाधा-रहित है ॥ २९ ॥

नारकायु और देवायुकी कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता है ॥ ३० ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

तिर्यगायु और मनुष्यायुका जघन्य स्थितिबन्ध क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ ३१ ॥

---

१ ××× वासदससहस्साणि । सुरणिरयआउगाणं जहण्णओ होदि ट्ठिदिबंधो ॥ गो. क. १४२.

२ प्रतिषु ' सिंते ' इति पाठः । ३ भिण्णमुहुत्तो णरतिरियाऊणं ॥ गो. क. १४२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुगममेदं ।

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ ३२ ॥

कुदो ? असंखेपद्धादो उवरिमआबाधाणं जहण्णट्ठिदीए सह विरोधादो ।

आबाधा ॥ ३३ ॥

कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ॥ ३४ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

णिरयगदि-देवगदि-वेउव्वियसरीर-वेउव्वियसरीरअंगोवंग-णिरयगदि-देवगदिपाओग्गाणुपुव्वीणामाणं जहण्णगो ट्ठिदिबंधो सागरोवमसहस्सस्स वे-सत्तभागा पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण ऊणया ॥३५॥

कुदो ? सव्वविसुद्धेण असण्णिपंचिंदिएण बज्झमाणत्तादो । एदस्स परूवणट्ठं एत्थुवजुज्जंतं किंचि अत्थपरूवणं कस्सामो । तं जहा– एइंदिएसु मिच्छत्तस्सुक्कस्सट्ठिदिबंधो एगं सागरोवमं । कसायाणं सागरोवमस्स चत्तारि सत्तभागा । णाणदंसणावरणंतराइय-वेदणीयाणं तिण्णि सत्तभागा । णाम-गोद-णोकसायाणं बे सत्तभागा । १ । ४/७ ।

यह सूत्र सुगम है ।

तिर्यगायु और मनुष्यायुका जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२ ॥

क्योंकि, असंक्षेपाद्धा कालसे ऊपरकी आबाधाओंका जघन्य स्थितिके साथ विरोध है ।

आबाधाकालमें तिर्यगायु और मनुष्यायुकी कर्मस्थिति बाधा-रहित है ॥ ३३ ॥

तिर्यगायु और मनुष्यायुकी कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता है ॥ ३४ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

नरकगति, देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी और देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध पल्योपमके संख्यातवें भागसे हीन सागरोपमसहस्रके दो बटे सात भाग है ॥ ३५ ॥

क्योंकि, यह जघन्य स्थिति सर्वविशुद्ध असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवके द्वारा बांधी जाती है । इसी जघन्य स्थितिबन्धके प्ररूपण करनेके लिए यहांपर उपयोगी कुछ अर्थकी प्ररूपणा करते हैं । वह इस प्रकार है— एकेन्द्रिय जीवोंमें मिथ्यात्वकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एक सागरोपम (१) है । कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एक सागरोपमके चार बटे सात भाग (४/७) है । ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और वेदनीय, इन कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एक सागरोपमके तीन बटे सात भाग (३/७) है । नामकर्म, गोत्रकर्म और नोकषायोंका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

$\frac{2}{7}$ । $\frac{2}{7}$ । एवं बेइंदियादीणमसण्णिपंचिंदियपज्जवसाणाणमुक्कस्सट्ठिदिबंधा वत्तव्वा । २५ । $\frac{100}{7}$ । $\frac{75}{7}$ । $\frac{50}{7}$ । एदे बीइंदियाणं । ५० । $\frac{200}{7}$ । $\frac{150}{7}$ । $\frac{100}{7}$ । एदे तीइंदियाणं । १०० । $\frac{400}{7}$ । $\frac{300}{7}$ । $\frac{200}{7}$ । एदे चदुरिंदियाणं । १००० । $\frac{4000}{7}$ । $\frac{3000}{7}$ । $\frac{2000}{7}$ । एदे असण्णिपंचिंदियाणमुक्कस्सट्ठिदिबंधा[1] ।

उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एक सागरोपमके दो बटे सात भाग ($\frac{2}{7}$) है। इसी प्रकार द्वीन्द्रिय जीवोंसे आदि लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तकके जीवोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कहना चाहिए। द्वीन्द्रिय जीवोंमें मिथ्यात्वकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पच्चीस (२५) सागरोपम है। कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सौ बटे सात ($\frac{100}{7}$) सागरोपम है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और वेदनीय, इन कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पचहत्तर बटे सात ($\frac{75}{7}$) सागरोपम है। नामकर्म, गोत्रकर्म और नोकषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पचास बटे सात ($\frac{50}{7}$) सागरोपम है। ये द्वीन्द्रिय जीवोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध हैं। त्रीन्द्रिय जीवोंमें मिथ्यात्वकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पचास (५०) सागरोपम है। कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध दो सौ बटे सात ($\frac{200}{7}$) सागरोपम है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और वेदनीय, इन कर्मोंका डेढ़ सौ बटे सात ($\frac{150}{7}$) सागरोपम है। नामकर्म, गोत्रकर्म और नोकषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सौ बटे सात ($\frac{100}{7}$) सागरोपम है। ये त्रीन्द्रिय जीवोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध हैं। चतुरिन्द्रिय जीवोंमें मिथ्यात्वकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सौ (१००) सागरोपम है। कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध चार सौ बटे सात ($\frac{400}{7}$) सागरोपम है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और वेदनीय, इन कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तीन सौ बटे सात ($\frac{300}{7}$) सागरोपम है। नामकर्म, गोत्रकर्म और नोकषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध दो सौ बटे सात ($\frac{200}{7}$) सागरोपम है। ये चतुरिन्द्रिय जीवोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध हैं। असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवोंमें मिथ्यात्वकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एक हजार (१०००) सागरोपम है। कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध चार हजार बटे सात ($\frac{4000}{7}$) सागरोपम है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और वेदनीय, इन कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तीन हजार बटे सात ($\frac{3000}{7}$) सागरोपम है। नामकर्म, गोत्रकर्म और नोकषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध दो हजार बटे सात ($\frac{2000}{7}$) सागरोपम है। ये असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध हैं।

---

१ एगं पणकदि पण्णं सयं सहस्सं च मिच्छवरबंधो । इगिविगलाणं अवरं पल्लासंखूणसंखूणं ॥ जदि सत्तरिस्स एत्तियमेत्तं किं होदि तीसियादीणं । इदि संपाति सेसाणं इगिविगलेसु उभयठिदी ॥ गो. क. १४४-१४५.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

---

इस उपर्युक्त कथनका कोष्ठक इस प्रकार है—

स्थितिबन्ध	कर्मोंके नाम	एकेन्द्रिय	द्वीन्द्रिय	त्रीन्द्रिय	चतुरिन्द्रिय	असंज्ञी पंचेन्द्रिय
उत्कृष्ट	मिथ्यात्व	१ सागरोपम	२५ साग.	५० साग.	१०० साग.	१००० सागरोपम
,,	सोलह कषाय	$\frac{४}{७}$,,	$\frac{१००}{७}$,,	$\frac{२००}{७}$,,	$\frac{४००}{७}$,,	$\frac{४०००}{७}$,,
,,	ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय अन्तराय	$\frac{३}{७}$,,	$\frac{७५}{७}$,,	$\frac{१५०}{७}$,,	$\frac{३००}{७}$,,	$\frac{३०००}{७}$,,
,,	नामकर्म गोत्रकर्म नोकषाय	$\frac{२}{७}$,,	$\frac{५०}{७}$,,	$\frac{१००}{७}$,,	$\frac{२००}{७}$,,	$\frac{२०००}{७}$,,

अपनी उत्कृष्ट स्थितिमेंसे पल्यका असंख्यातवां भाग कम करनेपर जो प्रमाण शेष रहे, उतनी जघन्य स्थितिको एकेन्द्रिय जीव बांधते हैं। द्वीन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तकके जीव अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिमेंसे पल्यका संख्यातवां भाग कम करनेपर जो प्रमाण शेष रहे, उतनी जघन्य स्थितिको बांधते हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवोंका उत्कृष्ट और जघन्य स्थितिबन्ध सूत्रोंमें पृथक् पृथक् दिखाया गया है। उसका कोष्ठक इस प्रकार है—

संज्ञी पंचेन्द्रिय	मिथ्यात्वकर्म दर्शनमोहनीय	चारित्र-मोहनीय	ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय अन्तराय	नामकर्म गोत्रकर्म	आयुकर्म
उत्कृष्ट	७० कोड़ाकोड़ी सागरो.	४० कोड़ा. सागरो.	३० कोड़ा. सागरो.	२० कोड़ा. सागरो.	३३ सागरोपम
जघन्य	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त	१२ अन्त. वेदनीयकी १ ,, शेष कर्मोंकी	८ अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एइंदिएसु वीचारट्ठाणाणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, आबाधाट्ठाणाणि आवलियाए असंखेज्जदिभागो। बीइंदियादिसु वीचारट्ठाणाणि पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो, आबाधाठाणाणि आवलियाए संखेज्जदिभागो। वेउव्वियछक्कं च णामकम्मं, तेण सागरोवमसहस्सवेसत्तभागा पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण ऊणा तस्स जहण्णट्ठिदिबंधो होदि।

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ ३६ ॥

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ॥ ३७ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि।

आहारसरीर-आहारसरीरअंगोवंग-तित्थयरणामाणं जहण्णगो ट्ठिदिबंधो अंतोकोडाकोडीओ[1] ॥ ३८ ॥

कुदो? अपुव्वकरणचरिमसमयादो सत्तमभागमोदिण्णस्स अपुव्वकरणखवगस्स बंधादो।

एकेन्द्रिय जीवोंमें वीचारस्थान पल्योपमके असंख्यातवें भाग हैं, और आबाधास्थान आवलीके असंख्यातवें भाग हैं। द्वीन्द्रियादि जीवोंमें वीचारस्थान पल्योपमके संख्यातवें भाग हैं, और आबाधास्थान आवलीके संख्यातवें भाग हैं। वैक्रियिकषट्क, अर्थात् नरकगति आदि सूत्रोक्त छहों प्रकृतियां नामकर्मकी हैं, इसलिए पल्योपमके संख्यातवें भागसे हीन सागरोपमसहस्रके दो बटे सात भाग ($\frac{2000}{7}$) उस वैक्रियिकषट्कका जघन्य स्थितिबन्ध होता है।

पूर्व सूत्रोक्त नरकगति आदि छहों प्रकृतियोंका जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३६ ॥

उक्त प्रकृतियोंके आबाधाकालसे हीन कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता है ॥ ३७ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं।

आहारकशरीर, आहारकशरीर-अंगोपांग और तीर्थकर नामकर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम है ॥ ३८ ॥

क्योंकि, अपूर्वकरणके चरम समयसे लेकर सप्तम भाग तक उतरे हुए अपूर्वकरण क्षपकके इन तीनों प्रकृतियोंका बन्ध होता है।

१ तित्थाहाराणंतोकोडाकोडी जहण्णठिदिबंधो। खवगे सगसगबंधच्छेदणकाले हवे णियमा॥ गो. क. १४१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ ३९ ॥

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ॥ ४० ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

जसगित्ति-उच्चागोदाणं जहण्णगो ट्ठिदिबंधो अट्ठ मुहुत्ताणि[१] ॥ ४१ ॥

कुदो ? चरिमसमयसकसायबंधादो ।

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ ४२ ॥

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ॥ ४३ ॥

एदाणि दो वि सुगमाणि ।

एत्थ जहण्णुक्कस्सपदेसबंधो अणुभागबंधो च किण्ण परूविदो ? ण, पयडि-

---

आहारकशरीर, आहारक-अंगोपांग और तीर्थंकर नामकर्मका जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३९ ॥

उक्त कर्मोंके आबाधाकालसे हीन कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता है ॥ ४० ॥

यह दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

यशःकीर्ति और उच्चगोत्र, इन दोनों कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध आठ मुहूर्त है ॥ ४१ ॥

क्योंकि, चरम समयवर्ती सकषायी जीवके इन दोनों कर्मोंका बन्ध होता है ।

यशःकीर्ति और उच्चगोत्र, इन दोनों कर्मोंका जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ४२ ॥

उक्त कर्मोंके आबाधाकालसे हीन कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता है ॥ ४३ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

शंका— यहांपर, अर्थात् जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कहते समय या उनके पश्चात्, जघन्य और उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध तथा अनुभागबन्ध क्यों नहीं प्ररूपण किया ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धके अविनाभावी प्रकृति-

---

१ नामगोत्रयोरष्टौ ॥ त. सू. ८, १९.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

ट्ठिदिबंधेसु अणुभाग-पदेसाविणाभावेसु परूविदेसु तप्परूवणासिद्धीदो। तं जहा— सण्णि-पंचिंदियधुवट्ठिदिं अंतोकोडाकोडिं सग-सगकम्मपडिभाइयमप्पप्पणो उक्कस्सट्ठिदिम्हि सोहिदे ट्ठिदिबंधट्ठाणविसेसो होदि। तत्थ एगरूवं पक्खित्ते ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि हवंति। एक्केक्कस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणस्स असंखेज्जा लोगा ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि जहाकमेण विसेसाहियाणि[1]। विसेसो पुण असंखेज्जा लोगा। तेसिं पडिभागो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। कुदो एदेसिमत्थित्तं णव्वदे ? जहण्णुक्कस्सट्ठिदीहिंतो सिद्धट्ठिदि-बंधट्ठाणण्णहाणुववत्तीदो। ण च कारणमंतरेण कज्जस्सुप्पत्ती कहिं पि होदि, अण-वट्ठाणादो। ताणि च ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि जहण्णट्ठाणादो जावप्पप्पणो उक्कस्सट्ठाणं ताव अणंतभागवड्ढी असंखेज्जभागवड्ढी संखेज्जभागवड्ढी संखेज्जगुणवड्ढी असंखेज्जगुण-वड्ढी अणंतगुणवड्ढी त्ति छव्विधाए वड्ढीए ट्ठिदाणि। अणंतभागवड्ढिकंडयं[2] गंतूण एगा असंखेज्जभागवड्ढी होदि। असंखेज्जभागवड्ढिकंडयं गंतूण एगा संखेज्जभागवड्ढी होदि।

....

बन्ध और स्थितिबन्धके प्ररूपण किये जानेपर उनकी प्ररूपणा स्वतः सिद्ध है। वह इस प्रकार है— अपने अपने कर्मके प्रतिभागीरूप अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवोंकी ध्रुवस्थितिको अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिमेंसे घटानेपर स्थितिबन्धका स्थान-विशेष होता है। उसमें एक रूप और मिलानेपर स्थितिबन्धके स्थान हो जाते हैं। एक एक स्थितिबन्धस्थानके असंख्यात लोकप्रमाण स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान होते हैं, जो कि यथाक्रमसे विशेष विशेष अधिक हैं। इस विशेषका प्रमाण असंख्यात लोक है। उनका प्रतिभाग पल्योपमका असंख्यातवां भाग है।

शंका— इन स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानोंका अस्तित्व कैसे जाना जाता है ?

समाधान— जघन्य और उत्कृष्ट स्थितियोंसे प्राप्त या सिद्ध होनेवाले स्थिति-बन्धस्थानोंकी अन्यथानुपपत्तिसे स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानोंका अस्तित्व जाना जाता है। कारणके विना कार्यकी उत्पत्ति कहीं पर भी होती नहीं है, क्योंकि, यदि ऐसा न माना जाय तो अनवस्थादोष प्राप्त होगा।

वे स्थितिबन्धाध्यव्यवसायस्थान जघन्य स्थानसे लेकर अपने अपने उत्कृष्ट स्थान तक अनन्तभागवृद्धि; असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धि, इस छह प्रकारकी वृद्धिसे अवस्थित हैं। अनन्तभागवृद्धिकांडक जाकर, अर्थात् सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागमात्र वार अनन्त-भागवृद्धि हो जानेपर, एक वार असंख्यातभागवृद्धि होती है। असंख्यातभागवृद्धि-कांडक जाकर एक वार संख्यातभागवृद्धि होती है। संख्यातभागवृद्धिकांडक जाकर

....

१ अवरट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणा असंखलोगमिदा। अहियकमा उक्कस्सट्ठिदिपरिणामो त्ति णियमेण ॥ गो. क. ९४७.

२ कांडकं अंगुलासंख्यातभागमात्रवारः। गो. जी., मं. प्र. टी. ३२९. कांडकं च समय-परिभाषयाऽङ्गुलमात्रक्षेत्रासंख्येयभागगताकाशप्रदेशराशिसंख्याप्रमाणमभिधीयते। कर्मप्र. पृ. ९०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संखेज्जभागवड्ढिकंडयं गंतूण एगा संखेज्जगुणवड्ढी होदि। संखेज्जगुणवड्ढिकंडयं गंतूण एगा असंखेज्जगुणवड्ढी होदि। असंखेज्जगुणवड्ढिकंडयं गंतूण एगा अणंतगुणवड्ढी होदि। एदमेगं छट्ठाणं। एरिसाणि असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि होंति[1]। सव्वट्ठिदि-बंधट्ठाणाणं एक्केक्कट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणस्स हेट्ठा छवड्ढिकमेण असंखेज्जलोगमेत्ताणि अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि होंति[2]। ताणि च जहण्णकसाउदयअणुभागबंधज्झवसाण-ट्ठाणप्पहुडि उवरिं जाव जहण्णट्ठिदि-उक्कस्सकसाउदयट्ठाणअणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि त्ति विसेसाहियाणि[3]। विसेसो पुण असंखेज्जा लोगा। तस्स पडिभागो वि असंखेज्जा लोगा। एदेसिमत्थित्तं कुदो णव्वदे? कसायउदयट्ठाणादो अणुभागेण विणा अलद्धप्प-सरूवादो। तदो सिद्धा पयडि-ट्ठिदिबंधादो अणुभागबंधस्स सिद्धी।

कधं पदेसबंधस्स तदो सिद्धी? उच्चदे– ठिदिबंधे णिसेयविरयणा परूविदा।

एक वार संख्यातगुणवृद्धि होती है। संख्यातगुणवृद्धिकांडक जाकर एक वार असंख्यात-गुणवृद्धि होती है। असंख्यातगुणवृद्धिकांडक जाकर एक वार अनन्तगुणवृद्धि होती है। (यहां सर्वत्र कांडकसे अभिप्राय सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागमात्र वारोंसे है।) यह एक षड्वृद्धिरूप स्थान है। इस प्रकारके असंख्यात लोकमात्र षड्वृद्धिरूप स्थान उन स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानोंके होते हैं।

सर्व स्थितिबंधोंसम्बन्धी एक एक स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानके नीचे उपर्युक्त षड्वृद्धिके क्रमसे असंख्यात लोकमात्र अनुभागबंधाध्यवसायस्थान होते हैं। वे अनुभागबंधाध्यवसायस्थान जघन्य कषायोदयसम्बन्धी अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानसे लेकर ऊपर जघन्यस्थितिके उत्कृष्ट कषायोदयस्थानसम्बन्धी अनुभागबन्धाध्यवसाय-स्थान तक विशेष विशेष अधिक हैं। यहांपर विशेषका प्रमाण असंख्यात लोक है। तथा उसका प्रतिभाग भी असंख्यात लोक है।

शंका—इन अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानोंका अस्तित्व कैसे जाना जाता है?

समाधान—अनुभागके विना जिनका आत्मस्वरूप प्राप्त नहीं हो सकता है, ऐसे कषायोंके उदयस्थानोंसे अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानोंका अस्तित्व जाना जाता है।

इसलिए यह बात सिद्ध हुई कि प्रकृतिबन्ध और स्थितिबन्धसे अनुभागबन्धकी सिद्धि होती है।

शंका—प्रकृतिबन्ध और स्थितिबन्धसे प्रदेशबन्धकी सिद्धि कैसे होती है?

समाधान—कहते हैं— स्थितिबन्धमें निषेकोंकी रचना प्ररूपण की गई है।

---

१ लोगाणमसंखपमा जहण्णउड्ढिम्मि तम्हि छट्ठाणा। ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणं होंति सव्वण्हं॥ गो. क. ९५२.　　२ अणुभागाण बंधज्झवसाणमसंखलोगगुणिदमदो॥ गो. क. २६०.

३ थोवाणि कसाउदये अज्झवसाणाणि सव्वडहरम्मि। बिइयाइ विसेसहियाणि जाव उक्कोसगं ठाणं॥ ५३॥ कर्मप्र. पृ. ११८.

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

ण सा पदेसेहि विणा संभवदि, विरोहादो। तदो तत्तो चेव पदेसबंधो वि सिद्धो। पदेसबंधादो जोगट्ठाणाणि[1] सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि[2] जहण्णट्ठाणादो अवट्ठिद-पक्खेवेण सेडीए असंखेज्जदिभागपडिभागिएण विसेसाहियाणि जाउक्कस्सजोगट्ठाणेत्ति दुगुण-दुगुणगुणहाणिअद्धाणेहि सहियाणि सिद्धाणि हवंति। कुदो? जोगेण विणा पदेस-बंधाणुववत्तीदो। अथवा अणुभागबंधादो पदेसबंधो तक्कारणजोगट्ठाणाणि च सिद्धाणि हवंति। कुदो? पदेसेहि विणा अणुभागाणुववत्तीदो। ते च कम्मपदेसा जहण्णवग्गणाए बहुआ, तत्तो उवरि वग्गणं पडि विसेसहीणा अणंतभागेण। भागहारस्स अद्धं गंतूण दुगुणहीणा। एवं णेदव्वं जाव चरिमवग्गणोत्ति। एवं चत्तारि य बंधा परूविदा होंति।

संतोदय-उदीरणाओ किण्ण परूविदाओ? ण, बंधपरूवणादो तासिं पि परूवणा-सिद्धीदो। तं जहा- बंधो चेव बंधविदियसमयप्पहुडि संतकम्मं उच्चदि जाव णिल्लेवण-

---

वह निषेक-रचना प्रदेशोंके विना संभव नहीं है, क्योंकि, प्रदेशोंके विना निषेक-रचना माननेमें विरोध आता है। इसलिए निषेक-रचनासे ही प्रदेशबन्ध भी सिद्ध होता है।

प्रदेशबन्धसे योगस्थान सिद्ध होते हैं। वे योगस्थान जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र हैं, और जघन्य योगस्थानसे लेकर जगश्रेणीके असंख्यातवें भाग प्रतिभागरूप अवस्थित प्रक्षेपके द्वारा विशेष अधिक होते हुए उत्कृष्ट योगस्थान तक दुगुने दुगुने गुणहानि आयामसे सहित सिद्ध होते हैं, क्योंकि, योगके विना प्रदेशबन्ध नहीं हो सकता है।

अथवा, अनुभागबन्धसे प्रदेशबन्ध और उसके कारणभूत योगस्थान सिद्ध होते हैं, क्योंकि, प्रदेशोंके विना अनुभागबन्ध नहीं हो सकता है। वे कर्म-प्रदेश जघन्य वर्गणामें बहुत होते हैं, उससे ऊपर प्रत्येक वर्गणाके प्रति विशेष हीन, अर्थात् अनन्तवें भागसे हीन होते जाते हैं। और भागहारके आधे प्रमाण दूर जाकर दुगुने हीन, अर्थात् आधे, रह जाते हैं। इस प्रकार यह क्रम अन्तिम वर्गणा तक ले जाना चाहिए।

इस प्रकार प्रकृतिबन्ध और स्थितिबन्धके द्वारा यहां चारों ही बन्ध प्ररूपित हो जाते हैं।

शंका — यहांपर, सत्त्व, उदय और उदीरणा, इन तीनोंका प्ररूपण क्यों नहीं किया?

समाधान — नहीं, क्योंकि, बन्धकी प्ररूपणासे उनकी, अर्थात् सत्त्व, उदय और उदीरणाकी, भी प्ररूपणा सिद्ध हो जाती है। वह इस प्रकार है— बन्ध ही बंधनेके दूसरे समयसे लेकर निर्लेपन अर्थात् क्षपण होनेके अन्तिम समय तक सत्कर्म या सत्त्व

---

१ जोगा पयडि-पदेसा। गो. क. २५७.

२ सेढिअसंखेज्जदिमा जोगट्ठाणाणि होंति सव्वाणि। गो. क. २५८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चरिमसमओ त्ति । सो चेव बंधो बंधावलियादिक्कंतो ओकड्डिदूण उदए संछुब्भमाणो[1] उदीरणा होदि । सो चेव दुसमयाधियबंधावलियाए[2] ट्ठिदिक्खएण उदए पदमाणो उदयसण्णिदो होदि त्ति ।

एक्केक्किस्से पयडीए पयडिबंधो अणुभागबंधो ट्ठिदिबंधो पदेसबंधो चेदि चउव्विहो बंधो । तत्थ एक्केक्को चउव्विहो उक्कस्सो अणुक्कस्सो जहण्णो अजहण्णो त्ति[3] । एदेहि सोलसेहि सव्वबंधपयडीओ गुणिदे असीदीए ऊणवेसहस्सबंधवियप्पा होंति (१९२०) । एवमुदओदीरण-सत्ताणं पि भेदा परूवेदव्वा । तेसिं पमाणमेदं २३६८ । २३६८ । २३६८ । तेसिं सव्वसमासो ९०२४ । सव्वेदम्हि परूविदे —

सत्तमी चूलिया समत्ता होदि ।

कहलाता है। वही बन्ध बंधावलीके, अर्थात् बंधनेकी आवलीके, व्यतीत होनेपर अपकर्षण कर जब उदयमें संक्षुभ्यमान किया जाता है, तब वह उदीरणा कहलाता है। वही बन्ध दो समय अधिक बंधावलीके व्यतीत हो जानेपर स्थितिके, अर्थात् निषेकस्थितिके, क्षयसे उदयमें पतमान, अर्थात् गिरता हुआ, ' उदय ' इस संज्ञावाला होता है। इस प्रकार बन्धकी प्ररूपणासे सत्त्व, उदय और उदीरणाकी भी प्ररूपणा सिद्ध हो जाती है।

एक एक प्रकृतिका प्रकृतिबन्ध, अनुभागबन्ध, स्थितिबन्ध और प्रदेशबन्ध, इस प्रकार चार तरहका बन्ध होता है। उनमें वह एक एक बन्ध भी उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्यके भेद से चार प्रकारका होता है। इन सोलह भेदोंके द्वारा सर्व बन्धप्रकृतियोंको गुणित करनेपर (१२० × १६ = १९२०) अस्सी कम दो हजार बन्धके भेद हो जाते हैं। इसी प्रकार उदय, उदीरणा और सत्ताके भी भेद प्ररूपण करना चाहिए। उनका प्रमाण यह है—

उदयके विकल्प (१४८ × १६ =) २३६८.
उदीरणाके ,, (१४८ × १६ =) २३६८.
सत्ताके ,, (१४८ × १६ =) २३६८.
इन सबका जोड़ (१९२० + २३६८ + २३६८ + २३६८ =) ९०२४ होता है।

इस सबके प्ररूपण करनेपर—

सातवीं चूलिका समाप्त होती है ।

---

१ प्रतिषु ' संतुब्भमाणो ' इति पाठः ।　　२ प्रतिषु ' दुसमयाविय- ' इति पाठः ।

३ पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधो त्ति चदुविहो बंधो । उक्कस्समणुक्कस्सं जहण्णमजहण्णगं ति पुधं ॥ गो. क. ८९.

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

एवदिकालट्ठिदिएहिं कम्मेहि सम्मत्तं ण लहदि ॥ १ ॥

एदं देसामासियसुत्तं, तेण एदेसु कम्मेसु जहण्णट्ठिदिबंधे उक्कस्सट्ठिदिबंधे जहण्णुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मेसु जहण्णुक्कस्सअणुभागसंतकम्मेसु जहण्णुक्कस्सपदेससंतकम्मेसु च संतेसु सम्मत्तं ण पडिवज्जदि त्ति घेत्तव्वं[2] ।

लभदि त्ति विभासा ॥ २ ॥

जे पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसे बंधंतो तेहि[3] पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसेहि संतसरूवेण होंतेहि उदीरिज्जमाणेहि सम्मत्तं पडिवज्जदि तेसिं परूवणा कीरदि त्ति पइज्जासुत्तमेयं ।

एदेसिं चेव सव्वकम्माणं जावे अंतोकोडाकोडिट्ठिदिं बंधदि तावे पढमसम्मत्तं लभदि ॥ ३ ॥

इतने कालप्रमाण स्थितिवाले कर्मोंके द्वारा जीव सम्यक्त्वको नहीं प्राप्त करता है ॥ १ ॥

यह देशामर्शक सूत्र है, इसलिए इन (पूर्व दो चूलिकाओंमें उक्त) कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्ध होनेपर, उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होनेपर, जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्म अर्थात् स्थितिसत्त्व होनेपर, जघन्य और उत्कृष्ट अनुभागसत्त्व होनेपर, तथा जघन्य और उत्कृष्ट प्रदेशसत्त्व होनेपर जीव सम्यक्त्वको नहीं प्राप्त करता है, यह अर्थ ग्रहण करना चाहिए ।

प्रथम चूलिकाका प्रथम सूत्र-पठित 'लभदि' यह जो पद है, उसकी व्याख्या की जाती है ॥ २ ॥

जिन प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंको बांधता हुआ, उन प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंके सत्त्वस्वरूप होते हुए, और उदीरणा किये जाते हुए यह जीव सम्यक्त्वको प्राप्त करता है, उनकी प्ररूपणा की जाती है, इस प्रकार यह प्रतिज्ञासूत्र है ।

इन ही सर्व कर्मोंकी जब अन्तःकोड़ाकोड़ी स्थितिको बांधता है, तब यह जीव प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करता है ॥ ३ ॥

---

१ प्रतिषु 'एवदिकाले ट्ठिदीएहि' इति पाठः ।

२ उत्कृष्टस्थितिकेषु कर्मसु जघन्यस्थितिकेषु च प्रथमसम्यक्त्वलाभो न भवति । स. सि. २, ३. जेट्ठवरट्ठिदिबंधे जेट्ठवरट्ठिदितियाण सत्ते य । ण य पडिवज्जदि पढमुवसमसम्मं मिच्छजीवो हु ॥ लब्धि. ८.

३ प्रतिषु 'बेहि' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पढमसम्मत्तलंभजोग्गो जीवो जेण उवयारेण पढमसम्मत्तं लब्भदि त्ति परूविदो। अत्थदो पुण एत्थ ण लभदि, तिकरणचरिमसमए सम्मत्तुप्पत्तीदो। एदेण खओवसमलद्धी विसोहिलद्धी देसणलद्धी पाओग्गलद्धि त्ति चत्तारि लद्धीओ परूविदाओ। पुव्वसंचिदकम्ममलपडलस्स अणुभागफद्दयाणि जदा विसोहीए पडिसमयमणंतगुणहीणाणि होदूणुदीरिज्जंति तदा खओवसमलद्धी होदि[1]। पडिसमयमणंतगुणहीणकमेण उदीरिदअणुभागफद्दयजणिदजीवपरिणामो सादादिसुहकम्मबंधणिमित्तो असादादिअसुहकम्मबंधविरुद्धो विसोही णाम। तिस्से उवलंभो विसोहिलद्धी णाम[2]। छद्दव्व-णवपदत्थोवदेसो देसणा णाम। तीए देसणाए परिणदआइरियादीणमुवलंभो, देसिदत्थस्स गहण-धारण-विचारणसत्तीए समागमो अ देसणलद्धी णाम[3]। सव्वकम्माणमुक्कस्सट्ठिदिमुक्कस्साणुभागं च घादिय अंतोकोडाकोडीट्ठिदिम्हि वेट्ठाणाणुभागे च अवट्ठाणं पाओग्गलद्धी णाम[4]।

प्रथमोपशमसम्यक्त्वके प्राप्त करने योग्य जीव प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करता है, यह बात उपचारसे प्ररूपण की गई है। परन्तु यथार्थसे यहांपर, अर्थात् उक्त प्रकारकी कर्मस्थिति होनेपर, नहीं प्राप्त करता है, क्योंकि, त्रिकरण, अर्थात् अधःकरण अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वकी उत्पत्ति होती है। इस सूत्रके द्वारा क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि और प्रायोग्यलब्धि, ये चारों लब्धियां प्ररूपण की गई हैं। पूर्व संचित कर्मोंके मलरूप पटलके अनुभागस्पर्धक जिस समय विशुद्धिके द्वारा प्रतिसमय अनन्तगुणहीन होते हुए उदीरणाको प्राप्त किये जाते हैं, उस समय क्षयोपशमलब्धि होती है। प्रतिसमय अनन्तगुणित हीन क्रमसे उदीरित अनुभागस्पर्धकोंसे उत्पन्न हुआ, साता आदि शुभ कर्मोंके वन्धका निमित्तभूत और असाता आदि अशुभ कर्मोंके बंधका विरोधी जो जीवका परिणाम है, उसे विशुद्धि कहते हैं। उसकी प्राप्तिका नाम विशुद्धिलब्धि है। छह द्रव्यों और नौ पदार्थोंके उपदेशका नाम देशना है। उस देशनासे परिणत आचार्य आदिकी उपलब्धिको और उपदिष्ट अर्थके ग्रहण, धारण तथा विचारणकी शक्तिके समागमको देशनालब्धि कहते हैं। सर्व कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति और उत्कृष्ट अनुभागको घात करके अन्तःकोड़ाकोड़ी स्थितिमें, और द्विःस्थानीय अनुभागमें अवस्थान करनेको प्रायोग्यलब्धि कहते हैं।

१ कम्ममलपडलसत्ती पडिसमयमणंतगुणविहीणकमा। होदूणुदीरदि जदा तदा खओवसमलद्धी दु ॥ लब्धि. ४.

२ आदिमलद्धिभवो जो भावो जीवस्स सादपहुदीणं। सत्थाणं पयडीणं बंधणजोगो विसुद्धलद्धी सो ॥ लब्धि. ५.

३ छद्दव्वणवपयत्थोवदेसयरसूरिपहुदिलाहो जो। देसिदपदत्थधारणलाहो वा तदियलद्धी दु ॥ लब्धि. ६.

४ अंतोकोडाकोडी विट्ठाणे ठिदिरसाण जं करणं। पाउग्गलद्धिणामा भव्वाभव्वेसु सामण्णा ॥ लब्धि. ७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुदो ? एदेसु संतेसु करणजोग्गभाउवलंभादो । सुत्ते काललद्धी चेव परूविदा, तम्हि एदासिं लद्धीणं कधं संभवो ? ण, पडिसमयमणंतगुणहीणअणुभागुदीरणाए अणंतगुण-कमेण वड्डमाणविसोहीए आइरियोवदेसोवलंभस्स य तत्थेव संभवादो । एदाओ चत्तारि वि लद्धीओ भवियाभवियमिच्छाइट्ठीणं साहारणाओ, दोसु वि एदाणं संभवादो । उत्तं च–

खयउवसमिय-विसोही देसण-पाओग्ग-करणलद्धी य ।
चत्तारि वि सामण्णा करणं पुण होइ सम्मत्ते[1] ॥ १ ॥

क्योंकि, इन अवस्थाओंके होनेपर करण, अर्थात् पांचवीं करणलब्धिके योग्य भाव पाये जाते हैं ।

विशेषार्थ—यहांपर अनुभागको घात करके द्विस्थानीय अनुभागमें अवस्थान कहा है उसका अभिप्राय यह है कि घातिया कर्मोंकी अनुभागशक्ति लता, दारु, अस्थि और शैलके समान चार प्रकारकी होती है । अघातिया कर्मोंमें दो विभाग हैं, पुण्यप्रकृतिरूप और पापप्रकृतिरूप । पुण्यरूप अघातिया कर्मोंकी अनुभागशक्ति गुड़, खांड, शक्कर और अमृतके समान होती है, और पापरूप अघातिया कर्मोंकी अनुभाग-शक्ति नीम, कांजीर, विष और हालाहलके समान हीनाधिकता लिए होती है । (देखो गो. क. गाथा १८०–१८४) प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख जीव प्रायोग्यलब्धिके द्वारा घातिया कर्मोंके अनुभागको घटाकर लता और दारु, इन दो स्थानोंमें, तथा अघातिया कर्मोंकी पापरूप प्रकृतियोंके अनुभागको नीम और कांजीर, इन दो स्थानोंमें अवस्थित करता है । इसीको द्विस्थानीय अनुभागमें अवस्थान कहते हैं ।

शंका—सूत्रमें केवल एक काललब्धि ही प्ररूपण की गई है, उसमें इन शेष लब्धियोंका होना कैसे संभव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, प्रतिसमय अनन्तगुणहीन अनुभागकी उदीरणाका, अनन्तगुणितक्रम द्वारा वर्धमान विशुद्धिका और आचार्यके उपदेशकी प्राप्तिका उसी एक काललब्धिमें होना संभव है । अर्थात् उक्त चारों लब्धियोंकी प्राप्ति काललब्धिके ही आधीन है, अतः वे चारों लब्धियां काललब्धिमें अन्तर्निहित हो जाती हैं ।

ये प्रारंभकी चारों ही लब्धियां भव्य और अभव्य मिथ्यादृष्टि जीवोंके साधारण हैं, क्योंकि, दोनों ही प्रकारके जीवोंमें इन चारों लब्धियोंका होना संभव है । कहा भी है–

क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि और करणलब्धि, ये पांच लब्धियां होती हैं । इनमेंसे पहली चार तो सामान्य हैं, अर्थात् भव्य और अभव्य, दोनों प्रकारके जीवोंके होती हैं । किन्तु करणलब्धि सम्यक्त्व होनेके समय होती है ॥ १ ॥

१ लब्धि. ३. परं तत्र चतुर्थचरणे ' करणं सम्मचारित्ते ' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवमभव्वजीवजोग्गपरिणामे ट्ठिदिअणुभागाणं खंडयघादं बहुवारं करिय गुरूव-देसबलेण तेण विणा वा अभव्वजीवजोग्गविसोहीओ वोलिय भव्वजीवजोग्गविसोहीए अधापवत्तकरणसण्णिदाए भविओ जीवो परिणमइ[1], तस्स जीवस्स लक्खणजाणावणट्ठ-मुत्तरसुत्तं भणदि —

सो पुण पंचिंदिओ सण्णी मिच्छाइट्ठी पज्जत्तओ सव्व-विसुद्धो[2] ॥ ४ ॥

जो सो सम्मत्तं पडिवज्जंतओ एइंदिओ बीइंदिओ तीइंदिओ चउरिंदियो वा ण होदि, तत्थ सम्मत्तग्गहणपरिणामाभावा । तदो पंचिंदिओ चेव । तत्थ वि असण्णी ण होदि, तेसु मणेण विणा विसिट्ठणाणाणुप्पत्तीदो । तदो सो सण्णी चेव । सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी वा पढमसम्मत्तं ण पडिवज्जदि, एदेसिं तेण पज्जाएण परिणमणसत्तीए अभावादो । उवसमसेडिं चडमाणवेदगसम्माइट्ठिणो उवसमसम्मत्तं पडि-

इस प्रकार अभव्य जीवोंके योग्य परिणामके होने पर स्थिति और अनुभागोंके कांडकघातको बहु वार करके गुरूपदेशके बलसे, अथवा उसके विना भी, अभव्य जीवोंके योग्य विशुद्धियोंको व्यतीत करके भव्य जीवोंके योग्य अधःप्रवृत्तकरण संज्ञावाली विशुद्धिमें जो भव्य जीव परिणत होता है, उस जीवका लक्षण बतलानेके लिए आचार्य उत्तर सूत्र कहते हैं—

वह प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करनेवाला जीव पंचेन्द्रिय, संज्ञी, मिथ्या-दृष्टि, पर्याप्त और सर्व-विशुद्ध होता है ॥ ४ ॥

जो सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाला जीव है, वह एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय अथवा चतुरिन्द्रिय नहीं होता है, क्योंकि, उनमें सम्यक्त्वको ग्रहण करने योग्य परिणाम नहीं पाये जाते हैं । इसलिए वह पंचेन्द्रिय ही होता है । पंचेन्द्रियोंमें भी वह असंज्ञी नहीं होता है, क्योंकि, असंज्ञी जीवोंमें मनके विना विशिष्ट ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं होती है । इसलिए वह संज्ञी ही होता है । सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा वेदकसम्यग्दृष्टि जीव प्रथमोपशमसम्यक्त्वको नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि, इन जीवोंके उस प्रथमोपशमसम्यक्त्वरूप पर्यायके द्वारा परिणमन होनेकी शक्तिका अभाव है । उपशमश्रेणीपर चढ़नेवाले वेदगसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करनेवाले

१ तत्तो अभव्वजोग्गं परिणामं वोलिऊण भव्वो हु । करणं करेदि कमसो अधापवत्तं अपुव्वमणियट्टिं ॥ लब्धि. ३३.

२ चदुगदिमिच्छो सण्णी पुण्णो गब्भजविसुद्धसागारो । पढमुवसमं स गिण्हदि पंचमवरलद्धिचरिमम्हि ॥ लब्धि. २.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वज्जंता अत्थि, किंतु ण तस्स पढमसम्मत्तववएसो। कुदो? सम्मत्तादो तस्सुप्पत्तीए। तदो तेण मिच्छाइट्ठिणो चेव होदव्वं। सो वि पज्जत्तो चेव, अपज्जत्ते पढमसम्मत्तुप्पत्तिविरोहादो।

सो देवो वा णेरइओ वा तिरिक्खो वा मणुसो वा। इत्थिवेदो पुरिसवेदो णउंसयवेदो वा। मणजोगी वचिजोगी कायजोगी वा। कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई वा, किंतु हायमाणकसाओ। असंजदो। मदि-सुदसागारुवजुत्तो। तत्थ अणागारुवजोगो णत्थि, तस्स बज्झत्थे पउत्तीए अभावादो। छण्णं लेस्साणमण्णदरलेस्सो, किंतु हायमाणअसुहलेस्सो वड्ढमाणसुहलेस्सो। भव्वो। आहारी। णाणावरणीयस्स पंचपयडिसंतकम्मिओ। दंसणावरणीयस्स णवपयडिसंतकम्मिओ। वेदणीयस्स दुवे पयडीओ संतकम्मिओ। मोहणीयस्स सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तेहि विणा छव्वीसपयडीणं संतकम्मिगो, सम्मत्तेण विणा मोहणीयस्स सत्तावीससंतकम्मिगो, मोहणीयस्स अट्ठावीससंतकम्मिओ

होते हैं, किन्तु उस सम्यक्त्वका 'प्रथमोपशमसम्यक्त्व' यह नाम नहीं है, क्योंकि, उस उपशमश्रेणीवाले उपशमसम्यक्त्वकी उत्पत्ति सम्यक्त्वसे होती है। इसलिए प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करनेवाला जीव मिथ्यादृष्टि ही होना चाहिए। वह भी पर्याप्तक ही होना चाहिए, क्योंकि, अपर्याप्त जीवमें प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी उत्पत्ति होनेका विरोध है।

प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख वह जीव देव, अथवा नारकी, अथवा तिर्यंच, अथवा मनुष्य होना चाहिए। स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी अथवा नपुंसकवेदी हो। मनोयोगी, वचनयोगी अथवा काययोगी हो, अर्थात् तीनों योगोंमेंसे किसी एक योगमें वर्तमान हो। क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी अथवा लोभकषायी हो, अर्थात् चारों कषायोंमेंसे किसी एक कषायसे उपयुक्त हो। किन्तु हीयमान कषायवाला होना चाहिए। असंयत हो। मतिश्रुतज्ञानरूप साकारोपयोगसे उपयुक्त हो। प्रथमोपशमसम्यक्त्व उत्पन्न होनेके समय अनाकार उपयोग नहीं होता है, क्योंकि, अनाकार उपयोगकी बाह्य अर्थमें प्रवृत्तिका अभाव है। कृष्णादि छहों लेश्याओंमेंसे किसी एक लेश्यावाला हो, किन्तु यदि अशुभलेश्या हो तो हीयमान होना चाहिए, और यदि शुभलेश्या हो तो वर्धमान होना चाहिए। भव्य हो। आहारक हो। ज्ञानावरणीयकर्मकी पांच प्रकृतियोंका सत्कर्मिक, अर्थात् सत्तावाला हो। दर्शनावरणीय कर्मकी नौ प्रकृतियोंकी सत्तावाला हो। वेदनीय कर्मकी दो प्रकृतियोंकी सत्तावाला हो। मोहनीयकर्मकी सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति, इन दोके विना छव्वीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला हो, अथवा सम्यक्त्वप्रकृतिके विना मोहनीयकर्मकी सत्ताईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला हो, अथवा मोहनीयकर्मकी अट्ठाईस प्रकृति-

१ प्रतिषु 'वचे जोगी' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा। जदि बद्धाउओ आउअस्स दुविहसंतकम्मिओ। अह अबद्धाउओ आउअस्स एक्क-संतकम्मिओ। चत्तारिगदि, पंचजादि, आहारसरीरं वज्ज चत्तारि सरीर, (चत्तारि बंधण) चत्तारि संघाद, छसंट्ठाण, आहारंगोवंगेण विणा दोण्णि अंगोवंग, छसंघडण, वण्ण-गंध-रस-फास, चत्तारि आणुपुव्वी, अगुरुलहुग, उवघाद-परघाद-उस्सास-आदाउज्जोव, दोविहायगदि, तस-थावर-बादर-सुहुम-पत्तेय-साहारण-पज्जत्तापज्जत्त-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-दुभग-सुस्सर-दुस्सर-आदेज्ज-अणादेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिणमिदि णामस्स बाहत्तरिपयडिसंतकम्मिओ। गोदस्स दोपयडिसंतकम्मिओ। अंतराइयस्स पंचपयडिसंत-कम्मिओ[1]। आउगवज्जाणं कम्माणमंतोकोडाकोडीट्ठिदिसंतकम्मिगो।

पंचणाणावरणीय-णवदंसणावरणीय-असादावेदणीय-मिच्छत्त-सोलसकसाय-णव-णोकसाय-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-णिरयगदि-तिरिक्खगदि-एइंदिय-बेइंदिय-तेइंदिय-चदुरिं-दियजादि-पंचसंठाण-पंचसंघडण-अप्पसत्थवण्ण-गंध-रस-फास-णिरयगदि-तिरिक्खगदि-पाओग्गाणुपुव्वी-उवघाद-अप्पसत्थविहायगदि-थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साहारणसरीर-अथिर-

---

तियोंकी सत्तावाला हो। यदि वह बद्धायुष्क हो तो आयुकर्मकी भुज्यमान आयु और बध्यमान आयु, इन दो प्रकारके आयुकर्मोंकी सत्तावाला हो। अथवा, यदि अबद्धायुष्क हो तो एक आयुकर्मकी सत्तावाला हो। चारों गतियां, पांचों जातियां, आहारकशरीरको छोड़कर चार शरीर, (आहारकबंधनको छोड़कर चार बंधन) आहारकसंघातको छोड़कर चार संघात, छहों संस्थान, आहारकशरीर-अंगोपांगके विना शेष दो शरीर-अंगोपांग, छहों संहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, चारों आनुपूर्वियां, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दोनों विहायोगतियां, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, प्रत्येकशरीर, साधारणशरीर, पर्याप्त, अपर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, अनादेय, यशःकीर्त्ति, अयशःकीर्त्ति और निर्माण, नाम-कर्मकी इन बहत्तर प्रकृतियोंकी सत्तावाला हो। गोत्रकर्मकी दोनों प्रकृतियोंकी सत्तावाला हो। अन्तराय कर्मकी पांचों प्रकृतियोंकी सत्तावाला हो। आयुकर्मको छोड़कर शेष सात कर्मोंकी अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिसत्त्ववाला हो।

पांचों ज्ञानावरणीय, नवों दर्शनावरणीय, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानु-बन्धी आदि सोलह कषाय, हास्य आदि नवों नोकषाय, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, नरकगति, तिर्यग्गति, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, प्रथम संस्थानके सिवाय शेष पांच संस्थान, प्रथम संहननके सिवाय शेष पांच संहनन, अप्रशस्त वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारणशरीर, अस्थिर, अशुभ,

---

१ दु ति आउ तित्थहारचउक्कणा सम्मगेण हीणा वा। मिस्सेणूणा वा वि य सव्वे पयडी हवे सत्तं ॥ लब्धि. ३१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असुभ-दुभग-दुस्सर-अणादेज्ज-अजसकित्ति-णीचागोद-पंचंतराइयाणं विट्ठाणियअणुभाग-संतकम्मिगो, एदासिमप्पसत्थपयडीणमणुभागस्स ति-चदुट्ठाणाणं विसोहीए घादसंभवादो।

सादावेदणीय-मणुसगदि-देवगदि-पंचिंदियजादि ओरालिय-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर तेसिं चेव बंधण-संघाद समचउरससंठाण-ओरालिय-वेउव्वियसरीरअंगोवंग-वज्जरिसहवइरणारायणसरीरसंघडण-पसत्थवण्ण-गंध-रस-फास-मणुसगदि-देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुगलहुग-परघादुस्सास-आदाउज्जोव-पसत्थविहायगदि-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिण-उच्चागोदाणं चदुट्ठाणाणुभाग-संतकम्मिओ। कुदो? एदासिं पसत्थपयडीणं विसोधीदो अणुभागस्स घादाभावा, समयं पडि विसोहिवड्डीदो अणंतगुणकमेण एदासिमणुभागबंधस्स वड्डिदंसणादो च।

जासिं पयडीणं संतकम्ममत्थि, तासिमजहण्णअणुक्कस्सपदेससंतकम्मिगो। तीसु महादंडएसु उत्तपयडीणं बंधओ[2], अवसेसाणमबंधओ। तीसु महादंडगेसु उत्तपयडीण-

दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्त्ति, नीचगोत्र और पांचों अन्तराय, इन प्रकृतियोंके द्विस्थानीय, अर्थात् नींम और कांजीर, इन दो स्थानरूप अनुभागकी सत्तावाला हो, क्योंकि, इन अप्रशस्त प्रकृतियोंके त्रिस्थानीय और चतुःस्थानीय अनुभागका विशुद्धिके द्वारा घात संभव है।

सातावेदनीय, मनुष्यगति, देवगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, इन्हीं चारों शरीरोंके चार बन्धननामकर्म, चार संघातनामकर्म, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीर-अंगोपांग, वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग, वज्रऋषभवज्रनाराचशरीरसंहनन, प्रशस्त वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श, मनुष्यगति-प्रायोग्यानुपूर्वी, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्त्ति, निर्माण और उच्चगोत्र, इन प्रकृतियोंके चतुःस्थानीय, अर्थात् गुड़, खांड, शक्कर और अमृत, इन चार स्थानरूप अनुभागकी सत्तावाला हो, क्योंकि, इन प्रशस्त प्रकृतियोंके अनुभागका विशुद्धिसे घात नहीं होता है, किन्तु प्रतिसमय विशुद्धिके बढ़नेसे अनन्तगुणित क्रमद्वारा इन उपर्युक्त प्रकृतियोंके अनुभागबन्धकी वृद्धि देखी जाती है।

जिन प्रकृतियोंका उसके सत्त्व है, उनके अजघन्य-अनुत्कृष्ट प्रदेशकी सत्तावाला हो। तीनों महादंडकोंमें कही गई प्रकृतियोंका बांधनेवाला हो, उनसे अवशिष्ट प्रकृतियोंका बांधनेवाला न हो। तीनों महादंडकोंमें उक्त प्रकृतियोंकी अन्तःकोड़ाकोड़ी स्थितिका

१ प्रतिषु 'चट्ठाणिय' इति पाठः।

२ एदेहिं विहीणाणं तिण्णि महादंडएसु उत्ताणं। एकट्ठिपमाणाणमणुक्कस्सपदेसबंधणं कुणइ॥ लब्धि. २६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंतोकोडाकोडिट्ठिदीए बंधओ। तीसु महादंडएसु उत्तअप्पसत्थपयडीणं वेट्ठाणियअणुभागबंधओ। तत्थ उत्तपसत्थपयडीणं चदुट्ठाणियअणुभागस्स बंधगो[1]। पंच णाणावरणीय-छदंसणावरणीय-सादावेदणीय-बारसकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछाए तिरिक्खगदि-मणुसगदि-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर-ओरालियसरीरअंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-तिरिक्खगदि-मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुवलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-उज्जोव-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुह-जसकित्ति-णिमिण-उच्चागोद-पंचंतराइयाणमणुक्कस्सपदेसबंधओ। णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-त्थीणगिद्धि-मिच्छत्त-अणंताणुबंधिकोध-माण-माया-लोभ-देवगदि-वेउव्वियसरीर-समचउरससरीरसंठाण-वेउव्वियसरीरअंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण–देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी–पसत्थविहायगदि–सुभग–सुस्सर–आदेज्ज-णीचागोदाणमुक्कस्सपदेसबंधओ वा अणुक्कस्सपदेसबंधओ वा। पंचण्हं णाणावरणीयाणं वेदओ। चक्खुदंसणावरणीयमचक्खुदंसणावरणीयमोहिदंसणावरणीय-केवलदंसणावरणीयमिदि चदुण्हं दंसणावरणीयाणं वेदगो, णिद्दा-पयलाणं एक्कदरेण सह पंचण्हं वा वेदगो।

बांधनेवाला हो। तीनों महादंडकोंमें उक्त अप्रशस्त प्रकृतियोंके द्विस्थानीय अनुभागका बांधनेवाला हो। उन्हीं तीनों महादंडकोंमें उक्त प्रशस्त प्रकृतियोंके चतुःस्थानीय अनुभागका बांधनेवाला हो। पांच ज्ञानावरणीय, स्त्यानगृद्धि आदि तीन प्रकृतियोंको छोड़कर शेष छह दर्शनावरणीय, सातावेदनीय, अनन्तानुबन्धी-चतुष्कको छोड़कर शेष बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, तिर्यग्गति, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकशरीर-अंगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, यशःकीर्त्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पांचों अन्तराय, इन प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशबंधवाला हो। निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, देवगति, वैक्रियिकशरीर, समचतुरस्रशरीरसंस्थान, वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग, वज्रऋषभसंहनन, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और नीचगोत्र, इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला हो, अथवा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला हो। पांचों ज्ञानावरणीय प्रकृतियोंका वेदक, अर्थात् उदयवाला हो। चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और केवलदर्शनावरणीय, इन चार दर्शनावरणीय प्रकृतियोंका वेदक हो, अथवा निद्रा और प्रचला, इन दोनोंमेंसे किसी एकके साथ पांच दर्शनावरणीय-प्रकृतियोंका वेदक हो। सातावेदनीय और

---

१ सत्थाणमसत्थाणं चउविट्ठाणं रसं च बंधदि हु। पडिसमयमणंतेण य गुणभजियकमं तु रसबंधे॥ लब्धि. ३८.

सादासादाणमण्णदरस्स वेदगो। मोहणीयस्स दसण्हं णवण्हमट्ठण्हं वा वेदगो। काओ दस पयडीओ ? मिच्छत्तं अणंताणुबंधिचदुक्काणमेक्कदरं अपच्चक्खाणावरणचदुक्काणमेक्कदरं पच्चक्खाणावरणचदुक्काणमेक्कदरं संजलणचदुक्काणमेक्कदरं तिण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्स-रदि-अरदिसोग-दोजुगलाणमेक्कदरं भय-दुगुंछा चेदि। काओ णव पयडीओ ? भय-दुगुंछासु अण्णदरुदएण विणा। भय-दुगुंछाणमुदएण विणा अट्ठ हवंति[1]। चदुण्हमाउ-गाणमण्णदरस्स वेदगो।

जदि णेरइओ, णिरयगदि-पंचिंदियजादि-वेउव्वियतेजा-कम्मइयसरीर-हुंडसंठाण-वेउव्वियसरीरअंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-अप्प-

---

असातावेदनीय, इन दोनोंमेंसे किसी एकका वेदक हो। मोहनीयकर्मकी दश, नौ, अथवा आठ प्रकृतियोंका वेदक हो।

शंका—मोहनीयकर्मकी वे दश प्रकृतियां कौनसी हैं ?

समाधान—मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ, इन चारोंमेंसे कोई एक; अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया और लोभ, इन चारोंमेंसे कोई एक, प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया और लोभ, इन चारोंमेंसे कोई एक; संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ, इन चारोंमेंसे कोई एक; स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद, इन तीनों वेदोंमेंसे कोई एक, हास्य-रति और अरति-शोक, इन दोनों युगलोंमेंसे कोई एक, भय और जुगुप्सा, ये मोहनीयकर्मकी वे दश प्रकृतियां हैं जिनका उक्त जीव वेदक होता है।

शंका—मोहनीयकर्मकी वे नौ प्रकृतियां कौनसी हैं, जिनका वेदक प्रथमोपशम-सम्यक्त्वके अभिमुख मिथ्यादृष्टि जीव होता है ?

समाधान—उपर्युक्त दश प्रकृतियोंमेंसे भय और जुगुप्सा, इन दोनोंमेंसे किसी एकके उदयके विना शेष नौ प्रकृतियां ऐसी जानना चाहिए जिनका उक्त जीव वेदक होता है।

उपर्युक्त दश प्रकृतियोंमेंसे भय और जुगुप्सा, इन दोनोंके उदयके विना शेष आठ प्रकृतियां होती हैं, जिनका कि उदय प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख मिथ्यादृष्टि जीवके होता है।

चारों आयुकर्मोंमेंसे किसी एकका वेदक हो।

यदि वह जीव नारकी है, तो नरकगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजस-शरीर, कार्मणशरीर, हुंडसंस्थान, वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श,

---

१ प्रतिषु 'हिवंती' मप्रतौ 'हवंति' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्थविहायगदि-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुहासुह-दुभग-दुस्सर–अणादेज्ज–अजसकित्ति-णिमिण-णीचागोद-पंचंतराइयाणं वेदगो ।

जदि तिरिक्खो, तिरिक्खगदि-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीराणं छ-संठाणाणमेक्कदरस्स ओरालियसरीरअंगोवंगस्स छसंघडणाणमेक्कदरस्स वण्ण-गंध-रस-फास-अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासाणं उज्जोवं सिया। दोविहायगदीणमेक्कदरस्स, तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीराणं थिराथिर-सुहासुहाणं सुभग-दुभगाणमेक्कदरस्स सुस्सर-दुस्सराणमेक्कदरस्स आदेज्ज-अणादेज्जाणमेक्कदरस्स णिमिण-णीचागोद-पंचंतराइयाणं वेदगो ।

जदि मणुसो, मणुसगदि-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीराणं छसंठाणाणमेक्कदरस्स ओरालियसरीरअंगोवंगस्स छसंघडणाणमेक्कदरस्स वण्ण-गंध-रस-फास-अगुरुअलघुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासाणं दोण्हं विहायगदीणमेक्कदरस्स तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीराणं थिराथिर-सुभासुभाणं सुभग-दुभगाणमेक्कदरस्स सुस्सर-दुस्सराणमेक्कदरस्स आदेज्ज-अणादेज्जाणमेक्कदरस्स जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरस्स णिमिणणामस्स

अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, अप्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्त्ति, निर्माण, नीचगोत्र और पांचों अन्तराय, इन प्रकृतियोंका वेदक होता है ।

यदि वह जीव तिर्यंच है, तो तिर्यग्गति पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, छहों संस्थानोंमेंसे कोई एक, औदारिकशरीर-अंगोपांग, छहों संहननोंमेंसे कोई एक, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, इन प्रकृतियोंका वेदक होता है। उद्योत प्रकृतिका कदाचित् वेदक होता है, कदाचित् नहीं। दोनों विहायोगतियोंमेंसे कोई एक, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर और अस्थिर इन दोनोंमेंसे कोई एक, शुभ और अशुभ इन दोनोंमेंसे कोई एक, सुभग और दुर्भग इन दोनोंमेंसे कोई एक, सुस्वर और दुःस्वर इन दोनोंमेंसे कोई एक, आदेय और अनादेय इन दोनोंमेंसे कोई एक, निर्माण, नीचगोत्र और पांचों अन्तराय, इन प्रकृतियोंका वेदक होता है ।

यदि वह जीव मनुष्य है, तो मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, छहों संस्थानोंमेंसे कोई एक, औदारिकशरीर-अंगोपांग, छहों संहननोंमेंसे कोई एक, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, दोनों विहायोगतियोंमेंसे कोई एक, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर और अस्थिर इन दोनोंमेंसे कोई एक, शुभ और अशुभ इन दोनोंमेंसे कोई एक, सुभग और दुर्भग इन दोनोंमेंसे कोई एक, सुस्वर और दुःस्वर इन दोनोंमेंसे कोई एक, आदेय और अनादेय इन दोनोंमेंसे कोई एक, यशःकीर्त्ति और अयशःकीर्त्ति इन दोनोंमेंसे कोई एक,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णीचुच्चागोदाणमेक्कदरस्स पंचण्हमंतराइयाणं च वेदगो ।

जदि देवो, देवगदि-पंचिंदियजादि-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससरीर-संठाण-वेउव्वियसरीरअंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-अगुरुअलहुअ-उवघाद-उस्सास-पसत्थ-विहायगदि-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर[1]-आदेज्ज-जसगित्ति-णिमिण-उच्चागोद पंचंतराइयाणं वेदगो, उत्तसेससव्वपयडीणमवेदगो ।

जासिं पयडीणमुदओ अत्थि तासिं पयडीणमेक्किस्से ट्ठिदीए ट्ठिदिक्खएण उदयं पविट्ठाए वेदगो, सेसाणं ट्ठिदीणमवेदगो । जासिं पयडीणमप्पसत्थाणमुदओ अत्थि तासिं वेट्ठाणियअणुभागस्स वेदगो । पसत्थाणं पयडीणमुदइल्लाणं चदुट्ठाणियअणुभागस्स वेदगो । उदइल्लाणं पयडीणमजहण्णाणुक्कस्सपदेसाणं वेदगो । जासिं पयडीणं वेदगो तासिं पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसाणमुदीरगो ।

उदय-उदीरणाणं को विसेसो ? उच्चदे- जे कम्मक्खंधा ओकड्डुकड्डणादिपओगेण विणा ट्ठिदिक्खयं पाविदूण अप्पप्पणो फलं देंति, तेसि कम्मक्खंधाणमुदओ त्ति सण्णा ।

निर्माणनाम, नीचगोत्र और उच्चगोत्र इन दोनोंमेंसे कोई एक, और पांचों अन्तराय, इन प्रकृतियोंका वेदक होता है ।

यदि वह जीव देव है, तो देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रशरीरसंस्थान, वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक-शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्त्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पांचों अन्तराय, इन प्रकृतियोंका वेदक होता है । ऊपर कही गई प्रकृतियोंके सिवाय शेष सर्व प्रकृतियोंका अवेदक होता है ।

प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख जीवके जिन प्रकृतियोंका उदय होता है, उन प्रकृतियोंकी स्थितिके क्षयसे उदयमें प्रविष्ट एक स्थितिका वह वेदक होता है । शेष स्थितियोंका अवेदक होता है । उक्त जीवके जिन अप्रशस्त प्रकृतियोंका उदय होता है, उनके निंब और कांजीर रूप द्विस्थानीय अनुभागका वह वेदक होता है। उदयमें आई हुई प्रशस्त प्रकृतियोंके चतुःस्थानीय अनुभागका वेदक होता है । उदयमें आई हुई प्रकृतियोंके अजघन्य-अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका वेदक होता है । जिन प्रकृतियोंका वेदक होता है, उनके प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंकी उदीरणा करता है ।

शंका—उदय और उदीरणामें क्या भेद है ?

समाधान—कहते हैं— जो कर्म-स्कन्ध अपकर्षण, उत्कर्षण आदि प्रयोगके विना स्थिति-क्षयको प्राप्त होकर अपना अपना फल देते हैं, उन कर्म-स्कन्धोंकी 'उदय' यह

---

१ प्रतिषु ' दुस्सर ' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जे कम्मक्खंधा महंतेसु ट्ठिदि-अणुभागेसु अवट्ठिदा ओक्कड्डिदूण फलदाइणो कीरंति, तेसिमुदीरणा त्ति सण्णा, अपक्कपाचनस्स उदीरणाव्यपदेशात् । उदय-उदीरणादिलक्खणाइं सुत्ते अणुवदिट्ठाइं कधमेत्थ परूविज्जंति ? ण एस दोसो, एदस्स देसामासियत्तादो । जेणेदं सुत्तं देसामासियं तेण उत्तासेसलक्खणाणि एदेण उत्ताणि[1] चेव ।

'सव्वविसुद्धो' त्ति एदस्स पदस्स अत्थो उच्चदे । तं जधा– एत्थ पढमसम्मत्तं पडिवज्जंतस्स अधापवत्तकरण-अपुव्वकरण-अणियट्टीकरणभेदेण तिविहाओ विसोहीओ होंति । तत्थ अधापवत्तकरणसण्णिदविसोहीणं लक्खणं उच्चदे । तं जधा– अंतोमुहुत्तमेत्त-समयपंतिमुड्ढायारेण ठएदूण ट्ठविय तेसिं समयाणं पाओग्गपरिणामपरूवणं कस्सामो– पढमसमयपाओग्गपरिणामा असंखेज्जा लोगा, अधापवत्तकरणविदियसमयपाओग्गा वि परिणामा असंखेज्जा लोगा । एवं समयं पडि अधापवत्तपरिणामाणं पमाणपरूवणं कादव्वं जाव अधापवत्तकरणद्धाए चरिमसमओ त्ति । पढमसमयपरिणामेहिंतो विदिय-

संज्ञा है । जो महान् स्थिति और अनुभागोंमें अवस्थित कर्म स्कन्ध अपकर्षण करके फल देनेवाले किये जाते हैं, उन कर्म-स्कन्धोंकी 'उदीरणा' यह संज्ञा है, क्योंकि, अपक्व कर्म-स्कन्धके पाचन करनेको उदीरणा कहा गया है।

शंका—सूत्रमें अनुपदिष्ट उदय और उदीरणा आदिके लक्षण यहां क्यों निरूपण किये जा रहे हैं ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, यह सूत्र देशामर्शक है । चूंकि यह सूत्र देशामर्शक है, इसलिए कहे गये लक्षणोंके सिवाय अन्य समस्त लक्षण इसके द्वारा कहे ही गये हैं ।

अब सूत्रोक्त 'सर्वविशुद्ध' इस पदका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है— यहांपर प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवके अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके भेदसे तीन प्रकारकी विशुद्धियां होती हैं । उनमें पहले अधःप्रवृत्तकरण संज्ञावाली विशुद्धियोंका लक्षण कहते हैं । वह इस प्रकार है- अन्तर्मुहूर्तप्रमाण समयोंकी पंक्तिको ऊर्ध्व आकारसे स्थापित करके उन समयोंके प्रायोग्य परिणामोंका प्ररूपण करते हैं— अधःप्रवृत्तकरणमें प्रथम समयवर्त्ती जीवोंके योग्य परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण हैं । द्वितीय समयवर्ती जीवोंके योग्य परिणाम भी असंख्यात लोकप्रमाण हैं । इस प्रकार समय समयके प्रति अधःप्रवृत्तकरणसम्बन्धी परिणामोंके प्रमाणका निरूपण अधःप्रवृत्तकरणकालके अन्तिम समय तक करना चाहिए । अधःप्रवृत्तकरणके

१ प्रतिषु 'उत्ताणय' मप्रतौ 'उत्ताम' इति पाठः ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

समयपाओग्गपरिणामा विसेसाहिया। विसेसो पुण अंतोमुहुत्तपडिभागिओ[1]। विदियसमयपरिणामेहिंतो तदियसमयपरिणामा विसेसाहिया। एवं णेयव्वं जाव अधापवत्तकरणद्धाए चरिमसमओ त्ति।

एदिस्से अद्धाए[2] संखेज्जदिभागो णिव्वग्गणकंडयं णाम[3]। तम्हि णिव्वग्गणकंडए जेत्तिया समया तेत्तियमेत्तं खंडाणि सव्वसमयपरिणामपंतीओ कादव्वाओ। तत्थ सव्वसमयपरिणामपंतीसु पढमखंडं थोवं। बिदियखंडं विसेसाहियं। तत्तो तदियखंडयं विसेसाहियं। एवं णेयव्वं जाव चरिमखंडं ति। एक्केक्कस्स आयामो असंखेज्जा लोगा। एत्थतणविसेसो अंतोमुहुत्तपडिभागिओ[4], तेण एसो वि असंखेज्जलोगमेत्तो चेव।

प्रथम समयसम्बन्धी परिणामोंसे द्वितीय समयके योग्य परिणाम विशेष अधिक होते हैं। वह विशेष अन्तर्मुहूर्त-प्रतिभागी है, अर्थात् प्रथम समयसम्बन्धी परिणामोंके प्रमाणमें अन्तर्मुहूर्तका भाग देनेपर जितना प्रमाण आता है, उतने प्रमाणसे अधिक हैं। अधःप्रवृत्तकरणके द्वितीय समयसम्बन्धी परिणामोंसे तृतीय समयके परिणाम विशेष अधिक होते हैं। इस प्रकार यह क्रम अधःप्रवृत्तकरणकालके अन्तिम समय तक ले जाना चाहिए।

इस अधःप्रवृत्तकरणकालके संख्यातवें भागमात्र निर्वर्गणाकांडक होता है। (वर्गणा नाम समयोंकी समानताका है। उस समानतासे रहित उपरितन समयवर्ती परिणामोंके खंडोंके कांडक या पर्वको निर्वर्गणाकांडक कहते हैं।) उस निर्वर्गणाकांडकमें जितने समय होते हैं, उतने मात्र खंड सर्व समयवर्ती परिणामोंकी पंक्तियोंके करना चाहिए। उन सर्व समयसम्बन्धी परिणामोंकी पंक्तियोंमें प्रथम खंड सबसे कम है। द्वितीय खंड विशेष अधिक है। उससे तृतीय खंड विशेष अधिक है। इस प्रकार यह क्रम अन्तिम खंड तक ले जाना चाहिए। एक एक खंडके परिणामोंका आयाम असंख्यात लोकप्रमाण है। इन खंडोंमें जो विशेष प्रमाण अधिक है, वह अन्तर्मुहूर्त-प्रतिभागी है, इसलिए यह विशेष भी असंख्यात लोकमात्र ही है।

---

१ आदिमकरणद्धाए पडिसमयमसंखलोगपरिणामा। अहियकमा हु विसेसे मुहुत्तअंतो हु पडिभागो॥ लब्धि. ४२.

२ अ-आ प्रत्योः 'पडिसे अद्धाए' क प्रतौ 'पडिसेहद्धाए' इति पाठः।

३ पढमसमयअधापवत्तकरणस्स जाणि परिणामट्ठाणाणि ताणि अंतोमुहुत्तस्स जत्तिया समया तत्तियमेत्ताणि खंडाणि कायव्वाणि। किं पमाणमेदमंतोमुहुत्तमिदि पुच्छिदे सगद्धाए संखेज्जदिभागमेत्तं। तमेव णिव्वग्गणकंडयमिदि एत्थ घेत्तव्वं। विवक्खियसमयपरिणामाणं जत्तो परमणुकट्टिवोच्छेदो तं णिव्वग्गणकंडयमिदि भण्णदे। जयध. अ. प. ९४६. ताए अधापवत्तद्धाए संखेज्जभागमेत्तं तु। अणुकट्टीए अद्धा णिव्वग्गणकंडयं तं तु॥ वर्गणा समयसादृश्यं। ततो निष्क्रान्ता उपर्युपरि समयवर्तिपरिणामखंडा तेषां कांडकं पर्व निर्वर्गणकांडकं॥ लब्धि. टी. ४३.

४ पडिसमयगपरिणामा णिव्वग्गणसमयमेत्तखंडकमा। अहियकमा हु विसेसे मुहुत्तअंतो हु पडिभागो॥ पडिखंडगपरिणामा पत्तेयमसंखलोगमेत्ता हु। लोयाणमसंखेज्जा छट्ठाणाणि विसेसे वि॥ लब्धि. ४४-४५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अधापवत्तकरणपढमसमयअंतोमुहुत्तमेत्तपरिणामखंडेसु जं पढमखंडं तं बिदियादिसमयाणमंतोमुहुत्तमेत्तखंडेसु केण वि सरिसं ण होदि। बिदियखंडं पुण बिदियसमयपढमपरिणामखंडेण सरिसं, तदियखंडं तदियसमयपढमपरिणामखंडेण सरिसं, चउत्थखंडं चउत्थसमयपढमपरिणामखंडेण सरिसं। एवं णेयव्वं जाव पढमसमयस्स णिव्वग्गणकंडयमेत्तपरिणामखंडेसु जं चरिमखंडं तं णिव्वग्गणकंडयमेत्तमुवरि चडिदूण ट्ठिदसमयस्स णिव्वग्गणकंडयमेत्तपरिणामखंडाणं पढमखंडेण सरिसं। एवं बिदियादिसमयणिव्वग्गणकंडयमेत्तपरिणामखंडाणमणुकट्ठी कादव्वा[१]।

अधःप्रवृत्तकरणके प्रथमसमयसम्बन्धी अन्तर्मुहूर्तमात्र परिणाम-खंडोंमें जो प्रथम खंड है, वह द्वितीयादि समयोंके अन्तर्मुहूर्तमात्र खंडोंमें किसीके भी सदृश नहीं है। किन्तु द्वितीय खंड दूसरे समयके प्रथम परिणामखंडके साथ सदृश है, तृतीय खंड तीसरे समयके प्रथम परिणामखंडके सदृश है, चतुर्थ खंड चौथे समयके प्रथम परिणामखंडके सदृश है। इस प्रकार यह क्रम तब तक ले जाना चाहिए जब तक कि प्रथम समयके निर्वर्गणाकांडकमात्र परिणामखंडोंमें जो अन्तिम खंड है वह निर्वर्गणाकांडकमात्र समय ऊपर चढ़ करके स्थित समयके निर्वर्गणाकांडकमात्र परिणामखंडोंके प्रथम खंडके साथ सदृश प्राप्त होता है। इसी प्रकार द्वितीयादि समयोंके निर्वर्गणाकांडकमात्र परिणामखंडोंकी अनुकृष्टि, अर्थात् अधस्तन समयवर्ती परिणामखंडोंकी उपरितन समयवर्ती परिणतखंडोंके साथ समान परिणामोंकी तिर्यक् रचना, करना चाहिए।

अंकसंदृष्टिकी अपेक्षा वह अनुकृष्टि रचना इस प्रकार है—

१६	१५	१४	१३	१२	११	१०	९	८	७	६	५	४	३	२	१	समय
५४	५३	५२	५१	५०	४९	४८	४७	४६	४५	४४	४३	४२	४१	४०	३९	प्रथम खंड
५५	५४	५३	५२	५१	५०	४९	४८	४७	४६	४५	४४	४३	४२	४१	४०	द्वितीय खंड
५६	५५	५४	५३	५२	५१	५०	४९	४८	४७	४६	४५	४४	४३	४२	४१	तृतीय खंड
५७	५६	५५	५४	५३	५२	५१	५०	४९	४८	४७	४६	४५	४४	४३	४२	चतुर्थ खंड
२२२	२१८	२१४	२१०	२०६	२०२	१९८	१९४	१९०	१८६	१८२	१७८	१७४	१७०	१६६	१६२	सर्वधन
च. निर्वर्गणाकां.				तृ. निर्वर्गणाकां.				द्वि. निर्वर्गणाकां.				प्रथम निर्वर्गणाकांडक				

१ अधापवत्तकरणपढमसमयप्पहुडि जाव चरिमसमओ त्ति ताव पादेक्कमेक्केक्कम्मि समये असंखेज्जलोगमेत्ताणि परिणामट्ठाणाणि छवड्ढिकमेणावट्ठिदाणि ट्ठिदिबंधोसरणादीणं कारणभूदाणि अत्थि तेसिं परिवाडीए विरचिदाणं पुणरुत्तापुणरुत्तभावगवेसणा अणुकट्ठीणाम। अनुकर्षणमनुकृष्टिरन्योन्येन समानत्वानुचिन्तनमित्यनर्थान्तरम्। जयध. अ. प. ९४६. अनुकृष्टिर्नाम अधस्तनसमयपरिणामखंडानां उपरितनसमयपरिणामखंडैः सादृश्यं भवति। गो. जी. जी. प्र. ४९ टी.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं कदे दुचरिमादिहेट्ठिमसमयाणं पढमखंडाणि मोत्तूण तेसिं विदियादिपरिणामखंडाणि पुणरुत्ताणि जादाणि, चरिमसमयसव्वपरिणामखंडाणि अपुणरुत्ताणि, सव्वसमयाणं पढमपरिणामखंडेहि सह सरिसत्ताभावा[1]।

एदासिं विसोधीणमधापवत्तलक्खणाणमधापवत्तकरणमिदि सण्णा। कुदो? उवरिमपरिणामा अध हेट्ठा हेट्ठिमपरिणामेसु पवत्तंति त्ति अधापवत्तसण्णा[2]। कधं परिणामाणं करणसण्णा? ण एस दोसो, असि-वासीणं व साहयतमभावविवक्खाए परिणामाणं करणत्तुवलंभादो[3]। मिच्छादिट्ठिआदीणं ट्ठिदिबंधादिपरिणामा वि हेट्ठिमा उवरिमेसु, उवरिमा हेट्ठिमेसु अणुहरंति, तेसिं अधापवत्तसण्णा किण्ण कदा? ण, इट्ठत्तादो।

ऐसा करनेपर द्विचरमादि अधस्तन समयोंके प्रथम खंडोंको छोड़कर उनके द्वितीयादि परिणामखंड पुनरुक्त, अर्थात् सदृश, हो जाते हैं, और अन्तिम समयके सभी परिणामखंड अपुनरुक्त, अर्थात् असदृश, रहते हैं, क्योंकि, सभी समयोंके प्रथम परिणामखंडोंके साथ सदृशताका अभाव है।

इन उपर्युक्त अधःप्रवृत्तलक्षणवाली विशुद्धियोंकी 'अधःप्रवृत्तकरण' यह संज्ञा है, क्योंकि, उपरितन समयवर्ती परिणाम अधः, अर्थात् अधस्तन, समयवर्ती परिणामोंमें समानताको प्राप्त होते हैं इसलिए अधःप्रवृत्त यह संज्ञा सार्थक है।

शंका—परिणामोंकी 'करण' यह संज्ञा कैसे हुई?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, असि (तलवार) और वासि (वसूला) के समान साधकतमभावकी विवक्षामें परिणामोंके करणपना पाया जाता है।

शंका—मिथ्यादृष्टि आदि जीवोंके अधस्तन स्थितिबंधादि परिणाम उपरिम परिणामोंमें, और उपरिम स्थितिबंधादि परिणाम अधस्तन परिणामोंमें अनुकरण करते हैं, अर्थात् परस्पर समानताको प्राप्त होते हैं, इसलिए उनके परिणामोंकी 'अधःप्रवत्त' यह संज्ञा क्यों नहीं की?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यह बात इष्ट है। अर्थात् मिथ्यादृष्टि आदिकोंके अधस्तन और उपरितन समयवर्ती परिणामोंकी पायी जानेवाली समानतामें अधःप्रवृत्तकरणका व्यवहार स्वीकार किया गया है।

---

१ पढमे चरिमे समये पढमं चरिमं च खंडमसरित्थं। सेसा सरिसा सव्वे अट्ठुव्वंकादिअंतगया॥ चरिमे सव्वे खंडा दुचरिमसमओ त्ति अवरखंडाए। असरिसखंडाणोली अधापवत्तम्हि करणम्मि॥ लब्धि. ४६-४७.

२ जम्हा हेट्ठिमभावा उवरिमभावेहिं सरिसगा हुंति। तम्हा पढमं करणं अधापवत्तो त्ति णिद्दिट्ठं॥ लब्धि. ३५.

३ येन परिणामविशेषेण दर्शनमोहोपशमादिर्विवक्षितो भावः क्रियते निष्पाद्यते स परिणामविशेषः करणमित्युच्यते। जयध. अ. प. ९४६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कधमेदं णव्वदे ? अंतदीवयअधापवत्तणामादो ।

एदासिं विसोहीणं तिव्व-मंददाए अप्पाबहुगं उच्चदे— पढमसमयजहण्णिया विसोही थोवा । विदियसमयजहण्णिया विसोही अणंतगुणा । तदियसमयजहण्णिया विसोही अणंतगुणा । एवं णेयव्वं जाव अंतोमुहुत्तमेत्तणिव्वग्गणकंडयचरिमसमयजहण्ण-विसोहि त्ति । तत्तो णियत्तिदूण पढमसमयउक्कस्सिया विसोही तदो अणंतगुणा । पुव्व-परूविदजहण्णविसोहीदो उवरिमसमयजहण्णविसोही अणंतगुणा । तदो विदियसमय-उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा । तदो पुव्वुत्तजहण्णविसोहीदो उवरिमसमयजहण्ण-विसोही अणंतगुणा । तदो तदियसमयउक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा । इदरत्थ जहण्णिया विसोही अणंतगुणा । तदो इदरत्थ उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा । एदेण कमेण णेयव्वं जाव अधापवत्तकरणस्स चरिमसमयजहण्णविसोहि त्ति । तत्तो णिव्वग्गणकंडयमेत्तं ओसरिदूण ट्ठिदहेट्ठिमसमयस्स उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा । तदो उवरिमसमये उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा । एवमुक्कस्सियाओ चेव विसोहीओ णिरंतरं अणंतगुण-

---

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—क्योंकि, अधःप्रवृत्त यह नाम अन्तदीपक है, इसलिए प्रथमोपशम-सम्यक्त्व होनेके पूर्व तक मिथ्यादृष्टि आदिके पूर्वोत्तर समयवर्ती परिणामोंमें जो सदृशता पाई जाती है, उसकी अधःप्रवृत्त संज्ञाका सूचक है ।

अब इन अधःप्रवृत्तलक्षणवाली विशुद्धियोंकी तीव्र-मन्दताका अल्पबहुत्व कहते हैं— प्रथम समयकी जघन्य विशुद्धि सबसे कम है । उससे द्वितीय समयकी जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणित है । उससे तृतीय समयकी जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणित है । इस प्रकार यह क्रम अन्तर्मुहूर्तमात्र निर्वर्गणाकांडकके अन्तिम समयसम्बन्धी जघन्य विशुद्धि तक ले जाना चाहिए । वहांसे लौटकर प्रथम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि उससे अनन्तगुणित है । पूर्व प्ररूपित, अर्थात् प्रथम निर्वर्गणाकांडकके अन्तिम समयसम्बन्धी, जघन्य विशुद्धिसे उपरिम समयकी, अर्थात् द्वितीय निर्वर्गणाकांडकके प्रथम समयकी, जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणित है । उससे दूसरे समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणित है । पुनः पूर्वोक्त जघन्य विशुद्धिसे उपरिम समयकी जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणित है । उससे तीसरे समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणित है । पुनः पूर्वोक्त जघन्य विशुद्धिसे उपरिम समयकी जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणित है । उससे चौथे समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणित है । इस क्रमसे यह अल्पबहुत्व अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयसम्बन्धी जघन्य विशुद्धि प्राप्त होने तक ले जाना चाहिए । उससे निर्वर्गणाकांडकमात्र दूर जाकर स्थित अधस्तन समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणित है । उससे उपरिम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणित है । इसी प्रकार उत्कृष्ट ही विशुद्धियोंको निरन्तर अनन्त-

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

कमेण णेदव्वाओ जाव अधापवत्तकरणस्स चरिमसमयउक्कस्सविसोहि त्ति[1]। एवमधापवत्तकरणस्स लक्खणं परूविदं ।

गुणित क्रमसे अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयसम्बन्धी उत्कृष्ट विशुद्धि प्राप्त होने तक ले जाना चाहिए। इस प्रकार अधःप्रवृत्तकरणका लक्षण निरूपण किया।

विशेषार्थ—अधःप्रवृत्तकरणके स्वरूपको और उसमें बतलाए गये अल्पबहुत्वको इस प्रकार समझना चाहिए— दो जीव एक साथ अधःकरणपरिणामको प्राप्त हुए। उनमें एक तो सर्वजघन्य विशुद्धिके साथ अधःकरणको प्राप्त हुआ, और दूसरा सर्वोत्कृष्ट विशुद्धिके साथ। प्रथम जीवके प्रथम समयमें परिणामोंकी विशुद्धि सबसे मन्द या अल्प है। इससे दूसरे समयमें उसके जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणित है। इससे तीसरे समयमें उसके जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणित है। यह क्रम तब तक जारी रहेगा जब तक कि अधःप्रवृत्तकरणका संख्यातवां भाग, अर्थात् निर्वर्गणाकांडकका अन्तिम समय, न प्राप्त हो जाय। इस प्रकार अधःप्रवृत्तकरणके संख्यातवें भागको प्राप्त प्रथम जीवके जो विशुद्धि होगी, उससे अनन्तगुणी विशुद्धि उस दूसरे जीवके प्रथम समयमें होगी, जो कि उत्कृष्ट विशुद्धिके साथ अधःकरणको प्राप्त हुआ था। इस दूसरे जीवके प्रथम समयमें जितनी विशुद्धि है, उससे अनन्तगुणी विशुद्धि उस प्रथम जीवके होती है जो कि एक निर्वर्गणाकांडक या अधःप्रवृत्तकरणके संख्यातवें भागसे ऊपर जाकर दूसरे निर्वर्गणाकांडकके प्रथम समयमें जघन्य विशुद्धिसे वर्तमान है। इस प्रथम जीवके इस स्थानपर जितनी विशुद्धि है, उससे अनन्तगुणी विशुद्धि दूसरे जीवके दूसरे समयमें होगी। इससे अनन्तगुणी विशुद्धि प्रथम जीवके एक समय ऊपर चढ़ने पर होगी। इस प्रकार इन दोनों जीवोंको आश्रय करके यह अनन्तगुणित विशुद्धिका क्रम अधःप्रवृत्तकरणके चरमसमयसम्बन्धी जघन्य विशुद्धि प्राप्त होने तक ले जाना चाहिए। उससे ऊपर उत्कृष्ट विशुद्धिके स्थान अनन्तगुणित क्रमसे होते हैं। इस प्रकार इस प्रथम करणमें विद्यमान जीवके परिणामोंकी विशुद्धि उत्तरोत्तर समयोंमें अनन्तगुणित क्रमसे बढ़ती जाती है। इसकी संदृष्टि इस प्रकार है—

१ अधःप्रवृत्तकरणकाले निर्वर्गणाकांडकसमयमात्राः प्रतिसमयप्रथमखंडजघन्यपरिणामाः उपर्युपर्यनन्तगुणितक्रमा गच्छन्ति । ततः प्रथमनिर्वर्गणकांडकचरमसमयप्रथमखंडजघन्यपरिणामात् प्रथमसमयचरमखंडोत्कृष्ट-

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

संपहि अपुव्वकरणस्स लक्खणं वत्तइस्सामो । तं जधा– अपुव्वकरणद्धा[1] अंतोमुहुत्तमेत्ता होदि त्ति अंतोमुहुत्तमेत्तसमयाणं पढमं रचणा कायव्वा । तत्थ पढमसमयपाओग्गविसोहीणं पमाणमसंखेज्जा लोगा । विदियसमयपाओग्गविसोहीणं पमाणमसंखेज्जा लोगा । एवं णेयव्वं जाव चरिमसमओ त्ति । पढमसमयविसोहीहिंतो विदियसमयविसोहीओ विसेसाहियाओ । एवं णेदव्वं जाव चरिमसमओ त्ति । विसेसो पुण अंतोमुहुत्तपडिभागिओ[2] ।

अब अपूर्वकरणका लक्षण कहेंगे। वह इस प्रकार है— अपूर्वकरणका काल अन्तर्मुहूर्तमात्र होता है, इसलिए अन्तर्मुहूर्तप्रमाण समयोंकी पहले रचना करना चाहिए। उसमें प्रथम समयके योग्य विशुद्धियोंका प्रमाण असंख्यात लोक है। दूसरे समयके योग्य विशुद्धियोंका प्रमाण असंख्यात लोक है। इस प्रकार यह क्रम अपूर्वकरणके अन्तिम समय तक ले जाना चाहिए। प्रथम समयकी विशुद्धियोंसे दूसरे समयकी विशुद्धियां विशेष अधिक होती हैं। इस प्रकार यह क्रम अपूर्वकरणके अन्तिम समय तक ले जाना चाहिए। यहां पर विशेष अन्तर्मुहूर्तका प्रतिभागी है।

परिणामोऽनन्तगुणः । ततो द्वितीयकांडकप्रथमसमयप्रथमखंडजघन्यपरिणामोऽनन्तगुणः । ततः प्रथमकांडकद्वितीयसमयचरमखंडोत्कृष्टपरिणामोऽनन्तगुणः । ततो द्वितीयकांडकद्वितीयसमयप्रथमखंडजघन्यपरिणामोऽनन्तगुणः । एवं जघन्यादुत्कृष्टोऽनन्तगुणः । उत्कृष्टाज्जघन्योऽनन्तगुणोऽहिगत्या गच्छति यावच्चरमकांडकचरमसमयप्रथमखंडजघन्यपरिणामं प्राप्नोति । तस्माच्चरमकांडकप्रथमसमयचरमखंडोत्कृष्टपरिणामोऽनन्तगुणः । तस्मात्प्रतिसमयचरमखंडोत्कृष्टपरिणामपंक्तिरनन्तगुणितक्रमा गच्छति यावच्चरमकांडकचरमसमयचरमखंडोत्कृष्टपरिणामं प्राप्नोति । सर्वत्र जघन्यपरिणामादुत्कृष्टपरिणामः असंख्यातलोकमात्रवारानन्तगुणितः । उत्कृष्टपरिणामाज्जघन्यपरिणामः एकवारमनन्तगुणित इति विशेषो ज्ञातव्यः । लब्धि. ४८, टीका । मंदविसोही पढमस्स संखभागाहि पढमसमयम्मि । उक्कस्सं उप्पिमहो एक्केक्कं दोण्हं जीवाणं ॥ १० ॥ मंदविसोहीत्यादि– इह कल्पनया द्वौ पुरुषौ युगपत् करणप्रतिपन्नौ विवक्ष्येते । तत्रैकः सर्वजघन्यया श्रेण्या प्रतिपन्नः, अपरस्तु सर्वोत्कृष्टया विशोधिश्रेण्या । तत्र प्रथमस्य जीवस्य प्रथमसमये मन्दा सर्वजघन्या विशोधिः सर्वस्तोका । ततो द्वितीयसमये जघन्या विशोधिरनन्तगुणा । ततोऽपि तृतीयसमये जघन्या विशोधिरनन्तगुणा । एवं तावद्वाच्यं यावद्यथाप्रवृत्तकरणस्य संख्येयो भागो गतो भवति । ततः प्रथमसमये द्वितीयस्य जीवस्योत्कृष्टं विशोधिस्थानमनन्तगुणं वक्तव्यं । ततोऽपि यतो जघन्यस्थानान्निवृत्तस्तस्योपरितनी जघन्या विशोधिरनन्तगुणा । ततोऽपि द्वितीये समये उत्कृष्टा विशोधिरनन्तगुणा । तत उपरि जघन्या विशोधिरनन्तगुणा । एवमुपर्यधश्चैकैकं विशोधिस्थानमनन्तगुणतया द्वयोर्जीवयोस्तावन्नेयं यावच्चरमसमये जघन्या विशोधिः । तत आचरमात् चरममभिव्याप्य यान्यनुक्तानि स्थानानि उत्कृष्टानि विशोधिस्थानानि तानि क्रमेण निरन्तरमनन्तगुणानि वक्तव्यानि । तदेवं समाप्तं यथाप्रवृत्तकरणम् । कर्मप्र. प. २५७.

१ प्रतिषु ' अपुव्वकरणद्धाए ' इति पाठः ।

२ पढमं व विदियकरणं पडिसमयमसंखलोगपरिणामा । अहियकमा हु विसेसे मुहुत्तअंतो हु पडिभागो ॥ लब्धि. ५०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एदेसिं करणाणं तिव्व-मंददाए अप्पाबहुगं उच्चदे। तं जधा– अपुव्वकरणस्स पढमसमयजहण्णविसोही थोवा। तत्थेव उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा। बिदियसमयजहण्णिया विसोही अणंतगुणा। तत्थेव उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा। तदियसमयजहण्णिगा विसोही अणंतगुणा। तत्थेव उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा। एवं णेयव्वं जाव अपुव्वकरणचरिमसमओ त्ति। करणं परिणामो, अपुव्वाणि च ताणि करणाणि च अपुव्वकरणाणि, असमाणपरिणामा त्ति जं उत्तं होदि[1]। एवमपुव्वकरणस्स लक्खणं परूविदं।

इदाणिमणियट्टीकरणस्स लक्खणं उच्चदे। तं जधा– अणियट्टीकरणद्धा अंतोमुहुत्तमेत्ता होदि त्ति तिस्से अद्धाए समया रचेदव्वा। एत्थ समयं पडि एक्केक्को चेव परिणामो होदि[2], एक्कम्हि समए जहण्णुक्कस्सपरिणामभेदाभावा।

एदासिं विसोहीणं तिव्व-मंददाए अप्पाबहुगं उच्चदे– पढमसमयविसोही थोवा।

इन करणोंकी, अर्थात् अपूर्वकरणकालके विभिन्न समयवर्ती परिणामोंकी, तीव्र-मन्दताका अल्पबहुत्व कहते हैं। वह इस प्रकार है— अपूर्वकरणकी प्रथम समयसम्बन्धी जघन्य विशुद्धि सबसे कम है। वहांपर ही उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणित है। प्रथम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे द्वितीय समयकी जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणित है। वहां पर ही उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणित है। द्वितीय समयकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे तृतीय समयकी जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणित है। वहांपर ही उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणित है। इस प्रकार यह क्रम अपूर्वकरणके अन्तिम समय तक ले जाना चाहिए। करण नाम परिणामका है। अपूर्व जो करण होते हैं उन्हें अपूर्वकरण कहते हैं, जिनका कि अर्थ असमान परिणाम कहा गया है। इस प्रकार अपूर्वकरणका लक्षण निरूपण किया।

अब अनिवृत्तिकरणका लक्षण कहते हैं। वह इस प्रकार है— अनिवृत्तिकरणका काल अन्तर्मुहूर्तमात्र होता है, इसलिए उसके कालके समयोंकी रचना करना चाहिए। यहांपर, अर्थात् अनिवृत्तिकरणमें, एक एक समयके प्रति एक एक ही परिणाम होता है, क्योंकि, यहां एक समयमें जघन्य और उत्कृष्ट परिणामोंके भेदका अभाव है।

अब अनिवृत्तिकरणसम्बन्धी विशुद्धियोंकी तीव्र-मन्दताका अल्पबहुत्व कहते हैं— प्रथम समयसम्बन्धी विशुद्धि सबसे कम है। उससे द्वितीय समयकी विशुद्धि

१ समए समए भिण्णा भावा तम्हा अपुव्वकरणो हु। लब्धि. ३६. जम्हा उवरिमभावा हेट्ठिमभावेहिं णत्थि सरिसत्तं। तम्हा बिदियं करणं अपुव्वकरणेत्ति णिद्दिट्ठं॥ लब्धि. ५१.

२ अणियट्टी वि तहं वि य पडिसमयं एकपरिणामो॥ लब्धि ३६. होंति अणियट्टिणो ते पडिसमयं जेस्सिमेकपरिणामा। गो. जी. ५७.

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

बिदियसमयविसोही अणंतगुणा । तत्तो तदियसमयविसोही अजहण्णुक्कस्सा अणंतगुणा । एवं णेयव्वं जाव अणियट्टीकरणद्धाए चरिमसमओ त्ति । एगसमए वट्टंताणं जीवाणं परिणामेहि ण विज्जदे णियट्टी णिव्वित्ती जत्थ ते अणियट्टीपरिणामा[1] । एदमणियट्टी-करणस्स लक्खणं गदं ।

एदाहि विसोहीहि परिणदो जीवो जाणि कज्जाणि करेदि तप्पदुप्पायणट्ठमुत्तर-सुत्तं भणदि—

एदेसिं चेव सव्वकम्माणं जाधे अंतोकोडाकोडिट्ठिदिं ठवेदि संखेज्जेहि सागरोवमसहस्सेहि ऊणियं ताधे पढमसम्मत्तमुप्पादेदि ॥ ५ ॥

अधापवत्तकरणे ताव ट्ठिदिखंडगो वा अणुभागखंडगो वा गुणसेडी वा गुणसंकमो वा णत्थि[2] । कुदो ? एदेसिं परिणामाणं पुव्वुत्तचउव्विहकज्जुप्पायणसत्तीए अभावादो । केवलमणंतगुणाए विसोहीए पडिसमयं विसुज्झंतो अप्पसत्थाणं कम्माणं वेट्ठाणियमणुभागं समयं पडि अणंतगुणहीणं बंधदि, पसत्थाणं कम्माणमणुभागं चदुट्ठाणियं समयं पडि

अनन्तगुणित है । उससे तृतीय समयकी विशुद्धि अजघन्योत्कृष्ट अनन्तगुणित है । इस प्रकार यह क्रम अनिवृत्तिकरणकालके अन्तिम समय तक ले जाना चाहिए ।

एक समयमें वर्तमान जीवोंके परिणामोंकी अपेक्षा निवृत्ति या विभिन्नता जहां पर नहीं होती है वे परिणाम अनिवृत्तिकरण कहलाते हैं । इस प्रकार अनिवृत्तिकरणका लक्षण कहा ।

इन उपर्युक्त तीन प्रकारकी विशुद्धियोंसे परिणत जीव जिन कार्योंको करता है, उनका प्रतिपादन करनेके लिए आचार्य उत्तर सूत्र कहते हैं —

जिस समय इन ही सर्व कर्मोंकी संख्यात हजार सागरोपमोंसे हीन अन्तः-कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण स्थितिको स्थापित करता है, उस समय यह जीव प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करता है ॥ ५ ॥

अधःप्रवृत्तकरणमें स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात, गुणश्रेणी और गुण-संक्रमण नहीं होता है, क्योंकि, इन अधःप्रवृत्त परिणामोंके पूर्वोक्त चतुर्विध कार्योंके उत्पादन करनेकी शक्तिका अभाव है । केवल अनन्तगुणी विशुद्धिके द्वारा प्रतिसमय विशुद्धिको प्राप्त होता हुआ यह जीव अप्रशस्त कर्मोंके द्विःस्थानीय, अर्थात् निम्ब और कांजीररूप अनुभागको समय समयके प्रति अनन्तगुणित हीन बांधता है, और प्रशस्त कर्मोंके गुड़,

१ एक्कम्हि कालसमये संठाणादीहिं जह णिवट्टंति । ण णिवट्टंति तहा वि य परिणामेहिं मिहो जेहिं ॥ गो. जी. ५६.

२ गुणसेढी गुणसंकम ठिदिरसखंड च णत्थि पढमम्हि । पडिसमयमणंतगुणं विसोहिवड्ढीहिं वड्ढदि हु ॥ लब्धि. ३७.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

अणंतगुणं बंधदि[1]। एत्थ ट्ठिदिबंधकालो अंतोमुहुत्तमेत्तो। पुण्णे पुण्णे[2] ट्ठिदिबंधे पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेणूणियमण्णं ट्ठिदिं बंधदि। एवं संखेज्जसहस्सवारं ट्ठिदिबंधोसरणेसु कदेसु अधापवत्तकरणद्धा समप्पदि[3]।

अधापवत्तकरणपढमसमयट्ठिदिबंधादो चरिमसमयट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणहीणो। एत्थेव पढमसम्मत्त-संजमासंजमाभिमुहस्स ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणहीणो, पढमसम्मत्त-संजमाभिमुहस्स अधापवत्तकरणचरिमसमयट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणहीणो[4]। सुत्ते संखेज्जेहि सागरोवमसहस्सेहि ऊणियं ट्ठिदिं बंधदि त्ति तिसु वि करणेसु सामण्णेण भणिदं, एसो विसेसो सुत्ते अणिद्दिट्ठो कधं णव्वदे? आइरियपरंपरागदुवदेसादो। एवमधापवत्तकरणस्स कज्जपरूवणं कदं।

खांड आदिरूप चतुःस्थानीय अनुभागको प्रतिसमय अनन्तगुणित बांधता है।

यहां, अर्थात् अधःप्रवृत्तकरणकालमें, स्थितिबन्धका काल अन्तर्मुहूर्तमात्र है। एक एक स्थितिबन्धकालके पूर्ण होनेपर पल्योपमके संख्यातवें भागसे हीन अन्य स्थितिको बांधता है। (विशेषके लिए देखो इसी भागके पृ० १३५ का विशेषार्थ)। इस प्रकार संख्यात सहस्र बार स्थितिबन्धापसरणोंके करने पर अधःप्रवृत्तकरणका काल समाप्त हो जाता है।

अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयसम्बन्धी स्थितिबन्धसे उसीका अन्तिम समयसम्बन्धी स्थितिबन्ध संख्यातगुणा हीन होता है। यहां पर ही, अर्थात् अधःप्रवृत्तकरणके चरम समयमें, प्रथमसम्यक्त्वके अभिमुख जीवके जो स्थितिबन्ध होता है, उससे प्रथमसम्यक्त्वसहित संयमासंयमके अभिमुख जीवका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा हीन होता है। इससे प्रथमसम्यक्त्वसहित सकलसंयमके अभिमुख जीवका अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयसम्बन्धी स्थितिबन्ध संख्यातगुणा हीन होता है।

शंका—सूत्रमें, 'संख्यात हजार सागरोपमोंसे हीन स्थितिको बांधता है' यह वाक्य तीनों ही करणोंमें सामान्यसे कहा है, फिर सूत्रमें अनिर्दिष्ट यह उपर्युक्त विशेष कैसे जाना जाता है?

समाधान—सूत्रमें अनिर्दिष्ट वह उपर्युक्त कथन आचार्य-परम्पराके द्वारा आये हुए उपदेशसे जाना जाता है।

इस प्रकार अधःप्रवृत्तकरणके कार्योंका निरूपण किया।

---

१ सत्थाणमसत्थाणं चउविट्ठाणं रसं च बंधदि हु। पडिसमयमणंतेण य गुणभजियकमं तु रसबंधे॥ लब्धि. ३८.

२ प्रतिषु 'पुणो पुणो' इति पाठः।

३ पल्लस्स संखभागं मुहुत्तअंतेण उपरदे बंधे। संखेज्जसहस्साणि य अधापवत्तम्मि ओसरणा॥ लब्धि. ३९.

४ आदिमकरणद्धाए पढमट्ठिदिबंधदो दु चरिमम्हि। संखेज्जगुणविहीणो ठिदिबंधो होइ णियमेण॥ तच्चरिमे ठिदिबंधो आदिमसम्मेण देससयलजमं। पडिवज्जमाणगस्स वि संखेज्जगुणेण हीणकमो॥ लब्धि. ४०-४१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपुव्वकरणस्स पढमो ट्ठिदिखंडओ जहण्णगो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो, उक्कस्सओ सागरोवमपुधत्तमेत्तो आगाइदो[1]। अधापवत्तकरणचरिमसमयट्ठिदिबंधादो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण ऊणओ ट्ठिदिबंधो ताधे चेव आढत्तो आयुगवज्जाणं सव्वकम्माणं ट्ठिदिखंडओ होदि[2]। ट्ठिदिबंधो पुण बज्झमाणपयडीणं चेव। अपुव्वकरणपढमसमए चेव गुणसेडी वि आढत्ता। तं जधा– उदयपयडीणमुदयावलियबाहिराट्ठिदट्ठिदीणं पदेसग्गमोकड्डणभागहारेण खंडिदेयखंडं असंखेज्जलोगेण भाजिदेगभागं घेत्तूण उदए बहुगं देदि[3]। विदियसमए विसेसहीणं देदि। एवं विसेसहीणं विसेसहीणं देदि जाव उदयावलियचरिमसमओ त्ति। विसेसो पुण वेगुणहाणिपडिभागिओ[4]। एस कमो उदयपयडीणं चेव, ण सेसाणं, तेसिमुदयावलियब्भंतरे पडमाणपदेसग्गाभावा।

उदइल्लाणमणुदइल्लाणं च पयडीणं पदेसग्गमुदयावलियबाहिरट्ठिदीसु ट्ठिदमोकड्डण-

---

अपूर्वकरणका प्रथम जघन्य स्थितिखंड पल्योपमका संख्यातवां भाग और उत्कृष्ट स्थितिखंड सागरोपमपृथक्त्वमात्र ग्रहण किया है। अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयवाले स्थितिबन्धसे पल्योपमके संख्यातवें भागसे हीन स्थितिबन्ध उस कालमें, अर्थात् अपूर्वकरणके प्रथम समयमें, ही आरम्भ किया। यह स्थितिखंड आयुकर्मको छोड़कर शेष समस्त कर्मोंका होता है। किन्तु स्थितिबन्ध बंधनेवाली प्रकृतियोंका ही होता है। अपूर्वकरणके प्रथम समयमें ही गुणश्रेणी भी प्रारम्भ की। वह इस प्रकार है— उदयमें आई हुई प्रकृतियोंकी उदयावलीसे बाहिर स्थित स्थितियोंके प्रदेशाग्रको अपकर्षणभागहारके द्वारा खंडित करके एक खंडको असंख्यात लोकसे भाजित करके एक भागको ग्रहण कर उदयमें बहुत प्रदेशाग्रको देता है। दूसरे समयमें विशेष हीन प्रदेशाग्रको देता है। (यहां सर्वत्र भागहारका प्रमाण पल्योपमका असंख्यातवां भाग है।) इस प्रकार उदयावलीके अन्तिम समय तक विशेष हीन देता हुआ चला जाता है। यहां विशेषका प्रमाण दो गुणहानिका प्रतिभागी है। यह क्रम उदयमें आई हुई प्रकृतियोंका ही है, शेष प्रकृतियोंका नहीं, क्योंकि, उनके उदयावलीके भीतर आनेवाले प्रदेशाग्रोंका अभाव है।

उदयमें आई हुई और उदयमें नहीं आई हुई प्रकृतियोंके प्रदेशाग्रको तथा उदयावलीके बाहिरकी स्थितियोंमें स्थित प्रदेशाग्रको अपकर्षण भागहारके द्वारा खंडित

---

१ पढमं अवरवरट्ठिदिखंडं पल्लस्स संखभागं तु। सायरपुधत्तमेत्तं इदि संखसहस्सखंडाणि ॥ लब्धि. ७७.

२ आउगवज्जाणं ठिदिघादो पढमादु चरिमठिदिसत्तो। ठिदिबंधो य अपुव्वो होदि हु संखेज्जगुणहीणो ॥ लब्धि. ७८.

३ उदयाणमावलिम्हि य उभयाणं बाहिरम्मि खिवणट्ठं। लोयाणमसंखेज्जो कमसो उक्कट्टणो हारो ॥ उक्कट्टिदइगिभागे पल्लासंखेण भाजिदे तत्थ। बहुभागमिदं दव्वं उवरिल्लठिदीसु णिक्खिवदि ॥ सेसगभागे भजिदे असंखलोगेण तत्थ बहुभागं। गुणसेढीए सिंचदि सेसेगं च उदयम्हि ॥ लब्धि ६८-७०.

४ प्रतिषु 'पडिभागीदो' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भागहारेण खंडिदेगखंडं घेत्तूण उदयावलियबाहिरद्विदिम्हि असंखेज्जसमयपबद्धे देदि[1]। तदो उवरिमट्ठिदीए तत्तो असंखेज्जगुणे देदि। तदियट्ठिदीए तत्तो असंखेज्जगुणे देदि। एवमसंखेज्जगुणाए सेडीए णेदव्वं जाव गुणसेडीचरिमसमओ त्ति। तदो उवरिमाणंतराए ठिदीए असंखेज्जगुणहीणं दव्वं देदि। तदुवरिमट्ठिदीए विसेसहीणं देदि[2]। एवं विसेसहीणं विसेसहीणं चेव पदेसग्गं णिरंतरं देदि जाव अप्पप्पणो उक्कीरिदट्ठिदिमावलियकालेण अपत्तो त्ति। णवरि उदयावलियबाहिरट्ठिदिमसंखेज्जालोगेण खंडिदेगखंडं समऊणावलियाए वे त्तिभागे अइच्छाविय समयाहियतिभागे णिक्खिवदि पुव्वं व विसेसहीणकमेण। तदो उवरिमट्ठिदीए एसो चेव णिक्खेवो[3]। णवरि अइच्छावणा[4] समउत्तरा होदि। एवं

करके एक खंडको ग्रहण कर (पल्योपमके असंख्यातवें भागरूप भागहारसे भाजित कर उसका एक भाग उदयावलीके भीतर गोपुच्छाकारसे देता है, और बहुभागरूप) असंख्यात समयप्रबद्धोंको उदयावलीके बाहिरकी स्थितिमें देता है। इससे ऊपरकी स्थितिमें उससे भी असंख्यातगुणित समयप्रबद्धोंको देता है। तृतीय स्थितिमें उससे भी असंख्यातगुणित समयप्रबद्धोंको देता है। इस प्रकार यह क्रम असंख्यातगुणित श्रेणीके द्वारा गुणश्रेणीके अन्तिम समय तक ले जाना चाहिए। उससे ऊपरकी अनन्तर स्थितिमें असंख्यातगुणित हीन द्रव्यको देता है। उससे ऊपरकी स्थितिमें विशेष हीन द्रव्यको देता है। इस प्रकार विशेष-हीन विशेष-हीन ही प्रदेशाग्रको निरन्तर तब तक देता है, जब तक कि अपनी अपनी उत्कीरित स्थितिको आवलीमात्र कालके द्वारा प्राप्त न हो जाय। विशेष बात यह है कि उदयावलीसे बाहिरकी स्थितिको असंख्यात लोकसे खंडित कर एक खंडको, एक समय कम आवलीके दो त्रिभागोंको ($\frac{2}{3}$) अतिस्थापन करके, एक समय अधिक आवलीके त्रिभागमें पूर्वके समान विशेष हीनक्रमसे निक्षिप्त करता है उससे ऊपरकी स्थितिमें यह ही निक्षेप है। केवल विशेषता यह है कि अतिस्थापना एक समय अधिक होती है। इस प्रकार यह क्रम तब तक ले जाना

१ अपुव्वकरणपढमसमए दिवड्ढगुणहाणिमेत्तसमयपबद्धे ओकड्डुकड्डुणभागहारेण खंडेयूण तत्थेयखंडमेत्तदव्वमोकड्डिय तत्थासंखेज्जलोगपडिभागियं दव्वमुदयावलियब्भंतरे गोवुच्छायारेण णिसिंचिय पुणो सेसबहुभागदव्वमुदयावलियबाहिरे णिक्खिवमाणो उदयावलियबाहिराणंतरट्ठिदीए असंखेज्जसमयपबद्धमेत्तदव्वं णिसिंचिदे। जयध. अ. प. ९५.

२ उदयावलिस्स दव्वं आवलिभजिदे दु होदि मज्झधणं। रूऊणद्धाणद्धेणूणेण णिसेयहारेण ॥ मज्झिमधणमवहरिदे पचयं पचयं णिसेयहारेण। गुणिदे आदिणिसेयं विसेसहीणे कमं तत्तो ॥ उक्कट्टिदम्हि देदि हु असंखसमयप्पबद्धमादिम्हि। संखातीतगुणकममसंखहीणं विसेसहीणकमं ॥ लब्धि. ७१-७३.

३-४ अपकृष्टद्रव्यस्य निक्षेपस्थानं निक्षेपः, निक्षिप्यतेऽस्मिन्निति निर्वचनात्। तेनातिक्रम्यमाणं स्थानमतिस्थापनं, अतिस्थाप्यते अतिक्रम्यतेऽस्मिन्निति अतिस्थापनम्। लब्धि. ५६. टीका.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

णेयव्वं जाव अइच्छावणा आवलियमेत्ता जादा त्ति । तदो उवरिमणिक्खेवो चेव वड्ढदि जाव उक्कस्सणिक्खेवं पत्तो त्ति[1] ।

चाहिए, जब तक कि अतिस्थापना पूर्ण आवलीप्रमाण होती है। उससे ऊपर उपरिम निक्षेप ही उत्कृष्ट निक्षेप प्राप्त होने तक बढ़ता जाता है।

विशेषार्थ—अपकर्षण या उत्कर्षण किया हुआ द्रव्य जिन निषेकोंमें मिलाते हैं, वे निषेक निक्षेपरूप कहलाते हैं। उक्त द्रव्य जिन निषेकोंमें नहीं मिलाया जाता है, वे निषेक अतिस्थापनारूप कहलाते हैं। निक्षेप और अतिस्थापनाका क्रम यह है कि उदयावलीमेंसे एक कम कर शेषमें तीनका भाग दीजिए। एक रूप सहित प्रारंभका त्रिभाग तो निक्षेपरूप है, अर्थात् वह अपकृष्ट द्रव्य एक रूप सहित प्रथम त्रिभागमें मिलाया जाता है, और अन्तके दो भाग अतिस्थापनारूप हैं, अर्थात् उनमें वह अपकृष्ट किया हुआ द्रव्य नहीं मिलाया जाता है। उदाहरणार्थ– उदयावली या प्रथमावलीके एकसे लेकर सोलह निषेक कल्पना कीजिए और सत्तरहसे लेकर बत्तीस तकके निषेक दूसरी आवलीके कल्पना कीजिए। इस कल्पनाके अनुसार दूसरी आवलीके सत्तरहवें निषेकका द्रव्य अपकर्षण करके नीचे उदयावलीमें देना है, तो उक्त क्रमके अनुसार १६ मेंसे एक कम करनेपर १५ रहे। उसका त्रिभाग ५ हुआ। उसमें १ के मिलानेपर ६ होते हैं। सो इन प्रारंभके ६ समयोंके निषेकोंमें उक्त अपकृष्ट द्रव्यका निक्षेप होगा। इसीलिए वे निषेक स्थापना या निक्षेपरूप कहे जाते हैं। बाकीके ७ से लेकर १६ तकके जो प्रथमावलीके निषेक हैं उनमें उस द्रव्यका निक्षेप नहीं होगा। इसीलिए वे अतिस्थापनारूप कहे जाते हैं। यह जघन्य निक्षेप और जघन्य अतिस्थापनाका स्वरूप है। इससे ऊपर दूसरी आवलीके दूसरे निषेकका अपकर्षण किया, तब इसके नीचे एक समय अधिक आवलीमात्र सर्व निषेक हैं, उनमें निक्षेप तो एक समय कम आवलीका त्रिभाग-मात्र ही रहेगा। किन्तु अतिस्थापनाका प्रमाण पहलेसे एक समय अधिक हो जावेगा। पुनः उसी दूसरी आवलीके तीसरे निषेकको अपकर्षण कर नीचे दिया, तब भी निक्षेपका प्रमाण वही रहेगा, किन्तु अतिस्थापना एक समय अधिक हो जावेगी। पुनः उसी दूसरी आवलीके चौथे निषेकको अपकर्षण कर नीचे देनेपर भी निक्षेपका प्रमाण तो पूर्वोक्त ही रहेगा, किन्तु अतिस्थापनामें एक समय अधिक हो जावेगा। इस प्रकार ऊपर ऊपरके निषेकोंको अपकर्षण कर नीचे देनेपर निक्षेपका प्रमाण तब तक वही रहेगा जब तक कि अतिस्थापनाका प्रमाण एक एक समय बढ़ते बढ़ते पूरा एक आवलीप्रमाण काल न हो जावे।

---

१ णिक्खेवमदित्थावणमवरं समऊणआवलितिभागं । तयूणावलिमेत्तं बिदियावलियादिमणिसेगे ॥ एत्तो समऊणावलितिभागमेत्तो तु तं खु णिक्खेवो । उवरिं आवलिवज्जिय सगट्ठिदी होदि णिक्खेवो ॥ उक्कस्सट्ठिदिबंधो समयजुदावलिदुगेण परिहीणो । उक्कट्ठिदिम्मि चरिमे ट्ठिदिम्मि उक्कस्सणिक्खेवो ॥ लब्धि. ५६-५८. उक्कस्सओ पुण णिक्खेवो केत्तिओ ? जत्तिया उक्कस्सिया कम्मट्ठिदी उक्कस्सियाए आबाहाए समयुत्तरावलियाए च ऊणा तत्तिओ उक्कस्सओ णिक्खेवो । जयध. अ. प. ५९९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जासिं ट्ठिदीणं पदेसग्गस्स उदयावलियब्भंतरे चेव णिक्खेवो तासिं पदेसग्गस्स ओकड्डणभागहारो असंखेज्जा लोगा[1]। एवमुवरिमसव्वसमएसु कीरमाणगुणसेडीणमेसो चेव अत्थो वत्तव्वो। णवरि पढमसमए ओकड्डिदपदेसग्गादो बिदियसमए असंखेज्जगुणं पदेसग्गमोकड्डदि, बिदियसमयपदेसादो तदियसमए असंखेज्जगुणमोकड्डदि। एवं सव्व-समएसु णेयव्वं। पढमसमए दिज्जमाणपदेसग्गादो बिदियसमए ट्ठिदिं पडि दिज्जमाण-पदेसग्गमसंखेज्जगुणं। एवं सव्वसमयाणं पि दिज्जमाणक्कमो वत्तव्वो[2]।

तम्हि चेव अपुव्वकरणपढमसमए अप्पसत्थाणं कम्माणमणुभागस्स अणंता भागा

जब अतिस्थापना आवलीमात्र हो जाती है, तब उसके ऊपर निक्षेपका ही प्रमाण एक एक समयकी अधिकतासे तब तक बढ़ता जाता है जब तक कि उत्कृष्ट निक्षेप प्राप्त न हो जावे। यद्यपि यहां धवलाकारने उत्कृष्ट निक्षेपका प्रमाण नहीं बतलाया, तथापि जयधवला और लब्धिसार आदि ग्रन्थोंमें उसका प्रमाण एक समय अधिक दो आवलीसे हीन उत्कृष्ट कर्मस्थितिप्रमाण बतलाया गया है। एक समय अधिक दो आवलीसे हीन करनेका कारण यह है कि विवक्षित कर्मके बन्ध होनेके पश्चात् एक आवली तक तो उदीरणा हो नहीं सकती है, इसलिए वह एक अचलावलीकाल तो आबाधाकालमें गया। और अन्तिम आवली अतिस्थापनारूप है, अतः उसका भी द्रव्य अपकर्षण नहीं किया जा सकता। तथा अन्तिम निषेकका द्रव्य अपकर्षण कर नीचे निक्षिप्त किया ही जा रहा है, अतः उसे ग्रहण नहीं किया। इस प्रकार एक समय अधिक दो आवलीसे हीन शेष समस्त उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण उत्कृष्ट निक्षेपका प्रमाण जानना चाहिए। यह प्रमाण अव्याघात स्थितिका है। व्याघात स्थितिका क्रम भिन्न है।

जिन स्थितियोंके प्रदेशाग्रका उदयावलीके भीतर ही निक्षेप होता है, उन स्थितियोंके प्रदेशाग्रका अपकर्षण भागहार असंख्यात लोकप्रमाण है। इस प्रकार ऊपरके सर्व समयोंमें की जानेवाली गुणश्रेणियोंका यह ही अर्थ कहना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि प्रथम समयमें अपकर्षण किये गये प्रदेशाग्रसे द्वितीय समयमें असंख्यातगुणित प्रदेशाग्रको अपकर्षित करता है, द्वितीय समयके प्रदेशाग्रसे तीसरे समयमें असंख्यातगुणित प्रदेशाग्रको अपकर्षित करता है। इस प्रकार यह क्रम सर्व समयोंमें ले जाना चाहिए। प्रथम समयमें दिये जानेवाले प्रदेशाग्रसे द्वितीय समयमें स्थितिके प्रति दिया जानेवाला प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। इस प्रकार सर्व समयोंके भी दिये जानेवाले प्रदेशाग्रोंका क्रम कहना चाहिए।

उस ही अपूर्वकरणके प्रथम समयमें अप्रशस्त कर्मोंके अनुभागका अनन्त बहुभाग

---

१ उदयाणमावलिम्हि य उभयाणं बाहिरम्मि खिवणट्ठं। लोयाणमसंखेज्जो कमसो उक्कट्टणो हारो ॥ लब्धि. ६८.

२ पडिसमयं उक्कट्टदि असंखगुणियक्कमेण सिंचदि य। इदि गुणसेढीकरणं आउगवज्जाण कम्माणं ॥ लब्धि. ७४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घादेदुमाढत्ता[1] । एत्थ अणुभागकंडयमाहप्पजाणावणट्ठमप्पाबहुगं उच्चदे । तं जहा– अणुभागस्स एक्कम्हि पदेसगुणहाणिट्ठाणंतरे जे अणुभागफद्दया ते थोवा । अइच्छावणा[2] अणंतगुणा । णिक्खेवो अणंतगुणो[3] । अणुभागखंडयदीहत्तमणंतगुणं । एदमप्पाबहुगं सव्वाणुभागखंडएसु दट्ठव्वं । गुणसेडिणिक्खेवो पुण अपुव्वकरणद्धादो अणियट्टीकरणद्धादो च विसेसाहिओ[4] । ट्ठिदिबंधकालो ट्ठिदिखंडयउक्कीरणकालो च दो वि सव्वत्थ सरिसा[5] विसेसहीणा । एगट्ठिदिखंडयकालब्भंतरे अणुभागखंडयसहस्साणि णिवदंति, तक्कालादो संखेज्जगुणहीणअणुभागखंडयउक्कीरणद्धत्तादो[6] । णवरि ट्ठिदिखंडयचरिमफालीए पडमाण-

घातना प्रारम्भ करता है। यहांपर अनुभागकांडकका माहात्म्य बतलानेके लिए अल्पबहुत्व कहते हैं। वह इस प्रकार है— अनुभागके एक प्रदेशगुणहानिस्थानान्तरमें जो अनुभागसम्बन्धी स्पर्धक हैं, वे सबसे कम हैं। उनसे अतिस्थापना अनन्तगुणी है। उससे निक्षेप अनन्तगुणा है। उससे अनुभागकांडककी दीर्घता अनन्तगुणी है। यह अल्पबहुत्व सभी अनुभागखंडोंमें जानना चाहिए। किन्तु गुणश्रेणीनिक्षेप अपूर्वकरणके कालसे और अनिवृत्तिकरणके कालसे विशेष अधिक होता है। स्थितिबंधका काल और स्थितिकांडकका उत्कीरणकाल, ये दोनों ही सर्वत्र सदृश और विशेषहीन होते हैं। एक स्थितिखंडकालके भीतर हजारों अनुभागकांडक होते हैं, क्योंकि, स्थितिकांडकके कालसे संख्यातगुणा हीन अनुभागकांडकका उत्कीरणकाल होता है। विशेषता केवल यह है कि

---

१ असुहाणं पयडीणं अणंतभागा रसस्स खंडाणि । सुहपयडीणं णियमा णत्थि त्ति रसस्स खंडाणि ॥ लब्धि. ८०.

२ उवरिमअणुभागफद्दयाणि ओकड्डेमाणो जत्तियाणि अणुभागफद्दयाणि जहण्णेणाइच्छाविय हेट्ठिमफद्दयसरूवेणोकड्डइ ताणि जहण्णाइच्छावणाविसयाणि अणंतगुणाणि त्ति जहवुत्तं होइ । जयध. अ. प. ९५१ । रसगदपदेसगुणहाणिट्ठाणगफड्डयाणि थोवाणि । अइत्थावणणिक्खेवे रसखंडेणतगुणियकमा ॥ लब्धि. ८१.

३ **णिक्खेवफद्दयाणि अणंतगुणाणि** एवं भणिदे कंडयस्स हेट्ठा जहण्णाइच्छावणमेत्तफद्दयाणि मोत्तूण सेसहेट्ठिमसव्वफद्दयाणं गहणं कायव्वं । एदाणि जहण्णाइच्छावणाफद्दएहिंतो अणंतगुणाणि त्ति भणिदं होइ । जयध. अ. प. ९५१.

४ अपुव्वकरणस्स चेव पढमसमए आउगवज्जाणं कम्माणं **गुणसेढिणिक्खेवो अणियट्टिअद्धादो करणद्धादो च विसेसाहिओ** । जयध. अ. प. ९५१. गुणसेढीदीहत्तमपुव्वदुगादो दु साहियं होदि । लब्धि. ५५.

५ तम्हि ठिदिखंडयद्धा ठिदिबंधगद्धा च तुल्ला । जयध. अ. प. ९५१. ट्ठिदिबंधट्ठिदिखंडुक्कीरणकाला समा होंति । लब्धि. ५४.

६ **एक्कम्हि ठिदिखंडए अणुभागखंडयसहस्साणि घादेदि** । किं कारणं? ठिदिखंडयउक्कीरणद्धादो अणुभागखंडयउक्कीरणद्धाए संखेज्जगुणहीणत्तादो । जयध. अ. प. ९५१. एक्केकट्ठिदिखंडयणिवडणठिदिबंधओसरणकाले । संखेज्जसहस्साणि य णिवडंति रसस्स खंडाणि ॥ लब्धि. ७९.

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

काले चेव सव्वत्थ ट्ठिदिबंधो समप्पदि, ट्ठिदिखंडयउक्कीरणकालेण समाणबंधगद्धत्तादो। तम्हि चेव समए चरिमाणुभागखंडयचरिमफाली वि पददि[1], अणुभागखंडयउक्कीरणद्धाए ओवट्टिदट्ठिदिबंधकालम्हि विगलरूवाभावादो। एवं बहूहि ट्ठिदिखंडयसहस्सेहि अदिक्कंतेहि अपुव्वकरणद्धा समप्पदि[2]। णवरि अपुव्वकरणस्स पढमसमयट्ठिदिसंत-ट्ठिदिबंधेहिंतो अपुव्वकरणस्स चरिमसमयट्ठिदिसंत-ट्ठिदिबंधाणं दीहत्तं संखेज्जगुणहीणं होदि[3]। अपुव्वकरणपढमसमयअणुभागसंतादो चरिमसमये अप्पसत्थपयडीणमणुभागसंतकम्ममणंतगुणहीणं, पसत्थाणमणंतगुणं होदि[4]। एवमपुव्वपरिणामकज्जपरूवणा कदा।

तदणंतरउवरिमसमए अणियट्टीकरणं पारभदि। ताधे चेव अण्णो ट्ठिदिखंडओ,

स्थितिकांडककी चरम फालीके पतनकालमें ही सर्वत्र स्थितिबन्ध समाप्त हो जाता है, क्योंकि, स्थितिकांडकके उत्कीरणकालके साथ स्थितिबन्धका काल समान होता है। उस ही समयमें अन्तिम अनुभागकांडककी अन्तिम फाली भी नष्ट होती है, क्योंकि, अनुभागकांडकके उत्कीरणकालसे अपवर्तन किये गये स्थितिबन्धके कालमें विकलरूपता, अर्थात् विभिन्नता, नहीं हो सकती है। इस प्रकार अनेक सहस्र स्थितिकांडकोंके व्यतीत होनेपर अपूर्वकरणका काल समाप्त होता है। यहां विशेषता यह है कि अपूर्वकरणके प्रथम समयसम्बन्धी स्थितिसत्त्व और स्थितिबन्ध, इन दोनोंसे अपूर्वकरणके अन्तिम समय-सम्बन्धी स्थितिसत्त्व और स्थितिबन्ध, इन दोनोंकी दीर्घता संख्यातगुणी हीन होती है। अपूर्वकरणके प्रथम समयसम्बन्धी अनुभागसत्त्वसे अन्तिम समयमें अप्रशस्त प्रकृतियोंका अनुभागसत्त्वकर्म अनन्तगुणा हीन होता है और प्रशस्त प्रकृतियोंका अनुभागसत्त्व अनन्त-गुणा अधिक होता है। इस प्रकार अपूर्वकरण परिणामोंके कार्योंका निरूपण किया।

उक्त अपूर्वकरणका काल समाप्त होनेके अनन्तर आगेके समयमें अनिवृत्ति-करणको प्रारम्भ करता है। उसी समयमें ही अन्य स्थितिखंड, अन्य अनुभागखंड और

१ ठिदिखंडगे समत्ते अणुभागखंडयं च ट्ठिदिबंधगद्धा च समत्ताणि भवंति। जयध. अ. प. ९५१.

२ एवं ठिदिखंडयसहस्सेहिं बहुएहिं गदेहिं अपुव्वकरणद्धा समत्ता भवदि। जयध. अ. प. ९५२.

३ णवरि पढमट्ठिदिखंडयादो बिदियट्ठिदिखंडयं विसेसहीणं संखेज्जदिभागेण। एवमणंतराणंतरादो विसेसहीणं णेदव्वं जाव चरिमट्ठिदिखंडयं ति। ××× **अपुव्वकरणस्स पढमसमए ट्ठिदिसंतकम्मादो चरिमसमए ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणहीणं**। किं कारणं? अपुव्वकरणपढमसमए पुव्वणिरुद्धंतोकोडाकोडीमेत्त-सागरोवमाणं संखेज्जे भागे अपुव्वकरणविसोहिणिबंधणट्ठिदिखंडयसहस्सेहिं घादेहिं संखेज्जदिभागमेत्तस्सेव ट्ठिदिसंत-कम्मस्स परिसेसिदत्तादो। जयध. अ. प. ९५२. आउगवज्जाणं ठिदिघादो पढमादु चरिमठिदिसंतो। ठिदिबंधो य अपुव्वो होदु हु संखेज्जगुणहीणो॥ लब्धि. ७८.

४ पढमापुव्वरसादो चरिमे समये पसत्थइदराणं। रससत्तमणंतगुणं अणंतगुणहीणयं होदि। लब्धि. ८२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अण्णो अणुभागखंडओ, अण्णो ट्ठिदिबंधो च आढत्तो[1]। पुव्वोकड्डिदपदेसग्गादो असंखेज्ज-गुणं पदेसमोकड्डिदूण अपुव्वकरणो व्व गलिदसेसं गुणसेडिं करेदि[2]। (सुत्ते ट्ठिदिबंधो-सरणमेव परूविदं, ठिदि-अणुभाग-पदेसघादा ण परूविदा, तेसिं परूवणा ण एत्थ जुज्जदि त्ति ? ण, तालपलंबसुत्तं व तस्स देसामासियत्तादो। एवं ट्ठिदिबंध-ट्ठिदिखंडय-अणुभाग-खंडयसहस्सेसु गदेसु अणियट्टीअद्धाए चरिमसमयं पावदि।

संपहि केवचिरेण कालेणेत्ति पुच्छाए अत्थं परूवयंतो अणियट्टीपरिणामाणं कज्ज-विसेसपदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि–

पढमसम्मत्तमुप्पादेंतो अंतोमुहुत्तमोहट्टेदि ॥ ६ ॥

अन्य स्थितिबन्धको आरम्भ करता है। पूर्वमें अपकर्षित प्रदेशाग्रसे असंख्यातगुणित प्रदेशका अपकर्षणकर अपूर्वकरणके समान गलितावशेष गुणश्रेणीको करता है।

विशेषार्थ— गुणश्रेणी प्रारम्भ करनेके प्रथम समयमें जो गुणश्रेणी-आयामका प्रमाण था उसमें एक एक समयके बीतनेपर उसके द्वितीयादि समयोंमें गुणश्रेणी आयाम क्रमसे एक एक निषेक घटता हुआ अवशेष रहता है, इसलिए उसे गलितावशेष गुण-श्रेणी आयाम कहते हैं। यद्यपि यहांपर गुणश्रेणीका प्रारम्भ अपूर्वकरणके प्रथम समयसे हुआ था और तबसे यहांतक बराबर गुणश्रेणी जारी है, तथापि उसके आयामका प्रमाण क्रमशः एक एक समयप्रमाण गलित या कम होता जा रहा है, इससे यह गलितावशेष गुणश्रेणी कहलाती है। (देखो लब्धिसार वचनिका पृ. २२)

शंका— सूत्रमें केवल स्थितिबन्धापसरण ही कहा है, स्थितिघात, अनुभागघात और प्रदेशघात नहीं कहे हैं, इसलिए उनकी प्ररूपणा यहांपर युक्तिसंगत या योग्य नहीं है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, तालप्रलम्बसूत्रके समान यह सूत्र देशामर्शक है। अतएव स्थितिघात आदिकी प्ररूपणा घटित हो जाती है।

इस प्रकार सहस्रों स्थितिबन्ध, स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघातोंके व्यतीत होनेपर अनिवृत्तिकरणके कालका अन्तिम समय प्राप्त होता है।

अब 'कितने कालके द्वारा' इस पृच्छासूत्रके अर्थको प्ररूपण करते हुए आचार्य अनिवृत्तिकरणसम्बन्धी परिणामोंके कार्य-विशेष बतलानेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

प्रथमोपशमसम्यक्त्वको उत्पन्न करता हुआ सातिशय मिथ्यादृष्टि जीव अन्त-र्मुहूर्त काल तक हटाता है, अर्थात् अन्तरकरण करता है ॥ ६ ॥

---

१ अणियट्टिस्स पढमसमए अण्णं ट्ठिदिखंडयं अण्णो ट्ठिदिबंधो अण्णमणुभागखंडयं। जयध. अ. प. ९५२. विदियं व तदियकरणं पडिसमयं एक एकपरिणामो। अण्णं ठिदिरसखंडे अण्णं ठिदिबंधमाणुवइ ॥ लब्धि. ८३.

२ गलिदवसेसे उदयावलिबाहिरदो दु णिक्खेवो ॥ लब्धि. ५५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एदं सुत्तमंतरकरणं[1] परूवेदि । कस्स अंतरं कीरदि ? मिच्छत्तस्स, अणादिय-मिच्छाइट्ठिणा अधियारादो । अण्णहा पुण जमत्थि दंसणमोहणीयं तस्स सव्वस्स अंतरं कीरदि । कम्हि अंतरं करेदि ? अणियट्टीअद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण[2] । अंतरकरणस्स

यह सूत्र अन्तरकरणका प्ररूपण करता है ।

शंका - प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख जीव किसका अन्तर करता है ?

समाधान—मिथ्यात्वकर्मका अन्तर करता है, क्योंकि, यहांपर अनादि मिथ्यादृष्टि जीवका अधिकार है । अन्यथा पुनः जो (तीन भेदरूप) दर्शनमोहनीय कर्म है, उस सबका अन्तर करता है ।

विशेषार्थ—विवक्षित कर्मोंकी अधस्तन और उपरिम स्थितियोंको छोड़कर मध्यवर्ती अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थितियोंके निषेकोंका परिणामविशेषके द्वारा अभाव करनेको अन्तरकरण कहते हैं । प्रकृतमें अनादि मिथ्यादृष्टिके प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी उत्पत्तिका अधिकार है । अतएव सातिशय मिथ्यादृष्टि जीव क्रमशः अधःकरण और अपूर्वकरणका काल समाप्त करके जब अनिवृत्तिकरण कालका भी संख्यात बहुभाग व्यतीत कर चुकता है, उस समय मिथ्यात्वकर्मका अन्तर्मुहूर्त काल तक अन्तरकरण करता है, अर्थात् अन्तरकरण प्रारंभ करनेके समयसे पूर्व उदयमें आनेवाले मिथ्यात्वकर्मकी अन्तर्मुहूर्तप्रमित स्थितिको उल्लंघन कर उससे ऊपरकी अन्तर्मुहूर्तप्रमित स्थितिके निषेकोंका उत्कीरण कर कुछ कर्मप्रदेशोंको प्रथमस्थितिमें क्षेपण करता है और कुछको द्वितीयस्थितिमें । अन्तरकरणसे नीचेकी अन्तर्मुहूर्तप्रमित स्थितिको प्रथमस्थिति कहते हैं और अन्तरकरणसे ऊपरकी स्थितिको द्वितीयस्थिति कहते हैं । इस प्रकार प्रतिसमय अन्तरायामसम्बन्धी कर्मप्रदेशोंको ऊपर नीचेकी स्थितियोंमें तब तक देता रहता है जब तक कि अन्तरायामसम्बन्धी समस्त निषेकोंका अभाव नहीं हो जाता है । यह क्रिया एक अन्तर्मुहूर्तकाल तक जारी रहती है । जब अन्तरायामके समस्त निषेक ऊपर या नीचेकी स्थितियोंमें दे दिये जाते हैं और अन्तरकाल मिथ्यात्वस्थितिके कर्मनिषेकोंसे सर्वथा शून्य हो जाता है, तब 'अन्तर कर दिया गया' ऐसा समझना चाहिए । तभी उक्त जीव मिथ्यात्वकर्मके तीन भाग करता है ।

शंका — किसमें, अर्थात् कहांपर या किस करणके कालमें, अन्तर करता है ?

समाधान—अनिवृत्तिकरणके कालमें संख्यात भाग जाकर अन्तर करता है ।

१ किमंतरकरणं णाम ? विवक्खियकम्माणं हेट्ठिमोवरिमट्ठिदीओ मोत्तूण मज्झे अंतोमुहुत्तमेत्ताणं ट्ठिदीणं परिणामविसेसेण णिसेगाणमभावीकरणमंतरकरणमिदि भण्णदे ॥ जयध. अ. प. ९५३. अन्तरकरणं नामोदयक्षणादुपरि मिथ्यात्वस्थितिमन्तर्मुहूर्तमानामतिक्रम्योपरितनीं च विष्कम्भयित्वा मध्येऽन्तर्मुहूर्तमानं तत्प्रदेशवेद्यदलिकाभावकरणं । कर्मप्र. पत्र २६०.

२ एवं ट्ठिदिखंडयसहस्सेहि अणियट्टिअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु अंतरं करेदि । जयध. अ. प. ९५२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पढमसमए अण्णं ट्ठिदिखंडयं अण्णमणुभागखंडयं च आगाएदि, अण्णं ट्ठिदिबंधं च आढवेदि[1]। जत्तिओ ट्ठिदिबंधकालो तत्तिएण कालेण अंतरं करेमाणो गुणसेढीणिक्खेवस्स अग्गग्गादो संखेज्जदिभागं खंडेदि। गुणसेढीसीसयादो[2] संखेज्जगुणाओ उवरिमट्ठिदीओ खंडेदि[3], अंतरट्ठं तत्थुक्किण्णपदेसग्गं विदियट्ठिदीए[4] आबाधूणियाए बंधे उक्कड्डदि, पढमट्ठिदीए[5] च देदि, अंतरट्ठिदीसु इंद णियमा ण देदि त्ति[6]। एवमंतरमुक्कीरमाणमुक्किण्णं।

अन्तरकरणके प्रथम समयमें अन्य स्थितिकांडक और अन्य अनुभागकांडकको आरम्भ करता है, तथा अन्य स्थितिबन्ध आरम्भ करता है। जितना स्थितिबन्धका काल है, उतने कालके द्वारा अन्तरको करता हुआ गुणश्रेणीनिक्षेपके अग्राग्रसे, अर्थात् गुणश्रेणीशीर्षसे लेकर नीचे संख्यातवें भाग प्रदेशाग्रको खंडित करता है। गुणश्रेणीशीर्षसे ऊपर संख्यातगुणी उपरिम स्थितियोंको खंडित करता है, तथा अन्तरके लिए वहांपर उत्कीर्ण किए गए प्रदेशाग्रको (लेकर) बन्धमें, अर्थात् उस समय बंधनेवाले मिथ्यात्वकर्ममें, उसकी आबाधाकाल हीन द्वितीयस्थितिमें स्थापित करता है और प्रथमस्थितिमें देता है, किन्तु अन्तरकालसम्बन्धी स्थितियोंमें निश्चयतः नहीं देता है। इस प्रकार किया जानेवाला अन्तर किया गया, अर्थात् अन्तरकरणका कार्य सम्पन्न हुआ।

---

१ संखेज्जदिमे सेसे दंसणमोहस्स अंतरं कुणइ। अण्णं ठिदिरसखंडं अण्णं ठिदिबंधणं तत्थ॥ लब्धि. ८४.

२ प्रतिषु ' गुणसेढीविसयादो ' इति पाठः।

३ **जा तम्हि ट्ठिदिबंधगद्धा तत्तिएण कालेण करेमाणो गुणसेढिणिक्खेवस्स अग्गग्गादो संखेज्जदिभागं खंडेदि।** एदेण सुत्तेण अंतरकरणं करेमाणस्स कालपमाणमंतरट्ठमागाइदट्ठिदीणं पमाणावहारणं पढमट्ठिदिदीहत्तं च परूविदं होइ। ××× एत्थ गुणसेढिणिक्खेवो त्ति वुत्ते जो अपुव्वकरणस्स पढमसमए अणियट्टिकरणद्धाहिंतो विसेसाहियायामेण णिक्खित्तो गलिदसेसरूवेणेत्ति कालमागदो तस्स गहणं कायव्वं। तस्स अग्गग्गमिदि भणिदे गुणसेढिसीसयस्स गहणं कायव्वं। तत्तोप्पहुडि हेट्ठा संखेज्जदिभागं खंडेदि त्ति भणिदे सयलस्स गुणसेढिआयामस्स तक्कालदीसमाणस्स संखेज्जदिभागभूदो जो अणियट्टिअच्छिद्दो उवरिमो विसेसाहियणिक्खेवो तं सव्वमंतरट्ठमागाएदि त्ति भणिदं होइ किमेत्तियं चेव अंतरदीहत्तं ? ण, **गुणसेढिसीसयादो उवरि अण्णाओ वि संखेज्जगुणाओ ट्ठिदीओ घेत्तूणंतरं करेदि।** ××× तदो अणियट्टिअद्धासेसस्स संखेज्जभागमेत्तकालेण अंतरं करेमाणो अंतरकरणद्धादो संखेज्जगुणं मिच्छत्तस्स पढमट्ठिदिं परिसेसिय पुणो अणियट्टिकरणद्धादो उवरिमविसेसाहियगुणसेढिणिक्खेवेण सह तत्तो संखेज्जगुणाओ अण्णाओ वि ट्ठिदीओ घेत्तूणंतरमेसो करेदि त्ति सिद्धो सुत्तस्स समुदायत्थो। जयध. अ. प. ९५३.

४-५ अन्तरकरणच्चाधस्तनी स्थितिः प्रथमा स्थितिरित्युच्यते। उपरितनी तु द्वितीया। कर्मप्र. पृ २६०.

६ एयट्ठिदिखंडुक्कीरणकाले अंतरस्स णिप्पत्ती। अंतोमुहुत्तमेत्तं अंतरकरणस्स अद्धाणं॥ गुणसेढीए सीसं तत्तो संखगुण उवरिमठिदिं च। हेट्ठुवरिम्हि य आबाहुज्झिय-बंधम्हि संथुहदि। लब्धि. ८५-८६.

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

तदो पहुडि उवसामओ त्ति भण्णदि। जदि एवं तो पुव्वमुवसामयत्तस्स[1] अभावो पावेदि[2]? पुव्वं पि उवसामओ चेव, किंतु मज्झदीवयं कादूण सिस्सपडिबोहणट्ठं एसो दंसणमोहणीयउवसामओ त्ति जइवसहेण भणिदं। तदो णेदं वयणं तीदभागस्स उवसामयत्तपडिसेहयं। पढमट्ठिदीदो विदियट्ठिदीदो च ताव आगाल-पडिआगाला[3] जाव आवलिया पडिआवलिया[4] च सेसा त्ति। तदो पहुडि मिच्छत्तस्स गुणसेडी णत्थि, उदयावलियबाहिरे

अन्तरकरण समाप्त होनेके समयसे लेकर वह जीव 'उपशामक' कहलाता है।

शंका---यदि ऐसा है, अर्थात् अन्तरकरण समाप्त होनेके पश्चात् वह जीव 'उपशामक' कहलाता है, तो इससे पूर्व, अर्थात् अधःकरणादि परिणामोंके प्रारम्भ होनेसे लेकर अन्तरकरण होने तक, उस जीवके उपशामकपनेका अभाव प्राप्त होता है?

समाधान---अन्तरकरण समाप्त होनेके पूर्व भी वह जीव उपशामक ही था, किन्तु मध्यदीपक करके शिष्योंके प्रतिबोधनार्थ 'यह दर्शनमोहनीयकर्मका उपशामक है' इस प्रकार यतिवृषभाचार्यने (अपनी कसायपाहुडचूर्णिके उपशमना अधिकारमें) कहा है। इसलिए यह वचन अतीत भागके उपशामकताका प्रतिषेध नहीं करता है।

प्रथमस्थितिसे और द्वितीयस्थितिसे तब तक आगाल और प्रत्यागाल होते रहते हैं, जब तक कि आवली और प्रत्यावलीमात्र काल शेष रह जाता है।

विशेषार्थ---प्रथमस्थिति और द्वितीयस्थितिकी परिभाषा पहले दी जा चुकी है। अपकर्षणके निमित्तसे द्वितीयस्थितिके कर्म-प्रदेशोंका प्रथमस्थितिमें आना आगाल कहलाता है। उत्कर्षणके निमित्तसे प्रथमस्थितिके कर्म-प्रदेशोंका द्वितीयस्थितिमें जाना प्रत्यागाल कहलाता है। 'आवली' ऐसा सामान्यसे कहने पर भी प्रकरणवश उसका अर्थ उदयावली लेना चाहिए। तथा, उदयावलीसे ऊपरके आवलीप्रमाण कालको द्वितीयावली या प्रत्यावली कहते हैं। जब अन्तरकरण करनेके पश्चात् मिथ्यात्वकी स्थिति आवलि-प्रत्यावलीमात्र रह जाती है, तब आगाल-प्रत्यागालरूप कार्य बन्द हो जाते हैं।

इसके पश्चात्, अर्थात् आवलि-प्रत्यावलीमात्र काल शेष रहनेके समयसे लेकर, मिथ्यात्वकी गुणश्रेणी नहीं होती है, क्योंकि, उस समयमें उदयावलीसे बाहिर कर्म-

---

१ प्रतिषु '-सामयत्तस्सि' इति पाठः।

२ प्रतिषु 'पादेदि' इति पाठः।

३ आगालमागालो, विदियट्ठिदिपदेसाणं पढमट्ठिदीए ओकड्डुणावसेणागमणमिदि वुत्तं होइ। प्रत्यागलनं प्रत्यागालः, पढमट्ठिदिपदेसाणं विदियट्ठिदीए उक्कड्डुणावसेण गमणमिदि भणिदं होइ। तदो पढम-विदियट्ठिदिपदेसाणमुक्कड्डुणोकड्डुणावसेण परोप्परविसयसंकमो आगाल-पडिआगालो त्ति घेत्तव्वो। जयध. अ. प. ९५४.

४ आवलिया त्ति वुत्ते उदयावलिया घेत्तव्वा। पडिआवलिया त्ति एदेण वि उदयावलियादो उवरिमविदियावलिया गहेयव्वा। जयध. अ. प. ९५४.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

णिक्खेवाभावा[1]। सेसाणं आयुगवज्जाणं गुणसेडी अत्थि। पडिआवलियादो चेव उदीरणा। पडिआवलियाए सेसाए मिच्छत्तस्स उदीरणा णत्थि। तदो चरिमसमयमिच्छाइट्ठी जादो। अधवा णेदेण सुत्तेण अंतरघादो चेव परूविदो, किंतु ट्ठिदिघादो अणुभागघादो गुणसेढिकमेण पदेसघादो अंतरट्ठिदीणं घादो च परूविदो। पुव्विल्लसुत्तं पि ण देसामासियं, ट्ठिदिबंधोसरणाए एक्किस्से चेव परूवणादो। लब्भदि त्ति जं पदं तस्स अत्थो समत्तो।

'कदि भाए वा करेदि मिच्छत्तं' एदिस्से पुच्छाए अत्थपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि-

ओहट्टेदूण मिच्छत्तं तिण्णि भागं करेदि सम्मत्तं मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं ॥ ७ ॥

एदेण सुत्तेण मिच्छत्तपढमट्ठिदिं गालिय सम्मत्तं पडिवण्णपढमसमयप्पहुडि उवरिमकालम्मि जो वावारो सो परूविदो। ओहट्टेदूणेत्ति पुव्वं ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसेहि

प्रदेशोंका निक्षेप नहीं होता है। किन्तु आयुकर्मको छोड़कर शेष समस्त कर्मोंकी गुणश्रेणी होती रहती है। उस समय प्रत्यावलीसे ही मिथ्यात्वकर्मकी उदीरणा होती रहती है। किन्तु प्रत्यावलीके शेष रह जानेपर मिथ्यात्वकर्मकी उदीरणा नहीं होती है। तब यह जीव चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टि हुआ कहलाता है।

अथवा, इस सूत्रके द्वारा केवल अन्तरघात ही नहीं प्ररूपण किया गया है, किन्तु स्थितिघात, अनुभागघात, गुणश्रेणीके क्रमसे प्रदेशघात और अन्तर-स्थितियोंका घात भी प्ररूपण किया गया है। तथा, इससे पहलेका सूत्र भी देशामर्शक नहीं है, क्योंकि वह केवल एक स्थितिबन्धापसरणका ही प्ररूपण करता है।

इस प्रकार 'सम्यक्त्वको प्राप्त करता है' यह जो पद है उसका अर्थ समाप्त हुआ।

अब 'मिथ्यात्वकर्मको कितने भागरूप करता है' इस प्रश्नका अर्थ प्ररूपण करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

अन्तरकरण करके मिथ्यात्वकर्मके तीन भाग करता है—सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व ॥ ७ ॥

इस सूत्रके द्वारा मिथ्यात्वकी प्रथमस्थितिको गलाकर सम्यक्त्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयसे लेकर उपरिम कालमें जो व्यापार, अर्थात् कार्य-विशेष, होता है, वह प्ररूपण किया गया है। 'अन्तरकरण करके' इस पदके द्वारा पहलेसे ही स्थिति,

---

१ अंतरकडपढमादो पडिसमयमसंखगुणिदमुवसमदि। गुणसंकमेण दंसणमोहणियं जाव पढमठिदी॥ पढमट्ठिदियावलिपडिआवलिसेसेसु णत्थि आगाला। पडिआगाला मिच्छत्तस्स य गुणसेढिकरणं पि॥ लब्धि. ८७-८८.

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

पत्तघादं मिच्छत्तं अणुभागेण पुणो वि घादिय तिण्णि भागे करेदि । कुदो ? 'मिच्छत्ताणुभागादो सम्मामिच्छत्ताणुभागो अणंतगुणहीणो, तत्तो सम्मत्ताणुभागो अणंतगुणहीणो' त्ति पाहुडसुत्ते णिद्दिट्ठत्तादो । ण च उवसमसम्मत्तकालब्भंतरे अणंताणुबंधीविसंजोयणकिरियाए विणा मिच्छत्तस्स ट्ठिदिघादो वा अणुभागघादो वा अत्थि, तधोवदेसाभावा । तेण ओहट्टेदूणेत्ति उत्ते खंडयघादेण विणा मिच्छत्ताणुभागं घादिय सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तअणुभागायारेण परिणामिय पढमसम्मत्तं पडिवण्णपढमसमए चेव तिण्णि कम्मंसे उप्पादेदि[1] ।

पढमसमयउवसमसम्माइट्ठी मिच्छत्तादो पदेसग्गं घेत्तूण सम्मामिच्छत्ते बहुगं देदि, तत्तो असंखेज्जगुणहीणं सम्मत्ते देदि । पढमसमए सम्मामिच्छत्ते दिण्णपदेसेहिंतो विदियसमए सम्मत्ते असंखेज्जगुणे देदि । तम्हि चेव समए सम्मत्तम्हि छुद्धपदेसेहिंतो सम्मामिच्छत्ते असंखेज्जगुणे देदि । एवं अंतोमुहुत्तकालं गुणसेडीए सम्मत्त-सम्मा-

---

अनुभाग और प्रदेशोंकी अपेक्षा घातको प्राप्त मिथ्यात्वकर्मको अनुभागके द्वारा पुनरपि घात कर उसके तीन भाग करता है, यह प्ररूपित किया गया है । इसका कारण यह है कि 'मिथ्यात्वकर्मके अनुभागसे सम्यग्मिथ्यात्वकर्मका अनुभाग अनन्तगुणा हीन होता है, और सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके अनुभागसे सम्यक्त्वप्रकृतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन होता है,' ऐसा प्राभृतसूत्र अर्थात् कषायप्राभृतके चूर्णिसूत्रोंमें निर्देश किया गया है। तथा, उपशमसम्यक्त्वसम्बन्धी कालके भीतर अनन्तानुबन्धीकषायकी विसंयोजनरूप क्रियाके विना मिथ्यात्वकर्मका स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात नहीं होता है, क्योंकि, उस प्रकारका उपदेश नहीं पाया जाता है। इसलिए 'अन्तरकरण करके' ऐसा कहने पर कांडकघातके विना मिथ्यात्वकर्मके अनुभागको घात कर, और उसे सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिके अनुभागरूप आकारसे परिणमाकर प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें ही मिथ्यात्वरूप एक कर्मके तीन कर्मांश, अर्थात् भेद या खंड उत्पन्न करता है।

प्रथम समयवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वसे प्रदेशाग्र अर्थात् उदीरणाको प्राप्त कर्म-प्रदेशोंको लेकर उनका बहुभाग सम्यग्मिथ्यात्वमें देता है, और उससे असंख्यातगुणा हीन कर्म-प्रदेशाग्र सम्यक्त्वप्रकृतिमें देता है। प्रथम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वमें दिये गये प्रदेशोंसे, अर्थात् उनकी अपेक्षा, द्वितीय समयमें सम्यक्त्वप्रकृतिमें असंख्यातगुणित प्रदेशोंको देता है। और उसी ही समयमें, अर्थात् दूसरे ही समयमें, सम्यक्त्वप्रकृतिमें दिये गये प्रदेशोंकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यात्वमें असंख्यातगुणित प्रदेशोंको देता है। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त काल तक गुणश्रेणीके द्वारा सम्यक्त्व और सम्य-

---

१ अंतरपढमं पत्ते उवसमणामो हु तत्थ मिच्छत्तं । ठिदिरसखंडेण विणा उवइट्ठादूण कुणदि तदा ॥ मिच्छत्तमिस्ससम्मसरूवेण य तत्तिधा य दव्वादो । सत्तीदो य असंखाणंतेण य होंति भजियकमा ॥ लब्धि. ८९-९०,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिच्छत्ताणि आऊरेदि जाव गुणसंकमचरिमसमओ त्ति । तेण परं अंगुलस्स असंखेज्जदि-भागपडिभागिओ विज्झादसंकमो होदि[1] । जाव गुणसंकमो ताव आयुगवज्जाणं कम्माणं ट्ठिदिघादो अणुभागघादो गुणसेडी च अत्थि ।

एत्थ पणुवीसपडिगो दंडओ कादव्वो[2] । तं जधा— चरिमस्स अणुभाग-खंडयस्स उक्कीरणद्धा थोवा । अपुव्वकरणस्स पढमसमए अणुभागखंडय-उक्कीरणद्धा विसेसाहिया । अणियट्टिस्स चरिमट्ठिदिबंधगद्धा चरिमट्ठिदिखंडय-उक्कीरणद्धा च दो वि तुल्ला संखेज्जगुणा[3] । अंतरकरणद्धा तत्थतणट्ठिदिबंधगद्धा ट्ठिदिखंडयउक्कीरणद्धा च तिण्णि[4] वि तुल्ला विसेसाहिया । अपुव्वकरणस्स पढम-ट्ठिदिखंडयस्स उक्कीरणद्धा ट्ठिदिबंधगद्धा च दो वि तुल्ला विसेसाहिया । गुणसंकमेण सम्मत्त-सम्मामिच्छात्ताणं पूरणकालो संखेज्जगुणो । पढमसमयउवसामयस्स गुणसेडी-

---

ग्मिथ्यात्व कर्मको पूरित करता है जब तक कि गुणसंक्रमणकालका अन्तिम समय प्राप्त होता है । इस गुणसंक्रमणके पश्चात् सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागका प्रतिभागी, अर्थात् सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाणवाला, विध्यातसंक्रमण होता है । जब तक गुणसंक्रमण होता है, तब तक आयुकर्मको छोड़कर शेष कर्मोंका स्थितिघात, अनुभागघात और गुणश्रेणी होती रहती है ।

इस प्रकरणमें यह पच्चीस प्रतिक या पदवाला अल्पबहुत्व-दंडक कहने योग्य है। वह इस प्रकार है—

चरम, अर्थात् मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके अन्तिम अन्तर्मुहूर्तमें होनेवाले, अनुभागकांडकके उत्कीरणका काल (यद्यपि अन्तर्मुहूर्तमात्र है, तथापि आगे कहे जानेवाले कालोंकी अपेक्षा) अल्प है (१)। इससे अपूर्वकरणके प्रथम समयमें होनेवाले अनुभागकांडकके उत्कीरणका काल विशेष अधिक है (२)। इससे अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयमें संभव स्थितिबंधका काल और अन्तिम स्थितिकांडकके उत्कीरणका काल, ये दोनों परस्पर समान होते हुए भी संख्यातगुणित हैं (३–४)। इससे अन्तरकरणका काल, वहांपर संभव स्थितिबन्धका काल, तथा स्थितिकांडकके उत्कीरणका काल, ये तीनों परस्पर समान होते हुए भी विशेष अधिक हैं (५–७)? इससे अपूर्वकरणके प्रथम समयमें होनेवाले स्थितिकांडकका उत्कीरणकाल और स्थितिबंधका काल, ये दोनों परस्पर समान होते हुए भी विशेष अधिक हैं (७–८)। इससे गुणसंक्रमणके द्वारा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके पूरनेका काल संख्यातगुणा है (९)। इससे प्रथम समयवर्ती उपशामकका

---

१ पढमादो गुणसंकमचरिमो त्ति य सम्म मिस्ससम्मिस्से । अहिगदिणाऽसंखगुणो विज्झादो संकमो तत्तो ॥ लब्धि. ९१.

२ विदियकरणादिमादो गुणसंकमपूरणस्स कालो त्ति । वोच्छं रसखंडुक्कीरणकालादीणमप्पबहुं ॥ लब्धि. ९२.

३ अंतिमरसखंडुक्कीरणकालादो दु पढमओ अहिओ । तत्तो संखेज्जगुणो चरिमट्ठिदिखंडहदिकालो ॥ लब्धि. ९३.

४ अ-आप्रत्योः 'गिरि', कप्रतौ 'रिगि', मप्रतौ 'तिण्हि' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सीसयं संखेज्जगुणं । पढमट्ठिदी संखेज्जगुणा । उवसामगद्धा[1] विसेसाहिया[2] । विसेसो पुण वे आवलियाओ समऊणाओ । अणियट्टिअद्धा संखेज्जगुणा । अपुव्वद्धा संखेज्जगुणा[3] । गुणसेडीणिक्खेवो विसेसाहिओ । उवसंतद्धा संखेज्जगुणा[4] । अंतरं संखेज्जगुणं । जहण्णिया-बाधा संखेज्जगुणा । उक्कस्सिया आबाधा संखेज्जगुणा[5] । अपुव्वकरणस्स पढमसमए जहण्णओ ट्ठिदिखंडओ असंखेज्जगुणो । उक्कस्सओ ट्ठिदिखंडओ संखेज्जगुणो । जहण्णगो ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं । उक्कस्सयं संखेज्जगुणं[6] ।

गुणश्रेणीशीर्ष संख्यातगुणा है (१०) । इससे प्रथमस्थिति संख्यातगुणी है (११) । इससे उपशामकाद्धा, अर्थात् दर्शनमोहके उपशमानेका काल, विशेष अधिक है (१२) । वह विशेष एक समय कम दो आवलीमात्र है । इससे अनिवृत्तिकरणका काल संख्यातगुणा है (१३) । इससे अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणा है (१४) । इससे गुणश्रेणीका निक्षेप, अर्थात् आयाम, विशेष अधिक है (१५) । इससे उपशान्ताद्धा, अर्थात् उपशमसम्यक्त्वका काल, संख्यातगुणा है (१६) । इससे अन्तर, अर्थात् अन्तरसम्बन्धी आयाम, संख्यातगुणा है (१७) । इससे जघन्य आबाधा संख्यातगुणी है (१८) । उत्कृष्ट आबाधा संख्यातगुणी है (१९) । इससे अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जो जघन्य स्थितिखंड है, वह असंख्यातगुणा है (२०) । इससे (अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जो) उत्कृष्ट स्थितिखंड है, वह संख्यातगुणा है (२१) । इससे मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है (२२) । इससे अपूर्वकरणके प्रथम समयमें संभव उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है (२३) । इससे मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है (२४) । इससे मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है (२५) ।

विशेषार्थ—उपर्युक्त अल्पबहुत्वमें पांचवें और छठवें स्थानके साथ ही स्थिति-

१ का उवसामगद्धा णाम ? जम्हि अद्धाविसेसे दंसणमोहणीयमुवसंतावण्णं होदूण चिट्ठइ सा उवसामगद्धा त्ति भण्णदे, उवसमसम्माइट्ठिकालो त्ति भणिदं होइ । जयध. अ. प. ९४६.

२ तत्तो पढमो अहिओ पूरणगुणसेडिसीसपढमठिदी । संखेण य गुणियकमा उवसमगद्धा विसेसहिया ॥ लब्धि. ९४.

३ जम्मि काले मिच्छत्तमुवसंतभावेणच्छदि सो उवसमसम्मत्तकालो उवसंतद्धा त्ति भण्णदे । जयध. अ. प. ९५६.

४ एसा जहण्णाबाहा कत्थ गहेयव्वा ? मिच्छत्तस्स ताव चरिमसमयमिच्छादिट्ठिणा णवकबंधविसए गहेयव्वा । तत्तो अण्णत्थ मिच्छत्तस्स सव्वजहण्णाबाहाणुवलंभादो । सेसकम्माणं पुण गुणसंकमचरिमसमयणवकबंध-जहण्णाबाहा घेत्तव्वा । जयध. अ. प. ९५६.

५ अणियट्टियसंखगुणे णियट्टिए सेदियायदं सिद्धं । उवसंतद्धा अंतर अवरावरबाह संखगुणिदकमा ॥ लब्धि. ९५.

६ पढमापुव्वजहण्णं ठिदिखंडमसंखसं गुणं तस्स । वरमवरट्ठिदिसत्ता एदे य संखगुणियकमा ॥ लब्धि. ९६.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

दंसणमोहणीयं कम्मं उवसामेदि ॥ ८ ॥

एदेण पुव्वुत्तपयारेण दंसणमोहणीयं उवसामेदि त्ति पुव्वुत्तत्थो चेव एदेण सुत्तेण संभालिदो ।

उवसामेंतो कम्हि उवसामेदि, चदुसु वि गदीसु उवसामेदि । चदुसु वि गदीसु उवसामेंतो पंचिंदिएसु उवसामेदि, णो एइंदिय-विगलिंदियेसु । पंचिंदिएसु उवसामेंतो सण्णीसु उवसामेदि, णो असण्णीसु । सण्णीसु उवसामेंतो गब्भोवक्कंतिएसु उवसामेदि, णो सम्मुच्छिमेसु । गब्भोवक्कंतिएसु उवसामेंतो पज्जत्तएसु उवसामेदि, णो अपज्जत्तएसु । पज्जत्तएसु उवसामेंतो संखेज्जवस्साउगेसु वि उवसामेदि, असंखेज्जवस्साउगेसु वि ॥ ९ ॥

सुगममेदं । एत्थुवउज्जंतीओ गाहाओ —

....

कांडकउत्कीरणकालका भी निर्देश किया गया है । किन्तु लब्धिसारमें यहां स्थिति-कांडकउत्कीरणकालका उल्लेख नहीं है । और उसके न होने पर ही पच्चीस स्थान ठीक बैठते हैं । अतएव उक्त पाठका विषय विचारणीय है ।

मिथ्यात्वके तीन भाग करनेके पश्चात् दर्शनमोहनीय कर्मको उपशमाता है ॥ ८ ॥

इस पूर्वोक्त प्रकारसे दर्शनमोहनीयको उपशमाता है, इस प्रकार पहले कहा गया अर्थ ही इस सूत्रके द्वारा स्मरण कराया गया है ।

दर्शनमोहनीय कर्मको उपशमाता हुआ यह जीव कहां उपशमाता है ? चारों ही गतियोंमें उपशमाता है । चारों ही गतियोंमें उपशमाता हुआ पंचेन्द्रियोंमें उपशमाता है, एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियोंमें नहीं उपशमाता है । पंचेन्द्रियोंमें उपशमाता हुआ संज्ञियोंमें उपशमाता है, असंज्ञियोंमें नहीं । संज्ञियोंमें उपशमाता हुआ गर्भोपक्रान्तिकोंमें, अर्थात् गर्भज जीवोंमें, उपशमाता है, सम्मूर्च्छिमोंमें नहीं । गर्भोपक्रान्तिकोंमें उपशमाता हुआ पर्याप्तकोंमें उपशमाता है, अपर्याप्तकोंमें नहीं । पर्याप्तकोंमें उपशमाता हुआ संख्यात वर्षकी आयुवाले जीवोंमें भी उपशमाता है और असंख्यात वर्षकी आयुवाले जीवोंमें भी उपशमाता है ॥ ९ ॥

यह सूत्र सुगम है । इस विषयमें ये निम्न गाथाएं उपयोगी हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दंसणमोहस्सुवसामओ दु चदुसु वि गदीसु बोद्धव्वो ।
पंचिंदिओ य सण्णी णियमा सो होदि पज्जत्तो[१] ॥ २ ॥
सव्वणिरय-भवणेसु य समुद्द-दीव-गुह[२]-जोइस-विमाणे ।
अहिजोग्ग-अणहिजोग्गे उवसामो होदि णायव्वो ॥ ३ ॥
उवसामगो य सव्वो णिव्वाघादो तहा णिरासाणो ।
उवसंते भजियव्वो णिरासणो चेव खीणम्हि[३] ॥ ४ ॥
सायारे पट्ठवओ णिट्ठवओ मज्झिमो य भयणिज्जो ।
जोगे अण्णदरम्मि दु जहण्णए तेउलेस्साए[४] ॥ ५ ॥

दर्शनमोहनीय कर्मका उपशम करनेवाला जीव चारों ही गतियोंमें जानना चाहिए। वह जीव नियमसे पंचेन्द्रिय, संज्ञी और पर्याप्तक होता है। २।

इन्द्रक, श्रेणीबद्ध आदि सर्व नरकोंमें, सर्वप्रकारके भवनवासी देवोंमें, सर्व समुद्रों और द्वीपोंमें, गुह अर्थात् समस्त व्यन्तर देवोंमें, समस्त ज्योतिष्क देवोंमें, सौधर्मकल्पसे लेकर नव ग्रैवेयक विमान तक विमानवासी देवोंमें, आभियोग्य, अर्थात् वाहनादिकुत्सित कर्ममें नियुक्त वाहन देवोंमें, उनसे भिन्न किल्विषिक आदि अनुत्तम, तथा पारिषद् आदि उत्तम देवोंमें दर्शनमोहनीय कर्मका उपशम होता है ॥ ३ ॥

दर्शनमोहका उपशामक सर्व ही जीव निर्व्याघात, अर्थात् उपसर्गादिकके आनेपर भी विच्छेद और मरणसे रहित, होता है। तथा निरासान, अर्थात् सासादनगुणस्थानको नहीं प्राप्त होता है। उपशान्त, अर्थात् उपशमसम्यक्त्व होनेके पश्चात् भजितव्य है, अर्थात् सासादनपरिणामको कदाचित् प्राप्त होता भी है और कदाचित् नहीं भी प्राप्त होता है। उपशमसम्यक्त्वका काल क्षीण अर्थात् समाप्त हो जानेपर मिथ्यात्व आदि किसी एक दर्शमोहनीयप्रकृतिका उदय आनेसे मिथ्यात्व आदि भावोंको प्राप्त होता है। अथवा, दर्शनमोहनीयकर्मके क्षीण हो जानेपर निरासान, अर्थात् सासादनपरिणामसे सर्वथा रहित, होता है ॥ ४ ॥

साकार अर्थात् ज्ञानोपयोगकी अवस्थामें ही जीव प्रथमोपशमसम्यक्त्वका प्रस्थापक, अर्थात् प्रारम्भ करनेवाला, होता है। किन्तु निष्ठापक, अर्थात् उसे सम्पन्न करनेवाला, मध्य अवस्थावर्ती जीव भजनीय है, अर्थात् वह साकारोपयोगी भी हो सकता है और अनाकारोपयोगी भी हो सकता है। मनोयोग आदि तीनों योगोंमेंसे किसी भी एक योगमें वर्तमान जीव प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त कर सकता है। तथा तेजोलेश्याके जघन्य अंशमें वर्तमान जीव प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करता है ॥ ५ ॥

१ जयध. अ. प ९५७.

२ प्रतिषु ' गह ' इति पाठः ।

३ जयध. अ. प. ९५८. लब्धि. ९९.

४ जयध. अ. प. ९५८. लब्धि. १०१. जइवि सुट्ठु मंदविसोहीए परिणमिय दंसणमोहणीयमुवसामेदुमाढवेइ तो वि तस्स तेउलेस्सापरिणामो चेव तप्पाओग्गो होइ, णो हेट्ठिमलेस्सापरिणामो, तस्स सम्मत्तुप्पत्तिकारणकरणपरिणामेहिं विरुद्धसरूवत्तादो त्ति भणिदं होइ । एदेण तिरिक्ख-मणुस्सेसु किण्ह-णील-काउलेस्साणं सम्मत्तुप्पत्ति-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिच्छत्तवेदणीयं कम्मं उवसामगस्स बोद्धव्वं ।
उवसंते आसाणे तेण परं होइ भयणिज्जं[1] ॥ ६ ॥
सव्वम्हि ट्ठिदिविसेसे उवसंता तिण्णि होंति कम्मंसा ।
एक्कम्हि य अणुभागे णियमा सव्वे ट्ठिदिविसेसा[2] ॥ ७ ॥
मिच्छत्तपच्चओ खलु बंधो उवसामयस्स बोद्धव्वो ।
उवसंते आसाणे तेण परं होदि भयणिज्जो[3] ॥ ८ ॥

उपशामकके जब तक अन्तर प्रवेश नहीं होता है तब तक मिथ्यात्ववेदनीय कर्मका उदय जानना चाहिए। दर्शनमोहनीयके उपशान्त होनेपर, अर्थात् उपशमसम्यक्त्वके कालमें, और सासादनकालमें मिथ्यात्वकर्मका उदय नहीं रहता है। किन्तु उपशमसम्यक्त्वका काल समाप्त होनेपर मिथ्यात्वका उदय भजनीय है, अर्थात् किसीके उसका उदय होता भी है और किसीके नहीं भी होता है ॥ ६ ॥

तीनों कर्मांश, अर्थात् मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति, ये तीनों कर्म, दर्शनमोहनीयकी उपशान्त अवस्थामें सर्व स्थितिविशेषोंके साथ उपशान्त रहते हैं, अर्थात् उन तीनों कर्मोंके एक भी स्थितिका उस समय उदय नहीं रहता है। तथा एक ही अनुभागमें उन तीनों कर्मांशोंके सभी स्थितिविशेष अवस्थित रहते हैं, अर्थात् अन्तरसे बाहिरी अनन्तरवर्ती जघन्य स्थितिविशेषमें जो अनुभाग होता है, वही अनुभाग उससे ऊपरके समस्त स्थितिविशेषोंमें भी होता है, उससे भिन्न प्रकारका नहीं ॥ ७ ॥

उपशामकके प्रथमस्थितिके अन्तिम समय तक मिथ्यात्वप्रत्ययक, अर्थात् मिथ्यात्वके निमित्तसे ज्ञानावरणादि कर्मोंका, बंध जानना चाहिए। (यद्यपि यहां पर असंयम, कषाय आदि अन्य भी बंधके कारण विद्यमान हैं, तथापि उनकी यहां विवक्षा नहीं की गई है, किन्तु प्रधानतासे मिथ्यात्व कर्मकी ही विवक्षाकी गई है।) दर्शनमोहकी उपशान्त अवस्थामें और सासादनसम्यक्त्वकी अवस्थामें मिथ्यात्वनिमित्तक बन्ध नहीं होता है। इसके पश्चात् मिथ्यात्वनिमित्तक बन्ध भजनीय है, अर्थात् मिथ्यात्वको प्राप्त हुए जीवोंके तन्निमित्तक बन्ध होता है, और अन्य गुणस्थानको प्राप्त हुए जीवोंके तन्निमित्तक बन्ध नहीं होता है ॥ ८ ॥

काले पडिसेहो कदो, विसोहिकाले असुहतिलेस्सापरिणामस्स संभवाणुववत्तीदो। देवेसु पुण जहारिहं सुहलेस्सातियपरिणामो चेव, तेण तत्थ वियहिचारो। णेरइएसु वि अवट्ठिदकिण्ह-णील-काउलेस्सापरिणामेसु सुहतिलेस्साणमसंभवो चेवेत्ति ण तत्थेदं सुत्तं पयट्टदे। तदो तिरिक्ख-मणुसविसयमेवेदं सुत्तमिदि गहेयव्वं। जयध. अ. प. ९५९। यद्यपि तिर्यग्मनुष्यो वा मन्दविशुद्धिस्तथापि तेजोलेश्याया जघन्यांशे वर्तमान एव प्रथमोपशमसम्यक्त्वप्रारंभको भवति। नरकगतौ नियताशुभलेश्यात्वेऽपि कषायाणां मन्दानुभागोदयवशेन तत्वार्थश्रद्धानानुगुणकारणपरिणामरूपविशुद्धिविशेषसंभवस्याविरोधात्। देवगतौ सर्वोऽपि शुभलेश्य एव प्रथमोपशमसम्यक्त्वप्रारंभको भवति। लब्धि. १०२. टी.

१ जयध अ. प. ९५९.

२ जयध. अ. प. ९५९. तत्र 'सव्वम्हि ट्ठिदिविसेसे' इति स्थाने 'सव्वेहिं ट्ठिदिविसेसेहिं' इति पाठः।

३ जयध. अ. प. ९६०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतोमुहुत्तमद्धं सव्वोवसमेण होइ उवसंतो ।
तेण परं उदओ खलु तिण्णेक्कदरस्स कम्मस्स[1] ॥ ९ ॥

सम्मामिच्छाइट्ठी दंसणमोहस्स बंधगो भणिदो ।
वेदगसम्माइट्ठी खइओ व अबंधगो होदि[2] ॥ १० ॥

सम्मत्तपढमलंभो सव्वोवसमेण तह वियट्ठेण ।
भजिदव्वो य अभिक्खं सव्वोवसमेण देसेण[3] ॥ ११ ॥

अन्तर्मुहूर्त काल तक सर्वोपशमसे, अर्थात् दर्शनमोहनीयके सभी भेदोंके उपशमसे, जीव उपशान्त अर्थात् उपशमसम्यग्दृष्टि रहता है। इसके पश्चात् नियमसे उसके मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व, इन तीन कर्मोंमेंसे किसी एक कर्मका उदय होता है ॥ ९ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव दर्शनमोहनीय कर्मका अबंधक, अर्थात् बन्ध नहीं करनेवाला, कहा गया है। इसी प्रकार वेदकसम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, तथा 'च' शब्दसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव भी दर्शनमोहनीय कर्मका अबन्धक होता है ॥ १० ॥

अनादि मिथ्यादृष्टि जीवके सम्यक्त्वका प्रथम वार लाभ सर्वोपशमसे होता है। इसी प्रकार विप्रकृष्ट जीवके, अर्थात् जिसने पहले कभी सम्यक्त्वको प्राप्त किया था, किन्तु पश्चात् मिथ्यात्वको प्राप्त होकर और वहां सम्यक्त्वप्रकृति एवं सम्यग्मिथ्यात्व-कर्मकी उद्वेलना कर बहुत काल तक मिथ्यात्व-सहित परिभ्रमण कर पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त किया है ऐसे जीवके, प्रथमोपशमसम्यक्त्वका लाभ भी सर्वोपशमसे होता है। किन्तु जो जीव सम्यक्त्वसे गिरकर अभीक्ष्ण अर्थात् जल्दी ही पुनः पुनः सम्यक्त्वको ग्रहण करता है वह सर्वोपशम और देशोपशमसे भजनीय है। (मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति, इन तीन कर्मोंके उदयाभावको सर्वोपशम कहते हैं। तथा सम्यक्त्वप्रकृतिसम्बन्धी देशघाती स्पर्धकोंके उदयको देशोपशम कहते हैं) ॥ ११ ॥

१ जयध. अ. प. ९६०. किन्तु तत्र 'तेण परं उदओ' इति अस्य स्थाने 'तत्तो परमुदयो' इति पाठः । लब्धि. १०२.

२ जयध. अ. प. ९६०. किन्तु तत्र 'खइओ व' इति अस्य स्थाने 'खीणो वि' इति पाठः ।

३ जयध. अ. प. ९६०. तत्थ सव्वोवसमो णाम तिण्हं कम्माणमुदयाभावो । सम्मत्तदेसघादिफद्दयाणमुदओ देसोवसमो त्ति भण्णदे । जयध. अ. प. ९६१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्मत्तपढमलंभस्सणंतरं पच्छदो य मिच्छत्तं ।
लंभस्स अपढमस्स दु भजिदव्वं पच्छदो होदि[1] ॥ १२ ॥

कम्माणि जस्स तिण्णि दु णियमा सो संकमेण भजिदव्वो ।
एयं जस्स दु कम्मं ण य संकमणेण सो भज्जो[2] ॥ १३ ॥

सम्माइट्ठी सद्दहदि पवयणं णियमसा दु उवइट्ठं ।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणिओगा[3] ॥ १४ ॥

मिच्छाइट्ठी णियमा उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि ।
सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं[4] ॥ १५ ॥

अनादि मिथ्यादृष्टि जीवके जो सम्यक्त्वका प्रथम वार लाभ होता है उसके अनन्तर पश्चात् मिथ्यात्वका उदय होता है। किन्तु सादि मिथ्यादृष्टि जीवके जो सम्यक्त्वका अप्रथम, अर्थात् दूसरी, तीसरी आदि वार लाभ होता है, उसके अनन्तर पश्चात् समयमें मिथ्यात्व भजितव्य है, अर्थात् वह कदाचित् मिथ्यादृष्टि होकर वेदक अथवा उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त होता हैं और कदाचित् सम्यग्मिथ्यादृष्टि होकर वेदक-सम्यक्त्वको प्राप्त होता है ॥ १२ ॥

जिस जीवके मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति, ये तीन कर्म सत्तामें होते हैं, अथवा 'तु' शब्दसे मिथ्यात्व या सम्यक्त्वप्रकृतिके विना शेष दो कर्म सत्तामें होते हैं, वह नियमसे संक्रमणकी अपेक्षा भजितव्य है, अर्थात् कदाचित् दर्शनमोहका संक्रमण करनेवाला होता है और कदाचित् नहीं भी होता है। जिस जीवके एक ही कर्म सत्तामें होता है, वह संक्रमणकी अपेक्षा भजनीय नहीं है, अर्थात् वह नियमसे दर्शनमोहका असंक्रामक ही होता है ॥ १३ ॥

सम्यग्दृष्टि जीव सर्वज्ञके द्वारा उपदिष्ट प्रवचनका तो नियमसे श्रद्धान करता ही है, किन्तु कदाचित् अज्ञानवश सद्भूत अर्थको स्वयं नहीं जानता हुआ गुरुके नियोगसे असद्भूत अर्थका भी श्रद्धान कर लेता है ॥ १४ ॥

मिथ्यादृष्टि जीव नियमसे सर्वज्ञद्वारा उपदिष्ट प्रवचनका तो श्रद्धान नहीं करता है। किन्तु असर्वज्ञोंके द्वारा उपदिष्ट या अनुपदिष्ट असद्भावका, अर्थात् पदार्थके विपरीत स्वरूपका, श्रद्धान करता है ॥ १५ ॥

---

१ जयध. अ. प. ९६१. किन्तु 'भजिदव्वं' इति अस्य स्थाने 'भजियव्वो' इति पाठः ।

२ जयध. अ. प. ९६१. तत्र अंतिमचरणे तु 'संकमणे सो ण भजियव्वो' इति पाठः ।

३ जयध. अ. प. ९६१. विलोक्यतां षट्खं. १, १, १२ गाथा ११० । गो. जी. २७.

४ जयध. अ. प. ९६२ । लब्धि. १०९ । गो. जी. १८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्मामिच्छाइट्ठी सागारो वा तहा अणागारो ।
तह वंजणोग्गहम्मि दु सागारो होदि बोद्धव्वो[1] ॥ १६ ॥

" कदि भागे वा करेदि मिच्छत्तं ' एदस्स सुत्तस्स अत्थो समत्तो ।

उवसामणा वा केसु व खेत्तेसु कस्स व मूले ॥ १० ॥

एदस्स पुच्छासुत्तस्स विभासा पुव्वं परूविदा, खेत्तणियमो णत्थि त्ति । कस्स व मूले त्ति उत्ते एत्थ वि णत्थि णियमो, सव्वत्थ सम्मत्तग्गहणसंभवादो ।

दंसणमोहणीयं कम्मं खवेदुमाढवेंतो कम्हि आढवेदि, अड्ढाइज्जेसु दीव-समुद्देसु पण्णारसकम्मभूमीसु जम्हि जिणा केवली तित्थयरा तम्हि आढवेदि[2] ॥ ११ ॥

दंसणमोहणीयस्स कम्मस्स खवणपदेसं पुच्छिदस्स सिस्सस्स तप्पदेसपरूवणट्ठमेदं

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव साकारोपयोगी भी होता है और अनाकारोपयोगी भी होता है। किन्तु व्यंजनावग्रहमें, अर्थात् विचारपूर्वक अर्थको ग्रहण करनेकी अवस्थामें, साकारोपयोगी ही होता है, ऐसा जानना चाहिए ॥ १६ ॥

' मिथ्यात्वकर्मको कितने भागरूप करता है ' इस सूत्रका अर्थ समाप्त हुआ।

दर्शनमोहकी उपशामना किन किन क्षेत्रोंमें और किसके पासमें होती है? ॥ १० ॥

इस पृच्छासूत्रकी विभाषा पहले प्ररूपण की जा चुकी है कि इस विषयमें क्षेत्रका कोई नियम नहीं है। ' किसके पासमें दर्शनमोहकी उपशामना होती है, ' ऐसा कहने पर इस विषयमें भी कोई नियम नहीं है, क्योंकि, सर्वत्र सम्यक्त्वका ग्रहण संभव है।

दर्शनमोहनीय कर्मका क्षपण करनेके लिए आरम्भ करता हुआ यह जीव कहां-पर आरम्भ करता है? अढ़ाई द्वीप समुद्रोंमें स्थित पन्द्रह कर्मभूमियोंमें जहां जिस कालमें जिन, केवली और तीर्थंकर होते हैं वहां उस कालमें आरम्भ करता है ॥ ११ ॥

दर्शनमोहनीय कर्मके क्षपण करनेके प्रदेशको पूछनेवाले शिष्यके क्षपण-प्रदेश

---

१ जयध. अ. प. ९६२. किन्तु तत्र ' तह ' स्थाने ' अथ ' इति पाठः । वंजणोग्गहम्मि दु विचारपूर्वकार्थग्रहणावस्थायामित्यर्थः व्यंजनशब्दस्यार्थविचारवाचिनो ग्रहणात् । जयध. अ. प. ९६२.

२ आ-क-प्रत्योः ' कम्माणमेत्थ खइओ ' इति अधिकः पाठः ।

३ दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजो मणुसो । तित्थयरपायमूले केवलिसुदकेवली मूले ॥ लब्धि. ११०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुत्तमागयं । अड्ढाइज्जेसु दीव-समुद्देसु त्ति भणिदे जंबूदीवो धादइसंडो पोक्खरद्धमिदि अड्ढाइज्जा दीवा घेत्तव्वा । एदेसु चेव दीवेसु दंसणमोहणीयकम्मस्स खवणमाढवेदि त्ति, णो सेसदीवेसु । कुदो ? सेसदीवट्ठिदजीवाणं तक्खवणसत्तीए अभावादो । लवण-कालो-दइसण्णिदेसु दोसु समुद्देसु दंसणमोहणीयं कम्मं खवेंति, णो सेससमुद्देसु, तत्थ सहकारि-कारणाभावा । अड्ढादिज्जसद्देण समुद्दा किण्ण विसेसिदो ? ण एस दोसो 'जहासंभवं विसेसण-विसेसियभावो' त्ति णायादो संभवाभावा अड्ढाइज्जसंखाए ण समुद्दो विसेसिज्जदे । ण च अड्ढादिज्जदीवाणं मज्झे अड्ढादिज्जसमुद्दा अत्थि, विरोहादो । ण च अड्ढाइज्ज-दीवेहिंतो बज्झसमुद्दे दंसणमोहणीयक्खवणं संभवदि, उवरि उच्चमाण-'जम्हि जिणा तित्थयरा' त्ति विसेसणेण पडिसिद्धत्तादो । ण माणुसुत्तरगिरिपरभाए जिणा तित्थयरा अत्थि, विरोहादो । अड्ढाइज्जदीव-समुद्दट्ठिदसव्वजीवेसु दंसणमोहक्खवणे पसंगे तप्पडिसे-

बतलानेके लिए यह सूत्र आया है । 'अढ़ाई द्वीप-समुद्रोंमें' ऐसा कहने पर 'जम्बूद्वीप, धातकीखंड और पुष्करार्ध, ये अढ़ाई द्वीप ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, इन अढ़ाई द्वीपोंमें ही दर्शनमोहनीय कर्मके क्षपणको आरम्भ करता है, शेष द्वीपोंमें नहीं । इसका कारण यह है कि शेष द्वीपोंमें स्थित जीवोंके दर्शनमोहनीय कर्मके क्षपण करनेकी शक्तिका अभाव होता है । लवण और कालोदक संज्ञावाले दो समुद्रोंमें जीव दर्शन-मोहनीय कर्मका क्षपण करते हैं, शेष समुद्रोंमें नहीं, क्योंकि, उनमें दर्शनमोहके क्षपण करनेके सहकारी कारणोंका अभाव है ।

शंका—'अढ़ाई' इस विशेषण शब्दके द्वारा समुद्रको विशिष्ट क्यों नहीं किया?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, 'यथासंभव विशेषण-विशेष्यभाव होता है' इस न्यायके अनुसार तीसरे अर्ध समुद्रकी संभावनाका अभाव होनेसे 'अढ़ाई' इस संख्याके द्वारा समुद्र विशिष्ट नहीं किया गया है । और न अढ़ाई द्वीपोंके मध्यमें अढ़ाई समुद्र हैं, क्योंकि, वैसा मानने पर विरोध आता है । तथा, अढ़ाई द्वीपोंसे बाहिरी समुद्रमें दर्शनमोहनीय कर्मका क्षपण संभव भी नहीं है, क्योंकि, आगे कहे जानेवाले 'जहां जिन, तीर्थंकर संभव हैं' इस विशेषणके द्वारा उसका प्रतिषेध कर दिया गया है । मानुषोत्तर पर्वतके पर भागमें जिन और तीर्थंकर नहीं होते हैं, क्योंकि, वहां उनका अस्तित्व माननेमें विरोध आता है ।

अढ़ाई द्वीप और समुद्रोंमें स्थित सर्व जीवोंमें दर्शनमोहके क्षपणका प्रसंग

१ प्रतिषु '-ट्ठिदि' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इदं पण्णारसकम्मभूमीसु त्ति भणिदे[1] भोगभूमीओ पडिसिद्धाओ। कम्मभूमीसु ट्ठिद[2]-देव-मणुस-तिरिक्खाणं सव्वेसिं पि गहणं किण्ण पावेदि त्ति भणिदे ण पावेदि, कम्मभूमीसुप्पण्णमणुस्साणमुवयारेण कम्मभूमिववदेसादो। तो वि तिरिक्खाणं गहणं पावेदि, तेसिं तत्थ वि उप्पत्तिसंभवादो ? ण, जेसिं तत्थेव उप्पत्ती, ण अण्णत्थ संभवो अत्थि, तेसिं चेव मणुस्साणं पण्णारसकम्मभूमिववएसो; ण तिरिक्खाणं सयंपहपव्वदपरभागे उप्पज्जणेण सव्वहिचाराणं। उत्तं च —

दंसणमोहक्खवणापट्ठवओ कम्मभूमिजादो दु।
णियमा मणुसगदीए णिट्ठवओ चावि[3] सव्वत्थ[4] ॥ १७ ॥

मणुसेसुप्पण्णा कधं समुद्देसु दंसणमोहक्खणं पट्ठवेंति ? ण, विज्जादिवसेण तत्था-

---

प्राप्त होने पर उसका प्रतिषेध करनेके लिए 'पन्द्रह कर्मभूमियोंमें' यह पद कहा है, जिससे उक्त अढ़ाई द्वीपोंमें स्थित भोगभूमियोंका प्रतिषेध कर दिया गया।

शंका—'पन्द्रह कर्मभूमियोंमें' ऐसा सामान्य पद कहने पर कर्मभूमियोंमें स्थित देव, मनुष्य और तिर्यंच, इन सभीका ग्रहण क्यों नहीं प्राप्त होता है ?

समाधान - नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि, कर्मभूमियोंमें उत्पन्न हुए मनुष्योंकी उपचारसे 'कर्मभूमि' यह संज्ञा की गई है।

शंका—यदि कर्मभूमियोंमें उत्पन्न हुए जीवोंकी 'कर्मभूमि' यह संज्ञा है, तो भी तिर्यंचोंका ग्रहण प्राप्त होता है, क्योंकि, उनकी भी कर्मभूमियोंमें उत्पत्ति संभव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, जिनकी वहांपर ही उत्पत्ति होती है, और अन्यत्र उत्पत्ति संभव नहीं है, उन ही मनुष्योंके पन्द्रह कर्मभूमियोंका व्यपदेश किया गया है, न कि स्वयंप्रभ पर्वतके परभागमें उत्पन्न होनेसे व्यभिचारको प्राप्त तिर्यंचोंके।

कहा भी है—

कर्मभूमिमें उत्पन्न हुआ और मनुष्यगतिमें वर्तमान जीव ही नियमसे दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रस्थापक, अर्थात् प्रारम्भ करनेवाला होता है। किन्तु उसका निष्ठापक, अर्थात् पूर्ण करनेवाला सर्वत्र अर्थात् चारों गतियोंमें होता है ॥ १७ ॥

शंका – मनुष्योंमें उत्पन्न हुए जीव समुद्रोंमें दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका कैसे प्रस्थापन करते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, विद्या आदिके वशसे समुद्रोंमें आये हुये जीवोंके

---

१ प्रतिषु 'भणिदं' इति पाठः।   २ प्रतिषु 'ट्ठिदि-' इति पाठः।
३ प्रतिषु 'चारि' इति पाठः।   ४ जयध. अ. प. ९६३.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

गदाणं दंसणमोहक्खवणसंभवादो । दुस्सम-(दुस्समदुस्सम-)सुस्समासुस्समा-सुसमा-सुसमादुस्समाकालुप्पण्णमणुसाणं खवणणिवारणट्ठं ' जम्हि जिणा ' त्ति वयणं । जम्हि काले जिणा संभवंति तम्हि चेव खवणाए पट्ठवओ[1] होदि, ण अण्णकालेसु । देसजिणाणं पडिसेहट्ठं केवलिगहणं । जम्हि केवलणाणिणो अत्थि तत्थेव खवणा होदि, ण अण्णत्थ । तित्थयरकम्मुदयविरहिदकेवलिपडिसेहट्ठं तित्थयरगहणं । तित्थयरपादमूले दंसणमोहणीय-खवणं पट्ठवेंति, ण अण्णत्थेत्ति । अधवा जिणा त्ति उत्ते चोद्दसपुव्वहरा घेत्तव्वा, केवलि त्ति भणिदे केवलणाणिणो तित्थयरकम्मुदयविरहिदा घेत्तव्वा, तित्थयरा त्ति उत्ते तित्थयरणामकम्मुदयजणिदअट्ठमहापाडिहेर-चोत्तिसदिसयसहियाणं[2] गहणं । एदाणं तिण्हं पि पादमूले दंसणमोहक्खवणं पट्ठवेंति त्ति । एत्थ जिणसद्दस्स आवत्तिं काऊण जिणा दंसण-

---

दर्शनमोहका क्षपण होना संभव है ।

दुःषमा, (दुःषमदुःषमा), सुषमासुषमा, सुषमा और सुषमादुःषमा कालमें उत्पन्न हुए मनुष्योंके दर्शनमोहका क्षपण निषेध करनेके लिए ' जहां जिन होते हैं ' यह वचन कहा है । जिस कालमें जिन संभव हैं उस ही कालमें दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रस्थापक होता है, अन्य कालोंमें नहीं ।

विशेषार्थ—अधःकरणके प्रथम समयसे लेकर जब तक जीव मिथ्यात्व और मिश्रमोहनीय प्रकृतियोंके द्रव्यका अपवर्तन करके सम्यक्त्व प्रकृतिमें संक्रमण कराता है तब अन्तर्मुहूर्तकाल तक वह जीव दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रस्थापक कहलाता है ।

देशजिनोंका अर्थात् श्रुतकेवली, अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानियोंका, प्रतिषेध करनेके लिए सूत्रमें 'केवली' इस पदका ग्रहण किया है। अर्थात् जिस कालमें केवलज्ञानी होते हैं, उसी कालमें दर्शनमोहकी क्षपणा होती है, अन्य कालोंमें नहीं। तीर्थंकर नामकर्मके उदयसे रहित सामान्य केवलियोंके प्रतिषेधके लिए सूत्रमें ' तीर्थंकर ' इस पदका ग्रहण किया है, अर्थात् तीर्थंकरके पादमूलमें ही मनुष्य दर्शनमोहनीयकर्मका क्षपण प्रारम्भ करते हैं, अन्यत्र नहीं। अथवा ' जिन ' ऐसा कहनेपर चतुर्दश पूर्वधारियोंका ग्रहण करना चाहिए, 'केवली' ऐसा कहनेपर तीर्थंकर नामकर्मके उदयसे रहित केवलज्ञानियोंका ग्रहण करना चाहिए, और ' तीर्थंकर ' ऐसा कहनेपर तीर्थंकर नामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुए आठ महाप्रातिहार्य और चौंतीस अतिशयोंसे सहित तीर्थंकर केवलियोंका ग्रहण करना चाहिए। इन तीनोंके पादमूलमें कर्मभूमिज मनुष्य दर्शनमोहका क्षपण प्रारम्भ करते हैं, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए ।

यहांपर ' जिन ' शब्दकी आवृत्ति करके अर्थात् दुवारा ग्रहण करके, जिन

---

१ अधःप्रवृत्तकरणप्रथमसमयादारभ्य मिथ्यात्वमिश्रप्रकृत्योः द्रव्यमपवर्त्य सम्यक्त्वप्रकृतौ संक्रम्यते यावत्तावदन्तर्मुहूर्तकालं दर्शनमोहक्षपणाप्रस्थापक इत्युच्यते । लब्धि. ११०. टीका.

२ प्रतिषु –' चोत्तिसदिसयहियाणं ' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोहक्खवणं पट्ठवेंति त्ति वत्तव्वं, अण्णहा तइयपुढवीदो णिग्गयाणं कण्हादीणं तित्थयरत्ताणुववत्तीदो त्ति केसिंचि वक्खाणं। एदेण वक्खाणाभिप्पाएण दुस्सम-अइदुस्सम-सुसमसुसम-सुसमकालेसुप्पण्णाणं चेव दंसणमोहणीयक्खवणा णत्थि, अवसेसदोसु वि कालेसुप्पण्णाणमत्थि। कुदो? एइंदियादो आगंतूण तदियकालुप्पण्णवद्धणकुमारादीणं[1] दंसणमोहक्खवणदंसणादो। एदं चेवेत्थ वक्खाणं पधाणं कादव्वं।

णिट्ठवओ पुण चदुसु वि गदीसु णिट्ठवेदि[2] ॥ १२ ॥

कदकरणिज्जपढमसमयप्पहुडि[3] उवरि णिट्ठवगो उच्चदि। सो आउअबंधवसेण चदुसु वि गदीसु उप्पज्जिय दंसणमोहणीयक्खवणं समाणेदि, तासु तासु गदीसु उप्पत्तीए

दर्शनमोहनीयकर्मका क्षपण प्रारम्भ करते हैं, ऐसा कहना चाहिए, अन्यथा तीसरी पृथिवीसे निकले हुए कृष्ण आदिकोंके तीर्थंकरत्व नहीं बन सकता है, ऐसा किन्हीं आचार्योंका व्याख्यान है। इस व्याख्यानके अभिप्रायसे दुःषमा, अतिदुःषमा, सुषम-सुषमा और सुषमा कालोंमें उत्पन्न हुए जीवोंके ही दर्शनमोहनीयकी क्षपणा नहीं होती है, अवशिष्ट दोनों कालोंमें उत्पन्न हुए जीवोंके दर्शनमोहकी क्षपणा होती है। इसका कारण यह है कि एकेन्द्रिय पर्यायसे आकर (इस अवसर्पिणीके) तीसरे कालमें उत्पन्न हुए वर्द्धनकुमार आदिकोंके दर्शनमोहकी क्षपणा देखी जाती है। यहांपर यह व्याख्यान ही प्रधानतया ग्रहण करना चाहिए।

विशेषार्थ—पूर्वोक्त व्याख्यानका अभिप्राय यह है कि सामान्यतः तो जीव केवल उपर्युक्त दुषम-सुषम कालमें तीर्थंकर, केवली या चतुर्दशपूर्वी जिन भगवान्‌के पादमूलमें ही दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ करते हैं, किन्तु जो उसी भवमें तीर्थंकर या जिन होनेवाले हैं वे तीर्थंकरादिकी अनुपस्थितिमें तथा सुषम-दुषम कालमें भी दर्शनमोहका क्षपण करते हैं, उदाहरणार्थ कृष्णादि व वर्धनकुमार।

दर्शनमोहकी क्षपणाका निष्ठापक तो चारों ही गतियोंमें उसका निष्ठापन करता है ॥ १२ ॥

कृतकृत्यवेदक होनेके प्रथम समयसे लेकर ऊपरके समयमें दर्शनमोहकी क्षपणा करनेवाला जीव निष्ठापक कहलाता है। दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रारम्भ करनेवाला जीव कृतकृत्यवेदक होनेके पश्चात् आयु-बन्धके वशसे चारों भी गतियोंमें उत्पन्न होकर दर्शनमोहनीयकी क्षपणाको सम्पूर्ण करता है, क्योंकि, उन उन गतियोंमें उत्पत्तिके

---

१ षट्खं. १, ५, ३ टीका.

२ णिट्ठवगो तट्ठाणे विमाणभोगावणीसु धम्मे य। किदकरणिज्जो चदुसु वि गदीसु उप्पज्जदे जम्हा ॥ लब्धि. १११.

३ चरिमे फालिं दिण्णे कदकरणिज्जेत्ति वेदगो होदि ॥ लब्धि. १४५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कारणलेस्सापरिणामाणं तत्थ विरोहाभावा । दंसणमोहक्खवणविधी एत्थ किण्ण परूविदा ? ण, पढमसम्मत्तुप्पायणविधीदो तिण्णिकरणादिकिरियाहि दंसणमोहक्खवणविधीए भेदाभावेण तत्तो चेव अवगमादो । तम्हा परूविदा चेव । अध कोइ विसेसो अत्थि सो[1] वि वक्खाणादो अवगम्मदे ।

तदो दंसणमोहक्खवणगयविसेसपरूवणा कीरदे । तं जधा– तत्थ ताव दंसणमोहणीयं खवेंतो पढममणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोएदि अधापवत्तापुव्व-अणियट्टिकरणाणि काऊण[2] । एदेसिं करणाणं लक्खणाणि जधा पढमसम्मत्तुप्पत्तीए तिण्हं करणाणं लक्खणाणि परूविदाणि तधा परूवेदव्वाणि । अधापवत्तकरणे ट्ठिदिघादो अणुभागघादो गुणसेडी गुणसंकमो च णत्थि । केवलमणंतगुणाए विसोहीए विसुज्झंतो गच्छदि जाव अधापवत्तकरणद्धाए चरिमसमओ त्ति । णवरि अण्णं ट्ठिदिं बंधंतो पुव्विल्लट्ठिदिबंधादो पलिदो-

....

कारणभूत लेश्या-परिणामोंके वहां होनेमें कोई विरोध नहीं है ।

विशेषार्थ—अनिवृत्तिकरणके अन्त समयमें सम्यक्त्वमोहनीयकी अन्तिम फालिके द्रव्यको नीचेके निषेकोंमें क्षेपण करनेसे अन्तर्मुहूर्तकाल तक जीव कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि होता है ।

शंका—दर्शनमोहके क्षपणकी विधि यहांपर क्यों नहीं कही ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, प्रथमोपशमसम्यक्त्वको उत्पादन करनेवाली विधिसे तीनों करण आदि क्रियाओंके साथ दर्शनमोहकी क्षपण-विधिका कोई भेद नहीं है, इसलिए उससे ही दर्शनमोहकी क्षपण-विधिका ज्ञान हो जाता है । अत एव वह प्ररूपित की ही गई है । और जो कुछ विशेषता है वह भी व्याख्यानसे जान ली जाती है । इसलिए दर्शनमोहकी क्षपणासम्बन्धी विशेषताकी प्ररूपणा की जाती है । वह इस प्रकार है—

दर्शनमोहनीयका क्षपण करता हुआ जीव सर्व प्रथम अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन तीन करणोंको करके अनन्तानुबन्धिचतुष्कका विसंयोजन करता है । इन करणोंके लक्षण जिस प्रकार प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी उत्पत्तिमें तीनों करणोंके लक्षण कहे हैं, उसी प्रकार यहां प्ररूपण करना चाहिए । अधःप्रवृत्तकरणमें स्थितिघात, अनुभागघात, गुणश्रेणी और गुणसंक्रमण नहीं होता है । केवल अनन्तगुणी विशुद्धिसे विशुद्ध होता हुआ अधःप्रवृत्तकरणकालके अन्तिम समय तक चला जाता है । केवल विशेषता यह है कि अन्य स्थितिको बांधता हुआ पहलेके स्थितिबन्धकी

....

१ प्रतिषु ' सु ' इति पाठः ।

२ पुव्वं तियरणविहिणा अणं खु अणियट्टिकरणचरिमम्हि । उदयावलिबाहिरगं ठिदिं विसंजोजदे णियमा ॥ लब्धि. ११२.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

वमस्स संखेज्जदिभागेण ऊणियं ट्ठिदिं बंधदि। एदस्स करणस्स पढमट्ठिदिबंधादो चरिमट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणहीणो।

अपुव्वकरणपढमसमए पुव्वट्ठिदिबंधादो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेणूणो अण्णो ट्ठिदिबंधो होदि। तम्हि चेव समए पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागमेत्तायामं सागरोवमपुधत्तायामं वा आउगवज्जाणं कम्माणं ठिदिखंडयमाढवेदि। अप्पसत्थाणं कम्माणं अणुभागस्स अणंताभागमेत्तमणुभागखंडयं च तत्थेव आढवेदि[1]। तत्थेव अणंताणुबंधीणं गुणसंकमं पि[2] आढवेदि। तं जधा– पढमसमए पुव्वं संकामिददव्वादो असंखेज्जगुणं संकामेदि। विदियसमए तत्तो असंखेज्जगुणं संकामेदि। एवं णेदव्वं जाव सव्वसंकमपढमसमओ त्ति। उदयावलियबाहिरट्ठिदिट्ठिदपदेसग्गमोकड्डुणभागहारेण खंडिदेयखंडं घेत्तूण उदयावलियबाहिरे आयुगवज्जाणं कम्माणं गलिदसेसं गुणसेडिं करेदि जाव अपुव्व-अणियट्टीअद्धाहिंतो विसेसाहियमद्धाणं गच्छदि त्ति[3]। तदो उवरिमाणंतराए ट्ठिदीए

अपेक्षा पल्योपमके संख्यातवें भागसे हीन स्थितिको बांधता है। इस अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें होनेवाले स्थितिबन्धसे अन्तिम समयमें होनेवाला स्थितिबन्ध संख्यातगुणा हीन होता है।

अपूर्वकरणके प्रथम समयमें पूर्व स्थितिबन्धसे पल्योपमके संख्यातवें भागसे हीन अन्य स्थितिबन्ध होता है। उसी समयमें आयुकर्मको छोड़कर शेष कर्मोंके पल्योपमके संख्यातवें भागमात्र आयामवाले अथवा सागरोपमपृथक्त्व आयामवाले स्थितिकांडकको आरम्भ करता है। तथा उसी समयमें अप्रशस्त कर्मोंके अनुभागके अनन्त बहुभागमात्र अनुभागकांडकको आरम्भ करता है। उसी समयमें अनन्तानुबन्धी कषायोंका गुणसंक्रमण भी आरम्भ करता है। वह इस प्रकार है— प्रथम समयमें पहले संक्रमण किए गये द्रव्यसे असंख्यातगुणित प्रदेशका संक्रमण करता है। दूसरे समयमें उससे असंख्यातगुणित प्रदेशका संक्रमण करता है। इस प्रकार यह क्रम सर्वसंक्रमण होनेके प्रथम समय तक ले जाना चाहिए। उदयावलीसे बाहिरकी स्थितिमें स्थित प्रदेशाग्रको अपकर्षणभागहारसे खंडित कर उसमेंसे एक खंडको ग्रहणकर उदयावलीसे बाहिर आयुकर्मको छोड़कर शेष कर्मोंकी गलितशेष गुणश्रेणीको तब तक करता है जब तक कि अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके कालोंसे विशेष अधिक काल व्यतीत होता है। इससे उपरिम अनन्तर-स्थितिमें असंख्यातगुणित हीन प्रदेशाग्रको देता है। इससे

१ असुहाणं पयडीणं अणंतभागा रसस्स खंडाणि। सुहपयडीणं णियमा णत्थित्ति रसस्स खंडाणि॥ लब्धि. ८०.

२ प्रतिपु 'हि' इति पाठः।

३ गुणसेडीदीहत्तमपुव्वदुगादो दु साहियं होदि। गलिदवसेसे उदयावलिबाहिरदो दु णिक्खेवो॥ लब्धि. ५५. उक्कट्ठिदम्हि देदि हु असंखसमयप्पबंधमादिम्हि। संखातीदगुणक्कमसंखहीणं विसेसहीणकमं॥ पडिसमयं उक्कट्टदि असंखगुणियक्कमेण संचदि य। इदि गुणसेडीकरणं आउगवज्जाण कम्माणं॥ लब्धि. ७३–७४.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

असंखेज्जगुणहीणं देदि[1]। उवरि सव्वत्थ विसेसहीणं चेव देदि जाव अप्पप्पणो अइच्छावणावलियमपत्तमिदि। एवं सव्विस्से अपुव्वकरणद्धाए गुणसेढीकरणविधी वत्तव्वा। णवरि पढमसमए ओकड्डिदपदेसेहिंतो विदियसमए असंखेज्जगुणे ओकड्डदि। तत्तो असंखेज्जगुणे तदियसमए ओकड्डदि। एवं णेयव्वं जाव अणियट्टीकरणचरिमसमओ त्ति। पढमसमए दिज्जमाणपदेसग्गादो विदियसमए[2] गुणसेडीए दिज्जमाणपदेसग्गमसंखेज्जगुणं। एवं णेदव्वं जाव अणियट्टीकरणचरिमसमओ त्ति। एत्थ ट्ठिदिबंधकालो ट्ठिदिखंडयउक्कीरणकालो च एगकालिया दो वि सरिसा अंतोमुहुत्तमेत्ता, तत्थतणअणुभागखंडयउक्कीरणद्धादो संखेज्जगुणा। एवं णेदव्वं जाव ट्ठिदि-अणुभागखंडयाणं अपच्छिमघादो त्ति। णवरि पढमट्ठिदिअणुभागखंडयउक्कीरणद्धाहिंतो विदियट्ठिदि-अणुभागखंडयउक्कीरणद्धाओ विसेसहीणाओ। एवमणंतरहेट्ठिमाहिंतो अणंतरउवरिमाओ सव्वत्थ विसेसहीणाओ। एवमणेण विहाणेण अपुव्वकरणद्धा समत्ता। एत्थ अपुव्वकरणपढम-

---

ऊपर सर्व स्थितियोंमें विशेष हीन ही देता है जब तक कि अपने अपने अतिस्थापनावलीको नहीं प्राप्त होता है। इस प्रकार सम्पूर्ण अपूर्वकरणके कालमें गुणश्रेणी करनेकी विधि कहना चाहिए। केवल विशेषता यह है कि प्रथम समयमें अपकर्षित प्रदेशोंसे दूसरे समयमें असंख्यातगुणित प्रदेशोंका अपकर्षण करता है। उससे असंख्यातगुणित प्रदेशोंको तीसरे समयमें अपकर्षित करता है। इस प्रकार यह क्रम अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समय तक ले जाना चाहिए। प्रथम समयमें दिए जानेवाले प्रदेशाग्रसे द्वितीय समयमें गुणश्रेणीके द्वारा दिए जानेवाला प्रदेशाग्र असंख्यातगुणित होता है। इस प्रकार यह क्रम अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समय तक ले जाना चाहिए। यहांपर स्थितिबन्धका काल और स्थितिकांडकके उत्कीरणका काल, ये एक साथ चलनेवाले दोनों काल, सदृश और अन्तर्मुहूर्तमात्र हैं, तो भी यहांपर होनेवाले अनुभागकांडकके उत्कीरणकालसे संख्यातगुणित हैं। इस प्रकार यह क्रम स्थितिकांडक और अनुभागकांडकके अन्तिम घात तक ले जाना चाहिए। विशेष बात यह है कि प्रथमस्थितिकांडकोत्कीरणकाल और अनुभागकांडकोत्कीरणकालोंसे द्वितीय स्थितिकांडकोत्कीरणकाल और अनुभागकांडकोत्कीरणकाल विशेष हीन होते हैं। इस प्रकार अनन्तर-अधस्तन स्थितिकांडकों और अनुभागकांडकोंके उत्कीरणकालोंसे अनन्तर-उपरिम स्थितिकांडकों और अनुभागकांडकोंके उत्कीरणकाल सर्वत्र विशेष हीन होते हैं। इस प्रकार उपर्युक्त विधानसे अपूर्वकरणका काल समाप्त हुआ। यहांपर अपूर्वकरणके प्रथम समयसम्बन्धी स्थिति-

---

१ प्रतिषु ' जदि ' इति पाठः।

२ प्रतिषु ' -समओ ' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ट्ठिदिसंतादो ट्ठिदिबंधादो च चरिमट्ठिदिसंत-ट्ठिदिबंधा संखेज्जगुणहीणा । अणुभागसंतकम्मादो पुण अणुभागसंतकम्ममणंतगुणहीणं ।

अणियट्टीकरणपढमसमए अण्णो ट्ठिदिबंधो, अण्णो ट्ठिदिखंडओ, अण्णो अणुभागखंडओ, अण्णा च गुणसेडी एक्कसराहेण आढत्ता । एवमणियट्टीअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु विसेसघादेण घादिज्जमाणअणंताणुबंधिचउक्कट्ठिदिसंतकम्ममसण्णिट्ठिदिबंधसमाणं जादं । तदो ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु चदुरिंदियट्ठिदिबंधसमाणं जादं । एवं तीइंदिय-बीइंदिय-एइंदियबंधसमाणं होदूण पलिदोवमपमाणं ट्ठिदिसंतकम्मं जादं । तदो अणंताणुबंधीचदुक्कट्ठिदिखंडयपमाणं वि[1] ट्ठिदिसंतस्स संखेज्जा भागा । सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिखंडगो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो चेव । एवं ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु दूरावकिट्टीसण्णिदे[2] ट्ठिदिसंतकम्मे अवसेसे तदो प्पहुडि सेसस्स असंखेज्जे भागे हणदि ।

सत्त्वसे और स्थितिबन्धसे अपूर्वकरणके अन्तिम समयसम्बन्धी स्थितिसत्त्व और स्थितिबन्ध संख्यातगुणित हीन होते हैं। किन्तु अपूर्वकरणके प्रथम समयसम्बन्धी अनुभागसत्त्वसे अपूर्वकरणका अन्तिम समयसम्बन्धी अनुभागसत्त्व अनन्तगुणित हीन होता है।

अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें अन्य स्थितिबन्ध, अन्य स्थितिकांडक, अन्य अनुभागकांडक और अन्य गुणश्रेणी एक साथ आरम्भ की। इस प्रकार अनिवृत्तिकरणकालके संख्यात बहुभाग व्यतीत होनेपर विशेष घातसे घात किया जाता हुआ अनन्तानुबन्धी-चतुष्कका स्थितिसत्त्व असंज्ञी पंचेन्द्रियके स्थितिबन्धके समान हो गया। इसके पश्चात् सहस्रों स्थितिकांडकोंके व्यतीत होनेपर अनन्तानुबन्धी-चतुष्कका स्थितिसत्त्व चतुरिन्द्रियके स्थितिबन्धके समान हो गया। इस प्रकार क्रमशः त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और एकेन्द्रिय जीवोंके स्थितिबन्धके समान होकर पल्योपमप्रमाण स्थितिसत्त्व हो गया। तब अनन्तानुबन्धी-चतुष्कके स्थितिकांडकका प्रमाण भी स्थितिसत्त्वके संख्यात बहुभाग होता है, और शेष कर्मोंका स्थितिकांडक पल्योपमके संख्यातवें भाग ही है। इस प्रकार सहस्रों स्थितिकांडकोंके व्यतीत होने पर दूरापकृष्टि संज्ञावाले स्थितिसत्त्वके अवशेष रहने पर वहांसे शेष स्थितिसत्त्वके असंख्यात भागोंका घात करता है।

विशेषार्थ — अनिवृत्तिकरणके कालमें स्थितिकाण्डकघातके द्वारा अनन्तानुबन्धी व दर्शनमोहनीय कर्मोंके स्थितिसत्त्वके चार पर्व या विभाग होते हैं। पहले पर्वमें पृथक्त्व लाख सागर, दूसरेमें पल्यमात्र, तीसरेमें पल्यके संख्यातसे लेकर असंख्यातवें भाग और

१ प्रतिषु '–चदुक्कट्ठिदि वि खंडयपमाणं ' इति पाठः ।

२ का दूरापकृष्टिर्नामेति चेदुच्यते–पल्ये उत्कृष्टसंख्यातेन भक्ते यल्लब्धं तस्मादेकैकहान्या जघन्यपरिमितासंख्यातेन भक्ते पल्ये यल्लब्धं तस्मादेकोत्तरवृद्धया यावन्तो विकल्पास्तावन्तो दूरापकृष्टिभेदाः । तेषु कश्चिदेव विकल्पो । जिनदृष्टमात्रोऽस्मिन्नवसरे दूरापकृष्टिसंज्ञितो वेदितव्यः । लब्धि. १२० टीका.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

एवमुवरि सव्वत्थ सेसट्ठिदिसंतकम्मस्स असंखेज्जभागमेत्तो चेव ट्ठिदिखंडगो पददि[1]। तदो चरिमट्ठिदिखंडयं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागायामं अंतोमुहुत्तमेत्तुक्कीरणकालेण छिंदंतो अणियट्टीकरणचरिमसमए उदयावलियबाहिरसव्वट्ठिदिसंतकम्मं परसरूवेण संकामिय अंतोमुहुत्तकाले अदिक्कंते दंसणमोहणीयक्खवणं पट्ठवेदि[2]।

दंसणमोहणीयक्खवणपरिणामा वि अधापवत्तापुव्व-अणियट्टीभेदेण तिविहा होंति। एदेसिं लक्खणं जधा सम्मत्तुप्पत्तीए उत्तं तधा वत्तव्वं। अधापवत्तकरणे णत्थि ट्ठिदिघादो अणुभागघादो गुणसेडी गुणसंकमो वा। केवलमणंतगुणाए विसोहीए विसुज्झंतो अप्पसत्थपयडीणमणुभागमणंतगुणहीणं पसत्थाणमणंतगुणं ट्ठिदिबंधादो अण्णं ट्ठिदिबंधं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण ऊणयं बंधंतो गच्छदि जाव अधापवत्तकरणचरिमसमओ त्ति।

चौथेमें उच्छिष्टावलि मात्र स्थितिसत्त्व शेष रहता है। इनमेंसे तीसरे पर्व अर्थात् संख्यातवेंसे लेकर पल्यके असंख्यातवें भाग तक स्थितिसत्त्वके शेष रहनेको ही दूरापकृष्टि स्थितिसत्त्व कहते हैं।

इस प्रकार ऊपर सर्वत्र शेष स्थितिसत्त्वके असंख्यातवें भागमात्र ही स्थितिकांडकका पतन होता है। तत्पश्चात् पल्योपमके असंख्यातवें भाग आयामवाले अन्तिम स्थितिकांडकको अन्तर्मुहूर्तमात्र उत्कीरणकालके द्वारा छेदन करता हुआ अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयमें उदयावलीसे बाह्य सर्व स्थितिसत्त्वको परस्वरूपसे संक्रमित कर अन्तर्मुहूर्तकालके व्यतीत होनेपर दर्शनमोहनीयका क्षपण प्रारम्भ करता है।

दर्शनमोहनीय कर्मके क्षपण करनेवाले परिणाम भी अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके भेदसे तीन प्रकारके होते हैं। इनका लक्षण जैसा सम्यक्त्वकी उत्पत्तिमें कहा हैं, वैसा कहना चाहिए। अधःप्रवृत्तकरणमें स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात, गुणश्रेणी और गुणसंक्रमण नहीं होता है। केवल अनन्तगुणी विशुद्धिसे विशुद्ध होता हुआ अप्रशस्त प्रकृतियोंके अनुभागको अनन्तगुणित हीन, प्रशस्त प्रकृतियोंके अनुभागको अनन्तगुणित और पूर्व स्थितिबन्धसे पल्योपमके संख्यातवें भागसे हीन अन्य स्थितिबन्धको बांधता हुआ अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समय तक जाता है।

---

१ अणियट्टीअद्धाए अणस्स चत्तारि होंति पव्वाणि। सायरलक्खपुधत्तं पल्लं दूरावकिट्टि उच्छिट्ठं ॥ पल्लस्स संखभागो संखा भागा असंखगा भागा। ठिदिखंडा होंति कमे अणस्स पव्वादु पव्वो त्ति ॥ अणियट्टीसंखेज्जाभागेसु गदेसु अणगठिदिसंतो। उदधिसहस्सं तत्तो वियले य समं तु पल्लादी ॥ लब्धि. ११३–११५.

२ अंतोमुहुत्तकालं विस्समिय पुणो वि तिकरणं करिय। अणियट्टीए मिच्छं मिस्सं सम्मं कमेण णासेइ ॥ लब्धि. ११७.

अपुव्वकरणपढमसमए जहण्णट्ठिदिसंतकम्मेण उवट्ठिदस्स ट्ठिदिखंडगं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो, उक्कस्सेण उवट्ठिदस्स सागरोवमपुधत्तमेत्तो ट्ठिदिखंडगो। पुव्वट्ठिदिबंधादो जाओ ओसरिदाओ ट्ठिदीओ ताओ पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो। अप्पसत्थाणं कम्माणमणुभागखंडयपमाणमणंता भागा अणुभागसंतकम्मस्स। गुणसेडी उदयावलियादो बाहिरा गलिदसेसा। विदियसमए एसो चेव ट्ठिदिखंडओ, सो चेव अणुभागखंडओ, सो चेव ट्ठिदिबंधो, गुणसेडी अण्णा। एवमंतोमुहुत्तं जाव अणुभागखंडओ पुण्णो। एवमणुभागखंडयसहस्सेसु पुण्णेसु अण्णं ट्ठिदिखंडयं ट्ठिदिबंधमणुभागखंडयं च पट्ठवेदि। पढमट्ठिदिखंडगो बहुओ, विदियट्ठिदिखंडगो विसेसहीणो, तदियट्ठिदिखंडगो विसेसहीणो। एवं पढमादो ट्ठिदिखंडयादो अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जगुणहीणो वि ट्ठिदिखंडओ अत्थि। एदेण कमेण ट्ठिदिखंडयसहस्सेहि बहूहि गदेहि अपुव्वकरणद्धाए चरिमसमयम्हि चरिमाणुभागखंडयउक्कीरणकालो ट्ठिदिखंडयउक्कीरणकालो ट्ठिदिबंधकालो च समगं[1] समत्तो। चरिमसमयअपुव्वकरणे ट्ठिदिसंतकम्मं थोवं, पढमसमय-

अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जघन्य स्थितिसत्त्वके साथ उपस्थित जीवका स्थितिकांडक पल्योपमका संख्यातवां भाग और उत्कृष्ट स्थितिसत्त्वके साथ उपस्थित जीवके सागरोपमपृथक्त्वमात्र स्थितिकांडक होता है। पूर्व स्थितिबन्धसे अर्थात् अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें होनेवाले तत्प्रायोग्य अन्तःकोड़ाकोड़ीमात्र स्थितिबन्धसे जो स्थितियां अपसरण की गई हैं, वे पल्योपमके संख्यातवें भाग होती हैं। अप्रशस्त कर्मोंके अनुभागकांडकका प्रमाण अनुभागसत्त्वके अनन्त बहुभाग है। गुणश्रेणी उदयावलीसे बाह्य गलितशेष प्रमाण है। अपूर्वकरणके दूसरे समयमें यह उपर्युक्त ही स्थितिकांडक है, वही अनुभागकांडक है और वही स्थितिबन्ध है। किन्तु गुणश्रेणी अन्य होती है। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्तकाल तक एक अनुभागकांडक पूर्ण होता है। इस क्रमसे सहस्रों अनुभागकांडकोंके पूर्ण होनेपर अन्य स्थितिकांडकको, अन्य स्थितिबन्धको और अन्य अनुभागकांडकको प्रारम्भ करता है। प्रथम स्थितिकांडकका आयाम बहुत है, द्वितीय स्थितिकांडकका आयाम विशेष हीन होता है, तृतीय स्थितिकांडकका आयाम विशेष हीन होता है। इस प्रकार प्रथम स्थितिकांडकसे संख्यातगुणित हीन भी स्थितिकांडकका आयाम अपूर्वकरणके कालमें होता है। इस क्रमसे अनेकों सहस्र स्थितिकांडकोंके व्यतीत होनेपर अपूर्वकरणकालके अन्तिम समयमें अन्तिम अनुभागकांडकका उत्कीरणकाल, स्थितिकांडकका उत्कीरणकाल और स्थितिबन्धका काल, एक साथ समाप्त होता है। अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें स्थितिसत्त्व अल्प है, और उसी

१ प्रतिषु 'समयं' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपुव्वकरणे ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं। ट्ठिदिबंधो वि पढमसमयअपुव्वकरणे बहुओ, चरिमसमयअपुव्वकरणे संखेज्जगुणहीणो।

अणियट्टीकरणं पविट्ठपढमसमए अपुव्वो ट्ठिदिखंडगो, अपुव्वो अणुभागखंडगो अपुव्वो ट्ठिदिबंधो, तहा चेव गुणसेडी। अणियट्टीकरणस्स पढमसमए दंसणमोहणीयं अप्पसत्थुवसामणाए[1] अणुवसंतं; सेसाणि कम्माणि उवसंताणि च अणुवसंताणि च।

अणियट्टीकरणस्स पढमसमए दंसणमोहणीयट्ठिदिसंतकम्मं सागरोवमसदसहस्सपुधत्तमंतोकोडीए, सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं कोडिसदसहस्सपुधत्तमंतोकोडाकोडीए जादं[2]। तदो ट्ठिदिखंडयसहस्सेहि अणियट्टीअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु दंसण-

---

अपूर्वकरणके प्रथम समयमें स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित है। स्थितिबन्ध भी अपूर्वकरणके प्रथम समयमें बहुत है, और उससे अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें संख्यातगुणित हीन है।

अनिवृत्तिकरणमें प्रवेश करनेके प्रथम समयमें दर्शनमोहनीयका अपूर्व स्थितिकांडक होता है, अपूर्व अनुभागकांडक होता है, और अपूर्व स्थितिबन्ध होता है; किन्तु गुणश्रेणी उसी प्रकारकी रहती है। अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें दर्शनमोहनीय कर्म अप्रशस्तोपशामनाके अर्थात् देशोपशामनाके द्वारा अनुपशान्त रहता है। शेष कर्म उपशान्त भी रहते हैं और अनुपशान्त भी रहते हैं।

विशेषार्थ— कितने ही कर्मपरमाणुओंका बाह्य और अन्तरंग कारणके वशसे और कितने ही कर्मपरमाणुओंका उदीरणाके वशसे उदयमें नहीं आनेको अप्रशस्तोपशामना कहते हैं। इसीका दूसरा नाम देशोपशामना भी है। दर्शनमोहसम्बन्धी यह अप्रशस्तोपशामना अपूर्वकरणके अन्तिम समय तक बराबर चली आ रही थी। किन्तु अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें ही यह नष्ट हो जाती है। किन्तु शेष कर्मोंकी अप्रशस्तोपशामना यथासंभव होती भी है और नहीं भी होती है, उसके लिए कोई एकान्त नियम नहीं है।

अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें दर्शनमोहनीयकर्मका स्थितिसत्त्व सागरोपमलक्षपृथक्त्व, अर्थात् अन्तःकोटी तथा शेष कर्मोंका स्थितिसत्त्व सागरोपमकोटिलक्षपृथक्त्व, अर्थात् अन्तःकोड़ाकोड़ी हो जाता है। इसके पश्चात् सहस्रों स्थितिकांडकोंके द्वारा अनिवृत्तिकरणकालके संख्यात भागोंके व्यतीत होनेपर दर्शनमोहनीयकर्मका

---

१ कम्मपरमाणूणं बज्झंतरंगकारणवसेण केत्तियाणं पि उदीरणावसेण उदयाणागमणपइण्णा अप्पसत्थउवसामणा त्ति भण्णदे। जयध. अ. प. ९७०. देशोपशमनायाः × × × द्वे नामधेये। तद्यथा अगुणोपशमनाऽप्रशस्तोपशमना च। कर्म प्र. पृ. २५५.

२ अणियट्टिकरणपढमे दंसणमोहस्स सेसगाण ठिदी। सायरलक्खपुधत्तं कोडीलक्खपुधत्तं च॥ लब्धि. ११८.

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं असण्णिट्ठिदिबंधेण सरिसं जादं। तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण चउरिंदियट्ठिदिबंधेण समगं जादं। तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण ट्ठिदिसंतकम्मं तीइंदिय-ट्ठिदिबंधेण सरिसं होदि। तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण दंसणमोहट्ठिदिसंतकम्मं बीइंदिय-ट्ठिदिबंधेण समगं होदि। तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण दंसणमोहट्ठिदिसंतकम्मं एइंदियट्ठिदि-बंधेण समगं होदि। तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण दंसणमोहणीयट्ठिदिसंतकम्मं पलिदोवम-ट्ठिदिगं जादं[1]। जाव पलिदोवमट्ठिदिगं संतकम्मं ताव पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो ठिदिखंडगो। पुणो पलिदोवमस्स संखेज्जा भागा आगाइदा। तम्हि ठिदिखंडगे णिट्ठिदे तत्तो पहुडि सेसट्ठिदिसंतकम्मस्स संखेज्जे भागे आगाएदि। एवं ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागे ट्ठिदिसंतकम्मे सेसे सेसस्स संखेज्जेसु भागेसु हदेसु[2] पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागम्मि अवट्ठाणजोगे दूरावकिट्ठिणाम[3] ट्ठिदी

स्थितिसत्त्व असंज्ञी जीवोंके स्थितिबन्धके सदृश हो गया। पुनः स्थितिकांडकपृथक्त्वके द्वारा दर्शनमोहनीयकर्मका स्थितिसत्त्व चतुरिन्द्रियके स्थितिबन्धके सदृश हो गया। पुनः स्थितिकांडकपृथक्त्वके द्वारा दर्शनमोहनीयकर्मका स्थितिसत्त्व त्रीन्द्रियके स्थिति-बन्धके सदृश होता है। पुनः स्थितिकांडकपृथक्त्वके द्वारा दर्शनमोहनीयकर्मका स्थिति-सत्त्व द्वीन्द्रियके स्थितिबन्धके सदृश होता है। पुनः स्थितिकांडकपृथक्त्वके द्वारा दर्शनमोहनीयकर्मका स्थितिसत्त्व एकेन्द्रियके स्थितिबन्धके सदृश होता है। पुनः स्थितिकांडकपृथक्त्वके द्वारा दर्शनमोहनीयकर्मका स्थितिसत्त्व एक पल्योपमकी स्थिति-वाला हो गया। जब तक दर्शनमोहनीयकर्मका स्थितिसत्त्व एक पल्योपमकी स्थिति-वाला रहता है, तब तक स्थितिकांडकका प्रमाण पल्योपमका संख्यातवां भाग है। इसके पश्चात् पल्योपमके संख्यात बहु भागोंको स्थितिकांडकरूपसे ग्रहण करता है। उस स्थितिकांडकके समाप्त होनेपर उससे आगे शेष स्थितिसत्त्वके संख्यात बहु भागोंको स्थितिकांडकरूपसे ग्रहण करता है। इस प्रकार सहस्रों स्थितिकांडकोंके व्यतीत होनेपर और पल्योपमके संख्यातवें भागमात्र स्थितिसत्त्वके शेष रहनेपर तथा उस शेष भागके भी संख्यात बहु भाग विनष्ट हो जाने पर पल्योपमके असंख्यातवें भागमें अवस्थान योग्य दूरापकृष्टि नामकी स्थिति होती है। तत्पश्चात् शेष बचे हुए स्थितिसत्त्वके असंख्यात

१ अमणट्ठिदिसत्तादो पुधत्तमेत्ते पुधत्तमेत्ते य। ठिदिखंडये हवंति हु चउतिविएयक्खपल्लठिदी॥ लब्धि. ११९.

२ क प्रतौ 'गदेसु' इति पाठः।

३ का दूरावकिट्ठी णाम? वुच्चदे—जत्तो ट्ठिदिसंतकम्मावसेसादो संखेज्जे भागे घेत्तूण ठिदिखंडए घादिज्जमाणे घादिदसेसं णियमा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागपमाणं होदूण चिट्ठदि तं सव्वपच्छिमं पलिदोवमस्स संखेज्जदि-भागपमाणं ट्ठिदिसंतकम्मं दूरावकिट्ठि त्ति भण्णदे। किं कारणमेदस्स ट्ठिदिविसेसस्स दूरावकिट्टिसण्णा जादा त्ति चे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होदि[1] । तदो सेसस्स असंखेज्जे भागे आगाएदि । एत्तो पहुडि सेसस्स असंखेज्जे भागे चेव आगाएदि जाव सम्मत्तट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जदिवाससहस्समेत्तं ण पत्तं ति ।

एवं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागिगेसु[2] ट्ठिदिखंडएसु गदेसु तदो सम्मत्तस्स असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा । तदो बहुसु ट्ठिदिखंडएसु गदेसु मिच्छत्तमावलिय-बाहिरं सव्वमागाइदं[3] । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं मोत्तूण असंखेज्जा भागा आगाइदा । तम्हि ट्ठिदिखंडए णिट्ठिज्जमाणे णिट्ठिदे मिच्छत्तस्स जहण्णगो दिट्ठिसंकमो । जदि गुणिदकम्मंसिओ[4] तो उक्कस्सओ पदेससंकमो, अण्णहा

बहु भागोंको स्थितिकांडकरूपसे ग्रहण करता है। इससे आगे दर्शनमोहनीयकर्मके शेष स्थितिसत्त्वके असंख्यात बहु भागोंको ही तब तक स्थितिकांडकरूपसे ग्रहण करता है जब तक कि सम्यक्त्वप्रकृतिका स्थितिसत्त्व असंख्यात हजार वर्षमात्र नहीं प्राप्त होता है।

इस प्रकार पल्योपमके असंख्यातवें भागवाले स्थितिकांडकोंके व्यतीत होनेपर उसके पश्चात् सम्यक्त्वप्रकृतिके असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा प्रारम्भ होती है। पुनः बहुतसे स्थितिकांडकोंके व्यतीत हो जानेपर उदयावलीसे बाहिर स्थित सर्व मिथ्यात्वको घात करनेके लिए ग्रहण किया। तथा, सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व-प्रकृति, इन दोनोंके पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र स्थितिसत्त्वको छोड़कर शेष असंख्यात बहुभाग ग्रहण किए। समाप्त होने योग्य उस स्थितिकांडकके समाप्त होनेपर मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रमण होता है। यदि वह जीव गुणितकर्मांशिक है, तो उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण होता है, अन्यथा अनुत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण होता है। उसी

पलिदोवमट्ठिदिसंतकम्मादो सङ्कु दूरयरमोसारिय सव्वजहण्णपलिदोवमसंखेज्जभागसरूवेणावट्ठाणादो । पल्योपमस्थिति-कर्मणोऽधस्तादूरतरमपकृष्टत्वादतिकृशत्वाच्च दूरापकृष्टिरेषा स्थितिरित्युक्तं भवति । अथवा दूरतरमपकृष्टा तस्याः स्थितिकांडकमिति दूरापकृष्टिः । इतः प्रभृत्यसंख्येयान् भागान् गृहीत्वा स्थितिकांडकघातमाचरतीत्यतो दूरापकृष्टिरिति यावत् । जयध. अ. प. ९७१.

१ पल्लट्ठिदिदो उवरिं संखेज्जसहस्समेत्तठिदिखंडे । दूरावकिट्टिसण्णिदठिदिसत्तं होदि णियमेण ॥ लब्धि. १२०.

२ अ-आप्रत्योः ' भागिदेसु ', कप्रतौ ' भागेदेसु ' इति पाठः ।

३ पल्लस्स संखभागं तस्स पमाणं तदो असंखेज्ज । भागपमाणे खंडे संखेज्जसहस्सगेसु तीदेसु ॥ सम्मस्स असंखाणं समयपबद्धाणुदीरणा होदि । तत्तो उवरिं तु पुणो बहुखंडे मिच्छउच्छिट्ठं ॥ जत्थ असंखेज्जाणं समय-पबद्धाणुदीरणा तत्तो । पल्लासंखेज्जदिमो हारेणासंखलोगमिदो ॥ लब्धि. १२१-१२३.

४ जो बायरतसकालेणूणं कम्मट्ठिदिं तु पुढवीए । बायर (रि) पज्जत्तापज्जत्तगदीहेयरद्धासु ॥ ७४ ॥ जोगकसाउक्कोसो बहुसो निच्चमवि आउबंधं च । जोगजहण्णेणुवरिल्लठिइणिसेगं बहुं किच्चा ॥ ७५ ॥ बायरतसेसु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणुक्कस्सओ। ताधे सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं होदि। जदि गुणिद-खविदघोलमाणो[1] खविदकम्मंसिओ वा तो अणुक्कस्सं। तदो आवलियाए दुसमऊणाए

समय उस जीवके सम्यग्मिथ्यात्वकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशसत्त्व होता है। यदि वह जीव गुणित-क्षपित-घोटमान अथवा क्षपित-कर्मांशिक है, तो उसके अनुत्कृष्ट प्रदेशसत्त्व होता है।

विशेषार्थ—जो जीव अनेक भवोंमें उत्तरोत्तर गुणितक्रमसे कर्मप्रदेशोंका बन्ध करता रहा है उसे गुणितकर्मांशिक कहते हैं। जो जीव उत्कृष्ट योगों सहित बादर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय पर्याप्त व अपर्याप्त भवोंसे लेकर पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपमप्रमाण बादर त्रसकायमें परिभ्रमण करके जितने वार सातवीं पृथिवीमें जाने योग्य होता है उतनी वार जाकर पश्चात् सप्तम पृथिवीमें नारक पर्यायको धारण कर व शीघ्रातिशीघ्र पर्याप्त होकर उत्कृष्ट योगस्थानों व उत्कृष्ट कषायों सहित होता हुआ उत्कृष्ट कर्मप्रदेशोंका संचय करता है और अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आयुके शेष रहनेपर त्रिचरम और द्विचरम समयमें वर्तमान रहकर उत्कृष्ट संक्लेशस्थानको तथा चरम और द्विचरम समयमें उत्कृष्ट योगस्थानको भी पूर्ण करता है, वह जीव उसी नारक पर्यायके अन्तिम समयमें संपूर्ण गुणितकर्मांशिक होता है।

जो जीव पल्यके असंख्यातवें भागसे हीन सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण काल तक सूक्ष्म निगोद पर्यायमें रहा और भव्य जीवके योग्य जघन्य कर्मप्रदेशसंचयपूर्वक सूक्ष्म निगोदसे निकलकर बादर पृथिवीकायिक हुआ और अन्तर्मुहूर्त कालमें निकलकर तथा सात माहमें ही गर्भसे उत्पन्न होकर पूर्वकोटि आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न, और विरतियोग्य त्रसोंमें हुआ तथा आठ वर्षमें संयमको प्राप्त करके संयम सहित ही मनुष्यायु पूर्ण कर पुनः देव, बादर पृथिवीकायिक व मनुष्योंमें अनेक वार उत्पन्न होता हुआ पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यात वार सम्यक्त्व, उससे स्वल्पकालिक देश-

तक्कालमेव मंते य सत्तमखिईए। सव्वलहुं पज्जत्तो जोगकसायाहिओ बहुसो ॥ ७६॥ जोगजवमज्झुवरिं मुहुत्त-मच्छित्तु जीवियवसाणे। तिचरिमदुचरिमसमए पूरित्तु कसायउक्कस्सं ॥ ७७॥ जोगुक्कोसं चरिम-दुचरिमे समए य चरिमसमयम्मि। **संपुण्णगुणियकम्मो** पगयं तेणेह सामित्ते ॥ ७८॥ संछोभणाए दोण्हं मोहाणं वेयगस्स खणसेसे। उप्पाइय सम्मत्तं मिच्छत्तगए तमतमाए ॥ ८२॥ कर्म प्र. पत्र १८७-१८९.

१ तानि परिणामयोगस्थानानि सर्वाण्यपि घोटमानयोगा एव स्युः, हानिवृद्ध्यवस्थानरूपेण परिणमनात्। गो. क. २२१. टीका.

२ पल्लासंखियभागोणकम्मट्ठिइमच्छिओ निगोएसु। सुहुमेस (सु) भवियजोग्गं जहण्णयं कट्टु निग्गम्म ॥९४॥ जोग्गेस (सु) संखवारे सम्मत्तं लभिय देसविरयं च। अट्ठक्खुत्तो विरई संजोयणहा य तइवारे ॥ ९५॥ चउरुवसमित्तु मोहं लहुं खवेंतो भवे **खवियकम्मो** ॥ ९६॥ हस्सगुणसंकमद्धाए पूरयित्ता समीससम्मत्तं। चिरसंमत्ता मिच्छत्त-गयस्सुव्वलणथोगो सिं ॥ १००॥ कर्म प्र. प. १९४-१९६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गदाए मिच्छत्तस्स जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं । मिच्छत्ते पढमसमयसंकंते सम्मत्त सम्मामिच्छत्ताणं असंखेज्जा भागा सेसस्स आगाइदा । एवं संखेज्जेहि ट्ठिदिखंडएहि गदेहि सम्मामिच्छत्तमावलियबाहिरसव्वमागाइदं । ताधे सम्मत्तम्हि अट्ठवस्साणि मोत्तूण सव्वमागाइदं । संखेज्जाणि वाससहस्साणि मोत्तूण आगाइदमिदि भणंता वि अत्थि ।

एदम्हि ट्ठिदिखंडए णिट्ठिदे ताधे सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णओ ट्ठिदिसंकमो । जदि गुणिदकम्मंसिओ तो उक्कस्सओ पदेससंकमो, सम्मत्तस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं[1] । एत्तो पाए अंतोमुहुत्तिओ ट्ठिदिखंडगो । अपुव्वकरणस्स पढमसमयदो जाव

विरति, आठ वार विरतिको प्राप्त कर व आठ ही वार अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन व चार वार मोहनीयका उपशम कर शीघ्र ही कर्मोंका क्षय करता है, वह उत्कृष्ट क्षपितकर्मांशिक होता है।

जो जीव उपर्युक्त प्रकारसे न गुणितकर्मांशिक है और न क्षपितकर्मांशिक है, किन्तु अनवस्थित रूपसे कर्मसंचय करता है वह गुणित-क्षपित-घोलमान है।

प्रस्तुत प्रसंगमें आचार्य कहते हैं कि मोहनीयकी क्षपणाके क्रममें जब जीव मिथ्यात्वका स्थितिसंक्रमण करता है उस समय यदि वह जीव गुणितकर्मांशिक है तो उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण करता है, और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट सत्ता भी उसीके होती है। अन्यथा अनुत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण होता है और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता भी अनुत्कृष्ट होती है।

इसके पश्चात् दो समय कम आवलीप्रमाण मिथ्यात्वके समयप्रबद्धोंके नष्ट होनेपर मिथ्यात्वकर्मका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है। सर्वसंक्रमणके द्वारा मिथ्यात्वके संक्रमण करनेपर प्रथम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों कर्मोंके घात करनेसे शेष बचे सत्त्वके असंख्यात बहुभागोंको स्थितिकांडकरूपसे ग्रहण किया। इस प्रकार संख्यात स्थितिकांडकोंके व्यतीत होनेपर उदयावलीसे बाह्य सम्यग्मिथ्यात्वके सर्व सत्त्वको ग्रहण किया। उसी समय सम्यक्त्वके स्थितिसत्त्वमें आठ वर्षोंको छोड़कर शेष सर्व स्थितिसत्त्वको ग्रहण किया। सम्यक्त्वके स्थितिसत्त्वमें 'संख्यात हजार वर्षोंको छोड़कर शेष समस्त स्थितिसत्त्वको ग्रहण किया' इस प्रकारसे कहनेवाले भी कितने ही आचार्य हैं। अर्थात् कितने ही आचार्योंके मतसे उस समय सम्यक्त्वप्रकृतिका स्थितिसत्त्व आठ वर्ष नहीं, किन्तु संख्यात हजार वर्ष रहता है।

इस स्थितिकांडकके समाप्त होनेपर उसी समय सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रमण होता है। यदि वह जीव गुणितकर्मांशिक है, तो उस समय उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण होता है। (अन्यथा अजघन्य-अनुत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण होता है।) उसी समय सम्यक्त्वप्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशसत्त्व होता है। यहांसे लेकर अन्तर्मुहूर्तप्रमाणवाला स्थितिकांडक होता है। अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग-

१ मिच्छुच्छिट्ठादुवरिं पल्लासंखेज्जभागगे खंडे । संखेज्जे समतीदे मिस्सुच्छिट्ठं हवे णियमा ॥ मिस्सुच्छिट्ठे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चरिमट्ठिदिखंडओ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागिगो त्ति एदम्हि काले जं पदेसग्गं ओकड्डमाणो उदयावलियबाहिरसव्वरहस्सट्ठिदीए देदि तं थोवं। समउत्तराए ट्ठिदीए जं पदेसग्गं देदि तमसंखेज्जगुणं। दुसमउत्तराए ट्ठिदीए पदेसग्गमसंखेज्जगुणं देदि। एवं जाव गुणसेडीसीसयं ताव असंखेज्जगुणं। तदो गुणसेडीसीसयादो उवरिमाणंतराए ट्ठिदीए पदेसग्गमसंखेज्जगुणहीणं देदि। तत्तो उवरि सव्वत्थ विसेसहीणं चेव देदि। जावे[1] अट्ठवासियट्ठिदिसंतकम्मं चेट्ठिदं तदोप्पहुडि उवरि अंतोमुहुत्तिगं ट्ठिदिखंडयमागाएदि। सम्मत्तअणुभागस्स[2] उदयावलियं[3]पविसमाणअणुभागस्स उदयावलियबाहिरअणुभागस्स य अणुसमयओवट्टणमणंतगुणहीणाए सेडीए करेदि। पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागियं चरिमट्ठिदिखंडयचरिमफालिपदेसग्गमट्ठवस्सम्मि णिक्खिवमाणो उदयादिअवट्ठिदगुणसेडिं[4] करेदि[5]। तं जहा—

वाले अन्तिम स्थितिकांडक तक इस कालमें जिस प्रदेशाग्रका अपकर्षण करता हुआ उदयावलीसे बाहिरी और सबसे ह्रस्व स्थितिमें देता है, वह अल्प है। इससे एक समय अधिक स्थितिमें जिस प्रदेशाग्रको देता है वह असंख्यातगुणित है। इससे दो समय अधिक स्थितिमें असंख्यातगुणित प्रदेशाग्रको देता है। इस प्रकार गुणश्रेणीशीर्ष तक असंख्यातगुणित प्रदेशाग्रको देता है। तत्पश्चात् गुणश्रेणीशीर्षसे उपरिम अनन्तर स्थितिमें असंख्यातगुणितहीन प्रदेशाग्रको देता है। इससे ऊपर सर्वत्र, अर्थात् शेष समस्त स्थितियोंमें, विशेषहीन विशेषहीन ही प्रदेशाग्रको देता है। जिस समय सम्यक्त्वप्रकृतिका स्थितिसत्त्व आठ वर्षप्रमाण किया गया, उस समयसे लेकर ऊपर अन्तर्मुहूर्तप्रमाणवाले स्थितिकांडकको ग्रहण करता है। सम्यक्त्वप्रकृतिसम्बन्धी उदयावलीमें प्रविश्यमान अनुभागकी और उदयावलीसे बाह्य अनुभागकी प्रतिसमय अपवर्तना अनन्तगुणित हीन श्रेणीके द्वारा करता है। पल्योपमके असंख्यातवें भागवाले अन्तिम स्थितिकांडककी अन्तिम फालिके प्रदेशाग्रको सम्यक्त्वप्रकृतिके आठ वर्षमात्र स्थितिसत्त्वके ऊपर निक्षिप्त करता हुआ उदयादिअवस्थित गुणश्रेणीको करता है। वह इस प्रकार है—

समये पल्लासंखेज्जभागगे खंडे। चरिमे पडिदे चेट्ठदि सम्मस्सट्ठवस्सठिदिसंतो ॥ मिच्छस्स चरमफालिं मिस्से मिस्सस्स चरिमफालिं तु। संछुहदि हु सम्मत्ते ताहे तेसिं च वरदव्वं ॥ जदि होदि गुणिदकम्मो दव्वमणुक्कस्समण्णहा तेसिं। अवरठिदी मिच्छदुगे उच्छिट्ठे समयदुगसेसे ॥ लब्धि. १२४–१२७.

१ क-प्रतौ 'जाधे' इति पाठः। २ आ-प्रतौ 'सम्मत्तमणुभागस्स' इति पाठः।

३ अ-कप्रत्योः 'उदय-उदयावलिय' इति पाठः। ४ अ-कप्रत्योः '–आवट्ठिदगुणसेडि' इति पाठः।

५ मिस्सदुगचरिमफाली किंचूणदिवड्ढसमयपबद्धपमा। गुणसेढिं करिय तदो असंखभागेण पुव्वं व ॥ सेसं विसेसहीणं अडवस्सुवरिमठिदीए संखुद्धे। चरिमाउलिं व सरिसी रयणा संजायदे एत्तो ॥ अडवस्सादो उवरिं उदयादिअवट्ठिदं च गुणसेढी। अंतोमुहुत्तियं ठिदिखंडं च य होदि सम्मस्स ॥ विदियावलिस्स पढमे पढमस्संते च आदिमणिसेये। तिट्ठाणेणंतगुणेणूणकमोवट्टणं चरमे ॥ लब्धि. १२८–१३१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदए थोवं पदेसग्गं देदि । से काले असंखेज्जगुणं देदि । एवं जाव गुणसेडी-सीसयं ताव असंखेज्जगुणं । तदो उवरिमाणंतरट्ठिदीए वि असंखेज्जगुणं देदि । तदो विसेसहीणं देदि । पुणो अणेण विधिणा सेसअट्ठवस्समेत्तट्ठिदिसंतकम्मम्मि विसेसहीणं चेव देदि । पुव्विल्लगोउच्छदव्वादो ट्ठिदिं पडि संपडि दिज्जमाणदव्वमसंखेज्जगुणं । विदिय-समए उदयावलियबाहिरट्ठिदीसु ट्ठिदपदेसग्गमोकड्डणभागहारेण खंडिदेयखंडं घेत्तूणुदये थोवं देदि । उवरिमट्ठिदीए असंखेज्जगुणं[1] देदि । एवं जाव गुणसेडीसीसयं ताव असंखेज्जगुणं चेव देदि[2] । तदो उवरिमाणंतराए ट्ठिदीए असंखेज्जगुणं देदि । पुणो उवरि सव्वत्थ विसेसहीणं चेव देदि[3] । संपदि पुव्विल्लगुणसेढीसीसयादो संपदिगुणसेढि-सीसयदव्वमसंखेज्जगुणं होदि । विसेसाहियं चेव दिस्समाणं[4] होदि । कुदो ? विदिय-

---

उदयमें अर्थात् वर्तमान समयमें उदय आनेवाले निषेकमें, अल्प प्रदेशाग्रको देता है। उससे अनन्तर समयमें असंख्यातगुणित प्रदेशाग्रको देता है। इस प्रकार गुण-श्रेणीके शीर्ष तक असंख्यातगुणित प्रदेशाग्रको देता है। इससे ऊपरकी अनन्तर स्थितिमें भी असंख्यातगुणित प्रदेशाग्रको देता है। तत्पश्चात् विशेष हीन देता है। पुनः इसी विधिसे शेष आठ वर्षमात्र स्थितिसत्त्वमें विशेष हीन ही देता है। पहलेके गोपुच्छरूप द्रव्यसे स्थितिके प्रति इस समय दिया जानेवाला द्रव्य (पूर्व द्रव्यकी अपेक्षा) अनन्तगुणित हीन होता है। द्वितीय समयमें उदयावलीसे बाहिरकी स्थितियोंमें स्थित प्रदेशाग्रको अपकर्षणभागहारसे खंडित कर उसमेंसे एक खंडको ग्रहण कर उदयमें अल्प प्रदेशाग्रको देता है, उससे ऊपरकी स्थितिमें असंख्यातगुणित प्रदेशाग्रको देता है। इस प्रकार गुणश्रेणीके शीर्ष तक असंख्यातगुणित ही प्रदेशाग्रको देता है। उससे ऊपरकी अनन्तर स्थितिमें असंख्यातगुणित प्रदेशाग्रको देता है। पुनः उसके ऊपर सर्वत्र विशेषहीन ही प्रदेशाग्रको देता है। अब पहलेके गुणश्रेणीशीर्षसे साम्प्रतिक गुणश्रेणीके शीर्षका द्रव्य असंख्यातगुणित होता है। दृश्यमान द्रव्य विशेष अधिक ही होता है,

---

१ आ-प्रतौ ' संखेज्जगुणे ' इति पाठः ।

२ आ-कप्रत्योः ' जदि ', अप्रतौ ' देदि जदि ' इति पाठः ।

३ अडवस्से उवरिम्मि वि दुचरिमखंडस्स चरिमफालि त्ति । संखातीदगुणक्कम विसेसहीणक्कमं देदि ॥ अडवस्से संपहियं पुव्विल्लादो असंखसंगुणियं । उवरिं पुण संपहियं असंखसंखं च भागं तु ॥ ठिदिखंडाणुक्कीरण दुचरिमसमओ त्ति चरिमसमये च । उक्कट्टिदफालीगददव्वाणि णिसिंचदे जम्हा ॥ अडवस्से संपहियं गुणसेडीसीसयं असंखगुणं । पुव्विल्लादो णियमा उवरि विसेसाहियं दिस्सं ॥ लब्धि. १३१-१३५.

४ दिज्जमाणमिदि भणिदे सव्वत्थ तक्कालमोकड्डिदूण णिसिंचमाणदव्वं घेत्तव्वं । दीसमाणमिदि भणिदे चिराणसंतकम्मेण सह सव्वदव्वसमूहो घेत्तव्वो । जयध. अ. प. ९७६. सर्वत्र तत्कालापकृष्टद्रव्यमुदयप्रथमसमयात्प्रभृति निक्षिप्यमाणं दीयमानं, तेन सहितं सर्वसत्त्वद्रव्यं दृश्यमानमिति राद्धान्तवचनात् । लब्धि. १३२ टीका.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समयओकड्डिददव्वस्स अट्ठवस्सेगट्ठिदिणिसित्तस्स अट्ठवस्सेगट्ठिदिदव्वं णिसेगभागहारेण खंडिदेगखंडमेत्तगोउच्छविसेसादो असंखेज्जगुणस्स अट्ठवस्सेगट्ठिदिपदेसग्गं पेक्खिऊण असंखेज्जगुणहीणत्तादो। एस कमो जाव पढमट्ठिदिखंडयदुचरिमफालि त्ति।

पुणो चरिमफालीए पदेसग्गे गुणसेडीआगारेण ट्ठइदे वि पुव्विल्लगुणसेडीसीसयपदेसग्गादो संपधियगुणसेडीसीसए दिस्समाणपदेसग्गं विसेसाहियं[1] चेव, चरिमफालिदव्वादो अट्ठवस्सेगट्ठिदपदेसग्गस्स संखेज्जदिभागमेत्तपदेसाणमागमदंसणादो[2]। एवं णेयव्वं जाव दुचरिमट्ठिदिखंडगो त्ति।

सम्मत्तस्स चरिमट्ठिदिखंडगे णिट्ठिदे जाओ ट्ठिदीओ सम्मत्तस्स सेसाओ ताओ ट्ठिदीओ थोवाओ। दुचरिमट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं। चरिमट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं। सम्मत्तचरिमट्ठिदिमागाएंतो गुणसेडीए संखेज्जे भागे आगाएदि, अण्णाओ च उवरि संखेज्जगुणाओ ट्ठिदीओ। सम्मत्तस्स चरिमट्ठिदिखंडगे पढमसमयआगाइदे ओवट्टिय-

क्योंकि, आठ वर्षरूप एक स्थितिद्रव्यको निषेकभागहारसे खंडित कर एक खंडमात्र गोपुच्छविशेषसे असंख्यातगुणित तथा दूसरे समयमें अपकर्षण किया गया और आठ वर्षप्रमाण एक स्थितिनिषिक्त द्रव्य, आठ वर्षरूप एक स्थितिके प्रदेशाग्रको देखकर, अर्थात् उसकी अपेक्षा, असंख्यातगुणित हीन होता है। यह क्रम प्रथम स्थितिकांडककी द्विचरमफाली तक ले जाना चाहिए।

पुनः अन्तिम फालीके प्रदेशाग्रको गुणश्रेणीके आकारसे स्थापित करनेपर भी पहलेकी गुणश्रेणीके शीर्षसम्बन्धी प्रदेशाग्रसे इस समय गुणश्रेणीके दृश्यमान प्रदेशाग्र विशेष अधिक ही हैं, क्योंकि, अन्तिम फालीके द्रव्यसे आठ वर्षरूप एक स्थितिसम्बन्धी प्रदेशाग्रके संख्यातवें भागमात्र प्रदेशोंका आना देखा जाता है। इस प्रकार यह क्रम द्विचरम स्थितिकांडक तक ले जाना चाहिए।

सम्यक्त्वप्रकृतिके अन्तिम स्थितिकांडकके समाप्त होनेपर जो स्थितियां सम्यक्त्वप्रकृतिकी शेष बचीं हैं, वे स्थितियां अल्प हैं। उनसे द्विचरम स्थितिकांडक संख्यातगुणित है। उससे अन्तिम स्थितिकांडक संख्यातगुणित है। सम्यक्त्वप्रकृतिकी अन्तिम स्थितिको ग्रहण करता हुआ गुणश्रेणीके संख्यात भागोंको ग्रहण करता है, तथा इसके ऊपर संख्यातगुणित अन्य भी स्थितियोंको ग्रहण करता है। सम्यक्त्वप्रकृतिके अन्तिम स्थितिकांडकके प्रथम समयमें ग्रहण करनेपर अपवर्तन की गई स्थितियोंमेंसे जो

१ प्रतिषु ' विसोहियं ' इति पाठः।

२ अडवस्से य ठिदीदो चरिमेदरफालिपडिददव्वं खु। संखासंखगुणूणं तेणुवरिमदिस्समाणमहियं सीसे ॥ लब्धि. १३६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माणासु[1] ट्ठिदीसु जं पदेसग्गमुदए दिज्जदि तं थोवं, से काले असंखेज्जगुणं। ताव असंखेज्जगुणं जाव ट्ठिदिखंडयस्स जहण्णियाए वि ट्ठिदीए चरिमसमयं अपत्तं ति[2]। सा चेव ट्ठिदी गुणसेडीसीसयं जादा[3]। जं संपहि गुणसेडीसीसयं तत्तो उवरिमाणंतराए ट्ठिदीए असंखेज्जगुणहीणं। तदो विसेसहीणं जाव हेट्ठा ण गुणसेडीसीसयं ताव। तदो उवरिमाणंतराए ट्ठिदीए असंखेज्जगुणहीणं, तदो विसेसहीणं। एवं सेसासु वि ट्ठिदीसु विसेसहीणं दिज्जदि। जं विदियसमए उक्कीरदि पदेसग्गं तं पि एदेणेव कमेण दिज्जदि। एवं ताव जाव ट्ठिदिखंडयस्स उक्कीरणद्धाए दुचरिमसमओ त्ति। ट्ठिदिखंडयस्स चरिमसमए ओकड्डमाणो उदए पदेसग्गं थोवं, से काले असंखेज्जगुणं। एवं जाव गुणसेडीसीसयं ताव असंखेज्जगुणं। गुणगारा वि दुचरिमाए ट्ठिदीए पदेसग्गादो चरिमाए ट्ठिदीए पदेसग्गस्स असंखेज्जाणि पलिदोवमवग्गमूलाणि। चरिमे ट्ठिदिखंडए णिट्ठिदे कदकरणिज्जो

प्रदेशाग्र उदयमें दिया जाता है वह अल्प है, अनन्तर समयमें असंख्यातगुणित प्रदेशाग्रको देता है। इस क्रमसे तब तक असंख्यातगुणित प्रदेशाग्रको देता है जब तक कि स्थितिकांडककी जघन्य भी स्थितिका अन्तिम समय नहीं प्राप्त होता है। वह स्थिति ही गुणश्रेणीशीर्ष कहलाती है। जो इस समय गुणश्रेणीशीर्ष है, उससे ऊपरकी अनन्तर स्थितिमें असंख्यातगुणित हीन प्रदेशाग्रको देता है। इसके पश्चात् विशेष हीन प्रदेशाग्रको देता है जब तक नीचे गुणश्रेणीशीर्ष नहीं प्राप्त होता है। उससे ऊपरकी अनन्तर स्थितिमें असंख्यातगुणित हीन प्रदेशाग्रको देता है और उससे ऊपर विशेष हीन प्रदेशाग्रको देता है। इसी प्रकार शेष भी स्थितियोंमें विशेष हीन प्रदेशाग्रको देता है। द्वितीय समयमें जिस प्रदेशाग्रको उत्कीर्ण करता है, उसे भी इस ही क्रमसे देता है। इस प्रकार यह क्रम तब तक जारी रहता है जब तक कि स्थितिकांडकके उत्कीर्ण कालका द्विचरम समय प्राप्त होता है। स्थितिकांडकके अन्तिम समयमें अपकर्षण किये गये द्रव्यमेंसे उदयमें अल्प प्रदेशाग्रको देता है और अनन्तर कालमें असंख्यातगुणित प्रदेशाग्रको देता है। इस प्रकार जब तक गुणश्रेणीशीर्ष प्राप्त होता है, तब तक असंख्यातगुणित प्रदेशाग्रको देता है। द्विचरम स्थितिके प्रदेशाग्रसे चरम स्थितिके प्रदेशाग्रके गुणकार भी पल्योपमके असंख्यात वर्गमूल हैं। अन्तिम स्थितिकांडकके समाप्त होनेपर 'कृत-

---

१ अ-कप्रत्योः 'ओवड्डिज्जमाणासु' इति पाठः।

२ अ-आप्रत्योः 'अपत्ताति' इति पाठः।

३ तच्चक्काले दिस्सं वज्जिय गुणसेदिसीसयं एक्कं। उवरिमठिदीसु वट्टदि विसेसहीणक्कमेणेव ॥ गुणसेढिसंखभागा तत्तो संखगुण उवरिमठिदीओ। सम्मत्तचरिमखंडो दुचरिमखंडादु संखगुणो ॥ सम्मत्तचरिमखंडे दुचरिमफालि त्ति तिण्णि पव्वाओ। संपहियपुव्वगुणसेढीसीसे सीसे य चरिमम्हि ॥ लब्धि. १३८–१४०.

४ तत्थ असंखेज्जगुणं असंखगुणहीणयं विसेसूणं। संखातीदगुणूणं विसेसहीणं च दत्तिकमो ॥ उक्कट्टिदबहुभागे पढमे सेसेक्कभागबहुभागे। विदिए पव्वे वि सेसिगभागं तदिये जहा देदि ॥ उदयादिगलिदसेसा चरिमे

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

त्ति भण्णदि। कदकरणिज्जकालब्भंतरे तस्स मरणं पि होज्ज, काउ-तेउ-पम्म-सुक्क-लेस्साणमण्णदराए लेस्साए वि परिणामेज्ज, संकिलिस्सदु वा विसुज्झदु वा, तो वि असंखेज्जगुणाए सेडीए जाव समयाहियावलिया सेसा ताव असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा, उक्कस्सिया वि उदीरणा उदयस्स असंखेज्जदिभागो[1]।

पढमसमयअपुव्वकरणमादिं कादूण जाव पढमसमयकदकरणिज्जो त्ति एदम्हि अंतरे अणुभागखंडय-ट्ठिदिखंडयउक्कीरणद्धाणं जहण्णुक्कस्सट्ठिदिखंड-ट्ठिदिसंतकम्माणमण्णेसिं च पदाणमप्पाबहुगं वत्तइस्सामो[2]। तं जहा– सव्वत्थोवा जहण्णिया अणुभागखंडयउक्कीरणद्धा। सा चेव उक्कस्सिया विसेसाहिया। ट्ठिदिखंडयउक्कीरणद्धा ट्ठिदिबंधगद्धा च जहण्णिया दो वि तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ। ताओ उक्कस्सियाओ दो

...

कृत्यवेदक' कहलाता है। कृतकृत्यवेदककालके भीतर उसका मरण भी हो, कापोत, तेज, पद्म और शुक्ल, इन लेश्याओंमेंसे किसी एक लेश्याके द्वारा भी परिणमित हो, संक्लेशको प्राप्त हो, अथवा विशुद्धिको प्राप्त हो, तो भी असंख्यातगुणित श्रेणीके द्वारा जब तक एक समय अधिक आवलीकाल शेष रहता है तब तक असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा होती रहती है। उत्कृष्ट भी उदीरणा उदयके असंख्यातवें भाग होती है।

अब, प्रथमसमयवर्त्ती अपूर्वकरणको आदि करके जब तक प्रथमसमयवर्त्ती कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि है, तब तक इस अन्तरालमें अनुभागकांडक और स्थितिकांडकके उत्कीरणकालोंके, जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिकांडक तथा स्थितिसत्त्वोंके एवं अन्य भी पदोंके अल्पबहुत्वको कहते हैं। वह इस प्रकार है— जघन्य अनुभागकांडकका उत्कीरणकाल सबसे कम है। इससे वही उत्कृष्ट, अर्थात् उत्कृष्ट अनुभागकांडकका उत्कीरणकाल, विशेष अधिक है। इससे जघन्य स्थितिकांडकका उत्कीरणकाल और जघन्य स्थितिबन्धकाल, ये दोनों ही परस्पर तुल्य होते हुए संख्यातगुणित हैं। इनसे इन

...

खंडे हवेज्ज गुणसेढी। फाडेदि चरिमफालिं अणियट्टीकरणचरिमम्हि॥ चरिमं फालिं देदि हु पढमे पव्वे असंखगुणियक्कमा। अंतिमसमयम्हि पुणो पल्लासंखेज्जमूलाणि॥ लब्धि. १४१-१४४.

१ चरिमे फालिं दिण्णे कदकरणिज्जोत्ति वेदगो होदि। सो वा मरणं पावइ चउगइगमणं च तट्ठाणे॥ देवेसु देवमणुए सुरणरतिरिए चउग्गईसुं पि। कदकरणिज्जोप्पत्ती कमेण अंतोमुहुत्तेण॥ करणपढमादु जाव य किदकिच्चुवरिं मुहुत्तअंतो त्ति। ण सुहाण परावत्ती सा थि कओदावरं तु वरिं॥ अणुसमओवट्टणयं कदकिज्जंतो त्ति पुव्वकिरियादो। वट्टदि उदीरणं वा असंखसमयप्पबद्धाणं॥ उदयवहिं उक्कट्टिय असंखगुणमुदयआवलिम्हि खिवे। उवरिं विसेसहीणं कदकिज्जो जाव अइत्थवणं॥ जदि संकिलेसजुत्तो विसुद्धिसहिदो व तो वि पडिसमयं। दव्वमसंखेज्जगुणं उक्कट्टदि णत्थि गुणसेढी॥ जदि वि असंखेज्जाणं समयपबद्धाणुदीरणा तो वि' उदयगुणसेढिठिदिए असंखभागो हु पडिसमयं॥ लब्धि. १४५-१५१.

२ विदियकरणादिमादो कदकरणिज्जस्स पढमसमओ त्ति। वोच्छं रसखंडुक्कीरणकालादीणमप्पबहु॥ लब्धि. १५२.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ[1] । कदकरणिज्जस्स अद्धा संखेज्जगुणा । सम्मत्तक्खवणद्धा संखेज्जगुणा । अणियट्टीअद्धा संखेज्जगुणा । अपुव्वकरणद्धा संखेज्जगुणा । गुणसेडी-णिक्खेवो विसेसाहिओ[2] । सम्मत्तस्स दुचरिमट्ठिदिखंडओ संखेज्जगुणो । तस्सेव चरिम-ट्ठिदिखंडओ संखेज्जगुणो । अट्ठवस्सट्ठिदिसंतकम्मे सेसे जो[3] पढमो ट्ठिदिखंडगो सो[4] संखेज्जगुणो । जहण्णिया आबाधा संखेज्जगुणा । उक्कस्सिया आबाधा संखेज्जगुणा । अणुभागमणुसमयं ओहट्टमाणस्स पढमसमए अट्ठवासट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं[5] । सम्मत्तस्स चरिमट्ठिदिखंडओ असंखेज्जवस्सिओ असंखेज्जगुणो । सम्मामिच्छत्तस्स चरिमट्ठिदिखंडओ विसेसाहिओ । अट्ठवस्समेत्तेण मिच्छत्ते खविदे सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पढमट्ठिदिखंडओ असंखेज्जगुणो । मिच्छत्तसंतकम्मियस्स सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं

दोनोंके उत्कृष्ट काल दोनों ही परस्पर तुल्य होते हुए विशेष अधिक हैं। इससे कृतकृत्य-वेदकका काल संख्यातगुणित है। इससे सम्यक्त्वप्रकृतिके क्षपणका काल संख्यात-गुणित है। इससे अनिवृत्तिकरणका काल संख्यातगुणित है। इससे अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणित है। इससे गुणश्रेणीनिक्षेप विशेष अधिक है। इससे सम्यक्त्वप्रकृतिका द्विचरम स्थितिकांडक संख्यातगुणित है। इससे उसका ही अन्तिम स्थितिकांडक संख्यातगुणित है। इससे सम्यक्त्वप्रकृतिके आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्त्वके शेष रहनेपर जो प्रथम स्थितिकांडक है वह संख्यातगुणित है। इससे जघन्य आबाधा संख्यात-गुणित है। इससे उत्कृष्ट आबाधा संख्यातगुणित है। इससे अनुभागको प्रति समय अपवर्तन करनेवाले जीवके प्रथम समयमें आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित है। इससे सम्यक्त्वप्रकृतिका असंख्यातवर्षवाला अन्तिम स्थितिकांडक असंख्यात-गुणित है। इससे सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिका अन्तिम स्थितिकांडक विशेष अधिक है। इससे आठ वर्षमात्रसे मिथ्यात्वके क्षपण करनेपर सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व-प्रकृति, इन दोनोंका प्रथम स्थितिकांडक असंख्यातगुणित है। इससे मिथ्यात्वप्रकृतिकी सत्तावाले जीवके सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति, इन दोनोंका अन्तिम

---

१ रसठिदिखंडुक्कीरणअद्धा अवरं वरं च अवरवरं। सव्वत्थोवं अहियं संखेज्जगुणं विसेसहियं ॥ लब्धि. १५३.

२ कदकरणसम्मखवणणियट्टिअपुव्वद्धसंखगुणिदकमं। तत्तो गुणसेढिस्स य णिक्खेओ साहियो होदि ॥ लब्धि. १५४.

३ प्रतिषु ' दो ' इति पाठः।

४ क-प्रतौ ' सो चेव ' इति पाठः।

५ सम्मदुचरिमे चरिमे अडवस्सस्सादिमे च ठिदिखंडा। अवरवराबाहाति य अडवस्सं संखगुणियकमा ॥ लब्धि. १५५.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

चरिमट्ठिदिखंडओ असंखेज्जगुणो[1]। मिच्छत्तस्स चरिमट्ठिदिखंडओ विसेसाहिओ[2]। हेट्ठिमपलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तट्ठिदिसंतकम्मेण असंखेज्जगुणहाणिखंडयाणं पढमट्ठिदिखंडओ मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमसंखेज्जगुणो । संखेज्जगुणहाणिखंडयाणं चरिमट्ठिदिखंडओ संखेज्जगुणो[3]। पलिदोवमसंतकम्मादो विदिओ ठिदिखंडओ संखेज्जगुणो । जम्हि ट्ठिदिखंडए अवगए दंसणमोहणीयस्स पलिदोवममेत्तट्ठिदिसंतकम्मं होदि सो ट्ठिदिखंडओ संखेज्जगुणो। अपुव्वकरणे पढमो जहण्णओ ट्ठिदिखंडगो संखेज्जगुणो[4]। पलिदोवममेत्ते ट्ठिदिसंतकम्मे जादे तदो पढमो ट्ठिदिखंडओ संखेज्जगुणो। पलिदोवमट्ठिदिसंतकम्मं विसेसाहियं[5]। अपुव्वकरणे पढमस्स उक्कस्सट्ठिदिखंडयस्स विसेसो संखेज्जगुणो। दंसणमोहणीयस्स अणियट्टीपढमसमए पविट्ठस्स ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्ज-

स्थितिकांडक असंख्यातगुणित है। इससे मिथ्यात्वप्रकृतिका अन्तिम स्थितिकांडक विशेष अधिक है। इससे अधस्तन पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र स्थितिसत्त्वसे असंख्यात गुणहानिकांडकवाले मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन कर्मोंका प्रथम स्थितिकांडक असंख्यातगुणा है। इससे संख्यात गुणहानि कांडकवाले इन्हीं तीनों कर्मोंका अन्तिम स्थितिकांडक संख्यातगुणित है। इससे पल्योपमप्रमाण स्थितिसत्त्वकी अपेक्षा इन्हीं तीनों कर्मोंका दूसरा स्थितिकांडक संख्यातगुणित है। इससे जिस स्थितिकांडकके नष्ट होनेपर दर्शनमोहनीयकर्मका पल्योपममात्र स्थितिसत्त्व होता है, वह स्थितिकांडक संख्यातगुणित है। इससे अपूर्वकरणमें होनेवाला प्रथम जघन्य स्थितिकांडक संख्यातगुणित है। इससे पल्योपममात्र स्थितिसत्त्वके होनेपर तत्पश्चात् होनेवाला प्रथम स्थितिकांडक संख्यातगुणित है। इससे पल्योपममात्र स्थितिसत्त्व विशेष अधिक है। इससे अपूर्वकरणमें होनेवाले प्रथम उत्कृष्ट स्थितिकांडकका विशेष संख्यातगुणित है। इससे अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें प्रविष्ट हुए जीवके दर्शन-

१ मिच्छे खविदे सम्मदुगाणं ताणं च मिच्छसंतं हि। पढमंतिमठिदिखंडा असंखगुणिदा हु दुट्ठाणे ॥ लब्धि. १५६.

२ मिच्छंतिमठिदिखंडो पल्लासंखेज्जभागमेत्तेण । हेट्ठिमठिदिप्पमाणेणब्भहियो होदि णियमेण ॥ लब्धि. १५७.

३ दूरावकिट्टिपढमं ठिदिखंडं संखसंगुणं तिण्णं । दूरावकिट्टिहेदू ठिदिखंडं संखसंगुणियं ॥ लब्धि. १५८.

४ पलिदोवमसंतादो विदियो पल्लस्स हेदुगो जो दु । अवरो अपुव्वपढमे ठिदिखंडो संखगुणिदकमा ॥ लब्धि. १५९.

५ पलिदोवमसंतादो पढमो ठिदिखंडओ दु संखगुणो । पलिदोवमठिदिसंतं होदि विसेसाहियं तत्तो ॥ लब्धि. १६०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणं। दंसणमोहणीयवज्जाणं[1] कम्माणं जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। तेसिं चेव उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। दंसणमोहणीयवज्जाणं जहण्णट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं। तेसिं चेवुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं[2]।

सम्मत्तं पडिवज्जंतो तदो सत्त[3]कम्माणमंतोकोडाकोडिं ठवेदि णाणावरणीयं दंसणावरणीयं वेदणीयं मोहणीयं णामं गोदं अंतराइयं चेदि ॥ १३ ॥

सम्मत्तुप्पत्तीए परूविज्जमाणाए सत्तण्हं कम्माणं ट्ठिदिबंध-ट्ठिदिसंतकम्माणं पमाणं पुव्वं चेव परूविदं तदो तमेत्थ ण वत्तव्वं, पुणरुत्तदोसप्पसंगादो? ण एस दोसो, सम्मत्तं पडिवज्जंतस्स ट्ठिदिबंध-ट्ठिदिसंतकम्माणं पुव्वं परूविदपमाणं संभालिय चारित्तं पडिवज्जंतस्स ट्ठिदिबंध-ट्ठिदिसंतकम्माणं पमाणपरूवणट्ठमेदस्स परूवणादो। तदो इदि

मोहनीयकर्मका स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित है। इससे दर्शनमोहनीय कर्मको छोड़कर शेष कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणित है। इससे उन्हीं कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणित है। इससे दर्शनमोहनीयकर्मको छोड़कर शेष कर्मोंका जघन्य स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित है। इससे उन्हीं कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित है।

उस सर्वविशुद्ध मिथ्यादृष्टिके स्थितिसत्त्वकी अपेक्षा सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाला जीव ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, नाम, गोत्र और अन्तराय, इन सात कर्मोंकी अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिको स्थापित करता है ॥ १३ ॥

शंका—सम्यक्त्वोत्पत्तिकी प्ररूपणा करते समय सातों कर्मोंके स्थितिबन्धों और स्थितिसत्त्वोंका प्रमाण पहले ही प्ररूपण कर दिया गया है, इसलिए उसे यहांपर नहीं कहना चाहिए, क्योंकि पुनरुक्त दोषका प्रसंग आता है?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवके कर्मोंके स्थितिबन्ध और स्थितिसत्त्वका पूर्वप्ररूपित प्रमाण स्मरण कराकर चारित्रको प्राप्त करनेवाले जीवके स्थितिबन्ध और स्थितिसत्त्वका प्रमाण प्ररूपण करनेके लिए पुनः इसका प्ररूपण किया गया है।

---

१ प्रतिषु ' -मोहणीयं वज्जाणं ' इति पाठः।

२ विदियकरणस्स पढमे ठिदिखंडविसेसयं तु तदियस्स। करणस्स पढमसमये दंसणमोहस्स ठिदिसंतं ॥ दंसणमोहूणाणं बंधो संतो य अवर वरगो य। संखेये गुणियकमा तेत्तीसा एत्थ पदसंखा ॥ लब्धि. १६१-१६२.

३ प्रतिषु ' संत- ' इति पाठः।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

उत्ते सव्वविसुद्धमिच्छाइट्ठिणा ट्ठिदिबंधोसरण-ट्ठिदिखंडयघादेहि घादिय ट्ठविदट्ठिदिसंत-कम्माणं गहणं । तदो तत्तो एदेसिं सत्तण्हं कम्माणमंतोकोडाकोडिं संखेज्जगुणहीणं ट्ठवेदि उप्पादेदि त्ति उत्तं होदि । एत्थ संखेज्जगुणहीणत्तं सुत्ते असंतं[1] कुदो लब्भदे ? अज्झाहारादो । मिच्छाइट्ठिट्ठिदिबंधं ट्ठिदिसंतं च अपुव्व-अणियट्टीकरणेहि घादिय संखेज्जगुणहीणं कादूण पढमसम्मत्तं पडिवज्जदि त्ति एदेण जाणाविदं । एत्थतणट्ठिदि-बंधादो ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं, विसोहिणा संतादो ट्ठिदिबंधस्स भूओ घादोवदेसा ।

चारित्तं पडिवज्जंतो तदो सत्तकम्माणमंतोकोडाकोडिं ट्ठिदिं ट्ठवेदि णाणावरणीयं दंसणावरणीयं वेदणीयं णामं गोदं अंतराइयं चेदि ॥ १४ ॥

सूत्रमें 'तदो' यह पद कहनेपर सर्वविशुद्ध मिथ्यादृष्टि जीवके द्वारा स्थिति-बन्धापसरण और स्थितिकांडकघातसे घातकर स्थापित कर्मोंके स्थितिसत्त्वका ग्रहण करना चाहिए। उससे, अर्थात् सर्वविशुद्ध मिथ्यादृष्टि जीवके द्वारा स्थापित स्थिति-सत्त्वसे, संख्यातगुणित हीन अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण इन सूत्रोक्त सात कर्मोंका स्थिति-सत्त्व स्थापित करता है, अर्थात् उत्पन्न करता है, यह अर्थ कहा गया है ।

शंका—यहां सूत्रमें अविद्यमान संख्यात गुणहीनका भाव कहांसे लब्ध होता है ?

समाधान—सूत्रमें अविद्यमान उक्त अर्थ अध्याहारसे उपलब्ध होता है ।

मिथ्यादृष्टिके स्थितिबन्धको और स्थितिसत्त्वको अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण परिणामोंके द्वारा घात करके संख्यातगुणित हीन कर प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होता है, यह बात इस सूत्र-पदसे ज्ञापित की गई है। यहांपर होनेवाले स्थितिबन्धसे यहांपर होनेवाला स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित होता है, क्योंकि, विशुद्धिके द्वारा सत्त्वकी अपेक्षा स्थितिबन्धके बहुत घातका उपदेश पाया जाता है ।

उस प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टिके स्थिति-बन्ध और स्थितिसत्त्वकी अपेक्षा चारित्रको प्राप्त होनेवाला जीव ज्ञानावरणीय, दर्शना-वरणीय, वेदनीय, मोहनीय, नाम, गोत्र और अन्तराय, इन सात कर्मोंकी अन्तः-कोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिको स्थापित करता है ॥ १४ ॥

१ 'होदि । एत्थ......असंतं' इति पाठः प्रतिषु नास्ति । म-प्रतौ 'होदि । एत्थ संखेज्जगुणहीणं तं सुत्ते असंतं' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तं चारित्तं दुविहं देसचारित्तं सयलचारित्तं चेदि । तत्थ देसचारित्तं पडिवज्जमाणा मिच्छाइट्ठिणो दुविहा होंति वेदगसम्मत्तेण सहिदसंजमासंजमाभिमुहा उवसमसम्मत्तेण सहिदसंजमासंजमाभिमुहा चेदि । संजमं पडिवज्जंता वि एवं चेव दुविहा होंति[1] । एदेसु संजमासंजमं पडिवज्जमाणचरिमसमयमिच्छाइट्ठी तदो पढमसम्मत्ताभिमुहचरिमसमयमिच्छाइट्ठिबंधादो दिट्ठिसंतकम्मादो च सत्तण्हं कम्माणं अंतोकोडाकोडिं[3] ट्ठिदिं ठवेदि । एदस्स भावत्थो– पढमसम्मत्ताभिमुहचरिमसमयमिच्छाइट्ठिट्ठिदिबंधादो (ट्ठिदिसंतकम्मादो च) संजमासंजमाभिमुहचरिमसमयमिच्छाइट्ठिट्ठिदि -(बंध-ट्ठिदि-) संतकम्मं संखेज्जगुणहीणं[4] । कुदो ? पढमसम्मत्ततिकरणपरिणामेहिंतो अणंतगुणेहि पढमसम्मत्ताणुविद्धसंजमासंजमपाओग्गतिकरणपरिणामेहिं पत्तघादत्तादो । वेदगसम्मत्तं संजमासंजमं च

यह चारित्र दो प्रकारका है—देशचारित्र और सकलचारित्र। उनमें देशचारित्रको प्राप्त होनेवाले मिथ्यादृष्टि जीव दो प्रकारके होते हैं—वेदकसम्यक्त्वसे सहित संयमासंयमके अभिमुख और उपशमसम्यक्त्वसे सहित संयमासंयमके अभिमुख। इसी प्रकार संयमको प्राप्त होनेवाले मिथ्यादृष्टि जीव भी दो प्रकारके होते हैं। इनमें संयमासंयमको प्राप्त होनेवाला चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टि, उससे, अर्थात् प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टिके स्थितिबन्ध और स्थितिसत्त्वकी अपेक्षा आयुकर्मको छोड़कर शेष सातों कर्मोंकी अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिको स्थापित करता है। इस उपर्युक्त कथनका भावार्थ यह है--प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टिके स्थितिबन्धसे (और स्थितिसत्त्वसे) संयमासंयमके अभिमुख चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टिका (स्थितिबन्ध और) स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित हीन होता है, क्योंकि, प्रथमोपशमसम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले तीनों करण-परिणामोंकी अपेक्षा अनन्तगुणित ऐसे प्रथमोपशमसम्यक्त्वसे संयुक्त संयमासंयमके योग्य तीनों करण-परिणामोंसे यह स्थितिघात प्राप्त हुआ है। वेदकसम्यक्त्वको और संयमासंयमको

१ दुविहा चरित्तलद्धी देसे सयले य देसचारित्तं । मिच्छो अयदो सयलं ते वि य देसो य लब्भेइ ॥ लब्धि. १६६.

२ आ-कप्रत्योः ' –त्ताभिमुहा ' इति पाठः ।

३ अंतोमुहुत्तकाले देसवदी होहिदि त्ति मिच्छो हु । सोसरणो सुज्झंतो करणेहिं करेदि सगजोग्गं ॥ लब्धि. १६७.

४ संजमासंजममंतोमुहुत्तेण लभिहिदि त्ति तदो प्पहुडि सव्वो जीवो आउगवज्जाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधट्ठिदिसंतकम्मं च अंतोकोडाकोडीए करेदि ।......एदस्स सुत्तस्सत्थो वुच्चदे-- वेदगपाओग्गमिच्छाइट्ठी ताव संजमासंजमं पडिवज्जमाणो पुव्वमेव अंतोमुहुत्तमत्थि त्ति सत्थाणपाओग्गाए विसोहीए पडिसमयमणंतगुणाए विसुज्झमाणो आउगवज्जाणं सव्वेसिं कम्माणं ट्ठिदिबंध-ट्ठिदिसंतकम्मं च अंतोकोडाकोडीए करेदि । जयध. अ. प. ९८५.

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

जुगवं पडिवज्जंतस्स दो चेव करणाणि, तत्थ अणियट्टीकरणस्स अभावादो[1]। एदस्स अपुव्वकरणचरिमसमए वट्टमाणमिच्छाइट्ठिस्स ट्ठिदिसंतकम्मं पढमसम्मत्ताभिमुहअणियट्टीकरणचरिमसमयट्ठिदमिच्छाइट्ठिट्ठिदिसंतकम्मादो कधं संखेज्जगुणहीणं ? ण, ट्ठिदिसंतमोवट्टियं[3] काऊण संजमासंजमं पडिवज्जमाणस्स संजमासंजमचरिममिच्छाइट्ठिस्स तदविरोधादो। तत्थतणअणियट्टीकरणट्ठिदिघादादो त्ति एत्थतणअपुव्वकरणट्ठिदिघादस्स बहुवयरत्तादो वा। ण चेदमपुव्वकरणं पढमसमत्ताभिमुहमिच्छाइट्ठिअपुव्वकरणेण तुल्लं, सम्मत्त-संजम-संजमासंजमफलाणं[4] तुल्लत्तविरोहा। ण चापुव्वकरणाणि सव्वअणियट्टीकरणेहिंतो अणंतगुणहीणाणि त्ति वोत्तुं जुत्तं, तप्पदुप्पायणसुत्ताभावा। एदस्स पक्खस्स कुदो सिद्धी? 'तदो अंतोकोडाकोडिट्ठिदिं ट्ठवेदि' त्ति सुत्तादो। ण चेदं पढमसम्मत्तसहिद-

---

युगपत् प्राप्त होनेवाले जीवके दो ही करण होते हैं, क्योंकि, वहांपर अनिवृत्तिकरण नहीं होता है।

शंका—अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें वर्तमान इस उपर्युक्त मिथ्यादृष्टि जीवका स्थितिसत्त्व, प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयमें स्थित मिथ्यादृष्टिके स्थितिसत्त्वसे संख्यातगुणित हीन कैसे है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, स्थितिसत्त्वका अपवर्तन करके संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले संयमासंयमके अभिमुख चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टिके संख्यातगुणित हीन स्थितिसत्त्वके होनेमें कोई विरोध नहीं है। अथवा वहांके, अर्थात् प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख मिथ्यादृष्टिके, अनिवृत्तिकरणसे होनेवाले स्थितिघातकी अपेक्षा यहांके, अर्थात् संयमासंयमके अभिमुख मिथ्यादृष्टिके, अपूर्वकरणसे होनेवाला स्थितिघात बहुत अधिक होता है। तथा, यह अपूर्वकरण, प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख मिथ्यादृष्टिके अपूर्वकरणके साथ समान नहीं है, क्योंकि, सम्यक्त्व, संयम और संयमासंयमरूप फलवाले विभिन्न परिणामोंके समानता होनेका विरोध है। तथा, सर्व अपूर्वकरण परिणाम सभी अनिवृत्तिकरण परिणामोंसे अनन्तगुणित हीन होते हैं, ऐसा कहना भी युक्त नहीं है, क्योंकि, इस बातके प्रतिपादन करनेवाले सूत्रका अभाव है।

शंका—इस उपर्युक्त पक्षकी सिद्धि कैसे होती है?

समाधान—'इस प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टिके स्थितिबन्ध और स्थितिसत्त्वकी अपेक्षा चारित्रको प्राप्त होनेवाला जीव अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिको स्थापित करता है' इस सूत्रसे उपर्युक्त 'संख्यातगुणित हीन स्थितिको स्थापित करता है,' इस पक्षकी सिद्धि होती है।

---

१ मिच्छो देसचरित्तं वेदगसम्मेण गेण्हमाणो हु। दुकरणचरिमे गेण्हदि गुणसेढी णत्थि तक्करणे ॥ ल. १६९.

२ कप्रतौ 'पढमसमयसम्मत्ता' इति पाठः।

३ प्रतिषु 'ट्ठिदिसंतवट्टिय' इति पाठः।

४ अ-कप्रत्योः 'सम्मत्तसंजमासंजमासंजमफलाणं' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देससंजममहिकिच्च परूविदं, देससंजममेत्तस्स एत्थ अहियारादो। संजमासंजमं पडिवज्जमाणस्स चरिमसमयमिच्छाइट्ठिस्स ट्ठिदिबंधादो सगट्ठिदिसंतकम्मं पेक्खिदूण संखेज्जगुणहीणादो संजमाभिमुहमिच्छाइट्ठिचरिमसमयट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणहीणं। कुदो ? संजमासंजमफलअपुव्वकरणघादादो संजमफलअपुव्वकरणघादस्स अइबहुत्तादो। संजमासंजमं पडिवज्जमाणमिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणं ट्ठिदिसंतकम्मं अपुव्वकरणचरिमसमए समाणं हि होदि, समाणपरिणामेहि पत्तघादत्तादो। एवं संजमं पडिवज्जमाणमिच्छाइट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदाणं पि वत्तव्वं।

एदं देसामासियसुत्तं। कुदो ? एगदेसपदुप्पायणेण एत्थतणसयलत्थस्स सूचयत्तादो। तेणेत्थ ताव संजमासंजमं पडिवज्जमाणविहाणं उच्चदे। तं जहा— पढमसम्मत्तं संजमासंजमं च अक्कमेण पडिवज्जमाणो वि तिण्णि वि करणाणि कुणदि[2]। तेसिं करणाणं लक्खणाणि जधा सम्मत्तुप्पत्तीए परूविदाणि तधा परूवेदव्वाणि। असंजदसम्मादिट्ठी अट्ठावीससंतकम्मियवेदगसम्मत्तपाओग्गमिच्छादिट्ठी

तथा यह बात प्रथमोपशमसम्यक्त्वसे सहित देशसंयमको अधिकृत करके नहीं कहीं गई है, क्योंकि, यहांपर देशसंयममात्रका अधिकार है। संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टिके अपने स्थितिसत्त्वकी अपेक्षा संख्यातगुणित हीन स्थितिबन्धसे संयमके अभिमुख मिथ्यादृष्टिका अन्तिम समयसम्बन्धी स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित हीन होता है, क्योंकि, संयमासंयमरूप फलवाले अपूर्वकरणके घातसे संयमरूप फलवाला अपूर्वकरणका घात बहुत अधिक होता है। संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्थितिसत्त्व अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें समान ही होता है, क्योंकि, उक्त दोनों जीवोंके स्थितिसत्त्वका घात समान परिणामोंके द्वारा प्राप्त हुआ है। इसी प्रकार संयमको प्राप्त होनेवाले मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयतोंके स्थितिसत्त्वकी समानता भी कहना चाहिए।

यह देशामर्शक सूत्र है, क्योंकि, एक देशके प्रतिपादन द्वारा यहांपर संभव सकल अर्थोंका सूचक है। इसलिए यहांपर पहले संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले जीवका विधान कहते हैं। वह इस प्रकार है—प्रथमोपशमसम्यक्त्वको और संयमासंयमको एक साथ प्राप्त होनेवाला जीव भी तीनों ही करणोंको करता है। उन करणोंके लक्षण जिस प्रकार सम्यक्त्वकी उत्पत्तिमें प्ररूपित किये हैं, उसी प्रकार यहांपर भी प्ररूपित करना चाहिए। असंयतसम्यग्दृष्टि अथवा मोहनीयकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला

---

१ प्रतिषु ' अतोकोडिं ठवेदि ' इति पाठः।

२ मिच्छो देसचरित्तं उवसमसम्मेण गिण्हमाणो हु। सम्मत्तुप्पत्तिं वा तिकरणचरिमम्हि गेण्हदि हु ॥ लब्धि. १६८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा जदि संजमासंजमं पडिवज्जदि तो दो चेव करणाणि, अणियट्टीकरणस्स अभावादो। संजमासंजममंतोमुहुत्तेण लभिहिदि त्ति तदो पहुडि सव्वो जीवो आयुगवज्जाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधं ट्ठिदिसंतकम्मं च अंतोकोडाकोडीए करेदि। सुभाणं कम्माणमणुभागबंधमणुभागसंतकम्मं च चउट्ठाणियं करेदि। असुहकम्माणमणुभागबंध-मणुभागसंतकम्मं च वेट्ठाणियं करेदि। तदो अधापवत्तकरणणामाए अणंतगुणाए विसो-हीए विसुज्झदि। एत्थ णत्थि ट्ठिदिखंडओ वा अणुभागखंडओ वा गुणसेडी वा। केवलं ट्ठिदिबंधे पुण्णे पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागहीणेण ट्ठिदिबंधेण ट्ठिदीओ बंधदि। जे सुहकम्मंसा ते अणुभागेहि अणंतगुणेहि बंधदि। जे असुहकम्मंसा ते अणंतगुणहीणेहि अणुभागेहि बंधदि[1]।

विसोहीए तिव्व-मंदत्तं वत्तइस्सामो— अधापवत्तकरणस्स जदो पहुडि विसुद्धो तस्स पढमसमए जहण्णिया विसोही थोवा। विदियसमए जहण्णिया विसोही अणंतगुणा। तदियसमए जहण्णिया विसोही अणंतगुणा। एवमंतोमुहुत्तं जहण्णिया चेव विसोही अणंतगुणेण गच्छदि। तदो पढमसमए उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा। सेसअधापवत्त-

---

वेदकसम्यक्त्व प्राप्त करनेके योग्य मिथ्यादृष्टि जीव यदि संयमासंयमको प्राप्त होता है, तो उसके दो ही करण होते हैं. क्योंकि, उसके अनिवृत्तिकरण नहीं होता है। संयमा-संयमको अन्तर्मुहूर्तकालसे प्राप्त करेगा, इस कारण वहांसे लेकर सर्व जीव आयुकर्मको छोड़कर शेष सातों कर्मोंके स्थितिबन्धको और स्थितिसत्त्वको अन्तःकोड़ाकोड़ीके प्रमाण करते हैं। शुभ कर्मोंके अनुभागबन्धको और अनुभागसत्त्वको चतुःस्थानीय करते हैं। तथा अशुभ कर्मोंके अनुभागबन्धको और अनुभागसत्त्वको द्विस्थानीय करते हैं। तत्पश्चात् अधःप्रवृत्तनामा अनन्तगुणी विशुद्धिके द्वारा विशुद्ध होता है। यहांपर न स्थितिकांडक-घात होता है, न अनुभागकांडकघात होता है और न गुणश्रेणी होती है। केवल स्थिति-बन्धके पूर्ण होनेपर पल्योपमके संख्यातवें भागसे हीन स्थितिबन्धके द्वारा स्थितियोंको बांधता है। जो शुभ कर्म-प्रकृतियां हैं, उन्हें अनन्तगुणित अनुभागोंके साथ बांधता है। जो अशुभ कर्म-प्रकृतियां हैं, उन्हें अनन्तगुणित हीन अनुभागोंके साथ बांधता है।

अब इसी जीवके विशुद्धिकी तीव्र-मन्दता कहते हैं— अधःप्रवृत्तकरणके जिस समयसे विशुद्ध हुआ है, उसके प्रथम समयमें जघन्य विशुद्धि सबसे कम है। इससे द्वितीय समयमें जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणित है। इससे तृतीय समयमें जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणित है। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त तक जघन्य विशुद्धि ही अनन्तगुणितक्रमसे जाती है। तत्पश्चात् प्रथम समयमें उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणित होती है। शेष अधः-

---

१ ठिदिरसघादो णत्थि हु अधापवत्ताभिधाणदेसस्स। पडिउट्ठदे मुहुत्तं संतेण हि तस्स करणदुगा॥ देसे समए समए सुज्झंतो संकिलिस्समाणो य। चउवड्ढिहाणिदव्वादवट्ठिदं कुणदि गुणसेडिं॥ लब्धि. १७३-१७४.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

विसोहीणं जधा दंसणमोहुवसामगअधापवत्तकरणे विसोहीणमप्पाबहुगं कयं, तहा चेव एत्थ वि कायव्वं। अपुव्वकरणविसोहीणं पि तधा चेव कायव्वं। अपुव्वकरणस्स पढमसमए जहण्णओ ट्ठिदिखंडओ पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो, उक्कस्सगो ट्ठिदिखंडओ सागरोवमपुधत्तं। अणुभागखंडगो असुहाणं कम्माणमणुभागस्स अणंता भागा। सुभाणं कम्माणमणुभागघादो णत्थि। एत्थ पदेसग्गस्स गुणसेढीणिज्जरा वि णत्थि। कुदो ? जच्चंतरीभूदअपुव्वपरिणामादो। ट्ठिदिबंधो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण हीणो। अणुभागखंडयसहस्सेसु गदेसु ट्ठिदिखंडयउक्कीरणकालो ट्ठिदिबंधकालो च अण्णो अणुभागखंडयउक्कीरणकालो च समगं समप्पंति। तदो अण्णं ट्ठिदिखंडयं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागियं अण्णं ट्ठिदिबंधं अण्णमणुभागखंडयं च पट्ठवेदि। एवं ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु अपुव्वकरणद्धा समत्ता होदि।

तदो से काले पढमसमयसंजदासंजदो। ताव अपुव्वं ट्ठिदिखंडयं अपुव्वमणुभागखंडयं अपुव्वं ट्ठिदिबंधं च पट्ठवेदि। असंखेज्जसमयपबद्धे ओकड्डिदूण गुणसेढिमुदयावलियबाहिरे रचेदि। से काले सो चेव (ठिदिखंडओ, सो चेव) अणुभाग-

---

प्रवृत्तकरणसम्बन्धी विशुद्धियोंका अल्पबहुत्व जिस प्रकारसे दर्शनमोहके उपशम करनेवाले जीवके अधःप्रवृत्तकरणमें किया है, उसी प्रकार यहांपर भी करना चाहिए। उसी प्रकार अपूर्वकरणसम्बन्धी विशुद्धियोंका भी अल्पबहुत्व करना चाहिए। अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जघन्य स्थितिकांडक पल्योपमका असंख्यातवां भाग है और उत्कृष्ट स्थितिकांडक सागरोपमपृथक्त्व है। अनुभागकांडक अशुभ कर्मोंके अनुभागका अनन्त बहुभाग है। शुभ कर्मोंका अनुभागघात नहीं होता है। यहांपर प्रदेशाग्रकी गुणश्रेणीनिर्जरा भी नहीं होती है, क्योंकि, यहांपर जात्यन्तरीभूत, अर्थात् भिन्न जातीय, अपूर्वकरण परिणाम होते हैं। यहांपर स्थितिबन्ध पल्योपमके संख्यातवें भागसे हीन होता है। सहस्रों अनुभागकांडकोंके व्यतीत होनेपर स्थितिकांडकका उत्कीरणकाल और स्थितिबन्धका काल, तथा अन्य अनुभागकांडकका उत्कीरणकाल, ये तीनों एक साथ समाप्त होते हैं। तत्पश्चात् पल्योपमके संख्यातवें भागवाला अन्य स्थितिकांडक, अन्य स्थितिबन्ध और अन्य अनुभागकांडकको आरम्भ करता है। इस प्रकार सहस्रों स्थितिकांडकोंके व्यतीत होनेपर अपूर्वकरणका काल समाप्त होता है।

तत्पश्चात् अनन्तर कालमें वह प्रथमसमयवर्ती संयतासंयत हो जाता है। उस समय वह अपूर्व स्थितिकांडक, अपूर्व अनुभागकांडक और अपूर्व स्थितिबन्धको आरम्भ करता है। असंख्यात समयप्रबद्धोंका अपकर्षण कर उदयावलीके बाहिर गुणश्रेणीको रचता है। उसके अनन्तरकालमें वही पूर्वोक्त (स्थितिकांडक होता है, वही) अनुभाग-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खंडओ, सो चेव ट्ठिदिबंधो। गुणसेडी असंखेज्जगुणा। गुणसेडीणिक्खेवो तत्तिओ चेव, संजदासंजदम्मि अवट्ठिदगुणसेडीणिक्खेवं मुच्चा अण्णस्सासंभवादो। एवं जाव एगंताणुवड्ढिकालचरिमसमओ त्ति अणंतगुणाए विसोहीए विसुज्झंतो समए समए असंखेज्जगुणमसंखेज्जगुणं दव्वमोकड्डिदूण अवट्ठिदगुणसेडिं करेदि। एवं ट्ठिदिखंडएसु बहुएसु गदेसु तदो अधापवत्तसंजदासंजदो होदि[1]। अधापवत्तसंजदासंजदस्स अणुभागघादो ट्ठिदिघादो वा णत्थि। जदि संजमासंजमादो परिणामपच्चएण णिग्गदो संतो पुणरवि अंतोमुहुत्तेण परिणामपच्चएण आणीदो संजमासंजमं पडिवज्जदि, दोण्हं करणाणमभावादो तत्थ णत्थि ट्ठिदिघादो अणुभागघादो वा। कुदो? पुव्वं दोहि करणेहि घादिदट्ठिदि-अणुभागाणं वड्ढीहि विणा संजमासंजमस्स पुणरागदत्तादो। जाव संजदासंजदो ताव समए समए गुणसेडिं करेदि। विसुज्झंतो असंखेज्जगुणं (संखेज्जगुणं वा) संखेज्जभागुत्तरं असंखेज्जभागुत्तरं वा दव्वमोकड्डिय अवट्ठिदगुणसेडिं करेदि। संकिलेसंतो एवं चेव गुणहीणं विसेसहीणं वा गुणसेडिं करेदि।

कांडक होता है और वही स्थितिबन्ध होता है। केवल गुणश्रेणी असंख्यातगुणित होती है। गुणश्रेणीनिक्षेप भी उतना ही है, क्योंकि, संयतासंयतमें अवस्थित गुणश्रेणीनिक्षेपको छोड़कर अन्यका होना असंभव है। इस प्रकार एकान्तानुवृद्धिकालके अन्तिम समय तक अनन्तगुणित विशुद्धिके द्वारा विशुद्ध होता हुआ समय समयमें असंख्यातगुणित असंख्यातगुणित द्रव्यका अपकर्षण करके अवस्थित गुणश्रेणीको करता है।

विशेषार्थ—संयतासंयत होनेके प्रथम समयसे लेकर जो प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धि होती है उसे एकान्तवृद्धि कहते हैं। इस एकान्तवृद्धिका काल अन्तर्मुहूर्तमात्र है।

इस प्रकार बहुतसे स्थितिकांडकोंके व्यतीत होनेपर तब वह जीव अधःप्रवृत्तसंयतासंयत होता है। अधःप्रवृत्तसंयतासंयतके अनुभागघात अथवा स्थितिघात नहीं होता है। यदि परिणामोंके योगसे संयमासंयमसे निकला हुआ, अर्थात् गिरा हुआ, फिर भी अन्तर्मुहूर्तके द्वारा परिणामोंके योगसे लाया हुआ संयमासंयमको प्राप्त होता है, तो अधःकरण और अपूर्वकरण, इन दोनों करणोंका अभाव होनेसे वहांपर न स्थितिघात होता है और न अनुभागघात होता है, क्योंकि, पहले उक्त दोनों करणोंके द्वारा घात किये गये स्थिति और अनुभागोंकी वृद्धिके विना वह संयमासंयमको पुनः प्राप्त हुआ है। जब तक वह संयतासंयत है, तब तक समय समयमें गुणश्रेणीको करता है। विशुद्धिको प्राप्त होता हुआ वह असंख्यातगुणित, (संख्यातगुणित), संख्यात भाग अथवा असंख्यात भाग अधिक द्रव्यको अपकर्षित कर अवस्थित गुणश्रेणीको करता है। संक्लेशको प्राप्त होता हुआ वह इस ही प्रकार असंख्यातगुण हीन, संख्यातगुण हीन अथवा विशेष हीन गुणश्रेणीको करता है।

१ दव्वं असंखगुणियक्कमेण एयंतवड्ढिकालो त्ति। बहुठिदिखंडे तीदे अधापवत्तो हवे देसो॥ लब्धि. १७२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संपहि अपुव्वकरणादो जाव संजदासंजदो[1] एगंताणुवड्ढीए चरित्ताचरित्तलद्धीए वड्ढदि ताव एदम्हि काले ट्ठिदिबंध-ट्ठिदिसंतकम्म-ट्ठिदिखंडयाणं जहण्णुक्कस्सियाणमाबाहाणं जहण्णुक्कस्सियाणमुक्कीरणद्धाणं अण्णेसिं च पदाणं अप्पाबहुगं वत्तइस्सामो[2]। तं जधा– सव्वत्थोवा एगंताणुवड्ढीए चरिमाणुभागखंडयउक्कीरणद्धा। अपुव्वकरणपढमाणुभागखंडयउक्कीरणद्धा विसेसाहिया। एगंताणुवड्ढीए चरिमट्ठिदिखंडयउक्कीरणद्धा ट्ठिदिबंधगद्धा च दो वि तुल्लाओ[3] संखेज्जगुणाओ। अपुव्वकरणपढमट्ठिदिखंडयउक्कीरणद्धा ट्ठिदिबंधगद्धा च दो वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ। पढमसमयसंजदासंजदप्पहुडि[4] एगंतवड्ढावड्ढीए[5] चरित्ताचरित्तपज्जाएहि वड्ढदि ताव एसो वड्ढिकालो संखेज्जगुणो। अपुव्वकरणद्धा संखेज्जगुणा[6]। जहण्णिया संजमासंजमद्धा सम्मत्तद्धा मिच्छत्तद्धा

अब अपूर्वकरणसे लेकर जब तक संयतासंयत एकान्तानुवृद्धिके द्वारा संयमासंयमलब्धिसे बढ़ता है तब तक इस मध्यवर्ती कालमें स्थितिबन्ध, स्थितिसत्त्व, स्थितिकांडक, जघन्य और उत्कृष्ट आबाधाएं तथा जघन्य और उत्कृष्ट उत्कीरणकाल, इन पदोंका, तथा अन्य पदोंका अल्पबहुत्व कहेंगे। वह इस प्रकार है—एकान्तानुवृद्धिके अन्तमें संभव अन्तिम अनुभागकांडकका उत्कीरणकाल सबसे थोड़ा है। उससे अपूर्वकरणके प्रथम अनुभागकांडकका उत्कीरणकाल विशेष अधिक है। उससे एकान्तानुवृद्धिके अन्तमें संभव अन्तिम स्थितिकांडकका उत्कीरणकाल और स्थितिबन्धका काल, ये दोनों परस्पर तुल्य और संख्यातगुणित हैं। उससे अपूर्वकरणके प्रथम स्थितिकांडकका उत्कीरणकाल और स्थितिबन्धका काल, ये दोनों परस्पर तुल्य और विशेष अधिक हैं। उससे प्रथमसमयवर्ती संयतासंयतसे लेकर जब तक एकान्तवृद्धावृद्धिसे, अर्थात् उत्तरोत्तर प्रतिसमय अनन्तगुणित श्रेणीक्रमसे, संयमासंयमरूप पर्यायोंसे बढ़ता है तब तक यह एकान्तानुवृद्धिका काल संख्यातगुणा है। उससे अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणा है। उससे जघन्य संयमासंयमका काल, जघन्य सम्यक्त्वप्रकृतिके

१ प्रतिषु ' संजदो ' इति पाठः।

२ विदियकरणादु जाव य देसस्सेयंतवड्ढिचरिमे त्ति। अप्पाबहुगं वोच्छं रसखंडद्धाणपहुदीणं ॥ लब्धि. १७५.

३ अंतिमरसखंडुक्कीरणकालो दु पढमओ अहिओ। चरिमट्ठिदिखंडुक्कीरणकालो संखगुणिदो दु ॥ लब्धि. १७६.

४ अ आप्रत्योः ' पढमसमयं ' इति पाठः।

५ वड्ढावड्ढी एवं भणिदे तासु चेव संजमासंजमसंजमलद्धीसु अलद्धपुव्वासु पडिलद्धासु तल्लाभपढमसमयप्पहुडि अंतोमुहुत्तकालब्भंतरे पडिसमयमणंतगुणाए सेढीए परिणामवड्ढी गहेयव्वा, उवरि उवरि परिणामवड्ढीए वड्ढावड्ढीववएसावलंबणादो। जयध. अ. प. ९८४.

६ पढमट्ठिदिखंडुक्कीरणकालो साहियो हवे तत्तो। एयंतवड्ढिकालो अपुव्वकालो य संखगुणियकमा ॥ लब्धि. १७७.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

संजमद्धा असंजमद्धा सम्मामिच्छत्तद्धाओ एदाओ छप्पि अद्धाओ तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ। पढमसमय (-संजदा-) संजदेण कदगुणसेडीणिक्खेवो संखेज्जगुणो[1]। एगंतवड्ढावड्ढीए चरिमट्ठिदिबंधस्स आबाधा संखेज्जगुणा। अपुव्वकरणपढमट्ठिदिबंधस्स आबाधा संखेज्जगुणा। एगंतवड्ढावड्ढीए चरिमसमयट्ठिदिखंडओ असंखेज्जगुणो। कुदो? पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागत्तादो[2]। अपुव्वकरणस्स पढमो जहण्णओ ट्ठिदिखंडओ संखेज्जगुणो। पलिदोवमं संखेज्जगुणं। अपुव्वस्स पढमो उक्कस्सओ ट्ठिदिखंडओ संखेज्जगुणो। एगंतवड्ढावड्ढीए चरिमट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। अपुव्वकरणस्स पढमो ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। एगंताणुवड्ढावड्ढीए चरिमसमयट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं। पढमसमयअपुव्वकरणस्स ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं[3]।

एत्थ तिव्व-मंददाए सामित्तमप्पाबहुगं च वत्तइस्सामो। तत्थ सामित्तं—

....

उदयका काल, जघन्य मिथ्यात्वके उदयका काल, जघन्य संयमका काल, जघन्य असंयमका काल, और जघन्य सम्यग्मिथ्यात्वके उदयका काल, ये छहों काल परस्पर तुल्य और संख्यातगुणित हैं। उससे प्रथमसमयवर्ती संयतासंयतके द्वारा की गई गुणश्रेणीका निक्षेप संख्यातगुणित है। उससे एकान्तवृद्धावृद्धिके अन्तमें संभव चरम स्थितिबन्धकी आबाधा संख्यातगुणित है। उससे अपूर्वकरणके प्रथमसमयसम्बन्धी स्थितिबन्धकी अबाधा संख्यातगुणित है। उससे एकान्तवृद्धावृद्धिके अन्तिम समयका स्थितिकांडक असंख्यातगुणित है, क्योंकि, वह पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होता है। उससे अपूर्वकरणका प्रथम जघन्य स्थितिकांडक संख्यातगुणित है। उससे पल्योपम संख्यातगुणित है। उससे अपूर्वकरणका प्रथम उत्कृष्ट स्थितिकांडक संख्यातगुणित है। उससे एकान्तवृद्धावृद्धिके अन्तमें संभव अन्तिम स्थितिबन्ध संख्यातगुणित है। उससे अपूर्वकरणका प्रथम स्थितिबन्ध संख्यातगुणित है। उससे एकान्तानुवृद्धावृद्धिके अन्तिमसमयसम्बन्धी स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित है। उससे प्रथमसमयवर्ती अपूर्वकरणका स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित है।

यहांपर संयमासंयम लब्धिकी तीव्र-मन्दताका स्वामित्व और अल्पबहुत्व कहेंगे। उसमें पहले स्वामित्व कहते हैं—

....

१ अवरा मिच्छतियद्धा अविरद तह देससंजमद्धा य। छप्पि समा संखगुणा तत्तो देसस्स गुणसेढी ॥ लब्धि. १७८.

२ चरिमाबाहा तत्तो पढमाबाहा य संखगुणियकमा। तत्तो असंखगुणियो चरिमट्ठिदिखंडओ णियमा। पल्लस्स संखभागं चरिमट्ठिदिखंडयं हवे जम्हा। तम्हा असंखगुणियं चरिमं ठिदिखंडयं होइ ॥ लब्धि. १७९, १८०.

३ पढमे अवरो पल्लो पढमुक्कस्सं च चरिमठिदिबंधो। पढमो चरिमं पढमट्ठिदिसंतं संखगुणिदकमा ॥ लब्धि. १८१.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

उक्कस्सिया लद्धी कस्स ? संजदासंजदस्स सव्वविसुद्धस्स से काले संजमग्गाहयस्स । जहण्णिया लद्धी कस्स ? तप्पाओग्गसंकिलिट्ठस्स[1] से काले मिच्छत्तं गाहयस्स[2] । अप्पाबहुगं । तं जहा– जहण्णिया संजमासंजमलद्धी थोवा[3] । उक्कस्सिया संजमासंजमलद्धी अणंतगुणा[2] ।

एत्तो संजमासंजमलद्धीए ट्ठाणाणि वत्तइस्सामो । तं जहा– जहण्णए संजमासंजमलद्धिट्ठाणे अणंताणि फद्दयाणि । तदो विदियलद्धिट्ठाणं अणंतभागुत्तरं । एवं छट्ठाणपदिदाणं लद्धिट्ठाणाणं पमाणमसंखेज्जा लोगा[4] । आदीदो प्पहुडि तिरिक्ख-मणुस्स-संजदासंजदाणं पडिवादट्ठाणाणि असंखेज्जलोगमेत्ताणि हवंति । तदो अंतरं होदूण तिरिक्ख-मणुस्ससंजदासंजदाणं पडिवज्जट्ठाणाणि असंखेज्जलोगमेत्ताणि होंति । तदो अंतरं होदूण तिरिक्ख-मणुस्ससंजदासंजदाणं अपडिवाद-पडिवज्जमाणट्ठाणाणि असंखेज्ज-

---

शंका— उत्कृष्ट संयमासंयम लब्धि किसके होती है ?

समाधान—सर्वविशुद्ध और अनन्तर समयमें संयमको ग्रहण करनेवाले संयतासंयतके उत्कृष्ट संयमासंयम लब्धि होती है ।

शंका— जघन्य संयमासंयम लब्धि किसके होती है ?

समाधान—जघन्य लब्धिके योग्य संक्लेशको प्राप्त और अनन्तर समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले संयतासंयतके जघन्य संयमासंयम लब्धि होती है ।

अब अल्पबहुत्व कहते हैं । वह इस प्रकार है — जघन्य संयमासंयम लब्धि अल्प होती है । उससे उत्कृष्ट संयमासंयम लब्धि अनन्तगुणित है ।

अब इससे आगे संयमासंयम लब्धिके स्थानोंको कहेंगे । वह इस प्रकार है — जघन्य संयमासंयम लब्धिस्थानमें अनन्त स्पर्धक होते हैं । उससे द्वितीय संयमासंयम लब्धिस्थान अनन्त भाग अधिक होता है । इस प्रकार षट्स्थानपतित लब्धिस्थानोंका प्रमाण असंख्यात लोक है । आदिसे, अर्थात् जघन्य लब्धिस्थानसे, लेकर तिर्यंच और मनुष्य संयतासंयतोंके प्रतिपात स्थान असंख्यात लोकमात्र होते हैं । तत्पश्चात् अन्तर होकर तिर्यंच और मनुष्य संयतासंयतोंके प्रतिपद्यमान स्थान असंख्यात लोकमात्र होते हैं । तत्पश्चात् अन्तर होकर तिर्यंच और मनुष्य संयतासंयतोंके अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमान

---

१ क-प्रतौ ' तप्पाओग्गस्स संकिलिट्ठस्स ' इति पाठः ।

२ अवरवरदेसलद्धी से काले मिच्छसंजमुववण्णे । अवरा दु अणंतगुणा उक्कस्सा देसलद्धी दु ॥ लब्धि. १८२.

३ प्रतिषु ' दोवा ' इति पाठः ।

४ अवरे देसट्ठाणे होंति अणंताणि फड्डयाणि तदो । छट्ठाणगदा सव्वे लोयाणमसंखछट्ठाणा ॥ लब्धि. १८३.

Jain Education International		For Private & Personal Use Only		www.jainelibrary.org

लोगमेत्ताणि होंति[1]। एदेसिं संदिट्ठी एसा ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०
० ०
० ०
एदाणि तिरिक्ख-मणुस्ससंजदासंजदाणं पडिवादट्ठाणाणि। अंतरं। ० ० ० ० ० ० ० ० ०
० ०
० ०
० ० ० ० एदाणि संजमासंजमपडिवज्जमाणट्ठाणाणि। अंतरं। ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०
० ०
० ०
एदाणि संजदासंजदाण अपडिवज्जमाण-अपडिवादट्ठाणाणि। एत्थ असंखेज्जलोगमेत्तसंजमासंजमलद्धिट्ठाणेसु जहण्णए लद्धिट्ठाणे संजमासंजमं ण पडिवज्जदि, पडिवादट्ठाणस्स पडि-

स्थान असंख्यात लोकमात्र होते हैं।

विशेषार्थ—संयमासंयमसे गिरनेके अन्तिम समयमें होनेवाले स्थानोंको प्रतिपातस्थान कहते हैं। संयमासंयमको धारण करनेके प्रथम समयमें होनेवाले स्थानोंको प्रतिपद्यमानस्थान कहते हैं। इन दोनों स्थानोंको छोड़कर मध्यवर्ती समयमें संभव समस्त स्थानोंको अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमान या अनुभयस्थान कहते हैं।

इन तीनों प्रकारके लब्धिस्थानोंकी संदृष्टि यह है-- ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०
० ०
० ये तिर्यंच और मनुष्य संयतासंयतोंके प्रतिपातस्थान हैं। इसके पश्चात् अन्तर होता है। ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०
० ०
० ये संयमासंयमके प्रतिपद्यमान स्थान हैं। इसके पश्चात् पुनः अन्तर होता है। ०
० ०
० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ये संयतासंयतोंके अप्रतिपद्यमान-अप्रतिपातस्थान हैं। इन असंख्यात लोकमात्र संयमासंयम लब्धिके स्थानोंमें जो जघन्य लब्धिस्थान है, वहांपर कोई भी तिर्यंच या मनुष्य संयमासंयमको नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि, प्रतिपातस्थानके प्रतिपद्यमानस्थानत्वका विरोध है, अर्थात् जो प्रतिपातस्थान है, वह प्रतिपद्यमानस्थान

१ तत्थ य पडिवायगया पडिवज्जगया त्ति अणुभयगया त्ति। उवरुवरि लद्धिठाणा लोयाणमसंखछट्ठाणा॥ लब्धि. १८४.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

वज्जमाणट्ठाणत्तविरोहादो । ण विदिएण वि पडिवज्जदि । एवं णिरंतरमसंखेज्जलोगमेत्ताणि तिरिक्ख-मणुससंजदासंजदाणं पडिवादट्ठाणाणि होंति । तदो अंतरमइच्छिदूण जहण्णं पडिवज्जमाणगस्स संजमासंजमलद्धिट्ठाणं होदि । तदो णिरंतरमसंखेज्जलोगमेत्ताणि पडिवज्जमाणट्ठाणाणि हवंति । पुणो अंतरमुल्लंघिय अपडिवाद-अपडिवज्जमाणसंजमासंजमलद्धिट्ठाणाणं जहण्णं लद्धिट्ठाणं होदि । तदो णिरंतरमसंखेज्जलोगमेत्ताणि अपडिवाद-अपडिवज्जमाणदेससंजमलद्धिट्ठाणाणि होंति[१] ।

एदेसिं तिव्व-मंददाए अप्पाबहुगं वत्तइस्सामो । तं जधा– सव्वमंदाणुभागं जहण्णयं संजमासंजमलद्धिट्ठाणं । मणुसस्स संजदासंजदस्स सव्वसंकिलिट्ठस्स मिच्छत्तं गच्छमाणस्स चरिमसमए जहण्णं देससंजमलद्धिट्ठाणं तत्तियं चेव, दोण्हमेगत्तादो । तिरिक्खजोणियस्स देससंजमादो पडिवदिय मिच्छत्तं गच्छमाणस्स सव्वसंकिलिट्ठस्स चरिमसमए जहण्णमपच्चक्खाणलद्धिट्ठाणमणंतगुणं । कुदो ? मणुस्सजहण्णापच्चक्खाणपडिवादिट्ठाणादो छवड्ढीए असंखेज्जलोगमेत्तमणुस्सापच्चक्खाणपडिवादट्ठाणाणि गंतूण

नहीं हो सकता । द्वितीय लब्धिस्थानसे भी संयमासंयमको नहीं प्राप्त होता है । इस प्रकार निरन्तर, अर्थात् तृतीय, चतुर्थ आदिको आदि लेकर अन्तर-रहित असंख्यात लोकमात्र प्रतिपातस्थान तिर्यंच और मनुष्य संयतासंयतोंके होते हैं । तत्पश्चात् अन्तरका उल्लंघन कर संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले जीवके जघन्य संयमासंयम लब्धिका स्थान होता है । इससे आगे निरन्तर असंख्यात लोकमात्र प्रतिपद्यमानस्थान होते हैं । पुनः अन्तरका उल्लंघन करके अप्रातिपात-अप्रतिपद्यमान संयमासंयम लब्धिस्थानोंका सबसे जघन्य लब्धिस्थान होता है । इससे आगे निरन्तर असंख्यात लोकमात्र अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमान संयमासंयम लब्धिके स्थान होते हैं ।

अब इन लब्धिस्थानोंकी तीव्र-मन्दताका अल्पबहुत्व कहेंगे । वह इस प्रकार है— जघन्य संयमासंयम लब्धिस्थान सबसे मन्द अनुभागवाला है । सर्वसंक्लिष्ट और मिथ्यात्वको जानेवाले संयतासंयत मनुष्यके अन्तिम समयमें संभव जघन्य देशसंयम लब्धिका स्थान उतना ही है, क्योंकि, दोनोंके एकता है । देशसंयमसे गिरकर मिथ्यात्वको जानेवाले और सर्वसंक्लिष्ट ऐसे तिर्यंचयोनिवाले जीवके अन्तिम समयमें जघन्य अप्रत्याख्यान (संयमासंयम) लब्धिस्थान उपर्युक्त मनुष्य संयतासंयतसम्बन्धी जघन्य लब्धिस्थानसे अनन्तगुणित है, क्योंकि, मनुष्यके जघन्य अप्रत्याख्यान प्रतिपातिस्थानसे आगे षड्-वृद्धिके द्वारा असंख्यात लोकमात्र मनुष्यसम्बन्धी अप्रत्याख्यानप्रतिपातस्थान जाकर इस तिर्यंच योनिवाले जघन्य संयमासंयम लब्धिस्थानकी उत्पत्ति होती है ।

---

१ णरतिरिये तिरियणरे अवरं अवरं वरं वरं तिसु वि । लोयाणमसंखेज्जा छट्ठाणा होंति तम्मज्झे ॥ पडिवाददुगवरवरं मिच्छे अयदे अणुभयगजहण्णं । मिच्छयरविदियसमये तत्तिरियवरं तु सट्ठाणे ॥ लब्धि. १८५–१८६.

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

एदस्सुप्पत्तीदो । तिरिक्खजोणियस्स अपच्चक्खाणादो पडिवदिय तप्पाओग्गसंकिलेसेण असंजमं गच्छमाणस्स चरिमसमए उक्कस्समपच्चक्खाणपडिवादट्ठाणमणंतगुणं, तिरिक्खजहण्णपडिवादट्ठाणादो छवड्डीए असंखेज्जलोगमेत्तट्ठाणाणि गंतूण एदस्सुप्पत्तीदो। मणुस्सस्स संजमासंजमादो पडिवदिय असंजमं गच्छमाणस्स उक्कस्सयं पडिवादलद्धिट्ठाणमणंतगुणं, तिरिक्खउक्कस्सपडिवादलद्धिट्ठाणादो छवड्डीए असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि गंतूण उप्पत्तीदो। मणुस्सस्स संजमासंजमं पडिवज्जमाणस्स सव्वविसुद्धस्स मिच्छाइट्ठिस्स संजमासंजम[1]पढमसमए वट्टमाणस्स जहण्णमपच्चक्खाणपडिवज्जमाणट्ठाणमणंतगुणं। कुदो? असंखेज्जलोगमेत्ता छट्ठाणाणि अंतरिय उप्पत्तीदो। तिरिक्खजोणियस्स मिच्छत्तपच्छायदस्स सव्वविसुद्धस्स संजदासंजदपढमसमए वट्टमाणस्स जहण्णं देसविरदिलद्धिट्ठाणमणंतगुणं। कुदो? मणुस्सजहण्णअपच्चक्खाणपडिवज्जमाणट्ठाणादो असंखेज्जलोगमेत्तपडिवज्जमाणलद्धिट्ठाणाणि गंतूण उप्पत्तीए। तिरिक्खजोणियस्स असंजमाणुविद्धवेदगसम्मत्तपच्छायदस्स पढमसमयसंजदासंजदस्स उक्कस्सलद्धिट्ठाणमणंतगुणं। कारणं पुव्वं व परूवेदव्वं। मणुसस्स सव्वविसुद्धस्स असंजमाणु-

अप्रत्याख्यानसे गिरकर तत्प्रायोग्य संक्लेशके द्वारा असंयमको जानेवाले तिर्यग्योनीय जीवके अन्तिम समयमें उत्कृष्ट अप्रत्याख्यानप्रतिपातस्थान उपर्युक्त स्थानसे अनन्तगुणित होता है, क्योंकि, तिर्यंचके जघन्य प्रतिपातस्थानसे षड्वृद्धिके द्वारा असंख्यात लोकमात्र स्थान आगे जाकर इस स्थानकी उत्पत्ति होती है। संयमासंयमसे गिरकर असंयमको जानेवाले मनुष्यका उत्कृष्ट प्रतिपातलब्धिस्थान उपर्युक्त स्थानसे अनन्तगुणित है, क्योंकि, तिर्यंचसम्बन्धी उत्कृष्ट प्रतिपातलब्धिस्थानसे आगे षड्वृद्धिके द्वारा असंख्यात लोकमात्र षट्स्थान जाकर इस स्थानकी उत्पत्ति होती है। संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले सर्वविशुद्ध मिथ्यादृष्टि मनुष्यके (अन्तिम समयमें, तथा) संयमासंयमको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें वर्तमान मनुष्यका जघन्य अप्रत्याख्यान प्रतिपद्यमानस्थान उपर्युक्त स्थानसे अनन्तगुणित होता है, क्योंकि, असंख्यात लोकमात्र षट्स्थान अन्तरित करके इसकी उत्पत्ति होती है। मिथ्यात्वसे पीछे आये हुये, सर्वविशुद्ध और संयतासंयतके प्रथम समयमें वर्तमान ऐसे तिर्यग्योनीय जीवका जघन्य देशविरति लब्धिस्थान उपर्युक्त स्थानसे अनन्तगुणित होता है, क्योंकि, मनुष्यके जघन्य अप्रत्याख्यान प्रतिपद्यमानस्थानसे असंख्यात लोकमात्र प्रतिपद्यमान लब्धिस्थान आगे जा करके इस स्थानकी उत्पत्ति होती है। असंयमसे संयुक्त वेदकसम्यक्त्वसे पीछे आये हुये तिर्यग्योनीय और प्रथमसमयवर्ती संयतासंयत जीवका उत्कृष्ट लब्धिस्थान उपर्युक्त स्थानसे अनन्तगुणित होता है। इसका कारण पूर्वके समान ही कहना चाहिए। सर्वविशुद्ध, असंयमसे

१ प्रतिषु ' संजमासंजमं ' इति पाठः ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

विद्धस्स सम्मत्तपच्छायदस्स संजमासंजमपढमसमए वट्टमाणस्स उक्कस्सलद्धिट्ठाण-मणंतगुणं। मणुसस्स संजमासंजमं पडि अपडिवदमाण-अपडिवज्जमाणगस्स मिच्छत्त-पच्छायदस्स सव्वविसुद्धस्स संजदासंजदविदियसमए वट्टमाणस्स जहण्णलद्धिट्ठाणमणंत-गुणं। कुदो ? असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि अंतरिय समुप्पत्तीदो। तिरिक्खजोणियस्स सव्वविसुद्धस्स मिच्छत्तपच्छायदस्स संजदासंजदविदियसमए वट्टमाणस्स जहण्णयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं। कुदो ? असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि अंतरिय समुप्पत्तीदो[1]। तिरिक्खजोणियस्स अपडिवदमाण-अपडिवज्जमाणयस्स सव्वविसुद्धस्स सत्थाणसंजदा-संजदस्स उक्कस्सयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं। मणुसस्स अपडिवदमाण-अपडिवज्जमाणयस्स सत्थाणे[2]संजदासंजदस्स उक्कस्सयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं।

अनुविद्ध, सम्यक्त्वसे पीछे आये हुए और संयमासंयमके प्रथम समयमें वर्तमान मनुष्यका उत्कृष्ट लब्धिस्थान पूर्वोक्त स्थानसे अनन्तगुणित है। मिथ्यात्वसे पीछे आये हुये, सर्व-विशुद्ध, संयतासंयतके द्वितीय समयमें वर्तमान और संयमासंयमके प्रति अप्रतिपतमान-अप्रतिपद्यमान मनुष्यका जघन्य लब्धिस्थान उपर्युक्त स्थानसे अनन्तगुणित होता है, क्योंकि, असंख्यात लोकमात्र षट्स्थान अन्तरित करके इस स्थानकी उत्पत्ति होती है। सर्वविशुद्ध, मिथ्यात्वसे पीछे आये हुये, संयतासंयतके द्वितीय समयमें वर्तमान ऐसे तिर्यग्योनीय जीवका जघन्य लब्धिस्थान उपर्युक्त स्थानसे अनन्तगुणित है, क्योंकि, असंख्यात लोकमात्र षट्स्थान अन्तरित करके इस स्थानकी उत्पत्ति होती है। अप्रतिपत-मान-अप्रतिपद्यमान, सर्वविशुद्ध, तिर्यग्योनीय स्वस्थान संयतासंयत जीवका उत्कृष्ट लब्धिस्थान उपर्युक्त लब्धिस्थानसे अनन्तगुणित है। अप्रतिपतमान-अप्रतिपद्यमान स्वस्थान-संयतासंयत मनुष्यका उत्कृष्ट लब्धिस्थान उपर्युक्त स्थानसे अनन्तगुणित होता है।

---

१ प्रतिषु ' तिरिक्खजोणियस्स सव्वविसुद्धस्स मिच्छत्तपच्छायदस्स संजदासंजदविदियसमए वट्टमाणस्स जहण्णयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं, असंखेज्जलोगमेत्तलद्धिट्ठाणाणि उवरि गंतूणुप्पत्तीदो। ' इत्यत्राधिक पाठः।

२ प्रतिषु ' सत्थाणं ' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सयलचारित्तं तिविहं खओवसमियं ओवसमियं खइयं चेदि । तत्थ खओवसमचारित्तपडिवज्जणविहाणं उच्चदे । तं जहा– पढमसम्मत्तं संजमं च जुगवं पडिवज्जमाणो तिण्णि वि करणाणि काऊण[1] पडिवज्जदि । तेसिं करणाणं लक्खणं जधा सम्मत्तुप्पत्तीए भणिदं, तधा वत्तव्वं । जदि पुण अट्ठावीससंतकम्मिओ मिच्छादिट्ठी असंजदसम्माइट्ठी संजदासंजदो वा संजमं पडिवज्जदि तो दो चेव करणाणि, अणियट्टीकरणस्स अभावादो[2] । एदेसिं च करणाणं लक्खणं जधा संजमासंजमं पडिवज्जमाणयस्स करणाणं परूविदं तधा परूवेदव्वं, णत्थि एत्थ कोच्छि विसेसो । पढमसमयसंजमप्पहुडि अंतोमुहुत्तद्धमणंतगुणाए चरित्तलद्धीए जीवो वड्ढदि । जाव चरित्तलद्धी एअंतवड्ढीए वड्ढदि ताव सो जीवो अपुव्वकरणसण्णिदो होदि । एअंतवड्ढीदो से काले चरित्तलद्धीए सिया वड्ढेज्ज, सिया हाएज्ज, सिया अवट्ठाएज्ज वा । संजमादो णिग्गदो असंजमं गंतूण जदि ट्ठिदिसंतकम्मेण अवट्ठिदेण पुणो संजमं पडिवज्जदि तस्स संजमं पडिवज्जमाणस्स

....

क्षायोपशमिक, औपशमिक और क्षायिकके भेदसे सकल चारित्र तीन प्रकारका है। उनमें क्षायोपशमिक चारित्रको प्राप्त करनेका विधान कहते हैं। वह इस प्रकार है— प्रथमोपशमसम्यक्त्व और संयमको एक साथ प्राप्त करनेवाला जीव तीनों ही करणोंको करके (संयमको) प्राप्त होता है। उन करणोंका लक्षण जिस प्रकार सम्यक्त्वकी उत्पत्तिमें कहा है, उसी प्रकार कहना चाहिए। यदि पुनः मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि अथवा संयतासंयत जीव संयमको प्राप्त करता है, तो दो ही करण होते हैं, क्योंकि, उसके अनिवृत्तिकरणका अभाव होता है। इन करणोंका लक्षण जिस प्रकार संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले जीवके करणोंका कहा है उसी प्रकार प्ररूपण करना चाहिए, क्योंकि, उनसे यहांपर कोई विशेषता नहीं है। प्रथमसमयसम्बन्धी संयमसे लेकर अन्तर्मुहूर्त काल तक यह जीव अनन्तगुणित चारित्रलब्धिसे वृद्धिको प्राप्त होता है। जब तक यह चारित्रलब्धि एकान्तानुवृद्धिसे बढ़ती है, तब तक वह जीव अपूर्वकरण संज्ञावाला रहता है। एकान्तानुवृद्धिके पश्चात् अनन्तर कालमें वह चारित्रलब्धिसे कदाचित् वृद्धिको प्राप्त हो सकता है, कदाचित् हानिको प्राप्त हो सकता है, और कदाचित् तदवस्थ भी रह सकता है। संयमसे निकल कर और असंयमको प्राप्त होकर यदि अवस्थित स्थितिसत्त्वके साथ पुनः संयमको प्राप्त होता है तो संयमको प्राप्त होनेवाले उस जीवके अपूर्वकरणका अभाव होनेसे

....

१ सयलचरित्तं तिविहं खयउवसमि उवसमं च खयियं च । सम्मत्तुप्पत्तिं वा उवसमसम्मेण गिण्हदो पढमं ॥ लब्धि. १८७.

२ वेदगजोगो मिच्छो अविरद देसो य दोण्णि करणाणि । देसवदं वा गिण्हदि गुणसेढी णत्थि तक्करणे ॥ लब्धि. १८८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपुव्वकरणाभावादो णत्थि ट्ठिदिघादो अणुभागघादो वा । असंजमं गंतूण वड्ढाविदट्ठिदि-अणुभागसंतकम्मस्स दो वि घादा अत्थि, दोहि करणेहि विणा तस्स संजमग्गहणाभावा।

पढमसमयअपुव्वकरणमादिं कादूण जाव अधापवत्तसंजदो एदम्हि काले इमेसिं पदाणमप्पाबहुगं वत्तइस्सामो[1] । तं जहा– सव्वत्थोवा एयंताणुवड्ढीए चरिमाणुभाग-खंडयउक्कीरणद्धा । अपुव्वकरणस्स पढमाणुभागखंडयउक्कीरणद्धा विसेसाहिया । एअंताणुवड्ढीए चरिमट्ठिदिखंडयउक्कीरणद्धा ट्ठिदिबंधगद्धा च दो वि तुल्लाओ संखेज्ज-गुणाओ । पढमसमयअपुव्वकरणस्स ट्ठिदिखंडयउक्कीरणद्धा ट्ठिदिबंधगद्धा च विसेसा-हियाओ । पढमसमयसंजदमादिं कादूण जम्हि काले एअंतवड्ढीए वड्ढदि सो कालो संखेज्जगुणो । अपुव्वकरणद्धा संखेज्जगुणा । जहण्णिया संजमद्धा संखेज्जगुणा । गुण-सेडीणिक्खेवो संखेज्जगुणो । एअंताणुवड्ढीए चरिमट्ठिदिबंधस्स आबाधा संखेज्जगुणा । पढमसमयअपुव्वकरणट्ठिदिबंधस्स आबाधा संखेज्जगुणा । एअंताणुवड्ढीए चरिमट्ठिदि-खंडओ असंखेज्जगुणो। अपुव्वकरणस्स पढमसमए जहण्णओ ट्ठिदिखंडओ संखेज्जगुणो ।

न तो स्थितिघात होता है और न अनुभागघात होता है। किन्तु असंयमको जाकर स्थिति-सत्त्व और अनुभागसत्त्वको बढ़ानेवाले जीवके दोनों ही घात होते हैं, क्योंकि, दोनों करणोंके विना उसके संयमका ग्रहण नहीं हो सकता है।

प्रथमसमयवर्ती अपूर्वकरणसंयतको आदि करके जब तक वह अधःप्रवृत्तसंयत अर्थात् स्वस्थानसंयत रहता है, तब तक इस मध्यवर्ती कालमें इन पदोंका अल्पबहुत्व कहेंगे। वह इस प्रकार है—एकान्तानुवृद्धिका अन्तिम अनुभागकांडकसम्बन्धी उत्कीरण-काल सबसे कम है। उससे अपूर्वकरणके प्रथम अनुभागकांडकका उत्कीरणकाल विशेष अधिक है। उससे एकान्तानुवृद्धिका अन्तिम स्थितिकांडकसम्बन्धी उत्कीरणकाल और स्थितिबन्धकाल, ये दोनों परस्पर तुल्य संख्यातगुणित हैं। उससे प्रथमसमयसम्बन्धी अपूर्वकरणके स्थितिकांडकका उत्कीरणकाल और स्थितिबन्धका काल, ये दोनों विशेष अधिक हैं। उससे प्रथमसमयवर्ती संयतको आदि करके जिस कालमें एकान्तवृद्धिसे बढ़ता है वह काल संख्यातगुणित है। उससे अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणित है। उससे जघन्य संयमकाल संख्यातगुणित है। उससे गुणश्रेणीनिक्षेप संख्यातगुणित है। उससे एकान्तानुवृद्धिके अन्तिम स्थितिबन्धकी आबाधा संख्यातगुणित है। उससे प्रथमसमय-सम्बन्धी अपूर्वकरणके स्थितिबन्धकी आबाधा संख्यातगुणित है। उससे एकान्तानु-वृद्धिका अन्तिम स्थितिकांडक असंख्यातगुणित है। उससे अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जघन्य स्थितिकांडक संख्यातगुणित है। उससे पल्योपम संख्यातगुणित है। उससे

---

१ एत्तो उवरिं विरदे देसो वा होदि अप्पबहुगो त्ति। देसो त्ति य तट्ठाणे विरदो त्ति य होदि वत्तव्वं ॥ लब्धि. १८९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पलिदोवमं संखेज्जगुणं। पढमट्ठिदिविसेसो संखेज्जगुणो। अपुव्वकरणस्स चरिमट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। तस्सेव पढमट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। अपुव्वकरणस्स चरिमट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं। तस्सेव पढमट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं।

एत्थ जाणि संजमलद्धिट्ठाणाणि ताणि तिविहाणि होंति। तं जहा– पडिवाद-ट्ठाणाणि उप्पादट्ठाणाणि तव्वदिरित्तट्ठाणाणि त्ति[1]। तत्थ पडिवादट्ठाणं णाम जम्हि ट्ठाणे मिच्छत्तं वा असंजमसम्मत्तं वा संजमासंजमं वा गच्छदि तं पडिवादट्ठाणं। उप्पादट्ठाणं णाम जम्हि ट्ठाणे संजमं पडिवज्जदि तं उप्पादट्ठाणं णाम। सेससव्वाणि चेव चरित्त-ट्ठाणाणि तव्वदिरित्तट्ठाणाणि णाम। एदेसिं लद्धिट्ठाणाणमप्पाबहुगं। तं जहा– सव्व-त्थोवाणि पडिवादट्ठाणाणि। कुदो? मिच्छत्तं वा असंजमसम्मत्तं वा संजमासंजमं वा गच्छं-तस्स चरिमसमयसंजदस्स जहण्णपरिणाममादिं कादूण जा उक्कस्सपडिवादट्ठाणं ति सव्वेसिं गहणादो। उप्पादट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि। कुदो? पडिवादट्ठाणाणि अपडिवाद-अपडि-वज्जमाणट्ठाणाणि च मोत्तूण सेससव्वट्ठाणाणं गहणादो। तव्वदिरित्तट्ठाणाणि असंखेज्ज-

....

प्रथम स्थितिका विशेष संख्यातगुणित है। उससे अपूर्वकरणका अन्तिम स्थितिबन्ध संख्यातगुणित है। उससे उसका ही प्रथम स्थितिबन्ध संख्यातगुणित है। उससे अपूर्व-करणका अन्तिम स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित है। उससे उसका ही प्रथम स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित है।

यहांपर जो संयमलब्धिके स्थान हैं, वे तीन प्रकारके होते हैं। वे इस प्रकार हैं— प्रतिपातस्थान, उत्पादस्थान और तद्व्यतिरिक्तस्थान। उनमें पहले प्रतिपातस्थानको कहते हैं– जिस स्थानपर जीव मिथ्यात्वको, अथवा असंयमसम्यक्त्वको, अथवा संयमासंयमको प्राप्त होता है वह प्रतिपातस्थान है। अब उत्पादस्थानको कहते हैं— जिस स्थानपर जीव संयमको प्राप्त होता है, वह उत्पादस्थान है। इनके अतिरिक्त शेष सर्व ही चारित्रस्थानोंको तद्व्यतिरिक्त स्थान कहते हैं। अब इन संयमलब्धिस्थानोंका अल्पबहुत्व कहते हैं। वह इस प्रकार है—प्रतिपातस्थान सबसे कम हैं, क्योंकि, मिथ्या-त्वको, अथवा असंयमसम्यक्त्वको, अथवा संयमासंयमको जानेवाले अन्तिमसमयवर्ती संयतके जघन्य परिणामको आदि करके उत्कृष्ट प्रतिपातस्थान तकके सभी स्थानोंका ग्रहण किया गया है। प्रतिपातस्थानोंसे उत्पादस्थान असंख्यातगुणित हैं, क्योंकि, प्रतिपातस्थानोंको और अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमानस्थानोंको छोड़कर शेष सर्व स्थानोंका ग्रहण किया गया है। उत्पादस्थानोंसे तद्व्यतिरिक्त स्थान असंख्यातगुणित हैं, क्योंकि,

....

1 तत्थ य पडिवादगया पडिवज्जगया त्ति अणुभयगया त्ति। उवरुवरिं लद्धिठाणा लोयाणमसंखछट्ठाणा॥ लब्धि. १९१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणाणि । कुदो ? पडिवादुप्पादट्ठाणाणि मोत्तूण सेससव्वट्ठाणाणं गहणादो[1] । ००० ००००००००००००००००००००० । अंतरं । एदाणि संजमस्स पडिवाद-ट्ठाणाणि असंखेज्जलोगमेत्ताणि मिच्छत्तं गच्छमाणस्स संजदस्स चरिमसमए हवंति[2] । एत्थ सव्वजहण्णं पडिवादट्ठाणं उक्कस्ससंकिलेसेण मिच्छत्तं गच्छमाणस्स संजदस्स चरिमसमए होदि । एदेसिं चेव उक्कस्सं जहण्णादो अणंतगुणीभूदं तप्पाओग्गसंकिलेसेण मिच्छत्तं गच्छमाणसंजदचरिमसमए हवदि । ०००००००००००००००००००००००० । अंतरं । एदाणि असंजदसम्मत्तं गच्छमाणसंजदस्स पडिवादट्ठाणाणि असंखेज्जलोगमेत्ताणि । एत्थ सव्वजहण्णं उक्कस्ससंकिलेसेण असंजदसम्मत्तं गच्छमाण-संजदचरिमसमए । उक्कस्सं तप्पाओग्गसंकिलेसेण चरिमसमए । ००००००००० ००००००००००००० । अंतरं । एदाणि संजमासंजमं गच्छंतसंजदपडिवादट्ठाणाणि । एत्थ जहण्णं सव्वसंकिलेसेण संजमासंजमं गच्छंतसंजदचरिमसमए, उक्कस्सं तप्पाओग्ग-संकिलेसेण संजदचरिमसमए । ००००००००००००००००००००००००

प्रतिपातस्थान और उत्पादस्थानोंको छोड़कर शेष सर्व स्थानोंका ग्रहण किया गया है। ०००००००००००००००००००००००० । अन्तर । ये असंख्यातलोकप्रमित संयमके प्रतिपातस्थान मिथ्यात्वको जानेवाले संयतके अन्तिम समयमें होते हैं। यहांपर सर्व जघन्य प्रतिपातस्थान उत्कृष्ट संक्लेशसे मिथ्यात्वको जानेवाले संयतके अन्तिम समयमें होता है। जघन्यसे अनन्तगुणीभूत इन ही का उत्कृष्ट प्रतिपातस्थान तत्प्रायोग्य संक्लेशसे मिथ्यात्वको जानेवाले संयतके अन्तिम समयमें होता है। ००००००००००००००० ००००००० । अन्तर । असंयतसम्यक्त्वको जानेवाले संयतके ये प्रतिपातस्थान असंख्यात लोकमात्र होते हैं। इनमें सर्व जघन्य प्रतिपातस्थान उत्कृष्ट संक्लेशसे असंयतसम्यक्त्वको जानेवाले संयतके अन्तिम समयमें होता है। उत्कृष्ट प्रतिपातस्थान तत्प्रायोग्य संक्लेशसे असंयतसम्यक्त्वको जानेवाले संयतके अन्तिम समयमें होता है। ०००००००००००० ०००००००० । अन्तर । ये संयमासंयमको जानेवाले संयतके प्रतिपातस्थान हैं। इनमें जघन्य प्रतिपातस्थान सर्व संक्लेशसे संयमासंयमको जानेवाले संयतके अन्तिम समयमें होता है, और उत्कृष्ट प्रतिपातस्थान तत्प्रायोग्य संक्लेशसे संयमासंयमको जानेवाले संयतके अन्तिम समयमें होता है। ००००००००००००००००००००००००००००००

१ अत्र शून्येभ्यः प्राक् प्रतिषु ' श्रीश्रुतकीर्तित्रैविद्यदेवस्थिरं जायाओ ॥ १० ॥ णमो वीतरागाय शांतये ' इत्यधिकः पाठः । मप्रतौ तन्नास्ति ।

२ पडिवादगया मिच्छे अयदे देसे य होंति उवरुवरिं । पत्तेयमसंखमिदा लोया णमसंखछट्ठाणा ॥ लब्धि. १९२.

० ०
० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० । अंतरं । एदाणि संजमं पडिवज्जमाणस्स ट्ठाणाणि ।

[1]एत्थ जहण्णं भरतखेत्तणिवासिस्स मिच्छत्तपच्छायदसंजदस्स । (अकम्मभूमियस्स मिच्छत्तपच्छायदसंजदस्स) जहण्णं पडिवज्जमाणट्ठाणमणंतगुणं । तस्सेव उक्कस्सं देसविरदिपच्छायदसव्वविसुद्धसंजद(-पढम-)समए तत्तो अणंतगुणं । कम्मभूमिम्हि संजमं पडिवज्जमाणस्स देसविरदिपच्छायदस्स सव्वविसुद्धसंजदस्स पढमसमए[2] उक्कस्सपडिवज्जमाणलद्धिट्ठाणं तत्तो अणंतगुणं होदि । ० । अंतरं । परिहारसंजदस्स एदाणि लद्धिट्ठाणाणि । एत्थ जहण्णं तप्पाओग्गसंकिलेसेण सामाइय-च्छेदोवट्ठावणाभिमुह-चरिमसमए होदि । उक्कस्सं सव्वविसुद्धपरिहारसुद्धिसंजदस्स । एत्थ जहण्णं पडिवाद-ट्ठाणं थोवं । उक्कस्सं पडिवज्जमाणट्ठाणमणंतगुणं । उक्कस्सअपडिवाद-अपडिवज्ज-माणट्ठाणमणंतगुणं । ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० । अंतरं । (एदाणि सामाइय-

---

०००। अन्तर। ये संयमको प्राप्त होनेवाले जीवके प्रतिपद्यमान या उत्पादस्थान हैं। इनमेंसे जघन्य प्रतिपद्यमानस्थान भरतक्षेत्रनिवासी मिथ्यात्वसे पीछे आये हुए संयत (आर्य मनुष्य) के होता है। (अकर्मभूमिज अर्थात् भरतक्षेत्रनिवासी म्लेच्छ मनुष्यके मिथ्यात्वसे पीछे आकर संयम ग्रहणके प्रथम समयमें होनेवाला) जघन्य प्रतिपद्यमान संयमस्थान पूर्व जघन्यसे अनन्तगुणा है। उक्त (म्लेच्छ) मनुष्यके ही देशविरतिसे पीछे आकर सर्वविशुद्ध संयम ग्रहणके प्रथम समयमें होनेवाला उत्कृष्ट प्रतिपद्यमानस्थान पूर्वोक्त जघन्यसे अनन्तगुणा है। इससे अनन्तगुणा कर्मभूमिमें संयमको प्राप्त करनेवाले देशविरतिसे पीछे आये हुए सर्वविशुद्ध संयत (आर्य मनुष्य) के प्रथम समयमें उत्कृष्ट प्रतिपद्यमान लब्धिस्थान होता है। यह स्थान पूर्व स्थानसे अनन्तगुणा है। ००००००००००००००००००००००००। अन्तर। परिहारविशुद्धिसंयतके ये संयमलब्धिस्थान हैं। इनमेंसे जघन्य संयमलब्धिस्थान तत्प्रायोग्य संक्लेशसे सामायिक-छेदोपस्थापनासंयमोंके अभिमुख होनेवालेके अन्तिम समयमें होता है। और उत्कृष्ट सर्वविशुद्ध परिहारविशुद्धिसंयतके होता है। इनमें जघन्य प्रतिपातस्थान स्तोक है। उत्कृष्ट प्रतिपद्यमानस्थान उससे अनन्तगुणा है। उत्कृष्ट अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमानस्थान अनन्तगुणा है। ०००००००००००००००००। अन्तर।

---

१ तत्तो पडिवज्जगया अज्जमिलेच्छे मिलेच्छअज्जे य। कमसो अवरं अवरं वरं वरं होदि संखं वा ॥ लब्धि. १९५.

२ प्रतिषु ' -समय- ' इति पाठः ।

छेदोवट्ठावणियाणं संजमट्ठाणाणि)। सामाइय-च्छेदोवट्ठावणियाणं उक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं। तं कस्स? सव्वविसुद्धस्स से काले सुहुमसांपराइयसंजमं पडिवज्जमाणस्स। एदेसिं जहण्णं मिच्छत्तं गच्छंतचरिमसमए होदि। तेणेत्थ तण्ण उत्तं। ०००००० ००००००००००। अंतरं। सुहुमसांपराइयस्स एदाणि संजमट्ठाणाणि। तत्थ जहण्णं अणियट्टीगुणट्ठाणं से काले पडिवज्जंतस्स सुहुमस्स होदि। उक्कस्सं खीणकसायगुणं पडिवज्जमाणस्स चरिमसमए भवदि। |०| एदं जहाक्खादसंजमट्ठाणं उवसंत-खीण-सजोगि-अजोगीणमेक्कं चेव जहण्णुक्कस्सवदिरित्तं होदि, कसायाभावादो। एदं संदिट्ठिं ठविय तिव्व-मंददाए अप्पाबहुगं वत्तइस्सामो। तं जहा—

सव्वमंदाणुभागं मिच्छत्तं गच्छमाणस्स जहण्णयं संजमट्ठाणं। तस्सेव उक्कस्सयं संजमट्ठाणं अणंतगुणं, तदो असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि गंतूण उप्पण्णत्तादो। असंजमसम्मत्तं गच्छमाणस्स जहण्णं संजमट्ठाणमणंतगुणं, असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि

(ये सामायिक-छेदोपस्थापनासंयमियोंके संयमस्थान हैं।) सामायिक-छेदोपस्थापनासंयमियोंका उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है।

शंका—सामायिक-छेदोपस्थापनासंयमियोंका उत्कृष्ट संयमस्थान किसके होता है?

समाधान—अनन्तर कालमें सर्वविशुद्ध सूक्ष्मसाम्परायिकसंयमको ग्रहण करनेवालेके वह उत्कृष्ट संयमस्थान होता है।

इनका जघन्य मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवालेके अन्तिम समयमें होता है। इसी कारण उसे यहां नहीं कहा है। ०००००००००००००००००। अन्तर। सूक्ष्मसाम्परायिकसंयमीके ये संयमस्थान हैं। उनमें जघन्य संयमस्थान अनन्तर कालमें अनिवृत्तिकरणगुणस्थानको प्राप्त करनेवाले सूक्ष्मसाम्परायिक संयमीके होता है, और उत्कृष्ट स्थान क्षीणकषाय गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले सूक्ष्मसाम्परायिक संयमीके अन्तिम समयमें होता है। |०| यह यथाख्यातसंयमस्थान उपशान्तमोह, क्षीणमोह, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली, इनके एक ही जघन्य व उत्कृष्टके भेदोंसे रहित होता है, क्योंकि, इन सबके कषायोंका अभाव है। इस संदृष्टिको रखकर तीव्रता व मन्दतासे अल्पबहुत्वको कहेंगे। वह इस प्रकार है—

सर्वमन्दानुभागरूप मिथ्यात्वको प्राप्त करनेवाले जीवके जघन्य संयमस्थान होता है। उसका ही उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है, क्योंकि वह उससे असंख्यातलोकमात्र छह स्थानोंका उल्लंघन करके उत्पन्न हुआ है। इससे अविरतसम्यक्त्वको प्राप्त करनेवाले जीवका जघन्य संयमस्थान अनन्तगुणा है, क्योंकि, वह असंख्यात लोकमात्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतरिय उप्पण्णत्तादो । तस्सेव उक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं, उवरि असंखेज्जलोगमेत्त-छट्ठाणाणि गंतूणुप्पत्तीदो । संजमासंजमं गच्छमाणस्स जहण्णयं संजमट्ठाणमणंतगुणं, अणेयाणि छट्ठाणाणि अंतरिय उप्पत्तीदो । तस्सेव उक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं । कुदो ? असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि उवरि गंतूणुप्पत्तीदो । कम्मभूमियस्स संजमं पडि-वज्जमाणस्स जहण्णसंजमट्ठाणमणंतगुणं । कुदो ? असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि उवरि गंतूणुप्पत्तीदो । (अकम्मभूमियस्स संजमं पडिवज्जमाणयस्स जहण्णयं संजमट्ठाणमणंत-गुणं । कुदो ? असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि उवरि गंतूणुप्पत्तीदो ।) तस्सेव उक्कस्सयं संजमं पडिवज्जमाणस्स संजमट्ठाणमणंतगुणं । कुदो ? असंखेज्ज-लोगमेत्तछट्ठाणाणि उवरि गंतूणुप्पत्तीदो । कम्मभूमियस्स संजमं पडिवज्जमाणस्स उक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं, असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि उवरि गंतूणुप्पत्तीदो । परिहारसुद्धिसंजदस्स जहण्णयं संजमट्ठाणं छेदोवट्ठावणसंजमाभिमुहस्स अणंतगुणं, बहूणि छट्ठाणाणि अंतरिय समुब्भवादो । तस्सेव उक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं । कुदो ? असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि उवरि गंतूणुप्पत्तीदो । उवरि सामाइय-च्छेदोवट्ठावणियाणं

छह स्थानोंका अन्तर करके उत्पन्न हुआ है । उसका ही उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है, क्योंकि ऊपर असंख्यात लोकमात्र छह स्थानोंका उल्लंघन करके उसकी उत्पत्ति होती है । संयमासंयमको प्राप्त होनेवालेका जघन्य संयमस्थान अनन्तगुणा है, क्योंकि, अनेक छह स्थानोंका अन्तर करके उसकी उत्पत्ति होती है । उसका ही उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है, क्योंकि, असंख्यात लोकमात्र छह स्थानोंके ऊपर जाकर उसकी उत्पत्ति होती है । संयमको प्राप्त करनेवाले कर्मभूमिज (आर्य) मनुष्यका जघन्य संयमस्थान अनन्तगुणा है, क्योंकि, असंख्यात लोकमात्र छह स्थानोंके ऊपर जाकर उसकी उत्पत्ति होती है । (संयमको प्राप्त करनेवाले अकर्मभूमिज, अर्थात् पांच म्लेच्छ खंडोंमें रहनेवाले, मनुष्यका जघन्य संयमस्थान अनन्तगुणा है, क्योंकि, असंख्यात लोकमात्र छह स्थानोंके ऊपर जाकर उसकी उत्पत्ति होती है ।) संयमको प्राप्त करनेवाले उसका ही उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है, क्योंकि, असंख्यात लोकमात्र छह स्थानोंके ऊपर जाकर उसकी उत्पत्ति होती है । संयमको प्राप्त करनेवाले कर्मभूमिज (आर्य) मनुष्यका उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है, क्योंकि, असंख्यात लोकमात्र छह स्थान ऊपर जाकर उसकी उत्पत्ति होती है । छेदोपस्थापन-संयमके अभिमुख हुए परिहारविशुद्धिसंयतका जघन्य संयमस्थान अनन्तगुणा है, क्योंकि, बहुतसे छह स्थानोंका अन्तर करके वह उत्पन्न होता है । उसका ही उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है, क्योंकि, असंख्यात लोकमात्र छह स्थान ऊपर जाकर उसकी उत्पत्ति होती है । इसके ऊपर सामायिक-छेदोपस्थापनसंयतोंका उत्कृष्ट संयमस्थान

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

उक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं। कुदो? असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि अंतरिय तत्तियमेत्ताणि चेव ट्ठाणाणि णिरंतरमुवरि गंतूणुप्पत्तीदो। सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदस्स अणियट्टीगुणट्ठाणाभिमुहस्स जहण्णयं संजमट्ठाणमणंतगुणं। कुदो? बहूणि छट्ठाणाणि अंतरिय समुब्भवादो। तस्सेव उक्कसयं संजमट्ठाणमणंतगुणं, अणंतगुणविसोहीए समुप्पत्तीदो। वीदरागस्स अजहण्णमणुक्कस्सं चरित्तलद्धिट्ठाणमणंतगुणं।

संपधि[१] ओवसमियचारित्तप्पडिवज्जणविहाणं वुच्चदे[२]। तं जधा– जो वेदगसम्माइट्ठी जीवो सो ताव पुव्वमेव अणंताणुबंधी विसंजोएदि। तस्स जाणि करणाणि ताणि परूवेदव्वाणि। तं जधा– अधापवत्तकरणं अपुव्वकरणं अणियट्टीकरणं च। अधापवत्तकरणे णत्थि ट्ठिदिघादो अणुभागघादो गुणसेडी वा। अपुव्वकरणे ट्ठिदिघादो अणुभागघादो गुणसेडी गुणसंकमो च अत्थि। अणियट्टीकरणे वि एदाणि चेव, अंतरकरणं णत्थि। जो अणंताणुबंधी विसंजोएदि तस्स एसा ताव समासपरूवणा। तदो अणंताणुबंधी विसंजोइय अंतोमुहुत्तं अधापवत्तो होदूण पुणो पमत्तगुणं पडिवज्जिय असाद-अरदि-सोग-अजसगित्तिआदीणि कम्माणि अंतोमुहुत्तं बंधिय तदो दंसणमोहणीयमुव-

अनन्तगुणा है, क्योंकि, असंख्यात लोकमात्र स्थानोंका अन्तर करके और उतनेमात्र स्थान निरन्तर ऊपर जाकर उसकी उत्पत्ति होती है। अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके अभिमुख हुए सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतका जघन्य संयमस्थान अनन्तगुणा है, क्योंकि, बहुतसे छह स्थानोंका अन्तर करके वह उत्पन्न होता है। उसीका उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है, क्योंकि, उसकी उत्पत्ति अनन्तगुणी विशुद्धिसे है। वीतरागका अजघन्यानुत्कृष्ट चरित्रलब्धिस्थान अनन्तगुणा है।

अब औपशमिक चारित्रकी प्राप्तिके विधानको कहते हैं। वह इस प्रकार है— जो वेदकसम्यग्दृष्टि जीव है वह पूर्वमें ही अनन्तानुबन्धिचतुष्टयका विसंयोजन करता है। उसके जो करण होते हैं उनका प्ररूपण करते हैं। वह इस प्रकार है-–अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण। अधःप्रवृत्तकरणमें स्थितिघात, अनुभागघात अथवा गुणश्रेणी नहीं है। किन्तु अपूर्वकरणमें स्थितिघात, अनुभागघात, गुणश्रेणी और गुणसंक्रम हैं। ये ही कार्य अनिवृत्तिकरणमें भी हैं, अन्तरकरण नहीं है। जो अनन्तानुबन्धिचतुष्टयका विसंयोजन करता है उसकी यह संक्षेपसे प्ररूपणा है। तत्पश्चात् अनन्तानुबन्धिचतुष्टयका विसंयोजन करके अन्तर्मुहूर्तकाल तक अधःप्रवृत्त अर्थात् स्वस्थान अप्रमत्त होकर पुनः प्रमत्तगुणस्थानको प्राप्त कर असाता, अरति, शोक और अयशकीर्त्ति आदिक (प्रमत्त गुणस्थानमें बंधने योग्य तिरेसठ) कर्मप्रकृतियोंको अन्तर्मुहूर्त तक बांध-

१ कप्रतौ 'संपधिय' इति पाठः।　　२ आ-कप्रत्योः 'उच्चदे' इति पाठः।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

सामेदि[1]। जाणि अणंताणुबंधिविसंजोयणाए तिण्णि वि करणाणि परूविदाणि ताणि सव्वाणि इमस्स वि परूवेदव्वाणि। कधं ताणि चेव तिण्णि करणाणि पुध पुध कज्जुप्पायणाणि ? ण एस दोसो, लक्खणसमाणत्तेण एयत्तमावण्णाणं भिण्णकम्मविरोहित्तणेण भेदमुवगयाणं जीवपरिणामाणं पुध पुध कज्जुप्पायणे विरोहाभावा। तत्थ[2] ट्ठिदिघादो अणुभागघादो गुणसेडी च अत्थि। जधा अणंताणुबंधीविसंजोयणाए गलिदसेसा अपुव्वकरणद्धादो अणियट्टीकरणद्धादो च विसेसाहिया गुणसेडी कदा तधा एत्थ वि करेदि। ट्ठिदि-अणुभाग-कंडयगहणक्कमो तेसिमुक्कीरणद्धाणं ट्ठिदिबंधगद्धाणं कमो च दंसणमोहणीयक्खवणाए[3] जधा उत्तो तधा वत्तव्वो। णवरि एत्थ गुणसंकमो णत्थि, विज्झादो चेव, अप्पसत्थाणं अधापवत्तो वा[4]। अपुव्वकरणस्स पढमसमयट्ठिदिसंतकम्मादो तस्सेव चरिमसमयट्ठिदि-संतकम्मं संखेज्जगुणहीणं। पढमसमयअणियट्टीकरणस्स ट्ठिदिसंतकम्मादो चरिमसमय-

....

कर पश्चात् दर्शनमोहनीयको उपशमाता है। अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनामें जिन तीनों करणोंका प्ररूपण किया जा चुका है वे सब इसके भी कहे जाने चाहिये।

शंका—वे ही तीन करण पृथक् पृथक् कार्योंके उत्पादक कैसे हो सकते हैं ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, लक्षणकी समानतासे एकत्वको प्राप्त, परन्तु भिन्न कर्मोंके विरोधी होनेसे भेदको भी प्राप्त हुए जीवपरिणामोंके पृथक् पृथक् कार्यके उत्पादनमें कोई विरोध नहीं है। वहां स्थितिघात, अनुभागघात और गुणश्रेणी भी है। जिस प्रकार अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनामें गलितावशेष गुणश्रेणी अपूर्वकरणकाल और अनिवृत्तिकरणकालसे विशेष अधिक की थी, उसी प्रकार यहांपर भी करता है। काण्डकोंका ग्रहणक्रम तथा उनके उत्कीरणकालों और स्थितिबन्ध-कालोंका क्रम जैसे दर्शनमोहनीयकी क्षपणामें कहा गया है, वैसे यहां भी कहना चाहिये। विशेषता यह है कि यहां गुणसंक्रमण नहीं है; केवल विध्यातसंक्रमण, अथवा अप्रशस्त प्रकृतियोंका अधःप्रवृत्तसंक्रमण है। अपूर्वकरणके प्रथमसमयसम्बन्धी स्थितिसत्त्वसे उसका ही अन्तिमसमयसम्बन्धी स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा हीन है। प्रथमसमयसम्बन्धी अनिवृत्तिकरणके स्थितिसत्त्वसे अन्तिमसमयसम्बन्धी स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा हीन

....

१ उवसमचरियाहिमुहो वेदगसम्मो अणं विजोयित्ता। अंतोमुहुत्तकालं अधापवत्तो पमत्तो य ॥ तत्तो तियरणविहिणा दंसणमोहं समं खु उवसमदि। सम्मत्तुप्पत्तिं वा अण्णं च गुणसेढिकरणविही ॥ लब्धि. २०३–२०४.

२ अ-आप्रत्योः ' तट्ठिदि ', कप्रतौ ' तं ट्ठिदि ' इति पाठः।

३ अ-कप्रत्योः ' –क्खवणा व ', आप्रतौ ' –क्खवणा ' इति पाठः।

४ दंसणमोहुवसमणं तक्खवणं वा हु होदि णवरिं तु। गुणसंकमो ण विज्जदि विज्झादं वाधापवत्तं च ॥ लब्धि. २०५.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणहीणं[1]। दंसणमोहणीयउवसामणअणियट्टीअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु सम्मत्तस्स असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा।

तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण दंसणमोहणीयस्स अंतरं करेदि[2]। तं जधा— सम्मत्तस्स पढमट्ठिदिमंतोमुहुत्तमेत्तं मोत्तूण अंतरं करेदि, मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ताण-मुदयावलियं मोत्तूण अंतरं करेदि[3]। अंतरम्हि उक्कीरिज्जमाणपदेसग्गं विदिय-ट्ठिदिम्हि ण संछुहदि, बंधाभावादो सव्वमाणेदूण सम्मत्तपढमट्ठिदिम्हि णिक्खि-वदि। सम्मत्तपदेसग्गमप्पणो पढमट्ठिदिम्हि चेव संछुहदि[4]। मिच्छत्त-सम्मा-मिच्छत्त-सम्मत्ताणं विदियट्ठिदिपदेसग्गं ओकड्डिदूण सम्मत्तपढमट्ठिदीए देदि, अणुक्कीरिज्जमाणासु ट्ठिदीसु च देदि[5]। सम्मत्तपढमट्ठिदिसमाणासु ट्ठिदीसु ट्ठिद-

है। दर्शनमोहनीयके उपशमानेमें अनिवृत्तिकरणकालके संख्यात भागोंके व्यतीत होनेपर सम्यक्त्वप्रकृतिके असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा होती है।

इसके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त काल जाकर दर्शनमोहनीयका अन्तर करता है। वह इस प्रकार है — सम्यक्त्वप्रकृतिकी अन्तर्मुहूर्तमात्र प्रथमस्थितिको छोड़कर अन्तर करता है तथा मिथ्यात्व व सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियोंकी उदयावलीको छोड़कर अन्तर करता है। इस अन्तरकरणमें उत्कीर्ण किये जानेवाले प्रदेशाग्रको द्वितीय स्थितिमें नहीं स्थापित करता है, किन्तु बन्धका अभाव होनेसे सबको लाकर सम्यक्त्वप्रकृतिकी प्रथम स्थितिमें स्थापित करता है। सम्यक्त्वप्रकृतिके प्रदेशाग्रको अपनी प्रथमस्थितिमें ही स्थापित करता है। मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिके द्वितीयस्थितिसम्बन्धी प्रदेशाग्रका अपकर्षण करके सम्यक्त्वप्रकृतिकी प्रथम स्थितिमें देता है, और अनुत्कीर्य-माण (द्वितीय स्थितिकी) स्थितियोंमें भी देता है। सम्यक्त्वप्रकृतिकी प्रथम स्थितिके

१ ठिदिसत्तमपुव्वदुगे संखगुणूणं तु पढमदो चरिमं। उवसामण अणियट्टीसंखाभागासु तीदासु॥ लब्धि. २०६.

२ सम्मस्स असंखेज्जा समयपबद्धाणुदीरणा होदि। तत्तो मुहुत्तअंते दंसणमोहंतरं कुणइ॥ लब्धि. २०७.

३ अंतोमुहुत्तमेत्तं आवलिमेत्तं च सम्मतियट्ठाणं। मोत्तूण य पढमट्ठिदिं दंसणमोहंतरं कुणइ॥ लब्धि. २०८.

४ सम्मत्तपयडिपढमट्ठिदिम्मि संछुहदि दंसणतियाणं। उक्कीरयं तु दव्वं बंधाभावादु मिच्छस्स॥ लब्धि. २०९.

५ विदियट्ठिदिस्स दव्वं उक्कट्टिय देदि सम्मपढमम्मि। विदियट्ठिदिम्हि तस्स अणुक्कीरिज्जंतमाणम्हि॥ लब्धि. २१०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्तपदेसग्गं सम्मत्तपढमट्ठिदीसु संकामेदि[1]। जाव अंतरदुचरिमफाली पददि ताव इमो कमो होदि। पुणो चरिमफालीए पदमाणाए मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ताणमंतरट्ठिदिपदेसग्गं सव्वं सम्मत्तपढमट्ठिदीए संछुहदि[2]। एवं सम्मत्त-अंतरट्ठिदिपदेसं पि अप्पणो पढमट्ठिदीए चेव देदि। विदियट्ठिदिपदेसग्गं पि ताव पदमट्ठिदिमेदि जाव आवलिय-पडिआवलियाओ पढमट्ठिदीए सेसाओ त्ति[3]। सम्मत्तस्स पढमट्ठिदीए झीणाए मिच्छत्तपदेसग्गं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तेसु गुणसंकमेण (ण) संकमदि। इमस्स विज्झादसंकमो चेव[4]। पढमदाए सम्मत्तमुप्पादयमाणस्स जो गुणसंकमेण पूरणकालो तदो संखेज्जगुणं कालं इमो उवसंतदंसणमोहणीओ विसोहीए वड्ढदि[5]। तेण परं हायदि

समान स्थितियोंमें स्थित मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियोंके प्रदेशाग्रको सम्यक्त्वप्रकृतिकी प्रथमस्थितियोंमें संक्रमण कराता है। जब तक अन्तरकरणकालकी द्विचरम फालि प्राप्त होती है तब तक यही क्रम रहता है। पुनः अन्तिम फालिके प्राप्त होनेपर मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियोंके सब अन्तरस्थितिसम्बन्धी प्रदेशाग्रको सम्यक्त्वप्रकृतिकी प्रथम स्थितिमें स्थापित करता है। इसी प्रकार सम्यक्त्वप्रकृतिके अन्तरस्थितिसम्बन्धी प्रदेशको भी अपनी प्रथमस्थितिमें ही देता है। द्वितीयस्थितिसम्बन्धी प्रदेशाग्र भी तब तक प्रथम स्थितिको प्राप्त होता है, जब तक कि प्रथम स्थितिमें आवली और प्रत्यावली शेष रहती हैं। सम्यक्त्वप्रकृतिकी प्रथम स्थितिके क्षीण होनेपर मिथ्यात्वका प्रदेशाग्र गुणसंक्रमणसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियोंमें संक्रमण नहीं करता है। इसके केवल विध्यातसंक्रमण होता है। प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले जीवका जो गुणसंक्रमसे पूरणकाल है उससे संख्यातगुणे काल तक यह उपशान्तदर्शनमोहनीय जीव अर्थात् द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि (प्रतिसमय अनन्तगुणी) विशुद्धिसे बढ़ता है। इसके पश्चात् अर्थात् एकान्तवृद्धिकालके पीछे यह द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि संक्लेश परिणामोंके वश विशुद्धिसे हीन होता है,

१ सम्मत्तपयडिपढमट्ठिदीसु सरिसाण मिच्छमिस्साणं। ठिदिदव्वं सम्मस्स य सरिसणिसेयम्हि संकमदि ॥ लब्धि. २११.

२ जावंतरस्स दुचरिमफालिं पावे इमो कमो ताव। चरिमतिदंसणदव्वं छुहेदि सम्मस्स पढमम्हि ॥ लब्धि. २१२.

३ विदियट्ठिदिस्स दव्वं पढमट्ठिदिमेदि जाव आवलिया। पडिआवलिया चिट्ठदि सम्मत्तादिमठिदी ताव ॥ लब्धि. २१३.

४ सम्मादिठिदिझीणे मिच्छद्दव्वादु सम्मसंमिस्से। गुणसंकमो ण णियमा विज्झादो संकमो होदि ॥ लब्धि. २१४.

५ सम्मत्तुप्पत्तीए गुणसंकमपूरणस्स कालादो। संखेज्जगुणं कालं विसोहिवड्ढीहिं वड्ढदि हु ॥ लब्धि. २१५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वड्ढदि अवट्ठायदि वा ।

तदो[1] उवसंतदंसणमोहणीओ असाद-अरदि-सोग-अजसकित्तिआदिपयडीणं बंध-परावत्तिसहस्सं कादूण कसायाणमुवसामणट्ठमधापवत्तकरणपरिणामेहि परिणमेदि । एत्थ पुव्वं व णत्थि ट्ठिदिघादो अणुभागघादो गुणसंकमो च । संजमगुणसेडिं मुच्चा अधापवत्तपरिणामणिबंधणगुणसेडी वि णत्थि । णवरि विसोहीए अणंतगुणाए पडिसमयं वड्ढदि ।

अपुव्वकरणपढमसमए उवसंतदंसणमोहणीओ ट्ठिदिखंडयमागाएंतो जहण्णेण पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागमुक्कस्सेण सागरोवमपुधत्तमेत्तट्ठिदिखंडयमागाएदि । खीणदंसणमोहणीयस्स पुण अपुव्वकरणपढमट्ठिदिखंडओ जहण्णओ उक्कस्सओ वि पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो । ट्ठिदिबंधेण जमोसरदि जहण्णेणुक्कस्सेण च सो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो । असुहाणं कम्माणं अणंता भागा अणुभागखंडयपमाणं । अपुव्वकरणपढमसमए ट्ठिदिसंतकम्मं ट्ठिदिबंधो च अंतोकोडाकोडीए । गुणसेडी पुण अपुव्वकरणद्धादो अणियट्टीकरणद्धादो च विसेसाहिया । अपुव्वकरणपढमसमए गुणसेढी

संक्लेश परिणामोंकी हानि होनेसे विशुद्धिसे बढ़ता है, अथवा अवस्थित रहता है।

इसके पश्चात् वही द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि असाता, अरति, शोक व अयशःकीर्ति आदि प्रकृतियोंकी सहस्रों बार बन्धपरावृत्तियोंको करके, अर्थात् अप्रमत्तसे प्रमत्त और प्रमत्तसे अप्रमत्त गुणस्थानमें जाकर, कषायोंके उपशमानेके लिये अधःप्रवृत्तकरण परिणामोंसे परिणमता है। यहां पूर्वके समान स्थितिघात, अनुभागघात और गुणसंक्रमण नहीं है। संयमगुणश्रेणीको छोड़कर अधःप्रवृत्तपरिणामनिबन्धन गुणश्रेणी भी नहीं है। विशेष यह है कि अनन्तगुणी विशुद्धिसे प्रतिसमय बढ़ता रहता है।

अपूर्वकरणके प्रथम समयमें उक्त द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि जीव स्थितिकांडकको प्रारम्भ करता हुआ जघन्यसे पल्योपमके संख्यातवें भाग और उत्कर्षसे सागरोपमपृथक्त्वमात्र स्थितिकांडकको ग्रहण करता है। परन्तु क्षीणदर्शनमोहनीय अर्थात् क्षायिक सम्यग्दृष्टिके अपूर्वकरणका प्रथमसमयसम्बन्धी स्थितिकांडक जघन्य व उत्कृष्ट भी पल्योपमके संख्यातवें भागमात्र रहता है। स्थितिबन्धसे जो अपसरण करता है, वह जघन्य व उत्कर्षसे पल्योपमके संख्यातवें भागमात्र होता है। अशुभ कर्मोंके अनुभागकांडकका प्रमाण अनन्त बहुभाग होता है। अपूर्वकरणके प्रथम समयमें स्थितिसत्त्व और स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ीमात्र है। किन्तु गुणश्रेणी अपूर्वकरणकालसे और अनिवृत्तिकरणकालसे विशेष अधिक है।

१ तेण परं हायदि वा वड्ढदि तव्वड्ढिदो विसुद्धीहिं । उवसंतदंसणतियो होदि पमत्तापमत्तेसु ॥ एवं पमत्तमियर परावत्तिसहस्सयं तु कादूण । इगिवीसमोहणीयं उवसमदि ण अण्णपयडीसु ॥ लब्धि. २१६-२१७.

गलिदसेसा उदयावलियबाहिरे आयुगवज्जाणं कम्माणं णिक्खित्ता । विदियसमए ट्ठिदि-अणुभागखंडय-ट्ठिदिबंधा ते चेव[1] । णवरि पढमसमए ओकड्डिददव्वादो असंखेज्जगुणं दव्वमोकड्डिदूण उदयावलियबाहिरट्ठिदिप्पहुडि गलिदसेसं गुणसेडिं करेदि । एवमंतोमुहुत्तं गंतूण पढमो अणुभागखंडगो पददि । एवमणुभागखंडयसहस्सेसु गदेसु तदो पढमो ट्ठिदिखंडओ पढमो ट्ठिदिबंधो अण्णेगो अणुभागखंडओ च जुगवं णिट्ठिदाओ । तदो से काले अण्णो ट्ठिदिबंधो, अण्णो ट्ठिदिखंडगो, अण्णो अणुभागखंडओ च आढत्तो[2] । गुणसेडी पुण अपुव्वकरणद्धादो अणियट्टीकरणद्धादो सुहुमसांपराइयअद्धादो च विसेसाहिया होदूण जा पुव्वं कदा सा चेव एत्थ वि । णवरि गलिदसेसा । अणेण आदीदो प्पहुडि ट्ठिदिखंडयपुधत्ते गदे णिद्दा-पयलाणं बंधवोच्छेदो भवदि । अपुव्वकरणद्धं सत्त खंडाणि कादूण पढमखंडे वोच्छिण्णा इदि उत्तं होदि । तदो अंतोमुहुत्ते गदे[3] पर-

....

अपूर्वकरणके प्रथम समयमें आयुको छोड़ शेष कर्मोंकी गुणश्रेणी उदयावलिसे बाह्यमें निक्षिप्त है। अपूर्वकरणके द्वितीय समयमें स्थितिकांडक, अनुभागकांडक और स्थितिबन्ध वे ही हैं। विशेष यह है कि प्रथम समयमें अपकृष्ट द्रव्यसे असंख्यातगुणे द्रव्यका अपकर्षण कर उदयावलिसे बाह्य स्थितिसे लेकर गलितशेष गुणश्रेणीको करता है। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त जाकर प्रथम अनुभागकाण्डक नष्ट होता है। इस प्रकार अनुभागकाण्डकसहस्रोंके बीतनेपर तत्पश्चात् प्रथम स्थितिकाण्डक, प्रथम स्थितिबन्ध और एक अन्य अनुभागकांडक, ये एक साथ ही समाप्त होते हैं। तत्पश्चात् अनन्तर समयमें अन्य स्थितिबन्ध, अन्य स्थितिकांडक और अन्य अनुभागकांडकका प्रारम्भ हुआ। परन्तु गुणश्रेणी अपूर्वकरणकालसे, अनिवृत्तिकरणकालसे और सूक्ष्मसाम्परायिककालसे विशेष अधिक होकर जो पूर्वमें की थी वही यहां भी है। विशेषता केवल यह है कि वह यहां गलितशेष है। इस क्रमसे आदिसे लेकर स्थितिकांडकपृथक्त्वके व्यतीत होनेपर निद्रा व प्रचलाकी बन्धव्युच्छित्ति होती है। अपूर्वकरणकालके सात खण्ड करके प्रथम खण्डमें निद्रा व प्रचलाकी बन्धव्युच्छित्ति होती है, यह उपर्युक्त कथनका अभिप्राय है। तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त व्यतीत होनेपर परभविक नामकर्मोंकी, बन्धव्युच्छित्ति होती है।

विशेषार्थ— नामकर्मकी जिन प्रकृतियोंका परभवसम्बन्धी देवगतिके साथ बंध होता है उन्हें परभविक नामकर्म कहा गया है। ऐसी प्रकृतियां कमसे कम सत्ताईस और अधिकसे अधिक तीस होती हैं—देवगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकको छोड़कर शेष चार शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक और आहारक आंगोपांग, देवगत्यानुपूर्वी,

....

१ प्रतिषु ' ते चे ' इति पाठ ।

२ अ आप्रत्योः ' आधत्तो ' इति पाठः ।

३ प्रतिषु ' अंतोमुहुत्तगदेसु ' इति पाठः ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

भवियणामाणं[1] बंधवोच्छेदो, पंच-सत्तभागे गंतूणेत्ति उत्तं होदि । अपुव्वकरणद्धाए जम्हि णिद्दा-पयलाओ वोच्छिण्णाओ सो कालो थोवो । परभवियणामाणं वोच्छिण्णकालो पंच-गुणो । अपुव्वकरणद्धा बे-सत्तभागाहिया । तदो अपुव्वकरणद्धाए चरिमसमए ट्ठिदि-खंडयमणुभागखंडयं ट्ठिदिबंधो च समगं णिट्ठिदा । तम्हि चेव समए हस्स-रदि-भय-दुगुंछाणं बंधो वोच्छिण्णो । हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछाछकम्माणमुदओ च तत्थेव वोच्छिण्णो ।

तदो से काले पढमसमयअणियट्टी जादो । पढमसमयअणियट्टिस्स ट्ठिदिखंडओ पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो । अपुव्वो ट्ठिदिबंधो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण हीणो । अणुभागखंडगो सेसस्स अणंता भागा । असंखेज्जगुणाए सेडीए सेसे सेसे

वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु आदि चार, प्रशस्त विहायोगति, त्रसादि चार, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थंकर । इनमेंसे आहारकशरीर, आहारक आंगोपांग और तीर्थंकर, ये तीन प्रकृतियां जब नहीं बंधती तब शेष सत्ताईस ही बंधती हैं ।

अपूर्वकरणके सात भागोंमेंसे पांच भागोंके बीत जानेपर उक्त नामकर्मोंकी बन्धव्युच्छित्ति होती है यह इसका अभिप्राय है । जिस अपूर्वकरणकालमें निद्रा-प्रचला प्रकृतियां बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं वह काल स्तोक है । इससे परभविक नामकर्मोंकी व्युच्छित्तिका काल पांचगुणा है । इससे अपूर्वकरणकाल दो बटे सात भाग ($\frac{2}{7}$) अधिक है । पश्चात् अपूर्वकरणकालके अन्तिम समयमें स्थितिकांडक, अनुभागकांडक और स्थितिबन्ध, ये एक साथ समाप्त होते हैं । उसी समयमें ही हास्य, रति, भय और जुगुप्सा, इन चार कर्मोंकी बन्धव्युच्छित्ति होती है । और वहां ही हास्य, रति, अरति, शोक, भय, और जुगुप्सा, इन छह कर्मोंकी उदयव्युच्छित्ति भी होती है ।

इसके पश्चात् अनन्तर समयमें प्रथम समय अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती हुआ । अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें स्थितिकांडक पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण है । अपूर्व अर्थात् नवीन स्थितिबन्ध पल्योपमके संख्यातवें भागसे हीन होता है । अनुभागकांडक शेषके अनन्त बहुभागमात्र है । असंख्यातगुणी श्रेणीरूपसे शेष शेषमें

---

१ तदो णिद्दापयलाबंधविच्छेदविसयादो उवरि पुव्वुत्तेणेव कमेण ट्ठिदि-अणुभागखंडयसहस्साणि अणुपाले-माणस्स हेट्ठिमद्धाणादो संखेज्जगुणमेत्ते अंतोमुहुत्ते गदे ताधे परभवसंबंधेण बज्झमाणाणं णामपयडीणं देवगदि-पंचिंदियजादि-वेउव्वियाहार-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-वेउव्वियाहारसरीरंगोवंग-देवगदिपाओग्गाणुपुव्वि-वण्ण-गंध-रस-फास-अगुरुचउक्क-पसत्थविहायगदि तसादिचउक्क-थिर-सुभ-सुभग सुस्सरादेज्ज-णिमिण-तित्थयरसण्णिदाण-मुक्कस्सेण तीससंखावहारियाणं जहण्णदो सत्तावीससंखाविसेसिदाणं बंधवोच्छेदो जादो । जयध. अ प. १००९. कुदो एदेसिं परभवियसण्णा ? परभवसंबंधिदेवगदीए सह बंधपाओग्गत्तादो । जयध. अ. प. १०७४.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

गुणसेढीणिक्खेवो । तिस्से चेव अणियट्टीअद्धाए पढमसमए अप्पसत्थउवसामणाकरण-णिधत्तीकरण-णिकांचणाकरणाणि वोच्छिण्णाणि[1,2] । एदेसिं करणाणं लक्खणगाहा—

[3]उदए संकम-उदए चदुसु वि दादुं कमेण णो सक्कं ।
उवसंतं च णिधत्तं णिकाचिदं चावि जं कम्मं ॥ १८ ॥

आयुगवज्जाणं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्ममंतोकोडाकोडीए, ट्ठिदिबंधो अंतोकोडीए[4] सदसहस्सपुधत्तं । तदो ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु अणियट्टीअद्धाए संखेज्जा भागा गदा । तदो अणियट्टीअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु असण्णिट्ठिदिबंधेण समगो ट्ठिदिबंधो[5] । तदो ठिदिबंधपुधत्ते गदे चउरिंदियठिदिबंधसमगो ठिदिबंधो जादो । तदो ठिदिबंधपुधत्ते गदे तीइंदियठिदिबंधेण समगो ठिदिबंधो । तदो ट्ठिदिबंधपुधत्ते गदे बीइंदिय-

---

गुणश्रेणीका निक्षेप है अर्थात् गलितशेष गुणश्रेणी होती है। उसी अनिवृत्तिकरण-कालके प्रथम समयमें अप्रशस्त प्रकृतियोंका उपशामनाकरण, निधत्तिकरण और निकाचनाकरण, ये तीन करण व्युच्छिन्न होते हैं। इन करणोंके लक्षणोंको सूचित करनेवाली गाथा यह है—

जो कर्म उदयमें न दिया जा सके वह उपशान्त, जो संक्रमण व उदय दोनोंमें ही न दिया जा सके वह निधत्त, तथा जो उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण व उदय, चारोंमें ही न दिया जा सके वह निकाचितकरण है ॥ १८ ॥

आयुको छोड़कर शेष सात कर्मोंका स्थितिसत्त्व अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण और स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ीके भीतर लक्षपृथक्त्वमात्र होता है । पश्चात् स्थितिकांडक-सहस्रोंके व्यतीत होनेपर अनिवृत्तिकरणकालके संख्यात बहुभाग चले जाते हैं। तब अनिवृत्तिकरणकालके संख्यात बहुभागोंके बीत जानेपर असंज्ञीके स्थितिबन्धके समान स्थितिबन्ध होता है । तदनन्तर स्थितिबन्धपृथक्त्वके बीत जानेपर चतुरिन्द्रियके स्थितिबन्धके सदृश स्थितिबन्ध होता है। तत्पश्चात् स्थितिबन्धपृथक्त्वके बीतनेपर त्रीन्द्रियके स्थितिबन्धके सदृश स्थितिबन्ध होता है। पुनः स्थितिबन्धपृथक्त्वके व्यतीत

---

१ प्रतिषु ' णिव्वत्ती-' इति पाठः ।

२ अणियट्टिस्स य पढमे अण्णट्ठिदिखंडपहुदिमारवई । उवसामणा णिधत्ती णिकाचणा तत्थ वोच्छिण्णा ॥ लब्धि. २२६.

३ गो. क. ४४०.

४ अंतोकोडाकोडी अंतोकोडी य सत्त बंधं च । सत्तण्हं पयडीणं अणियट्टीकरणपढमम्हि ॥ लब्धि. २२७.

५ ठिदिबंधसहस्सगदे संखेज्जा बादरे गदा भागा । तत्थ असण्णिस्स ठिदीसरिसट्ठिदिबंधणं होदि ॥ लब्धि. २२८.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

ट्ठिदिबंधेण समगो ट्ठिदिबंधो जादो। तदो ट्ठिदिबंधपुधत्ते गदे एइंदियट्ठिदिबंधेण समगो ट्ठिदिबंधो[1]। तदो ट्ठिदिबंधपुधत्ते गदे णामागोदाणं पलिदोवमट्ठिदिगो बंधो जादो। णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेदणीय-अंतराइयाणं च ताव दिवड्ढपलिदोवमट्ठिदिगो बंधो, मोहणीयस्स वेपलिदोवमट्ठिदिगो बंधो जादो[2]। एदम्हि ठिदिबंधे समत्ते णामा-गोदाणं पलिदोवमट्ठिदिगादो ट्ठिदिबंधादो जमण्णं ट्ठिदिबंधं बंधिहिदि सो ट्ठिदिबंधो संखेज्ज-गुणहीणो। सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो पुव्वट्ठिदिबंधादो पलिदोवमस्स संखेज्जदि-भागेण हीणो। एत्तो पहुडि णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधे पुण्णे संखेज्जगुणहीणो अण्णो ट्ठिदिबंधो होदि। सेसाणं कम्माणं जाव पलिदोवमट्ठिदिगं बंधं ण पावदि ताव पुण्णे ट्ठिदिबंधे जो अण्णो ट्ठिदिबंधो सो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण हीणो। एवं ट्ठिदि-बंधसहस्सेसु गदेसु णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेदणीय-अंतराइयाणं पलिदोवमट्ठिदिगो बंधो, मोहणीयस्स तिभागुत्तरपलिदोवमट्ठिदिगो बंधो जादो। तदो जो अण्णो णाणा-वरणादिचउण्हं पि ट्ठिदिबंधो सो पुव्वट्ठिदिबंधादो संखेज्जगुणहीणो। मोहणीयस्स

होनेपर द्वीन्द्रियके स्थितिबन्धके सदृश स्थितिबन्ध होता है। पुनः स्थितिबन्धपृथक्त्वके बीतनेपर एकेन्द्रियके स्थितिबन्धके सदृश स्थितिबन्ध होता है। तत्पश्चात् स्थितिबन्ध-पृथक्त्वके व्यतीत होनेपर नाम व गोत्र कर्मोंका पल्योपमस्थितिवाला बन्ध होता है। उस समय ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तराय, इनका ड्योढ़ पल्योपम-स्थितिवाला और मोहनीयका दो पल्योपमस्थितिवाला बन्ध होता है। इस स्थिति-बन्धके समाप्त होनेपर नाम-गोत्रोंके पल्योपमस्थितिवाले स्थितिबन्धसे, जो अन्य स्थिति-बन्ध बंधेगा वह स्थितिबन्ध संख्यातगुणा हीन है। शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध पूर्व स्थितिबन्धसे पल्योपमके संख्यातवें भागसे हीन है। यहांसे लेकर नाम व गोत्र प्रकृतियोंके स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर संख्यातगुणा हीन अन्य स्थितिबन्ध होता है। शेष कर्मोंका जब तक पल्योपमस्थितिवाला बन्ध नहीं प्राप्त होता तब तक स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर जो अन्य स्थितिबन्ध है वह पल्योपमके संख्यातवें भागसे हीन है। इस प्रकार स्थिति-बन्धसहस्रोंके बीतनेपर ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तराय, इनका पल्योपमस्थितिवाला बन्ध, तथा मोहनीयका त्रिभाग अधिक पल्योपमस्थितिवाला बन्ध होता है। तत्पश्चात् ज्ञानावरणादि चारों प्रकृतियोंका भी जो अन्य स्थितिबन्ध है वह पूर्व स्थितिबन्धसे संख्यातगुणा हीन है। मोहनीयका स्थितिबन्ध पल्योपमके संख्यातवें

१ ठिदिबंधपुधत्तगदे पत्तेयं चदुर तिय वि एएदि। ठिदिबंधसमं होदि हु ठिदिबंधमणुक्कमेणेव ॥ लब्धि. २२९.

२ एइंदियट्ठिदीदो संखसहस्से गदे दु ठिदिबंधो। पल्लेकदिवड्ढदुगे ठिदिबंधो वीसियतियाणं ॥ लब्धि. २३०.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

ट्ठिदिबंधो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण हीणो। तदो ट्ठिदिबंधपुधत्ते गदे मोहणीयस्स वि पलिदोवमट्ठिदिगो ठिदिबंधो जादो। तदो जो अण्णो ट्ठिदिबंधो सो आयुगवज्जाणं कम्माणं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो होदि।

एत्थ ट्ठिदिबंधस्स अप्पाबहुगं उच्चदे। तं जहा– णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो थोवो। मोहणीयवज्जाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो तुल्लो संखेज्जगुणो। मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। एदेण अप्पाबहुगविधिणा बहुसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु णामा-गोदाणं (पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ट्ठिदिबंधो जादो, मोहणीयवज्जाणं पुण कम्माणं ट्ठिदिबंधो) पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो चेव। एत्थ अप्पाबहुगं– णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो थोवो। चदुण्हं कम्माणं ट्ठिदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो। मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। एदेण अप्पाबहुगविधिणा बहुसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु चदुण्हं कम्माणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ट्ठिदिबंधो जादो। तावे अप्पाबहुगं– णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो थोवो। चदुण्हं कम्माणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। एदेण अप्पाबहुगविधिणा बहुसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु तदो मोहणीयस्स पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ट्ठिदिबंधो जादो। ताधे अप्पाबहुगं– णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो थोवो। चदुण्हं कम्माणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो।

भागसे हीन है। पश्चात् स्थितिबन्धपृथक्त्वके व्यतीत होनेपर मोहनीयका भी पल्योपम-स्थितिवाला बन्ध होने लगता है। तदनन्तर जो अन्य स्थितिबन्ध है वह आयुको छोड़कर शेष कर्मोंका पल्योपमके संख्यातवें भागमात्र होता है।

अब यहां स्थितिबन्धका अल्पबहुत्व कहा जाता है। वह इस प्रकार है—नाम व गोत्र प्रकृतियोंका स्थितिबन्ध स्तोक है। मोहनीयको छोड़कर शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध परस्पर तुल्य होता हुआ संख्यातगुणा है। मोहनीयका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इस अल्पबहुत्वविधिसे बहुत स्थितिबन्धसहस्रोंके बीत जानेपर नाम-गोत्र प्रकृतियोंका (स्थितिबन्ध पल्योपमके असंख्यातवें भाग हो गया, किन्तु मोहनीयको छोड़कर शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध) पल्योपमके संख्यातवें भागमात्र ही है। यहां अल्पबहुत्व इस प्रकार है—नाम-गोत्र प्रकृतियोंका स्थितिबन्ध स्तोक है। चार कर्मोंका स्थितिबन्ध तुल्य असंख्यातगुणा है। मोहनीयका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इस अल्पबहुत्वविधिसे बहुत स्थितिबन्ध-सहस्रोंके बीत जानेपर चार कर्मोंका स्थितिबन्ध पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र हो जाता है। तब अल्पबहुत्व इस प्रकार होता है—नाम-गोत्र प्रकृतियोंका स्थितिबन्ध स्तोक है। चार कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है। मोहनीयका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है। इस अल्पबहुत्वविधिसे बहुत स्थितिबन्धसहस्रोंके व्यतीत होनेपर तब मोहनीयका स्थितिबन्ध पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र हो जाता है। उस समय अल्पबहुत्वका क्रम यह है– नाम-गोत्र प्रकृतियोंका स्थितिबन्ध स्तोक है। चार कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है। मोहनीयका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है। इस क्रमसे बहुत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एदेण कमेण बहुसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु तदो एक्कसराहेण मोहणीयट्ठिदिबंधो कम्मचउक्कट्ठिदिबंधादो असंखेज्जगुणहीणो जादो[1]। तत्थ अप्पाबहुगं– णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो थोवो। मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। चउण्हं कम्माणं ट्ठिदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो। जाव मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो उवरि आसी ताव असंखेज्जगुणो चेव आसी, असंखेज्जगुणादो[2] चेव असंखेज्जगुणहीणो जादो। एदेण अप्पाबहुगविहिणा[3] बहुसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु णामा-गोदट्ठिदिबंधादो एक्कसराहेण मोहणीयट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणहीणो जादो[4]। ताधे अप्पाबहुगं– मोहणीयट्ठिदिबंधो थोवो। णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो[5]। चउण्हं कम्माणं ट्ठिदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो। एदेण कमेण बहुसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु एक्कसराहेण वेदणीयट्ठिदिबंधादो णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणहीणो विसेसहीणो वा अहोदूण असंखेज्जगुणहीणो चेव जादो[6]। तत्थ अप्पाबहुगं– मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो थोवो। णामा-गोदाणं

स्थितिबन्धसहस्रोंके बीत जानेपर तब एक साथ मोहनीयका स्थितिबन्ध उपर्युक्त चार कर्मोंके स्थितिबन्धसे असंख्यातगुणा हीन हो जाता है। तब अल्पबहुत्व ऐसा होता है— नाम-गोत्र प्रकृतियोंका स्थितिबन्ध स्तोक है। मोहनीयका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है। चार कर्मोंका स्थितिबन्ध तुल्य असंख्यातगुणा है। जब तक मोहनीयका स्थितिबन्ध ऊपर अर्थात् चार कर्मोंसे अधिक था तब तक चार कर्मोंके स्थितिबन्धसे असंख्यातगुणा ही था। परन्तु अब वह कर्मचतुष्टयसे असंख्यातगुणा अधिक न होकर असंख्यातगुणा हीन हुआ है। इस अल्पबहुत्वविधिसे बहुत स्थितिबन्धसहस्रोंके बीत जानेपर नाम-गोत्र प्रकृतियोंके स्थितिबन्धसे एक साथ मोहनीयका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा हीन हो जाता है। उस समय अल्पबहुत्व ऐसा होता है—मोहनीयका स्थितिबन्ध स्तोक है। नाम-गोत्र प्रकृतियोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है। चार कर्मोंका स्थितिबन्ध तुल्य असंख्यातगुणा है। इस क्रमसे बहुत स्थितिबन्धसहस्रोंके बीत जानेपर एक साथ वेदनीयके स्थितिबन्धसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय, इनका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा हीन अथवा विशेष हीन न होकर असंख्यातगुणा हीन ही हो जाता है। उस समय अल्पबहुत्व इस प्रकार है—मोहनीयका स्थितिबन्ध स्तोक है। नाम-गोत्र प्रकृतियोंका

---

१ मोहगपल्लासंखट्ठिदिबन्धसहस्सगेसु तीदेसु। मोहो तीसियहेट्ठा असंखगुणहीणयं होदि॥ लब्धि. २३३.

२ प्रतिषु ' आसंखेज्जगुणादो ' इति पाठः।

३ प्रतिषु ' –ट्ठिदिणा ' इति पाठः।

४ तेत्तियमेत्ते बंधे समतीदे वीसियाण हेट्ठावि। एक्कसराहो मोहो असंखगुणहीणयं होदि॥ लब्धि. २३४.

५ अ-प्रतौ ' असंखेज्जगुणहीणो जादो ' इति पाठः।

६ तेत्तियमेत्ते बंधे समतीदे वेयणीयहेट्ठादु। तीसियघादितियाओ असंखगुणहीणया होंति॥ २३५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ट्ठिदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो । णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं ट्ठिदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो । वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । एदेण अप्पाबहुगविधिणा बहुएसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु एक्कसराहेण तिण्हं कम्माणं ट्ठिदिबंधो णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधादो असंखेज्जगुणहीणो जादो । वेदणीयट्ठिदिबंधो वि तत्तो विसेसाहिओ जादो[1] । ताधे अप्पाबहुगं– मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो थोवो । णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं ट्ठिदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो । णामा-गोदाणं ठिदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो । वेदणीयट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ।

एदेण अप्पाबहुगविधिणा संखेज्जाणि ट्ठिदिबंधसहस्साणि कादूण उवरि गच्छमाणस्स बज्झमाणपयडीणं ट्ठिदिबंधो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो चेव । तदो असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा च जादा[2] । तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु मणपज्जवणाणावरणीय-दाणंतराइयाणमणुभागो बंधेण देसघादी होदि । तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधेसु गदेसु ओहिणाणावरणीय-ओहिदंसणावरणीय-लाहंतराइयाणमणुभागो बंधेण

स्थितिबन्ध तुल्य असंख्यातगुणा है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय, इनका स्थितिबन्ध तुल्य असंख्यातगुणा है। वेदनीयका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है। इस अल्पबहुत्वविधिसे बहुत स्थितिबन्धसहस्रोंके बीत जानेपर एक साथ तीनों कर्मोंका स्थितिबन्ध नाम-गोत्र प्रकृतियोंके स्थितिबन्धसे असंख्यातगुणा हीन हो जाता है। वेदनीयका स्थितिबन्ध भी नाम-गोत्र प्रकृतियोंके स्थितिबन्धसे विशेष अधिक हो जाता है। उस समय अल्पबहुत्व इस प्रकार है— मोहनीयका स्थितिबन्ध स्तोक है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय, इनका स्थितिबन्ध तुल्य असंख्यातगुणा है। नाम-गोत्र प्रकृतियोंका स्थितिबन्ध तुल्य असंख्यातगुणा है। वेदनीयका स्थितिबन्ध विशेष अधिक है।

इस अल्पबहुत्वविधिसे संख्यात स्थितिबन्धसहस्रोंको करके ऊपर जानेवाले जीवके बध्यमान प्रकृतियोंका स्थितिबन्ध पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र ही रहता है। तब असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा भी होती है। पुनः संख्यात स्थितिबन्धसहस्रोंके व्यतीत होनेपर मनःपर्ययज्ञानावरणीय और दानांतरायका अनुभाग बन्धसे देशघाती होता है। तत्पश्चात् संख्यात स्थितिबन्धोंके वीतनेपर अवधिज्ञानावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और लाभान्तराय, इनका अनुभाग बन्धसे देशघाती हो

---

१ तेत्तियमेत्ते बंधे समतीदे वीसियाण हेट्ठादु । तीसियघादितियाओ असंखगुणहीणया होंति ॥ तक्काले वेयणियं णामागोदादु साहियं होदि । इदि मोहतीसवीसियवेयणियाणं कमो जादो ॥ लब्धि. २३६-२३७.

२ तीदे बंधसहस्से पल्लासंखेज्जयं तु ठिदिबंधो । तत्थ असंखेज्जाणं उदीरणा समयपबद्धाणं ॥ लब्धि. २३८.

देसघादी होदि। तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधेसु गदेसु सुदणाणावरणीय-अचक्खुदंसणावरणीय-भोगंतराइयाणमणुभागो बंधेण देसघादी होदि। तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधेसु गदेसु चक्खुदंसणावरणीयस्स अणुभागो बंधेण देसघादी होदि। तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधेसु गदेसु आभिणिबोहिय-परिभोगंतराइयाणमणुभागो बंधेण देसघादी होदि। तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधेसु गदेसु वीरियंतराइयस्स अणुभागो बंधेण देसघादी होदि[1]। एदेसिं कम्माणं सव्वो अक्खवगो अणुवसामगो च सव्वो सव्वघादिअणुभागं बंधदि[2]। एदेसु कम्मेसु बंधेण देसघादित्तं पत्तेसु ट्ठिदिबंधो मोहणीए थोवो। णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइएसु ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। णामा-गोदेसु ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। वेदणीए ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।

तदो देसघादिकरणादो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु अंतरकरणं बारसण्हं कसायाणं णवण्हं णोकसायाणं च करेदि[3]। णत्थि अण्णस्स कम्मस्स अंतरकरणं। जं संजुलणं वेदयदि, जं च वेदं वेदयदि, एदेसिं दोण्हं कम्माणं पढमट्ठिदीओ अंतोमुहुत्ति-

---

जाता है। तत्पश्चात् पुनः संख्यात स्थितिबन्धोंके वीतनेपर श्रुतज्ञानावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, और भोगान्तराय, इनका अनुभाग बन्धसे देशघाती हो जाता है। तत्पश्चात् पुनः संख्यात स्थितिबन्धोंके व्यतीत होनेपर चक्षुदर्शनावरणीयका अनुभाग बन्धसे देशघाती हो जाता है। पश्चात् पुनः संख्यात स्थितिबन्धोंके वीतनेपर मतिज्ञानावरणीय और परिभोगान्तरायका अनुभाग बन्धसे देशघाती हो जाता है। पश्चात् पुनः संख्यात स्थितिबन्धोंके वीतनेपर वीर्यान्तरायका अनुभाग बन्धसे देशघाती हो जाता है। सब अक्षपक और सब ही अनुपशामक इन कर्मोंके सर्वघाती अनुभागको बांधते हैं। इन कर्मोंके बन्धसे देशघातित्वको प्राप्त होनेपर मोहनीयमें स्थितिबन्ध स्तोक होता है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय, इनमें स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा होता है। नाम व गोत्रमें स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा होता है। वेदनीयमें स्थितिबन्ध विशेष अधिक होता है।

इसके पश्चात् देशघातिकरणसे संख्यात स्थितिबन्धसहस्रोंके वीतनेपर बारह कषाय और नव नोकषायोंका अन्तरकरण करता है। अन्य कर्मका अन्तरकरण नहीं है। जो संज्वलन उदयको प्राप्त है और जो वेद उदयको प्राप्त है, इन (संज्वलनचतुष्कमेंसे उदयप्राप्त कोई एक और वेदत्रयमेंसे उदयप्राप्त कोई एक) दोनों कर्मोंकी प्रथम स्थितियोंको

---

१ ठिदिबंधसहस्सगदे मणदाणा तत्तिये वि ओहिदुगं। लाभं व पुणो वि सुदं अचक्खु भोगं पुणो चक्खु ॥ पुणरवि मदिपरिभोगं पुणरवि विरियं कमेण अणुभागो। बंधेण देसघादी पल्लासंखं तु ठिदिबंधे ॥ लब्धि- २३९-२४०.

२ अस्माद्देशघातिकरणप्रारम्भात्प्रागवस्थायां संसारावस्थायां च सर्वघातिस्पर्धकानुभागमेव बध्नातीत्यर्थः। लब्धि. २३९-२४० टीका.

३ तो देसघातिकरणादुवरिं तु गदेसु तत्तियपदेसु। इगिवीसमोहणीयाणंतरकरणं करेदीदि ॥ लब्धि. २४१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

याओ ठवेदूण अंतरकरणं करेदि[1]। पढमट्ठिदीदो संखेज्जगुणाओ ट्ठिदीओ एदेसिं दोण्हं कम्माणमंतरट्ठमागाइदाओ। सेसाणमेक्कारसण्हं कसायाणमट्ठण्हं णोकसायाणं च उदयावलियं मोत्तूण अंतरं करेदि। उवरि अंतरं समट्ठिदी, हेट्ठा विसमट्ठिदी[2]। जावे अंतरमुक्कीरिदुमाढत्तं ताधे अण्णो ट्ठिदिबंधो, अण्णो ट्ठिदिखंडओ, अण्णो अणुभागखंडओ च आढत्तो[3]। अणुभागखंडयसहस्सेसु[4] गदेसु अण्णो अणुभागखंडओ, सो च ट्ठिदिखंडओ, सो च ट्ठिदिबंधो, अंतरस्स उक्कीरणद्धा च समगं पुण्णाणि। अंतरं करेमाणस्स जे कम्मंसा बज्झंति, वेदिज्जंति य, तेसिं कम्माणमंतरट्ठिदीओ उक्कीरंतो तासिं ट्ठिदीणं पदेसग्गं बंधपयडीणं पढमट्ठिदीए च देदि[5], बिदियट्ठिदीए च देदि[5]। जे कम्मंसा ण

अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थापित कर अन्तरकरण करता है। अन्तरके लिये इन दोनों कर्मोंकी स्थितियां प्रथमस्थितियोंसे संख्यातगुणी ग्रहण की जाती हैं। शेष ग्यारह कषाय और आठ नोकषायोंकी उदयावलीको छोड़कर अन्तर करता है। अन्तरसे ऊपरके उदय व अनुदयरूप सब कषायोंके निषेक सदृश हैं। परन्तु अन्तरके नीचे उदय व अनुदयरूप प्रकृतियोंके निषेक प्रथमस्थितिके विषम होनेसे परस्परमें समान नहीं हैं। जब उक्त निषेकोंको उत्कीर्ण करनेके लिये अन्तरका प्रारम्भ होता है तब अन्य स्थितिबन्ध, अन्य स्थितिकांडक और अन्य ही अनुभागकांडकका आरम्भ होता है। अनुभागकांडकसहस्रोंके बीतनेपर अन्य अनुभागकाण्डक तथा वही स्थितिकांडक, वही स्थितिबन्ध और अन्तरका उत्कीरणकाल, ये एक साथ पूर्णताको प्राप्त होते हैं। अन्तरको करनेवालेके जो कर्मांश बंधते हैं और उदयमें रहते हैं उन कर्मोंकी अन्तरस्थितियोंको उत्कीर्ण करता हुआ उन स्थितियोंके प्रदेशाग्रको बन्धप्रकृतियोंकी प्रथमस्थितिमें भी देता है और द्वितीयस्थितिमें भी देता है। जो कर्मांश न बंधते हैं और न उदयको ही प्राप्त हैं, उनके उत्कीर्ण

१ संजलणाणं एक्कं वेदाणेक्कं उदेदि तं दोण्हं। सेसाणं पढमट्ठिदि ठवेदि अंतोमुहुत्त आवलियं॥ लब्धि २४२.

२ उवरि समं उक्कीरइ हेट्ठा विसमं तु मज्झिमपमाणं। तदुवरि पढमठिदीदो संखेज्जगुणं हवे णियमा॥ लब्धि. २४३. उवरि समट्ठिदि अंतरं हेट्ठा विसमट्ठिदि अंतरं। सव्वेसिमेव कसायणोकसायाणमुदइल्लाणमणुदइल्लाणं च अंतरं चरिमट्ठिदी सरिसी चेव होई, बिदियट्ठिदीए पढमणिसेयस्स सव्वत्थ सरिसभावेणावट्ठाणदंसणादो। तदो उवरि समट्ठिदि अंतरमिदि वुत्तं। हेट्ठा पुण विसरिसमंतरं होई, अणुदइल्लाणं सव्वेसिं पि सरिसत्ते वि उदइल्लाणमण्णदरवेदसंजलणाणमंतोमुहुत्तमेत्तपढमट्ठिदीदो परदो अंतरपढमट्ठिदीए समवट्ठाणदंसणादो। तदो पढमट्ठिदीए विसरिसत्तमस्सियूण हेट्ठा विसमट्ठिदियमंतरं होदि त्ति भणिदं। जयध. अ. प. १०१४.

३ अंतरपढमे अण्णो ठिदिबंधो ठिदिरसाण खंडो य। एयट्ठिदिखंडुक्कीरणकाले अंतरसमत्ती॥ लब्धि. २४४.

४ अ-प्रतौ 'अणुभागखंडयंससहस्सेसु' आप्रतौ 'अणुभागखंडयंसहस्सेसु' इति पाठः।

५ आप्रतौ 'कडेदि' मप्रतौ 'चदेदि' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बज्झंति, ण वेदिज्जंति य, तेसिमुक्कीरिज्जमाणपदेसग्गं सट्ठाणे ण देदि, बज्झमाणीणं पयडीणमणुक्कीरमाणीसु ट्ठिदीसु च देदि[1]। जे कम्मंसा बज्झंति, ण वेदिज्जंति तेसिमुक्कीरिज्जमाणपदेसग्गं बज्झमाणीणं पयडीणमणुक्कीरमाणीसु ट्ठिदीसु देदि। एदेण कमेण अंतरमुक्कीरमाणमुक्किण्णं।

तावे चेव मोहणीयस्स आणुपुव्वीसंकमो, लोभस्स असंकमो, मोहणीयस्स एगट्ठाणीओ बंधो, णउंसयवेदस्स पढमसमयउवसामगो, छसु आवलियासु गदासु उदीरणा, मोहणीयस्स एगट्ठाणीओ उदओ, मोहणीयस्स संखेज्जवस्सट्ठिदीओ बंधो, एदाणि सत्त करणाणि अंतरकदपढमसमए होंति[2]।

जधा संसारावत्थाए आवलियादिक्कंतमुदीरिज्जदि तधा एत्थ छावलियादिक्कमणेण विणा आवलियादिक्कंतं किण्ण उदीरिज्जदि? ण एस दोसो, खवगुवसामयाणं अक्खवग-अणुवसामगेहि साधम्माभावा। जो जाए जाईए पडिवण्णो, सो ताए चेव

किये जानेवाले प्रदेशाग्रको स्वस्थानमें नहीं देता है, बध्यमान प्रकृतियोंकी उत्कीर्ण की जानेवाली स्थितियोंमें देता है। जो कर्मांश बंधते हैं किन्तु उदयको प्राप्त नहीं हैं, उनके उत्कीर्ण किये जानेवाले प्रदेशाग्रको बध्यमान प्रकृतियोंकी उत्कीर्ण न की जानेवाली स्थितियोंमें देता है। इस क्रमसे उत्कीर्ण किया जानेवाला अन्तर उत्कीर्ण हो गया।

तभी मोहनीयका आनुपूर्वीसंक्रमण (१) लोभका असंक्रमण (२) मोहनीयका एकस्थानीय (लतासमान) बन्ध (३) नपुंसकवेदका प्रथमसमयवर्ती उपशामक (४) छह आवलियोंके व्यतीत होनेपर उदीरणा (५) मोहनीयका एकस्थानीय (लतासमान) उदय (६) मोहनीयका संख्यात वर्षमात्र स्थितिवाला बन्ध (७), ये सात करण अन्तर कर चुकनेके पश्चात् प्रथम समयमें होते हैं।

शंका—जिस प्रकार संसारावस्थामें आवलिमात्र कालका अतिक्रमण होनेपर उदीरणा होती है, उसी प्रकार यहां छह आवलियोंके अतिक्रमणके विना आवलिमात्र कालके बीतनेपर क्यों नहीं उदीरणा होती?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, क्षपक और उपशामकोंकी अक्षपक और अनुपशामकोंके साथ समानता नहीं है। जो धर्म जिस जातिमें प्राप्त है वह उसी

---

१ अ-आप्रत्योः 'चडेदि' इति पाठः

२ सत्त करणाणि यंतरकदपढमे होंति मोहणीयस्स। इगिठाणियबंधुदओ ठिदिबंधे संखवस्सं च॥ अणुपुव्वीसंकमणं लोहस्स असंकमं च संढस्स। पढमोवसामकरणं छावलितीदेसुदीरणदा॥ लब्धि. २४८-२४९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाईए होदि त्ति वोत्तुं जुत्तं, ण अण्णत्थ, अणवत्थावत्तीदो। तदो एत्थ बंधसमयप्पहुडि छसु आवलियासु आइच्छिदासु उदीरणा होदि त्ति घेत्तव्वं।

अंतरादो पढमसमयकदादो पाएण णउंसयवेदस्स आउत्तकरणउवसामओ, सेसाणं कम्माणं ण किंचि[3] उवसामेदि[4]। जं पढमसमए पदेसग्गमुवसामेदि तं थोवं। जं विदियसमए उवसामेदि तं असंखेज्जगुणं। जं तदियसमए पदेसग्गमुवसामेदि तमसंखेज्जगुणं। एवमसंखेज्जगुणाए सेडीए उवसामेदि जाव उवसंतमिदि। णउंसयवेदस्स पढमसमयउवसामयस्स जस्स वा तस्स वा कम्मस्स पदेसग्गस्स उदीरणा थोवा, उदओ असंखेज्जगुणो। णउंसयवेदस्स पदेसग्गमण्णपयडिं संकामिज्जमाणयमसंखेज्जगुणं, उवसामिज्जमाणयमसंखेज्जगुणं[5]। (एवं) जाव चरिमसमयउवसंतेत्ति उव-

जातिमें होता है, इस प्रकार कहना उचित है। परन्तु एक जातिमें प्राप्त धर्म अन्यत्र होता है, इस प्रकार कहना उचित नहीं है, क्योंकि, ऐसा माननेपर अनवस्था दोष आता है। इसी कारण यहां बन्धसमयसे लेकर छह आवलियोंका अतिक्रमण होनेपर ही उदीरणा होती है, ऐसा ग्रहण करना चाहिये।

अन्तरकरणके पश्चात् प्रथम समयसे लेकर अनिवृत्तिकरणसंयत नपुंसकवेदका आवृत्तकरणउपशामक होता है, शेष कर्मोंका किंचित् भी उपशम नहीं करता है। जिस प्रदेशाग्रको प्रथम समयमें उपशान्त करता है वह स्तोक है। जिसे द्वितीय समयमें उपशान्त करता है वह असंख्यातगुणा है। जिस प्रदेशाग्रको तृतीय समयमें उपशान्त करता है वह उससे असंख्यातगुणा है। इस प्रकार असंख्यातगुणी श्रेणीसे उपशान्त होने तक उपशमाता है। नपुंसकवेदके प्रथमसमयवर्ती उपशामकके जिस किसी भी कर्मके प्रदेशाग्रकी उदीरणा स्तोक है। उससे उदय असंख्यातगुणा है। अन्य प्रकृतिरूप संक्रमण कराये जानेवाले नपुंसकवेदका प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। इससे उपशान्त कराया जानेवाला प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। इस प्रकार उपशान्त होनेके अन्तिम समय तक

१ अ-आप्रत्योः 'खंध-' इति पाठः।

२ किमाउत्तकरणं णाम? आउत्तकरणमुज्जतकरणं पारंभकरणमिदि एयट्ठो। तात्पर्येण नपुंसकवेदमितः प्रभृत्युपशमयतीत्यर्थः। जयध. अ. प. १०१९.

३ अ-प्रतौ 'कम्माणं किंचि' इति पाठः।

४ अंतरकदपढमादो पडिसमयमसंखगुणविहाणकमेणुवसामेदि हु संढं उवसंतं जाण ण च अण्णं॥ लब्धि. २५२.

५ संढादिमउवसमगे इट्ठस्स उदीरणा य उदओ य। संढादो संकामिदं उवसमियमसंखगुणियकमा॥ लब्धि. २५३.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

सामिज्जमाणयपदेसमाहप्पजाणावणट्ठमप्पाबहुगं कायव्वं । जाधे पाए मोहणीयस्स ट्ठिदि-बंधो संखेज्जवस्सट्ठिदिओ जादो[1] ताधे पाए ट्ठिदिबंधे पुण्णे पुण्णे अण्णो ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणहीणो[2]। मोहणीयवज्जाणं पुण कम्माणं णउंसयवेदमुवसामेंतस्स ट्ठिदिबंधे पुण्णे पुण्णे अण्णो ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणहीणो। अंतरकरणकदपढमसमयादो पहुडि मोह-णीयस्स णत्थि ट्ठिदिघादो अणुभागघादो वा[3]। कुदो ? उवसंतपदेसग्गस्स ट्ठिदि-अणु-भागेहि चलणाभावा। उवसंतुवसामिज्जमाणमोहपयडीओ मोत्तूण सेसाणं दो घादा किण्ण होंति ? ण, पुव्वमुवसंतपयडि-ट्ठिदिसंतकम्मादो पच्छा उवसंतपयडि-ट्ठिदिसंत-कम्मस्स संखेज्जगुणहीणत्तप्पसंगादो। एवं संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु णउंसयवेदो उवसामिज्जमाणो उवसंतो[4]।

उपशान्त किये जानेवाले प्रदेशका माहात्म्य जाननेके लिये उक्त प्रकार अल्पबहुत्व करना चाहिये। जबसे लेकर मोहनीयका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षमात्र स्थितिवाला होता है तबसे लेकर प्रत्येक स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर अन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा हीन होता है। पुनः नपुंसकवेदका उपशम करनेवालेके मोहनीयके अतिरिक्त शेष कर्मोंके प्रत्येक स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर अन्य स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा हीन होता है। अन्तर-करण करनेके पश्चात् प्रथम समयसे लेकर मोहनीयका स्थितिघात व अनुभागघात नहीं है, क्योंकि, उपशान्त हुए प्रदेशाग्रके स्थिति व अनुभागसे चलन अर्थात् हानि-वृद्धिका अभाव है।

शंका—उपशान्त हुई व उपशमको प्राप्त होनेवाली मोहप्रकृतियोंको छोड़कर शेष प्रकृतियोंके उक्त दो घात क्यों नहीं होते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, ऐसा होनेपर पूर्वमें उपशान्त हुई प्रकृतियोंके स्थिति-सत्त्वसे पीछे उपशान्त होनेवाली प्रकृतियोंके स्थितिसत्त्वको संख्यातगुणी हीनताका प्रसंग आवेगा।

इस प्रकार संख्यात स्थितिबन्धसहस्रोंके व्यतीत होनेपर उपशमको प्राप्त कराया जानेवाला नपुंसकवेद उपशान्त हो जाता है।

---

१ प्रतिषु ' जाधे ' इति पाठः।

२ जत्तो पाये होदि हु ठिदिबंधो संखवस्समेत्तं तु। तत्तो संखगुणूणं बंधोसरणं तु पयडीणं ॥ लब्धि. २५५.

३ अंतरकरणादुवरिं ठिदिरसखंडा ण मोहणीयस्स। ठिदिबंधोसरणं पुण संखेज्जगुणेण हीणकमं ॥ लब्धि २५४.

४ एवं संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सगेसु तीदेसु। संढुवसमदे तत्तो इत्थिं च तहेव उवसमदि॥ लब्धि. २५८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णउंसयवेदे उवसंते से काले इत्थिवेदस्स उवसामगो, पुरिसवेदोदएण उवसमसेडिमारोहणादो। ताधे चेव अपुव्वो ट्ठिदिखंडओ, अपुव्वो अणुभागखंडओ, अपुव्वो चरिमट्ठिदिबंधो पत्थिदो। जेण कमेण[1] णउंसयवेदो उवसामिदो तेणेव कमेण इत्थिवेदं पि गुणसेडीए उवसामेदि। एवं ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु इत्थिवेदं च[2] उवसामेदि। एवं ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु इत्थिवेदस्स उवसामगद्धाए संखेज्जदिभागे गदे तदो णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं संखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो होदि। जाधे संखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो ताधे चेव एदासिं तिण्हं मूलपयडीणं केवलणाणावरणवज्जाओ सेसाओ जाओ उत्तरपयडीओ तासिमेगट्ठाणिओ बंधो[3]। जत्तो[4] पाए णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं संखेज्जवस्सट्ठिदिओ बंधो तम्हि पुण्णे जो अण्णो ट्ठिदिबंधो सो संखेज्जगुणहीणो। तम्हि समए सव्वकम्माणमप्पाबहुअं। तं जहा– सव्वत्थोवो मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो। णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ। एदेण कमेण संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु

नपुंसकवेदके उपशान्त हो जानेपर अनन्तर कालमें स्त्रीवेदका उपशामक होता है, क्योंकि पुरुषवेदके उदयसे उपशमश्रेणीका आरोहण हुआ था। उसी समयमें अपूर्व स्थितिकांडक, अपूर्व अनुभागकांडक और अपूर्व अन्तिम स्थितिबन्ध प्रारम्भ होता है। जिस क्रमसे नपुंसकवेदका उपशम किया था उसी क्रमसे स्त्रीवेदको भी गुणश्रेणीसे उपशमाता है। इस प्रकार स्थितिबन्धसहस्रोंके व्यतीत होनेपर वह स्त्रीवेदको भी उपशमाता है। इस प्रकार स्थितिबन्धसहस्रोंके व्यतीत होनेपर जब स्त्रीवेदके उपशामककालका संख्यातवां भाग वीत जाता है तब ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय, इनका संख्यात वर्षकी स्थितिवाला बन्ध होता है। जिस समयमें संख्यात वर्षकी स्थितिवाला बन्ध होता है उसी समय ही इन तीन मूल प्रकृतियोंकी केवलज्ञानावरणको छोड़कर जो शेष उत्तरप्रकृतियां हैं उनका एकस्थानिक अनुभागबन्ध होने लगता है। जहांसे लेकर ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय, इनका संख्यात वर्षकी स्थितिवाला बन्ध है उसके पूर्ण होनेपर जो अन्य बन्ध होता है वह संख्यातगुणा हीन होता है। उस समयमें सब कर्मोंका अल्पबहुत्व इस प्रकार है—मोहनीयका स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय, इनका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। नाम-गोत्रका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है। वेदनीयका स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इस क्रमसे संख्यात

---

१ प्रतिषु 'कम्मेण' इति पाठ।

२ प्रतिषु 'इत्थिवेदस्स' इति पाठः।

३ थीअद्धा संखेज्जदिभागेपगदे तिघादिठिदिबंधो। संखतुवं रसबंधो केवलणाणेगठाणं तु॥ लब्धि. २५९.

४ प्रतिषु 'जधो' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्थिवेदो उवसामिदो ।

इत्थिवेदे उवसंते से काले सत्तण्हं णोकसायाणमुवसामओ[1] । ताधे चेव अण्णो ट्ठिदिखंडओ अण्णो अणुभागखंडओ च आगाइदो, अण्णो च ट्ठिदिबंधो पबद्धो । एवं संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु सत्तण्हं णोकसायाणमुवसामणद्धाए संखेज्जदिभागे गदे तदो णामा-गोद-वेदणीयाणं कम्माणं संखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो[2] । ताधे ट्ठिदिबंधस्स अप्पाबहुगं । तं जधा– सव्वत्थोवो मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो । णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ । एदम्हि ट्ठिदिबंधे पुण्णे जो अण्णो ट्ठिदिबंधो सो सव्वकम्माणं पि अप्पप्पणो ट्ठिदिबंधादो संखेज्जगुणहीणो । एदेण कमेण ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु सत्त णोकसाया उवसामिज्जमाणा उवसंता । णवरि पुरिसवेदस्स समऊणवेआवलियबद्धा अणुवसंता[3] । तस्समए पुरिसवेदस्स ट्ठिदिबंधो सोलस वस्साणि । संजुलणाणं ट्ठिदिबंधो बत्तीस

....

स्थितिबन्धसहस्रोंके वीतनेपर स्त्रीवेदका उपशम हो चुकता है ।

स्त्रीवेदके उपशान्त होनेपर अनन्तर कालमें सात नोकषायोंका उपशामक होता है । उसी समयमें अन्य स्थितिकांडक और अन्य ही अनुभागकांडक ग्रहण किया जाता है, तथा अन्य ही स्थितिबन्ध बंधता है । इस प्रकार संख्यात स्थितिबन्धसहस्रोंके वीतनेपर जब सात नोकषायोंके उपशामककालका संख्यातवां भाग वीत जाता है तब नाम, गोत्र व वेदनीय, इन कर्मोंका संख्यात वर्षकी स्थितिवाला वन्ध होने लगता है । तब स्थितिबन्धका अल्पबहुत्व इस प्रकार होता है—मोहनीयका स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है । ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय, इनका स्थितिवन्ध संख्यातगुणा है । नाम व गोत्रका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । वेदनीयका स्थितिवन्ध विशेष अधिक है । इस स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर जो अन्य स्थितिबन्ध होता है वह सब कर्मोंका ही अपने अपने स्थितिबन्धसे संख्यातगुणा हीन होता है । इस क्रमसे स्थितिबन्धसहस्रोंके वीतनेपर उपशान्त की जानेवाली सात नोकषायोंका उपशम हो चुकता है । विशेष इतना है कि पुरुषवेदके एक समय कम दो आवलिमात्र समयप्रबद्ध अभी अनुपशान्त हैं । उस समयमें पुरुषवेदका स्थितिबन्ध सोलह वर्ष, संज्वलनचतुष्टयका स्थितिबन्ध

....

१ थीउवसमिदाणंतरसमयादो सत्तणोकसायाणं । उवसमगो तस्सद्धासंखेज्जदिमे गदे तत्तो ॥ लब्धि. २६०.

२ णामदुग वेयणीयट्ठिदिबंधो संखवस्सयं होदि । एवं सत्तकसाया उवसंता सेसभागंते ॥ लब्धि. २६१.

३ णवरि य पुंवेदस्स य णवकं समऊणदोण्णिआवलियं । मुच्चा सेसं सव्वं उवसंते होदि तच्चरिमे ॥ लब्धि. २६२.

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

वस्साणि । सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि[1] ।

पुरिसवेदस्स पढमट्ठिदीए जाधे वे आवलियाओ सेसाओ ताधे आगाल-पडिआगालो वोच्छिण्णो[2] । अंतरकदादो पाए छण्णोकसायाणं पदेसग्गं ण संछुभदि पुरिसवेदे, कोधसंजलणे संछुहदि, आणुपुव्वीसंकमत्तादो[3] । जो पढमसमयअवेदो तस्स पुरिसवेदस्स दुसमऊणदोआवलियासु बद्धा अणुवसंता, तेसिं पदेसग्गमसंखेज्जगुणाए सेडीए उवसामिज्जदि । परपयडीए पुण अधापवत्तसंकमेण संकामिज्जदि[4] । पढमसमयअवेदेण संकामिज्जमाणपदेसग्गं बहुअं। से काले विसेसहीणं। एस कमो जाव सव्वमुवसंतं इदि । जोगसमयेपबद्धमधिकिच्च एदं उत्तं, जोगापत्ताणं णाणासमयपबद्धाणं उत्तकमाणुववत्तीदो[5] ।

बत्तीस वर्ष, और शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है।

पुरुषवेदकी प्रथमस्थितिमें जब दो आवलियां शेष रहती हैं तब आगाल व प्रत्यागालका व्युच्छेद हो जाता है। अन्तरकरणसमाप्तिसमयसे लेकर हास्यादिक छह नोकषायोंके प्रदेशाग्रको पुरुषवेदमें स्थापित नहीं करता है, किन्तु आनुपूर्वीसंक्रमण होनेसे संज्वलनक्रोधमें स्थापित करता है। जो प्रथम समय अपगतवेदवाला है उसके पुरुषवेदके दो समय कम दो आवलिमात्र समयप्रबद्ध जो अनुपशान्त हैं उनके प्रदेशाग्रको वह असंख्यातगुणी श्रेणीद्वारा उपशान्त करता है। पुनः अधःप्रवृत्तसंक्रमणके द्वारा परप्रकृति (संज्वलनक्रोध) में संक्रमण करता है। प्रथम समय अपगतवेदीद्वारा संक्रमण कराया जानेवाला प्रदेशाग्र अनिवृत्तिकरणसम्बन्धी अवेदभागके प्रथम समयमें बहुत है। अनन्तर कालमें विशेष हीन है। यह विशेषहीनक्रम पूर्ण उपशान्त होनेतक जानना चाहिये। योगसे प्राप्त समयप्रबद्धका अधिकार करके यह क्रम कहा गया है, क्योंकि, योगसे अप्राप्त नाना समयप्रबद्धोंके उक्त क्रम बन नहीं सकता।

१ तच्चरिमे पुंबंधो सोलसवस्साणि संजलणगाणं । तदुगाणं सेसाणं संखेज्जसहस्सवस्साणि ॥ लब्धि. २६३.

२ पुरिसस्स य पढमठिदी आवलिदोसुवरिदासु आगाला । पडिआगाला छिण्णा पडियावलियादुदीरणदा ॥ लब्धि. २६४.

३ अंतरकदादु छण्णोकसायदव्वं ण पुरिसगे देदि । एदि हु संजलणस्स य कोधे अणुपुव्विसंकमदो । लब्धि. २६५.

४ पुरिसस्स उत्तणवकं असंखगुणियक्कमेण उवसमदि । संकमदि हु हीणकमेणधापवत्तेण हारेण ॥ लब्धि. २६६.

५ प्रतिषु ' एगसमय- ' इति पाठः ।

६ चतुःस्थानपतितहानि-वृद्धिपरिणतयोगसंचितसमयप्रबद्धानां द्रव्यहीनाधिकभावमाश्रित्य तत्संक्रमणद्रव्यस्यापि चतुःस्थानहानिवृद्धिक्रमस्य प्रवचनयुक्त्या प्रवृत्तिर्दर्शिता ॥ लब्धि. २६६ टीका.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पढमसमयअवेदस्स संजलणाणं ट्ठिदिबंधो बत्तीस वस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि[1]। सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि[2]। पढमसमयअवेदो तिविहं कोहमुवसामेदि। सा चेव हेट्ठाणिया पढमट्ठिदी हवदि। ट्ठिदिबंधे पुण्णे पुण्णे संजलणाणमण्णो ट्ठिदिबंधो विसेसहीणो होदि। सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणहीणो। एदेण कमेण जाधे आवलिय-पडिआवलियाओ कोहसंजलणस्स सेसाओ ताधे विदियट्ठिदीदो आगाल-पडिआगालो वोच्छिण्णो, पडिआवलियादो चेव उदीरणा कोधसंजलणस्स। पडिआवलियाए एक्कम्हि समए सेसे कोहसंजलणस्स जहण्णिया ट्ठिदि-उदीरणा। चउण्हं संजलणाणं ट्ठिदिबंधो चत्तारि मासा, सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि[3]। पडिआवलिया उदयावलियं पविस्समाणा पविट्ठा[4]। ताधे चेव कोहसंजलणे[5] दो आवलियबंधे दुसमऊणे मोत्तूण सेसतिविहकोहपएसा उवसामिज्जमाणा उवसंता[6]। कोहसंजलणे दुविहो कोहो ताव संछुब्भदि जाव कोहसंजलणस्स पढमट्ठिदीए

प्रथमसमयवर्ती अपगतवेदीके संज्वलनचतुष्कका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त कम बत्तीस वर्ष और शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है। प्रथमसमयवर्ती अपगतवेदी अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन, इस तीन प्रकारके क्रोधको उपशमाता है। वही अधस्तनस्थानिक प्रथमस्थिति है। प्रत्येक स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर संज्वलनचतुष्कका अन्य स्थितिबन्ध विशेष हीन होता है। शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा हीन होता है। इस क्रमसे जब संज्वलनक्रोधकी आवली व प्रत्यावली ही शेष रहती हैं तब द्वितीयस्थितिसे आगाल-प्रत्यागालोंकी व्युच्छित्ति हो जाती है। तब प्रत्यावली अर्थात् द्वितीय आवलीसे ही उदीरणा होती है। प्रत्यावलीमें एक समय शेष रहनेपर संज्वलनक्रोधकी जघन्य स्थितिकी उदीरणा होती है। इस समय चार संज्वलनकषायोंका स्थितिबन्ध चार मास और शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है। प्रत्यावली उदयावलीमें प्रवेश करती हुई प्रविष्ट हो चुकी। उसी समय दो समय कम दो आवलिमात्र संज्वलनक्रोधके समयप्रबद्धोंको छोड़कर उपशान्त किये जानेवाले शेष तीन प्रकारके क्रोधप्रदेश उपशान्त हो चुकते हैं। संज्वलनक्रोधकी

---

१ पढमावेदे संजलणाणं अंतोमुहुत्तपरिहीणं। वस्साणं बत्तीसं संखसहस्सियरगाण ठिदिबंधो॥ लब्धि. २६७.

२ प्रतिषु 'पडिआवलिया' इति पाठः।

३ पढमावेदो तिविहं कोहं उवसमदि पुव्वपढमठिदी। समयाहियआवलियं जाव य तक्कालठिदिबंधो॥ संजलणचउक्काणं मासचउक्कं तु सेसपयडीणं। वस्साणं संखेज्जसहस्साणि हवंति णियमेण॥ लब्धि. २६८-२६९.

४ अप्रतौ 'पविस्समाणा विट्ठा', कप्रतौ 'पविस्समाण पविट्ठा' इति पाठः।

५ अप्रतौ '-संजलणा', कप्रतौ '-संजलण-' इति पाठः।

६ संज्वलनक्रोधस्य प्रथमस्थितौ उच्छिष्टावलिमात्रावशेषायामुपशमनावलिचरमसमये क्रोधत्रयद्रव्यं समयोनद्व्यावलिमात्रसमयप्रबद्धनवकबंधं मुक्त्वा पूर्वोक्तविधानेन चरमफालिरूपेण निरवशेषं स्वस्थाने एवोपशमयति। लब्धि. २७१ टीका.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिण्णि आवलियाओ सेसाओ त्ति। तिसु आवलियासु समऊणासु सेसासु तत्तो पाए दुविहो कोधो कोधसंजुलणे[1] ण संछुब्भदि, माणसंजुलणे संछुब्भदि[2]। जाधे कोधसंजलणस्स पढमट्ठिदीए समऊणा आवलिया सेसा ताधे चेव कोधसंजलणस्स बंधोदया वोच्छिण्णा[3]।

माणसंजुलणस्स पढमसमयवेदगो पढमट्ठिदिकारओ च। पढमट्ठिदिं करेमाणो उदए पदेसग्गं थोवं देदि। से काले असंखेज्जगुणं[4]। एवमसंखेज्जगुणाए सेडीए जादि[5] जाव पढमट्ठिदीए चरिमसमओ त्ति। विदियट्ठिदीए जा आदिट्ठिदी तिस्से असंखेज्जगुणहीणं देदि, तदो[6] विसेसहीणं देदि। एवं जाव अप्पप्पणो अइच्छावणावलियमपत्तमिदि[7]।

प्रथमस्थितिमें तीन आवलियां शेष रहने तक दो प्रकारके (अप्रत्याख्यान व प्रत्याख्यान) क्रोधको संज्वलनक्रोधमें स्थापित करता है। एक समय कम तीन आवलियोंके शेष रहनेपर तबसे लेकर उक्त दोनों प्रकारके क्रोधको संज्वलनक्रोधमें नहीं स्थापित करता है, किन्तु संज्वलनमानमें स्थापित करता है। जब संज्वलनक्रोधकी प्रथमस्थितिमें एक समय कम आवलिमात्र शेष रहती है तभी संज्वलनक्रोधका बन्ध व उदय व्युच्छिन्न हो जाता है।

उस समयमें संज्वलनमानका प्रथम समय वेदक और प्रथम-स्थितिका कर्ता भी होता है। प्रथमस्थितिको करनेवाला उस कालमें उदयमें स्तोक प्रदेशाग्रको देता है। अनन्तर कालमें असंख्यातगुणे प्रदेशाग्रको देता है। इस प्रकार असंख्यातगुणित श्रेणीद्वारा प्रथमस्थितिके अन्तिम समय तक देता चला जाता है। द्वितीयस्थितिमें जो आदि स्थिति है उसमें असंख्यातगुणित हीन प्रदेशाग्रको देता है। तत्पश्चात् विशेष हीन प्रदेशाग्रको देता है। इस प्रकार जब तक अपनी अपनी अति-स्थापनावली अप्राप्त है तब तक उक्त क्रमसे देता चला जाता है। जब संज्वलनक्रोधका

१ प्रतिषु 'दुविहो कोधसंजलणो' इति पाठः।

२ कोहदुगं संजलणगकोहे संछुहदि जाव पढमठिदी। आवलितियं तु उवरिं संछुहदि हु माणसंजलणे॥ लब्धि. २७०.

३ कोहस्स पढमठिदी आवलिसेसे तिकोहमुवसंतं। ण य णवकं तत्थंतिमबंधुदया होंति कोहस्स॥ लब्धि. २७१.

४ से काले माणस्स य पढमट्ठिदिकारवेदगो होदि। पढमट्ठिदिम्मि दव्वं असंखगुणियक्कमे देदि॥ लब्धि. २७२.

५ प्रतिषु 'जदि' इति पाठः। ६ प्रतिषु 'कुदो' इति पाठः।

७ पढमट्ठिदिसीसादो विदियादिम्हि य असंखगुणहीणं। तत्तो विसेसहीणं जाव अइच्छावणमपत्तं॥ लब्धि. २७३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाधे कोधस्स बंधोदया वोच्छिण्णा ताधे पाए तिविहस्स माणस्स उवसामओ । ताधे संजलणाणं ट्ठिदिबंधो चत्तारि मासा अंतोमुहुत्तेण ऊणया, सेसाणं कम्माणं ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । माणसंजलणस्स पढमट्ठिदीए तिसु आवलियासु समऊणासु सेसासु दुविहो माणो माणसंजुलणे ण संछुब्भदि, मायासंजलणे संछुब्भदि[1] । पडिआवलियाए सेसाए आगाल-पडिआगालो वोच्छिण्णो । पडिआवलियाए एक्कम्हि समए सेसे माणसंजलणस्स समऊणदोआवलियमेत्तबंधे मोत्तूण सेसतिविहस्स माणस्स संतकम्ममुवसंतं[2] । ताधे माण-माया-लोभसंजलणाणं दुमासट्ठिदिओ बंधो । सेसाणं कम्माणं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि[3] ।

तदो से काले मायासंजलणमोकड्डिदूण मायासंजलणस्स पढमट्ठिदिं करेदि[4] । ताधे पाए तिविहाए मायाए उवसामओ । माया-लोहसंजलणाणं ट्ठिदिबंधो बे मासा

बन्ध व उदय व्युच्छित्तिको प्राप्त हुआ था तभीसे तीन प्रकारके मानका उपशामक होता है । उस समय संज्वलनचतुष्कका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त कम चार मासप्रमाण होता है, तथा शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षमात्र होता है । संज्वलनमानकी प्रथमस्थितिमें एक समय कम तीन आवलियोंके शेष रहनेपर दो प्रकारके (अप्रत्याख्यान व प्रत्याख्यान) मानको संज्वलनमानमें नहीं स्थापित करता है, किन्तु संज्वलनमायामें स्थापित करता है । प्रत्यावलीके शेष रहनेपर आगाल व प्रत्यागाल व्युच्छित्तिको प्राप्त हो जाते हैं । प्रत्यावलीमें एक समय शेष रहनेपर संज्वलनमानके एक समय कम दो आवलिमात्र समयप्रबद्धोंको छोड़कर शेष तीन प्रकारके मानका सत्व उपशमको प्राप्त हो चुकता है । तब संज्वलन मान, माया और लोभ, इनका दो मासप्रमाण स्थितिवाला बन्ध होता है । शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है ।

तत्पश्चात् अनन्तर कालमें संज्वलनमायाका अपकर्षण कर संज्वलनमायाकी प्रथमस्थितिको करता है । तबसे तीन प्रकारकी मायाका उपशामक होता है । संज्वलन-

---

१ माणदुगं संजलणगमाणे संछुहदि जाव पढमठिदी । आवलितियं तु उवरिं मायासंजलणगे य संछुहदि ॥ लब्धि २७५.

२ माणस्स य पढमठिदी आवलिसेसे तिमाणमुवसंतं । ण य णवकं तत्थंतिमबंधुदया होंति माणस्स ॥ लब्धि. २७६.

३ माणस्स य पढमठिदी सेसे समयाहिया तु आवलियं । तियसंजलणगबंधो दुमास सेसाण कोहआलावो ॥ लब्धि. २७४.

४ से काले मायाए पढमट्ठिदिकारवेदगो होदि । माणस्स य आलावो दव्वस्स विभंजणं तत्थ ॥ लब्धि. २७७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतोमुहुत्तेण ऊणया । सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिखंडयं[1] पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो । जं तं माणसंतकम्मं उदयावलियाए समऊणाए तं मायाए थिउक्कसंकमेण[2] उदए विपच्चिहिदि[3] । जे माणस्स दोण्हमावलियाणं दुसमऊणाणं समयपबद्धा अणुवसंता, ते य गुणसेडीए उवसामिज्जमाणे दोहि आवलियाहि दुसमऊणाहि उवसामेदि[4] । जं पदेसग्गं मायाए संकमदि तं समयं पडि विसेसहीणाए सेडीए संकमदि । एसा परूवणा मायाए पढमसमयउवसामयस्स । एत्तो ट्ठिदिखंडयसहस्साणि बहूणि गदाणि । तदो मायाए पढमट्ठिदीए तिसु आवलियासु समऊणासु सेसासु दुविहा माया मायासंजलणे ण संछुभदि, लोभसंजलणे संछुभदि[5] । पडिआवलियाए सेसाए आगाल-पडिआगालो

माया और लोभका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्तसे कम दो मासप्रमाण होता है। शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है। शेष कर्मोंका स्थितिकांडक पल्योपमके संख्यातवें भागमात्र होता है। एक समय कम उदयावलिमात्र जो यह मानका सत्व है वह स्तिवुकसंक्रमणद्वारा मायाके उदयमें विपाकको प्राप्त होगा। मानके जो दो समय कम दो आवलिप्रमाण समयप्रबद्ध अनुपशान्त हैं वे भी गुणश्रेणीद्वारा उपशमको प्राप्त होते हुए दो समय कम दो आवलियोंसे उपशान्त हो चुकते हैं । जो प्रदेशाग्र मायामें संक्रमण करता है वह प्रत्येक समयमें विशेष हीन श्रेणीके द्वारा संक्रमण करता है यह प्ररूपणा मायाके प्रथम समय उपशामककी है। यहांसे बहुत स्थितिकांडकसहस्र व्यतीत होते हैं। तब मायाकी प्रथमस्थितिमें एक समय कम तीन आवलियोंके शेष रहनेपर दो प्रकारकी माया (अप्रत्याख्यान व प्रत्याख्यान) को संज्वलनमायामें नहीं स्थापित करता है, किन्तु संज्वलनलोभमें स्थापित करता है। प्रत्यावलीके शेष रहनेपर आगाल

१ प्रतिषु ' ट्ठिदिबंधगो ' इति पाठः ।

२ षट्खं. १, ७, १६. भा. ५, पृ. २१०. अनुदीर्णाया अनुदयप्राप्तायाः सत्कं यत्कर्मदलिकं सजातीयप्रकृतावुदयप्राप्तायां समानकालस्थितौ संक्रमय्य चानुभवति यथा मनुजगतावुदयप्राप्तायां शेषगतित्रयमेकेन्द्रियजातौ जातिचतुष्टयमित्यादि स स्तिवुकसंक्रमः । कर्मप्रकृति पृ. १२५, गा. ७१. को थिवुकसंकमो णाम ? उदयसरूवेण समट्ठिदीए जो संकमो सो थिवुकसंकमो त्ति भण्णदे । जयध. अ. प. १०२५.

३ तदैव संज्वलनमानोच्छिष्टावलिनिषेकाः थिउकसंक्रमेण संज्वलनमायोदयावलिनिषेकेषु समस्थितिकेषु संक्रम्योदेष्यंति ॥ लब्धि. २७७ टीका.

४ संज्वलनमानस्य समयोनद्व्यावलिमात्रा नवकबंधसमयप्रबद्धाश्च तदैव समयोनद्व्यावलिमात्रकालेनोपशाम्यंते ॥ लब्धि. २७७ टीका.

५ मायदुगं संजलणगमायाए छुहदि जाव पढमठिदी । आवलितियं तु उवरिं संछुहदि हु लोहसंजलणे ॥ लब्धि. २७९.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

वोच्छिण्णो । समयाहियावलियाए सेसाए मायाए चरिमसमयउवसामओ मोत्तूण दो-आवलियबंधे समऊणे[1] । ताधे माया-लोहसंजलणाणं ट्ठिदिबंधो मासो, सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्साणि[2] । तदो से काले मायासंजुलणस्स बंधोदया वोच्छिण्णा। मायसंजुलणस्स पढमट्ठिदीए जा समऊणा आवलिया सेसा सा थिउक्कसंकमेण लोभे विपच्चिहिदि ।

ताधे चेव लोभसंजलणमोकड्डिदूण लोभस्स पढमट्ठिदिं करेदि[3] । एत्तो पाए जा लोभवेदगद्धा तिस्से लोभवेदगद्धाए बे-त्तिभागपमाणं । ताधे लोभसंजलणस्स ट्ठिदि-बंधो मासो अंतोमुहुत्तूणो । सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्साणि । तदो संखेज्जेहि ट्ठिदिबंधसहस्सेहि गदेहि तिस्से लोभस्स पढमट्ठिदीए अद्धं गदं । तदो तस्स अद्धस्स चरिमसमए लोभसंजलणस्स ट्ठिदिबंधो दिवसपुधत्तं । सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो वस्स-सहस्सपुधत्तं[4] ।

व प्रत्यागाल व्युच्छिन्न हो जाते हैं । एक समय अधिक आवलीके शेष रहनेपर एक समय कम दो आवलिप्रमाण समयप्रबद्धोंको छोड़कर शेष (तीन प्रकारकी) मायाका अन्तिम समयवर्ती उपशामक होता है । उस समय संज्वलन माया व लोभका स्थितिबन्ध एक मास और शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात (सहस्र) वर्षमात्र होता है । तब उसी समयमें बन्ध व उदय व्युच्छिन्न हो जाते हैं । संज्वलनमायाकी प्रथम-स्थितिमें जो एक समय कम आवली शेष रही है वह स्तिवुकसंक्रमणद्वारा लोभमें विपाकको प्राप्त होगी ।

उसी समय लोभसंज्वलनका अपकर्षण कर लोभकी प्रथमस्थितिको करता है । यहांसे लेकर जो लोभवेदककाल है उस लोभवेदककालके दो त्रिभागप्रमाण लोभकी प्रथमस्थिति की जाती है । उस समय संज्वलनलोभका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त कम एक मासप्रमाण होता है । शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यातसहस्र वर्षमात्र होता है । तत्पश्चात् संख्यात स्थितिबन्धसहस्रोंके बीत जानेपर लोभकी उस प्रथमस्थितिका काल समाप्त होता है । तब उस कालके अन्तिम समयमें संज्वलनलोभका स्थितिबन्ध दिवसपृथक्त्व-प्रमाण होता है । शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध वर्षसहस्रपृथक्त्वमात्र होता है ।

---

१ मायाए पढमठिदी आवलिसेसे त्तिमायमुवसंतं । ण य णवकं तत्थंतिमबंधुदया होंति मायाए ॥ लब्धि. २८०.

२ मायाए पढमठिदि सेसे समयाहियं तु आवलियं । मायालोहगबन्धो मासं सेसाण कोहआलाओ ॥ लब्धि. २७८ शेषकर्मणां क्रोधवदालापः कर्तव्यः पूर्वोक्ताल्पबहुत्वेन संख्यातवर्षसहस्रमात्रवर्षस्थितिरित्यर्थः । लब्धि. २७८ टीका. ३ से काले लोहस्स य पढमट्ठिदिकारवेदगो होदि ॥ लब्धि. २८१.

४ पढमट्ठिदिअद्धंते लोहस्स य होदि दिणपुधत्तं तु । वस्ससहस्सपुधत्तं सेसाणं होदि ठिदिबंधो ॥ लब्धि. २८२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से काले विदिय-तिभागस्स पढमसमए लोभसंजलणअणुभागसंतकम्मस्स जं जहण्णफद्दयं तस्स हेट्ठदो अणुभागकिट्टीओ करेदि। तासिं पमाणमेगफद्दयवग्गणाणमणंत-भागो[1]। पढमसमए बहुआओ किट्टीओ कदाओ। से काले अपुव्वाओ असंखेज्जगुण-हीणाओ। एवं जाव विदियस्स तिभागस्स चरिमसमओ त्ति असंखेज्जगुणहीणाओ। जं पदेसग्गं पढमसमए किट्टीओ करेंतेण[2] किट्टीसु णिक्खित्तं तं थोवं। से काले असंखेज्ज-गुणं। एवं जाव चरिमसमओ त्ति असंखेज्जगुणं। पढमसमए जहण्णिगाए किट्टीए पदेसग्गं बहुअं, विदियाए पदेसग्गं विसेसहीणं। एवं जाव चरिमाए किट्टीए पदेसग्गं विसेसहीणं। विदियसमए जहण्णियाए किट्टीए पदेसग्गं पढमसमयकदपढमकिट्टीए पदेसग्गादो असंखेज्जगुणं, विदियाए विसेसहीणं। एवं जाव ओघुक्कस्सियाए[3] विसेस-हीणं। उवरि फद्दयस्स आदिवग्गणाए अणंतगुणहीणं। उवरि सव्वत्थ विसेसहीणं। जधा विदियसमए तधा सेसेसु समएसु। तिव्व-मंददाए जहण्णिया किट्टी थोवा, विदिय-किट्टी अणंतगुणा, तदियकिट्टी अणंतगुणा। एवमणंतगुणाए सेडीए गच्छदि जाव

अनन्तरकालमें द्वितीय त्रिभागके प्रथम समयमें संज्वलनलोभके अनुभागसत्वका जो जघन्य स्पर्धक है उसके नीचे अनुभागकृष्टियोंको करता है। उन अनुभागकृष्टियोंका प्रमाण एक स्पर्धककी वर्गणाओंका अनन्तवां भाग है। प्रथम समयमें बहुत अनुभाग-कृष्टियां की जाती हैं। अनन्तर कालमें अपूर्व कृष्टियां असंख्यातगुणी हीन हैं। इस प्रकार द्वितीय त्रिभागके अन्तिम समय तक असंख्यातगुणी हीन होती गई हैं। कृष्टियां करने-वाला प्रथम समयमें जिस प्रदेशाग्रको कृष्टियोंमें निक्षिप्त करता है, वह स्तोक है। इसके अनन्तर समयमें वह असंख्यातगुणा होता है। इस प्रकार वह अन्तिम समय तक असंख्यातगुणा होता जाता है। प्रथम समयमें जघन्य कृष्टिमें प्रदेशाग्र बहुत, द्वितीय कृष्टिमें प्रदेशाग्र विशेष हीन, इस प्रकार अन्तिम कृष्टि तक प्रदेशाग्र विशेष हीन दिया जाता है। द्वितीय समयमें जघन्य कृष्टिमें प्रदेशाग्र प्रथम समयमें की गई प्रथम कृष्टिके प्रदेशाग्रसे असंख्यातगुणा, द्वितीय कृष्टिमें प्रदेशाग्र विशेष हीन, इस प्रकार द्वितीय समयसम्बन्धी समस्त कृष्टियोंमें उत्कृष्ट कृष्टि तक प्रदेशाग्र विशेष हीन दिया जाता है। ऊपर स्पर्धककी आदि वर्गणामें अनन्तगुणा हीन और इससे ऊपर सर्वत्र विशेष हीन है। जैसा क्रम द्वितीय समयमें है वैसा ही क्रम शेष समयोंमें भी है। तीव्रता व मन्दतासे जघन्य कृष्टि स्तोक है, द्वितीय कृष्टि अनंतगुणी है, तृतीय कृष्टि अनन्तगुणी है। इस

१ विदियद्धे लोभावरफड्डयहेट्ठा करेदि रसकिट्टिं। इगिफड्डयवग्गणगदसंखाणमणंतभागमिदं॥ लब्धि. २८३.

२ प्रतिषु 'करंतिण' इति पाठः।

३ जयध. अ. पत्र १०२८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चरिमकिट्टी त्ति । एसो विदियतिभागो किट्टीकरणद्धा णाम ।

किट्टीकरणद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु लोभसंजुलणस्स अंतोमुहुत्तट्ठिदिगो बंधो । तिण्हं कम्माणं ट्ठिदिबंधो दिवसपुधत्तं[1] । जाव किट्टीकरणद्धाए दुचरिमो ट्ठिदिबंधो ताव णामा-गोद-वेदणीयाणं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ट्ठिदिबंधो[2] । किट्टीकरणद्धाए चरिमो ट्ठिदिबंधो लोभसंजुलणस्स अंतोमुहुत्तिओ । णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणमहोरत्तस्संतो । णामा-गोद-वेदणीयाणं वेण्हं वस्साणमंतो[3] । तिस्से किट्टीकरणद्धाए तिसु आवलियासु समऊणासु सेसासु दुविहो लोभो लोभसंजुलणे ण संकामिज्जदि, सत्थाणे चेव उवसामिज्जदि[4] । किट्टीकरणद्धाए आवलिय-पडिआवलियाए सेसाए आगाल-पडिआगालो वोच्छिण्णो । पडिआवलियाए एक्कम्हि समए सेसे लोभसंजलणस्स जहण्णिया ट्ठिदिउदीरणा[5] । ताधे चेव समऊणदोआवलियमेत्ता लोभसंजलणस्स समय-

---

प्रकार अन्तिम कृष्टि तक अनन्तगुणी श्रेणीका क्रम चला जाता है । इस द्वितीय त्रिभागका नाम कृष्टिकरणकाल है ।

कृष्टिकरणकालके संख्यात भागोंके वीत जानेपर संज्वलनलोभका अन्तर्मुहूर्त स्थितिवाला बन्ध होता है । तीन कर्मोंका स्थितिबन्ध दिवसपृथक्त्वमात्र होता है । जब तक कृष्टिकरणकालमें द्विचरम स्थितिबन्ध होता है तब तक नाम, गोत्र व वेदनीय, इनका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है । कृष्टिकरणकालमें संज्वलनलोभका अन्तिम स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्तमात्र होता है । ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय, इनका स्थितिबन्ध कुछ कम अहोरात्रप्रमाण होता है । नाम, गोत्र व वेदनीय, इनका स्थितिबन्ध कुछ कम दो वर्षप्रमाण होता है । उस कृष्टिकरणकालमें एक समय कम तीन आवलियां शेष रहनेपर दो प्रकारका लोभ संज्वलनलोभमें संक्रमण नहीं करता, किन्तु स्वस्थानमें ही उपशान्त हो जाता है । कृष्टिकरणकालमें आवली और प्रत्यावलीके शेष रहनेपर आगाल व प्रत्यागाल व्युच्छिन्न हो जाते हैं । प्रत्यावलीमें एक समय शेष रहनेपर संज्वलनलोभकी जघन्य स्थितिकी उदीरणा होती है । उस समयमें एक समय कम दो आवलिमात्र संज्वलनलोभके समयप्रबद्ध अनुपशान्त हैं, और सब ही कृष्टियां अनुप-

---

१ विदियद्धासंखेज्जाभागेसु गदेसु लोभठिदिबंधो । अंतोमुहुत्तमेत्तं दिवसपुधत्तं तिघादीणं ॥ लब्धि. २९१.

२ किट्टीकरणद्धाए जाव दुचरिमं तु होदि ठिदिबंधो । वस्साणं संखेज्जसहस्साणि अघादिठिदिबंधो ॥ लब्धि. २९२.

३ किट्टीयद्धाचरिमे लोभस्संतोमुहुत्तियं बंधो । दिवसंतो घादीणं वेवस्संतो अघादीणं ॥ लब्धि. २९३.

४ विदियद्धा परिसेसे समऊणावलितियेसु लोभदुगं । सट्ठाणे उवसमदि हु ण देदि संजलणलोहम्मि ॥ लब्धि. २९४.

५ संक्रमणावलौ गतायां प्रथमस्थित्यावलिद्वयेऽवशिष्टे आगालप्रत्यागालौ व्युच्छिन्नौ, प्रत्यावलिचरमसमयपर्यन्तमुदीरणा वर्तते ॥ लब्धि. २९४ टीका.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

पडिबद्धा अणुवसंता, किट्टीओ सव्वाओ चेव अणुवसंताओ। तव्वदिरित्तं लोभसंजुलणस्स पदेसग्गं सव्वमुवसंतं। दुविहो लोभो सव्वो चेव उवसंतो। एसो चेव चरिमसमय-बादरसांपराइगो[1]।

तत्तो से काले पढमसमयसुहुमसांपराइगो जादो[2]। तेण पढमसमयसुहुम-सांपराइएण अण्णा पढमट्ठिदी कदा। जा पढमसमयलोभवेदगस्स पढमट्ठिदी, तिस्से पढमट्ठिदीए इमा सुहुमसांपराइयस्स पढमट्ठिदी दुभागो थोवूणओ[3]। पढमसमयसुहुम-सांपराइगो किट्टीणमसंखेज्जे भागे वेदयदि। जाओ अपढम-अचरिमेसु समएसु अपुव्वाओ किट्टीओ कदाओ ताओ सव्वाओ पढमसमए उदिण्णाओ। जाओ पढमसमए कदाओ किट्टीओ तासिमग्गग्गादो असंखेज्जदिभागं मोत्तूण, जाओ चरिमसमए कदाओ किट्टीओ तासिं च जहण्णयप्पहुडि असंखेज्जदिभागं मोत्तूण, सेसाओ सव्वाओ किट्टीओ उदिण्णाओ[4]। ताधे चेव सव्वासु किट्टीसु पदेसग्गमुवसामेदि गुणसेडीए। जे दोआवलियबद्धा

शान्त हैं। इनके अतिरिक्त संज्वलनलोभका सब प्रदेशाग्र उपशान्त हो चुकता है। दो प्रकारका सब ही लोभ उपशान्त हो जाता है। यह ही अन्तिमसमयवर्ती बादर-साम्परायिक (अनिवृत्तिकरण) है।

इसके पश्चात् अनन्तर समयमें प्रथमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक हो जाता है। उस प्रथमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिकके द्वारा अन्य प्रथमस्थिति की जाती है। प्रथम समय लोभवेदकके जो (समस्त लोभवेदककालके दो त्रिभाग-मात्रसे कुछ अधिक) प्रथमस्थिति थी उस प्रथमस्थितिके दो त्रिभागसे कुछ कम यह सूक्ष्मसाम्परायिकके प्रथमस्थिति होती है। प्रथम व अन्तिम समयको छोड़कर शेष समयोंमें जो अपूर्व कृष्टियां की हैं वे सब प्रथम समयमें उदीर्ण हो जाती हैं। जो कृष्टियां प्रथम समयमें की गई हैं उनके उपरिम असंख्यातवें भागको छोड़कर, और जो कृष्टियां अन्तिम समयमें की गई हैं उनके जघन्यसे लेकर असंख्यातवें भागको छोड़कर शेष सब कृष्टियां उदीर्ण हो जाती हैं। उसी समय सब कृष्टियोंके प्रदे-शाग्रको असंख्यातगुणित श्रेणीसे उपशान्त करता है। गुणश्रेणीमें जो दो समय

---

१ बादरलोभादिठिदी आवलिसेसे तिलोहमुवसंतं। णवकं किट्टिं मुच्चा सो चरिमो थूलसंपराओ य॥ लब्धि. २९५.

२ प्रतिषु 'जादा' इति पाठः।

३ से काले किट्टिस्स य पढमट्ठिदिकारवेदगो होदि। लोहगपढमठिदीदो अद्धं किंचूणयं गत्थ॥ २९६. जा पढमसमयलोभवेदगस्स पढमट्ठिदी सव्विस्से एत्थतणलोभवेदगद्धाए सादिरेयवेत्तिभागमेत्ता तिस्से थोवूणदु-भागमेत्तो इमो सुहुमसांपराइयस्स पढमट्ठिदिविण्णासो त्ति भणिदं होदि॥ जयध. अ. प. १०३०.

४ पढमे चरिमे समये कदकिट्टीणग्गदो दु आदीदो। मुच्चा असंखभागं उदेदि सुहुमादिमे सव्वे॥ लब्धि. २९७.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

दुसमऊणा ते वि उवसामेदि[1]। जा उदयावलिया छद्दिदा[2] सा थिउक्कसंकमेण किट्टीसु विपच्चिहिदि[3]। विदियसमए उदिण्णाणं किट्टीणमग्गग्गादो असंखेज्जदिभागं मुंचदि, हेट्ठदो अपुव्वमसंखेज्जदिभागमाकुंददि[4]। एवं जाव चरिमसमयसुहुमसांपराइओ त्ति। चरिमसमयसुहुमसांपराइयस्स णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणमंतोमुहुत्तिओ ट्ठिदिबंधो। णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो सोलस मुहुत्ता। वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो चउवीस[5] मुहुत्ता। से काले सव्वं मोहणीयमुवसंतं।

तदो पाए अंतोमुहुत्तमुवसंतकसायवीदरागो। सव्विस्से उवसंतद्धाए अवट्ठिदपरिणामो। गुणसेडीणिक्खेवो उवसंतद्धाए संखेज्जदिभागो[6]। (केवल-

कम दो आवलीमात्र समयप्रबद्ध थे उन्हें भी उपशान्त करता है। जो उदयावली बादरसाम्परायिकके द्वारा स्पर्धकगत की गई थी वह अब कृष्टिरूपसे परिणत होकर स्तिवुक संक्रमणके द्वारा परिपाकको प्राप्त है। द्वितीय समयमें उदीर्ण कृष्टियोंमेंसे उपरिम कृष्टिसे लेकर अधस्तन असंख्यातवें भागको छोड़ता है, अर्थात् उतनी कृष्टियां उदयको प्राप्त नहीं होतीं। तथा अधस्तन अनुदयप्राप्त कृष्टियोंके असंख्यातवें भागमात्र अपूर्व कृष्टियोंको ग्रहण करता है अर्थात् उतनी कृष्टियां उदयको प्राप्त होती हैं। इस प्रकार चरमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक होने तक करता है। चरमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिकके ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय, इनका अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थितिवाला बन्ध होता है। नाम व गोत्र कर्मोंका स्थितिबन्ध सोलह मुहूर्तप्रमाण होता है। वेदनीयका स्थितिबन्ध चौबीस मुहूर्तमात्र होता है। अनन्तर कालमें सब मोहनीयकर्म उपशान्त हो जाता है।

तबसे लेकर अन्तर्मुहूर्त तक उपशान्तकषायवीतराग रहता है। समस्त उपशान्तकालमें अवस्थित परिणाम होता है। तथा (ज्ञानावरणादि कर्मोंका) गुणश्रेणीनिक्षेप उपशान्तकालके संख्यातवें भाग होता है। (केवल

१ जयध. अ. प. १०३१. ये च समयोनद्व्यावलिमात्रसंज्वलनलोभनवकबंधसमयप्रबद्धास्ते च सूक्ष्मसाम्परायप्रथमसमयादारभ्य समयं समयं प्रत्यसंख्यातगुणितक्रमेणोपशाम्यन्ते॥ लब्धि. २९९ टीका.

२ प्रतिषु ' जावे...छद्दिदा तावे... ' इति पाठः।

३ जा उदयावलिया छद्दिदा सा थीवुक्कसंकमणे किट्टीसु विपच्चिहिदि। जा सा बादरसांपराइएण पुव्वपुच्छिट्ठावलिआ छद्दिदा फद्दयगदा सा एण्हिं किट्टिसरूवेण परिणमिय त्थिवुक्कसंकमेण विपच्चिहिदि त्ति भणिदं होदि। जयध. अ. प. १०३१.

४ आप्रतौ ' -माधंददी ', अप्रतौ ' -माधंदरि ', कप्रतौ ' -माधादेदि ', मप्रतौ ' माधंददि ' इति पाठः। विदियादिसु समयेसु हि छंडदि पल्लाअसंखभागं तु। आकुंददि हुअपुव्वा हेट्ठा तु असंखमागं तु॥ लब्धि. २९५. आकुंडदि आस्पृशति वेदयत्यवष्टाय गृह्णातीत्यर्थः। जयध. अ. प. १०३१.

५ प्रतिषु ' चवीस ' इति पाठः। अंतोमुहुत्तमेत्तं घादितियाणं जहण्णट्ठिदिबंधो। णामदुगवेयणीये सोलस चउवीस य मुहुत्ता॥ लब्धि. ३००.

६ उवसंतद्धा अंतोमुहुत्तपमाणा। एदिस्से उवसंतद्धाए संखेज्जदिभागमेत्तायामो एदस्स गुणसेढीणिक्खेवो

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

णाणावरण-केवलदंसणावरणीयाणमणुभागुदएण सव्वउवसंतद्धाए अवट्ठिदवेदगो। णिद्दा-पयलाणं पि जाव वेदगो ताव अवट्ठिदवेदगो। अंतराइयस्स अवट्ठिद-) वेदगो। सेसाणं लद्धिकम्मंसाणं[1] अणुभागुदओ वड्ढी वा हाणी वा अवट्ठाणं वा। णामा-गोदाणि जाणि परिणामपच्चया[2] तेसिमवट्ठिदवेदगो अणुभागेण। एवमुवसमियचारित्तपडिवज्जण-विहाणं भणिदं।

एदं चोवसमियं चारित्तं ण मोक्खकारणं, अंतोमुहुत्तकालादो उवरि णिच्छएण मोहोदयणिबंधणत्तादो। कधमवट्ठिदपरिणामो उवसंतकसाओ वीयराओ मोहे णिवदइ? सहावदो। सो च उवसंतकसायस्स पडिवादो दुविहो, भवक्खयणिबंधणो उवसामणद्धा-खयणिबंधणो चेदि। तत्थ भवक्खएण पडिवदिदस्स सव्वाणि करणाणि देवेसुप्पण्ण-पढमसमए चेव उग्घाडिदाणि[3]। जाणि उदीरिज्जंति कम्माणि ताणि उदयावलियं पवेसि-

ज्ञानावरण और केवलदर्शनावरणके सर्व उपशान्तकालमें अवस्थित अनुभागोदयका वेदक है। निद्रा और प्रचलाका भी जब तक वेदक है तब तक अवस्थित वेदक ही है। अन्तरायकी पांच प्रकृतियोंका भी अवस्थित वेदक ही है।) शेष लब्धिकर्मांशोंका अर्थात् चार ज्ञानावरण और तीन दर्शनावरण कर्मोंका, अनुभागोदय वृद्धि, हानि एवं अवस्थिति-स्वरूप है। नाम-गोत्र जो परिणामप्रत्यय हैं उनका अनुभागसे अवस्थितवेदक होता है। इस प्रकार औपशमिक चारित्रकी प्राप्तिका विधान कहा गया है। यह औपशमिक चारित्र मोक्षका कारण नहीं है, क्योंकि, अन्तर्मुहूर्तकालसे ऊपर वह निश्चयतः मोहके उदयका कारण होता है।

शंका—अवस्थित परिणामवाला उपशान्तकषायवीतराग मोहमें कैसे गिरता है?

समाधान—स्वभावसे गिरता है।

उपशान्तकषायका वह प्रतिपात दो प्रकार है, भवक्षयनिबन्धन और उपशामन-कालक्षयनिबन्धन। इनमें भवक्षयसे प्रतिपातको प्राप्त हुए जीवके देवोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें ही बन्ध, उदीरणा एवं संक्रमणादिरूप सब करण निज स्वरूपसे प्रवृत्त हो जाते हैं। जो कर्म उदीरणाको प्राप्त हैं वे उदयावलीमें प्रवेशित हैं जो उदीरणाको प्राप्त

णाणावरणादिकम्मपडिबद्धो होदि। जयध. अ प. १०३२. सोऽयमुपशांतकषायः प्रथमसमये आयुर्मोहनीयवर्जितानां ज्ञानावरणादिकर्मणां द्रव्यं सूक्ष्मसाम्परायचरमसमयापकृष्टगुणश्रेणिद्रव्यादसंख्यातगुणमपकृष्य स्वगुणस्थानकालस्य संख्यातेकभागमात्रे आयामे उदयावलिप्रथमसमयादारभ्य प्रक्षेपयोगेत्यादिगुणश्रेणिविधानेन निक्षिपति। लब्धि. ३०४ टीका.

१ जेसिं खओवसमपरिणामो अत्थि ते लद्धिकम्मंसा त्ति भण्णंते, खओवसमलद्धी होदूण कम्मंसाणं लद्धिकम्मस्स ववएससिद्धीए विरोहाभावादो। जयध. अ. प. १०३३.

२ जयध. अ. प. १०३३. णामधुवोदयबारस सुभगति गोदेक विग्घपणगं च। केवल णिद्दाजुयलं चेदे परिणामपच्चया होंति॥ लब्धि. ३०६.

३ उवसंते पडिवडिदे भवक्खये देवपढमसमयम्हि। उग्घाडिदाणि सव्व वि करणाणि हवंति णियमेण॥ लब्धि. ३०८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दाणि। जाणि ण उदीरिज्जंति, ताणि वि ओकड्डिदूण आवलियबाहिरे गोवुच्छाए सेडीए णिक्खित्ताणि[1]।

उवसंतद्धाए खएण पडिवदणं वत्तइस्सामो। तं जहा– उवसंतो अद्धाखएण पदंतो लोभे चेव पडिवददि, सुहुमसांपराइयगुणमगंतूण गुणंतरगमणाभावा। पढमसमयसुहुमसांपराइएण तिविहं लोभमोकड्डिदूण संजुलणस्स उदयादिगुणसेडीए कदाए जा तस्स किट्टीलोभवेदगद्धा तदो विसेसुत्तरकालो गुणसेडिणिक्खेवो। दुविहस्स लोहस्स तत्तिओ चेव णिक्खेवो, णवरि उदयावलियाए णत्थि[2]। आउगवज्जाणं सेसाणं कम्माणं गुणसेडिणिक्खेओ अणियट्टिअद्धादो अपुव्वकरणद्धादो च विसेसाहिओ। सेसे सेसे च णिक्खेवो। तिविहस्स लोभस्स तत्तिओ तत्तिओ चेय णिक्खेवो। ताधे चेव तिविहो लोभो एगसमएण पसत्थउवसामणाए अणुवसंतो। ताधे तिण्हं घादिकम्माणमंतोमुहुत्तट्ठिदिगो बंधो, णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो वत्तीस मुहुत्ता, वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो अडदालीस

नहीं हैं वे भी अपकर्षण करके उदयावलीके बाहर गोपुच्छाकार श्रेणीरूपसे निक्षिप्त होते हैं।

उपशान्तकालके क्षयसे होनेवाले प्रतिपातको कहते हैं। वह इस प्रकार है— उपशान्तगुणस्थानकालके क्षयसे प्रतिपातको प्राप्त होनेवाला उपशान्तकषाय जीव लोभमें अर्थात् सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थानमें गिरता है, क्योंकि, उसके सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थानको छोड़कर अन्य गुणस्थानमें जानेका अभाव है। प्रथमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिकके द्वारा तीन प्रकारके लोभका अपकर्षण करके संज्वलनकी गुणश्रेणीके करनेपर जो उसका कृष्टिलोभवेदककाल है उससे विशेष अधिक कालवाला गुणश्रेणिनिक्षेप है। दो प्रकार अर्थात् अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान लोभका भी उतना ही निक्षेप है, किन्तु विशेष यह है कि इन दोनोंका निक्षेप उदयावलीमें नहीं है। आयुको छोड़कर शेष कर्मोंका गुणश्रेणीनिक्षेप अनिवृत्तिकरणकाल और अपूर्वकरणकालसे विशेष अधिक है। शेष शेषमें निक्षेप है। तीन प्रकारके लोभका उतना उतना ही निक्षेप है। उसी समयमें ही तीन प्रकारका लोभ एक समयमें प्रशस्तउपशामनाको छोड़कर अनुपशान्त हो जाता है। उस समय तीन घातिया कर्मोंका बन्ध अन्तर्मुहूर्त स्थितिवाला, नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिबन्ध वत्तीस मुहूर्त और वेदनीयका

१ सोदीरणाण दव्वं देदि हु उदयावलिम्हि इयरं तु। उदयावलिबाहिरगो उंछाये देदि सेदीये॥ लब्धि. ३०९.

२ दुविहस्स वि लोभस्स एवादिओ चेव गुणसेडिणिक्खेवो होदि, किंतु उदयावलियबाहिरे चेव णिक्खिप्पदे। किं कारणं? तेसिमवेदिज्जमाणाणमुदयावलियब्भंतरे णिक्खेवासंभवादो त्ति जाणावणट्ठमिदं सुत्तं–दुविहस्स लोहस्स तत्तिओ चेव णिक्खेवो, णवरि उदयावलियाए णत्थि। जयध. अ. प. २०४५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुहुत्ता[1]। से काले गुणसेडी असंखेज्जगुणहीणा । ट्ठिदिबंधो सो चेव । अणुभागबंधो अप्पसत्थाणमणंतगुणो, पसत्थाणं कम्माणमणंतगुणहीणो[2]।

लोभं वेदयमाणस्स इमाणि आवासयाणि परूवेंति[3]। तं जहा- लोभवेदगद्धाए पढम-तिभागे किट्टीणमसंखेज्जा भागा उदिण्णा। पढमसमए उदिण्णाओ किट्टीओ थोवाओ। विदियसमए उदिण्णाओ किट्टीओ विसेसाहियाओ। सव्विस्से सुहुमसांपराइयद्धाए विसेसाहियवड्डीए किट्टीणमुदओ।

किट्टीणं वेदगद्धाए गदाए पढमसमयबादरसांपराइओ जादो। ताधे चेव मोहणीयस्स अणाणुपुव्वीसंकमो[4]। ताधे चेव दुविहो लोभो लोभसंजुलणे संछुहदि। ताधे चेव फद्दयगयलोभं वेदयदि। किट्टीओ सव्वाओ णट्ठाओ[5]। णवरि जाओ उदयावलियब्भंतराओ ताओ त्थिउक्कसंकमेण फद्दएसु विपच्चिहिंति। पढमसमयबादरसांपराइयस्स लोभसंजुलणस्स ट्ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तिओ। तिण्हं घादि-

स्थितिबन्ध अड़तालीस मुहूर्तप्रमाण होता है। उस कालमें गुणश्रेणी असंख्यातगुणी हीन होती है। स्थितिबन्ध वही होता है। अनुभागबन्ध अप्रशस्त कर्मोंका अनन्तगुणा और प्रशस्त कर्मोंका अनन्तगुणा हीन होता है।

लोभका वेदन करनेवालेके ये आवास प्ररूपित किये जाते हैं। वह इस प्रकार है—लोभवेदककालके प्रथम त्रिभागमें कृष्टियोंका असंख्यात बहुभाग उदयको प्राप्त होता है। प्रथम समयमें उदयप्राप्त कृष्टियां स्तोक हैं। द्वितीय समयमें उदयप्राप्त कृष्टियां विशेष अधिक हैं। इस प्रकार समयक्रमसे सब सूक्ष्मसाम्परायिककालमें विशेषाधिक वृद्धिसे कृष्टियोंका उदय होता है।

कृष्टियोंके वेदककालके समाप्त होनेपर प्रथमसमयवर्ती बादरसाम्परायिक हो जाता है। उस समयमें ही मोहनीयका आनुपूर्वीरहित संक्रमण होता है। उसी समय दो प्रकारके लोभको संज्वलनलोभमें स्थापित करता है। उसी समयमें ही स्पर्धकगत लोभका वेदन करता है। कृष्टियां सब नष्ट हो जाती हैं। विशेष इतना है कि जो कृष्टियां उदयावलीके भीतर हैं वे स्तिवुक संक्रमणद्वारा स्पर्धकोंमें विपाकको प्राप्त होती हैं। प्रथमसमयवर्ती बादरसाम्परायिकके संज्वलनलोभका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्तमात्र होता है। तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध देशोन दो अहोरात्रमात्र

१ ओदरसुहुमादीए बंधो अंतोमुहुत्त बत्तीसं। अडदालं च मुहुत्ता तिघादिणामदुगवेयणीयाणं॥ लब्धि. ३१३.

२ गुणसेढीसत्थेदररसबंधो उवसमादु विवरीयं। पढमुदओ किट्टीणमसंखभागा विसेसअहियकमा॥ लब्धि. ३१४.

३ अ-कप्रत्योः '[आवासयाणि रूवंति' इति पाठः

४ प्रतिषु 'अण्णाणुपुव्वीसंकमो' इति पाठः।

५ बादरपढमे किट्टी मोहस्स य आणुपुव्विसंकमणं। णट्ठं ण च उच्छिट्ठं फड्डयलोहं तु वेदयदि॥ लब्धि. ३१५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कम्माणं ट्ठिदिबंधो दो अहोरत्ताणि देसूणाणि। वेदणीय-णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो चत्तारि वस्साणि देसूणाणि[1]। एदम्हि ट्ठिदिबंधे पुण्णे जो अण्णो वेदणीय-णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो सो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो अहोरत्तपुधत्तिओ। लोभसंजलणस्स ट्ठिदिबंधो पुव्वबंधादो विसेसाहिओ। लोभवेदगद्धाए बिदियस्स तिभागस्स संखेज्जदिभागं गंतूण मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो मुहुत्तपुधत्तो। णामा-गोद-वेदणीयाणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो अहोरत्तपुधत्तियादो ट्ठिदिबंधादो[2] वस्ससहस्सपुधत्तिओ जादो। एवं ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु लोभ-वेदगद्धा पुण्णा[3]।

से काले तिविहं मायमोकड्डिदूण मायासंजलणस्स उदयादिगुणसेडी कदा[4]। दुविहाए मायाए आवलियबाहिरा गुणसेडी कदा। पढमसमयमायावेदगस्स गुणसेढीणिक्खेवो तिविहस्स लोभस्स तिविहाए मायाए च तुल्लो मायावेदगद्धादो

होता है। वेदनीय, नाम व गोत्र कर्मोंका स्थितिबन्ध देशोन चार वर्षप्रमाण होता है। इस स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर जो वेदनीय, नाम व गोत्र कर्मोंका अन्य स्थितिबन्ध है वह संख्यात वर्षप्रमाण होता है। तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध अहोरात्रपृथक्त्व-प्रमाण होता है। संज्वलनलोभका स्थितिबन्ध पूर्व बन्धसे विशेष अधिक होता है। लोभ-वेदककालके द्वितीय त्रिभागके संख्यातवें भाग जाकर मोहनीयका स्थितिबन्ध मुहूर्त-पृथक्त्व तथा नाम, गोत्र व वेदनीयका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है। तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध अहोरात्रपृथक्त्वरूप स्थितिबन्धसे वर्षसहस्रपृथक्त्व-मात्र हो जाता है। इस प्रकार स्थितिबन्धसहस्रोंके वीतनेपर लोभवेदककाल पूर्ण होता है।

अनन्तर कालमें तीन प्रकारकी मायाका अपकर्षण करके संज्वलनमायाकी तो उदयादि गुणश्रेणी की जाती है। तथा शेष दो प्रकारकी मायाकी उदया-वलिबाह्य गुणश्रेणी की जाती है। प्रथम समय मायावेदकके तीन प्रकारके लोभ और तीन प्रकारकी मायाका गुणश्रेणीनिक्षेप तुल्य एवं मायावेदककालसे विशेष अधिक है।

१ ओदरबादरपढमे लोहस्संतोमुहुत्तियो बंधो। दुदिणंतो घादितियं चउवस्संतो अघादितियं॥ लब्धि. ३१६.

२ प्रतिषु ' बंधोदो ' इति पाठः।

३ ततोऽन्तर्मुहूर्तमात्रे समबन्धकाले गते पुनः संज्वलनलोभस्थितिबन्धो विशेषाधिकः, घातित्रयस्य दिन-पृथक्त्वं, अघातित्रयस्य संख्यातसहस्रवर्षमात्रः। एवं संख्यातसहस्रेषु स्थितिबन्धेषु आकृष्योत्कृष्य संवृत्तेषु यदा लोभ-वेदककालद्वितीयत्रिभागस्य संख्येयभागो गतः तदा संज्वलनलोभस्य स्थितिबन्धो मुहूर्तमात्रपृथक्त्वं, घातित्रयस्य वर्षसहस्रपृथक्त्वं, अघातित्रयस्य संख्येयसहस्रवर्षमात्रः। एवं स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु लोभवेदककालः समाप्तो भवति। लब्धि. ३१६ टीका.

४ प्रतिषु ' गदा ' इति पाठः।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

विसेसाहिओ[1]। सव्विस्से मायावेदगद्धाए तत्तिओ तत्तिओ चेव णिक्खेवो। सेसाणं कम्माणं जो पुण पुव्विल्लो णिक्खेवो तस्स सेसे सेसे चेव णिक्खिवदि गुणसेडिं। मायावेदगस्स लोभो तिविहो दुविहा माया मायासंजलणे संकमदि, माया वि तिविहा लोभो च दुविहो लोभसंजुलणे संकमदि[2]। पढमसमयमायावेदगस्स दोण्हं संजलणाणं दुमासट्ठिदिगो बंधो। सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि[3]। पुण्णे पुण्णे ट्ठिदिबंधे मोहणीयवज्जाणं कम्माणं संखेज्जगुणो ट्ठिदिबंधो। मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ। एदेण कमेण संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु चरिमसमयमायावेदगो जादो। ताधे दोण्हं संजलणाणं ट्ठिदिबंधो चत्तारि मासा अंतोमुहुत्तूणा। सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। तदो से काले तिविहं माणमोकड्डिदूण माणसंजलणस्स उदयादिगुणसेडिं करेदि। दुविहस्स माणस्स आवलियाबाहिरे गुणसेडिं करेदि। णवविहस्स वि कसायस्स गुणसेडीणिक्खेवो। जा तस्स पडिवदमाणयस्स माणवेदगद्धा तत्तो विसेसाहिओ

सब मायावेदककालमें उतना उतना ही निक्षेप है। पुनः शेष कर्मोंका जो पूर्वका निक्षेप है उसके शेष शेषमें ही गुणश्रेणीका निक्षेपण करता है। मायावेदकका तीन प्रकारका लोभ और दो प्रकारकी माया संज्वलनमायामें संक्रमण करती है, तथा तीन प्रकारकी माया और दो प्रकारका लोभ संज्वलनलोभमें संक्रमण करता है। प्रथम समय मायावेदकके दो संज्वलनोंका दो मासप्रमाण स्थितिवाला बन्ध होता है। शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है। प्रत्येक स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर मोहनीयको छोड़कर शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा होता है। मोहनीयका स्थितिबन्ध विशेष अधिक होता है। इस क्रमसे संख्यात स्थितिबन्धसहस्रोंके वीतनेपर अन्तिमसमयवर्ती मायावेदक होता है। तब दो संज्वलनोंका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त कम चार मास और शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है। पश्चात् अनन्तर समयमें तीन प्रकारके मानका अपकर्षण करके संज्वलनमानकी उदयादिगुणश्रेणी करता है। दो प्रकार मानकी आवलीके बाहिर गुणश्रेणी करता है। अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान व संज्वलनसम्बन्धी लोभ, माया और मानरूप नौ प्रकारकी कषायका गुणश्रेणीनिक्षेप होता है। अधःपतन करनेवाले उस जीवका जो मानवेदककाल है उससे विशेष अधिक निक्षेप होता

१ ओदरमायापढमे मायातिण्हं च लोभतिण्हं च। ओदरमायावेदककालादहियो दु गुणसेढी ॥ लब्धि. ३१७.

२ मायावेदगस्स लोभो तिविहो माया दुविहा मायासंजलणे संकमदि। माया तिविहा लोभो च दुविहो लोभसंजलणे संकमदि। जयध. अ प. १०४८. तस्मिन्नेव मायावेदकप्रथमसमये लोभत्रयद्रव्यं मायाद्वयद्रव्यं च मायासंज्वलने संक्रामति, तस्य बन्धसम्भवात्। तथा द्वि-(त्रि ?)-विधमायाद्रव्यं त्रि-(द्वि ?)-विधलोभद्रव्यं च लोभसंज्वलने संक्रामति तस्यापि बन्धसम्भवात्। लब्धि. ३१७ टीका.

३ ओदरमायापढमे मायालोभे दुमासठिदिबंधो। छण्हं पुण वस्साणं संखेज्जसहस्सवस्साणि ॥ लब्धि. ३१८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णिक्खेवो[1]। मोहणीयवज्जाणं कम्माणं जो पढमसमयसांपराइयेण[2] णिक्खेवो णिक्खित्तो तस्स णिक्खेवस्स सेसे सेसे णिक्खिवदि। पढमसमयमाणवेदयस्स णवविहो वि कसाओ संकमदि[3]। तावे तिण्हं संजलणाणं ट्ठिदिबंधो चत्तारि मासा पडिवुण्णा, सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। एवं ट्ठिदिबंधसहस्साणि बहूणि गंतूण माणस्स चरिमसमयवेदगो। तस्स चरिमसमयवेदगस्स तिण्हं संजलणाणं ट्ठिदिबंधो अट्ठ मासा अंतोमुहुत्तूणा, सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि[4]। से काले तिविहं कोहमोकड्डिदूण कोहसंजलणस्स उदयादिगुणसेडिं करेदि, दुविहस्स कोहस्स आवलियबाहिरे करेदि।

एण्हिं गुणसेडीणिक्खेवो केत्तिओ कायव्वो? पढमसमयकोधवेदगस्स बारसण्हं पि कसायाणं गुणसेडीणिक्खेवो सेसाणं कम्माणं गुणसेडीणिक्खेवेण सरिसो होदि। जहा मोहणीयवज्जाणं कम्माणं सेसे सेसे गुणसेडिं णिक्खिवदि, तधा एत्तो पाए बारसण्हं

है। मोहनीयको छोड़कर शेष कर्मोंका निक्षेप जो प्रथमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक द्वारा निक्षिप्त किया गया है उसके शेष शेषमें निक्षेपण करता है। प्रथम समय मानवेदककी नौ प्रकारकी भी कषाय संक्रमण करती है। तब तीन संज्वलनोंका स्थितिबन्ध पूर्ण चार मासप्रमाण तथा शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है। इस प्रकार बहुत स्थितिबन्धसहस्र जाकर मानका अन्तिम समय वेदक होता है। उस अन्तिम समय वेदकके तीन संज्वलनोंका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त कम आठ मास और शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है। अनन्तर कालमें तीन प्रकारके क्रोधका अपकर्षण करके संज्वलनक्रोधकी उदयादिगुणश्रेणी करता है, तथा अप्रत्याख्यान व प्रत्याख्यान क्रोधकी उदयावलीके बाहिर गुणश्रेणी करता है।

शंका — क्रोधवेदकके प्रथम समयमें गुणश्रेणिनिक्षेप कितना करने योग्य है?

समाधान—प्रथम समय क्रोधवेदकके बारह कषायोंका गुणश्रेणिनिक्षेप शेष कर्मोंके गुणश्रेणिनिक्षेपके समान होता है।

जिस प्रकार मोहनीयको छोड़कर शेष कर्मोंकी गुणश्रेणीको शेष शेषमें निक्षेपण करता है, उसी प्रकार यहांसे लेकर बारह कषायोंकी गुणश्रेणीका शेष शेषमें

---

१ ओदरगमाणपढमे तेत्तियमाणादियाण पयडीणं। ओदरगमाणवेदगकालादहियं दु गुणसेढी ॥ लब्धि. ३१९.

२ प्रतिषु '-सांपरायाण' इति पाठः।

३ तस्मिन्नेव मानवेदकप्रथमसमये नवविधकषायद्रव्यमनानुपूर्व्या बध्यमानलोभमायामानेषु संक्रामति। लब्धि. ३१९. टीका.

४ ओदरगमाणपढमे चउमासा माणपहुदिठिदिबंधो। छण्हं पुण वस्साणं संखेज्जसहस्समेत्ताणि ॥ लब्धि. ३२०.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

कसायाणं सेसे सेसे गुणसेडी णिक्खिविदव्वा[1] । पढमसमयकोधवेदगस्स बारसविहस्स वि कसायस्स संकमो होदि । ताधे ट्ठिदिबंधो चदुण्हं संजलणाणं पडिवुण्णा अट्ठ मासा। सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि[2] । एदेण कमेण संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु मोहणीयस्स चरिमसमयचउव्विहबंधगो जादो । ताधे मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो चउसट्ठी वस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि । सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । तदो से काले पुरिसवेदस्स बंधगो जादो । ताधे चेव सत्तण्हं कम्माणं पदेसग्गं पसत्थउवसामणाए सव्वमणुवसंतं । ताधे चेव सत्तकम्मंसे ओकड्डिदूण पुरिसवेदस्स उदयादिगुणसेडिं करेदि । छण्हं कम्मंसाणमुदयावलियबाहिरे गुणसेडिं करेदि । गुणसेडीणिक्खेवो बारसण्हं कसायाणं सत्तण्हं णोकसायाणं वेदणीयाणं सेसाणं च आयुगवज्जाणं कम्माणं गुणसेडीणिक्खेवेण तुल्लो[3] । सेसे सेसे च णिक्खेवो । ताधे चेव पुरिसवेदस्स ट्ठिदिबंधो बत्तीसं वस्साणि पडिवुण्णाणि । संजलणाणं ट्ठिदिबंधो चदुसट्ठी वस्साणि । सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि[4] । पुरिसवेदे अणुवसंते जाविस्थि-

निक्षेपण करने योग्य है। प्रथम समय क्रोधवेदकके बारह प्रकारकी ही कषायका संक्रमण होता है। उस समयमें चार संज्वलनोंका स्थितिबन्ध पूर्ण आठ मासप्रमाण होता है। शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है। इस क्रमसे संख्यात स्थितिबन्धसहस्रोंके बीत जानेपर मोहनीयके चतुर्विध बंधका अन्तिम समय प्राप्त होता है । उस समयमें मोहनीयका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त कम चौंसठ वर्षप्रमाण होता है। शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है। पश्चात् अनन्तर कालमें पुरुषवेदका बन्धक हो जाता है। उसी समयमें ही सात कर्मोंका प्रदेशाग्र प्रशस्त-उपशामना (सर्वकरणोपशामना) से रहित होकर सब अनुपशान्त हो जाता है। उसी समयमें सात कर्मांशोंका अपकर्षण करके पुरुषवेदकी उदयादिगुणश्रेणीको करता है। छह कर्मांशोंकी उदयावलीके बाहिर गुणश्रेणी करता है। बारह कषाय और सात नोकषायोंका गुणश्रेणिनिक्षेप वेदनीय एवं आयुको छोड़कर शेष कर्मोंके गुणश्रेणिनिक्षेपके तुल्य होता है। शेष शेषमें निक्षेप होता है। उसी समयमें पुरुषवेदका स्थितिबन्ध बत्तीस वर्ष संज्वलनोंका स्थितिबन्ध चौंसठ वर्ष और शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षसहस्रमात्र प्राप्त होता है। पुरुषवेदके अनुपशान्त होनेपर

१ ओदरगकोहपढमे छक्कम्मसमाणया हु गुणसेढी । बादरकसायणं पुण एत्तो गलितावसेसं तु ॥ लब्धि. ३२१

२ ओदरगकोहपढमे संजलणाणं तु अट्ठमासठिदी । छण्हं पुण वस्साणं संखेज्जसहस्सवस्साणि ॥ लब्धि. ३२२.

३ ओदरगपुरिसपढमे सत्तकसाया पणट्ठउवसमणा । उणवीसकसायाणं छक्कम्माणं समाणगुणसेढी ॥ लब्धि. ३२३.

४ पुंसंजलणिदराणं वस्सा बत्तीसयं तु चउसट्ठी । संखेज्जसहस्साणि य तक्काले होदि ठिदिबंधो ॥ लब्धि. ३२४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेदो उवसंतो, एदिस्से अद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु णामा-गोद-वेदणीयाणमसंखेज्ज-वस्सट्ठिदिगो बंधो[१]।

ताधे अप्पाबहुगं कायव्वं– सव्वत्थोवो मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो। तिण्हं घादि-कम्माणं ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ। एत्तो ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु इत्थिवेदमेगसमएण अणुवसंतं करेदि। ताधे चेव तमोकड्डिदूण उदयावलियबाहिरे गुणसेडिं करेदि। इदरेसिं कम्माणं जो गुणसेडीणिक्खेवो तत्तिओ चेव इत्थिवेदस्स वि। सेसे सेसे च णिक्खेवो। इत्थि-वेदे अणुवसंते जाव णवुंसयवेदो उवसंतो, एदिस्से अद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं असंखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो जादो। ताधे मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो थोवो। तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। णामा-गोदाणं ट्ठिदि-बंधो असंखेज्जगुणो। वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।

जाधे तिण्हं घादिकम्माणमसंखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो, ताधे चेव एगसमएण णाणावरणीयं चउव्विहं, दंसणावरणीयं तिविहं, पंचंतराइयाणि, एदाणि दुट्ठाणियाणि बंधेण

जब तक स्त्रीवेद उपशान्त है, तब तक इसी कालके संख्यात बहुभागोंके वीत जानेपर नाम, गोत्र व वेदनीय, इनका असंख्यात वर्षमात्र स्थितिसे संयुक्त बन्ध होता है।

उस समयमें निम्न प्रकार अल्पबहुत्व करना चाहिये। मोहनीयका स्थितिबन्ध सबसे स्तोक होता है। तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा होता है। नाम व गोत्र कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा होता है। वेदनीयका स्थितिबन्ध विशेष अधिक होता है। यहांसे स्थितिबन्धसहस्रोंके वीतनेपर स्त्रीवेदको एक समयमें अनुपशान्त करता है। उसी समयमें ही स्त्रीवेदका अपकर्षण करके उदयावलीके बाहिर गुणश्रेणी करता है। इतर कर्मोंका जो गुणश्रेणीनिक्षेप है उतना ही स्त्रीवेदका भी होता है। शेष शेषमें निक्षेप होता है। स्त्रीवेदके अनुपशान्त होनेपर जब तक नपुंसकवेद उपशान्त है, तब तक इस कालके संख्यात बहुभागोंके वीतनेपर ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्त-राय, इनका बन्ध असंख्यात वर्षप्रमाण स्थितिवाला हो जाता है। उस समयमें मोहनीयका स्थितिबन्ध स्तोक, तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा, नाम व गोत्रका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा, तथा वेदनीयका स्थितिबन्ध विशेष अधिक होता है।

जब तीन घातिया कर्मोंका असंख्यात वर्षकी स्थितिवाला बन्ध होता है, उसी समय ही एक समयमें चार प्रकारका ज्ञानावरणीय, तीन प्रकारका दर्शनावरणीय और पांच अन्तराय, ये बन्धसे दो स्थान (लता और दारु) वाले हो जाते हैं। पश्चात् संख्यात

---

१ पुरिसे दु अणुवसंते इत्थीउवसंतगो त्ति अद्धाए। संखाभागासु गदेससंखवस्सं अधादिठिदिबंधो ॥ लब्धि. २२५.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

जादाणि[1]। तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु णउंसयवेदमणुवसंतं करेदि। ताधे चेव णउंसयवेदमोकड्डिदूण उदयावलियबाहिरे गुणसेडीए णिक्खिवदि। इदरेसिं कम्माणं गुणसेडीणिक्खेवेण सरिसो गुणसेडीणिक्खेवो। सेसे सेसे च गुणसेडीणिक्खेवो। णउंसयवेदे अणुवसंते जाव अंतरकदपढमसमयं ण पावदि, एदिस्से अद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु मोहणीयस्स असंखेज्जवस्सट्ठिदिओ बंधो जादो। ताधे चेव मोहणीयस्स दुट्ठाणिया बंधोदया[2]। सव्वस्स पडिवदमाणयस्स छसु आवलियासु गदासु उदीरणा त्ति

स्थितिबन्धसहस्रोंके वीत जानेपर नपुंसकवेदको अनुपशान्त करता है। उसी समय ही नपुंसकवेदका अपकर्षण करके उदयावलीके बाहिर गुणश्रेणीमें निक्षेपण करता है। यह गुणश्रेणिनिक्षेप इतर कर्मोंके गुणश्रेणिनिक्षेपके सदृश होता है। शेष शेषमें गुणश्रेणिनिक्षेप होता है। नपुंसकवेदके अनुपशान्त होनेपर जब तक अन्तर करनेके प्रथम समयको प्राप्त नहीं करता, तब तक इस कालके संख्यात बहुभागोंके वीत जानेपर मोहनीयका बन्ध असंख्यात वर्षप्रमाण स्थितिवाला हो जाता है। उसी समय ही मोहनीयका बन्ध व उदय दो स्थान (लता और दारु) रूप हो जाता है। सब उतरनेवालोंके छह आवलियोंके वीत जानेपर ही उदीरणा हो ऐसा नियम नहीं रहता, किन्तु बंधावलीके व्यतीत होनेपर उदीरणा होने लगती है।

विशेषार्थ — उपशमश्रेणी चढते समयके लिये यह नियम बतलाया गया था कि कर्मोंका बन्ध होनेसे छह आवलियोंके पश्चात् ही उनकी उदीरणा हो सकती है, उससे अल्प समयमें नहीं (देखो पृ. ३०२)। किन्तु श्रेणीसे उतरनेवालोंके लिये यह नियम नहीं है। कुछ आचार्योंका ऐसा मत है कि श्रेणीसे उतरते समय भी जब तक मोहनीयका संख्यात वर्षमात्र तकका स्थितिबन्ध होता है तब तक तो छह आवलियोंके वीतनेपर ही उदीरणाका नियम रहता है, किन्तु जब असंख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबन्धका प्रारंभ हो जाता है तब यह छह आवलियोंके पश्चात् उदीरणाका नियम नहीं रहता। किन्तु इसपर वीरसेनाचार्यका मत यह है कि यदि ऐसा माना जाय तो कषायप्राभृतके चूर्णिसूत्रवर्ती 'सव्वस्स पडिवदमाणयस्स' में जो 'सर्व' पदका प्रयोग हुआ है वह निष्फल हो जायगा। अतएव यही मानना चाहिये कि श्रेणी उतरते समय छह आवलियोंके पश्चात् उदीरणाका नियम सर्वथा लागू नहीं होता।

---

१ थीअणुवसमे पढमे वीसकसायाण होदि गुणसेढी। संढुवसमो त्ति मज्झे संखाभागेसु तीदेसु ॥ घादितियाणं णियमा असंखवस्सं तु होदि ठिदिबंधो। तक्काले दुट्ठाणं रसबंधो ताण देसघादीणं॥ लब्धि. ३२७-३२८.

२ संढणुवसमे पढमे मोहिगिवीसाण होदि गुणसेढी। अंतरकदो त्ति मज्झे संखाभागासु तीदासु ॥ मोहस्स असंखेज्जा वस्सपमाणा हवेज्ज ठिदिबंधो। ताहे तस्स य जादं बंधं उदयं च दुट्ठाणं ॥ लब्धि. ३२९–३३०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णत्थि णियमो, आवलियादिक्कंतमुदीरिज्जदि[1]। अणियट्टिप्पहुडि सव्वस्स ओयरंतस्स मोहणीयस्स अणाणुपुव्वीसंकमो, लोभस्स वि संकमो[2]। जाधे मोहणीयस्स असंखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो ताधे मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो थोवो। तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ। एदेण कमेण संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु अणुभागबंधेण वीरियंतराइयं सव्वघादी जादं। तदो ट्ठिदिबंधपुधत्तेण आभिणिबोहियणाणावरणं परिभोगंतराइयं च सव्वघादीणि जादाणि। तदो ट्ठिदिबंधपुधत्तेण चक्खुदंसणावरणीयं सव्वघादी जादं। तदो ट्ठिदिबंधपुधत्तेण सुदणाणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं भोगंतराइयं च सव्वघादीणि

अनिवृत्तिकरणके कालसे प्रारंभकर सब उतरनेवालोंके मोहनीयका आनुपूर्वी रहित संक्रमण होता है। लोभका भी संक्रमण होने लगता है। जब मोहनीयका असंख्यात वर्षप्रमाण स्थितिवाला बन्ध होता है तब मोहनीयका स्थितिबन्ध स्तोक, तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा, नाम व गोत्र कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा, तथा वेदनीयका स्थितिबन्ध विशेष अधिक होता है। इस क्रमसे संख्यात स्थितिबन्धसहस्रोंके बीत जानेपर वीर्यान्तराय अनुभागबन्धसे सर्वघाती हो जाता है। पश्चात् स्थितिबन्धपृथक्त्वसे आभिनिबोधिकज्ञानावरण और परिभोगान्तराय भी सर्वघाती हो जाते हैं। पश्चात् स्थितिबन्धपृथक्त्वसे चक्षुदर्शनावरणीय सर्वघाती हो जाता है। तत्पश्चात् स्थितिबन्धपृथक्त्वसे श्रुतज्ञानावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय और भोगान्तराय,

१ संपहि छसु आवलियासु गदासु उदीरणा त्ति जो णियमो उवसामगस्स अंतरकरणसमकालमेवाढत्तो सो वि एत्थ णत्थि। किंतु ओदरमाणस्स सव्वावत्थासु चेव बंधावलियादिक्कंतमेत्तं चेव कम्ममुदीरिज्जदि त्ति एदस्स अत्थविसेसस्स पदुप्पायणफलो उत्तरसुत्तारंभो– सव्वस्स पडिवदमाणगस्स ... -मुदीरिज्जदि। एत्थ सव्वग्गहणेण पडिवदमाणसुहुमसांपराइयप्पहुडि सव्वत्थेव पयदणियमो णत्थि त्ति एसो अत्थो जाणाविदो, अण्णहा सव्वविसेसणस्स साहल्लियाणुवलंभादो। अण्णे पुण आइरिया जाव मोहणीयस्स संखेज्जवस्सट्ठिदिबंधो ताव ओदरमाणयस्स वि छसु आवलियासु गदासु उदीरणा त्ति एसो णियमो होदूण पुणो असंखेज्जवस्सियट्ठिदिबंधपारंभे एत्तो पहुडि तारिसो णियमो णट्ठो त्ति एदस्स सुत्तस्स अत्थं वक्खाणेंति। एदम्मि पुण वक्खाणे अवलंबिज्जमाणे सव्वग्गहणमेदं ण संबज्झिदि त्ति तदो पुव्वुत्तो चेव अत्थो पहाणभावेणालंबेयव्वो। जयध. अ. प. १०५२.

२ लोहस्स असंकमणं छावलितदिसुदीरणत्तं च। णियमेण पडंताणं मोहस्सणुपुव्विसंकमणं ॥ विवरीयं पडिहण्णदि × × × ॥ लब्धि. ३३१–३३२. ओदरमाणसुहुमसांपराइयपढमसमयप्पहुडि चेव मोहणीयस्स अणाणुपुव्विसंकमो त्ति किमेवं ण वुच्चदे? ण, सुहुमसांपराइयगुणट्ठाणे मोहणीयस्स बंधाभावेण संकमपवुत्तीए तत्थ संभवाणुवलंभादो। एदं च सत्तिं पडुच्च वुत्तं लोभसंजलणस्स वि ताधे चेव संकमसत्ती समुप्पण्णा त्ति। अण्णहा पुण जाव तिविहा माया णोकड्डिदा ताव अणाणुपुव्विसंकमस्सुवत्ती ण जायदे। तत्तो पुव्वं लोभसंजलणस्स पडिग्गहाभावेण संकमपवुत्तीए संभवाणुवलंभादो। जयध. अ. प. १०५२.

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

जादाणि। तदो ट्ठिदिबंधपुधत्तेण ओहिणाणावरणीयं ओहिदंसणावरणीयं लाहंतराइयं च सव्वघादीणि जादाणि। तदो ट्ठिदिबंधपुधत्तेण मणपज्जवणाणावरणीयं दाणंतराइयं च अणुभागबंधेण सव्वघादीणि जादाणि। तदो ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा पडिहम्मदि[1]। समयपबद्धस्स असंखेज्जलोगभागो उदीरणा पवत्तदि[2]। जाधे समयपबद्धस्स असंखेज्जलोगभागो उदीरणा, ताधे मोहणीयस्स ठिदिबंधो थोवो। घादिकम्माणं ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। णामा-गोदाणं ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ। एदेण कमेण ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु तदो एक्कसराहेण मोहणीयट्ठिदिबंधो थोवो। णामा-गोदाणं ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं तिण्हं पि कम्माणं ठिदिबंधो तुल्लो विसेसाहिओ। वेदणीयस्स ठिदिबंधो विसेसाहिओ[3]। एवं संखेज्जाणि ठिदिबंधसहस्साणि कादूण तदो एक्कसराहेण मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो थोवो। णामा-गोदाणं ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। णाणावरणीय-

---

ये सर्वघाती हो जाते हैं। पुनः स्थितिबन्धपृथक्त्वसे अवधिज्ञानावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और लाभान्तराय भी सर्वघाती हो जाते हैं। पश्चात् स्थितिबन्धपृथक्त्वसे मनःपर्ययज्ञानावरणीय और दानान्तराय भी अनुभागबन्धसे सर्वघाती हो जाते हैं। तत्पश्चात् स्थितिबन्धसहस्रोंके बीत जानेपर असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा नष्ट हो जाती है और समयप्रबद्धके असंख्यात लोकमात्र भागहाररूप, अर्थात् एक समयप्रबद्धके असंख्यातवें भागमात्र, उदीरणा होती है। जिस समयमें समयप्रबद्धके असंख्यात लोकमात्र भागहाररूप उदीरणा होती है उस समयमें मोहनीयका स्थितिबन्ध स्तोक, घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा, नाम व गोत्र कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा, और वेदनीयका स्थितिबन्ध विशेष अधिक होता है। इस क्रमसे स्थितिबन्धसहस्रोंके बीत जानेपर पश्चात् एक साथ मोहनीयका स्थितिबन्ध स्तोक, नाम व गोत्र कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा, तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन तीनों ही कर्मोंका स्थितिबन्ध तुल्य विशेष अधिक होता है। वेदनीयका स्थितिबन्ध विशेष अधिक होता है। इस प्रकार संख्यात स्थितिबन्धसहस्रोंको करके पश्चात् एक साथ मोहनीयका स्थितिबन्ध स्तोक, नाम व गोत्र कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा, तथा ज्ञानावरणीय,

---

१ विवरीयं पडिहण्णदि विरयादीणं च देसघादित्तं। तह य असंखेज्जाणं उदीरणा समयपबद्धाणं॥ लब्धि. ३३२.

२ लोयाणमसंखेज्जं समयपबद्धस्स होदि पडिभागो। तत्तियमेत्तद्दव्वस्सुदीरणा वट्टदे तत्तो॥ लब्धि. ३३३.

३ तक्काले मोहणियं तीसीयं वीसियं च वेयणियं। मोहं वीसिय तीसिय वेयणिय कमं हवे तत्तो॥ लब्धि. ३३४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दंसणावरणीय-वेदणीय-अंतराइयाणं ठिदिबंधो तुल्लो विसेसाहिओ। एवं संखेज्जाणि ठिदिबंधसहस्साणि गदाणि। तदो अण्णो ट्ठिदिबंधो एक्कसराहेण णामा-गोदाणं थोवो। मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ। णाणावरण-दंसणावरण-वेदणीय-अंतराइयाणं ठिदिबंधो तुल्लो विसेसाहिओ। एदेण कमेण ट्ठिदिबंधसहस्साणि बहूणि गदाणि। तदो अण्णो ट्ठिदिबंधो एक्कसराहेण णामा-गोदाणं थोवो। चउण्हं कम्माणं ठिदिबंधो तुल्लो विसेसाहिओ। मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ[1]। जत्तो पाए असंखेज्जवस्सट्ठिदिओ बंधो तत्तो पाए पुण्णे पुण्णे ट्ठिदिबंधे अण्णं ट्ठिदिबंधमसंखेज्जगुणं बंधदि[2]। एदेण कमेण सत्तण्हं पि कम्माणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागिगादो ट्ठिदिबंधादो एक्कसराहेण पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागिगो ठिदिबंधो जादो। तत्तो पाए पुण्णे पुण्णे ठिदिबंधे अण्णं ट्ठिदिबंधं संखेज्जगुणं बंधदि[3]। एवं संखेज्जाणं ट्ठिदिबंधसहस्साणमपुव्वा वड्ढी पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो। तदो मोहणीयस्स अण्णस्स ट्ठिदिबंधस्स अपुव्वा वड्ढी पलिदोवमस्स संखेज्जा भागा जादा। ताधे चदुण्हं कम्माणं ट्ठिदिबंधस्स वड्ढी

दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तराय, इनका स्थितिबन्ध तुल्य विशेष अधिक होता है। इस प्रकार संख्यात स्थितिबन्धसहस्र वीत जाते हैं। तब अन्य स्थितिबन्ध एक साथ नाम व गोत्र कर्मोंका स्तोक, मोहनीयका स्थितिबन्ध विशेष अधिक, तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय, इनका स्थितिबन्ध तुल्य विशेष अधिक होता है। इस क्रमसे बहुत स्थितिबन्धसहस्र वीत जाते हैं। तत्पश्चात् अन्य स्थितिबन्ध एक साथ नाम व गोत्र कर्मोंका स्तोक, चार कर्मोंका स्थितिबन्ध तुल्य विशेष अधिक, और मोहनीयका स्थितिबन्ध विशेष अधिक होता है। जहांसे लेकर असंख्यात वर्षमात्र स्थितिवाला बन्ध होता है वहांसे लेकर प्रत्येक स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर अन्य असंख्यातगुणे स्थितिबन्धको बांधता है। इस क्रमसे सातों कर्मोंका पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र स्थितिबन्धसे एक साथ पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिबन्ध होने लगता है। वहांसे लेकर प्रत्येक स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर अन्य संख्यातगुणे स्थितिबन्धको बांधता है। इस प्रकार संख्यात स्थितिबन्धसहस्रोंकी अपूर्व वृद्धि पल्योपमके संख्यातवें भागमात्र होती है। पश्चात् मोहनीयके स्थितिबन्धकी अपूर्व वृद्धि पल्योपमके संख्यात बहुभागमात्र होती है। उस समयमें चार कर्मोंके स्थितिबन्धके साधिक चतुर्थ भागसे हीन पल्योपम-

१ मोहं वीसिय तीसिय तो वीसिय मोहतीसियाण कमं। वीसिय तीसिय मोहं अप्पाबहुगं तु अविरुद्धं ॥ लब्धि. ३२५.

२ जत्तोपाये होदि हु असंखवस्सप्पमाणठिदिबंधो। तत्तोपाये अण्णं ठिदिबंधमसंखगुणियकमं॥ लब्धि. ३२७.

३ एवं पल्लासंखं संखं भागं च होइ बंधेण। एत्तोपाये अण्णं ठिदिबंधो संखगुणियकमं ॥ लब्धि. ३८३.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

पलिदोवमं चदुभागेण सादिरेगेण ऊणयं। ताधे चेव णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधपरिवड्ढी अद्धपलिदोवमं संखेज्जदिभागूणं। जावे एमा परिवड्ढी ताधे मोहणीयस्स जो ट्ठिदिबंधो पलिदोवमं, चदुण्हं कम्माणं जो ट्ठिदिबंधो पलिदोवमं चदुभागूणं, णामा-गोदाणं जो ट्ठिदिबंधो अद्धपलिदोवमं, एत्तो पाए ट्ठिदिबंधे पुण्णे पुण्णे पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण वड्ढदि[1]। जत्तिया अणियट्टीअद्धा सेसा, अपुव्वकरणद्धा सव्वा च, तत्तियं कालं एदाए पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागपरिवड्ढीए ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु अण्णो एइंदियट्ठिदिबंध-समओ ट्ठिदिबंधो जादो। एवं बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-असण्णिट्ठिदिबंधसमओ ट्ठिदि-बंधो जादो[2]। तदो ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु चरिमसमयअणियट्टी जादो। चरिमसमय-अणियट्टिस्स ट्ठिदिबंधो सागरोवमसदसहस्सपुधत्तमंतोकोडीए[3]।

से काले अपुव्वकरणं पविट्ठो। ताधे चेव अप्पसत्थउवसामणाकरणं णिधत्तीकरणं[4] णिकाचणाकरणं च उग्घाडिदाणि[5]। ताधे चेव मोहणी-

---

मात्र वृद्धि होती है। उसी समय नाम व गोत्र कर्मोंकी स्थितिबन्धवृद्धि संख्यातवें भागसे हीन अर्ध पल्योपममात्र होती है। जब यह वृद्धि होती है तब मोहनीयका जो स्थितिबन्ध पल्योपमप्रमाण, चार कर्मोंका जो स्थितिबन्ध चतुर्थ भागसे हीन पल्योपम-प्रमाण, और नाम व गोत्र कर्मोंका जो स्थितिबन्ध अर्ध पल्योपममात्र होता है, उससे लेकर प्रत्येक स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर पल्योपमके संख्यातवें भागमात्र वृद्धि होती है। जितना शेष अनिवृत्तिकरणकाल और सब अपूर्वकरणकाल है उतने काल तक इस पल्योपमके संख्यातवें भागमात्र वृद्धिसे स्थितिबन्धसहस्रोंके वीत जानेपर अन्य स्थितिबन्ध एकेन्द्रियके समान हो जाता है। पुनः इसी प्रकार द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी, इनके स्थितिबन्धके समान स्थितिबन्ध हो जाता है। तत्पश्चात् स्थितिबन्धसहस्रोंके वीत जानेपर अन्तसमयवर्ती अनिवृत्तिकरण होता है। अन्तिम-समयवर्ती अनिवृत्तिकरणके स्थितिबन्ध कोटिके भीतर सागरोपमलक्षपृथक्त्वमात्र होता है। (अर्थात् मोहनीयका लक्षपृथक्त्वसागरोंके सात भागोंमेंसे चार भाग ($\frac{4}{7}$), ज्ञानावरणादि चार कर्मोंका उक्त सात भागोंमेंसे तीन भाग ($\frac{3}{7}$), और नाम व गोत्र कर्मोंका उक्त सात भागोंमेंसे दो भाग ($\frac{2}{7}$) मात्र स्थितिबन्ध होता है।)

उसके अनन्तर समयमें अपूर्वकरणमें प्रविष्ट होता है। उसी समय ही अप्रशस्त-उप-शामनाकरण, निधत्तिकरण और निकाचनकरण प्रगट हो जाते हैं। उसी समयमें नौ प्रकार

---

१ मोहस्स य ठिदिबंधो पल्ले जादे तदा हु परिवड्ढी। पल्लस्स संखभागं इगिविगलासण्णिसमं॥ लब्धि. ३३९.

२ मोहस्स पल्लबंधे तीसदुगे तत्तिपादमद्धं च। दुतिचउसत्तमभागा वीसतिये एयवियलठिदी॥ लब्धि. ३४०.

३ तत्तो अणियट्टिस्स य अंतं पत्तो हु तत्थ उदधीणं। लक्खपुधत्तं बंधो से काले पुव्वकरणो हु॥ लब्धि. ३४१.

४ अप्रतौ ' णिव्वत्तीकरणं ', आ-कप्रत्योः ' णिवत्तीकरणं ' इति पाठः।

५ उवसामणा णिवत्ती णिकाचणुग्घाडिदाणि तत्थेव। चदुतीसदुगाणं च य बंधो अद्धापवत्तो य॥ लब्धि. ३४२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यस्स णवविहबंधगो जादो । ताधे चेव हस्स-रदि-अरदि-सोगाणमेक्कदरस्स संघादयस्स उदीरगो, सिया भय-दुगुंछाणमुदीरओ । तदो अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जदिभागे गदे तदो परभवियणामाणं बंधगो जादो । तदो ट्ठिदिबंधसहस्सेहि गदेहि अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु णिद्दा-पयलाओ बंधदि । तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु चरिमसमयअपुव्वकरणं पत्तो ।

से काले पढमसमयअधापवत्तो जादो । तदो पढमसमयअधापवत्तस्स अण्णो गुणसेडिणिक्खेवो पोराणियादो गुणसेडिणिक्खेवादो संखेज्जगुणो[1] । ओयरमाणसुहुमसांपराइयपढमसमयादो अपुव्वकरणो त्ति[2] ताव सेसे सेसे णिक्खेवो[3] । जो पढमसमयअधापवत्तकरणे णिक्खेवो अंतोमुहुत्तिओ तत्तिओ चेव । तेण परं सिया वड्ढदि सिया हायदि सिया अवट्ठायदि[4] । पढमसमयअधापवत्तकरणे गुणसंकमो वोच्छिण्णो । सव्वकम्माणं अधापवत्तसंकमो जादो ।

मोहनीयका बन्धक होता है। उसी समय हास्य व रति तथा अरति व शोक, इनमेंसे किसी एक संघातका उदीरक होता है। कदाचित् भय और जुगुप्साका उदीरक होता है। पश्चात् अपूर्वकरणकालका संख्यातवां भाग वीतनेपर तब परभविक नामकर्मों अर्थात् देवगति आदि तीस या सत्ताईस प्रकृतियोंका बन्धक हो जाता है। तत्पश्चात् स्थितिबन्धसहस्रोंके वीतनेसे अपूर्वकरणकालके संख्यात बहुभागोंके व्यतीत होनेपर निद्रा व प्रचला प्रकृतियोंको बांधता है । पुनः संख्यात स्थितिबन्धसहस्रोंके वीत जानेपर अपूर्वकरणके अन्त समयको प्राप्त होता है ।

अनन्तर समयमें प्रथमसमयवर्ती अधःप्रवृत्तकरण हो जाता है । तब अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें अन्य गुणश्रेणिनिक्षेप पूर्व गुणश्रेणिनिक्षेपसे संख्यातगुणा होता है । उतरते हुए सूक्ष्मसाम्परायिकके प्रथम समयसे लेकर अपूर्वकरणके अन्तिम समय तक शेष शेषमें निक्षेप होता है । अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें जो अन्तर्मुहूर्तमात्र निक्षेप है उतना ही अन्तर्मुहूर्ततक रहता है। उससे आगे कदाचित् बढ़ता है, कदाचित् हानिको प्राप्त होता है, और कदाचित् अवस्थित रहता है । अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें गुणसंक्रमण नष्ट हो जाता है और सब कर्मोंका अधःप्रवृत्त-

---

१ पढमो अधापवत्तो गुणसेढिमवट्ठिदं पुराणादो । संखगुणं तच्चंतोमुहुत्तमेत्तं करेदी हु ॥ लब्धि. ३४३.

२ प्रतिषु ' पढमसमयअपुव्वकरणादो त्ति ' इति पाठः ।

३ ओदरसुहुमादीदो अपुव्वचरिमोत्ति गलिदसेसे व । गुणसेढीणिक्खेवो सट्ठाणे होदि तिट्ठाणं ॥ लब्धि. ३४४.

४ सट्ठाणे तावदियं संखगुणूणं तु उवरि चडमाणे । विरदाविरदाहिमुहे संखेज्जगुणं तदो तिविहं ॥ लब्धि. ३४५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णवरि जेसिं विज्झादसंकमो अत्थि तेसिं विज्झादसंकमो चेव[1]। उवसामगस्स पढमसमयअपुव्वकरणप्पहुडि जाव पडिवदमाणयस्स चरिमसमयअपुव्वकरणोत्ति तदो एत्तो संखेज्जगुणं कालं पडिणियत्तो अधापवत्तकरणेण उवसमसम्मत्तद्धमणुपालेदि[2]।

एदिस्से उवसमसम्मत्तद्धाए अब्भंतरादो असंजमं पि गच्छेज्ज, संजमासंजमं पि गच्छेज्ज, छसु आवलियासु सेसासु आसाणं पि गच्छेज्ज[3]। आसाणं पुण गदो जदि मरदि, ण सक्को णिरयगदिं तिरिक्खगदिं मणुसगदिं वा गंतुं, णियमा देवगदिं गच्छदि[4] (एसो पाहुडचुण्णिसुत्ताभिप्पाओ। भूदबलिभयवंतस्सुवएसेण उवसमसेडीदो ओदिण्णो ण सासणत्तं पडिवज्जदि[5]। हंदि तिसु आउएसु एक्केण वि बद्धेण ण सक्को कसाए उवसामेदुं, तेण कारणेण णिरय-तिरिक्ख-मणुसगदीओ ण गच्छदि[6])

....

संक्रमण होता है। विशेषता यह है कि जिनका विध्यातसंक्रमण है उनका विध्यातसंक्रमण ही रहता है। उपशामकके श्रेणी चढ़ते समय अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर उतरते हुए अपूर्वकरणके अन्तिम समय तक जो काल है उससे संख्यातगुणे काल तक कषायोपशामनासे लौटता हुआ जीव अधःप्रवृत्तकरणके साथ द्वितीयोपशमसम्यक्त्वको पालता है।

इस द्वितीयोपशमसम्यक्त्वकालके भीतर असंयमको भी प्राप्त हो सकता है, संयमासंयमको भी प्राप्त हो सकता है, और छह आवलियोंके शेष रहनेपर सासादनको भी प्राप्त हो सकता है। परन्तु सासादनको प्राप्त होकर यदि मरता है तो नरकगति, तिर्यचगति अथवा मनुष्यगतिको प्राप्त करनेके लिये समर्थ नहीं होता, नियमसे देवगतिको ही प्राप्त करता है। यह कषायप्राभृतचूर्णिसूत्र (यतिवृषभाचार्यकृत) का अभिप्राय है। किन्तु भगवान् भूतबलिके उपदेशानुसार उपशमश्रेणिसे उतरता हुआ सासादनगुणस्थानको प्राप्त नहीं करता। निश्चयतः नारकायु, तिर्यगायु और मनुष्यायु, इन तीन आयुमेंसे पूर्वमें बांधी गई एक भी आयुसे कषायोंको उपशमानेके लिये समर्थ नहीं होता। इसी कारणसे नरक, तिर्यंच व मनुष्यगतिको प्राप्त नहीं करता।

....

१ करणे अधापवत्ते अधापवत्तो दु संकमो जादो। विज्झादमबंधाणे णट्ठो गुणसंकमो तत्थ ॥ लब्धि. ३४६.

२ चडणोदरकालादो पुव्वादो पुव्वगोत्ति संखगुणं। कालं अधापवत्तं पालदि सो उवसमं सम्मं ॥ लब्धि. ३४७.

३ तस्सम्मत्तद्धाए असंजमं देससंजमं वापि। गच्छेज्जावलिछक्के सेसे सासणगुणं वापि ॥ लब्धि. ३४८.

४ जदि मरदि सासणो सो णिरयतिरक्खं णरं ण गच्छेदि। णियमा देवं गच्छदि जइवसहमुणिंदवयणेण ॥ लब्धि. ३४९.

५ उवसमसेढीदो पुण ओदिण्णो सासणं ण पाउणदि। भूदबलिणाहणिम्मलसुत्तस्स फुडोवदेसेण ॥ लब्धि. ३५०.

६ णरयतिरिक्खणराउगसत्तो सक्को ण मोहमुवसमिदुं। तम्हा तिसुवि गदीसु ण तस्स उप्पज्जणं होदि ॥ लब्धि. ३५१.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

एसा सव्वा परूवणा पुरिसवेदयस्स कोहेण उवट्ठिदस्स[1]। पुरिसवेदओ चेव जदि माणेण उवट्ठिदो होज्ज तो जाव सत्त णोकसायाणमुवसामणा, ताव णत्थि णाणत्तं, उवरि णाणत्तं होदि। तं जहा- माणं वेदंतो कोधमुवसामेदि। जद्देही कोहेण उवट्ठिदस्स कोहस्स उवसामणद्धा तद्देही चेव माणेण वि उवट्ठिदस्स कोधस्स उवसामणद्धा। कोधस्स पढमट्ठिदी णत्थि। जद्देही कोहेण उवट्ठिदस्स कोधस्स माणस्स य पढमट्ठिदी तद्देही माणेण उवट्ठिदस्स माणस्स पढमट्ठिदी होदि। माणे उवसंते एत्तो सेसस्स उवसामेदव्वस्स मायाए लोभस्स च जो कोधेण उवट्ठिदस्स उवसामणविधी सो चेव कायव्वो। माणेण उवट्ठिदस्स उवसामेदूण तदो पडिवदिदूण लोभं वेदयमाणस्स जो पुव्वं परूविदो विधी सो चेव कायव्वो। एवं मायं वेदयमाणस्स वि वत्तव्वं।

तदो माणं वेदयमाणस्स णाणत्तं। तं जहा- गुणसेडीणिक्खेवो ताव णवण्हं कसायाणं सेसाणं कम्माणं गुणसेडीणिक्खेवेण तुल्लो, सेसे सेसे च णिक्खेवो। कोहेण उवट्ठिदस्स उवसामगस्स पुणो पडिवदमाणयस्स जद्देही माणवेदगद्धा तत्तियमेत्तेण कालेण माणवेदगद्धाए अधिच्छिदाए ताधे चेव माणं वेदंतो एगसमएण तिविधं कोधमणुवसंतं

यह सब प्ररूपणा क्रोधसे उपस्थित पुरुषवेदीकी है। पुरुषवेदी ही यदि मानसे उपस्थित होता है तो जब तक सात नोकषायोंकी उपशामना है, तब तक कोई नानात्व अर्थात् भेद या विशेषता नहीं है, ऊपर विशेषता है। वह इस प्रकार है—मानका वेदन करनेवाला क्रोधको उपशमाता है। क्रोधसे उपस्थित जीवके जितना क्रोधका उपशामनकाल है उतना ही मानसे भी उपस्थित जीवके क्रोधोपशामनकाल होता है। क्योंकि उसके क्रोधकी प्रथमस्थिति नहीं है। क्रोधसे उपस्थित हुए जीवके जितनी क्रोध और मानकी सम्मिलित प्रथमस्थिति है उतनी ही मानसे उपस्थित जीवके मानकी प्रथमस्थिति होती है। मानके उपशान्त होनेपर शेष उपशमके योग्य माया व लोभकी उपशामनविधि जो क्रोधसे उपस्थित हुए जीवकी है वही करना चाहिये। मानसे उपस्थित होनेवालेके उपशम करके पुनः नीचे उतरकर लोभका वेदन करते हुए जो विधि पूर्वमें कही जा चुकी है वही विधि करना चाहिये। इसी प्रकार मायाका वेदन करनेवालेके भी कहना चाहिये।

उससे मानका वेदन करनेवालेके विशेषता है। वह वह इस प्रकार है—नौ कषायोंका गुणश्रेणिनिक्षेप शेष कर्मोंके गुणश्रेणिनिक्षेपके तुल्य और शेष शेषमें निक्षेप है। क्रोधसे उपस्थित हुए उपशामकके पुनः उतरते हुए जितना मानवेदककाल है उतनेमात्र कालसे मानवेदककालके अतिक्रमण करनेपर उसी समयमें ही मानका वेदन

१ पुंकोधोदयचलियस्सेसा हु परूवणा हु पुंमाणे। मायालोभे चलिदस्सत्थि विसेसं तु पत्तेयं॥ लब्धि. ३५२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करेदि। ताधे चेव ओकड्डिदूण तिविधं पि कोधमावलियबाहिरे गुणसेडीए इदरेसिं कम्माणं गुणसेडीणिक्खेवणसरिसीए णिक्खिवदि गलिदसेसरूवेण। एदं णाणत्तं माणेण उवट्ठिदस्स उवसामगस्स पुरिसवेदयस्स।

मायाए उवट्ठिदस्स उवसामगस्स केद्देही मायाए पढमट्ठिदी? कोधेण उवट्ठिदस्स कोधस्स माणस्स मायाए च जाओ पढमट्ठिदीओ ताओ तिण्णि वि पिंडिदाओ मायाए उवट्ठिदस्स मायाए पढमट्ठिदी होदि। तदो मायं वेदंतो कोधं माणं मायं[1] च उवसामेदि। तदो लोभमुवसामंतस्स णत्थि णाणत्तं। मायाए उवट्ठिदो उवसामेदूण पुणो पडिवदमाणयस्स लोभं वेदयमाणस्स णत्थि णाणत्तं।

मायं वेदंतस्स णाणत्तं। तं जधा- तिविहाए मायाए तिविधस्स लोभस्स च गुणसेढीणिक्खेवो इदरेहि कम्मेहि सरिसो, सेसे सेसे च णिक्खेवो। सेसे च कसाए मायं वेदंतो ओकड्डिहिदि। तत्थ गुणसेढिणिक्खेवं च इदरकम्मगुणसेडीणिक्खेवेण सरिसं काहिदि।

लोभेण उवट्ठिदस्स उवसामगस्स णाणत्तं वत्तइस्सामो। तं जहा- अंतरकरण-

---

करता हुआ एक समयमें तीन प्रकारके क्रोधको अनुपशान्त करता है। उसी समयमें ही तीन प्रकारके क्रोधका अपकर्षण करके आवलीके बाहिर इतर कर्मोंके गुणश्रेणिनिक्षेपके सदृश गुणश्रेणीमें गलित शेषरूपसे निक्षेपण करता है। मानसे उपस्थित पुरुषवेदी उपशामकके यह विशेषता है।

शंका—मायासे उपस्थित उपशामकके मायाकी प्रथमस्थिति कितनी होती है?

समाधान—क्रोधसे उपस्थित हुए जीवके क्रोध, मान और मायाकी जितनी प्रथमस्थितियां हैं उन तीनोंके सम्मिलित प्रमाणरूप मायासे उपस्थित हुए जीवके मायाकी प्रथमस्थिति होती है। अतएव मायाका वेदन करनेवाला क्रोध, मान और मायाको उपशान्त करता है। लोभका उपशम करनेवालेके उससे कोई विशेषता नहीं है। मायासे उपस्थित हुआ उपशम करके पुनः नीचे उतरते हुए लोभका वेदन करनेवालेके विशेषता नहीं है।

मायाका वेदन करनेवालेके विशेषता है। वह इस प्रकार है—तीन प्रकारकी माया और तीन प्रकारके लोभका गुणश्रेणिनिक्षेप इतर कर्मोंके सदृश और शेष शेषमें निक्षेप है। मायाका वेदन करनेवाला शेष कषायोंका अपकर्षण करता है। वहां गुणश्रेणिनिक्षेपको भी इतर कर्मोंके गुणश्रेणिनिक्षेपके सदृश करता है।

लोभसे उपस्थित हुए उपशामककी विशेषताको कहते हैं। वह इस प्रकार है—

---

१ प्रतिषु 'माया' इति पाठः।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

पढमसमए लोभस्स पढमट्ठिदिं करेदि। जद्देही कोधेण-उवट्ठिदस्स कोधस्स माणस्स मायाए च पढमट्ठिदी लोभस्स बादरसांपराइयपढमट्ठिदी च तद्देही लोभस्स पढमठिदी होदि। तदो सुहुमसांपराइयं पडिवण्णस्स णत्थि णाणत्तं। तस्सेव पडिवदमाणयस्स सुहुमसांपराइयं वेदंतस्स णत्थि णाणत्तं।

पढमसमयबादरसांपराइयप्पहुडि णाणत्तं वत्तइस्सामो। तं जहा- तिविहस्स लोभस्स गुणसेडिणिक्खेवो इदरेहि कम्मेहि सरिसो। लोभं वेदयमाणो सेसे कसाए ओकड्डिहिदि। गुणसेडिणिक्खेओ इदरेहि कम्मेहि गुणसेडिणिक्खेवेण सरिसो। सेसे सेसे च णिक्खिवदि। एदाणि णाणत्ताणि कोधेण उवसामेदुमुवट्ठिदउवसामयादो। णवरि जस्स कसायस्स उदयेण चढिदो तम्हि ओवट्टिदे अंतरमाऊरेदि। एदे पुरिस-वेदेणोवट्ठिदस्स वियप्पा[१]।

इत्थिवेदेण उवट्ठिदस्स णाणत्तं वत्तइस्सामो। तं जहा- अवेदो सत्त-कम्मंसे उवसामेदि। सत्तण्हं पि उवसामणद्धा तुल्ला। एदं णाणत्तं, सेसा सव्वे

अन्तरकरणके प्रथम समयमें लोभकी प्रथमस्थितिको करता है। क्रोधसे उपस्थित जीवके क्रोध, मान और मायाकी जितनी प्रथमस्थिति है तथा जितनी लोभकी बादरसाम्प-रायिक प्रथमस्थिति है उतनी लोभकी प्रथमस्थिति है। इससे ऊपर सूक्ष्मसाम्परायिकको प्रतिपन्न अर्थात् सूक्ष्म लोभका वेदन करनेवालेके कुछ भी विशेषता नहीं है। उसीके नीचे उतरते समय सूक्ष्मसाम्परायिकका वेदन करते हुए विशेषता नहीं है।

बादरसाम्परायिकके प्रथम समयसे लेकर जो विशेषता है उसे कहते हैं। वह इस प्रकार है—तीन प्रकारके लोभका गुणश्रेणिनिक्षेप इतर कर्मोंके सदृश है। लोभका वेदन करते हुए शेष कषायोंका अपकर्षण करता है। गुणश्रेणिनिक्षेप इतर कर्मोंके गुण-श्रेणिनिक्षेपके सदृश है। शेष शेषमें निक्षेपण करता है। क्रोधके साथ उपशमानेके लिये उपस्थित हुए जीवकी अपेक्षा मान, माया व लोभके उदयसे युक्त उपशामकोंके ये विशेषतायें हैं। विशेषता यह है कि जिस कषायके उदयसे श्रेणी चढ़ा था उसी कषायका अपकर्षण करनेपर अन्तरको पूर्ण करता है, अर्थात् अन्तरकरणमें नष्ट किये हुए निषेकोंका सद्भाव करता है। ये पुरुषवेदसे उपस्थित हुए जीवके विकल्प कहे गये हैं।

अब स्त्रीवेदसे उपस्थित हुए जीवकी विशेषताको कहते हैं। वह इस प्रकार है— स्त्रीवेदके उदय सहित क्रोधादि कषायोंके उदयसे श्रेणीपर आरूढ़ हुआ जीव अपगतवेदी होकर सात कर्मांशोंको उपशमाता है। सातोंका ही उपशामनकाल तुल्य है। यहां इतनीमात्र

१ जस्सुदएण य चडिदो तम्हि य उक्कट्टियम्हि पडिऊण। अंतरमाऊरेदि हु एवं पुरिसोदए चडिदो॥ लब्धि. ३६०.

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

वियप्पा पुरिसवेदेण सरिसा।

णउंसयवेदेण उवट्ठिदस्स णाणत्तं वत्तइस्सामो[1]। तं जहा– अंतरदुसमयकदे णउंसयवेदमुवसामेदि। जा[2] पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स णउंसयवेदस्स उवसामणद्धा तद्देही अद्धा गदा तो वि णवुंसयवेदो ण उवसमिदि। तदो इत्थिवेदमुवसामेदुमाढवेइ[3], णवुंसयवेदं पि उवसामेदि चेव। तदो इत्थिवेदस्स उवसामणद्धाए पुण्णाए इत्थिवेदो णवुंसयवेदो च उवसामिदा। ताधे चेव चरिमसमयसवेदो भवदि। तदो अवेदो सत्त कम्माणि उवसामेदि। तुल्ला च सत्तण्हं कम्माणमुवसामणा। एदं णाणत्तं णवुंसयवेदेण उवट्ठिदस्स। सेसा वियप्पा ते चेव कायव्वा[4]।

एत्तो पुरिसवेदेण सह कोधोदएण उवट्ठिदस्स उवसामगस्स पढमसमयअपुव्वकरणमादिं कादूण जाव पडिवदमाणयस्स चरिमसमयअपुव्वकरणो त्ति, एदिस्से अद्धाए जाणि कालसंजुत्ताणि पदाणि तेसिमप्पाबहुगं वत्तइस्सामो[5]। तं जहा– सव्वत्थोवा जह-

विशेषता है, शेष सब विकल्प पुरुषवेदके सदृश हैं।

नपुंसकवेदसे उपस्थित हुए जीवकी विशेषताको कहते हैं। वह इस प्रकार है— अन्तर करनेके पश्चात् दूसरे समयमें नपुंसकवेदको उपशमाता है। पुरुषवेदसे उपस्थित हुए जीवके जो नपुंसकवेदका उपशामनकाल है, उतना काल वीत जाता है, तो भी नपुंसकवेदका उपशम पूर्ण नहीं होता। तब स्त्रीवेदको उपशमानेके लिये प्रारम्भ करता है और नपुंसकवेदको भी उपशमाता है। पश्चात् स्त्रीवेदके उपशमकालके पूर्ण होनेपर स्त्रीवेद और नपुंसकवेद दोनों ही उपशान्त हो जाते हैं। उसी समय ही अन्तिमसमयवर्ती सवेदी होता है। तत्पश्चात् अपगतवेदी होकर सात कर्मोंको उपशमाता है। सात कर्मोंकी उपशामना तुल्य है। यह नपुंसकवेदसे उपस्थित होनेवालेके विशेषता है। शेष विकल्प वे ही अर्थात् पुरुषवेदके सदृश ही करना चाहिये।

यहांसे पुरुषवेदके साथ क्रोधके उदयसे उपस्थित उपशामकके (चढ़ते समय) अपूर्वकरणके प्रथम समयको आदि लेकर उतरते हुए अपूर्वकरणके अन्तिम समय तक इस कालमें जो कालसंयुक्तपद हैं उनके अल्पबहुत्वको कहते हैं। वह इस प्रकार है–जघन्य

१ थीउदयस्स य एवं अवगदवेदो हु सत्तकम्मंसे। सममुवसामदि संढस्सुदए चडिदस्स वोच्छामि ॥ लब्धि. २६१.

२ मप्रतौ 'जो' इति पाठः।

३ आप्रतौ '-मादवेइ' मप्रतौ 'मादवइ' इति पाठः।

४ संढुदयंतरकरणो संढद्धाणम्हि अणुवसंतंसे। इत्थिस्स य अद्धाए संढं इत्थिं च समगमुवसमदि ॥ ताहे चरिमसवेदो अवगतवेदो हु सत्तकम्मंसे। सममुवसामदि सेसा पुरिसोदयचलिदभंगा हु ॥ लब्धि. २६२-२६३.

५ पुंकोहस्स य उदए चलपलिदेऽपुव्वदो अपुव्वो त्ति। एदिस्से अद्धाणं अप्पाबहुगं तु वोच्छामि ॥ लब्धि. २६४.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

णिया अणुभागखंडयउक्कीरणद्धा । उक्कस्सिया अणुभागखंडयउक्कीरणद्धा विसेसाहिया । जहण्णिया ट्ठिदिबंधगद्धा ट्ठिदिखंडयउक्कीरणद्धा च तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ[1] । पडिवदमाणयस्स जहण्णिया ट्ठिदिबंधगद्धा विसेसाहिया । अंतरकरणद्धा विसेसाहिया । उक्कस्सिया ट्ठिदिबंधगद्धा ट्ठिदिखंडयउक्कीरणद्धा च विसेसाहिया[2] । चरिमसमयसुहुमसांपराइयस्स गुणसेढिणिक्खेवो संखेज्जगुणो । तं चेव गुणसेडिसीसयं ति भण्णदि । उवसंतकसायस्स गुणसेडिणिक्खेवो संखेज्जगुणो । पडिवदमाणयस्स सुहुमसांपराइयद्धा संखेज्जगुणा[3] । तस्स चेव पडिवदमाणयस्स सुहुमसांपराइयस्स लोभस्स गुणसेडीणिक्खेवो विसेसाहिओ । उवसामगस्स सुहुमसांपराइयद्धा किट्टीणमुवसामणद्धा सुहुमसांपराइयस्स पढमट्ठिदी तिण्णि वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ[4] । उवसामगस्स किट्टीकरणद्धा विसेसाहिया । पडिवदमाणयस्स बादरसांपराइयस्स लोभवेदगद्धा संखेज्जगुणा । तस्सेव लोभस्स तिविधस्स वि तुल्लो गुणसेढीणिक्खेवो विसेसाहिओ[5] । उवसामगस्स

अनुभागकाण्डकोत्कीरणकाल सबसे स्तोक है (१)। उत्कृष्ट अनुभागकाण्डकोत्कीरणकाल विशेष अधिक है (२)। जघन्य स्थितिबन्धकाल और स्थितिकांडकोत्कीरणकाल तुल्य संख्यातगुणे हैं (३)। उतरनेवालेके जघन्य स्थितिबन्धकाल विशेष अधिक है। (४)। अन्तरकाल विशेष अधिक है (५)। उत्कृष्ट स्थितिबन्धकाल और स्थितिकांडकोत्कीरणकाल विशेष अधिक हैं (६)। अन्तिमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिकका गुणश्रेणिनिक्षेप संख्यातगुणा है (७)। वही गुणश्रेणिनिक्षेप 'गुणश्रेणिशीर्ष' कहा जाता है। उपशान्तकषायका गुणश्रेणिनिक्षेप संख्यातगुणा है (८)। उतरनेवालेका सूक्ष्मसाम्परायिककाल संख्यातगुणा है (९)। उसी उतरनेवालेके सूक्ष्मसाम्परायिक लोभका गुणश्रेणिनिक्षेप विशेष अधिक है (१०)। उपशामकके सूक्ष्मसाम्परायिककाल, कृष्टियोंका उपशामनकाल और सूक्ष्मसाम्परायिककी प्रथमस्थिति, ये तीनों ही तुल्य विशेष अधिक हैं (११)। उपशामकका कृष्टिकरणकाल विशेष अधिक है (१२)। उतरते हुए बादरसाम्परायिकका लोभवेदककाल संख्यातगुणा है (१३)। उसके ही तीनों प्रकारके लोभका गुणश्रेणिनिक्षेप तुल्य विशेष

---

१ अवरादो वरमहियं रसखंडुक्कीरणस्स अद्धाणं । संखगुणं अवरट्ठिदिखंडस्सुक्कीरणो कालो ॥ लब्धि. ३६५.

२ पडणजहण्णट्ठिदिबंधद्धा तह अंतरस्स करणद्धा । जेट्ठट्ठिदिबंधठिदीउक्कीरद्धा य अहियकमा ॥ लब्धि. ३६६.

३ सुहुमंतिमगुणसेढी उवसंतकसायगस्स गुणसेढी । पडिवदसुहुमद्धा वि य तिण्णि वि संखेज्जगुणिदकमा ॥ लब्धि. ३६७.

४ तग्गुणसेढी अहिया चलसुहुमो किट्टिउवसमद्धा य । सुहुमस्स य पढमठिदी तिण्णि वि सरिसा विसेसहिया ॥ लब्धि. ३६८.

५ किट्टीकरणद्धहिया पडबादरलोभवेदगद्धा हु । संखगुणा तस्सेव य तिलोहगुणसेढिणिक्खेओ ॥ लब्धि. ३६९.

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

बादरसांपराइयस्स लोभवेदगद्धा विसेसाहिया। तस्सेव पढमट्ठिदी विसेसाहिया। पडिवदमाणयस्स लोभवेदगद्धा विसेसाहिया[1]। पडिवदमाणयस्स मायावेदगद्धा विसेसाहिया। तस्सेव मायावेदगस्स छण्हं कम्माणं गुणसेडीणिक्खेवो विसेसाहिओ[2]। उवसामगस्स मायावेदगद्धा विसेसाहिया। मायाए पढमट्ठिदी विसेसाहिया। मायाए उवसामगद्धा विसेसाहिया। उवसामगस्स माणवेदगद्धा विसेसाहिया। माणस्स पढमट्ठिदी विसेसाहिया। माणस्स उवसामगद्धा विसेसाहिया[3]। कोधस्स उवसामगद्धा विसेसाहिया। छण्णोकसायाणमुवसामणद्धा विसेसाहिया। पुरिसवेदस्स उवसामणद्धा विसेसाहिया। इत्थिवेदस्स उवसामणद्धा विसेसाहिया। णउंसयवेदस्स उवसामणद्धा विसेसाहिया। खुद्दाभवग्गहणं विसेसाहियं[4]। उवसंतद्धा दुगुणा। पुरिसवेदस्स पढमट्ठिदी विसेसाहिया। कोधस्स पढमट्ठिदी विसेसाहिया। मोहस्स उवसामणद्धा विसेसाहिया[5]। पडिवदमाणयस्स

अधिक है (१४)। उपशामक बादरसाम्परायिकका लोभवेदककाल विशेष अधिक है (१५)। उसीके बादरलोभकी प्रथमस्थिति विशेष अधिक है (१६)। उतरनेवालेका लोभवेदककाल विशेष अधिक है (१७)। उतरनेवालेका मायावेदककाल विशेष अधिक है (१८)। उसी मायावेदकके छह कर्मोंका गुणश्रेणिनिक्षेप विशेष अधिक है (१९)। उपशामकका मायावेदककाल विशेष अधिक है (२०)। मायाकी प्रथमस्थिति विशेष अधिक है (२१)। मायाका उपशामककाल विशेष अधिक है (२२)। उपशामकका मानवेदककाल विशेष अधिक है (२३)। मानकी प्रथमस्थिति विशेष अधिक है (२४)। मानका उपशामककाल विशेष अधिक है (२५)। क्रोधका उपशामककाल विशेष अधिक है (२६)। छह नोकषायोंका उपशामककाल विशेष अधिक है (२७)। पुरुषवेदका उपशामनकाल विशेष अधिक है (२८)। स्त्रीवेदका उपशामनकाल विशेष अधिक है (२९)। नपुंसकवेदकका उपशामनकाल विशेष अधिक है (३०)। क्षुद्रभवग्रहण विशेष अधिक है (३१)। उपशान्तकाल दुगुणा है (३२)। पुरुषवेदकी प्रथमस्थिति विशेष अधिक है (३३)। क्रोधकी प्रथमस्थिति विशेष अधिक है (३४)। मोहका उपशामनकाल विशेष अधिक है (३५)। उतरनेवालेके जब तक असंख्यात समयप्रबद्धोंकी

---

१ चडबादरलोहस्स य वेदगकालो य तस्स पढमठिदी। पडलोहवेदगद्धा तस्सेव य लोहपढमठिदी॥ लब्धि. ३७०.

२ तम्मायावेदद्धा पडिवदछण्णं पि खित्तगुणसेढी। तं माणवेदगद्धा तस्स णवण्हं पि गुणसेढी॥ लब्धि. ३७१.

३ चडमायावेदद्धा पढमट्ठिदिमायउवसमद्धा य। चलमाणवेदगद्धापढमट्ठिदिमाणउवसमद्धा य॥ लब्धि. ३७२.

४ कोहोवसामणद्धा छप्पुरिसित्थीण उवसमाणं च। खुद्दभवग्गहणं च य अहियकमा एक्कवीसपदा॥ लब्धि. ३७३.

५ उवसंतद्धा दुगुणा तत्तो पुरिसस्स कोहपढमठिदी। मोहोवसामणद्धा तिण्णि वि अहियक्कमा होंति॥ लब्धि. ३७४.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

जाव असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा सो कालो संखेज्जगुणो । उवसामगस्स असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणकालो विसेसाहियो[1] । पडिवदमाणयस्स अणियट्टिअद्धा संखेज्जगुणा । उवसामगस्स अणियट्टिअद्धा विसेसाहिया । पडिवदमाणयस्स अपुव्वकरणद्धा संखेज्जगुणा । उवसामगस्स अपुव्वकरणद्धा विसेसाहिया[2] । पडिवदमाणयस्स उक्कस्सओ गुणसेढिणिक्खेवो विसेसाहिओ । उवसामयस्स अपुव्वकरणस्स पढमसमए गुणसेढिणिक्खेवो विसेसाहिओ । उवसामगस्स कोधवेदगद्धा संखेज्जगुणा[3] । अधापवत्तसंजदस्स गुणसेढिणिक्खेवो संखेज्जगुणो । दंसणमोहणीयस्स उवसंतद्धा संखेज्जगुणा । चारित्तमोहणीयस्स उवसामओ अंतरं करेंतो जाओ ट्ठिदीओ उक्कीरदि ताओ संखेज्जगुणाओ । दंसणमोहणीयस्स अंतरट्ठिदीओ संखेज्जगुणाओ[4] । जहण्णिया आबाधा संखेज्जगुणा । उक्कस्सिया आबाधा संखेज्जगुणा । उवसामगस्स मोहणीयस्स[5] जहण्णगो

उदीरणा होती है तब तकका वह काल संख्यातगुणा है (३६) । उपशामकके असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणाका काल विशेष अधिक है (३७) । उतरनेवालेका अनिवृत्तिकरणकाल संख्यातगुणा है (३८) । उपशामकका अनिवृत्तिकरणकाल विशेष अधिक है (३९) । उतरनेवालेका अपूर्वकरणकाल संख्यातगुणा है (४०) । उपशामकका अपूर्वकरणकाल विशेष अधिक है (४१) । उतरनेवालेका उत्कृष्ट गुणश्रेणिनिक्षेप विशेष अधिक है (४२) । उपशामकके अपूर्वकरणके प्रथम समयमें गुणश्रेणिनिक्षेप विशेष अधिक है (४३) । उपशामकका क्रोधवेदककाल संख्यातगुणा है (४४) । अधःप्रवृत्तसंयतका गुणश्रेणिनिक्षेप संख्यातगुणा है (४५) । दर्शनमोहनीयका उपशान्तकाल संख्यातगुणा है (४६) । चारित्रमोहनीयका उपशामक अन्तर करता हुआ जिन स्थितियोंका उत्कीरण करता है वे संख्यातगुणी हैं (४७) । दर्शनमोहनीयकी अन्तरस्थितियां संख्यातगुणी हैं (४८) । जघन्य आबाधा संख्यातगुणी है (४९) । उत्कृष्ट आबाधा संख्यातगुणी है (५०) । उपशामकके मोहनीयका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है (५१) । उतरने-

---

१ चडणस्स असंखाणं समयपबद्धाणुदीरणाकालो । संखगुणो चडणस्स य तक्कालो होदि अहियो य ॥ लब्धि. ३७५.

२ पडणाणियट्टियद्धा संखगुणा चडणगा विसेसहिया । पडमाणा पुव्वद्धा संखगुणा चडणगा अहिया ॥ लब्धि. ३७६.

३ पडिवडवरगुणसेढी चडमाणापुव्वपढमगुणसेढी । अहियकमा उवसामगकोहस्स य वेदगद्धा हु ॥ लब्धि. ३७७.

४ संजदअधापवत्तगगुणसेढी दंसणोवसंतद्धा । चारित्तंतरिगठिदी दंसणमोहंतरठिदीओ ॥ लब्धि. ३७८.

५ प्रतिषु ' जहण्णियस्स ' इति पाठः ।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । पडिवदमाणयस्स मोहणीयस्स जहण्णगो ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । उवसामगस्स णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । एदेसिं चेव कम्माणं पडिवदमाणयस्स जहण्णगो ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । अंतोमुहुत्तो संखेज्जगुणो[1] । उवसामगस्स णामा-गोदाणं जहण्णगो ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो[2] । वेदणीयस्स जहण्णगो ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ । पडिवदमाणयस्स णामा-गोदाणं जहण्णगो ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ । तस्सेव वेदणीयस्स जहण्णगो ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ[3] । उवसामगस्स मायासंजलणजहण्णगो ट्ठिदिबंधो मासो । तस्सेव पडिवदमाणयस्स जहण्णगो ट्ठिदिबंधो बे मासा । उवसामगस्स माणसंजलणजहण्णगो ट्ठिदिबंधो बे मासा । पडिवदमाणयस्स तस्सेव जहण्णट्ठिदिबंधो चत्तारि मासा । उवसामगस्स कोहसंजलणजहण्णट्ठिदिबंधो चत्तारि मासा । पडिवदमाणयस्स तस्सेव जहण्णट्ठिदिबंधो अट्ठ मासा । उवसामगस्स पुरिसवेदजहण्णट्ठिदिबंधो सोलस वस्साणि[4] । तस्समए चेव संजलणाणं

वालेके मोहनीयका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है (५२)। उपशामकके ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय, इनका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है (५३)। इन्हीं कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध उतरनेवालेके संख्यातगुणा है (५४)। अन्तर्मुहुर्त संख्यातगुणा है (५५)। उपशामकके नाम व गोत्र कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है (५६)। वेदनीयका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष अधिक है (५७)। उतरनेवालेके नाम व गोत्र कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष अधिक है (५८)। उसीके वेदनीयका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष अधिक है (५९)। उपशामकके संज्वलनमायाका जघन्य स्थितिबन्ध एक मास है (६०)। उतरनेवालेके उसी संज्वलनमायाका जघन्य स्थितिबन्ध दो मास है (६१)। उपशामकके संज्वलनमानका जघन्य स्थितिबन्ध दो मास है (६२)। उतरनेवालेके उसी संज्वलनमानका जघन्य स्थितिबन्ध चार मास है (६३)। उपशामकके संज्वलनक्रोधका जघन्य स्थितिबन्ध चार मास है (६४)। उतरनेवालेके उसी संज्वलनक्रोधका जघन्य स्थितिबन्ध आठ मास है (६५)। उपशामकके पुरुषवेदका जघन्य स्थितिबन्ध सोलह वर्ष है (६६)। उसी समयमें ही (उपशामकके) संज्वलनचतुष्कका

१ अवराजेट्ठाबाहा चडपडमोहस्स अवरट्ठिदिबंधो । चडपडतिघादिअवरट्ठिदिबंधंतोमुहुत्तो य ॥ लब्धि. ३७९.

२ चडमाणस्स य णामागोदजहण्णट्ठिदीण बंधो य । तेरसपदासु कमसो संखेण य होंति गुणियकमा ॥ लब्धि. ३८०.

३ चलतदियअवरबंधं पडणामागोदअवरठिदिबंधो । पडतदियस्स य अवरं तिण्णि पदा होंति अहियकमा ॥ लब्धि. ३८१.

४ चडमायमाणकोहो मासादीदुगुण अवरठिदिबंधो । पडणे ताणं दुगुणं सोलसवस्साणि चलणपुरिसस्स ॥ लब्धि. ३८२.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

ट्ठिदिबंधो बत्तीस वस्साणि। पडिवदमाणयस्स पुरिसवेदजहण्णट्ठिदिबंधो बत्तीस वस्साणि। तस्समए चेव संजलणाणं ट्ठिदिबंधो चदुसट्ठी वस्साणि[1]। उवसामगस्स पढमो संखेज्जवस्सिओ मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। पडिवदमाणयस्स चरिमो संखेज्जवस्सिओ मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। उवसामगस्स णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं पढमो संखेज्जवस्सिओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। पडिवदमाणयस्स तिण्हं घादिकम्माणं चरिमो संखेज्जवस्सट्ठिदिओ बंधो संखेज्जगुणो। उवसामगस्स णामा-गोद-वेदणीयाणं पढमो संखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो संखेज्जगुणो। पडिवदमाणयस्स णामा-गोद-वेदणीयाणं चरिमो संखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो संखेज्जगुणो[2]। उवसामगस्स चरिमो असंखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो मोहणीयस्स असंखेज्जगुणो। पडिवदमाणयस्स पढमो असंखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो मोहणीयस्सासंखेज्जगुणो। उवसामयस्स घादिकम्माणं चरिमो असंखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो असंखेज्जगुणो। पडिवदमाणयस्स पढमो असंखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो घादिकम्माणमसंखेज्जगुणो। उवसामयस्स णामा-गोद-

---

स्थितिबन्ध बत्तीस वर्ष है (६७)। उतरनेवालेके पुरुषवेदका जघन्य स्थितिबन्ध बत्तीस वर्ष है (६८)। उसी समयमें ही संज्वलनचतुष्कका स्थितिबन्ध (उतरनेवालेके) चौंसठ वर्ष है (६९)। उपशामकके संख्यात वर्षवाला मोहनीयका प्रथम स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है (७०)। उतरनेवालेके संख्यात वर्षवाला मोहनीयका अन्तिम स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है (७१)। उपशामकके ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय, इनका संख्यात वर्षवाला प्रथम स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है (७२)। उतरनेवालेके तीन घातिया कर्मोंका संख्यात वर्षमात्र स्थितिवाला अन्तिम बन्ध संख्यातगुणा है (७३)। उपशामकके नाम, गोत्र और वेदनीय कर्मोंका संख्यात-वर्षमात्र स्थितिवाला प्रथम बन्ध संख्यातगुणा है (७४)। उतरनेवालेके नाम, गोत्र और वेदनीय, इनका संख्यात वर्षमात्र स्थितिवाला अन्तिम बन्ध संख्यातगुणा है (७५)। उपशामकके असंख्यात वर्षमात्र स्थितिवाला मोहनीयका अन्तिम बन्ध असंख्यातगुणा है (७६)। उतरनेवालेके असंख्यात वर्षमात्र स्थितिवाला मोहनीयका प्रथम बन्ध असंख्यातगुणा है (७७)। उपशामकके असंख्यात वर्षमात्र स्थितिवाला घातिया कर्मोंका अन्तिम बन्ध असंख्यातगुणा है (७८)। उतरनेवालेके असंख्यात वर्षमात्र स्थितिवाला घातिया कर्मोंका प्रथम बन्ध असंख्यातगुणा है (७९)। उपशामकके

---

१ पडणस्स तस्स दुगुणं संजलणाणं तु तत्थ दुट्ठाणे। बत्तीसं चउसट्ठी वस्सपमाणेण ठिदिबंधो॥ लब्धि. ३८३.

२ चडपडणमोहपढमं चरिमं तु तहा तिघादियादीणं। संखेज्जवस्सबंधो संखेज्जगुणक्कमो छण्हं॥ लब्धि. ३८४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेदणीयाणं चरिमो असंखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो असंखेज्जगुणो। पडिवदमाणयस्स णामा-गोद-वेदणीयाणं पढमो असंखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो असंखेज्जगुणो[1]। उवसामगस्स णामा-गोदाणं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागिगो पढमो ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो[2]। णाणावरण-दंसणावरण-वेदणीय-अंतराइयाणं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागिगो पढमो ट्ठिदि-बंधो विसेसाहिओ। मोहणीयस्स पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागिओ पढमो ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ[3]। चरिमट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं। जाओ ट्ठिदीओ परिहाइदूण पलिदोवम-ट्ठिदिगो बंधो जादो ताओ ट्ठिदीओ संखेज्जगुणाओ। पलिदोवमं संखेज्जगुणं[4]। अणि-यट्टिस्स पढमसमये ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। पडिवदमाणयस्स अणियट्टिस्स चरिमसमए ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो[5]। अपुव्वकरणस्स पढमसमए ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। पडिवद-

नाम, गोत्र व वेदनीय कर्मोंका असंख्यात वर्षमात्र स्थितिवाला अन्तिम बन्ध असंख्यात-गुणा है (८०)। उतरनेवालेके नाम, गोत्र व वेदनीय कर्मोंका असंख्यात वर्षमात्र स्थितिवाला प्रथम बन्ध असंख्यातगुणा है (८१)। उपशामकके नाम व गोत्र कर्मोंका पल्योपमके संख्यातवें भागमात्र प्रथम स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है (८२)। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय, इनका पल्योपमके संख्यातवें भागमात्र प्रथम स्थिति-बन्ध विशेष अधिक है (८३)। मोहनीयका पल्योपमके संख्यातवें भागमात्र प्रथम स्थितिबन्ध विशेष अधिक है (८४)। सूक्ष्मसाम्परायिकके अन्तिम समयमें ज्ञानावरणादिकोंका अन्तिम स्थितिकांडक संख्यातगुणा है (८५)। जिन स्थितियोंको कम कर पल्योपममात्र स्थितिवाला बन्ध हुआ है वे स्थितियां संख्यातगुणी हैं (८६)। पल्योपम संख्यातगुणा है (८७)। अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है (८८)। उतरनेवालेके अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयमें स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है (८९)। अपूर्वकरणके प्रथम समयमें स्थितिबन्ध

१ चडपडणमोहचरिमं पढमं तु तहा तिघादियादीणं। असंखेज्जवस्सबंधो संखेज्जगुणक्कमो छण्हं॥ लब्धि. ३८५.

२ चडणे णामदुगाणं पढमो पलिदोवमस्स संखेज्जो। भागो ठिदिस्स बंधो हेट्ठिल्लादो असंखगुणा॥ लब्धि. ३८६.

३ तीसियचउण्ह पढमो पलिदोवमसंखभागठिदिबंधो। मोहस्स वि दोण्णि पदा विसेसअहियक्कमा होंति॥ लब्धि. ३८७.

४ प्रतिषु 'पलिदोवममसंखेज्जगुणे' इति पाठः। जयधवलायां तु 'पलिदोवमं संखेज्जगुणं' इत्येव पाठः।

५ ठिदिखंडयं तु चरिमं बंधोसरणट्ठिदी य पल्लद्धं। पल्लं चडपडबादरपढमो चरिमो य ठिदिबंधो॥ लब्धि. ३८८.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

माणयस्स अपुव्वकरणस्स चरिमसमए ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । पडिवदमाणयस्स अपुव्वकरणस्स चरिमसमए ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं[1] । पडिवदमाणयस्स अपुव्वकरणस्स पढमसमए ट्ठिदिसंतकम्मं विसेसाहियं । पडिवदमाणयस्स अणियट्टिस्स चरिमसमए ट्ठिदिसंतकम्मं विसेसाहियं । उवसामगस्स अणियट्टिस्स पढमसमए ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं[2] । उवसामगस्स अपुव्वकरणस्स चरिमसमए ट्ठिदिसंतकम्मं विसेसाहियं । उवसामगस्स अपुव्वकरणस्स पढमसमए ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं[3] ।

संपुण्णं चारित्तं पडिवज्जंतस्स सरूवणिरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

संपुण्णं पुण चारित्तं पडिवज्जंतो तदो चत्तारि कम्माणि अंतोमुहुत्तट्ठिदिं ट्ठवेदि णाणावरणीयं दंसणावरणीयं मोहणीयमंतराइयं चेदि ॥ १५ ॥

तदो अंतोकोडाकोडीदो ट्ठिदिबंधादो विसेसहीणा[4] घादिज्जमाणादो चत्तारि

संख्यातगुणा है (९०)। उतरनेवालेके अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है (९१)। उतरनेवालेके अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें स्थितिसत्व संख्यातगुणा है (९२)। उतरनेवालेके अपूर्वकरणके प्रथम समयमें स्थितिसत्व विशेष अधिक है (९३)। उतरनेवालेके अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयमें स्थितिसत्व विशेष अधिक है (९४)। उपशामकके अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें स्थितिसत्व संख्यातगुणा है (९५)। उपशामकके अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें स्थितिसत्व विशेष अधिक है (९६)। उपशामकके अपूर्वकरणके प्रथम समयमें स्थितिसत्व संख्यातगुणा है (९७)।

सम्पूर्ण चारित्रको प्राप्त करनेवालेके स्वरूपनिरूपणके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

सम्पूर्ण चारित्रको प्राप्त करनेवाला ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय, इन चार कर्मोंकी अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थितिको स्थापित करता है ॥ १५ ॥

सम्पूर्ण चारित्रको प्राप्त करनेवाला क्षपक उत्तरोत्तर नाश किये जानेके कारण अन्तःकोटाकोटिप्रमाण स्थितिबन्धकी अपेक्षा विशेष हीनताको प्राप्त हुए ज्ञानावरणादि

---

१ चडपडअपुव्वपढमो चरिमो ठिदिबंधओ य पडणस्से । तच्चरिमं ठिदिसंतं संखेज्जगुणक्कमा अट्ठ ॥ लब्धि. ३८९.

२ तप्पढमट्ठिदिसत्तं पडिवडअणियट्टिचरिमठिदिसत्तं । अहियकमा चलबादरपढमट्ठिदिसत्तयं तु संखगुणं ॥ लब्धि. ३९०.

३ चडमाणअपुव्वस्स य चरिमट्ठिदिसत्तयं विसेसहियं । तस्सेव य पढमठिदीसत्तं संखेज्जसंगुणियं ॥ लब्धि. ३९१.

४ अप्रतौ 'विसेसाहिणा' कप्रतौ 'विसेसाहिया' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कम्माणि अंतोमुहुत्तट्ठिदिं ठवेदि । काणि ताणि चत्तारि कम्माणि त्ति वुत्ते तण्णिण्णयट्ठं णाणावरणादीणं णामणिद्देसो कओ । किमट्ठमंतोमुहुत्तियं ठिदिं ठवेदि ? उवसामयविसोधीदो खवगविसोधीणमाणंतियादो ।

वेदणीयं बारसमुहुत्तं ट्ठिदिं ठवेदि, णामा-गोदाणमट्ठमुहुत्तट्ठिदिं ठवेदि, सेसाणं कम्माणं भिण्णमुहुत्तट्ठिदिं ठवेदि ॥ १६ ॥

किमट्ठमेदासिं पयडीणमेत्तियमेत्तट्ठिदिं ठवेदि ? पयडिविसेसादो ।

बारस य वेदणिज्जे णामा-गोदे य अट्ठ य मुहुत्ता ॥
ट्ठिदिबंधो दु जहण्णो भिण्णमुहुत्तं तु सेसाणं[1] ॥ १९ ॥

एसा दोसु सुत्तेसु वुत्तद्धाणमुवसंहारगाहा । एदाणि दो वि तीदसुत्ताणि देसामासियाणि । तेण एदेहि सूइदस्स अत्थस्स[2] परूवणा कीरदे । तं जधा- चारित्तमोह-

---

चार कर्मोंकी अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थितिको स्थापित करता है। वे चार कर्म कौन हैं? इस शंकाके निर्णयार्थ सूत्रमें ज्ञानावरणादिकोंका नामनिर्देश किया गया है।

शंका—सम्पूर्ण चारित्रको प्राप्त करनेवाला क्षपक अन्तर्मुहूर्तमात्र ही स्थितिको क्यों स्थापित करता है?

समाधान—चूंकि उपशामककी विशुद्धियोंसे क्षपककी विशुद्धियां अनन्तगुणी हैं, अतएव वह अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थितिको स्थापित करता है।

सम्पूर्ण चारित्रको प्राप्त करनेवाला क्षपक वेदनीयकी बारह मुहूर्त, नाम व गोत्र कर्मोंकी आठ मुहूर्त और शेष कर्मोंकी भिन्नमुहूर्त अर्थात् अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थितिको स्थापित करता है ॥ १६ ॥

शंका—इन प्रकृतियोंकी इतनी मात्र स्थितिको किस लिये स्थापित करता है?

समाधान—प्रकृतियोंकी विशेषताके कारण उक्त प्रकृतियोंकी उतनीमात्र स्थितिको स्थापित करता है।

वेदनीयका बारह मुहूर्त, नाम व गोत्रका आठ मुहूर्त, तथा शेष कर्मोंका अन्तर्मुहूर्तमात्र जघन्य स्थितिबन्ध होता है ॥ १९ ॥

यह गाथा उक्त दोनों सूत्रोंमें कहे गये कालोंका उपसंहार करनेवाली है। ये दोनों ही अतीत सूत्र देशामर्शक हैं। इसी कारण इनसे सूचित अर्थकी प्ररूपणा की जाती है। वह इस प्रकार है— चारित्रमोहनीयकी क्षपणामें अधःप्रवृत्तकरणकाल, अपूर्व-

---

१ बारस य वेयणीये णामे गोदे य अट्ठ य मुहुत्ता । भिण्णमुहुत्तं तु ठिदी जहण्णयं सेसपंचण्हं ॥ गो. क. १३९.

२ अ-आप्रत्योः ' अद्धस्स ' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णीयस्स खवणाए अधापवत्तकरणद्धा अपुव्वकरणद्धा अणियट्टीकरणद्धा चेदि तिण्णि अद्धाओ हवंति। ताओ तिण्णि अद्धाओ वि एगसंबद्धाओ एगावलियाए ओवट्टिदव्वाओ। तदो जाणि कम्माणि अत्थि तेसिं ट्ठिदीओ ओट्टिदव्वाओ। तेसिं चेव अणुभागफद्दयाणं जहण्णफद्दयप्पहुडि एया फद्दयावलिया ओट्टिदव्वा। एत्थ अधापवत्तकरणे वट्टमाणयस्स णत्थि ट्ठिदिघादो अणुभागघादो वा। केवलमणंतगुणाए विसोहीए वड्ढदि[1]। अपुव्वकरण-पढमसमए ट्ठिदिखंडओ अप्पसत्थाणं कम्माणमणुभागखंडओ च आगाइदो।

अपुव्वकरणे पढमट्ठिदिखंडयस्स पमाणाणुगमं वत्तइस्सामो। तं जहा—अपुव्व-करणे पढमट्ठिदिखंडयं जहण्णयं थोवं। उक्कस्सयं संखेज्जगुणं। उक्कस्सयं पि पलि-दोवमस्स संखेज्जदिभागो[2]। जहा दंसणमोहणीयस्स उवसामणाए तस्सेव खवणाए अणंताणुबंधीविसंजोयणाए कसायाणमुवसामणाए च अपुव्वकरणपढमट्ठिदिखंडयं जहण्णं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो, उक्कस्सयं सागरोवमपुधत्तं, तधा एत्थ णत्थि। एत्थ पुण

करणकाल और अनिवृत्तिकरणकाल, ये तीन काल होते हैं। एक एकसे सम्बद्ध उन तीनों कालोंको एक आवलीसे अपवर्तित करना चाहिये। पश्चात् जो कर्म सत्तामें हैं उनकी स्थितियोंको आवलीसे अपवर्तित करना चाहिये। उन्हीं कर्मोंके अनुभागस्पर्धकोंकी जघन्य स्पर्धकसे लेकर एक एक स्पर्धकावली अपवर्तनीय है। यहां अधःप्रवृत्तकरणमें वर्तमान जीवके स्थितिघात और अनुभागघात नहीं हैं। वह केवल अनन्तगुणी विशुद्धिसे बढ़ता है। अपूर्वकरणके प्रथम समयमें अप्रशस्त कर्मोंका स्थितिकांडक और अनुभाग-कांडक प्रारंभ होता है।

अपूर्वकरणमें प्रथम स्थितिकांडकके प्रमाणानुगमको कहते हैं। वह इस प्रकार है — अपूर्वकरणमें जघन्य प्रथम स्थितिकांडक स्तोक है। उत्कृष्ट स्थितिकांडक संख्यात-गुणा है। उत्कृष्ट भी पल्योपमके संख्यातवें भागमात्र है। जिस प्रकार दर्शनमोहनीयकी उपशामनामें, उसीकी क्षपणामें, अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनामें और कषायोंकी उपशामनामें अपूर्वकरणसम्बन्धी जघन्य प्रथम स्थितिकांडक पल्योपमके संख्यातवें भाग और उत्कृष्ट सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण है, उस प्रकार यहां नहीं है। यहां कषायोंकी

---

१ गुणसेढी गुणसंकम ठिदिरसखंडाण णत्थि पढमम्हि। पडिसमयमणंतगुणं विसोहिवड्ढीहि वड्ढदि हु॥ लब्धि. ३९३,

२ पल्लस्स संखभागं वरं पि अवरादु संखगुणिदं तु। पढमे अपुव्विखवणे ठिदिखंडपमाणयं होदि॥ लब्धि. ४०५. एत्थ जहण्णयं संखेज्जगुणहीणट्ठिदिसंतकम्मियस्स गहेयव्वमुक्कस्सयं पुण संखेज्जगुणट्ठिदिसंतकम्मियस्स गहेयव्वं। उक्कस्सयं पि पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो त्ति वुत्ते जहा जहण्णयं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागपमाण-मेवमुक्कस्सयं पि दट्ठव्वं, ण तत्थ भयारंतरसंभवो त्ति वुत्तं होदि। जयध. अ. प. १०७२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कसायाणं खवणाए अपुव्वकरणपढमठिदिखंडयं जहण्णमुक्कस्सं पि पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो, अपुव्वकरणे सव्वत्थ संखेज्जगुणहीणं। संखेज्जगुणहीणट्ठिदिसंतकम्माणं ठिदिखंडयाणि तप्पडिभागियाणि चेव। अपुव्वकरणस्स पढमसमए पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागियं ट्ठिदिखंडयमायुगवज्जाणं कम्माणं गेण्हदि। अप्पसत्थाणं कम्माण-मणुभागस्स अणंते भागे खंडयं गेण्हदि। पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागं ट्ठिदिबंधेण ओसरदि। गुणसेडी उदयावलियबाहिरे णिक्खित्ता अपुव्वकरणद्धादो अणियट्टिकरणद्धादो च विसेसाहिया। जे अप्पसत्थकम्मंसा ण बज्झंति तेसिं कम्माणं गुणसंकमो जादो[1]। ट्ठिदिबंधो ट्ठिदिसंतकम्मं च सागरोवमकोडिसदसहस्सपुधत्तं अंतोकोडाकोडीए। बंधादो पुण संतकम्मं संखेज्जगुणं[2]। एसा अपुव्वकरणपढमसमयपरूवणा।

एत्तो विदियसमए णाणत्तं। तं जधा- असंखेज्जगुणदव्वमोकड्डिदूण गलिदसेसं गुणसेडिं करेदि[3]। विसोधी च अणंतगुणा। सेसेसु आवासएसु णत्थि णाणत्तं। एवं जाव पढमाणुभागखंडओ समत्तो त्ति। तदो से काले अण्णो अणुभागखंडओ आगाइदो

क्षपणामें अपूर्वकरणसम्बन्धी प्रथम स्थितिकांडक जघन्य और उत्कृष्ट भी पल्योपमके संख्यातवें भागमात्र ही है, और अपूर्वकरणमें सर्वत्र संख्यातगुणा हीन होता है। संख्यातगुणे हीन स्थितिसत्त्ववाले कर्मोंके स्थितिकांडक भी संख्यातगुणे हीन ही हैं। अपूर्वकरणके प्रथम समयमें आयुको छोड़कर शेष कर्मोंके पल्योपमके संख्यातवें भागमात्र स्थितिकांडकको ग्रहण करता है। अप्रशस्त कर्मोंके अनुभागके अनन्त बहुभागरूप कांडकको ग्रहण करता है। पल्योपमका संख्यातवां भाग स्थितिबन्धसे घटता है। उदयावलिके बाहिर निक्षिप्त गुणश्रेणी अपूर्वकरणकाल और अनिवृत्तिकरणकालसे विशेष अधिक है। जो अप्रशस्त कर्म नहीं बंधते हैं उन कर्मोंका गुणसंक्रमण होता है। स्थितिबन्ध और स्थितिसत्त्व अन्तःकोटाकोटिके भीतर कोटिलक्षपृथक्त्व सागरोपमप्रमाण होता है। परन्तु बन्धकी अपेक्षा सत्त्व संख्यातगुणा है। यह अपूर्वकरणके प्रथमसमयविषयक प्ररूपणा हुई।

इससे द्वितीय समयमें विशेषता है। वह इस प्रकार है—असंख्यातगुणे द्रव्यका अपकर्षण करके गलितशेष गुणश्रेणीको करता है। विशुद्धि भी अनन्तगुणी है। शेष आवासोंमें कोई विशेषता नहीं है। इस प्रकार प्रथम अनुभागकांडकके समाप्त होने तक यही क्रम है। तब अनन्तर समयमें अन्य अनुभागकांडकको ग्रहण करता है जो घात करनेसे

---

१ पडिसमयमसंखगुणं दव्वं संकमदि अप्पसत्थाणं। बंधुज्झियपयडीणं बंधंतसजादिपयडीसु॥ लब्धि. ४००.

२ अंतोकोडाकोडी अपुव्वपढमम्हि होदि ठिदिबंधो। बंधादो पुण सत्तं संखेज्जगुणं हवे तत्थ॥ लब्धि. ४०७.

३ पडिसमयं उक्कट्टदि असंखगुणिदक्कमेण संचदि य। इदि गुणसेढीकरणं पडिसमयमपुव्वपढमादो॥ लब्धि. ३९९.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

सेसस्स अणंता भागा। एवं संखेज्जेसु अणुभागखंडयसहस्सेसु गदेसु अण्णो अणुभागखंडओ पढमट्ठिदिखंडओ अपुव्वकरणे पढमट्ठिदिबंधो[1] च एदाणि तिण्णि वि समगं णिट्ठिदाणि[2]। एवं ट्ठिदिबंधसहस्सेहि गदेहि अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जदिभागे गदे णिद्दा-पयलाणं बंधवोच्छेदो जादो। ताधे चेव ताणि गुणसंकमेण संकमंति।

ओवट्टणा जहण्णा आवलिया ऊणिया तिभागेण।
एसा ट्ठिदिसु जहण्णा तहाणुभागेसणंतेसु[3] ॥ २० ॥
संकामेदुक्कड्डदि जे अंसे ते अवट्ठिदा होंति।
आवलियं से काले तेण परं होंति भजिदव्वा[4] ॥ २१ ॥

शेष रहे अनुभागके अनन्त बहुभागमात्र है। इस प्रकार संख्यात अनुभागकांडकसहस्रोंके बीतनेपर अन्य अनुभागकांडक, प्रथम स्थितिकांडक, और जो अपूर्वकरणके प्रथम समयमें स्थितिबन्ध बांधा था वह, ये तीनों ही एक साथ समाप्त होते हैं। इस प्रकार स्थितिबन्धसहस्रोंके बीतनेसे अपूर्वकरणकालका संख्यातवां भाग व्यतीत होनेपर निद्रा व प्रचला प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है। उसी समय वे दोनों प्रकृतियां गुणसंक्रमण द्वारा अन्य प्रकृतियोंमें संक्रमण करती हैं।

यहां संक्रमणमें जघन्य अतिस्थापनाका प्रमाण एक त्रिभागसे हीन आवलीमात्र है। यह जघन्य अतिस्थापनाका प्रमाण स्थितियोंके विषयमें ग्रहण करना चाहिये। अनुभागविषयक जघन्य अपवर्तना अनन्त स्पर्धकोंसे प्रतिबद्ध है। अर्थात् जब तक अनन्त स्पर्धकोंकी अतिस्थापना नहीं होती तब तक अनुभागविषयक अपकर्षणकी प्रवृत्ति नहीं होती ॥ २० ॥

जिन कर्मप्रदेशोंका संक्रमण अथवा उत्कर्षण करता है वे आवलीमात्र काल तक अवस्थित अर्थात् क्रियान्तरपरिणामके विना जिस प्रकार जहां निक्षिप्त हैं उसी प्रकार ही वहां निश्चलभावसे रहते हैं। इसके पश्चात् उक्त कर्मप्रदेश वृद्धि, हानि एवं अवस्थानादि क्रियाओंसे भजनीय हैं ॥ २१ ॥

---

१ प्रतिषु 'पढमट्ठिदिखंडओ बंधो' इति पाठः।

२ संखेज्जेसु अणुभागखंडयसहस्सेसु गदेसु अण्णमणुभागखंडयं पढमट्ठिदिखंडयं च जो च पढमसमए अपुव्वकरणे ट्ठिदिबंधो पबद्धो एदाणि तिण्णि वि समगं णिट्ठिदाणि। जयध. अ. प. १०७३.

३ 'ओवट्टणा जहण्णा' एवं भणिदे ट्ठिदिमोकड्डेमाणो जहण्णदो वि आवलियाए वेत्तिभागमेत्तमइच्छाविऊण णिक्खिवदि त्ति भणिदं होदि। 'एसा ट्ठिदिसु जहण्णा' एवं भणिदे ट्ठिदिविसया एसा जहणाइच्छावणा ओकड्डणाविसए घेत्तव्वा त्ति उत्तं होइ। 'तहाणुभागेसणंतेसु' एवं भणिदे अणुभागविसया ओवट्टणा जहण्णे वि अणंतेसु फद्दएसु पडिबद्धा। जाव अणंताणि फद्दयाणि णाइच्छाविदाणि ताव अणुभागविसया ओकड्डणा ण पयट्टदि त्ति वुत्तं होइ। जयध. अ. प. १०९६. लब्धि. ४०१.

४ 'संकामेदुक्कड्डदि' एवं भणिदे संकामेदि वा उक्कड्डेदि वा जे कम्मपदेसे ते आवलियमेत्तकालमवट्ठिदा होंति, आवलियमेत्तकालं किरियंतरपरिणामेण विणा जहा जत्थ णिक्खित्ता तहा चेव तत्थ णिच्चलभावेण वचिट्ठंति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओकड्डदि जे अंसे से काले ते च होंति भजिदव्वा ।
वड्ढीए अवट्ठाणे हाणीए संकमे उदए[1] ॥ २२ ॥

एक्कं च ठिदिविसेसं तु असंखेज्जेसु ट्ठिदिविसेसेसु ।
वड्ढेदि रहस्सेदि च तहाणुभागेसणंतेसु[2] ॥ २३ ॥

तदो ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु परभवियणामाणं बंधवोच्छेदो जादो । तदो ट्ठिदि-

---

जिन कर्मांशोंका अपकर्षण करता है वे अनन्तर कालमें स्थित्यादिकी वृद्धि, अवस्थान, हानि, संक्रमण और उदय, इनसे भजनीय हैं, अर्थात् अपकर्षण किये जानेके अनन्तर समयमें ही उनमें वृद्धि आदिक उक्त क्रियाओंका होना संभव है ॥ २२ ॥

एक स्थितिविशेषका उत्कर्षण अथवा अपकर्षण करनेवाला नियमसे असंख्यात स्थितिविशेषोंमें बढ़ाता अथवा घटाता है। इसी प्रकार एक अनुभागस्पर्धकसम्बन्धी वर्गणाका उत्कर्षण अथवा अपकर्षण करनेवाला नियमसे अनन्त अनुभागस्पर्धकोंमें ही बढ़ाता अथवा घटाता है। इसका अभिप्राय यह है कि एक स्थितिका उत्कर्षण करनेमें जघन्य निक्षेप आवलीके असंख्यातवें भागमात्र, व अपकर्षण करनेमें जघन्य निक्षेप आवलीके त्रिभागमात्र होता है, तथा अनुभागके उत्कर्षण व अपकर्षणका जघन्य व उत्कृष्ट निक्षेप अनन्त अनुभागस्पर्धकप्रमाण होता है ॥ २३ ॥

पश्चात् स्थितिबन्धसहस्रोंके बीतनेपर देवगति, पंचेन्द्रियजाति आदि परभविक नामकर्म प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है। इसके ऊपर स्थितिबन्धसहस्रोंके

त्ति वुत्तं होइ। 'से काले' तदणंतरसमयप्पहुडि तेण परं तत्तो उवरि होंति भजियव्वा भयणिज्जा भवंति। संकमणावलियमेत्तकाले वदिक्कंते तत्तो परं संकामिदा उक्कड्डिदा च जे कम्मंसा ते वड्ढिहाणिअवट्ठाणादिकिरियाहिं भयणिज्जा होंति। तत्तो परं तप्पवुत्तीए पडिसेहाभावादो त्ति वुत्तं होदि। जयध. अ. प. १०९७. लब्धि. ४०२.

१ एदस्स भावत्थो— ओकड्डिदपदेसग्गं किंचि तदणंतरसमए चेव पुणो उक्कड्डिज्जदि किंचि ण उक्कड्डिज्जदि त्ति एवं वड्ढीए भजिदव्वमवट्ठाणे वि। ओकड्डिदपदेसग्गं किंचि सत्थाणे चेव अच्छदि किंचि अण्णं किरियं गच्छदि त्ति भयणिज्जं। एवमोकड्डणाए संकमोदएहि भयणिज्जत्तं जोजेयव्वं। ओकड्डिदविदियसमए चेव पुणो वि ओकड्डणादीणं पवुत्तीए बाहाणुवलंभादो त्ति। जयध. अ. प. १०९७. लब्धि. ४०३.

२ 'एक्कं च ट्ठिदिविसेसं' एवं भणिदे एगं ट्ठिदिविसेसमुक्कड्डेमाणो णियमा असंखेज्जेसु ट्ठिदिविसेसेसु वड्ढेदि त्ति एदेण जहण्णदो वि आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो चेव उक्कड्डणाए णिक्खेवविसओ होदि, णो हेट्ठा त्ति जाणाविदं। तहा एक्कं च ट्ठिदिविसेसमोकड्डेमाणो णियमा असंखेज्जेसु ट्ठिदिविसेसेसु रहस्सेदि णो हेट्ठा त्ति एदेण वि विदिएण सुत्तावयवेण जहण्णदो वि ओकड्डणाए आवलियतिभागमेत्तेण णिक्खेवेण होदव्वमिदि जाणाविदं। 'तहाणुभागेसणंतेसु' एवं भणिदे एगमणुभागफद्दयवग्गणमुक्कड्डेमाणो ओकड्डेमाणो च णियमा अणंतेसु चेवाणुभागफद्दएसु वड्ढेदि हरस्सेदि वेत्ति भणिदं होदि। एदेण अणुभागविसयाणमोकड्डुक्कड्डणाणं जहण्णुक्कस्सणिक्खेवपमाणावहारणं कयं। जयध. अ. प. १०९८. लब्धि. ४०४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंधसहस्सेसु गदेसु चरिमसमयअपुव्वकरणं पत्तो ।

से काले पढमसमयअणियट्टिस्स आवासयाणि वत्तइस्सामो । तं जधा— पढमसमयअणियट्टिस्स अण्णो ट्ठिदिखंडओ पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो, अण्णो अणुभागखंडओ सेसस्स अणंता भागा, अण्णो ट्ठिदिबंधो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण हीणो[१] । पढमट्ठिदिखंडओ विसमो, जहण्णादो उक्कस्सओ संखेज्जदिभागुत्तरो । पढमे ट्ठिदिखंडए हदे सव्वस्स तुल्लकाले अणियट्टिं पविट्ठस्स ठिदिसंतकम्मं तुल्लं । ठिदिखंडओ वि सव्वस्स अणियट्टिं पविट्ठस्स विदियट्ठिदिखंडयादो विदियट्ठिदिखंडओ तुल्लो, तदियादो तदियो तुल्लो । एवं सव्वत्थ[२] । ट्ठिदिबंधो सागरोवमसहस्सपुधत्तं अंतोसदसहस्सस्स[३] । ट्ठिदिसंतकम्मं सागरोवमसदसहस्सपुधत्तं अंतोकोडा-

बीतनेपर अपूर्वकरणका अन्तिम समय प्राप्त होता है ।

अनन्तर समयमें प्रथमसमयवर्ती हुए अनिवृत्तिकरणके आवासोंको कहते हैं । वह इस प्रकार है— प्रथमसमयवर्ती अनिवृत्तिकरणके अन्य स्थितिकांडक पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण, अन्य अनुभागकांडक शेष अनुभागके अनन्त बहुभागमात्र और अन्य स्थितिबन्ध पल्योपमके संख्यातवें भागसे हीन प्राप्त होता है । अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें वर्तमान नाना जीवोंका प्रथम स्थितिकांडक विषम है अर्थात् समान नहीं है । जघन्य प्रथम स्थितिकांडकसे उत्कृष्ट प्रथम स्थितिकांडक पल्यके संख्यातवें भागसे अधिक है । समान कालमें अनिवृत्तिकरणमें प्रविष्ट सब जीवोंका स्थितिसत्व प्रथम स्थितिकांडकके नष्ट होनेपर तुल्य है । अनिवृत्तिकरणमें प्रविष्ट सबका स्थितिकांडक भी द्वितीय स्थितिकांडकसे द्वितीय स्थितिकांडक तुल्य है और तृतीयसे तृतीय स्थितिकांडक तुल्य है । इसी प्रकार सर्वत्र जानना चाहिये । जो स्थितिबन्ध पूर्वमें अन्तःकोड़ाकोड़िप्रमाण था वह अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें सागरोपमसहस्रपृथक्त्वमात्र होता हुआ लक्षसागरोपमके भीतर हो जाता है । इसी प्रकार जो स्थितिसत्व अन्तःकोड़ाकोड़िप्रमाण था वह घटकर इस समय लक्षपृथक्त्व सागरोपमप्रमाण होता हुआ कोड़ाकोड़ीके भीतर ही रहता

१ अणियट्टिस्स य पढमे अण्णं ठिदिखंडपहुदिमारवई । लब्धि. ४११.

२ बादरपढमे पढमं ठिदिखंडं विसरिसं तु विदियादि । ठिदिखंडयं समाणं सव्वस्स समाणकालम्हि ॥ पल्लस्स संखभागं अवरं तु वरं तु संखभागहियं । घादादिमठिदिखंडो सेसा सव्वस्स सरिसा हु ॥ लब्धि. ४१२-४१३.

३ पुव्वमंतोकोडाकोडिपमाणो होंतो ट्ठिदिबंधो अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जसहस्समेत्तेहि ट्ठिदिबंधोसरणेहि सुट्ठु ओहट्टियूण अणियट्टिकरणपढमसमये सागरोवमसहस्सपुधत्तमेत्तो होदूण अंतोसागरोवमसदसहस्सस्स पयट्टदि त्ति वुत्तं होदि ॥ जयध. अ. प. १०७५.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

कोडीए[1] । गुणसेढिणिक्खेवो जो अपुव्वकरणे णिक्खित्तो तस्स सेसे सेसे च भवदि[2] । सव्वकम्माणं पि तिण्णि करणाणि वोच्छिण्णाणि[3] । तं जहा– अप्पसत्थउवसामणाकरणं णिधत्तीकरणं णिकाचणाकरणं च । एदाणि सव्वाणि पढमसमयअणियट्टिस्स आवासयाणि परूविदाणि । से काले एदाणि चेव । णवरि गुणसेडी असंखेज्जगुणा । सेसे सेसे च णिक्खेवो । विसोधी च अणंतगुणा । एवं संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु तदो अण्णो ट्ठिदिबंधो असण्णिट्ठिदिबंधसमगो जादो[4] । तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु चउरिंदियट्ठिदिबंधसमगो जादो । एवं तीइंदियसमगो बीइंदियसमगो एवमेइंदियट्ठिदिबंधसमगो जादो[5] । तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु णामा-गोदाणं पलिदोवमट्ठिदिबंधो जादो । ताधे णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेदणीय-अंतराइयाणं दिवड्ढपलिदोवमट्ठिदिगो बंधो जादो । मोहणीयस्स वेपलिदोवमट्ठिदिगो बंधो जादो[6] । ताधे ट्ठिदि-

---

है । जो गुणश्रेणिनिक्षेप अपूर्वकरणमें निक्षिप्त था उसके शेष शेषमें ही निक्षेप होता है । अनिवृत्तिकरणमें सभी कर्मोंके अप्रशस्तोपशामनाकरण, निधत्तिकरण और निकाचनाकरण, ये तीन करण व्युच्छिन्न हो जाते हैं । ये सब प्रथमसमयवर्ती अनिवृत्तिकरणके आवास कहे गये हैं । अनन्तर समयमें भी ये ही आवास हैं । विशेष केवल यह है कि यहां गुणश्रेणी असंख्यातगुणी है और शेष शेषमें निक्षेप है । विशुद्धि भी अनन्तगुणी है । इस प्रकार संख्यात स्थितिबन्धसहस्रोंके व्यतीत होनेपर तब अन्य स्थितिबन्ध असंज्ञीके स्थितिबन्धके सदृश होता है । पुनः संख्यात स्थितिबन्धसहस्रोंके वीतनेपर चतुरिन्द्रियके स्थितिबन्धसदृश स्थितिबन्ध होता है । इसी प्रकार त्रीन्द्रियके सदृश, द्वीन्द्रियके सदृश और इसी प्रकार एकेन्द्रियके स्थितिबन्धके सदृश स्थितिबन्ध होता है । तत्पश्चात् संख्यात स्थितिबन्धसहस्रोंके वीतनेपर नाम व गोत्र कर्मोंका पल्योपममात्र स्थितिबन्ध होता है । उस समयमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय, इनका डेढ़ पल्योपमप्रमाण स्थितिवाला बन्ध होता है । मोहनीयका दो पल्योपममात्र स्थितिवाला बन्ध होता है । उस समयमें स्थितिसत्त्व लक्षपृथक्त्व

---

१ अंतोकोडाकोडिमेत्तं ट्ठिदिसंतकम्ममपुव्वकरणपरिणामेहिं संखेज्जसहस्समेत्तट्ठिदिखंडयघादेहि घादिदं संतं सुट्ठु ओहट्टियूण अंतोकोडाकोडीए सागरोवमलक्खपुधत्तपमाणं होदूणाणियट्टिपढमसमए ट्ठिदमिदि भणिदं होदि । जयध. अ. प. १०७५.

२ उदधिसहस्सपुधत्तं लक्खपुधत्तं तु बंध संतो य । अणियट्टिस्सादीए गुणसेढी पुव्वपरिसेसा ॥ लब्धि. ४१४.

३ उवसामणा णिधत्ती णिकाचणा तत्थ वोच्छिण्णा ॥ लब्धि. ४११,

४ ठिदिबंधसहस्सगदे संखेज्जा बादरे गदा भागा । तत्थासण्णिस्स ट्ठिदिसरिसं ठिदिबंधणं होदि ॥ लब्धि. ४१५.

५ ठिदिबंधसहस्सगदे पत्तेयं चदुरतियबिएइंदी । ठिदिबंधसमं होदि हु ठिदिबंधमणुक्कमेणेव ॥ लब्धि. ४१६.

६ एइंदियट्ठिदीदो संखसहस्से गदे हु ठिदिबंधे । पल्लेक्कदिवड्ढदुगं ठिदिबंधो वीसियतियाणं ॥ लब्धि. ४१७.

संतकम्मं सागरोवमसदसहस्सपुधत्तं[1] ।

जाधे णामा-गोदाणं पलिदोवमट्ठिदिगो बंधो ताधे अप्पाबहुगं । तं जहा– णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो थोवो । णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेदणीय-अंतराइयाणं ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ । मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ । अदिक्कंता सव्वे ट्ठिदिबंधा[2] एदेण अप्पाबहुअविधिणा आगदा[3] । तदो णामा-गोदाणं पलिदोवमट्ठिदिबंधे पुण्णे जो अण्णो ट्ठिदिबंधो सो संखेज्जगुणहीणो । सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो विसेसहीणो । ताधे अप्पाबहुअं– णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो थोवो । चदुण्हं कम्माणं ठिदिबंधो तुल्लो संखेज्ज-गुणो । मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ । एदेण कमेण ट्ठिदिबंधसहस्साणि गदाणि संखेज्जाणि । तदो णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेदणीय-अंतराइयाणं पलिदोवमट्ठिदिगो बंधो जादो । ताधे मोहणीयस्स तिभागुत्तरपलिदोवमट्ठिदिगो बंधो जादो । तदो जो अण्णो ट्ठिदिबंधो चदुण्हं कम्माणं सो संखेज्जगुणहीणो । ताधे अप्पाबहुगं– णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो थोवो । चदुण्हं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । मोहणीयस्स

....

सागरोपमप्रमाण रहता है ।

जिस समय नाम व गोत्र कर्मोंका पल्योपमप्रमाण स्थितिवाला बन्ध होता है उस समय अल्पबहुत्व इस प्रकार है— नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिबन्ध स्तोक है । ज्ञाना-वरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय, इनका स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । मोहनीयका स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे पूर्वके सब स्थितिबन्ध इसी अल्पबहुत्व-विधिसे आये हैं । नाम-गोत्र कर्मोंका पल्योपमप्रमाण स्थितिबन्ध पूर्ण होनेपर जो अन्य स्थितिबन्ध होता है वह संख्यातगुणा हीन होता है । शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध विशेष हीन है । उस समय अल्पबहुत्व इस प्रकार है— नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिबन्ध स्तोक, चार कर्मोंका स्थितिबन्ध तुल्य संख्यातगुणा, और मोहनीयका स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इस क्रमसे संख्यात स्थितिबन्धसहस्र बीत जाते हैं । तब ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तराय, इनका पल्योपममात्र स्थितिवाला बन्ध होता है । उस समय मोहनीयका त्रिभागसे अधिक पल्योपमप्रमाण स्थितिबन्ध होता है । तत्पश्चात् चार कर्मोंका जो अन्य स्थितिबन्ध होता है वह संख्यातगुणा हीन होता है । उस समय अल्पबहुत्व इस प्रकार है— नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिबन्ध स्तोक, चार कर्मोंका स्थिति-

....

१ तक्काले ठिदिसंतं लक्खपुधत्तं तु होदि उवहीणं । बंधोसरणा बंधो ठिदिखंडं संतमोसरदि ॥ लब्धि. ४१८.

२ अ-क प्रत्योः ' अदिक्कंतो सव्वे ट्ठिदिबंधो ' आप्रतौ ' अदिक्कंतो सव्वे ट्ठिदिबंधा ' इति पाठः ।

३ ण केवलमेसो चेव ट्ठिदिबंधो एदेणप्पाबहुअविहिणा पयट्टो, किंतु अइक्कंता सव्वे ट्ठिदिबंधा एदेणेव कमेण पयट्टा त्ति जाणावणट्ठमिदमाह अदिक्कंता सव्वे ट्ठिदिबंधा एदेण अप्पाबहुअविहिणागदा । जयध. अ. प. १०७६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। एदेण कमेण संखेज्जाणि ट्ठिदिबंधसहस्साणि गदाणि । तदो मोहणीयस्स पलिदोमवट्ठिदिगो बंधो जादो। सेसाणं कम्माणं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो ट्ठिदिबंधो। एदम्हि ट्ठिदिबंधे पुण्णे मोहणीयस्स जो अण्णो ट्ठिदिबंधो सो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागिओ। तदो सव्वेसिं कम्माणं ट्ठिदिबंधो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो चेव। ताधे अप्पाबहुअं– णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो थोवो। णाणावरण-दंसणावरण-वेदणीय-अंतराइयाणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। एदेण कमेण ट्ठिदिबंधसहस्साणि गदाणि संखेज्जाणि। तदो जो अण्णो ट्ठिदिबंधो सो णामा-गोदाणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागिगो जादो। ताधे सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो। एत्थ अप्पाबहुअं– णामा-गोदाणं ठिदिबंधो थोवो। चदुण्हं कम्माणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु तिण्हं घादिकम्माणं[1] वेदणीयस्स (च) पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागिओ ठिदिबंधो जादो। ताधे अप्पाबहुअं– णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो थोवो। चदुण्हं कम्माणं ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु मोहणीयस्स वि पलिदोवमस्स

बन्ध संख्यातगुणा और मोहनीयका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इस क्रमसे संख्यात स्थितिबन्धसहस्र व्यतीत हो जाते हैं। तब मोहनीयका पल्योपममात्र स्थितिवाला बन्ध होता है और शेष कर्मोंका पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिबन्ध होता है। इस स्थितिबन्ध के पूर्ण होनेपर मोहनीयका जो अन्य स्थितिबन्ध होता है वह पल्योपमके संख्यातवें भागमात्र होता है। तब सब कर्मोंका स्थितिबन्ध पल्योपमके संख्यातवें भागमात्र ही होता है। उस समयमें अल्पबहुत्व इस प्रकार है— नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिबन्ध स्तोक; ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय व अन्तराय, इनका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा, और मोहनीयका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इस क्रमसे संख्यात स्थितिबन्धसहस्र वीत जाते हैं। तब जो अन्य स्थितिबन्ध होता है वह नाम-गोत्र कर्मोंका पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र होता है। उस समयमें शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होता है। यहां अल्पबहुत्व इस प्रकार है— नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिबन्ध स्तोक, चार कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा, और मोहनीयका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। पश्चात् संख्यात स्थितिबन्धसहस्रोंके वीत जानेपर तीन घातिया कर्मोंका और वेदनीयका स्थितिबन्ध पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है। उस समय अल्पबहुत्व इस प्रकार है— नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिबन्ध स्तोक, चार घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा और मोहनीयका स्थिति-बन्ध असंख्यातगुणा है। तत्पश्चात् संख्यात स्थितिबन्धसहस्रोंके वीत जानेपर मोह-

---

१ प्रतिषु ' घादिकम्साणं ' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असंखेज्जदिभागिओ ठिदिबंधो जादो। ताधे सव्वेसिं कम्माणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ठिदिबंधो जादो[1]। ताधे ट्ठिदिसंतकम्मं[2] सागरोवमसहस्सपुधत्तं अंतोसदसहस्सस्स[3]। जाधे पढमदाए मोहणीयस्स पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ट्ठिदिबंधो जादो ताधे अप्पाबहुअं– णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो थोवो। चदुण्हं कम्माणं ट्ठिदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो। मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। एदेण कमेण संखेज्जाणि ट्ठिदिबंधसहस्साणि गदाणि। तदो जम्हि अण्णो ट्ठिदिबंधो तम्हि एक्कसराहेण णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो थोवो। मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। चदुण्हं कम्माणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो[4]। एदेण कमेण संखेज्जाणि ट्ठिदिबंधसहस्साणि गदाणि। तदो जम्हि अण्णो ट्ठिदिबंधो तम्हि एक्कसराहेण मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो थोवो। णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो[5]। चदुण्हं कम्माणं ट्ठिदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो। एदेण कमेण संखेज्जाणि ट्ठिदिबंधसहस्साणि गदाणि। तदो जम्हि अण्णो ट्ठिदिबंधो तम्हि एक्कसराहेण मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो थोवो। णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्ज-

---

नीयका भी पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र स्थितिबन्ध हो जाता है। उस समय सब कर्मोंका पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र स्थितिबन्ध होता है। उस समयमें स्थितिसत्व शतसहस्रके भीतर सहस्रपृथक्त्व सागरोपमप्रमाण रहता है। जब प्रथमतः मोहनीयका पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र स्थितिबन्ध होता है तब अल्पबहुत्वका क्रम इस प्रकार है— नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिबन्ध स्तोक, चार कर्मोंका स्थितिबन्ध तुल्य असंख्यातगुणा, और मोहनीयका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है। इस क्रमसे संख्यात स्थितिबन्धसहस्र बीत जाते हैं। तब जिस समयमें अन्य स्थितिबन्ध होता है उस समयमें एक साथ नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिबन्ध स्तोक, मोहनीयका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा, और चार कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा होता है। इस क्रमसे संख्यात स्थितिबन्धसहस्र बीत जाते हैं। तब जिस समयमें अन्य स्थितिबन्ध होता है उस समयमें एक साथ मोहनीयका स्थितिबन्ध स्तोक, नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा, और चार कर्मोंका स्थितिबन्ध तुल्य असंख्यातगुणा होता है। इस क्रमसे संख्यात स्थितिबन्धसहस्र बीत जाते हैं। तब जिस समयमें अन्य स्थितिबन्ध होता है उस समयमें एक साथ मोहनीयका स्थितिबन्ध स्तोक, नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिबन्ध

---

१ एवं पल्लं जादा वीसीया तीसिया य मोहो य। पल्लासंखं च कमं बंधेण य वीसियतियाओ॥ लब्धि. ४२०.

२ प्रतिषु 'ट्ठिदिसंकम्मं' इति पाठः।

३ उदधिसहस्सपुधत्तं अब्भंतरदो दु सदसहस्सस्स। तक्काले ठिदिसंतो आउगवज्जाण कम्माणं॥ लब्धि. ४२१.

४ मोहगपल्लासंखट्ठिदिबंधसहस्सगेसु तीदेसु। मोहो तीसिय हेट्ठा असंखगुणहीणयं होदि। लब्धि. ४२२.

५ तेत्तियमेत्ते बंधे समतीदे वीसियाण हेट्ठादु। एक्कसराहे मोहो असंखगुणहीणयं होदि॥ लब्धि. ४२३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणो । तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो[1] । एवं संखेज्जाणि ट्ठिदिबंधसहस्साणि गदाणि । तदो अण्णो ट्ठिदिबंधो एक्कसराहेण मोहणीयस्स थोवो । तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो[2] । वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ[3] । एदेण कमेण संखेज्जाणि ट्ठिदिबंधसहस्साणि गदाणि । तदो ट्ठिदिसंतकम्मं असण्णिठिदिबंधेण समगं जादं[4] । तदो संखेज्जेसु ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु चउरिंदियट्ठिदिबंधेण समगं जादं । एवं तीइंदिय-बीइंदियट्ठिदिबंधेण समगं जादं । तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु एइंदियट्ठिदिबंधेण समगं ट्ठिदिसंतकम्मं जादं । तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु णामा-गोदाणं पलिदोवमट्ठिदिगं संतकम्मं जादं । ताधे चदुण्हं कम्माणं दिवड्ढपलिदोवम-ट्ठिदिसंतकम्मं, मोहणीयस्स बेपलिदोवमट्ठिदिसंतकम्मं । एदम्हि ट्ठिदिखंडए उक्किण्णे णामा-गोदाणं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागिगं ट्ठिदिसंतकम्मं । ताधे अप्पाबहुगं— सव्वत्थोवं

असंख्यातगुणा, तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा, और वेदनीयका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा होता है । इस प्रकार संख्यात स्थितिबन्धसहस्र वीत जाते हैं । तब अन्य स्थितिबन्ध एक साथ मोहनीयका स्तोक, तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा, नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा, और वेदनीयका स्थितिबन्ध विशेष अधिक होता है । इस क्रमसे संख्यात स्थितिबन्धसहस्र वीत जाते हैं । तब स्थितिसत्व असंज्ञी पंचेन्द्रियके स्थितिबन्धके सदृश होता है । पश्चात् संख्यात स्थितिबन्धसहस्रोंके वीत जानेपर चतुरिन्द्रियके स्थितिबन्धके सदृश स्थितिसत्व होता है । इसी प्रकार त्रीन्द्रिय व द्वीन्द्रियके स्थितिबन्धके सदृश स्थितिसत्व होता है । पुनः संख्यात स्थितिकाण्डकसहस्रोंके वीत जानेपर एकेन्द्रियके स्थितिबन्धके सदृश स्थिति-सत्व होता है । तत्पश्चात् संख्यात स्थितिकाण्डकसहस्रोंके वीतनेपर नाम-गोत्र कर्मोंका सत्व पल्योपममात्र स्थितिवाला होता है । उस समयमें चार कर्मोंका स्थितिसत्व डेढ़ पल्योपम और मोहनीयका स्थितिसत्व दो पल्योपमप्रमाण होता है । इस स्थितिकांडकके उत्कीर्ण होनेपर नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिसत्व पल्योपमके संख्यातवें भागमात्र होता है । उस समयमें अल्पबहुत्व इस प्रकार है — नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिसत्व सबसे

१ तेत्तियमेत्ते बंधे समतीदे वेदणीयहेट्ठा दु । तीसियघादितियाओ असंखगुणहीणया होंति ॥ लब्धि. ४२४.

२ तेत्तियमेत्ते बंधे समतीदे वीसियाण हेट्ठा दु । तीसियघादितियाओ असंखगुणहीणया होंति ॥ लब्धि. ४२५.

३ तक्काले वेयणियं णामागोदाउ साहियं होदि । इदि मोहतीसवीसियवेयणियाणं कमो बंधे ॥ लब्धि. ४२६.

४ बंधे मोहादिकमे संजादे तेत्तियेहिं बंधेहिं । ठिदिसंतमसण्णिसमं मोहादिकमं तहा संते ॥ लब्धि. ४२७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णामा-गोदाणं ट्ठिदिसंतकम्मं । चदुण्हं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं तुल्लं संखेज्जगुणं[1] । मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं विसेसाहियं । एदेण कमेण ट्ठिदिखंडयपुधत्ते गदे तदो चदुण्हं कम्माणं पलिदोवमट्ठिदिसंतकम्मं जादं । ताधे मोहणीयस्स तिभागुत्तरपलिदोवमं ट्ठिदिसंतकम्मं । तदो ट्ठिदिखंडए पुण्णे चदुण्हं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो । ताधे अप्पाबहुअं– सव्वत्थोवं णामा-गोदाणं ट्ठिदिसंतकम्मं । चदुण्हं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं तुल्लं संखेज्जगुणं । मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं । तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण मोहट्ठिदिसंतकम्मं पलिदोवमं जादं । तदो ट्ठिदिखंडए पुण्णे सत्तण्हं कम्माणं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो ट्ठिदिसंतकम्मं जादं । तदो संखेज्जेसु[2] ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु णामा-गोदाणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ट्ठिदिसंतकम्मं जादं । ताधे अप्पाबहुअं– सव्वत्थोवं णामा-गोदाणं ट्ठिदिसंतकम्मं । चदुण्हं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं तुल्लमसंखेज्जगुणं । मोहट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं । तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण चदुण्हं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो जादो । ताधे अप्पाबहुअं– णामा गोदाणं

स्तोक, चार कर्मोंका स्थितिसत्व तुल्य संख्यातगुणा, और मोहनीयका स्थितिसत्व विशेष अधिक है। इस क्रमसे स्थितिकांडकपृथक्त्वके वीतनेपर तब चार कर्मोंका स्थितिसत्व पल्योपममात्र स्थितिवाला होता है। उस समयमें मोहनीयका स्थितिसत्व त्रिभागसे अधिक पल्योपमप्रमाण होता है। पश्चात् स्थितिकाण्डकके पूर्ण होनेपर चार कर्मोंका स्थितिसत्व पल्योपमके संख्यातवें भागमात्र होता है। उस समयमें अल्पबहुत्व इस प्रकार है— नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिसत्व सबसे स्तोक, चार कर्मोंका स्थितिसत्व तुल्य संख्यातगुणा, और मोहनीयका स्थितिसत्व संख्यातगुणा होता है। पश्चात् स्थितिकाण्डकपृथक्त्वसे मोहनीयका स्थितिसत्व पल्योपममात्र हो जाता है। तब स्थितिकाण्डकके पूर्ण होनेपर सात कर्मोंका स्थितिसत्व पल्योपमके संख्यातवें भाग हो जाता है। तत्पश्चात् संख्यात स्थितिकाण्डकसहस्रोंके वीतनेपर नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिसत्व पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र हो जाता है। उस समयमें अल्पबहुत्व इस प्रकार है— नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिसत्व सबसे स्तोक, चार कर्मोंका स्थितिसत्व तुल्य असंख्यातगुणा, और मोहका स्थितिसत्व संख्यातगुणा होता है। पुनः स्थितिकाण्डकपृथक्त्वसे चार कर्मोंका स्थितिसत्व पल्योपमके असंख्यातवें भाग हो जाता है। उस समयमें अल्पबहुत्व इस प्रकार है— नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिसत्व स्तोक, चार कर्मोंका स्थितिसत्व

---

१ प्रतिषु ' असंखेज्जगुणं ' इति पाठः । चउण्हं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं तुल्लं संखेज्जगुणं । जयध. अ. प. १०७७.

२ प्रतिषु ' संखेज्जगुण- ' इति पाठः ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

ट्ठिदिसंतकम्मं थोवं । चदुण्हं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं तुल्लमसंखेज्जगुणं । मोहट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जगुणं । तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण मोहणीयस्स वि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ट्ठिदिसंतकम्मं जादं । ताधे अप्पाबहुगं— णामा-गोदाणं ट्ठिदिसंतकम्मं थोवं । चदुण्हं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं तुल्लमसंखेज्जगुणं । मोहट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जगुणं । एदेण कमेण संखेज्जाणि ट्ठिदिखंडयसहस्साणि गदाणि । तदो णामा-गोदाणं ट्ठिदिसंतकम्मं थोवं । मोहट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जगुणं । चदुण्हं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं तुल्लमसंखेज्जगुणं । तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्ते गदे एक्कसराहेण मोहट्ठिदिसंतकम्मं थोवं । णामा-गोदाणं ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जगुणं । चदुण्हं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं तुल्लमसंखेज्जगुणं । तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण मोहट्ठिदिसंतकम्मं थोवं । णामा-गोदाणं ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जगुणं । तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जगुणं । वेदणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जगुणं । तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण मोहट्ठिदिसंतकम्मं थोवं । तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जगुणं । णामा-गोदाणं ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जगुणं । वेदणीयट्ठिदिसंतकम्मं विसेसाहियं ।

एदेण कमेण संखेज्जाणि ट्ठिदिखंडयसहस्साणि गदाणि । तदो असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा[1] । तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु अट्ठण्हं कसायाणं

तुल्य असंख्यातगुणा, और मोहनीयका स्थितिसत्व असंख्यातगुणा होता है । तत्पश्चात् स्थितिकाण्डकपृथक्त्वसे मोहनीयका भी स्थितिसत्व पल्योपमके असंख्यातवें भाग रह जाता है । उस समयमें अल्पबहुत्व इस प्रकार है— नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिसत्व स्तोक, चार कर्मोंका स्थितिसत्व तुल्य असंख्यातगुणा, और मोहनीयका स्थितिसत्व असंख्यातगुणा होता है । इस क्रमसे संख्यात स्थितिकाण्डकसहस्र चले जाते हैं । तब नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिसत्व स्तोक, मोहनीयका स्थितिसत्व असंख्यातगुणा, और चार कर्मोंका स्थितिसत्व तुल्य असंख्यातगुणा होता है । पश्चात् स्थितिकाण्डकपृथक्त्वके बीतनेपर एक साथ मोहनीयका स्थितिसत्व स्तोक, नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिसत्व असंख्यातगुणा, और चार कर्मोंका स्थितिसत्व तुल्य असंख्यातगुणा रहता है । पश्चात् स्थितिकाण्डकपृथक्त्वसे मोहनीयका स्थितिसत्व स्तोक, नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिसत्व असंख्यातगुणा, तीन घातिया कर्मोंका स्थितिसत्व असंख्यातगुणा, और वेदनीयका स्थितिसत्व असंख्यातगुणा होता है । तत्पश्चात् स्थितिकाण्डकपृथक्त्वसे मोहनीयका स्थितिसत्व स्तोक, तीन घातिया कर्मोंका स्थितिसत्व असंख्यातगुणा, नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिसत्व असंख्यातगुणा, और वेदनीयका स्थितिसत्व विशेष अधिक होता है ।

इस क्रमसे संख्यात स्थितिकाण्डकसहस्र बीत जाते हैं । पश्चात् असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा होती है । तत्पश्चात् संख्यात स्थितिकांडकसहस्रोंके बीत जानेपर आठ

१ प्रतिषु '-मुदीरणा । तदो ' इत्यस्य स्थाने '-मुदीरणादो ' इति पाठः । तीदे बंधसहस्से पल्लासंखेज्जयं तु ट्ठिदिबंधे । तत्थ असंखेज्जाणं उदीरणा समयबद्धाणं ॥ लब्धि. ४२८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकामओ। तदो अट्ठ कसाया ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण संकामिज्जंति। अट्ठण्हं कसायाणमपच्छिमे ट्ठिदिखंडए उक्किण्णे तेसिं संतकम्मं सेसमावलियं पविट्ठं[1]। तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-थीणगिद्धीणं णिरयगदि-तदाणुपुव्वी-तिरिक्खगदिपाओग्गणामाणं[2] संतकम्मस्स[3] संकामगो जादो। तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण अपच्छिमे ट्ठिदिखंडए उक्किण्णे एदेसिं सोलसण्हं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं सेसमावलियं पविट्ठं[4]। तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण मणपज्जवणाणावरणीय-दाणंतराइयाणं च अणुभागो बंधेण देसघादी जादो। तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण ओहिणाणावरणीय-ओहिदंसणावरणीय-लाहंतराइयाणमणुभागो बंधेण देसघादी जादो। तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण सुदणाणावरणीय-अचक्खुदंसणावरणीय-भोगंतराइयाणमणुभागो बंधेण देसघादी जादो। तदो ठिदिखंडयपुधत्तेण चक्खुदंसणा-

---

कषायोंका संक्रामक अर्थात् क्षपणाका प्रारम्भक होता है। तब आठ कषायें स्थितिकांडकपृथक्त्वसे संक्रमणको प्राप्त करायी जाती हैं। आठ कषायोंके अन्तिम स्थितिकांडकके उत्कीर्ण होनेपर उनका शेष सत्व आवलीको प्रविष्ट अर्थात् एक समय कम आवलीमात्र निषेकप्रमाण रहता है। पश्चात् स्थितिकाण्डकपृथक्त्वसे निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धि, इन तीन दर्शनावरण तथा नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी और तिर्यचगतिके योग्य नामकर्म अर्थात् तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति, आताप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण, इन तेरह नामकर्मोंके सत्वका संक्रामक होता है। पश्चात् स्थितिकाण्डकपृथक्त्वसे अन्तिम स्थितिकाण्डकके उत्कीर्ण होनेपर इन सोलह कर्मोंका शेष स्थितिसत्व आवलीके भीतर प्रविष्ट होता है। तत्पश्चात् स्थितिकाण्डकपृथक्त्वसे मनःपर्ययज्ञानावरणीय और दानांतरायका अनुभाग बन्धसे देशघाती हो जाती है। पुनः स्थितिकाण्डकपृथक्त्वसे अवधिज्ञानावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और लाभान्तरायका अनुभाग बन्धसे देशघाती हो जाता है। तत्पश्चात् स्थितिकाण्डकपृथक्त्वसे श्रुतज्ञानावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय और भोगान्तराय, इनका अनुभाग बन्धसे देशघाती हो जाता है। पुनः स्थितिकाण्डकपृथक्त्वसे

---

१ ठिदिबंधसहस्सगदे अट्ठकसायाण होदि संकमगो। ठिदिखंडपुधत्तेण य तट्ठिदिसंतं तु आवलिपविट्ठं॥ लब्धि. ४२९. अट्ठकसायाणमपच्छिमट्ठिदिखंडये चरिमफालिसरूवेण णिल्लेविदे तेसिमावलियपविट्ठसंतकम्मस्सेव समयूणावलियमेत्तणिसेगपमाणस्स परिसेसत्तसिद्धीए णिव्वाहमुवलंभादो। जयध. अ. प. १०७८.

२ एत्थ णिरयतिरिक्खगईपाओग्गणामाओ त्ति वुत्ते णिरयगइणिरयगइपाओग्गाणुपुव्वीतिरिक्खगइतिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वीएइंदियबीइंदियतीइंदिचउरिंदियजादिआदावुज्जोवथावरसुहुमसाहारणणामाणं तेरसण्हं पयडीणं गहणं कायव्वं। जयध. अ. प. १०७८-१०७९.

३ प्रतिषु ' संतकम्मंसे ' इति पाठः।

४ ठिदिबंधपुधत्तगदे सोलसपयडीण होदि संकमगो। ठिदिखंडपुधत्तेण य तट्ठिदिसंतं तु आवलिपविट्ठं॥ लब्धि. ४३०.

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

वरणीयमणुभागबंधेण देसघादी जादं । तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण आभिणिबोहिय-णाणावरणीय-परिभोगंतराइयाणमणुभागो बंधेण देसघादी जादो । तदो ट्ठिदिखंडय-पुधत्तेण वीरियंतराइस्स अणुभागो बंधेण देसघादी जादो[1] ।

तदो ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु अण्णं ट्ठिदिखंडय-(मण्णमणुभागखंडय-) मण्णं ट्ठिदिबंधं अंतरट्ठिदिउक्कीरणं च समगमाढवेदि । चदुण्हं संजलणाणं णवण्हं णोकसायाणं च अंतरं[2] करेदि । सेसाणं कम्माणं णत्थि अंतरं । पुरिसवेदस्स कोहसंजलणस्स य पढम-ट्ठिदिमंतोमुहुत्तमेत्तं मोत्तूण अंतरं करेदि, सोदयत्तादो । सेसाणं कम्माणमावलियं मोत्तूण अंतरं करेदि, उदयाभावादो[3] । जाओ अंतरट्ठिदीओ उक्कीरिज्जंति तासिं पदेसग्ग-मुक्कीरिज्जमाणियासु ट्ठिदीसु ण दिज्जदि । जासिं पयडीणं पढमट्ठिदी अत्थि, तिस्से पढमट्ठिदीए जाओ संपहिट्ठिदीओ उक्कीरिज्जंति तं उक्कीरिज्जमाणं पदेसग्गं संछुहदि[4] ।

चक्षुदर्शनावरणीय अनुभागबन्धसे देशघाती हो जाता है । पुनः स्थितिकाण्डकपृथक्त्वसे आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय और परिभोगान्तरायका अनुभाग बन्धसे देशघाती हो जाता है । पुनः स्थितिकाण्डकपृथक्त्वसे वीर्यान्तरायका अनुभाग बन्धसे देशघाती हो जाता है ।

तत्पश्चात् स्थितिकांडकसहस्रोंके बीत जानेपर अन्य स्थितिकांडक, (अन्य अनु-भागकांडक), अन्य स्थितिबन्ध और अन्तरस्थिति-उत्कीरण, इनको एक साथ प्रारम्भ करता है । चार संज्वलन और नव नोकषायोंके अंतरको करता है । शेष कर्मोंका अन्तर नहीं होता । पुरुषवेद और संज्वलनक्रोधकी अन्तर्मुहूर्तमात्र प्रथमस्थितिको छोड़कर अन्तर करता है, क्योंकि इनका यहां उदय पाया जाता है । शेष कर्मोंकी आवलीमात्र प्रथम-स्थितिको छोड़कर अन्तर करता है, क्योंकि यहां शेष प्रकृतियोंके उदयका अभाव है । जिन अन्तरस्थितियोंको उत्कीर्ण किया जाता है उनके प्रदेशाग्रको उत्कीर्ण की जानेवाली स्थितियोंमें नहीं देता है । जिन उदयप्राप्त प्रकृतियोंकी प्रथमस्थिति है उस प्रथम-स्थितिमें, जो इस समय स्थितियां उत्कीर्ण की जा रही हैं उस उत्कीर्ण किये जानेवाले प्रदेशाको (अपकर्षण करके यथासम्भव समस्थितिसंक्रमण द्वारा) देता है । जो प्रकृतियां

---

१ ठिदिबंधपुधत्तगदे मणदाणा तत्तियेत्ति ओहिदुगं । लाभं च पुणोवि सुदं अचक्खुभोगं पुणो चक्खु ॥ पुणरवि मदिपरिभोगं पुणरवि विरियं कमेण अणुभागो । बंधेण देसघादी पल्लासंखं तु ठिदिबंधो ॥ लब्धि. ४३१-४३२.

२ अ-आप्रत्योः ' अणंतरं ' इति पाठः ।

३ ठिदिखंडसहस्सगदे चदुसंजलणाण णोकसायाणं । एयट्ठिदिखंडुक्कीरणकाले अंतरं कुणइ ॥ संजलणाणं एक्कं वेदाणेक्कं उदेदि तद्दोण्हं । सेसाणं पढमट्ठिदि ठवेदि अंतोमुहुत्तआवलियं ॥ लब्धि. ४३३-४३४.

४ जासिं पयडीणं वेदिज्जमाणाणं पढमट्ठिदी अत्थि तासिं तिस्सेव पढमट्ठिदीए उवरि अप्पणो अण्णेसिं च कम्माणमंतरट्ठिदीसु च उक्कीरिज्जमाणं पदेसग्गमोकड्डणाए जहासंभवं समट्ठिदिसंकमणेण च संछुहदि त्ति सुत्तत्थो । जयध. अ. प. १०८०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाओ बज्झंति पयडीओ तासिमावाहमइच्छिदूण जा जहण्णिया णिसेयट्ठिदी तमादिं कादूण बज्झमाणियासु ट्ठिदीसु उक्कड्डिज्जदि[1] । तदो अणुभागखंडयसहस्सेसु गदेसु अण्णो अणुभागखंडओ जो च अंतरे उक्कीरिज्जमाणे ट्ठिदिबंधो पबद्धो तत्थतणट्ठिदिखंडगो अंतरकरणद्धा च एदाणि समगं णिट्ठियमाणाणि णिट्ठिदाणि ।

से काले अंतरकदपढमसमए[2] णवुंसयवेदस्स आउत्तकरणसंकामगो[3] जादो । ताधे चेव मोहणीयस्स संखेज्जवस्सिओ ट्ठिदिबंधो, मोहणीयस्स एगट्ठाणिया बंधोदया, जाणि कम्माणि बज्झंति तेसिं छसु आवलियासु गदासु उदीरणा, मोहणीयस्स आणुपुव्वीसंकमो, लोभसंजलणस्स असंकमो च जादो[4] । तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु

बंधती है उनकी आवाधाको लांघकर जो जघन्य निषेकस्थिति है उसे आदि करके (द्वितीयस्थितिमें समवस्थित) बध्यमान स्थितियोंमें उस अन्तरस्थितियोंमें उत्कीर्ण किये जानेवाले प्रदेशाग्रको उत्कर्षण द्वारा देता है। पश्चात् अनुभागकांडकसहस्रोंके वीत जानेपर अन्य अनुभागकांडक, अन्तरकरणमें स्थितियोंके उत्कीर्ण करते समय जो स्थितिबन्ध बांधा था तत्सम्बंधी स्थितिकांडक और अन्तरकरणकाल, ये एक साथ समाप्त किये जानेवाले समाप्त हो जाते हैं।

अन्तरकृत प्रथम समयमें, अर्थात् अन्तरकी अन्तिम फालिके गिरनेपर, आवृत्तकरणसंक्रामक अर्थात् नपुंसकवेदकी क्षपणामें उद्यत होता है (१) । उसी समय ही मोहनीयका संख्यात वर्षवाला स्थितिबन्ध है (२) । मोहनीयका एक स्थान (लता) वाला बन्ध और उदय (३-४), जो कर्म बंधते है उनकी छह आवलियोंके वीतनेपर उदीरणा (५), मोहनीयका आनुपूर्वीसंक्रमण (६), और लोभके संक्रमणका अभाव (७) हो जाता है। अर्थात् उस समय जीव इन सात करणोंका प्रारम्भक होता है। पश्चात् संख्यात स्थितिकांडकसहस्रोंके वीत जानेपर संक्रमणको प्राप्त कराया जानेवाला

---

१ ण केवलं वेदिज्जमाणाणं पढमट्ठिदीए चेव संछुहदि किंतु बज्झमाणचदुसंजलणपुरिसवेदपयडीणं तक्कालियबंधस्स जा आवाहा अंतरायामादो संखेज्जगुणमद्धाणमुवरिं चडिदूण ट्ठिदा तमइच्छिदूण बंधपढमणिसेयमादिं कादूण बज्झमाणियासु ट्ठिदीसु विदियट्ठिदीए समवट्ठिदासु तमंतरट्ठिदीसु उक्कीरिज्जमाणपदेसग्गमुक्कड्डणावसेण संछुहदि त्ति भणिदं होदि। जयध. अ. प. १०८०. उक्कीरिदं तु दव्वं संते पढमट्ठिदिम्हि संछुहदि। बंधे वि य आवाधमदित्थिय उक्कट्टदे णियमा ॥ लब्धि. ४३५.

२ जम्हि समए अंतरचरिमफाली णिवदिदा तम्हि समए अंतरं पढमसमयकदं भण्णदे, तदणंतरसमए पुण अंतरं दुसमयकदं णाम भवदि। जयध. अ. प. १०८०.

३ तत्थ णवुंसयवेदस्स आउत्तकरणसंकामगो त्ति भणिदे णवुंसयवेदस्स खवणाए अब्भुट्ठिदो होदूण पयट्टो त्ति भणिदं होदि। जयध. अ. प. १०८०.

४ सत्त करणाणि यंतरकदपढमे ताणि मोहणीयस्स । इगिठाणियबंधुदओ तस्सेव य संखवस्सठिदिबंधो ॥ तस्साणुपुव्विसंकम लोहस्स असंकमं च संढस्स । आउत्तकरणसंकम छावलितीदेसुदीरणदा ॥ लब्धि. ४३६-४३७.

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

गदेसु णउंसयवेदो संकामिज्जमाणो संकामिदो पुरिसवेदे[1]। कुदो? अणुपुव्विसंकमत्तादो। एत्थुवउज्जंती गाहा—

> संछुहइ पुरिसवेदे इत्थीवेदं णवुंसयं चेव ।
> सत्तेव णोकसाए णियमा कोहम्मि संछुहइ[2] ॥ २४ ॥

संकामिज्जमाणदव्वमाहप्पपरूवणा गाहा—

> बंधेण होदि उदओ अहिओ उदएण संकमो अहिओ ।
> गुणसेडि असंखेज्जा पदेसअग्गेण बोद्धव्वा[3] ॥ २५ ॥

णवुंसयवेदं संकामेंतो पढमसमए थोवं पदेसग्गं संकामेदि । विदियसमए असंखेज्जगुणं । एवं जाव संकामगचरिमसमओ त्ति । णवुंसयवेदोदएण चडिदस्स समए समए असंखेज्जगुणाए सेडीए पदेसग्गस्स णिज्जरा होदि । वुत्तं च—

नपुंसकवेद पुरुषवेदमें संक्रमणको प्राप्त हो जाता है, क्योंकि यहां आनुपूर्वीसंक्रमण है। यहां उपयुक्त गाथा—

स्त्रीवेद और नपुंसकवेदको पुरुषवेदमें, तथा पुरुषवेद व हास्यादि छह, इन सात नोकषायोंको संज्वलनक्रोधमें नियमसे स्थापित करता है ॥ २४ ॥

संक्रमणको प्राप्त होनेवाले द्रव्यके माहात्म्यका प्ररूपण करनेवाली गाथा—

बंधसे उदय अधिक है और उदयसे संक्रमण अधिक होता है। इनकी अधिकता प्रदेशाग्रसे असंख्यातगुणित श्रेणीरूप जानना चाहिये। अर्थात् बंधद्रव्यसे उदयद्रव्य असंख्यातगुणा है और उदयद्रव्यसे संक्रमणद्रव्य असंख्यातगुणा है ॥ २५ ॥

नपुंसकवेदको संक्रमाता हुआ प्रथम समयमें स्तोक प्रदेशाग्रका संक्रमण कराता है, द्वितीय समयमें असंख्यातगुणे प्रदेशाग्रका संक्रमण कराता है। इस प्रकार यह क्रम संक्रमणके अन्तिम समय तक रहता है। नपुंसकवेदके उदयके साथ श्रेणी चढ़े हुए जीवके प्रत्येक समयमें असंख्यातगुणित श्रेणीके अनुसार प्रदेशाग्रकी निर्जरा होती है। कहा भी है—

---

१ ठिदिबंधसहस्सगदे संढो संकामिदो हवे पुरिसे। पडिसमयमसंखगुणं संकामगचरिससमओ त्ति ॥ लब्धि. ४४०.

२ लब्धि. ४३८; जयध. अ. प. १०९०.

३ लब्धि. ४४१. एत्थ गुणसेडि त्ति वुत्ते गुणगारपंत्ती गहेयव्वा । ××× पदेसग्गेण बंधो थोवो उदयो असंखेज्जगुणो संकमो असंखेज्जगुणो । पदेसग्गेण णिहालिज्जमाणे बंधोदयसंकमाणं समाणकालभावीणं थोवबहुत्तमेवं होदि त्ति वुत्तं होदि । जयध. अ. प. १०९२.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

गुणसेडिअसंखेज्जा पदेसअग्गेण संकमो उदओ ।
से काले से काले भज्जो बंधो पदेसग्गे[1] ॥ २६ ॥

एवं णवुंसयवेदं संकामिय तदो से काले इत्थिवेदस्स पढमसमयसंकामगो जादो । ताधे अण्णो ट्ठिदिखंडओ[2], अण्णो अणुभागखंडओ, अण्णो ट्ठिदिबंधो च पारद्धो[3] । तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण इत्थिवेदक्खवणद्धाए संखेज्जदिभागे गदे णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं संखेज्जवस्सट्ठिदिओ बंधो जादो । तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण इत्थिवेदस्स जं ट्ठिदिसंतकम्मं तं सव्वमागाइदं । सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मस्स असंखेज्जा भागा आगाइदा । तम्हि ट्ठिदिखंडए पुण्णे इत्थिवेदो संछुहमाणो संछुद्धो[4] । ताधे चेव मोहणीयस्स संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ट्ठिदिसंतकम्मं जादं ।

संक्रमण (गुणसंक्रमण) और उदय उत्तरोत्तर अनन्तर कालमें अपने अपने प्रदेशाग्रकी अपेक्षा असंख्यातगुणित श्रेणीरूप होते हैं । किन्तु प्रदेशाग्रकी अपेक्षा बन्ध भजनीय है, अर्थात् वह योगोंकी हानि, वृद्धि व अवस्थानके अनुसार हानि, वृद्धि या अवस्थानरूप होता है ॥ २६ ॥

इस प्रकार नपुंसकवेदको संक्रमाकर तदनन्तर कालमें स्त्रीवेदका प्रथमसमयवर्ती संक्रामक होता है । उस समयमें अन्य स्थितिकांडक, अन्य अनुभागकांडक और अन्य स्थितिबन्धका प्रारम्भ करता है । पश्चात् स्थितिकांडकपृथक्त्वसे स्त्रीवेदके क्षपणाकालमें संख्यातवें भागके व्यतीत होनेपर ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय, इनका संख्यात वर्षमात्र स्थितिवाला बन्ध होता है । पश्चात् स्थितिकांडकपृथक्त्वसे स्त्रीवेदका जो स्थितिसत्व है वह सब क्षपणामें आकर प्राप्त हो जाता है । शेष कर्मोंके स्थितिसत्वके असंख्यात बहुभाग प्राप्त होते हैं । उस स्थितिकांडकके पूर्ण होनेपर संक्रमणको प्राप्त कराया जानेवाला स्त्रीवेद संक्रमणको प्राप्त हो जाता है । उसी समय ही मोहनीयका स्थितिसत्व संख्यात वर्षप्रमाण रह जाता है ।

१ लब्धि. ४४२. गुणसेढिअसंखेज्जा च एवं भणिदे पदेसग्गेण णिहालिज्जमाणे संकमो उदओ च णियमा असंखेज्जाए सेडीए पयट्टदि त्ति घेत्तव्वं । जयध. अ. प. १०९४. से काले से काले भणिदे वीप्सानिर्देशोऽयं द्रष्टव्यः, अथवा एक्को सेकालणिद्देसो गाहापुव्वद्धणिद्दिट्ठाणमुदयसंकमाणं विसेसणभावेण संबंधणिज्जो, अण्णो पच्छद्धणिद्दिट्ठस्स बंधस्स विसेसणभावेण जोजेयव्वो । भज्जो बंधो पदेसग्गे एवं भणिदे पदेसग्गविसओ बंधो चउव्विहवड्ढिहाणिअवट्ठाणेहि भजियव्वो त्ति भणिदं होई, जोगवड्ढिहाणिअवट्ठाणवसेण पदेसबंधस्स तहा भावसिद्धीए विरोहाभावादो । जयध. अ. प. १०९५.

२ प्रतिषु 'ट्ठिदिबंधओ' इति पाठः ।

३ इदि संढं संकामिय से काले इत्थिवेदसंकमगो । अण्णं ठिदिरसखंडं अण्णं ठिदिबंधमारभइ ॥ लब्धि. ४४३.

४ थी अद्धासंखेज्जाभागे पगदे तिघादिठिदिबंधो । वस्साणं संखेज्जं थीसंकंतापगद्धंते ॥ लब्धि ४४४.

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

से काले सत्तण्हं णोकसायाणं पढमसमयसंकामओ[1] । सत्तण्हं णोकसायाणं पढमसमयसंकामयस्स ट्ठिदिबंधो मोहणीयस्स थोवो । णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ[2] । ताधे ट्ठिदिसंतकम्मं मोहणीयस्स थोवं । तिण्हं घादिकम्माणमसंखेज्जगुणं । णामा-गोदाणं ट्ठिदिसंतकम्मं असंखेज्जगुणं । वेदणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं विसेसाहियं[3] । पढमट्ठिदिखंडए पुण्णे मोहणीयट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणहीणं, सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जगुणहीणं[4] । (ट्ठिदि-) बंधो णामा-गोद-वेदणीयाणं असंखेज्जगुणहीणो, घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणहीणो[5] । तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्ते[6] गदे सत्तण्हं णोकसायाणं खवणद्धाए संखेज्जदिभागे गदे णामा-गोद-वेदणीयाणं संखेज्जाणि वस्साणि ट्ठिदिबंधो जादो[7] । तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्ते गदे सत्तण्हं णोकसायाणं खवणद्धाए

अनन्तर समयमें सात नोकषायोंका प्रथमसमयवर्ती संक्रामक होता है । सात नोकषायोंके प्रथमसमयवर्ती संक्रामकके मोहनीयका स्थितिबन्ध स्तोक; ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय, इनका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा; नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा, और वेदनीयका स्थितिबन्ध विशेष अधिक होता है । उस समयमें मोहनीयका स्थितिसत्व स्तोक, तीन घातिया कर्मोंका असंख्यातगुणा, नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिसत्व असंख्यातगुणा, और वेदनीयका स्थितिसत्व विशेष अधिक है । प्रथम स्थितिकांडकके पूर्ण होनेपर मोहनीयका स्थितिसत्व संख्यातगुणा हीन और शेष कर्मोंका स्थितिसत्व असंख्यातगुणा हीन हो जाता है । नाम, गोत्र और वेदनीय, इनका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा हीन तथा घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा हीन होता है । पश्चात् स्थितिकांडकपृथक्त्वके बीतनेपर सात नोकषायोंके क्षपणकालमेंसे संख्यातवें भागके चले जानेपर नाम, गोत्र व वेदनीय, इनका संख्यात वर्षमात्र स्थितिबन्ध होता है । पश्चात् स्थितिकांडकपृथक्त्वके बीतनेपर सात नोकषायोंके क्षपण-

१ ताहे संखसहस्सं वस्साणं मोहणीयठिदिसंतं । से काले संकमगो सत्तण्हं णोकसायाणं ॥ लब्धि. ४४५.

२ ताहे मोहो थोवो संखेज्जगुणं तिघादिठिदिबंधो । तत्तो असंखगुणियो णामदुगं साहियं तु वेयणियं ॥ लब्धि. ४४६.

३ ताहे असंखगुणियं मोहादु तिघादिपयडिठिदिसंतं । तत्तो असंखगुणियं णामदुगं साहियं तु वेयणियं ॥ लब्धि. ४४७.

४ सत्तण्हं पढमट्ठिदिखंडे पुण्णे दु मोहठिदिसंतं । संखेज्जगुणविहीणं सेसाणमसंखगुणहीणं ॥ लब्धि. ४४८.

५ सत्तण्हं पढमट्ठिदिखंडे पुण्णे ति घादिठिदिबंधो । संखेज्जगुणविहीणं अघादितियाणं असंखगुणहीणं ॥ लब्धि. ४४९.

६ अ-आप्रत्योः ' ट्ठिदिखंडयमपुधत्ते ' इति पाठः ।

७ ठिदिबंधपुधत्तगदे संखेज्जदिमं गतं तदद्धाए । एत्थ अघादितियाणं ठिदिबंधो संखवस्सं तु ॥ लब्धि. ४५०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संखेज्जेसु भागेसु गदेसु णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं संखेज्जवस्सट्ठिदिगं संतकम्मं जादं[1]। तत्तो पाएण घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधे ट्ठिदिखंडए च पुण्णे पुण्णे ट्ठिदिबंध-ट्ठिदिसंतकम्माणि संखेज्जगुणहीणाणि। णामा-गोद-वेदणीयाणं पुण्णे ट्ठिदिखंडए असंखेज्जगुणहीणं ट्ठिदिसंतकम्मं। एदेसिं चेव ट्ठिदिबंधे पुण्णे अण्णो ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणहीणो। एदेण कमेण ताव जाव सत्तण्हं णोकसायाणं संकामगस्स चरिमट्ठिदिबंधो त्ति। अणुभागबंधो अणुभागुदओ च समयं पडि असुहाणं कम्माणमणंतगुणहीणो[2]। वुत्तं च—

उदओ च अणंतगुणो संपहिबंधेण होदि अणुभागे।
से काले उदयादो संपदिबंधो अणंतगुणो[3] ॥ २७ ॥

बंधेण होदि उदओ अहिओ उदएण संकमो अहिओ।
गुणसेडि अणंतगुणा बोद्धव्वा होदि अणुभागे[4] ॥ २८ ॥

कालमेंसे संख्यात बहुभागोंके चले जानेपर ज्ञानावरण, दर्शनावरण व अन्तराय इनका संख्यात वर्षमात्र स्थितिवाला सत्व हो जाता है। यहांसे लेकर घातिया कर्मोंके प्रत्येक स्थितिबन्ध और स्थितिकांडकके पूर्ण होनेपर स्थितिबन्ध एवं स्थितिसत्व संख्यातगुणे हीन होते जाते हैं। स्थितिकांडकके पूर्ण होनेपर नाम, गोत्र व वेदनीय, इनका स्थितिसत्व असंख्यातगुणा हीन होता जाता है। इनके ही स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर अन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा हीन होता जाता है। इस क्रमसे तब तक जाते हैं जब तक कि सात नोकषायोंके संक्रामकका अन्तिम स्थितिबन्ध होता है। अशुभ कर्मोंका अनुभागबन्ध व अनुभागोदय प्रत्येक समयमें अनन्तगुणा हीन होता है। कहा भी है—

अनुभागविषयक साम्प्रतिक बन्धसे साम्प्रतिक अनुभागोदय अनन्तगुणा होता है। इससे अनन्तर कालमें होनेवाले उदयसे साम्प्रतिक बन्ध अनन्तगुणा होता था ॥२७॥

बन्धसे अधिक उदय और उदयसे अधिक संक्रमण होता है। इस प्रकार अनुभागके विषयमें अनन्तगुणित गुणश्रेणी जानना चाहिये ॥२८॥

---

१ ठिदिखंडपुधत्तगदे संखाभागा गदा तदद्धाए। घादितियाणं तत्थ य ठिदिसंतं संखवस्सं तु ॥ लब्धि. ४५१.

२ पडिसमयं असुहाणं रसबंधुदया अणंतगुणहीणा। बंधो वि य उदयादो तदणंतरसमय उदयोध ॥ लब्धि. ४५१.

३ उदओ च अणंतगुणो एवं भणिदे वट्टमाणसमयपबद्धादो वट्टमाणसमये उदओ अणंतगुणो त्ति दट्ठव्वो। किं कारणं? चिराणसंतसरूवत्तादो। ××× से काले उदयादो एवं भणिदे णिरुद्धसमयादो तदणंतरोवरिमसमए जो उदओ अणुभागविसओ, तत्तो एसो संपहिसमयपबद्धो अणंतगुणो त्ति दट्ठव्वो। कुदो एवं चे समए समए अणुभागोदयस्स विसोहिपाहम्मेणाणंतगुणहाणीए ओवट्टिज्जमाणस्स तहाभावोववत्तीए। जयध. अ. प. १०९३.

४ लब्धि. ४५३; जयध. अ. प. १०९२.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

गुणसेडि अणंतगुणेणूणाए वेदगो दु अणुभागे ।
गणणादियंतसेडी पदेसअग्गेण बोद्धव्वा[1] ॥ २९ ॥
बंधोदएहि णियमा अणुभागो होदि णंतगुणहीणो ।
से काले से काले भज्जो पुण संकमो होदि[2] ॥ ३० ॥

सत्तण्हं णोकसायाणं संकामगस्स चरिमो ट्ठिदिबंधो पुरिसवेदस्स अट्ठ वस्साणि, संजलणाणं सोलस वस्साणि, सेसाणं कम्माणं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि[3] । ट्ठिदिसंतकम्मं पुण घादिकम्माणं चदुण्हं पि संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि, णामा-गोद-वेदणीयाणमसंखेज्जाणि वस्साणि[4] । अंतरादो पढमसमयकदादो पाए छण्णोकसाए कोहे संछुहदि, ण

(अप्रशस्त प्रकृतियोंके) अनुभागका वेदक अनन्तगुणित हीन गुणश्रेणीरूपसे होता है। तथा प्रदेशाग्रकी अपेक्षा गणनातिक्रान्त अर्थात् असंख्यातगुणी श्रेणीरूपसे वेदक होता है, ऐसा जानना चाहिये ॥२९॥

नियमतः बन्ध व उदयसे अनुभाग अर्थात् अनुभागबन्ध और अनुभागउदय उत्तरोत्तर अनन्तरकालमें अनन्तगुणे हीन हैं। परन्तु अनुभागसंक्रम भाज्य है अर्थात् उक्त हीनताके नियमसे रहित है ॥३०॥

सात नोकषायोंके संक्रामकका अन्तिम स्थितिबन्ध पुरुषवेदका आठ वर्ष, संज्वलनचतुष्कका सोलह वर्ष, और शेष कर्मोंका संख्यात वर्षप्रमाण होता है। परन्तु स्थितिसत्व चारों घातिया कर्मोंका संख्यात वर्ष तथा नाम, गोत्र व वेदनीय, इनका असंख्यात वर्षप्रमाण रहता है। प्रथम समयकृत अन्तरसे, अर्थात् अन्तरकरण कर चुकनेके पश्चात् अनन्तर समयसे लेकर छह नोकषायोंको संज्वलनक्रोधमें स्थापित करता है, अन्य

१ लब्धि. ४५४. तदो समये समये अणंतगुणहीणमणंतगुणहीणमपसत्थकम्माणमणुभागमेसो वेदयदि त्ति गाहापुव्वद्धे समुदयत्थो। ××× गणणादियंतसेढी एवं भणिदे असंखेज्जगुणाए सेढीए पदेसग्गमेसो समयं पडि वेदेदि त्ति भणिदं होई। जयध. अ. प. १०९३.

२ लब्धि. ४५५. बंधोदएहिं एवं भणिदे बंधोदयेहि तात्र णियमा णिच्छएण अणुभागो सेकालभाविओ अणंतगुणहीणो होदि त्ति पदसंबंधो। संपहियकालविसयादो अणुभागबंधादो से काले विसओ अणुभागबंधो विसोहिपाहम्मेणाणंतगुणहीणो होदि। एवमुदओ वि दट्ठव्वो त्ति भणिदं होदि। भज्जो पुण संकमो होई एवं भणिदे अणुभागसंकमो पुण अणंतगुणहीणत्ते भयणिज्जो होई। किं कारणं ? जाव अणुभागखंडयं ण पादेदि ताव अवट्ठिदो चेव संकमो भवदि, अणुभागखंडए पुण पदिदे अणुभागसंकमो अणंतगुणहीणो जायदि त्ति तत्थ परिप्फुडमेव भयणिज्जत्तदंसणादो। जयध. अ. प. १०९४.

३ सत्तण्हं संकामगचरिमे पुरिसस्स बंधमट्ठवस्सं। सोलस संजलणाणं संखसहस्साणि सेसाणं ॥ लब्धि. ४५७.

४ ठिदिसंतं घादीणं संखसहस्साणि होंति वस्साणं। होंति अघातिदियाणं वस्साणमसंखमेत्ताणि ॥ लब्धि. ४५८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अण्णम्हि कम्हि[1] वि । पुरिसवेदस्स पढमट्ठिदीए दोआवलियासु सेसासु आगाल-पडिआगालो वोच्छिण्णो । पढमट्ठिदीदो चेव उदीरणा[2] । समयाहियाए आवलियाए सेसाए जहण्णिया ट्ठिदिउदीरणा । तदो चरिमसमयपुरिसवेदओ जादो । ताधे छण्णोकसाया[3] संछुद्धा । पुरिसवेदस्स जाओ दोआवलियाओ समऊणाओ एत्तियसमयपबद्धा विदियट्ठिदीए अत्थि, उदयट्ठिदी च अत्थि[4], सेसं पुरिसवेदस्स संतकम्मं सव्वं संछुद्धं ।

से काले अस्सकण्णकरणं पव्वत्तिहिदि । अस्सकण्णकरणेत्ति वा आदोलकरणेत्ति वा ओवट्टण-उव्वट्टणकरणेत्ति वा तिण्णि णामाणि अस्सकण्णकरणस्स[5] । छसु कम्मेसु

किसीमें भी स्थापित नहीं करता । पुरुषवेदकी प्रथमस्थितिमें दो आवलियोंके शेष रहनेपर आगाल व प्रत्यागालकी व्युच्छित्ति हो जाती है । प्रथमस्थितिसे ही उदीरणा होती है । एक समय अधिक आवलीके शेष रहनेपर जघन्य स्थितिकी उदीरणा होती है । तत्पश्चात् अन्तिमसमयवर्ती पुरुषवेदक होता है । उस समय छह नोकषायें संक्रमको प्राप्त हो चुकती हैं । पुरुषवेदकी जो एक समय कम दो आवलियां हैं उतनेमात्र नवक समयप्रबद्ध द्वितीय स्थितिमें हैं और उदयस्थिति भी है; शेष सब पुरुषवेदका सत्व संक्रमणको प्राप्त हो चुकता है ।

तदनन्तर समयमें अश्वकर्णकरण प्रवृत्त होता है । अश्वकर्णकरण अथवा आदोलकरण अथवा अपवर्तनोद्वर्तनकरण, ये अश्वकरणके तीन नाम हैं । छह कर्मोंके संक्रमको

---

१ अंतरकदपढमादो कोहे छण्णोकसायगं छुहदि । पुरिसस्स चरिमसमए पुरिस त्ति एणेण सव्वयं छुहदि ॥ लब्धि. ४६०.

२ पुरिसस्स य पढमट्ठिदि आवलिदोसुवरिदासु आगाला । पडिआगाला छिण्णा पडिआवलियादुदीरणदा ॥ लब्धि. ४५३.

३ प्रतिपु ' छण्णोकसायाणं ' इति पाठः ।

४ समऊणदोण्णिआवलिपमाणसमयप्पबद्धणवबंधो । विदिये ठिदिये अत्थि हु पुरिसस्सुदयावली च तदा ॥ लब्धि. ४६१.

५ से काले ओवट्टणि उव्वट्टण अस्सकण्ण आदोलकरणं तियसण्णगयं संजलणरसेसु वट्टिहिदि ॥ लब्धि. ४६२. अश्वस्य कर्णः अश्वकर्णः, अश्वकर्णवत्करणमश्वकर्णकरणम् । यथाश्वकर्णः अग्रात्प्रभृत्यामूलात् क्रमेण हीयमानस्वरूपो दृश्यते तथेदमपि करणं क्रोधसंज्वलनात् प्रभृत्यालोभसंज्वलनाद्यथाक्रममनन्तगुणहीनानुभागस्पर्द्धकसंस्थानव्यवस्थाकरणमश्वकर्णकरणमिति लक्ष्यते । संपहि आदोलनकरणसण्णाए अत्थो वुच्चदे-- आदोलं णाम हिंदोलमादोलमिवकरणमादोलकरणं । यथा हिंदोलत्थंभस्स वरत्ताए च अंतराले तिकोणं होदूण कण्णायारेण दीसइ, एवमेत्थवि कोहादिसंजलणाणमणुभागसंणिवेसो कमेण हीयमाणो दीसइ त्ति एदेण कारणेण अस्सकण्णकरणस्स आदोलकरणसण्णा जादा । एवमोवट्टणुव्वट्टणकरणेत्ति एसो वि पज्जायसद्दो अणुगयट्ठो दट्ठव्वो, कोहादिसंजलणाणमणुभागविण्णासस्स हाणिवड्डिसरूवेणावट्ठाणं पेक्खिदूण तत्थ ओवट्टणुव्वट्टणसण्णाए पुव्वाइरिएहिं पयट्टाविदत्तादो । जयध. अ. प. ११०४-११०५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संछुद्धेसु से काले पढमसमयअवेदो होदि। ताधे चेव पढमसमयअस्सकण्णकरणकारओ च। ताधे ट्ठिदिसंतकम्मं संजलणाणं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि, ट्ठिदिबंधो सोलस वस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि[1]। अणुभागसंतकम्मं आगाइदेण[2] सह माणे थोवं, कोधे विसेसाहियं, मायाए विसेसाहियं, लोभे विसेसाहियं। बंधो वि एरिसो चेव[3]। अणुभागखंडगो पुण जो आगाइदो तस्स कोधे फद्दयाणि थोवाणि, (माणे फद्दयाणि) विसेसाहियाणि, मायाए फद्दयाणि विसेसाहियाणि, लोभे फद्दयाणि विसेसाहियाणि। आगाइदसेसाणि फद्दयाणि लोभे थोवाणि, मायाए अणंतगुणाणि, माणे अणंतगुणाणि, कोधे अणंतगुणाणि[4]। एसा परूवणा पढमसमयअस्सकण्णकरणकारयस्स।

तम्हि चेव पढमसमए चदुण्हं संजलणाणमपुव्वफद्दयाणि करेदि[5]। तेसिं परूवणं

प्राप्त होनेपर अनन्तर कालमें प्रथमसमयवर्ती अवेदी होता है। उसी समयमें ही प्रथमसमयवर्ती अश्वकर्णकरणकारक भी होता है। उस समयमें संज्वलनचतुष्कका स्थितिसत्व संख्यात वर्षप्रमाण और स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त कम सोलह वर्षमात्र होता है। अश्वकर्णकरणको प्रारम्भ करनेवालेने जिस अनुभागकांडकको ग्रहण किया है उसके साथ तत्कालभावी अनुभागसत्वका यह अल्पबहुत्व किया जाता है— अनुभागसत्व मानमें स्तोक, क्रोधमें विशेष अधिक, मायामें विशेष अधिक और लोभमें विशेष अधिक है। अनुभागबन्ध भी इसी अल्पबहुत्वविधिसे प्रवर्तमान है। परन्तु जो अनुभागकांडक ग्रहण किया है उसके क्रोधमें स्पर्द्धक स्तोक हैं। मानमें स्पर्द्धक विशेष अधिक हैं। मायामें स्पर्द्धक विशेष अधिक हैं। लोभमें स्पर्द्धक विशेष अधिक हैं। ग्रहण करनेसे अर्थात् घात करनेसे शेष अनुभागके स्पर्द्धक लोभमें स्तोक, मायामें अनन्तगुणित, मानमें अनन्तगुणित और क्रोधमें अनन्तगुणित हैं। यह प्रथमसमयवर्ती अश्वकर्णकरणकारककी प्ररूपणा है।

उसी प्रथम समयमें चार संज्वलनकषायोंके अपूर्वस्पर्द्धकोंको करता है। उनकी

१ ताहे संजलणाणं ठिदिसंतं संखवस्सयसहस्सं। अंतोमुहुत्तहीणो सोलस वस्साणि ठिदिबंधो ॥ लब्धि. ४६३.

२ एत्थ सह आगाइदेणेत्ति वुत्ते अस्सकण्णकरणमाढवेंतेण जमणुभागखंडयमागाइदं तेण सह तक्कालभावियस्स अणुभागसंतकम्मस्स एदमप्पाबहुअं कीरदि त्ति भणिदं होदि ॥ जयध. अ. प. ११०५.

३ रससंतं आगहिदं खंडेण समं तु माणगे कोहे। मायाए लोभे वि य अहियकमा होंति बंधे वि ॥ लब्धि. ४६४.

४ रसखंडफड्डयाओ कोहादीया हवंति अहियकमा। अवसेसफड्डयाओ लोहादि अणंतगुणियकमा ॥ लब्धि. ४६५.

५ ताहे संजलणाणं देसावरफड्डयस्स हेट्ठादो। णंतगुणूणमपुव्वं फड्डयमिह कुणदि हु अणंतं ॥ लब्धि. ४६६. काणि अपुव्वफद्दयाणि णाम? संसारावत्थाए पुव्वमलद्धप्पसरूवाणि खवगसेडी (ए?) चेव अस्सकण्णकरणद्धाए समुवलब्भमाणसरूवाणि पुव्वफद्दएहिंतो अणंतगुणहाणीए ओवट्टिज्जमाणसहावाणि जाणि फद्दयाणि ताणि अपुव्वफद्दयाणि त्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वत्तइस्सामो । तं जहा— सव्वस्स अक्खवगस्स सव्वकम्माणं देसघादिफद्दयाणमादिवग्गणा तुल्ला । सव्वघादीणं पि मिच्छत्तं मोत्तूण सेसाणं कम्माणं सव्वघादिआदिवग्गणा तुल्ला । एत्थ चदुण्हं संजलणाणं अपुव्वफद्दयाणि करेदि । ताणि कधं करेदि ? लोभस्स ताव, लोभसंजलणस्स पुव्वफद्दएहिंतो पदेसग्गस्स असंखेज्जदिभागं घेत्तूण पढमस्स देसघादिफद्दयस्स हेट्ठा अणंतभागे अण्णाणि अपुव्वफद्दयाणि णिव्वत्तयदि[1] । ताणि पगणणादो अणंताणि, पदेसगुणहाणिट्ठाणंतरफद्दयाणमसंखेज्जदिभागो । एत्तियाणि ताणि अपुव्वफद्दयाणि[2] ।

तत्थ पढमस्स फद्दयस्स आदिवग्गणाए अविभागपलिच्छेदग्गं थोवं । विदियस्स फद्दयस्स आदिवग्गणाए अविभागपलिच्छेदग्गमणंतभागुत्तरं । विदियादो तदियं दुभागुत्तरं । तदियादो चउत्थं तिभागुत्तरं । एवं कमेण संखेज्जदिभागुत्तरं गंतूण पुणो असंखेज्जदि-

प्ररूपणाको कहते हैं । वह इस प्रकार है— सब अक्षपक जीवोंके समस्त कर्मोंके देशघाती स्पर्द्धकोंकी प्रथम वर्गणा समान है । सर्वघातियोंमें मिथ्यात्वको छोड़कर शेष सर्वघाती कर्मोंकी प्रथम वर्गणा समान है । यहां चार संज्वलनकषायोंके अपूर्वस्पर्द्धकोंको करता है ।

शंका— उन अपूर्वस्पर्द्धकोंको किस प्रकार करता है ?

समाधान— प्रथमतः लोभके अपूर्व स्पर्द्धकोंके विधानको कहते हैं— संज्वलन-लोभके पूर्वस्पर्द्धकोंसे प्रदेशाग्रके असंख्यातवें भागको ग्रहण कर प्रथम देशघाती स्पर्द्धकके नीचे अनन्तगुणहानिरूपसे अपवर्तित कर उसके अनन्तवें भागमें अन्य अपूर्व-स्पर्द्धकोंकी रचना करता है । वे अपूर्वस्पर्द्धक गणनासे अनन्त होते हुए भी प्रदेशगुण-हानिस्थानान्तरके भीतर जितने स्पर्द्धक हैं उनके असंख्यातवें भागमात्र हैं । वे अपूर्व-स्पर्द्धक इतने मात्र हैं ।

प्रथम समयमें निर्वर्तित अपूर्वस्पर्द्धकोंमेंसे प्रथम स्पर्द्धककी प्रथम वर्गणामें अविभागप्रतिच्छेद स्तोक हैं । द्वितीय स्पर्द्धककी प्रथम वर्गणामें अविभागप्रतिच्छेदोंका समूह अनन्त बहुभागसे अधिक है । द्वितीय स्पर्द्धककी प्रथम वर्गणासे तृतीय स्पर्द्धककी प्रथम वर्गणामें द्वितीय भाग अर्थात् आधेसे अधिक है । तृतीय स्पर्द्धककी प्रथम वर्गणासे चतुर्थ स्पर्द्धककी प्रथम वर्गणामें त्रिभागसे अधिक है । इस प्रकार क्रमसे संख्यात-भागोत्तरवृद्धिसे जाकर पुनः असंख्यातभागसे अधिक होता है । पुनः असंख्यात-

भण्णंते । जयध. अ. प. ११०६. वर्धमानं मतं पूर्वं हीयमानमपूर्वकम् । स्पर्धकं द्विविधं ज्ञेयं स्पर्धकक्रमकोविदैः ॥ पंचसंग्रह-अमितगतिकृत, १, ४६.

१ अप्रतौ ' व्वत्तयुदि ' आ-कप्रत्योः ' वत्तयुदि ' इति पाठः ।

२ गणनादेयपदेसगगुणहाणिट्ठाणफड्डयाणं तु । होदि असंखेज्जदिमं अवरादु वरं अणंतगुणं ॥ लब्धि. ४६७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भागुत्तरं होदि । पुणो असंखेज्जदिभागुत्तरं गंतूण[1] पुणो अणंतभागुत्तरं होदि । एवमणंतराणंतरेण गंतूण चरिमस्स वि फद्दयस्स आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदग्गं विसेसाहियमणंतभागेण ।

जाणि पढमसमए अपुव्वफद्दयाणि णिव्वत्तिदाणि तत्थ पढमस्स फद्दयस्स आदिवग्गणा थोवा । चरिमस्स अपुव्वफद्दयस्स आदिवग्गणा अणंतगुणा । पुव्वफद्दयस्स वि आदिवग्गणा अणंतगुणा । जहा लोभस्स अपुव्वफद्दयाणि परूविदाणि पढमसमए, तधा मायाए माणस्स कोधस्स य परूवेदव्वाणि ।

पढमसमए जाणि अपुव्वफद्दयाणि णिव्वत्तिदाणि तत्थ कोधस्स थोवाणि ।

भागोत्तरवृद्धिसे जाकर पुनः अनन्तवें भागसे अधिक होता है । इस प्रकार अनन्तर अनन्तररूपसे जाकर (द्विचरम स्पर्द्धककी प्रथम वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा) अन्तिम स्पर्द्धककी भी प्रथम वर्गणामें अविभागप्रतिच्छेदोंका समूह अनन्त भागसे विशेष अधिक है ।

विशेषार्थ—उपर्युक्त कथनका अभिप्राय इस प्रकार है—द्वितीय स्पर्द्धककी प्रथम वर्गणासे तृतीय स्पर्द्धककी प्रथम वर्गणा कुछ कम द्वितीय भागसे अधिक है, तृतीय स्पर्द्धककी प्रथम वर्गणासे चतुर्थ स्पर्द्धककी प्रथम वर्गणा कुछ कम तृतीय भागसे अधिक है, इस प्रकार जब तक जघन्य परीतासंख्यातप्रमाण स्पर्द्धकोंकी अन्तिम स्पर्द्धकवर्गणा अपने अनन्तर नीचेके स्पर्द्धककी प्रथम वर्गणासे उत्कृष्ट संख्यातवें भागसे अधिक होकर संख्यातभागवृद्धिके अंतको न प्राप्त हो जावे तब तक इसी प्रकार चतुर्थ-पंचम भागाधिक-क्रमसे ले जाना चाहिये । इससे आगे जब तक आदिसे लेकर जघन्य परीतानन्तप्रमाण स्पर्द्धकोंमें अन्तिम स्पर्द्धककी प्रथम वर्गणा अपने अनन्तर नीचेके स्पर्द्धककी प्रथम वर्गणासे उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातवें भागसे अधिक होकर असंख्यातभागवृद्धिके अन्तको न प्राप्त हो जावे तब तक असंख्यातभागोत्तरवृद्धिका क्रम चालू रहता है । इसके आगे अन्तिम अपूर्वस्पर्द्धक तक अनन्तभागवृद्धिका क्रम जानना चाहिये ।

प्रथम समयमें जो अपूर्वस्पर्द्धक निर्वर्तित हैं उनमें प्रथम स्पर्द्धककी प्रथम वर्गणा स्तोक और अन्तिम अपूर्वस्पर्द्धककी प्रथम वर्गणा अनन्तगुणी है । पूर्वस्पर्द्धककी भी आदिम वर्गणा अनन्तगुणी है । प्रथम समयमें जिस प्रकार लोभके अपूर्वस्पर्द्धकोंका प्ररूपण किया है उसी प्रकार माया, मान और क्रोधके भी अपूर्वस्पर्द्धकोंका प्ररूपण करना चाहिये ।

प्रथम समयमें जो अपूर्वस्पर्द्धक निर्वर्तित हैं उनमें क्रोधके अपूर्वस्पर्द्धक स्तोक,

१ प्रतिषु ' -भागुत्तरं गंतूण पुणो असंखेज्जदिभागुत्तरं होदि ' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माणस्स अपुव्वफद्दयाणि विसेसाहियाणि । मायाए अपुव्वफद्दयाणि विसेसाहियाणि । लोभस्स अपुव्वफद्दयाणि विसेसाहियाणि । विसेसो अणंतभागो[1] । तेसिं चेव पढमसमए णिव्वत्तिदाणमपुव्वफद्दयाणं लोभस्स आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदग्गं थोवं । मायाए आदिवग्गणाए अविभागपलिच्छेदग्गं विसेसाहियं । माणस्स आदिवग्गणाए अविभाग-पडिच्छेदग्गं विसेसाहियं । कोधस्स आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदग्गं विसेसाहियं । चदुण्हं पि कसायाणं जाणि अपुव्वफद्दयाणि तत्थ चरिमस्स अपुव्वफद्दयस्स आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदग्गं चदुण्हं पि कसायाणं तुल्लमणंतगुणं[2] । कोहादिचदुण्हं संजलणाणं जाओ आदिवग्गणाओ, तासिं परिवाडीए जहाकमेणेसा संदिट्ठी– २१०।१६८।१४०।१२०। कोहादीणं जहाकमेण अपुव्वफद्दयसलागाओ एदाओ– १२।१५।१८।२१।

मानके अपूर्वस्पर्द्धक विशेष अधिक, मायाके अपूर्वस्पर्द्धक विशेष अधिक, और लोभके अपूर्वस्पर्द्धक विशेष अधिक हैं। अधिकताका प्रमाण यहां अनन्तवां भाग है। प्रथम समयमें निर्वर्तित उन्हीं अपूर्वस्पर्द्धकोंमें लोभकी प्रथम वर्गणामें अविभागप्रतिच्छेदसमूह स्तोक है। मायाकी प्रथम वर्गणामें अविभागप्रतिच्छेदसमूह विशेष अधिक है। मानकी प्रथम वर्गणामें अविभागप्रतिच्छेदसमूह विशेष अधिक है। क्रोधकी प्रथम वर्गणामें अविभागप्रतिच्छेदसमूह विशेष अधिक है। चारों ही कषायोंके जो अपूर्वस्पर्द्धक हैं उनमें अन्तिम अपूर्वस्पर्द्धककी प्रथम वर्गणामें अविभागप्रतिच्छेदोंका समूह चारों ही कषायोंके तुल्य अनन्तगुणा है। क्रोधादिरूप चारों संज्वलनोंकी जो प्रथम वर्गणायें हैं उनकी परि-पाटीमें यथाक्रमसे यह संदृष्टि है— २१०। १६८। १४०। १२०। क्रोधादिकोंकी यथाक्रमसे अपूर्वस्पर्द्धकशलाकायें ये हैं— १२। १५। १८। २१।

विशेषार्थ—अपूर्वस्पर्द्धकोंमें प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके अविभागप्रति-च्छेदोंको स्पर्द्धकशलाकासे गुणा कर देनेपर अन्तिम स्पर्द्धककी आदि वर्गणाके अवि-भागप्रतिच्छेदोंका प्रमाण आता है, जो सब कषायोंका तुल्य होता है तथा आदिम वर्गणाकी अपेक्षा अनन्तगुणा है।

	क्रोध	मान	माया	लोभ
आदि वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेद	२१०	१६८	१४०	१२०
अपूर्वस्पर्धक शलाका	×१२	×१५	×१८	×२१
अन्तिम स्पर्द्धककी आदि वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेद ...	२५२०	२५२०	२५२०	२५२०

---

१ पुव्वाण फड्डयाणं छेत्तूण असंखभागदव्वं तु । कोहादीणमपुव्वं फड्डयमिह कुणदि अहियकमा ॥ लब्धि. ४६८.

२ कोहादीणमपुव्वं जेट्ठं सरिसं तु अवरमसरित्थं । लोहादिआदिवग्गणअविभागा होंति अहियकमा ॥ लब्धि. ४७१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पढमसमयअस्सकण्णकरणकारयस्स जं पदेसग्गमोकड्डिज्जदि तेण[1] कम्मस्स अवहारकालो थोवो। अपुव्वफद्दएहि पदेसगुणहाणिट्ठाणंतरस्स अवहारकालो असंखेज्जगुणो। पलिदोवमवग्गमूलमसंखेज्जगुणं[2]। पढमसमए णिव्वत्तिज्जमाणएसु अपुव्वफद्दएसु पुव्वफद्दएहिंतो ओकड्डिदूण पदेसग्गमपुव्वफद्दयाणमादिवग्गणाए बहुगं देदि। विदियाए वग्गणाए विसेसहीणं देदि। एवमणंतराणंतरेण गंतूण चरिमाए अपुव्वफद्दयवग्गणाए विसेसहीणं देदि। तदो चरिमादो अपुव्वफद्दयवग्गणादो पढमस्स पुव्वफद्दयस्स आदिवग्गणाए असंखेज्जगुणहीणं देदि। तदो विदियाए पुव्वफद्दयवग्गणाए विसेसहीणं देदि। सेसासु सव्वासु पुव्वफद्दयवग्गणासु विसेसहीणं देदि[3]। तम्हि चेव पढमसमए जं दिस्सदि पदेसग्गं तमपुव्वफद्दयाणं पढमाए वग्गणाए बहुअं, पुव्वफद्दयआदिवग्गणाए विसेसहीणं। जहा लोभस्स तहा मायाए माणस्स कोधस्स च।

उदयपरूवणा। तं जहा– पढमसमए चेव अपुव्वफद्दयाणि उदिण्णाणि च अणु-

---

प्रथमसमयवर्ती अश्वकर्णकरणका करनेवाला जिस प्रदेशाग्रको अपकर्षित करता है उसके प्रमाणसे कर्मका अवहारकाल स्तोक है। अपूर्वस्पर्द्धकोंसे प्रदेशगुणहानिस्थानान्तरका अवहारकाल असंख्यातगुणा है। पल्योपमका वर्गमूल असंख्यातगुणा है। (अर्थात् अपकर्षण-उत्कर्षणभागहारसे असंख्यातगुणे और पल्योपमके प्रथम वर्गमूलसे असंख्यातगुणे हीन पल्योपमके असंख्यातवें भागसे एक प्रदेशगुणहानिस्थानान्तरके स्पर्द्धकोंके अपवर्तित करनेपर जो भाग लब्ध हो उतनेमात्र संज्वलनक्रोधादिकोंके स्पर्द्धक होते हैं।) प्रथम समयमें निर्वर्तित किये जानेवाले अपूर्वस्पर्द्धकोंमें पूर्वस्पर्द्धकोंसे अपकर्षण करके प्रदेशाग्रको अपूर्वस्पर्द्धकोंकी प्रथम वर्गणामें बहुत देता है। द्वितीय वर्गणामें विशेष हीन देता है। इस प्रकार अनन्तर-अनन्तररूपसे जाकर अन्तिम अपूर्वस्पर्द्धकवर्गणामें विशेष हीन देता है। उस अन्तिम अपूर्वस्पर्द्धकवर्गणासे प्रथम पूर्वस्पर्द्धककी प्रथम वर्गणामें असंख्यातगुणा हीन देता है। उससे द्वितीय पूर्वस्पर्द्धकवर्गणामें विशेष हीन देता है। शेष सब पूर्वस्पर्द्धकवर्गणाओंमें विशेष हीन देता है। उसी प्रथम समयमें जो प्रदेशाग्र दिखता है वह अपूर्वस्पर्द्धकोंकी प्रथम वर्गणामें बहुत और पूर्वस्पर्द्धकोंकी प्रथम वर्गणामें विशेष हीन है। पूर्व व अपूर्व स्पर्द्धकोंमें दिये जानेवाले प्रदेशाग्रकी यह श्रेणिप्ररूपणा जैसे लोभकी की गई है वैसे ही माया, मान, और क्रोधकी भी जानना चाहिये।

उसी अश्वकर्णकरणकालके प्रथम समयमें चार संज्वलनकषायोंके अनुभागोदयकी प्ररूपणा की जाती है। वह इस प्रकार है— प्रथम समयमें ही अपूर्वस्पर्द्धक उदीर्ण

---

१ प्रतिषु '-मोकड्डिज्जं तेण' इति पाठः।

२ ताहे दव्ववहारो पदेसगुणहाणिफड्डयवहारो। पल्लस्स पढममूलं असंखगुणियक्कमा होंति॥ लब्धि. ४७५.

३ उक्कट्टिदं हु देदि अपुव्वादिमवग्गणाउ हीणकमं। पुव्वादिवग्गणाए असंखगुणहीणयं तु हीणकमा॥ लब्धि ४७०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिण्णाणि च। पुव्वफद्दयाणं पि आदीदो अणंतभागो उदिण्णो च अणुदिण्णो च, उवरिमअणंता भागा अणुदिण्णा। बंधेण णिव्वत्तिज्जंति अपुव्वफद्दयं पढममादिं[1] कादूण जाव लदासमाणफद्दयाणमणंतिमभागो त्ति[2]। एसा सव्वा परूवणा पढमसमयअस्सकण्णकरणकारयस्स। एत्तो विदियसमए तं चेव ट्ठिदिखंडयं, तं चेव अणुभागखंडयं, सो चेव ट्ठिदिबंधो। अणुभागबंधो अणंतगुणहीणो। गुणसेडी असंखेज्जगुणा। अपुव्वफद्दयाणि जाणि पढमसमए णिव्वत्तिदाणि विदियसमए ताणि च णिव्वत्तयदि अण्णाणि च अपुव्वफद्दयाणि तदो असंखेज्जगुणहीणाणि।

विदियसमए अपुव्वफद्दएसु दिज्जमाणस्स पदेसग्गस्स सेडिपरूवणं वत्तइस्सामो। तं जहा– विदियसमए अपुव्वफद्दयाणमादिवग्गणाए पदेसग्गं बहुअं दिज्जदि, विदियाए वग्गणाए विसेसहीणं दिज्जदि। एवमणंतरोवणिधाए विसेसहीणं दिज्जदि ताव जाव जाणि विदियसमए अपुव्वाणि अपुव्वफद्दयाणि कदाणि तेसिं चरिमादो वग्गणादो त्ति। तदो चरिमादो वग्गणादो पढमसमए[3] जाणि अपुव्वाणि फद्दयाणि कदाणि तेसिमादिवग्गणाए दिज्जदि पदेसग्गमसंखेज्जगुणहीणं। तदो विदियाए वग्गणाए विसेसहीणं दिज्जदि। तत्तो पाए अणंतरो-

---

भी हैं और अनुदीर्ण भी हैं। पूर्वस्पर्द्धकोंका भी आदिसे अनन्तवां भाग उदीर्ण और अनुदीर्ण, तथा उपरिम अनन्त बहुभाग अनुदीर्ण हैं। अनुभागबन्धसे प्रथम अपूर्वस्पर्द्धकको आदि करके लतासमान स्पर्द्धकोंके अनन्तवें भाग तक स्पर्द्धक रचे जाते हैं। यह सब प्ररूपणा प्रथम समय अश्वकर्णकरणकारककी है। यहांसे द्वितीय समयमें वही स्थितिकांडक, वही अनुभागकांडक और वही स्थितिबन्ध भी है। अनुभागबन्ध अनन्तगुणा हीन है। गुणश्रेणी असंख्यातगुणी है। प्रथम समयमें जो अपूर्वस्पर्द्धक निर्वर्तित हैं, द्वितीय समयमें उन्हें भी रचता है और उनसे असंख्यातगुणे हीन अन्य भी अपूर्वस्पर्द्धकोंको रचता है।

द्वितीय समयमें अपूर्व स्पर्द्धकोंमें दिये जानेवाले प्रदेशाग्रके श्रेणीप्ररूपणको कहते हैं। वह इस प्रकार है— द्वितीय समयमें अपूर्वस्पर्द्धकोंकी आदि वर्गणामें बहुत प्रदेशाग्रको देता है। द्वितीय वर्गणामें विशेष हीन प्रदेशाग्रको देता है। इस प्रकार अनन्तर क्रमसे विशेष हीन प्रदेशाग्र तब तक दिया जाता है जब तक कि जो द्वितीय समयमें अपूर्व अपूर्वस्पर्द्धक किये हैं उनकी अन्तिम वर्गणा प्राप्त होती है। फिर उनकी अन्तिम वर्गणासे, प्रथम समयमें जो अपूर्वस्पर्द्धक किये हैं उनकी प्रथम वर्गणामें असंख्यातगुणे हीन प्रदेशाग्रको देता है। उससे द्वितीय वर्गणामें विशेष हीन प्रदेशाग्रको

---

१ प्रतिषु '–फद्दयपढमादिं' इति पाठः।

२ ताहे अपुव्वफड्डयपुव्वस्सादीदणंतिमपुदेदि। बंधो हु लदाणंतिमभागो त्ति अपुव्वफड्डयदो ॥ लब्धि. ४७६.

३ प्रतिषु 'तेसिं चरिमादो वग्गणादो पढमसमए' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वणिधाए सव्वत्थ विसेसहीणं दिज्जदि । पुव्वफद्दयाणमादिवग्गणाए विसेसहीणं चेव दिज्जदि । सेसासु विसेसहीणं दिज्जदि[1] । विदियसमए अपुव्वफद्दएसु वा पुव्वफद्दएसु वा एक्केक्किस्से वग्गणाए जं दिस्सदि पदेसग्गं तमपुव्वफद्दयआदिवग्गणाए बहुअं, सेसासु अणंतरोवणिधाए सव्वासु विसेसहीणं[2] । तदियसमए वि एसेव कमो । णवरि अपुव्वफद्दयाणि ताणि च अण्णाणि च णिव्वत्तयदि ।

तदियसमए[3] जाणि अपुव्वाणि फद्दयाणि णिव्वत्तिदाणि तेसिमसंखेज्जदिभागे तत्थ वि पदेसग्गस्स दिज्जमाणस्स सेडिपरूवणं— तदियसमए अपुव्वाणमपुव्वफद्दयाणमादिवग्गणाए पदेसग्गं बहुअं दिज्जदि । विदियाए वग्गणाए विसेसहीणं । एवमणंतरोवणिधाए विसेसहीणं ताव जाव जाणि तदियसमए अपुव्वाणमपुव्वफद्दयाणं चरिमादो वग्गणादो त्ति । तदो विदियसमए अपुव्वफद्दयाणमादिवग्गणाए पदेसग्गमसंखेज्जगुणहीणं । तत्तो पाए सव्वत्थ विसेसहीणं । जं दिस्सदि पदेसग्गं तमादिवग्गणाए बहुगं, उवरिममणंतरोवणिधाए सव्वत्थ विसेसहीणं । जधा तदियसमए तधा सेसेसु

देता है । वहांसे लेकर अनन्तर क्रमसे सब वर्गणाओंमें विशेष हीन प्रदेशाग्रको देता है । पूर्वस्पर्द्धकोंकी प्रथम वर्गणामें विशेष हीन ही देता है । शेष वर्गणाओंमें विशेष हीन प्रदेशाग्रको देता है । द्वितीय समयमें अपूर्वस्पर्द्धकोंमें अथवा पूर्वस्पर्द्धकोंमें एक एक वर्गणामें जो प्रदेशाग्र दिखता है, वह अपूर्वस्पर्द्धकोंकी प्रथम वर्गणामें बहुत और शेष सब वर्गणाओंमें अनन्तर क्रमसे विशेष हीन है । तृतीय समयमें भी यही क्रम है। विशेष केवल यह है कि उन्हीं अपूर्वस्पर्द्धकोंको तथा दूसरोंको भी रचता है।

तृतीय समयमें उनके असंख्यातवें भागमात्र जिन अपूर्वस्पर्द्धकोंको रचा है उन अपूर्वस्पर्द्धकोंमें दीयमान प्रदेशाग्रकी श्रेणीप्ररूपणा की जाती है— तृतीय समयमें अपूर्व अपूर्वस्पर्द्धकोंकी आदिम वर्गणामें बहुत प्रदेशाग्र दिया जाता है । द्वितीय वर्गणामें विशेष हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है । इस प्रकार अनन्तर क्रमसे विशेष हीन प्रदेशाग्र तृतीय समयमें निर्वर्तित अपूर्व अपूर्वस्पर्द्धकोंकी अन्तिम वर्गणा तक दिया जाता है । उससे द्वितीय समयमें निर्वर्तित अपूर्वस्पर्द्धकोंकी प्रथम वर्गणामें असंख्यातगुणा हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है । वहांसे लेकर द्वितीयादि वर्गणाओंमें सर्वत्र विशेष हीन ही प्रदेशाग्र दिया जाता है । जो प्रदेशाग्र दिखता है वह प्रथम वर्गणामें बहुत, तथा ऊपर अनन्तर क्रमसे सब वर्गणाओंमें विशेष हीन है । जिस प्रकार तृतीय समयमें निरूपण किया गया

---

१ पढमादिसु दिज्जकमं तक्कालजफड्डयाण चरिमो त्ति । हीणकमं से काले असंखगुणहीणयं तु हीणकमं ।। लब्धि. ४७९.

२ पढमादिसु दिस्सकमं तक्कालजफड्डयाण चरिमो त्ति । हीणकमं से काले हीणं हीणं कमं तत्तो ।। लब्धि. ४८०.

३ प्रतिपु ' विदियसमए ' इति पाठः ।

च उवरिमसमएसु[1] वत्तव्वं जाव पढममणुभागखंडयं चरिमसमयअणुक्किण्णं ति ।

तदो से काले अणुभागसंतकम्मे णाणत्तं । तं जहा— लोभे अणुभागसंतकम्मं थोवं । मायाए अणुभागसंतकम्ममणंतगुणं । माणस्स अणुभागसंतकम्ममणंतगुणं । कोधस्स अणुभागसंतकम्ममणंतगुणं । तेण परं सव्वम्हि अस्सकण्णकरणे एस कमो[2] । अस्सकण्णकरणस्स पढमसमए णिव्वत्तिदाणि अपुव्वफद्दयाणि बहुवाणि । बिदियसमए जाणि अपुव्वाणि अपुव्वफद्दयाणि कदाणि ताणि असंखेज्जगुणहीणाणि । तदियसमए जाणि अपुव्वाणि अपुव्वफद्दयाणि कदाणि ताणि असंखेज्जगुणहीणाणि । एवं समए समए जाणि अपुव्वाणि अपुव्वफद्दयाणि कदाणि ताणि असंखेज्जगुणहीणाणि । गुणगारो पलिदोवमवग्गमूलस्स असंखेज्जदिभागो[3] । अस्सकण्णकरणस्स चरिमसमए लोभस्स अपुव्वफद्दयाणमादिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदग्गं थोवं । बिदियस्स अपुव्वफद्दयस्स आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदग्गं दुगुणं । तदियस्स फद्दयस्स आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदग्गं तिगुणं । एवं पढमस्स आदिवग्गणाए अविभागच्छेदग्गादो जदिएत्थ-

है उसी प्रकार प्रथम अनुभागकांडकके उत्कीर्ण होनेके अन्तिम समय तक उपरिम समयोंमें भी निरूपण करना चाहिये ।

इसके अनन्तर कालमें अनुभागसत्वमें विशेषता है । वह इस प्रकार है— लोभमें अनुभागसत्व स्तोक है । मायामें अनुभागसत्व अनन्तगुणा है । मानका अनुभागसत्व अनन्तगुणा है । क्रोधका अनुभागसत्व अनन्तगुणा है । इससे आगे सब अश्वकर्णकरणमें यही क्रम है । अश्वकर्णकरणके प्रथम समयमें निर्वर्तित अपूर्वस्पर्द्धक बहुत हैं । द्वितीय समयमें जो अपूर्व अपूर्वस्पर्द्धक किये हैं वे असंख्यातगुणे हीन हैं । तृतीय समयमें जो अपूर्व अपूर्वस्पर्द्धक किये हैं वे असंख्यातगुणे हीन हैं । इस प्रकार समय समयमें जो अपूर्व अपूर्वस्पर्द्धक किये जाते हैं वे असंख्यातगुणे हीन होते हैं । यहां गुणकार पल्योपमवर्गमूलके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अश्वकर्णकरणके अन्तिम समयमें लोभके अपूर्व अपूर्वस्पर्द्धकोंकी प्रथम वर्गणामें अविभागप्रतिच्छेदाग्र स्तोक, द्वितीय अपूर्वस्पर्द्धककी प्रथम वर्गणामें अविभागप्रतिच्छेदाग्र दुगुणा, और तृतीय स्पर्द्धककी प्रथम वर्गणामें अविभागप्रतिच्छेदाग्र तिगुणा है । इस प्रकार प्रथम स्पर्द्धककी प्रथम वर्गणासम्बधी

१ प्रतिषु ' सेसेसु चरिमसमएसु ' इति पाठः ।

२ पढमाणुभागखंडे पडिदे अणुभागसंतकम्मं तु । लोभादणंतगुणिदं उवरिं पि अणंतगुणिदकमं ॥ लब्धि. ४८१.

३ आदोलस्स य पढमे णिव्वत्तिदअपुव्वफड्डयाणि बहू । पडिसमयं पलिदोवममूलासंखेज्जभागभजियकमा ॥ लब्धि. ४८२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फद्दयस्स आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदग्गमुद्दिस्सदि तदित्थफद्दयस्स आदिवग्गणाए अविभागच्छेदग्गादो पडिच्छेदग्गं तदित्थगुणं[1] । एवं मायाए माणस्स कोधस्स य ।

अस्सकण्णकरणस्स पढमअणुभागखंडए हदे अणुभागस्स अप्पाबहुअं वत्तइस्सामो । तं जहा– सव्वत्थोवाणि कोधस्स अपुव्वफद्दयाणि । माणस्स अपुव्वफद्दयाणि विसेसाहियाणि । मायाए अपुव्वफद्दयाणि विसेसाहियाणि । लोभस्स अपुव्वफद्दयाणि विसेसाहियाणि । एगपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरफद्दयाणि असंखेज्जगुणाणि । एगफद्दयवग्गणाओ अणंतगुणाओ । कोधस्स अपुव्वफद्दयवग्गणाओ अणंतगुणाओ । माणस्स अपुव्वफद्दयवग्गणाओ विसेसाहियाओ । मायाए अपुव्वफद्दयवग्गणाओ विसेसाहियाओ । लोभस्स अपुव्वफद्दयवग्गणाओ विसेसाहियाओ । लोभस्स पुव्वफद्दयाणि अणंतगुणाणि । तेसिं चेव वग्गणाओ अणंतगुणाओ । मायाए पुव्वफद्दयाणि अणंतगुणाणि । तेसिं चेव वग्गणाओ अणंतगुणाओ । माणस्स पुव्वफद्दयाणि अणंतगुणाणि । तेसिं चेव वग्गणाओ अणंतगुणाओ । कोधस्स पुव्वफद्दयाणि अणंतगुणाणि । तेसिं चेव वग्गणाओ अणंतगुणाओ[2] । एवमंतोमुहुत्तमस्सकण्णकरणं ।

अविभागप्रतिच्छेदाग्रसे जितनेवें स्पर्द्धककी प्रथम वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदाग्रका संकल्प हो उतनेवें स्पर्द्धककी प्रथम वर्गणामें (प्रथम स्पर्द्धकसम्बंधी प्रथम वर्गणाके) अविभागप्रतिच्छेदाग्रसे उतनागुणा प्रतिच्छेदाग्र होता है । इसी प्रकार माया, मान और क्रोधके अपूर्वस्पर्द्धकोंमें अविभागप्रतिच्छेदाग्रके अल्पबहुत्वका क्रम जानना चाहिये ।

अश्वकर्णकरणके प्रथम अनुभागकांडकके नष्ट होनेपर अनुभागके अल्पबहुत्वको कहते हैं । वह इस प्रकार है – क्रोधके अपूर्वस्पर्धक सबसे स्तोक, मानके अपूर्वस्पर्धक विशेष अधिक, मायाके अपूर्वस्पर्धक विशेष अधिक, और लोभके अपूर्वस्पर्धक विशेष अधिक हैं । एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तरके स्पर्धक असंख्यातगुणे हैं । एक स्पर्धककी वर्गणायें अनन्तगुणी हैं । क्रोधकी अपूर्वस्पर्धकवर्गणायें अनन्तगुणी हैं । मानकी अपूर्वस्पर्धकवर्गणायें विशेष अधिक हैं । मायाकी अपूर्वस्पर्धकवर्गणायें विशेष अधिक हैं । लोभकी अपूर्वस्पर्धकवर्गणायें विशेष अधिक हैं । लोभके पूर्वस्पर्धक अनन्तगुणे हैं । उन्हीं पूर्वस्पर्धकोंकी वर्गणायें अनन्तगुणी हैं । मायाके पूर्वस्पर्धक अनन्तगुणे हैं । उनकी ही वर्गणायें अनन्तगुणी हैं । मानके पूर्वस्पर्धक अनन्तगुणे हैं । उनकी ही वर्गणायें अनन्तगुणी हैं । क्रोधके पूर्वस्पर्धक अनन्तगुणे हैं । उनकी ही वर्गणायें अनन्तगुणी हैं । इस प्रकार अन्तर्मुहूर्तकाल तक अश्वकर्णकरण प्रवर्तमान रहता है ।

---

१ आदोलस्स य चरिमे अपुव्वादिमवग्गणाविभागादो । दोचडिमादीणादी चडिदव्वा मेत्तणंतगुणा ॥ लब्धि. ४८३.

२ आदोलस्स य पढमे रसखंडे पाडिदे अपुव्वादो । कोहादी अहियकमा पदेसगुणहाणिफड्ढया तत्तो ॥ होदि असंखेज्जगुणं इगिफड्ढयवग्गणा अणंतगुणा । तत्तो अणंतगुणिदा कोहस्स अपुव्वफड्ढयाणं च ॥ माणादीण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्सकण्णकरणस्स चरिमसमए संजलणाणं ट्ठिदिबंधो अट्ठ वस्साणि। सेसाणं कम्माणं ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि[1]। णामा-गोद-वेदणीयाणं ट्ठिदिसंतकम्मं असंखेज्जाणि वस्साणि। चदुण्हं घादिकम्माणं ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि[2]। एवमस्सकण्णकरणद्धा समत्ता भवदि।

एत्तो सेकालप्पहुडि किट्टीकरणद्धा। छसु कम्मेसु संछुद्धेसु जा कोधवेदगद्धा तिस्से कोधवेदगद्धाए तिण्णि भागा। जो तत्थ पढमतिभागो अस्सकण्णकरणद्धा, विदियतिभागो किट्टीकरणद्धा, तदियतिभागो किट्टीवेदगद्धा[3]। अस्सकण्णकरणे णिट्ठिदे तदो से काले अण्णो ट्ठिदिबंधो। अण्णो अणुभागखंडओ अस्सकण्णकरणेणेव आगाइदो। अण्णो ट्ठिदिखंडगो चदुण्हं घादिकम्माणं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। णामा-गोद-वेदणीयाणमसंखेज्जा भागा। पढमसमयकिट्टीकारओ कोधपुव्वापुव्वफद्दएहिंतो पदेसग्गमोकड्डिदूण कोधकिट्टीओ करेदि। माणादो ओकड्डिदूण माणकिट्टीओ करेदि। मायादो

अश्वकर्णकरणके अन्तिम समयमें संज्वलनचतुष्कका स्थितिबन्ध आठ वर्ष और शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है। नाम, गोत्र व वेदनीय, इनका स्थितिसत्व असंख्यात वर्ष और घातिया कर्मोंका स्थितिसत्व संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है। इस प्रकार अश्वकर्णकरणकाल समाप्त होता है।

यहांसे आगे अनन्तर समयसे लेकर कृष्टिकरणकाल है। छह कर्मोंके संक्रमणको प्राप्त होनेपर जो क्रोधवेदककाल है उस क्रोधवेदककालके तीन भाग हैं। उनमें जो प्रथम त्रिभाग है वह अश्वकर्णकरणकाल, द्वितीय त्रिभाग कृष्टिकरणकाल, और तृतीय त्रिभाग कृष्टिवेदककाल है। अश्वकर्णकरणके समाप्त होनेपर तदनन्तरकालमें अन्य स्थितिबन्ध होता है। अन्य अनुभागकांडक अश्वकर्णकरणकर्ता द्वारा ही प्रारम्भ किया गया है। चार घातिया कर्मोंका अन्य स्थितिकांडक संख्यात वर्षसहस्रमात्र है। नाम, गोत्र व वेदनीयका अन्य स्थितिकांडक असंख्यात बहुभागप्रमाण है। प्रथम समय कृष्टिकारक क्रोधके पूर्व और अपूर्व स्पर्धकोंसे प्रदेशाग्रका अपकर्षण कर क्रोधकृष्टियोंको करता है। मानसे प्रदेशाग्रका अपकर्षण कर मानकृष्टियोंको करता है। मायासे प्रदेशाग्रका अपकर्षणकर मायाकृष्टियोंको

ढियकमा लोभगपुव्वं च वग्गणा तेसिं। कोहो त्ति य अट्ठ पदा अणंतगुणिदक्कमा होंति ॥ लब्धि. ४८४-४८६.

१ हयकण्णकरणचरिमे संजलणाणट्ठवस्सठिदिबंधो। वस्साणं संखेज्जसहस्साणि हवंति सेसाणं ॥ लब्धि. ४८८.

२ ठिदिसत्तमघादीणं असंखवस्साणि होंति घादीणं। वस्साणं संखेज्जसहस्साणि हवंति णियमेण ॥ लब्धि. ४८९.

३ छक्कम्मे संछुद्धे कोहे कोहस्स वेदगद्धा जा। तस्स य पढमतिभागो होदि हु हयकण्णकरणद्धा ॥ विदियतिभागो किट्टीकरणद्धा किट्टिवेदगद्धा हु। तदियतिभागो किट्टीकरणो हयकण्णकरणं च ॥ लब्धि. ४९०–४९१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओकड्डिदूण मायाकिट्टीओ करेदि । लोभादो ओकड्डिदूण लोभकिट्टीओ करेदि[1] । एदाओ सव्वाओ वि चउव्विहाओ किट्टीओ एगफद्दयवग्गणाणमणंतभागो पगणणादो ।

पढमसमयणिव्वत्तिदाणं किट्टीणं तिव्वमंददाए अप्पाबहुअं वत्तइस्सामो । तं जहा– लोभस्स जहण्णिया किट्टी थोवा । विदियकिट्टी अणंतगुणा । एवमणंतगुणाए सेडीए णेयव्वं जाव पढमाए संगहकिट्टीए चरिमकिट्टि त्ति । तदो विदियाए संगह-किट्टीए जहण्णिया किट्टी अणंतगुणा । एसो गुणगारो बारसण्हं पि संगहकिट्टीणं सत्थाणगुणगारेहिंतो अणंतगुणो । विदियाए संगहकिट्टीए सो चेव कमो जो पढमाए संगहकिट्टीए । तदो पुण विदियाए तदियाए च संगहकिट्टीणमंतरं तारिसं चेव । एव-मेदाओ लोभस्स तिण्णि संगहकिट्टीओ । लोभस्स तदियाए संगहकिट्टीए जा चरिमकिट्टी तदो मायाए जहण्णिया किट्टी अणंतगुणा । मायाए वि तेणेव कमेण तिण्णि संगह-किट्टीओ । मायाए जा तदियसंगहकिट्टी तिस्से चरिमादो किट्टीदो माणस्स जहण्णिया किट्टी अणंतगुणा । माणस्स वि तेणेव कमेण तिण्णि संगहकिट्टीओ । माणस्स जा तदिया संगहकिट्टी तिस्से चरिमादो किट्टीदो कोधस्स जहण्णिया किट्टी अणंतगुणा । कोधस्स वि तेणेव कमेण तिण्णि संगहकिट्टीओ । कोधस्स तदियाए संगहकिट्टीए जा

करता है । लोभसे प्रदेशाग्रका अपकर्षणकर लोभकृष्टियोंको करता है । ये सब चारों प्रकारकी कृष्टियां गणनासे एक स्पर्धककी वर्गणाओंके अनन्तवें भागप्रमाण है ।

प्रथम समयमें निर्वर्तित कृष्टियोंके तीव्र-मन्दतासे अल्पबहुत्वको कहते हैं । वह इस प्रकार है— लोभकी जघन्य कृष्टि स्तोक है । द्वितीय कृष्टि अनन्तगुणी है । इस प्रकार अनन्तगुणित श्रेणीसे प्रथम संग्रहकृष्टिकी अन्तिम कृष्टि तक ले जाना चाहिये । उस प्रथम संग्रहकृष्टिकी अन्तिम कृष्टिसे द्वितीय संग्रहकृष्टिकी जघन्य कृष्टि अनन्तगुणी है । यह गुणकार बारह ही संग्रहकृष्टियोंके स्वस्थानगुणकारोंसे अनन्तगुणा है । प्रथम संग्रह-कृष्टिमें जो क्रम है वही द्वितीय संग्रहकृष्टिमें है । इससे आगे द्वितीय और तृतीय संग्रह-कृष्टियोंका अन्तर प्रथम और द्वितीय संग्रहकृष्टियोंके अन्तर समान ही है । इस प्रकार ये लोभकी तीन संग्रहकृष्टियां हैं । लोभकी तृतीय संग्रहकृष्टिकी जो अन्तिम कृष्टि है उससे मायाकी जघन्य कृष्टि अनन्तगुणी होती है । मायाकी भी उसी क्रमसे तीन संग्रहकृष्टियां हैं । मायाकी जो तृतीय संग्रहकृष्टि है उसकी अन्तिम कृष्टिसे मानकी जघन्य कृष्टि अनन्त-गुणित होती है । मानकी भी उसी क्रमसे तीन संग्रहकृष्टियां हैं । मानकी जो तृतीय संग्रहकृष्टि है उसकी अन्तिम कृष्टिसे क्रोधकी जघन्य कृष्टि अनन्तगुणी होती है । क्रोधकी भी उसी क्रमसे तीन संग्रहकृष्टियां होती हैं । क्रोधकी तृतीय संग्रहकृष्टिकी जो अन्तिम

---

१ कोहादीणं सगसगपुव्वापुव्वगयफड्डयेहिंतो । उक्कड्डिदूण दव्वं ताणं किट्टी करेदि कमे ॥ लब्धि. ४९२.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

चरिमा किट्टी तदो लोभस्स अपुव्वफद्दयाणमादिवग्गणा अणंतगुणा[1]।

किट्टीए अंतराणमप्पाबहुअं वत्तइस्सामो। तं जहा– लोभस्स पढमाए संगहकिट्टीए जहण्णयं किट्टीअंतरं[2] थोवं। विदियाकिट्टीअंतरमणंतगुणं। एवमणंतराणंतरेण गंतूण चरिमकिट्टीअंतरमणंतगुणं। लोभस्स चेव विदियाए संगहकिट्टीए पढमकिट्टीअंतरमणंतगुणं। एवमणंतराणंतरेण णेदव्वं जाव चरिमकिट्टीअंतरो त्ति। तदो लोभस्स चेव तदियाए संगहकिट्टीए पढमकिट्टीअंतरमणंतगुणं। एवमणंतराणंतरेण गंतूण चरिमकिट्टीअंतरमणंतगुणं। एत्तो मायाए पढमसंगहकिट्टीए पढमकिट्टीअंतरं[3]मणंतगुणं। एवमणंतराणंतरेण मायाए वि तिण्हं संगहकिट्टीणं किट्टीअंतराणि जहाकमेण अणंतगुणाए सेडीए णेदव्वाणि। एत्तो माणस्स पढमाए संगहकिट्टीए पढमकिट्टीअंतरमणंतगुणं। माणस्स वि तिण्हं संगहकिट्टीणं किट्टीअंतराणि जहाकमेण अणंतगुणाए सेडीए णेदव्वाणि। एत्तो कोधस्स पढमसंगहकिट्टीए पढमकिट्टिअंतरमणंतगुणं। एवं कोधस्स वि तिण्हं संगह-

कृष्टि है उससे लोभके अपूर्वस्पर्द्धकोंकी प्रथम वर्गणा अनन्तगुणी है।

अब यहां कृष्टि-अन्तरों अर्थात् कृष्टिगुणकारोंके अल्पबहुत्वको कहते हैं। वह इस प्रकार है— लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें जघन्य कृष्टि-अन्तर, अर्थात् जिस गुणकारसे गुणित जघन्य कृष्टि द्वितीय कृष्टिका प्रमाण प्राप्त करती है वह गुणकार, स्तोक है। द्वितीय कृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है। इस प्रकार अनन्तर-अनन्तररूपसे जाकर अन्तिम कृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है। लोभकी ही द्वितीय संग्रहकृष्टिमें प्रथम कृष्टिका अन्तर अनन्तगुणा है। इस प्रकार अनन्तर-अनन्तररूपसे अन्तिम कृष्टि-अन्तर तक ले जाना चाहिये। पुनः लोभकी ही तृतीय संग्रहकृष्टिमें प्रथम कृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है। इस प्रकार अनन्तर-अनन्तररूपसे जाकर अन्तिम कृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है। यहांसे मायाकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें प्रथम कृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है। इस प्रकार अनन्तर-अनन्तररूपसे मायाकी भी तीन संग्रहकृष्टियोंके कृष्टि-अन्तर यथाक्रमसे अनन्तगुणित श्रेणीके अनुसार ले जाना चाहिये। यहांसे मानकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें प्रथम कृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है। मानकी भी तीन संग्रहकृष्टियोंके कृष्टि-अन्तर क्रमानुसार अनन्तगुणित श्रेणीसे ले जाना चाहिये। यहांसे आगे क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें प्रथम कृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है। इस प्रकार

१ संगहगे एक्केक्के अंतरकिट्टी हवदि हु अणंता। लोभादि अणंतगुणा कोहादि अणंतगुणहीणा॥ लब्धि. ४९८.

२ लोभस्स पढमसंगहकिट्टीए जहण्णकिट्टी जेण गुणगारेण गुणिदा अप्पणो विदियकिट्टीपमाणं पावदि सो गुणगारो जहण्णकिट्टीअंतरं णाम। जयध. अ. प. ११२०

३ प्रतिषु 'मायाए पढमसंगहकिट्टीअंतर-' इति पाठः।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

किट्टीणं अंतराणि जहाकमेण जाव चरिमादो अंतरादो अणंतगुणाए सेडीए णेदव्वाणि। तदो लोभस्स पढमसंगहकिट्टीअंतरमणंतगुणं[2]। विदियसंगहकिट्टीअंतरमणंतगुणं[3]। तदियसंगहकिट्टीअंतरमणंतगुणं[4]। लोभस्स मायाए च अंतरमणंतगुणं। मायाए पढम-

---

क्रोधकी भी तीन संग्रहकृष्टियोंके अन्तर क्रमानुसार अन्तिम अन्तर तक अनन्तगुणित श्रेणीसे ले जाना चाहिये। उससे अर्थात् स्वस्थान गुणकारोंमें अन्तिम गुणकारसे लोभका प्रथम संग्रहकृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है। द्वितीय संग्रहकृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है। तृतीय संग्रहकृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है।

विशेषार्थ—लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिकी अन्तिम कृष्टि जिस गुणकारसे गुणित होकर द्वितीय संग्रहकृष्टिकी प्रथम कृष्टिको प्राप्त होती है वह गुणकार लोभका प्रथम संग्रहकृष्टि-अन्तर कहलाता है। उसी प्रकार द्वितीय संग्रहकृष्टिकी अन्तिम कृष्टि जिस गुणकारसे गुणित होकर तृतीय संग्रहकृष्टिकी प्रथम कृष्टिको प्राप्त होती है वह गुणकार द्वितीय संग्रहकृष्टि-अन्तर कहलाता है। लोभका तृतीय संग्रहकृष्टि-अन्तर जयधवलाकारने तीन प्रकारसे बतलाया है। (१) लोभकी द्वितीय संग्रहकृष्टिसंबंधी अन्तिम कृष्टि जिस गुणकारसे गुणित होकर लोभकी ही तृतीय कृष्टिसंबंधी अन्तिम कृष्टिको प्राप्त होती है वह लोभका तृतीय संग्रहकृष्टि-अन्तर है। अथवा, (२) तृतीय संग्रहकृष्टि और अपूर्वस्पर्द्धककी आदि वर्गणाका अन्तर तृतीय संग्रहकृष्टि-अन्तर समझना चाहिये। अथवा, (३) लोभकी तृतीय और मायाकी प्रथम संग्रहकृष्टिका गुणकार लोभका तृतीय संग्रहकृष्टि-अन्तर है। इसी प्रकार मायादिकके भी संग्रहकृष्टि-अन्तर जानना चाहिये।

लोभ और मायाका अन्तर अनन्तगुणा है। मायाका प्रथम संग्रहकृष्टि-अन्तर

---

१ प्रतिषु ' -संगहकिट्टीए अंतर- ' इति पाठः।

२ लोभस्स पढमसंगहकिट्टी जेण गुणगारेण गुणिदा विदियसंगहकिट्टीए पढमकिट्टिं पावदि सो गुणगारो लोभस्स पढमसंगहकिट्टीअंतरं णाम। जयध. अ. प. ११२१.

३ विदियसंगहकिट्टीए चरिमकिट्टी जेण गुणगारेण गुणिदा तदियसंगहकिट्टीए पढमकिट्टिं पावदि सो गुणगारो विदियसंगहकिट्टीअंतरं णाम। जयध. अ. प. ११२२.

४ लोभस्स तदियसंगहकिट्टीअंतरमिदि वुत्ते लोभस्स विदियसंगहकिट्टीए चरिमकिट्टी जेण गुणगारेण गुणिदा लोभस्स चेव तदियसंगहकिट्टीए चरिमकिट्टिं पावेदि सो गुणगारो घेत्तव्वो। ××× अथवा तदियसंगहकिट्टीए अपुव्वफद्दयादिवग्गणाए अंतरं तदियसंगहकिट्टीअंतरामिदि घेत्तव्वं, संगहकिट्टीफद्दयंतरस्स वि कथंचि संगहकिट्टी-अंतरत्तेण णिद्देसे विरोहाभावादो। ××× अथवा लोभस्स तदियसंगहकिट्टीअंतरमणंतगुणमिदि वुत्ते लोभ-मायाणमेव तदिय-पढमसंगहकिट्टीणं संधिगुणगारो गहेयव्वो। ण च तहावलंबिज्जमाणे उवरिमसुत्तेण पुणरुत्तभावो वि, तदिय-संगहकिट्टीअंतरमणंतगुणमिदि सामण्णणिद्देसेणेदेण तं कदममिदि संदेहे समुप्पण्णे तण्णिरायरणमुहेण लोभ-मायाण-मंतरमेव तदियसंगहकिट्टीअंतरमिह विवक्खियं, ण तत्तो अण्णमिदि पदुप्पायणट्ठमुवरिमसुत्तारंभे पुणरुत्तदोसा-संभवादो। जयध. अ. प. ११२२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संगहकिट्टीअंतरमणंतगुणं । विदियसंगहकिट्टीअंतरमणंतगुणं । तदियसंगहकिट्टीअंतरमणंतगुणं । मायाए माणस्स च अंतरमणंतगुणं । माणस्स पढमसंगहकिट्टीअंतरमणंतगुणं । विदियसंगहकिट्टीअंतरमणंतगुणं । तदियसंगहकिट्टीअंतरमणंतगुणं । माणस्स कोधस्स य अंतरमणंतगुणं । कोधस्स पढमसंगहकिट्टीअंतरमणंतगुणं । विदियसंगहकिट्टीअंतरमणंतगुणं । तदियसंगहकिट्टीअंतरमणंतगुणं[1] । कोधस्स चरिमादो किट्टीदो लोभस्स अपुव्वफद्दयाणमादिवग्गणाए अंतरमणंतगुणं ।

पढमसमए किट्टीसु पदेसग्गस्स सेडिपरूवणं वत्तइस्सामो । तं जहा— लोभस्स जहण्णियाए किट्टीए पदेसग्गं बहुअं । विदियाए किट्टीए पदेसग्गं विसेसहीणमणंतभागेण । एवं अणंतरोवणिधाए विसेसहीणमणंतभागेण जाव कोधस्स चरिमकिट्टि त्ति । परंपरोवणिधाए जहण्णियादो लोभकिट्टीदो उक्कस्सियाए कोधकिट्टीए पदेसग्गं विसेसहीणमणंतभागेण ।

विदियसमए अण्णाओ अपुव्वाओ किट्टीओ करेदि पढमसमए णिव्वत्तिदकिट्टीणमसंखेज्जदिभागमेत्ताओ । एक्केक्किस्से संगहकिट्टीए हेट्ठा अपुव्वाओ किट्टीओ करेदि । विदियसमए दिज्जमाणस्स पदेसग्गस्स सेडिपरूवणं वत्तइस्सामो । तं जहा— लोभस्स

अनन्तगुणा है । द्वितीय संग्रहकृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । तृतीय संग्रहकृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । माया और मानका अन्तर अनन्तगुणा है । मानका प्रथम संग्रहकृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । द्वितीय संग्रहकृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । तृतीय संग्रहकृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । मानका और क्रोधका अन्तर अनन्तगुणा है । क्रोधका प्रथम संग्रहकृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । द्वितीय संग्रहकृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । तृतीय संग्रहकृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । क्रोधकी अन्तिम कृष्टिसे लोभके अपूर्वस्पर्द्धकोंकी प्रथम वर्गणाका अन्तर अनन्तगुणा है ।

प्रथम समयमें निर्वर्तमान कृष्टियोंमें दिये जानेवाले प्रदेशाग्रकी श्रेणिप्ररूपणाको कहते हैं । वह इस प्रकार है— लोभकी जघन्य कृष्टिमें प्रदेशाग्र बहुत है । द्वितीय कृष्टिमें प्रदेशाग्र अनन्तवें भागसे विशेष हीन है । इस प्रकार क्रोधकी अन्तिम कृष्टि तक अनन्तर क्रमसे प्रत्येक कृष्टिमें दिया जानेवाला प्रदेशाग्र अनन्तवें भागसे विशेष हीन है । परम्पराक्रमानुसार जघन्य लोभकृष्टिसे उत्कृष्ट क्रोधकृष्टिका प्रदेशाग्र अनन्तवें भागसे विशेष हीन है ।

द्वितीय समयमें, प्रथम समयमें निर्वर्तित कृष्टियोंके असंख्यातवें भागमात्र अन्य अपूर्व कृष्टियोंको करता है । एक एक संग्रहकृष्टिके नीचे अपूर्व कृष्टियोंको करता है । द्वितीय समयमें दीयमान प्रदेशाग्रकी श्रेणिप्ररूपणाको कहते हैं । वह इस प्रकार है—

---

१ लोभादी कोहो त्ति य सट्ठाणंतरमणंतगुणिदकमं । तत्तो बादरसंगहकिट्टीअंतरमणंतगुणिदकमं ॥ लब्धि. ४९९

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

जहण्णियाए किट्टीए पदेसग्गं बहुअं दिज्जदि। विदियाए किट्टीए विसेसहीणमणंतभागेण। ताव अणंतभागहीणं जाव अपुव्वाणं चरिमादो त्ति। तदो पढमसमयणिव्वत्तिदाणं जहण्णियाए किट्टीए विसेसहीणमसंखेज्जदिभागेण। तदो विदियाए अणंतभागहीणं। तेण परं पढमसमयणिव्वत्तिदासु लोभस्स पढमसंगहकिट्टीए किट्टीसु अणंतराणंतरेण अणंतभागहीणं दिज्जदि जाव पढमसंगहकिट्टीए चरिमकिट्टि त्ति। तदो लोभस्स चेव विदियसमए विदियसंगहकिट्टीए तिस्से जहण्णियाए किट्टीए दिज्जमाणं विसेसाहियमसंखेज्जदिभागेण। तेण परमणंतभागहीणं जाव अपुव्वाणं चरिमादो त्ति। तदो पढमसमयणिव्वत्तिदाणं जहण्णियाए किट्टीए विसेसहीणमसंखेज्जदिभागेण। तेण परं विसेसहीणमणंतभागेण जाव विदियसंगहकिट्टीए चरिमकिट्टि त्ति। तदो जहा विदियसंगहकिट्टीए विही तहा चेव तदियसंगहकिट्टीए विही वि।

तदो लोभस्स चरिमादो किट्टीदो मायाए जा[1] विदियसमए जहण्णिया किट्टी

लोभकी जघन्य कृष्टिमें प्रदेशाग्र बहुत दिया जाता है। द्वितीय कृष्टिमें वह अनन्तवें भागसे विशेष हीन दिया जाता है। इस प्रकार तब तक अनन्तवें भागसे हीन दिया जाता है जब तक कि लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिके नीचे निर्वर्तमान अपूर्व कृष्टियोंकी अन्तिम कृष्टि प्राप्त होती है। उससे प्रथम समयमें निर्वर्तित लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिकी अन्तर-कृष्टियोंमेंसे जघन्य कृष्टिमें असंख्यातवें भागसे विशेष हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है। उससे द्वितीय कृष्टिमें अनन्तभाग हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है। उसके आगे प्रथम समयमें निर्वर्तित लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिकी अन्तरकृष्टियोंमें, अनन्तर-अनन्तररूपसे प्रथम संग्रहकृष्टिकी अन्तिम अन्तरकृष्टि तक अनन्तभाग हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है। उससे, लोभकी ही द्वितीय समयमें निवर्तमान उस द्वितीय संग्रहकृष्टिकी जघन्य कृष्टिमें दीयमान प्रदेशाग्र असंख्यातवें भागसे विशेष अधिक है। उसके आगे द्वितीय संग्रहकृष्टिके नीचे निर्वर्तमान अपूर्व कृष्टियोंकी अन्तिम कृष्टि तक अनन्तभाग हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है। उससे, प्रथम समयमें निर्वर्तित पूर्व कृष्टियोंकी जघन्य कृष्टिमें असंख्यातवें भागसे विशेष हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है। इससे आगे द्वितीय संग्रहकृष्टिकी अन्तिम कृष्टि तक अनन्तवें भागसे विशेष हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है। तत्पश्चात् द्वितीय संग्रहकृष्टिमें जैसी विधि निरूपित की गई है वैसी ही विधि तृतीय संग्रहकृष्टिमें भी जानना चाहिये।

पश्चात् लोभकी अन्तिम कृष्टिसे मायाकी प्रथम संग्रहकृष्टिके नीचे द्वितीय समयमें निर्वर्तमान अपूर्व कृष्टियोंमें जो जघन्य कृष्टि है उसमें असंख्यातवें भागसे विशेष

१ प्रतिषु 'जाव' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिस्से दिज्जदि पदेसग्गं विसेसाहियमसंखेज्जदिभागेण । तदो पुण अणंतभागहीणं जाव अपुव्वाणं चरिमादो त्ति । एवं जम्हि अपुव्वाणं जहण्णिया किट्टी तम्हि विसेसाहियमसंखेज्जदिभागेण । अपुव्वाणं चरिमादो असंखेज्जदिभागहीणं । एदेण कमेण विदियसमए णिक्खिवमाणयस्स पदेसग्गस्स बारससु किट्टिट्ठाणेसु असंखेज्जदिभागहीणं, एक्कारससु किट्टिट्ठाणेसु असंखेज्जदिभागुत्तरं दिज्जमाणयस्स पदेसग्गस्स । सेसेसु किट्टिट्ठाणेसु अणंतभागहीणं दिज्जमाणयस्स पदेसग्गस्स । विदियसमए दिज्जमाणयस्स पदेसग्गस्स एसा उंटकूडसेडी । जं पुण विदियसमए दिस्सदि किट्टीसु पदेसग्गं तं जहण्णियाए किट्टीए बहुअं । सेसासु सव्वासु अणंतरोवणिधाए अणंतभागहीणं । जहा विदियसमए किट्टीसु पदेसग्गं परूविदं तहा सव्विस्से किट्टीकरणद्धाए दिज्जमाणयस्स पदेसग्गस्स तेवीसं उंटकूडाणि[1] । दिस्समाणगं सव्वम्हि अणंतभागहीणमिदि वत्तव्वं । जं पदेसग्गं सव्वसमासेण पढमसमए किट्टीसु दिज्जदि तं थोवं । विदियसमए असंखेज्जगुणं ।

अधिक प्रदेशाग्र दिया जाता है । फिर इसके आगे अपूर्व कृष्टियोंकी अन्तिम कृष्टि तक अनन्तभाग हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है । इस प्रकार उक्त क्रमसे जहांपर पूर्व कृष्टियोंकी अन्तिम कृष्टिसे अपूर्व कृष्टियोंकी जघन्य कृष्टि कही जाती है वहांपर असंख्यातवें भागसे विशेष अधिक प्रदेशाग्र दिया जाता है और जहांपर अपूर्व कृष्टियोंकी अन्तिम कृष्टिसे पूर्व कृष्टियोंकी जघन्य कृष्टि कही जाती है वहांपर असंख्यातवें भागसे हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है । इस क्रमसे द्वितीय समयमें दीयमान प्रदेशाग्रका बारह कृष्टिस्थानोंमें असंख्यातवें भागसे हीन और ग्यारह कृष्टिस्थानोंमें दीयमान प्रदेशाग्रका असंख्यातवें भागसे अधिक अवस्थान है । शेष कृष्टिस्थानोंमें दीयमान प्रदेशाग्रका अनन्तभागसे हीन अवस्थान है । द्वितीय समयमें दीयमान प्रदेशाग्रकी यह उप्ट्रकूटश्रेणी है । किन्तु जो द्वितीय समयमें कृष्टियोंमें प्रदेशाग्र दिखता है वह जघन्य कृष्टिमें बहुत और शेष सब कृष्टियोंमें अनन्तर क्रमसे अनन्तभाग हीन है । जिस प्रकार द्वितीय समयमें कृष्टियोंमें दीयमान प्रदेशाग्रकी प्ररूपणा की है उसी प्रकार सभी कृष्टिकरणकालमें दीयमान प्रदेशाग्रके तेईस उप्ट्रकूटोंकी प्ररूपणा करना चाहिये । परन्तु दृश्यमान प्रदेशाग्र सब कालमें अनन्तभाग हीन है ऐसा कहना चाहिये । जो प्रदेशाग्र समस्तरूपसे प्रथम समयमें कृष्टियोंमें दिया जाता है वह स्तोक है । द्वितीय समयमें दिया जानेवाला प्रदेशाग्र

---

१ पुव्वादिम्हि अपुव्वा पुव्वादि अपुव्वपढमगे सेसे । दिज्जदि असंखभगिणूणं अहियं अणंतभागूणं ॥ चरिकारमणंतं पुव्वादि अपुव्वआदि सेसं तु । तेवीस ऊंटकूडा दिज्जे दिस्से अणंतभागूणं ॥ लब्धि. ५०४-५०५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तदियसमए असंखेज्जगुणं । एवं जाव किट्टीकरणद्धाए चरिमादो त्ति असंखेज्जगुणं ।

किट्टीकरणद्धाए चरिमसमए संजलणाणं ट्ठिदिबंधो चत्तारि मासा अंतोमुहुत्तब्भहिया[1] । सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । तम्हि चेव किट्टीकरणद्धाए चरिमसमए मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि हाइदूण[2] अट्ठवस्सियं अंतोमुहुत्तब्भहियं[3] जादं । तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । णामा-गोद-वेदणीयाणं ट्ठिदिसंतकम्मं असंखेज्जाणि वस्ससहस्साणि[4] । एत्थुवउज्जंतीओ गाहाओ—

बारस णव छ त्तिण्णि य किट्टीओ होंति तह अणंताओ ।
एक्केक्कम्हि कसाए तिग तिग अहवा अणंताओ[5] ॥ ३१ ॥

....

असंख्यातगुणा है । तृतीय समयमें दिया जानेवाला प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है । इस प्रकार कृष्टिकरणकालके अन्तिम समय तक उत्तरोत्तर असंख्यातगुणा प्रदेशाग्र दिया जाता है ।

कृष्टिकरणकालके अन्तिम समयमें संज्वलनचतुष्कका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त अधिक चार मास और शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षसहस्रप्रमाण होता है । उसी कृष्टिकरणकालके अन्तिम समयमें मोहनीयका स्थितिसत्व संख्यात वर्षसहस्रसे क्रमशः घटकर अन्तर्मुहूर्तसे अधिक आठ वर्षमात्र हो जाता है । तीन घातिया कर्मोंका स्थितिसत्व संख्यात वर्षसहस्र और नाम, गोत्र एवं वेदनीय, इनका स्थितिसत्व असंख्यात वर्षप्रमाण रहता है । यहां उपयुक्त गाथायें—

क्रोधके उदयसे श्रेणीपर चढ़े हुए जीवके बारह, मानके उदयसे चढ़े हुए जीवके नौ, मायाके उदयसे चढ़े हुए जीवके छह, और लोभके उदयसे चढ़े हुए जीवके तीन संग्रहकृष्टियां तथा अन्तरकृष्टियां अनन्त होती हैं । एक एक कषायमें तीन तीन संग्रहकृष्टियां अथवा अनन्त अन्तरकृष्टियां होती हैं ॥ ३१ ॥

....

१ किट्टीकरणद्धाए चरिमे अंतोमुहुत्तसंजुत्तो । चत्तारि होंति मासा संजलणाणं तु ठिदिबंधो ॥ लब्धि. ५०६.

२ प्रतिषु ' होदूण ' इति पाठः ।

३ सेसाणं वस्साणं संखेज्जसहस्सगाणि ठिदिबंधो । मोहस्स य ठिदिसंतं अडवस्संतोमुहुत्तहियं ॥ लब्धि. ५०७.

४ घादितियाणं संखं वस्ससहस्साणि होदि ठिदिसंतं । वस्साणमसंखेज्जसहस्साणि अघादितिण्णं तु ॥ लब्धि. ५०८.

५ जयध. अ. प. ११३१. कोहस्स य माणस्स य मायालोभोदएण चडिदस्स । बारस णव छ तिण्णि य संगहकिट्टी कमे होंति ॥ लब्धि. ४९७. ताश्च किट्टयः परमार्थतोऽनन्ता अपि स्थूरजातिभेदापेक्षया द्वादश कल्प्यन्ते, एकैकस्य कषायस्य तिस्रस्तिस्रः, तद्यथा– प्रथमा द्वितीया तृतीया च । एवं क्रोधेन प्रतिपन्नस्य द्रष्टव्यम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किट्टी करेदि णियमा ओवट्टेंतो ठिदी य अणुभागे ।
वड्ढेंतो किट्टीए अकारगो होदि बोद्धव्वो[1] ॥ ३२ ॥

गुणसेडि अणंतगुणा लोभादीकोधपच्छिमपदादो ।
कम्मस्स य अणुभागे किट्टीए लक्खणं एदं[2] ॥ ३३ ॥

किट्टीओ करेंतो पुव्वफद्दयाणि अपुव्वफद्दयाणि च वेदयदि, किट्टीओ ण वेदयदि। पढमट्ठिदीए आवलियाए सेसाए[3] किट्टीकरणद्धा णिट्ठायदि[4] । से काले किट्टीओ पवेदेदि। ताधे संजलणाणं ट्ठिदिबंधो चत्तारि मासा। ट्ठिदिसंतकम्ममट्ठ वस्साणि। तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो ट्ठिदिसंतकम्मं च संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । णामा-गोद-वेदणीयाणं ट्ठिदि-

---

स्थिति व अनुभागका अपकर्षण करनेवाला नियमसे कृष्टियोंको करता है। किन्तु स्थिति व अनुभागका उत्कर्षण करनेवाला कृष्टिका अकारक होता है। ऐसा समझना चाहिये ॥ ३२ ॥

चार संज्वलन कर्मोंके अनुभागके विषयमें संज्वलनलोभकी जघन्य कृष्टिसे लेकर संज्वलनक्रोधकी अन्तिम उत्कृष्ट कृष्टि तक यथाक्रमसे अनन्तगुणित गुणश्रेणी है। यह कृष्टिका लक्षण है ॥ ३३ ॥

कृष्टियोंको करनेवाला पूर्वस्पर्द्धकों और अपूर्वस्पर्द्धकोंका वेदन करता है, कृष्टियोंका वेदन नहीं करता। संज्वलनक्रोधकी प्रथमस्थितिमें आवलीमात्र शेष रहनेपर कृष्टिकरणकाल समाप्त हो जाता है। कृष्टिकरणकालके समाप्त होनेपर अनन्तर समयमें कृष्टियोंका वेदन करता है, अर्थात् द्वितीयस्थितिसे अपकर्षणकर कृष्टियोंको उदयावलीके भीतर प्रवेश कराता है। उस समयमें संज्वलनचतुष्कका स्थितिबन्ध चार मास और स्थितिसत्व आठ वर्षप्रमाण होता है। तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध और स्थितिसत्व संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है। नाम, गोत्र व वेदनीय, इनका स्थितिसत्व

यदा तु मानेन प्रतिपद्यते, तदा उद्वलनविधिना क्रोधे क्षपिते सति शेषाणां पूर्वक्रमेण नव किट्टीः करोति। मायया चेत्प्रतिपन्नस्तर्हि क्रोधमानयोरुद्वलनविधिना क्षपितयोः सतोः शेषद्विकस्य पूर्वक्रमेण षट् किट्टीः करोति। यदि पुनर्लोभेन प्रतिपद्यते, तत उद्वलनविधिना क्रोधादित्रिके क्षपिते सति लोभस्य किट्टित्रिकं करोति। एष किट्टिकरणविधिः। पंचसंग्रह १, पृ. २६-२७.

१ जयध. अ. प. ११३२.

२ लोभजहण्णकिट्टिमादिं कादूण जाव कोहसंजलणसव्वपच्छिमउक्कस्सकिट्टि त्ति ताव कममवट्ठिदचदुसंजलण-कम्माणुभागविसए एसा अणंतगुणा गुणओली दट्ठव्वा त्ति वुत्तं होदि। जयध. अ. प. ११३३,

३ अ-आप्रत्योः ' सेसा ' इति पाठः।

४ पुव्वापुव्वप्फड्डयमणुहवदि हु किट्टिकारओ णियमा। तस्सद्धा णिट्ठायदि पढमट्ठिदि आवलीसेसे ॥ लब्धि. ५१०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संतकम्ममसंखेज्जाणि वस्साणि। ट्ठिदिबंधो पुण संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि[1]। अणुभाग-संतकम्मं कोधसंजलणस्स (जं) समऊणाए उदयावलियाए छद्दिदट्ठियाए संतकम्मं तं सव्वघादि। संजलणाणं जे दो आवलियबंधा दुसमऊणा ते देसघादी। तं पुण फद्दयगदं[2]। अवसेसं सव्वं किट्टीगदं। तम्हि चेव पढमसमए कोधस्स पढमसंगहकिट्टीदो पदेसग्गमोकड्डिदूण पढमट्ठिदिं करेदि[3]। एत्थुववुज्जंतीओ गाहाओ—

किट्टी च ठिदिविसेसेसु असंखेज्जेसु णियमसा होदि।
णियमा अणुभागेसु च होदि हु किट्टी अणंतेसु[4] ॥ ३४ ॥
सव्वाओ किट्टीओ विदियट्ठिदिए दु होंति सव्विस्से।
जं किट्टिं वेदयदे तिस्से अंसा य पढमाए[5] ॥ ३५ ॥

ताधे कोधस्स पढमाए संगहकिट्टीए असंखेज्जा भागा उदिण्णा। एदिस्से चेव कोधस्स पढमाए संगहकिट्टीए असंखेज्जा भागा बज्झंति। सेसाओ दो संगहकिट्टीओ ण बज्झंति ण वेदिज्जंति[6]। पढमाए संगहकिट्टीए हेट्ठदो जाओ किट्टीओ ण बज्झंति ण

असंख्यात वर्ष और स्थितिबन्ध संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है। संज्वलनक्रोधका जो अनुभागसत्व उच्छिष्टावलिरूपसे स्थित एक समय कम उदयावलिके भीतर है वह सत्व सर्वघाती है। संज्वलनचतुष्कके जो दो समय कम दो आवलिप्रमाण नवक समयप्रबद्ध हैं वे देशघाती हैं। उनका वह अनुभागसत्व स्पर्द्धकस्वरूप है। शेष सब अनुभागसत्व कृष्टिस्वरूप है। कृष्टिवेदककालके प्रथम समयमें ही क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिसे प्रदेशाग्रका अपकर्षण करके प्रथमस्थितिको करता है। यहां उपयुक्त गाथायें—

कृष्टि नियमसे असंख्यात स्थितिभेदोंमें और नियमतः अनन्त अनुभागोंमें होती है ॥ ३४ ॥

सब अर्थात् संग्रह व अवयव कृष्टियां समस्त द्वितीयस्थितिमें होती हैं। परन्तु जिस कृष्टिका वेदन करता है उसके अंश प्रथमस्थितिमें रहते हैं ॥ ३५ ॥

उस समयमें क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिके असंख्यात बहुभाग उदयप्राप्त हैं। इसी क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिके असंख्यात बहुभाग बंधको प्राप्त होते हैं। शेष दो संग्रह-कृष्टियां न बंधती हैं और न उदयको प्राप्त होती हैं। प्रथम संग्रहकृष्टिकी अधस्तन

---

१ से काले किट्टीओ अणुहवदि हु चारिमासमडवस्सं। बंधो संतं मोहे पुव्वालावं तु सेसाणं॥ लब्धि. ५११.

२ ताहे कोहुच्छिट्ठं सव्वंघादी हु देसघादी हु। दोसमऊणदुआवलिणवकं ते फड्डयगदाओ॥ लब्धि. ५१२.

३ किट्टीविदगपढमे कोहस्स य पढमसंगहादो दु। कोहस्स य पढमठिदी पत्तो उव्वट्टगो मोहे॥ लब्धि. ५१४.   ४ जयध. अ. प. ११३४.   ५ जयध. अ. प. ११३५.

६ पढमस्स संगहस्स य असंखभागा उदेदि कोहस्स। बंधे वि तहा चेव य माणतियाणं तहा बंधे॥ लब्धि ५१५.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

वेदिज्जंति ताओ थोवाओ। जाओ किट्टीओ वेदिज्जंति, ण बज्झंति ताओ विसेसाहियाओ। तिस्से चेव पढमाए संगहकिट्टीए उवरिं जाओ किट्टीओ ण बज्झंति, ण वेदिज्जंति ताओ विसेसाहियाओ। उवरिं जाओ वेदिज्जंति, ण बज्झंति ताओ विसेसाहियाओ। मज्झे जाओ किट्टीओ बज्झंति वेदिज्जंति च, ताओ असंखेज्जगुणाओ[1]। किट्टीणं पढमसमयवेदगप्पहुडि मोहणीयस्स अणुभागाणमणुसमयओवट्टणा। पढमसमयकिट्टीवेदगस्स कोधकिट्टी उदए उक्कस्सिया बहुगी। बंधे उक्कस्सिया किट्टी अणंतगुणहीणा। विदियसमए उदए उक्कस्सिया किट्टी अणंतगुणहीणा। बंधे उक्कस्सिया किट्टी अणंतगुणहीणा। एवं सव्विस्से किट्टीवेदगद्धाए[2]। पढमसमए बंधेण जहण्णिया किट्टी तिव्वाणुभागा, उदए जहण्णिया किट्टी अणंतगुणहीणा। विदियसमए बंधे जहण्णिया किट्टी अणंतगुणहीणा, उदए जहण्णिया किट्टी अणंतगुणहीणा। एवं सव्विस्से किट्टीवेदगद्धाए[2]

जो कृष्टियां न बंधती हैं और न उदयको प्राप्त हैं वे स्तोक हैं। जो कृष्टियां उदयको प्राप्त हैं, किन्तु बंधती नहीं हैं वे विशेष अधिक हैं। उसी प्रथम संग्रहकृष्टिके ऊपर जो कृष्टियां न बंधती हैं और न उदयको प्राप्त हैं वे विशेष अधिक हैं। ऊपर जो उदयको प्राप्त हैं, परन्तु बंधती नहीं हैं वे विशेष अधिक हैं। मध्यमें जो कृष्टियां बंधती हैं और उदयको भी प्राप्त हैं वे असंख्यातगुणी हैं। कृष्टियोंके प्रथमसमयवर्ती वेदक होनेके कालसे लेकर मोहनीयके अनुभागोंका समय समयमें अपवर्तन होता है। प्रथम समय कृष्टिवेदकके उदयमें प्रवेश करनेवाली अनन्त मध्यम क्रोधकृष्टियोंमें उत्कृष्ट कृष्टि तीव्र अनुभागसे युक्त है। परन्तु बध्यमान अनन्त कृष्टियोंमें सर्वोत्कृष्ट कृष्टि अनन्तगुणी हीन है। द्वितीय समयमें उदयमें उत्कृष्ट कृष्टि अनन्तगुणी हीन है। बन्धमें उत्कृष्ट कृष्टि अनन्तगुणी हीन है। जिस प्रकार प्रथम और द्वितीय समयमें बन्ध व उदयमें उत्कृष्ट कृष्टियोंके अल्पबहुत्वका क्रम कहा गया है उसी प्रकार सब कृष्टिवेदककालमें कहना चाहिये। प्रथम समयमें बन्धसे जघन्य कृष्टि तीव्र अनुभागवाली और उदयमें जघन्य कृष्टि अनन्तगुणी हीन है। द्वितीय समयमें बन्धमें जघन्य कृष्टि अनन्तगुणी हीन है व उदयमें जघन्य कृष्टि अनन्तगुणी हीन है। इसी प्रकार सब कृष्टिवेदककालके तृतीयादि समयोंमें भी बन्ध व

१ कोहस्स पढमसंगहकिट्टिस्स य हेट्ठिमणुभयट्ठाणा। तत्तो उदयट्ठाणा उवरिं पुण अणुभयट्ठाणा ॥ उवरिं उदयट्ठाणा चत्तारि पदाणि होंति अहियकमा। मज्झे उभयट्ठाणा होंति असंखेज्जसंगुणिया ॥ ५१६-५१७.

२ प्रतिषु ' किट्टीए अद्धाए ' इति पाठः। पडिसमयं अहिगदिणा उदये बंधे च होदि उक्कस्सं। बंधुदये च जहण्णं अणंतगुणहीणया किट्टी ॥ लब्धि. ५२१.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

समए समए णिव्वग्गणाओ[1] जहण्णियाओ वि । एसा कोधकिट्टीए परूवणा ।

किट्टीणं पढमसमयवेदगस्स माणस्स पढमाए संगहकिट्टीणं किट्टीणमसंखेज्जा भागा बज्झंति, सेसाओ संगहकिट्टीओ ण बज्झंति । एवं माया-लोभाणं पि वत्तव्वं । किट्टीणं पढमसमयवेदगो बारसण्हं पि संगहकिट्टीणमग्गकिट्टिमादिं कादूणमेक्केक्किस्से संगहकिट्टीए असंखेज्जदिभागमणुसमयं विणासेदि । कोधस्स पढमकिट्टिं मोत्तूण सेसाणमेक्कारसण्हं संगहकिट्टीणमण्णाओ अपुव्वाओ किट्टीओ णिव्वत्तेदि ।

ताओ अपुव्वाओ किट्टीओ कदमादो पदेसग्गादो णिव्वत्तेदि ? बज्झमाणियादो संकामिज्जमाणियादो च पदेसग्गादो णिव्वत्तेदि[2] । बज्झमाणियादो थोवाओ णिव्वत्तेदि । संकामिज्जमाणियादो असंखेज्जगुणाओ । जाओ बज्झमाणियादो णिव्वत्तिज्जंति ताओ चदुसु पढमकिट्टीसु[3] । ताओ कदमम्हि ओगासे ? एक्केक्किस्से संगहकिट्टीए किट्टीअंतरेसु ।

उदयसम्बन्धी जघन्य कृष्टियोंके अल्पबहुत्वक्रमको कहना चाहिये । यह क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिकी प्ररूपणा है ।

कृष्टियोंके प्रथम समय वेदकके मानकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें कृष्टियोंके असंख्यात बहुभाग बंधते हैं । शेष संग्रहकृष्टियां नहीं बंधती हैं । इसी प्रकार माया और लोभके भी कहना चाहिये । कृष्टियोंका प्रथम समय वेदक बारहों संग्रहकृष्टियोंके उपरिम भागमें उत्कृष्ट कृष्टिको आदि करके एक एक संग्रहकृष्टिके असंख्यातवें भागमात्र कृष्टियोंको समय समयमें नष्ट करता है । क्रोधकी प्रथम कृष्टिको छोड़कर शेष ग्यारह कृष्टियोंके (नीचे और उनके अन्तरालमें) अपूर्व कृष्टियोंको रचता है ।

शंका—उन अपूर्व कृष्टियोंको किस प्रदेशाग्रसे रचता है ?

समाधान—बध्यमान और संक्रम्यमाण प्रदेशाग्रसे उन अपूर्व कृष्टियोंको रचता है । बध्यमान प्रदेशाग्रसे स्तोक अपूर्व कृष्टियोंको रचता है, किन्तु संक्रम्यमाण प्रदेशाग्रसे असंख्यातगुणी अपूर्व कृष्टियोंको रचता है । जो बध्यमान प्रदेशाग्रसे अपूर्व कृष्टियां रची जाती हैं वे चार प्रथम संग्रहकृष्टियोंमेंसे रची जाती हैं ।

शंका—उन कृष्टियोंको किस स्थानमें रचता है ?

समाधान—एक एक संग्रहकृष्टिकी अवयवकृष्टियोंके अन्तरालोंमें रचता है ।

---

१ एत्थ णिव्वग्गणाओ त्ति वुत्ते बंधोदयजहण्णकिट्टीणमणंतगुणहाणीए ओसरणवियप्पा गहेयव्वा । जयध. अ. प. ११८२.

२ कोहस्स पढमकिट्टी मोत्तूणेक्कारसंगहाणं तु । बंधणसंकमदव्वादपुव्वकिट्टिं करेदी हु । लब्धि. ५२०.

३ बंधणदव्वादो पुण चदुसट्ठाणेसु पढमकिट्टीसु । बंधुप्पवकिट्टीदो संकमकिट्टी असंखगुणा ।। लब्धि. ५२१.

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

किं सव्वेसु किट्टीअंतरेसु, आहो ण सव्वेसु ? ण सव्वेसु[1]। जदि ण[2] सव्वेसु, कदमेसु अंतरेसु अपुव्वाओ किट्टीओ णिव्वत्तेदि ? वुच्चदे– बज्झमाणियाणं किट्टीणं जं पढमकिट्टीअंतरं तत्थ णत्थि । एवमसंखेज्जाणि किट्टीअंतराणि असंखेज्जपलिदोवमपढमवग्गमूलमेत्ताणि अदिच्छिदूण[3] अपुव्वकिट्टी णिव्वत्तिज्जदि । पुणो एत्तियाणि चेव किट्टीअंतराणि गंतूण अपुव्वा किट्टी णिव्वत्तिज्जदि[4] ।

बज्झमाणयस्स पदेसग्गस्स णिसेयसेडीपरूवणं वत्तइस्सामो– तत्थ जहण्णियाए किट्टीए बज्झमाणियाए बहुगं, विदियाए किट्टीए विसेसहीणमणंतभागेण, तदियाए विसेसहीणमणंतभागेण, चउत्थीए विसेसहीणमणंतभागेण । एवमणंतरोवणिधाए ताव विसेसहीणं जाव अपुव्वकिट्टिमपत्तो त्ति । पुणो अपुव्वाए किट्टीए अणंतगुणं । अपुव्वादो किट्टीदो जा अणंतरकिट्टी तत्थ अणंतगुणहीणं । तदो पुणो अणंतभागहीणं । एवं सेसासु सव्वासु किट्टीसु[5] ।

शंका—क्या सब कृष्टि-अन्तरालोंमें उन अपूर्व कृष्टियोंको रचता है या सब अन्तरालोंमें नहीं रचता ?

समाधान—सब कृष्टि-अन्तरालोंमें उनकी रचना नहीं होती ।

शंका—यदि सब कृष्टि-अन्तरालोंमें नहीं रची जातीं तो किन अन्तरालोंमें अपूर्व कृष्टियां रची जाती हैं ?

समाधान—बध्यमान कृष्टियोंका जो प्रथम कृष्टि-अन्तर है उसमें उनकी रचना नहीं होती । इस प्रकार असंख्यात पल्योपमके प्रथम वर्गमूलमात्र असंख्यात कृष्टि-अन्तरालोंको लांघकर प्रथम अपूर्व कृष्टि रची जाती है । पुनः इतने ही कृष्टि-अन्तरालोंका अतिक्रमणकर द्वितीय अपूर्व कृष्टि रची जाती है ।

अब बध्यमान प्रदेशाग्रके निषेकोंकी श्रेणिप्ररूपणाको कहते हैं—उनमें बध्यमान जघन्य कृष्टिमें बहुत, द्वितीय कृष्टिमें अनन्तवें भागसे विशेष हीन, तृतीय कृष्टिमें अनन्तवें भागसे विशेष हीन, और चतुर्थ कृष्टिमें अनन्तवें भागसे विशेष हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है । इस प्रकार अनन्तर क्रमसे तब तक विशेष हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है जब तक अपूर्व कृष्टि प्राप्त नहीं हो जाती । पुनः अपूर्व कृष्टिमें अनन्तगुणा प्रदेशाग्र दिया जाता है । अपूर्व कृष्टिसे जो अनन्तर कृष्टि है, उसमें अनन्तगुणा हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है । इससे आगे पुनः अनन्तभाग हीन दिया जाता है । इसी प्रकार शेष सब कृष्टियोंमें जानना चाहिये ।

---

१ आ-प्रतौ ' ण सव्वेसु ' इति पाठः नास्ति ।　　　२ अ-प्रतौ ' स ' इति पाठः ।

३ प्रतिषु ' अविच्छिदूण ' म-प्रतौ ' अदिच्छिदूण ' इत्येव पाठः ।

४ संखातीदगुणाणि य पल्लस्सादिमपदाणि गंतूण । एक्केक्कबंधकिट्टी किट्टीणं अंतरे होदि ॥ लब्धि. ५३२.

५ दिज्जदि अणंतभागेणूणकमं बंधगे य णंतगुणं । तण्णंतरे णंतगुणूणं तत्तो णंतभागूणं ॥ लब्धि. ५३३.

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

जाओ संकामिज्जमाणयादो पदेसग्गादो अपुव्वाओ किट्टीओ णिव्वत्तिज्जंति ताओ दुसु ओगासेसु । तं जहा– किट्टी-अंतरेसु च संगहकिट्टी-अंतरेसु च । जाओ संगहकिट्टिअंतरेसु ताओ थोवाओ, जाओ किट्टी-अंतरेसु ताओ असंखेज्जगुणाओ[1] । जाओ संगहकिट्टी-अंतरेसु तासिं जहा किट्टीकरणे अपुव्वाणं णिव्वत्तिज्जमाणियाणं किट्टीणं विधी तहा कायव्वो । जाओ किट्टी-अंतरेसु तासिं जहा बज्झमाणएण पदेसग्गेण अपुव्वाणं णिव्वत्तिज्जमाणियाणं किट्टीणं विधी तहा कायव्वो । णवरि थोवयराणि किट्टीअंतराणि गंतूण संछुब्भमाणपदेसग्गेण अपुव्वाओ किट्टीओ णिव्वत्तेदि । ताणि किट्टी-अंतराणि पगणणादो पलिदोवमवग्गमूलस्स असंखेज्जदिभागो[2] ।

पढमसमयकिट्टीवेदगस्स जा कोधपढमकिट्टी तिस्से असंखेज्जदिभागो अणुसमयं विणासिज्जदि । जाओ किट्टीओ पढमसमए विणासिज्जंति ताओ बहुगाओ । जाओ विदियसमए विणासिज्जंति ताओ असंखेज्जगुणहीणाओ । एवं णेदव्वं जाव दुचरिमसमयअविणट्ठकोधपढमकिट्टि त्ति[3] । एदेण सव्वेण वि कालेण जाओ किट्टीओ विण-

---

जो अपूर्व कृष्टियां संक्रम्यमाण प्रदेशाग्रसे रची जाती हैं वे दो स्थानोंमें इस प्रकार रची जाती हैं— कृष्टि-अन्तरोंमें भी और संग्रहकृष्टि-अन्तरोंमें भी । जो संग्रहकृष्टि-अन्तरोंमें रची जाती हैं वे स्तोक हैं । जो कृष्टि-अन्तरोंमें रची जाती हैं वे असंख्यातगुणी हैं । जो संग्रहकृष्टि-अन्तरोंमें रची जाती हैं उनकी विधि, जैसी कृष्टिकरणमें निर्वर्तमान अपूर्व कृष्टियोंकी कही गई है, वैसी यहां भी जानना चाहिये । जो कृष्टि-अन्तरोंमें रची जाती हैं उनकी विधि, जैसी बध्यमान प्रदेशाग्रसे निर्वर्तमान अपूर्व कृष्टियोंकी कही गई है, वैसी यहां भी जानना चाहिये । विशेष केवल यह है कि यहां पहिलेसे स्तोकतर कृष्टि-अन्तरोंका उल्लंघन करके संक्रम्यमाण प्रदेशाग्रसे अपूर्व कृष्टियोंको रचता है । वे कृष्टि-अन्तर गणनासे पल्योपमवर्गमूलके असंख्यातवें भागमात्र हैं ।

प्रथम समय कृष्टिवेदकके जो क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टि है उसका असंख्यातवां भाग समय-समयमें नष्ट किया जाता है । जो कृष्टियां प्रथम समयमें नष्ट की जाती हैं वे बहुत हैं । जो द्वितीय समयमें नष्ट की जाती हैं वे असंख्यातगुणी हीन हैं । इस प्रकार यह क्रम अपने विनाशकालके द्विचरम समयमें अविनष्ट क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टि तक जानना चाहिये । इस सभी कालसे जो कृष्टियां नष्ट होती हैं वे प्रथम समय कृष्टिवेदकके

---

१ संकमदो किट्टीणं संगहकिट्टीणमंतरे होदि । संगहअन्तरजादो किट्टीअंतरभवा असंखगुणा ॥ लब्धि. ५३४.

२ संगहअंतरजाणं अपुव्वकिट्टिं व बंधकिट्टिं वा । इदराणमंतरं पुण पल्लपदासंखभागं तु ॥ लब्धि. ५३५.

३ कोहादिकिट्टिवेदगपढमे तस्स य असंखभागं तु । णासेदि हु पडिसमयं तस्सासंखेज्जभागकमं ॥ लब्धि. ५३६.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

ट्ठाओ ताओ पढमसमयकिट्टीवेदगस्स कोधस्स पढमसंगहकिट्टीए अबज्झमाणियाणं[1] किट्टीणमसंखेज्जदिभागो[2]।

कोधस्स पढमकिट्टिवेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी तिस्से पढमट्ठिदीए समयाहियाए आवलियाए सेसाए एदम्हि समए जो विधी तं विधिं वत्तइस्सामो। तं जहा– ताधे चेव कोधस्स जहण्णट्ठिदिउदीरगो (१) कोधपढमकिट्टीए चरिमसमयवेदगो च[3] (२)। जा पुव्वपवत्ता संजलणाणुभागसंतकम्मस्स अणुसमयओवट्टणा सा तहा चेव (३)। चदुसंजलणाणं ठिदिबंधो बे मासा चत्तालीसं च दिवसा अंतोमुहुत्तूणा (४)। संजलणाणं ट्ठिदिसंतकम्मं छ वस्साणि अट्ठ मासा अंतोमुहुत्तूणा[4] (५)। तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो दस वस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि (६)। घादिकम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्साणि (७)। सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं असंखेज्जाणि वस्साणि[5] (८)।

क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिकी अबध्यमान कृष्टियोंके भी असंख्यातवें भागप्रमाण हैं।

क्रोधकी प्रथम कृष्टिका वेदन करनेवालेके जो प्रथमस्थिति है, उस प्रथमस्थितिमें एक समय अधिक आवलिके शेष रहनेपर इस समयमें जो विधि है उस विधिको कहते हैं। वह इस प्रकार है— उसी समयमें क्रोधकी जघन्य स्थितिका उदीरक (१) और क्रोधकी प्रथम कृष्टिका चरम समय वेदक होता है (२)। प्रति समयमें संज्वलनचतुष्कके अनुभागसत्वका अपकर्षण जो पूर्वसे प्रवृत्त है वह उसी प्रकार रहता है (३)। संज्वलनचतुष्कका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त कम दो मास और चालीस दिवसप्रमाण होता है (४)। संज्वलनचतुष्कका स्थितिसत्व अन्तर्मुहूर्त कम छह वर्ष और आठ मासप्रमाण होता है (५)। तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त कम दश वर्षप्रमाण होता है (६)। घातिया कर्मोंका स्थितिसत्व संख्यात वर्षमात्र होता है (७)। शेष कर्मोंका स्थितिसत्व असंख्यात वर्षमात्र होता है (८)।

---

१ पढमसमयकिट्टिवेदगस्स कोहपढमसंगहकिट्टीए हेट्ठिमोवरिमासंखेज्जभागमेत्ता किट्टीओ अबज्झमाणियाओ णाम। पुणो तत्थ उवरिमाबज्झमाणकिट्टीणमसंखेज्जदिभागमेत्तीओ चेव किट्टीओ एदेण सव्वेण वि कालेण विणासिदाओ दट्ठव्वाओ। जयध. अ. प. ११८८.

२ कोहस्स य जे पढमे संगहकिट्टिम्हि णट्ठकिट्टीओ। बंधुज्झियकिट्टीणं तस्स असंखेज्जभागो हु॥ लब्धि. ५३७.

३ कोहादिकिट्टियादिट्ठिदिम्हि समयाहियावलीसेसे। ताहे जहण्णुदीरइ चरिमो पुण वेदगो तस्स॥ लब्धि. ५३८.

४ ताहे संजलणाणं बंधो अंतोमुहुत्तपरिहीणो। सत्तो वि य सददिवसा अडमासब्भहियछव्वरिसा॥ लब्धि. ५३९.

५ घादितियाणं बंधो दसवासंतोमुहुत्तपरिहीणा। सत्तं संखं वस्सा सेसाणं संखऽसंखवस्साणि॥ लब्धि. ५४०.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

से काले कोधस्स विदियकिट्टीदो पदेसग्गमोकड्डिदूण कोधस्स पढमट्ठिदिं करेदि[1]। ताधे कोधस्स पढमकिट्टीणं[2] संतकम्मं दोआवलियबंधा[3] दुसमऊणा, जमुदयावलियं पविट्ठं तं च सेसं पढमकिट्टीए[4]। ताधे कोधस्स पढमसमयविदियकिट्टीवेदगो[4]। जो कोधस्स पढमकिट्टिं वेदयमाणस्स विधी सो कोधस्स विदियकिट्टिं वेदयमाणस्स विधी कायव्वो[5]। तं जहा– उदिण्णाणं किट्टीणं बज्झमाणियाणं किट्टीणं विणासिज्जमाणीणं किट्टीणं अपुव्वाणं णिव्वत्तिज्जमाणियाणं बज्झमाणेण पदेसग्गेण संछुब्भमाणेण च पदेसग्गेण णिव्वत्तिज्जमाणियाणं।

एत्थ संकममाणस्स पदेसग्गस्स विधिं वत्तइस्सामो। तं जहा– कोधविदियकिट्टीणं पदेसग्गं कोधतदियं च माणपढमं च गच्छदि। कोधस्स तदियादो माणस्स पढमं चेव गच्छदि। माणस्स पढमादो किट्टीदो माणस्स विदियं तदियं च मायाए पढमं च गच्छदि। माणस्स विदियकिट्टीदो माणस्स तदियं च मायाए पढमं च गच्छदि।

अनन्तर समयमें क्रोधकी द्वितीय कृष्टिसे प्रदेशाग्रका अपकर्षण कर क्रोधकी प्रथमस्थितिको करता है। उस समयमें क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें सत्वस्वरूप जो दो समय कम दो आवलिमात्र नवक बंधप्रदेशाग्र है वह, और जो प्रदेशाग्र उदयावलिमें प्रविष्ट है वह भी प्रथम कृष्टिमें शेष रहता है। उस समय क्रोधकी द्वितीय कृष्टिका प्रथम समय वेदक होता है। क्रोधकी प्रथम कृष्टिको वेदन करनेवालेकी जो विधि कही गई है वही विधि कोधकी द्वितयि कृष्टिको वेदन करनेवालेके भी कहना चाहिये। वह इस प्रकार है— उदीर्ण कृष्टियोंकी, बध्यमान कृष्टियोंकी, नष्ट की जानेवाली कृष्टियोंकी, बध्यमान प्रदेशाग्रसे निर्वर्तमान अपूर्व कृष्टियोंकी, और संक्रम्यमाण प्रदेशाग्रसे भी निर्वर्तमान कृष्टियोंकी विधि प्रथम संग्रहकृष्टिमें कही हुई विधिके ही समान कहना चाहिये।

यहां संक्रम्यमाण प्रदेशाग्रकी विधिको कहते हैं। वह इस प्रकार है – क्रोधकी द्वितीय कृष्टिसे प्रदेशाग्र क्रोधकी तृतीय और मानकी प्रथम कृष्टिको प्राप्त होता है। क्रोधकी तृतीय कृष्टिसे प्रदेशाग्र मानकी प्रथम कृष्टिको ही प्राप्त होता है। मानकी प्रथम कृष्टिसे मानकी द्वितीय और तृतीय तथा मायाकी प्रथम कृष्टिको भी प्राप्त होता है। मानकी द्वितीय कृष्टिसे मानकी तृतीय और मायाकी प्रथम कृष्टिको प्राप्त होता है।

---

१ से काले कोहस्स य विदियादो संगहादु पढमठिदी। कोहस्स विदियसंगहकिट्टिस्स य वेदगो होदि ॥ लब्धि. ५४१.

२ जयधवलायां ' पढमसंगहकिट्टीए ' इति पाठः।

३ प्रतिषु ' दो आवलियबंधा ' इति पाठः।

४ कोहस्स पढमसंगहकिट्टिस्सावलियपमाण पढमठिदी। दोसमऊणदुआवलिणवकं च वि चेउदे ताहे ॥ लब्धि. ५४२.

५ कोहस्स विदियकिट्टी वेदयमाणस्स पढमकिट्टिं वा। उदओ बंधो णासो अपुव्वकिट्टीण करणं च ॥ लब्धि. ५४४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माणस्स तदियकिट्टीदो मायाए पढमं गच्छदि। मायाए पढमादो किट्टीदो पदेसग्गं मायाए विदियं तदियं च लोभस्स पढमं किट्टिं च गच्छदि। मायाए विदियादो किट्टीदो पदेसग्गं मायाए तदियं लोभस्स पढमं च गच्छदि। मायाए तदियादो किट्टीदो लोभस्स पढमं चेव गच्छदि। लोभस्स पढमादो किट्टीदो पदेसग्गं लोभस्स विदियं तदियं च गच्छदि। लोभस्स विदियादो किट्टीदो पदेसग्गं लोभस्स तदियं चेव गच्छदि[१]।

जहा कोधस्स पढमकिट्टिं वेदयमाणो चदुण्हं कसायाणं पढमकिट्टीओ[२] बंधदि तहा कोधस्स विदियकिट्टिं वेदयमाणो चदुण्हं कसायाणं विदियकिट्टीओ किं बंधदि उदाहो ण बंधदि त्ति? वुच्चदे- जस्स कसायस्स जं किट्टिं वेदयदि तस्स कसायस्स तं किट्टिं बंधदि। सेसाणं कसायाणं पढमकिट्टीओ बंधदि[३]।

कोधविदियकिट्टिं पढमसमयवेदगस्स एक्कारससु संगहकिट्टीसु अंतरकिट्टीणमप्पाबहुअं वत्तइस्सामो। तं जहा- सव्वत्थोवाओ माणस्स पढमाए संगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ

मानकी तृतीय कृष्टिसे मायाकी प्रथम कृष्टिको प्राप्त होता है। मायाकी प्रथम कृष्टिसे प्रदेशाग्र मायाकी द्वितीय और तृतीय तथा लोभकी प्रथम कृष्टिको भी प्राप्त होता है। मायाकी द्वितीय कृष्टिसे प्रदेशाग्र मायाकी तृतीय और लोभकी प्रथम कृष्टिको प्राप्त होता है। मायाकी तृतीय कृष्टिसे प्रदेशाग्र लोभकी प्रथम कृष्टिको ही प्राप्त होता है। लोभकी प्रथम कृष्टिसे प्रदेशाग्र लोभकी द्वितीय और तृतीय कृष्टिको प्राप्त होता है। लोभकी द्वितीय कृष्टिसे प्रदेशाग्र लोभकी तृतीय कृष्टिको ही प्राप्त होता है।

शंका—जिस प्रकार क्रोधकी प्रथम कृष्टिका वेदन करनेवाला चार कषायोंकी प्रथम कृष्टियोंको बांधता है, उसी प्रकार क्रोधकी द्वितीय कृष्टिका वेदन करनेवाला चार कषायोंकी द्वितीय कृष्टियोंको क्या बांधता है अथवा नहीं बांधता है?

समाधान—जिस कषायकी जिस कृष्टिको भोगता है उस कषायकी उस कृष्टिको बांधता है, शेष कषायोंकी प्रथम कृष्टियोंको बांधता है।

क्रोधकी द्वितीय कृष्टिके प्रथम समय वेदककी ग्यारह संग्रहकृष्टियोंमें अन्तरकृष्टियोंके अल्पबहुत्वको कहते हैं। वह इस प्रकार है— मानकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें

१ कोहस्स विदियसंगहकिट्टी वेदंतयस्स संकमणं। सट्ठाणे तदियोत्ति य तदणंतरहेट्ठिमस्स पढमं च॥ पढमो विदिये तदिये हेट्ठिमपढमे च विदियगो तदिये। हेट्ठिमपढमे तदियो हेट्ठिमपढमे च संकमदि॥ लब्धि. ५४५-५४६.

२ प्रतिषु 'पढमकिट्टीदो' इति पाठः।

३ जस्स कसायस्स जं किट्टिं वेदयदि तस्स तं चेव। सेसाण कसायाणं पढमं किट्टिं तु बंधदि हु॥ लब्धि. ५४८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विदियाए संगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ। तदियाए संगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ। कोधस्स तदियाए संगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ। मायाए पढमाए संगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ। विदियाए संगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ। तदियाए संगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ। लोभस्स पढमाए संगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ। विदियाए संगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ। तदियाए संगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ। कोधस्स विदियसंगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ संखेज्जगुणाओ। पदेसग्गस्स वि एवं चेव अप्पाबहुअं[1]।

कोधस्स विदियकिट्टीवेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी तिस्से पढमट्ठिदीए आवलिय-पडिआवलियाए सेसाए आगाल-पडिआगालो वोच्छिण्णो। तिस्से चेव पढमट्ठिदीए समयाहियाए आवलियाए सेसाए ताधे कोधस्स विदियकिट्टीए चरिमसमयवेदगो[2]। ताधे संजलणाणं ट्ठिदिबंधो वे मासा वीसं च दिवसा देसूणा[3]। तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो

अन्तरकृष्टियां सबसे स्तोक हैं। द्वितीय संग्रहकृष्टिमें अन्तरकृष्टियां विशेष अधिक हैं। तृतीय संग्रहकृष्टिमें अन्तरकृष्टियां विशेष अधिक हैं। क्रोधकी तृतीय संग्रहकृष्टिमें अन्तरकृष्टियां विशेष अधिक हैं। मायाकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें अन्तरकृष्टियां विशेष अधिक हैं। द्वितीय संग्रहकृष्टिमें अन्तरकृष्टियां विशेष अधिक हैं। तृतीय संग्रहकृष्टिमें अन्तरकृष्टियां विशेष अधिक हैं। लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें अन्तरकृष्टियां विशेष अधिक हैं। द्वितीय संग्रहकृष्टिमें अन्तरकृष्टियां विशेष अधिक हैं। तृतीय संग्रहकृष्टिमें अन्तरकृष्टियां विशेष अधिक हैं। क्रोधकी द्वितीय संग्रहकृष्टिमें अन्तरकृष्टियां संख्यातगुणी हैं। उन अन्तरकृष्टियोंके प्रदेशाग्रका भी इसी प्रकार ही अल्पबहुत्व करना चाहिये।

क्रोधकी द्वितीय कृष्टिका वेदन करनेवालेके जो प्रथमस्थिति है उस प्रथम-स्थितिमें आवलि और प्रत्यावलिके शेष रहनेपर आगाल व प्रत्यागाल व्युच्छित्तिको प्राप्त हो जाते हैं। उसी प्रथमस्थितिमें एक समय अधिक आवलिके शेष रहनेपर उस समयमें क्रोधकी द्वितीय कृष्टिका अन्तिम समय वेदक होता है। उस समयमें संज्वलन-चतुष्कका स्थितिबन्ध दो मास और कुछ कम बीस दिवसप्रमाण होता है। तीन

---

१ माणतिय कोहतदिये मायालोहस्स तियतिये अहिया। संखगुणं वेदिज्जे अंतरकिट्टी पदेसो य ॥ लब्धि. ५४९.

२ वेदिज्जादिट्ठिदिए समयाहियआवलीयपरिसेसे। ताहे जहण्णुदीरणचरिमो पुण वेदगो तस्स ॥ लब्धि. ५५०.

३ ताहे संजलणाणं बंधो अंतोमुहुत्तपरिहीणो। सत्तो वि य दिणसीदी चउमासब्भहियपणवस्सा ॥ लब्धि. ५५१.

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

वासपुधत्तं । सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि[1] । संजलणाणं ठिदिसंतकम्मं पंच वस्साणि चत्तारि मासा अंतोमुहुत्तूणा । तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । णामा-गोद-वेदणीयाणं ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जाणि वस्साणि[2] ।

तदो से काले कोधस्स तदियकिट्टीदो पदेसग्गमोकड्डिदूण पढमट्ठिदिं करेदि । ताधे कोधस्स तदियसंगहकिट्टीए अंतरकिट्टीणमसंखेज्जा भागा उदिण्णा । तासिं चेव असंखेज्जा भागा बज्झंति । जो विदियकिट्टिं वेदयमाणस्स विधी सो चेव विधी तदियकिट्टिं वेदयमाणस्स वि कादव्वो । तदियकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी तिस्से पढमट्ठिदीए आवलियाए समयाहियाए सेसाए कोधस्स चरिमसमयवेदगो जहण्णट्ठिदीए उदीरगो च । ताधे ट्ठिदिबंधो संजलणाणं दो मासा पडिवुण्णा । संतकम्मं चत्तारि वस्साणि पुण्णाणि[3] ।

से काले माणस्स पढमकिट्टिमोकड्डिदूण पढमट्ठिदिं करेदि । जा एत्थ सव्वमाण-

---

घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध वर्षपृथक्त्वमात्र होता है । शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है । संज्वलनचतुष्कका स्थितिसत्व पांच वर्ष और अन्तर्मुहूर्त कम चार मासप्रमाण होता है । तीन घातिया कर्मोंका स्थितिसत्व संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है । नाम, गोत्र व वेदनीय, इनका स्थितिसत्व असंख्यात वर्षप्रमाण होता है ।

उसके अनन्तर कालमें क्रोधकी तृतीय कृष्टिसे प्रदेशाग्रका अपकर्षण कर प्रथमस्थितिको करता है । उस समयमें क्रोधकी तृतीय संग्रहकृष्टिकी अन्तरकृष्टियोंके असंख्यात बहुभाग उदीर्ण हो जाते हैं । और उन्हींके असंख्यात भाग बंधते हैं । द्वितीय कृष्टिको वेदन करनेवालेके जो विधि कही गई है, वही विधि तृतीय कृष्टिको वेदन करनेवालेके भी कहना चाहिये । तृतीय कृष्टिको वेदन करनेवालेके जो प्रथमस्थिति है उस प्रथमस्थितिमें एक समय अधिक आवलिमात्रके शेष रहनेपर क्रोधका अन्तिम समय वेदक और जघन्य स्थितिका उदीरक भी होता है । उस समयमें संज्वलनचतुष्कका स्थितिबन्ध परिपूर्ण दो मास और स्थितिसत्व पूर्ण चार वर्षप्रमाण होता है ।

अनन्तर समयमें मानकी प्रथम कृष्टिका अपकर्षणकर प्रथमस्थितिको करता

---

१ घादितियाणं बंधो वासपुधत्तं तु सेसपयडीणं । वस्साणं संखेज्जसहस्साणि हवंति णियमेणं ॥ लब्धि. ५५२.

२ घादितियाणं सत्तं संखसहस्साणि होंति वस्साणं । तिण्हं पि अघादीणं वस्साणि असंखमेत्ताणि ॥ लब्धि. ५५३.

३ से काले कोहस्स य तदियादो संगहादु पढमठिदी । अंते संजलणाणं बंधं सत्तं दुमास चउवस्सा ॥ लब्धि. ५५४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेदगद्धा तिस्से वेदगद्धाए[1] तिभागमेत्ता पढमट्ठिदी[2]। तदो माणस्स पढमकिट्टिं वेदयमाणो तिस्से पढमसंगहकिट्टीए अंतरकिट्टीणमसंखेज्जे भागे वेदयदि। तदो उदिण्णाहिंतो विसेसहीणाओ बंधदि। सेसाणं कसायाणं पढमकिट्टीओ चेव बंधदि। जेणेव विहिणा कोहस्स पढमकिट्टी वेदिदा तेणेव विहिणा माणस्स पढमकिट्टिं वेदयदि। किट्टीविणासणे बज्झमाणएण संकामिज्जमाणएण च पदेसग्गेण अपुव्वाणं किट्टीणं करणे किट्टीणं बंधोदयणिव्वग्गणकरणेसु णत्थि णाणत्तं अण्णेसु च अभणिदेसु। एदेण कमेण माणपढमकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी तिस्से पढमट्ठिदीए जाधे समयाहिआवलिया सेसा ताधे तिण्हं संजलणाणं ट्ठिदिबंधो मासो वीसं च दिवसा अंतोमुहुत्तूणा; संतकम्मं तिण्णि वस्साणि चत्तारि मासा च अंतोमुहुत्तूणा[3]।

से काले माणस्स विदियसंगहकिट्टीदो पदेसग्गमोकड्डिदूण पढमट्ठिदिं करेदि तेणेव विधिणा संपत्तो। माणस्स विदियकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी तिस्से समया-

---

है। यहां जो सब मानवेदककाल है उस मानवेदककालके त्रिभागमात्र प्रथमस्थिति है। पश्चात् मानकी प्रथम कृष्टिका वेदन करनेवाला उस प्रथम संग्रहकृष्टिकी अन्तरकृष्टियोंके असंख्यात भागोंका वेदन करता है। उन उदीर्ण हुई कृष्टियोंसे विशेष हीन कृष्टियोंको बांधता है। शेष कषायोंकी प्रथम कृष्टियोंको ही बांधता है। जिस विधिसे क्रोधकी प्रथम कृष्टिका वेदन किया है उसी विधिसे मानकी प्रथम कृष्टिका वेदन करता है। कृष्टिविनाशमें, बध्यमान व संक्रम्यमाण प्रदेशाग्रसे अपूर्व कृष्टियोंके करनेमें तथा कृष्टियोंके बंध, उदयसम्बन्धी निर्वर्गणा अर्थात् अनन्तगुणहानिरूप अपसरणभेद, इन करणोंमें कोई विशेषता नहीं है, तथा जो अन्य करण नहीं कहे गये हैं उनके करनेमें भी विशेषता नहीं है। इस क्रमसे मानकी प्रथम कृष्टिको वेदन करनेवालेके जो प्रथमस्थिति है, उस प्रथमस्थितिमें जब एक समय अधिक आवलिमात्र शेष रहती है तब क्रोध विना तीन संज्वलन कषायोंका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त कम एक मास बीस दिन तथा स्थितिसत्व तीन वर्ष और अन्तर्मुहूर्त कम चार मासप्रमाण होता है।

तदनन्तर समयमें मानकी द्वितीय संग्रहकृष्टिसे प्रदेशाग्रका अपकर्षण कर प्रथमस्थितिको करता है, व मानकी प्रथम संग्रहकृष्टिका अधिकार कर जो पूर्वमें विधि प्ररूपित की गई है उसी विधिसे संयुक्त होता हुआ अपने कृष्टिवेदककालके अन्तिम समयको प्राप्त होता है। उस समय मानकी द्वितीय कृष्टिको वेदन करनेवालेके जो प्रथमस्थिति है

---

१ प्रतिषु 'जा एत्थ सव्वमाणवेदगद्धाए तिभागमेत्ता' इति पाठः।

२ से काले माणस्स य पढमादो संगहादु पढमठिदी। माणोदयअद्धाये तिभागमेत्ता हु पढमठिदी ॥ लब्धि. ५५५.

३ कोहपढमं व माणो चरिमे अंतोमुहुत्तपरिहीणो। दिणमासपण्णचत्तं बंधं सत्तं तिसंजलणगाणं ॥ लब्धि. ५५६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हियावलिया सेसा त्ति[1]। ताधे संजलणाणं ट्ठिदिबंधो मासो दस च दिवसा देसूणा; संतकम्मं दो वस्साणि अट्ठ च मासा देसूणा[2]।

से काले माणतदियकिट्टीदो पदेसग्गमोकड्डिदूण पढमट्ठिदिं करेदि तेणेव विहिणा संपत्तो। माणस्स तदियकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी तिस्से आवलिया समयाहियमेत्ता सेसा त्ति। ताधे माणस्स चरिमसमयवेदगो। ताधे तिण्हं संजलणाणं ट्ठिदिबंधो मासो पडिवुण्णो; संतकम्मं वे वस्साणि पडिवुण्णाणि[3]।

तदो से काले मायाए पढमकिट्टीए पदेसग्गमोकड्डिदूण पढमट्ठिदिं करेदि तेणेव विहिणा संपत्तो। मायापढमकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी तिस्से समयाहियावलिया सेसा त्ति। ताधे ट्ठिदिबंधो दोण्हं संजलणाणं पणुवीसदिवसा देसूणा; ट्ठिदिसंतकम्मं वस्सं अट्ठ च मासा देसूणा[4]।

उसमें एक समय अधिक आवलिमात्र शेष रहती है। तब संज्वलनकषायोंका स्थितिबन्ध एक मास और कुछ कम दश दिन तथा सत्व दो वर्ष और कुछ कम आठ मासप्रमाण होता है।

तदनन्तर समयमें मानकी तृतीय कृष्टिसे प्रदेशाग्रका अपकर्षण कर प्रथमस्थितिको करता है और उसी विधिसे अपने कृष्टिवेदककालके अन्तिम समयको प्राप्त होता है। मानकी तृतीय कृष्टिका वेदन करनेवाले जीवके जो प्रथमस्थिति है, उसमें एक समय अधिक आवलिमात्र शेष रहती है। उस समयमें मानका अन्तिम समय वेदक होता है। तब तीन संज्वलनकषायोंका स्थितिबन्ध परिपूर्ण एक मास और सत्व परिपूर्ण दो वर्षप्रमाण होता है।

उसके अनन्तर समयमें मायाकी प्रथम कृष्टिसे प्रदेशाग्रका अपकर्षण कर प्रथमस्थितिको करता है और उसी विधिसे अपने कृष्टिवेदककालके अन्तिम समयको प्राप्त होता है। मायाकी प्रथम कृष्टिका वेदन करनेवाले जीवके जो प्रथमस्थिति है उसमें एक समय अधिक आवलिमात्र शेष रहती है। तब शेष दो संज्वलनकषायोंका स्थितिबन्ध कुछ कम पच्चीस दिवस तथा स्थितिसत्व एक वर्ष और कुछ कम आठ मासप्रमाण होता है।

---

१ माणपढमसंगहकिट्टिमहिकिच्च पुव्वं परूविदो जो विही तेणेव विहिणा अणूणाहिएण संजुत्तो एसो सगकिट्टीविदगद्धाए चरिमसमयसंपत्तो। ताधे अप्पणो पढमट्ठिदिसमयाहियावलियमेत्ती सेसा, सेसपढमट्ठिदीए सगवेदगकालब्भंतरे णिज्जिण्णत्तादो त्ति। एसो एत्थ सुत्तत्थविणिण्णओ। जयध. अ. प. ११९४-९५.

२ विदियस्स माणचरिमे चत्तं वत्तीस दिवसमासाणि। अंतोमुहुत्तहीणा बंधो सत्तो तिसंजलणगाणं ॥ लब्धि-५५७.

३ तादियस्स माणचरिमे तीसं चउवीस दिवसमासाणि। तिण्हं संजलणाणं ठिदिबंधो तह य सत्तो य ॥ लब्धि. ५५८.

४ पढमगमायाचरिमे पणवीसं वीस दिवसमासाणि। अंतोमुहुत्तहीणा बंधो सत्तो दुसंजलणगाणं ॥ लब्धि. ५५९.

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

से काले मायाए विदियकिट्टीदो पदेसग्गमोकड्डिदूण पढमट्ठिदिं करेदि । सो वि मायाए विदियकिट्टिवेदगो तेणेव विहिणा संपत्तो । मायाए विदियकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी तिस्से पढमट्ठिदीए आवलिया समयाहिया सेसा त्ति । ताधे ट्ठिदिबंधो वीसं दिवसा देसूणा; ट्ठिदिसंतकम्मं सोलस मासा देसूणा[1] ।

से काले मायाए तदियकिट्टीदो पदेसग्गमोकड्डिदूण पढमट्ठिदिं करेदि तेणेव विहिणा संपत्तो । मायाए तदियकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी तिस्से पढमट्ठिदीए समयाहियावलिया सेसा त्ति । ताधे मायाए चरिमसमयवेदगो । ताधे दोण्हं संजलणाणं ट्ठिदिबंधो अद्धमासो पडिवुण्णो; ट्ठिदिसंतकम्ममेक्कं वस्सं पडिवुण्णं[2] । तिण्हं घादिकम्माणं ठिदिबंधो मासपुधत्तं । तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । इदरेसिं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्साणि; ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जाणि वस्साणि[3] ।

अनन्तर समयमें मायाकी द्वितीय कृष्टिसे प्रदेशाग्रका अपकर्षण कर प्रथमस्थितिको करता है, वह मायाकी द्वितीय कृष्टिका वेदक भी उसी विधिसे अपने कृष्टिवेदककालके अन्तिम समयको प्राप्त होता है । मायाकी द्वितीय कृष्टिका वेदन करनेवालेके जो प्रथमस्थिति है उस प्रथमस्थितिमें एक समय अधिक आवलिमात्र शेष रहती है । उस समयमें संज्वलनकषायोंका स्थितिबन्ध कुछ कम बीस दिन और स्थितिसत्व कुछ कम सोलह मासप्रमाण होता है ।

अनन्तर समयमें मायाकी तृतीय कृष्टिसे प्रदेशाग्रका अपकर्षण कर प्रथमस्थितिको करता है । और उसी विधिसे अपने कृष्टिवेदककालके अन्तिम समयको प्राप्त होता है । मायाकी तृतीय कृष्टिका वेदन करनेवाले जीवके जो प्रथमस्थिति है उस प्रथमस्थितिमें एक समय अधिक आवलिमात्र शेष रहती है । उस समयमें मायाका अन्तिम समय वेदक होता है । तब शेष दो संज्वलनोंका स्थितिबन्ध परिपूर्ण अर्ध मास और स्थितिसत्व परिपूर्ण एक वर्षप्रमाण होता है । तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध मासपृथक्त्वप्रमाण होता है । तीन घातिया कर्मोंका स्थितिसत्व संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है । इतर कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात वर्ष और स्थितिसत्व असंख्यात वर्षमात्र होता है ।

---

१ विदियगमायाचरिमे वीसं सोलं च दिवसमासाणि । अंतोमुहुत्तहीणा बंधो सत्तो दुसंजलणगाणं ॥ लब्धि. ५६०.

२ तदियगमायाचरिमे पण्णरमासय दिवसमासाणि । दोण्हं संजलणाणं ठिदिबंधो तह य सत्तो य ॥ लब्धि. ५६१.

३ मासपुधत्तं वासा संखसहस्साणि बंध सत्तो य । घादितियाणिदराणं संखमसंखेज्जवस्साणि ॥ लब्धि. ५६२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तदो से काले लोभस्स पढमसंगहकिट्टीदो पदेसग्गमोकड्डिदूण पढमट्ठिदिं करेदि तेणेव विहिणा संपत्तो। लोभस्स पढमकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी तिस्से पढमट्ठिदीए समयाहियावलिया सेसा त्ति। ताधे लोभसंजलणट्ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तं; ठिदिसंतकम्मं पि अंतोमुहुत्तं। तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो दिवसपुधत्तं। सेसाणं कम्माणं ठिदिबंधो वासपुधत्तं। घादिकम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि; सेसाणं कम्माणं असंखेज्जाणि वस्साणि[1]।

तदो से काले लोभस्स विदियकिट्टीदो पदेसग्गमोकड्डिदूण पढमट्ठिदिं करेदि। ताधे चेव लोभस्स विदियसंगहकिट्टीदो तदियसंगहकिट्टीदो च पदेसग्गमोकड्डिदूण सुहुमसांपराइयकिट्टीओ करेदि[2]। तासिं सुहुमसांपराइयकिट्टीणं कम्हि अवट्ठाणं? तासिं लोभस्स तदियाए संगहकिट्टीए हेट्ठदो अवट्ठाणं। जारिसी कोधस्स पढमसंगहकिट्टी तारिसी एसा

उसके अनन्तर समयमें लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिसे प्रदेशाग्रका अपकर्षण कर प्रथमस्थितिको करता है, और उसी विधिसे अपने कृष्टिवेदककालके अन्तिम समयको प्राप्त होता है। लोभकी प्रथम कृष्टिका वेदन करनेवाले जीवके जो प्रथमस्थिति है उस प्रथमस्थितिमें एक समय अधिक आवलिमात्र शेष रहती है। उस समय संज्वलनलोभका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त और स्थितिसत्व भी अन्तर्मुहूर्तमात्र होता है। तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध दिवसपृथक्त्व और शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध वर्षपृथक्त्वप्रमाण होता है। घातिया कर्मोंका स्थितिसत्व संख्यात वर्षसहस्र और शेष कर्मोंका स्थितिसत्व असंख्यात वर्षप्रमाण होता है।

उसके अनन्तर समयमें लोभकी द्वितीय कृष्टिसे प्रदेशाग्रका अपकर्षण कर प्रथमस्थितिको करता है। उसी समयमें (लोभवेदककालके द्वितीय त्रिभागके प्रथम समयमें) ही लोभकी द्वितीय संग्रहकृष्टिसे और तृतीय संग्रहकृष्टिसे भी प्रदेशाग्रका अपकर्षण कर सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंको करता है।

शंका—उन सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंका अवस्थान कहां है?

समाधान—उन सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंका अवस्थान लोभकी तृतीय संग्रहकृष्टिके नीचे है। जैसी क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टि है वैसी ही यह सूक्ष्मसाम्परायिक

---

१ लोहस्स पढमचरिमे लोहस्संतोमुहुत्त बंधदुगे। दिवसपुधत्तं वासा संखसहस्साणि घादितिये ॥ सेसाणं पयडीणं वासपुधत्तं तु होदि ठिदिबंधो। ठिदिसत्तमसंखेज्जा वस्साणि हवंति णियमेण ॥ लब्धि. ५६३-५६४.

२ बादरसांपराइयकिट्टीहिंतो अणंतगुणहाणीए परिणमिय लोभसंजलणाणुभागस्सावट्ठाणं सुहुमसांपराइयकिट्टीणं लक्खणमवहारेयव्वं। जयध. अ. प. ११९६. से काले लोहस्स य विदियादो संगहादु पढमठिदी। ताहे सुहुमं किट्टिं करेदि तव्विदियतदियादो ॥ लब्धि. ५६५.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

सुहुमसांपराइयकिट्टी[1] ।

कोधस्स पढमसंगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ थोवाओ । कोधे संछुद्धे माणस्स पढमसंगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ । माणे संछुद्धे मायाए पढमसंगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ । मायाए संछुद्धे लोभपढमसंगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ । सुहुमसांपराइयकिट्टीओ वि जाओ पढमसमए कदाओ ताओ विसेसा-

कृष्टि भी है ।

विशेषार्थ — जिस प्रकार क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टि शेष संग्रहकृष्टियोंकी अपेक्षा अपने आयामसे संख्यातगुणी थी, उसी प्रकार यह सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टि भी क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिको छोड़कर शेष समस्त संग्रहकृष्टियोंके कृष्टिकरणकालमें उपलब्ध आयामसे संख्यातगुणे आयामवाली है, क्योंकि, सम्पूर्ण मोहनीय कर्मका द्रव्य इसके रूप परिणमन करनेवाला है । अथवा, जिस प्रकार क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टि अपूर्व स्पर्द्धकोंके नीचे अनन्तगुणी हीन की गई थी, उसी प्रकार यह सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टि लोभकी तृतीय बादरसाम्परायिक कृष्टिके नीचे अनन्तगुणी हीन की जाती है । अथवा, जिस प्रकार क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टि जघन्य कृष्टिसे लेकर उत्कृष्ट कृष्टि पर्यन्त अनन्तगुणी होती गई थी, उसी प्रकार ही यह सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टि भी अपनी जघन्य कृष्टिसे लेकर उत्कृष्ट कृष्टि तक अनन्तगुणी होती जाती है ।

क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिकी अन्तरकृष्टियां स्तोक (१३/२४) हैं । क्रोधके संक्रमणको प्राप्त होनेपर मानकी प्रथम संग्रहकृष्टिकी अन्तरकृष्टियां विशेष अधिक (१६/२४) हैं । मानके संक्रमणको प्राप्त होनेपर मायाकी प्रथम संग्रहकृष्टिकी अन्तरकृष्टियां विशेष अधिक (२०/२४) हैं । मायाके संक्रमणको प्राप्त होनेपर लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिकी अन्तरकृष्टियां विशेष अधिक (२३/२४) हैं । सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियां भी जो प्रथम समयमें की गई हैं वे विशेष अधिक

१ जारिसी कोहस्स पढमसंगहकिट्टी तारिसी एसा सुहुमसांपराइयकिट्टी, एवं भणंतस्साहिप्पाओ– जहा कोहस्स पढमसंगहकिट्टी सगायामेण सेससंगहकिट्टीणमायामं पेक्खियूण दव्वमाहप्पेण संखेज्जगुणा जादा, एवमेसा वि सुहुमसांपराइयकिट्टी कोहपढमसंगहकिट्टिं मोत्तूण सेसासेससंगहकिट्टीणं किट्टीकरणद्धाए समुवलद्धायामादो संखेज्जगुणायामा दट्ठव्वा, सयलस्सेव मोहणीयदव्वस्साहारभावेण एदिस्से परिणामिस्समाणत्तादो त्ति । अथवा, जारिसी कोहस्स पढमसंगहकिट्टी, एवं भणिदे जारिसलक्खणा कोहपढमसंगहकिट्टी अपुव्वफद्दयाणं हेट्ठा अणंतगुणहीणा होदूण कदा, तारिसलक्खणा चेव एसा सुहुमसांपराइयकिट्टी लोभस्स तदियबादरसांपराइयकिट्टीदो हेट्ठा अणंतगुणहीणा होदूण कीरदि त्ति भणिदं होदि । अहवा, जहा कोहपढमसंगहकिट्टी जहण्णकिट्टिप्पहुडि जाव उक्कस्सकिट्टि त्ति ताव अणंतगुणा होदूण गदा तहा चेव एसा सुहुमसांपराइयकिट्टी वि अप्पणो जहण्णकिट्टिप्पहुडि जाव सगुक्कस्सकिट्टि त्ति ताव अणंतगुणा होदूण गच्छदि त्ति भणिदं होदि ।। जयध. अ. प. ११९७. लोहस्स तदियसंगहकिट्टीए हेट्ठदो अवट्ठाणं । सुहुमाणं किट्टीणं कोहस्स य पढमकिट्टिणिभा ।। लब्धि. ५६६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हियाओ[1] । एसो विसेसो अणंतराणंतरेण संखेज्जदिभागो । सुहुमसांपराइयकिट्टीओ जाओ पढमसमए कदाओ ताओ बहुआओ; जाओ विदियसमए अपुव्वाओ कीरंति ताओ असंखेज्जगुणहीणाओ । अणंतरोवणिधाए सव्विस्से सुहुमसांपराइयकिट्टीकरणद्धाए अपुव्वाओ सुहुमसांपराइयकिट्टीओ असंखेज्जगुणहीणाए सेडीए कीरंति । सुहुमसांपराइय-किट्टीसु जं पढमसमए पदेसग्गं दिज्जदि तं थोवं; विदियसमए असंखेज्जगुणं । एवं जाव चरिमसमयादो त्ति असंखेज्जगुणं[2] ।

सुहुमसांपराइयकिट्टीसु पढमसमए दिज्जमाणस्स पदेसग्गस्स सेडीपरूवणं वत्तइस्सामो । तं जहा– जहण्णियाए किट्टीए पदेसग्गं बहुअं । विदियाए किट्टीए विसेस-हीणमणंतभागेण । तदियाए किट्टीए विसेसहीणमणंतभागेण । एवमणंतरोवणिधाए गंतूण चरिमाए सुहुमसांपराइयकिट्टीए पदेसग्गं विसेसहीणं । चरिमादो सुहुमसांपराइयकिट्टीदो जहण्णियाए बादरसांपराइयकिट्टीए दिज्जमाणपदेसग्गमसंखेज्जगुणहीणं; तदो विसेसहीणं[3] ।

....

हैं । यह विशेष अनन्तर-अनन्तररूपसे संख्यातवें भागमात्र है । सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियां जो प्रथम समयमें की गई हैं वे बहुत हैं । जो द्वितीय समयमें अपूर्व कृष्टियां की जाती हैं वे असंख्यातगुणी हीन हैं । इस प्रकार अनन्तरक्रमसे सब सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टि-करणकालमें अपूर्व सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियां असंख्यातगुणित हीन श्रेणीके क्रमसे की जाती हैं । सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंमें जो प्रदेशाग्र प्रथम समयमें दिया जाता है वह स्तोक है । द्वितीय समयमें दिया जानेवाला प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है । इस प्रकार अन्तिम समय तक असंख्यातगुणा प्रदेशाग्र दिया जाता है ।

सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंमें प्रथम समयमें दीयमान प्रदेशाग्रकी श्रेणिप्ररूपणाको कहते हैं । वह इस प्रकार है— जघन्य कृष्टिमें प्रदेशाग्र बहुत दिया जाता है । द्वितीय कृष्टिमें अनन्तवें भागसे विशेष हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है । तृतीय कृष्टिमें अनन्तवें भागसे विशेष हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है । इस प्रकार अनन्तरक्रमसे जा कर अन्तिम सूक्ष्म-साम्परायिक कृष्टिमें प्रदेशाग्र विशेष हीन दिया जाता है । अन्तिम सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टिसे जघन्य बादरसाम्परायिक कृष्टिमें दीयमान प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा हीन है । पुनः इसके आगे (अन्तिम बादरसाम्परायिक कृष्टि तक सर्वत्र अनन्तवें भागसे) विशेष हीन प्रदेशाग्र

....

१ कोहस्स पढमकिट्टी कोहे छुद्धे दु माणपढमं च । माणे छुद्धे मायापढमं मायाए संछुद्धे ॥ लोहस्स पढमकिट्टी आदिमसमयकदसुहुमकिट्टी य । अहियकमा पंच पदा सगसंखेज्जदिमभागेण ॥ लब्धि. ५६७-५६८.

२ सुहुमाओ किट्टीओ पडिसमयमसंखगुणविहीणाओ । दव्वमसंखेज्जगुणं विदियस्स य लोहचरिमोत्ति ॥ लब्धि. ५६९.

३ एत्तो उवरि सव्वत्थेव विसेसहीणं णिसिंचदि अणंतभागेण जाव चरिमबादरसांपराइयकिट्टि त्ति । जयध. अ. प. ११९८. दव्वं पढमे समये देदि हु सुहुमेसणंतभागूणं । थूलपढमे असंखगुणूणं तत्तो अणंतभागूणं ॥ लब्धि. ५७०.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

सुहुमसांपराइयकिट्टीकारओ बिदियसमए अपुव्वाओ सुहुमसांपराइयकिट्टीओ करेदि असंखेज्जगुणहीणाओ। ताओ दोसु ट्ठाणेसु करेदि। तं जहा– पढमसमए कदाणं हेट्ठा च अंतरे च। हेट्ठा थोवाओ, अंतरेसु असंखेज्जगुणाओ[1]।

बिदियसमए दिज्जमाणस्स पदेसग्गस्स सेडीपरूवणं वत्तइस्सामो। तं जहा– जा बिदियसमए जहण्णिया सुहुमसांपराइयकिट्टी तिस्से पदेसग्गं दिज्जदि बहुअं। बिदियाए किट्टीए अणंतभागहीणं। एवं गंतूण पढमसमए जा जहण्णिया सुहुमसांपराइय-किट्टी तत्थ असंखेज्जभागहीणं, तत्तो अणंतभागहीणं जाव अपुव्वं णिव्वत्तिज्जमाणियं ण पावेदि। अपुव्वाए णिव्वत्तिज्जमाणियाए किट्टीए असंखेज्जदिभागुत्तरं। पुव्व-णिव्वत्तिदं पडिवज्जमाणयस्स पदेसग्गस्स असंखेज्जदिभागहीणं। परं परं पडिवज्ज-माणयस्स अणंतभागहीणं। जो बिदियसमए दिज्जमाणयस्स विधी सो चेव विधी सेसेसु वि समएसु जाव चरिमसमयबादरसांपराइओ त्ति[2]।

दिया जाता है। सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टिकारक द्वितीय समयमें असंख्यातगुणी हीन अपूर्व सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंको करता है। उन कृष्टियोंको वह दो स्थानोंमें करता है। वह इस प्रकार है— प्रथम समयमें की गई कृष्टियोंके नीचे और अन्तरमें भी उपर्युक्त कृष्टियोंको करता है। नीचे की जानेवाली कृष्टियां स्तोक और अन्तरोंमें की जानेवाली कृष्टियां असंख्यातगुणी हैं।

द्वितीय समयमें दिये जानेवाले प्रदेशाग्रकी श्रेणिप्ररूपणाको कहते हैं। वह इस प्रकार है— द्वितीय समयमें जो जघन्य सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टि है उसमें प्रदेशाग्र बहुत दिया जाता है। द्वितीय कृष्टिमें अनन्तभाग हीन दिया जाता है। इस प्रकार जाकर प्रथम समयमें जो जघन्य सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टि है उसमें असंख्यातभाग हीन और इसके आगे निर्वर्तमान अपूर्व कृष्टिके न पाने तक अनन्तभाग हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है। अपूर्व निर्वर्तमान कृष्टिमें असंख्यातवें भागसे अधिक प्रदेशाग्र दिया जाता है। पूर्व-निर्वर्तित कृष्टिको प्रतिपद्यमान प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा हीन दिया जाता है। इसके आगे उत्तरोत्तर पूर्वकृष्टिसे पूर्वकृष्टिको प्रतिपद्यमान प्रदेशाग्र अनन्तभाग हीन होता है। द्वितीय समयमें दिये जानेवाले प्रदेशाग्रकी जो विधि पूर्वमें निरूपित की गई है, वही विधि अन्तिम समय बादरसाम्परायिक तक शेष समयोंमें भी जानना चाहिये।

---

१ बिदियादिसु समयेसु अपुव्वाओ पुव्वकिट्टिहेट्ठाओ। पुव्वाणमंतरेसु वि अंतरजणिदा असंखगुणा ॥ लब्धि. ५७१.

२ दव्वगपढमे सेसे देदि अपुव्वेसणंतभागूणं। पुव्वापुव्वपवेसे असंखभागूणमहियं च। लब्धि. ५७२.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

सुहुमसांपराइयकिट्टीकारयस्स किट्टीसु दिस्समाणपदेसग्गस्स सेडीपरूवणं वत्तइस्सामो । तं जहा– जहण्णियाए सुहुमसांपराइयकिट्टीए पदेसग्गं बहुगं । तत्तो अणंतभागहीणं ताव जाव चरिमसुहुमसांपराइयकिट्टि त्ति । तदो जहण्णियाए बादरसांपराइयकिट्टीए पदेसग्गमसंखेज्जगुणं । एसा सेडीपरूवणा जाव चरिमसमयबादरसांपराइओ त्ति[1] ।

सुहुमसांपराइयकिट्टीसु कीरमाणेसु लोभस्स चरिमादो बादरसांपराइयकिट्टीदो सुहुमसांपराइयकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं थोवं । लोभस्स विदियकिट्टीदो चरिमबादर[2]सांपराइयकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं संखेज्जगुणं । लोभस्स विदियकिट्टीदो सुहुमसांपराइयकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं संखेज्जगुणं[3] । पढमसमयकिट्टीवेदगस्स[4] कोधस्स विदिय-

सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टिकारककी कृष्टियोंमें दृश्यमान प्रदेशाग्रकी श्रेणिप्ररूपणाको कहते हैं। वह इस प्रकार है— जघन्य सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टिमें दृश्यमान प्रदेशाग्र बहुत है। इसके आगे अन्तिम सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टि तक वह दृश्यमान प्रदेशाग्र अनन्तवें भागसे हीन है। इसके आगे जघन्य बादरसाम्परायिक कृष्टिमें प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। यह श्रेणिप्ररूपणा (सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टिकारकके प्रथम समयसे लेकर) अन्तिम समय बादरसाम्परायिक तक है।

सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंको करते समय लोभकी अन्तिम बादरसाम्परायिक कृष्टिसे सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टिमें स्तोक प्रदेशाग्र संक्रमण करता है। लोभकी द्वितीय संग्रहकृष्टिसे अन्तिम बादरसाम्परायिक संग्रहकृष्टिमें संख्यातगुणा प्रदेशाग्र संक्रमण करता है (क्योंकि लोभकी तृतीय संग्रहकृष्टिके प्रदेशोंसे द्वितीय संग्रहकृष्टिके प्रदेश संख्यातगुणे हैं।) लोभकी द्वितीय संग्रहकृष्टिसे सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टिमें संख्यातगुणा प्रदेशाग्र संक्रमण करता है। प्रथम समय कृष्टिवेदक अर्थात् कृष्टिकरणकालके समाप्त होनेपर अनन्तरकालमें क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिका अपकर्षण कर उसका वेदन करने-

१ पढमादिसु दिस्सकमं सुहुमेसु अणंतभागहीणकमं । बादरकिट्टिपदेसो असंखगुणिदं तदो हीणं ॥ लब्धि. ५७३.

२ प्रतिषु 'चरिमसमयबादर-' इति पाठः । लोभस्स विदियकिट्टीदो चरिमबादरसांपराइयकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं संखेज्जगुणं । किं कारणं ? लोभतदियसंगहकिट्टीपदेसादो विदियसंगहकिट्टीपदेसग्गस्स संखेज्जगुणत्तादो। जयध. अ. प. १२००.

३ लोहस्स य तदियादो सुहुमगदं विदियादो दु तदियगदं । विदियादो सुहुमगदं दव्वं संखेज्जगुणिदकमं ॥ लब्धि. ५७४.

४ किट्टीकरणद्धाए णिट्ठिदाए (णिट्ठिदाए) से काले कोहपढमसंगहकिट्टीमोकड्डियूण वेदेमाणो पढमसमयकिट्टीवेदगो णाम । जयध. अ. प. १२००.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किट्टीदो माणस्स पढमकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं थोवं । कोधस्स तदियकिट्टीदो माणस्स पढमाए संगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं विसेसाहियं । माणस्स पढमादो संगहकिट्टीदो मायाए पढमसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं विसेसाहियं । माणस्स विदियादो संगहकिट्टीदो मायाए पढमसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं विसेसाहियं । माणस्स तदियादो संगहकिट्टीदो मायाए पढमसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं विसेसाहियं । मायाए पढमसंगहकिट्टीदो लोभस्स पढमसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं विसेसाहियं । मायाए विदियसंगहकिट्टीदो लोभस्स पढमाए संगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं विसेसाहियं । मायाए (तदियादो संगहकिट्टीदो) लोभस्स पढमाए संगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं विसेसाहियं । लोभस्स पढमकिट्टीदो लोभस्स चेव विदियसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं विसेसाहियं । लोभस्स पढमसंगहकिट्टीदो तस्स चेव[1] तदियसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं विसेसाहियं[2] । कोधस्स पढमसंगहकिट्टीदो माणस्स पढमसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं संखेज्जगुणं[3] । कोधस्स चेव पढमसंगहकिट्टीदो कोधस्स तदियसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं विसेसा-

---

वालेके क्रोधकी द्वितीय संग्रहकृष्टिसे मानकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें स्तोक प्रदेशाग्र संक्रमण करता है। क्रोधकी तृतीय संग्रहकृष्टिसे मानकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक संक्रमण करता है। मानकी प्रथम संग्रहकृष्टिसे मायाकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक संक्रमण करता है। मानकी द्वितीय संग्रहकृष्टिसे मायाकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक संक्रमण करता है। मानकी तृतीय संग्रहकृष्टिसे मायाकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक संक्रमण करता है। मायाकी प्रथम संग्रहकृष्टिसे लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक संक्रमण करता है। मायाकी द्वितीय संग्रहकृष्टिसे लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक संक्रमण करता है। (मायाकी तृतीय संग्रहकृष्टिसे) लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक संक्रमण करता है। लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिसे लोभकी ही द्वितीय संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक संक्रमण करता है। लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिसे उसकी ही तृतीय संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक संक्रमण करता है। क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिसे मानकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें संख्यातगुणा प्रदेशाग्र संक्रमण करता है। क्रोधकी ही प्रथम संग्रहकृष्टिसे क्रोधकी तृतीय संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक संक्रमण करता है। क्रोधकी

---

१ आ-प्रतौ ' तस्सेव ' इति पाठः ।

२ किट्टीविदगपढमे कोहस्स य विदियदो दु तदियादो । माणस्स य पढमगदो माणतियादो दु माणपढमगदो ॥ मायतियादो लोभस्सादिगदो लोभपढमदो विदियं । तदियं च गदा दव्वा दसपदमहियकमा होंति ॥ लब्धि. ५७५-५७६.

३ अ-प्रतौ ' विसेसाहियं संखेज्जगुणं ' इति पाठः ।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

हियं । कोहस्स पढमसंगहकिट्टीदो कोधस्स चेव विदियसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं संखेज्जगुणं । एसो पदेससंकमो अदिक्कंतो वि उक्खेदिदो सुहुमसांपराइयकिट्टीणं कीरमाणीणं आसओ त्ति कादूण[1] ।

सुहुमसांपराइयकिट्टीसु पढमसमए दिज्जदि पदेसग्गं थोवं । विदियसमए असंखेज्जगुणं । एवं जाव चरिमसमयादो त्ति ताव असंखेज्जगुणं । एदेण कमेण लोभस्स विदियकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी तिस्से पढमट्ठिदीए समयाहियावलिया सेसा त्ति । तम्हि समए चरिमसमयबादरसांपराइओ । तम्हि चेव समए लोभस्स चरिमबादरसांपराइय-किट्टी[2] संछुब्भमाणा संछुद्धा । लोभस्स विदियकिट्टीए दो आवलियबंधे समऊणे मोत्तूण उदयावलियपविट्ठं च मोत्तूण सेसाओ विदियकिट्टीए अंतरकिट्टीओ संछुब्भमाणीओ संछुद्धाओ ।

तम्हि चेव लोभसंजलणस्स ट्ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तं, तिण्हं घादिकम्माणं अहो-

---

प्रथम संग्रहकृष्टिसे क्रोधकी ही द्वितीय संग्रहकृष्टिमें संख्यातगुणा प्रदेशाग्र संक्रमण करता है । यह बादरकृष्टिविषयक प्रदेशसंक्रमण यद्यपि अतिक्रान्त हो चुका है तो भी सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंके करनेमें प्राप्त प्रदेशसंक्रमणका कारणभूत मानकर पुनः कहा गया है ।

सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंमें प्रथम समयमें प्रदेशाग्र स्तोक दिया जाता है । द्वितीय समयमें असंख्यातगुणा दिया जाता है । इस प्रकार बादरसाम्परायिकके अन्तिम समय तक असंख्यातगुणा प्रदेशाग्र दिया जाता है । इस क्रमसे लोभकी द्वितीय कृष्टिको वेदन करनेवालेके जो प्रथमस्थिति है उस प्रथमस्थितिकी एक समय अधिक आवलिमात्र शेष रहती है । उस समयमें अन्तिमसमयवर्ती बादरसाम्परायिक होता है । उसी अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयमें संक्रम्यमाण लोभकी अन्तिम बादरसाम्परायिक कृष्टि पूर्णतया सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंमें संक्रमणको प्राप्त हो जाती है । लोभकी द्वितीय कृष्टिके एक समय कम दो आवलिमात्र नवक समयप्रबद्धोंको तथा उदयावलिप्रविष्ट द्रव्यको छोड़कर शेष संक्रम्यमाण द्वितीय कृष्टिकी अन्तरकृष्टियां संक्रमणको प्राप्त हो जाती हैं ।

उसी समयमें संज्वलनलोभका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त और तीन घातिया

---

१ एदस्सत्थो वुच्चदे– एसो पदेससंकमो बादरकिट्टीविसयो अइक्कंतो वि उक्खेदिदो, अइक्कंतावसरो वि संतो पुणरुक्खिविदूण भणिदो । किमट्ठमेवं भणिज्जदित्ति चे, सुहुमसांपराइयकिट्टीसु कीरमाणीसु आसत्रो त्ति कादूण सुहुमसांपराइयकिट्टीसु कीरमाणीसु जो पदेससंकमो पदिदो तस्स कारणभूदो त्ति कादूण अइक्कंतावसरो वि होंतो एसो पदेससंकमो पुणरुच्चाइदूण भणिदो त्ति वुत्तं होई । जयध. अ. प. १२०२.

२ प्रतिषु 'समए बादरसांपराइओ किट्टी' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रत्तस्स अंतो, णामा-गोद-वेदणीयाणं बादरसांपराइयस्स जो चरिमो ट्ठिदिबंधो सो संखेज्जेहि वस्ससहस्सेहि हाइदूण वस्सस्स अंतो जादो । चरिमसमयबादरसांपराइयस्स मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं अंतोमुहुत्तं, तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि, णामा-गोद-वेदणीयाणं ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जाणि वस्साणि ।

से काले पढमसमयसुहुमसांपराइयो जादो । ताधे चेव सुहुमसांपराइयकिट्टीणं जाओ ट्ठिदीओ तदो ट्ठिदिखंडयमागाइदं । तदो पदेसग्गमोकड्डिदूण उदये थोवं दिण्णं[1] । एवमंतोमुहुत्तद्धमेत्तमसंखेज्जगुणाए सेडीए देदि । गुणसेडिणिक्खेवो सुहुमसांपराइयद्धादो विसेसुत्तरो । गुणसेडीसीसयादो जा अणंतरट्ठिदी तत्थ असंखेज्जगुणं । तत्तो विसेसहीणं ताव जाव पुव्वसमए अंतरमासि तस्स अंतरस्स चरिमादो त्ति । चरिमादो अंतरट्ठिदीदो पुव्वसमए जा विदियट्ठिदी तिस्से आदिट्ठिदीए दिज्जमाणं पदेसग्गं संखेज्जगुणहीणं । तत्तो विसेसहीणं ।

कर्मोंका अहोरात्रका अन्त अर्थात् कुछ कम एक दिनप्रमाण होता है । नाम, गोत्र व वेदनीय, इनका बादरसाम्परायिकके जो अन्तिम स्थितिबन्ध होता था वह संख्यात वर्षसहस्रोंसे घटकर वर्षका अन्त अर्थात् कुछ कम एक वर्षमात्र रह जाता है । अन्तिम-समयवर्ती बादरसाम्परायिकके मोहनीयका स्थितिसत्व अन्तर्मुहूर्त, तीन घातिया कर्मोंका स्थितिसत्व संख्यात वर्षसहस्र; और नाम, गोत्र व वेदनीय, इनका स्थितिसत्व असंख्यात वर्षप्रमाण होता है ।

अनन्तर समयमें प्रथम समय सूक्ष्मसाम्परायिक हो जाता है । उसी समयमें ही सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंकी जो अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थितियां हैं उनके संख्यातवें भागमात्र स्थितिकांडकको ग्रहण करना प्रारम्भ करता है । सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंकी उत्कीर्यमाण और अनुत्कीर्यमाण स्थितियोंसे प्रदेशाग्रका अपकर्षण कर उदयमें स्तोक प्रदेशाग्रको देता है । इस प्रकार अन्तर्मुहूर्तमात्र काल तक असंख्यातगुणित श्रेणीसे देता है । गुणश्रेणिनिक्षेप सूक्ष्मसाम्परायिककालसे विशेष अधिक है । गुणश्रेणिशीर्षसे जो अनन्तर स्थिति है उसमें असंख्यातगुणे प्रदेशाग्रको देता है । इससे आगे अन्तरस्थितियोंमें उत्तरोत्तर क्रमसे पूर्व समयमें जो अन्तर था उस अन्तरकी अन्तिम अन्तरस्थिति तक विशेष हीन प्रदेशाग्रको देता है । अन्तिम अन्तरस्थितिसे, पूर्व समयमें जो द्वितीय स्थिति है उसकी प्रथम स्थितिमें दीयमान प्रदेशाग्र संख्यातगुणा हीन है । इसके आगे उपरिम स्थितिमें दीयमान प्रदेशाग्र विशेष हीन है ।

---

१ सुहुमसांपराइयकिट्टीणमुक्कीरिज्जमाणाणुक्कीरिज्जमाणट्ठिदीहिंतो पदेसग्गस्सासंखेज्जादिभागमोकड्डियूण पुणो ओकड्डिदसयलदव्वासंखेज्जे भागे पुध ट्ठविय तदसंखेज्जभागमेत्तपदेसग्गं गुणसेढीए णिसिंचमाणो उदयट्ठिदीए थोवयरमेव पदेसग्गमसंखेज्जसमयपबद्धपमाणं णिसिंचदि त्ति वुत्तं होदि ॥ जयध. अ. प. १२०३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पढमसमयसुहुमसांपराइयस्स जमोकड्डिज्जदि पदेसग्गं तमेदाए सेडीए णिक्खिवदि। विदियसमए वि तदियसमए वि एसो चेव कमो ओकड्डिदूण णिसिंचमाणपदेसग्गस्स ताव जाव सुहुमसांपराइयस्स पढमट्ठिदिखंडओ णिल्लेविदो त्ति। विदियादो ट्ठिदिखंडयादो ओकड्डिदूण जं पदेसग्गमुदए दिज्जदि तं थोवं। तदो असंखेज्जगुणाए सेडीए दिज्जदि ताव जाव गुणसेडीसीसयादो उवरिमाणंतरा[1] एक्का ट्ठिदि त्ति। तदो विसेसहीणं। एत्तो पाए सुहुमसांपराइयस्स जाव मोहणीयस्स ट्ठिदिघादो ताव एस कमो।

पढमसमयसुहुमसांपराइयस्स जं दिस्सदि पदेसग्गं तस्स सेडीपरूवणं वत्तइस्सामो। तं जहा– पढमसमयसुहुमसांपराइयस्स उदए दिस्सदि पदेसग्गं थोवं। विदियाए ट्ठिदीए असंखेज्जगुणं। एवं ताव जाव गुणसेडीसीसयं ति गुणसेडीसीसयादो अण्णा च एक्का ट्ठिदि त्ति। तदो विसेसहीणं जाव चरिमअंतरट्ठिदि त्ति। तदो असंखेज्जगुणं, तत्तो विसेसहीणं। एस कमो ताव जाव सुहुमसांपराइयस्स पढमट्ठिदिखंडगो चरिमसमयअणिल्लेविदो त्ति[2]। पढमट्ठिदिखंडए णिल्लेविदे जमुदए पदेसग्गं दिस्सदि तं थोवं। विदियाए

प्रथम समय सूक्ष्मसाम्परायिक जिस प्रदेशाग्रका अपकर्षण करता है उसे इस श्रेणिक्रमसे देता है। द्वितीय और तृतीय समयमें भी इसी क्रमसे देता है। इस प्रकार अपकर्षण करके दीयमान प्रदेशाग्रका यह क्रम तब तक चालू रहता है जब तक सूक्ष्मसाम्परायिकका प्रथम स्थितिकांडक निर्लेपित अर्थात् समाप्त होता है। द्वितीय स्थितिकांडकसे अपकर्षण कर जो प्रदेशाग्र उदयमें दिया जाता है वह स्तोक है। इसके आगे असंख्यातगुणित श्रेणीसे तब तक दिया जाता है जब तक कि गुणश्रेणिशीर्षके ऊपर एक अनन्तर स्थिति प्राप्त होती है। इसके आगे विशेष हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है। यहांसे लेकर सूक्ष्मसाम्परायिकके जब तक मोहनीयका स्थितिघात होता है तब तक यह क्रम रहता है।

प्रथम समय सूक्ष्मसाम्परायिकके जो प्रदेशाग्र दृश्यमान है उसकी श्रेणिप्ररूपणाको कहते हैं। वह इस प्रकार है— प्रथम समय सूक्ष्मसाम्परायिकके उदयमें स्तोक प्रदेशाग्र दिखता है। द्वितीय स्थितिमें असंख्यातगुणा प्रदेशाग्र दिखता है। इस प्रकार यह क्रम गुणश्रेणिशीर्ष तक तथा उससे आगे अन्य एक स्थिति तक चालू रहता है। इससे आगे अन्तिम अन्तरस्थिति तक विशेष हीन प्रदेशाग्र दिखता है। पुनः इससे असंख्यातगुणा प्रदेशाग्र दिखता है। पश्चात् उससे विशेष हीन प्रदेशाग्र दिखता है। यह क्रम तब तक चालू रहता है जब तक कि सूक्ष्मसाम्परायिकके प्रथम स्थितिकांडकके समाप्त होनेका अन्तिम समय प्राप्त नहीं होता। प्रथम स्थितिकांडकके निर्लेपित होनेपर जो प्रदेशाग्र उदयमें दिखता है वह स्तोक है। द्वितीय स्थितिमें जो प्रदेशाग्र दिखता है वह

१ प्रतिषु ' उवरिमाणंतराए ' इति पाठः।

२ अंतरपढमट्ठिदित्ति य असंखगुणिदक्कमेण दिस्सदि हु। हीणकमेण असंखेज्जेण गुणंतो विहीणकमं ॥ लब्धि. ५८७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ट्ठिदीए जं दिस्सदि तमसंखेज्जगुणं। (एवं) ताव जाव गुणसेडीसीसयादो अण्णा च एक्का ट्ठिदि त्ति असंखेज्जगुणं दिस्सदि। तत्तो विसेसहीणं जाव उक्कस्सिया मोहणीयट्ठिदि[1] त्ति।

सुहुमसांपराइयस्स पढमट्ठिदिखंडए पढमसमयणिल्लेविदे गुणसेडिं मोत्तूण सेसियासु ट्ठिदीसु केण कारणेण गोवुच्छा सेडी जादा त्ति एदस्स साहणट्ठं इमाणि अप्पाबहुअपदाणि[2]। तं जहा- सव्वत्थोवा सुहुमसांपराइयद्धा। पढमसमयसुहुमसांपराइयस्स मोहणीयस्स गुणसेडीणिक्खेवो विसेसाहिओ। अंतरट्ठिदीओ संखेज्जगुणाओ। सुहुमसांपराइयस्स पढमो ट्ठिदिखंडओ मोहणीये संखेज्जगुणो। पढमसमयसुहुमसांपराइयस्स मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं[3]।

लोभस्स विदियकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी तिस्से पढमट्ठिदीए जाव तिण्णि आवलियाओ सेसाओ ताव लोभस्स विदियकिट्टीदो लोभस्स तदियकिट्टीए संछुहदि पदेसग्गं। तेण परं ण संछुहदि; सव्वं सुहुमसांपराइयकिट्टीसु संछुहदि। लोभस्स विदिय-

---

असंख्यातगुणा है। इस प्रकार जब तक गुणश्रेणिशीर्षके आगे एक अन्य स्थिति प्राप्त नहीं होती तब तक असंख्यातगुणा प्रदेशाग्र दिखता है। मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति तक इससे विशेष हीन प्रदेशाग्र दिखता है।

सूक्ष्मसाम्परायिकके प्रथम स्थितिकांडकके उत्कीर्ण होनेके पश्चात् प्रथम समयमें गुणश्रेणीको छोड़कर शेष स्थितियोंमें किस कारणसे गोपुच्छ श्रेणी हुई है, इसके साधनेके लिये ये अल्पबहुत्वपद हैं। जैसे— सबसे स्तोक सूक्ष्मसाम्परायिककाल है। प्रथम समय सूक्ष्मसाम्परायिकके मोहनीयका गुणश्रेणिनिक्षेप विशेष अधिक है। अन्तरस्थितियां संख्यातगुणी हैं। सूक्ष्मसाम्परायिकके मोहनीयका प्रथम स्थितिकांडक संख्यातगुणा है। प्रथम समय सूक्ष्मसाम्परायिकके मोहनीयका स्थितिसत्व संख्यातगुणा है।

लोभकी द्वितीय कृष्टिको वेदन करनेवालेके जो प्रथमस्थिति है उस प्रथमस्थितिकी जब तक तीन आवलियां शेष हैं तब तक लोभकी द्वितीय कृष्टिसे लोभकी तृतीय कृष्टिमें प्रदेशाग्रको स्थापित करता है। उसके पश्चात् तृतीय कृष्टिमें स्थापित नहीं करता, किन्तु सब प्रदेशाग्रको सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंमें स्थापित करता है। लोभकी

---

१ अंतरपढमठिदि त्ति य असंखगुणिदक्कमेण दिस्सदि हु। हीणं तु मोहविदियट्ठिदिखंडयदो दुचादो त्ति॥ पढमगुणसेडिसीसं पुव्विल्लादो असंखसंगुणियं। उवरिमसमये दिस्सं विसेसअहियं हवे सीसे॥ लब्धि. ५९०-५९१.

२ एदेणप्पाबहुगविधाणेण विदियखंडयादीसु। गुणसेडिमुज्झियेया गोपुच्छा होदि सुहुमम्हि॥ लब्धि. ५९३.

३ सुहुमद्धादो अहिया गुणसेढी अंतरं तु तत्तो दु। पढमे खंडं पढमे संतो मोहस्स संखगुणिदकमा॥ लब्धि. ५९२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी तिस्से पढमट्ठिदीए आवलियाए समयाहियाए सेसाए ताधे जा लोभस्स तदियकिट्टी सा सव्वा णिरवयवा सुहुमसांपराइयकिट्टीसु संकंता। (जा) विदियकिट्टी तिस्से दोआवलियसमऊणे बंधे मोत्तूण उदयावलियपविट्ठं च सेसं सव्वं सुहुमसांपराइयकिट्टीसु संकंतं। ताधे चरिमसमयबादरसांपराइओ मोहणीयस्स चरिमसमयबंधगो जादो।

से काले पढमसमयसुहुमसांपराइओ जादो। ताधे सुहुमसांपराइयकिट्टीणमसंखेज्जा भागा उदिण्णा। हेट्ठा अणुदिण्णाओ थोवाओ, उवरि अणुदिण्णाओ विसेसाहियाओ। मज्झे उदिण्णाओ सुहुमसांपराइयकिट्टीओ असंखेज्जगुणाओ[1]। सुहुमसांपराइयस्स संखेज्जेसु ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु जमपच्छिमट्ठिदिखंडयं मोहणीयस्स तम्हि ट्ठिदिखंडए उक्कीरमाणे जो मोहणीयस्स गुणसेडीणिक्खेवो तस्स गुणसेडीणिक्खेवस्स अग्गग्गादो संखेज्जदिभागो आगाइदो[2]। तम्हि ट्ठिदिखंडए उक्किण्णे तदो प्पहुडि मोहणीयस्स णत्थि ट्ठिदिघादो। सुहुमसांपराइयद्धाए जत्तियं सेसं तत्तियं

द्वितीय कृष्टिको वेदन करनेवालेके जो प्रथमस्थिति है उस प्रथमस्थितिकी एक समय अधिक आवलिके शेष रहनेपर उस समयमें जो लोभकी तृतीय कृष्टि है वह सब अवयवकृष्टियोंसे रहित होती हुई सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंमें संक्रमणको प्राप्त हो चुकती है। जो द्वितीय कृष्टि है उसके एक समय कम दो आवलिमात्र नवक बंधको छोड़कर तथा उदयावलिप्रविष्ट द्रव्यको भी छोड़कर शेष सब प्रदेशाग्र सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंमें संक्रमणको प्राप्त हो जाता है। उस समय जीव अन्तिमसमयवर्ती बादरसाम्परायिक व मोहनीयका अन्तिमसमयवर्ती बन्धक होता है।

अनन्तर कालमें जीव प्रथमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक हो जाता है। उस समयमें सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंके असंख्यात भाग उदीर्ण होते हैं। नीचे जो कृष्टियां अनुदीर्ण हैं वे स्तोक हैं। जो ऊपर अनुदीर्ण हैं वे उनसे विशेष अधिक हैं। मध्यमें जो सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियां उदीर्ण हैं वे असंख्यातगुणी हैं। सूक्ष्मसाम्परायिकके संख्यात स्थितिकांडकोंके चले जानेपर जो अन्तिम स्थितिकांडक है, उस स्थितिकांडकके उत्कीर्ण करते समय जो मोहनीयका गुणश्रेणिनिक्षेप है उस गुणश्रेणिनिक्षेपके उत्तरोत्तर अग्राग्रसे संख्यातवें भागको ग्रहण करता है। उस स्थितिकांडकके उत्कीर्ण हो जानेपर वहांसे लेकर मोहनीयका स्थितिघात नहीं होता। सूक्ष्मसाम्परायिककालमें जितना काल

१ सुहुमाणं किट्टीणं हेट्ठा अणुदिण्णगा हु थोवाओ। उवरिं तु विसेसहिया मज्झे उदया असंखगुणा॥ लब्धि. ५९४.

२ सुहुमे संखसहस्से खंडे तंबि वसाणखंडेण। आगायदि गुणसेढी आगादो संखभागे च॥ लब्धि. ५९५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं सेसं[1]। एसा परूवणा पुरिसवेदयस्स कोधेण उवट्ठिदस्स।

पुरिसवेदयस्स चेव माणेण उवट्ठिदस्स णाणत्तं[2] वत्तइस्सामो। तं जहा– अंतरे अकदे णत्थि णाणत्तं। अंतरकदे अत्थि णाणत्तं। अंतरे कदे कोधस्स पढमट्ठिदी णत्थि, माणस्स अत्थि। सा केम्महंती? जद्देही कोधेण उवट्ठिदस्स कोधस्स पढमकिट्टी, कोधस्स चेव खवणद्धा च, एम्महंती माणेण उवट्ठिदस्स माणस्स पढमट्ठिदी। जम्हि कोधेण उवट्ठिदो अस्सकण्णकरणं करेदि, माणेण उवट्ठिदो तम्हि काले कोधं खवेदि। कोधेण उवट्ठिदस्स जा किट्टीकरणद्धा, माणेण उवट्ठिदस्स तम्हि काले अस्सकण्णकरणद्धा। कोधेण उवट्ठिदस्स जा कोधस्स खवणद्धा, माणेण उवट्ठिदस्स तम्हि काले किट्टीकरणद्धा। कोधेण उवट्ठिदस्स माणस्स जा खवणद्धा, माणेण उवट्ठिदस्स तम्हि चेव काले माणस्स खवणद्धा। एत्तो पाए जहा कोधेण उवट्ठिदस्स विही तहा माणेण वि उवट्ठिदस्स पुरिसवेदयस्स।

मायाए उवट्ठिदस्स णाणत्तं वत्तइस्सामो। तं जहा– कोधेण उवट्ठिदस्स जम्म-

---

शेष है उतना मोहनीयका स्थितिसत्त्व शेष है। यह प्ररूपणा क्रोधसे उपस्थित पुरुषवेदीकी है।

मानसे उपस्थित पुरुषवेदीकी विशेषताको कहते हैं। वह इस प्रकार है — अन्तरके न करनेपर अर्थात् अन्तरकरणसे पूर्वअवस्थामें वर्तमान क्षपकोंके कोई विशेषता नहीं है। किन्तु अन्तर कर चुकनेपर विशेषता है। अन्तर कर चुकनेपर क्रोधकी प्रथमस्थिति नहीं है। किन्तु मानकी प्रथमस्थिति है।

शंका—वह मानकी प्रथमस्थिति कितनी बड़ी है?

समाधान—क्रोधसे उपस्थित हुए जीवके जितनी क्रोधकी प्रथमस्थिति और क्रोधका ही क्षपणाकाल है, उतनी बड़ी मानसे उपस्थित हुए जीवके मानकी प्रथमस्थिति है।

जिस कालमें क्रोधसे उपस्थित हुआ अश्वकर्णकरणको करता है उस कालमें मानसे उपस्थित हुआ क्रोधका क्षय करता है। क्रोधसे उपस्थित हुए जीवका जो कृष्टिकरणकाल है, मानसे उपस्थित हुएका उस कालमें अश्वकर्णकरणकाल है। क्रोधसे उपस्थित हुएके जो क्रोधका क्षपणाकाल है, मानसे उपस्थित हुएका उस कालमें कृष्टिकरणकाल है। क्रोधसे उपस्थित हुएके मानका जो क्षपणाकाल है, मानसे उपस्थित हुएके उसी कालमें मानका क्षपणाकाल है। यहांसे लेकर जैसी क्रोधसे उपस्थित हुए पुरुषवेदी जीवकी विधि है, वैसी ही मानसे भी उपस्थित हुए पुरुषवेदीकी विधि है।

मायासे उपस्थित हुए पुरुषवेदीकी विशेषताको कहते हैं। वह इस प्रकार है—

---

१ उवियण्णे अवसाणे खंडे मोहस्स णत्थि ठिदिघादो। ठिदिसत्तं मोहस्स य सुहुमद्धासेसपरिमाणं॥ लब्धि. ५९७.

२ पृथ णाणत्तमिदि वुत्ते भेदो विसेसो पुधभावो त्ति एयट्ठो। जयध. अ. प. १२२६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हंती कोधस्स पढमट्ठिदी, कोधस्स चेव खवणद्धा, माणस्स खवणद्धा च, मायाए उवट्ठिदस्स एम्महंती मायाए पढमट्ठिदी। कोधेण उवट्ठिदो जम्हि अस्सकण्णकरणं करेदि, मायाए उवट्ठिदो तम्हि कोधं खवेदि। कोधेण उवट्ठिदो जम्हि किट्टीओ करेदि, मायाए उवट्ठिदो तम्हि माणं खवेदि। कोधेण उवट्ठिदो जम्हि कोधं खवेदि, मायाए उवट्ठिदो तम्हि अस्सकण्णकरणं करेदि। कोधेण उवट्ठिदो जम्हि माणं खवेदि, मायाए उवट्ठिदो तम्हि किट्टीओ करेदि। कोधेण उवट्ठिदो जम्हि मायं खवेदि, तम्हि चेव मायाए उवट्ठिदो मायं खवेदि। एत्तो पाए लोभं खवेमाणस्स णत्थि णाणत्तं।

पुरिसवेदयस्स लोभेण उवट्ठिदस्स णाणत्तं वत्तइस्सामो– जाव अंतरं ण करेदि ताव णत्थि णाणत्तं। अंतरं करेमाणो लोभस्स पढमट्ठिदिं ठवेदि। सा केम्महंती? जद्देही कोधेण उवट्ठिदस्स कोधस्स पढमट्ठिदी, कोध-माण-मायाणं खवणद्धा च, तद्देही[1] लोभेण उवट्ठिदस्स लोभस्स पढमट्ठिदी। कोधेण उवट्ठिदो जम्हि अस्सकण्णकरणं करेदि, लोभेण

क्रोधसे उपस्थित हुएके जितनी बड़ी क्रोधकी प्रथमस्थिति, क्रोधका ही क्षपणाकाल और मानका भी क्षपणाकाल है, उतनी बड़ी मायासे उपस्थित हुएके मायाकी प्रथमस्थिति है। क्रोधसे उपस्थित हुआ जिस कालमें अश्वकर्णकरण करता है, मायासे उपस्थित हुआ उस कालमें क्रोधका क्षय करता है। क्रोधसे उपस्थित हुआ जिस कालमें कृष्टियोंको करता है, मायासे उपस्थित हुआ उस कालमें मानका क्षय करता है। क्रोधसे उपस्थित हुआ जिस कालमें क्रोधका क्षय करता है, मायासे उपस्थित हुआ उसमें अश्वकर्णकरणको करता है। क्रोधसे उपस्थित जिस कालमें मानका क्षय करता है, मायासे उपस्थित उस कालमें कृष्टियोंको करता है। क्रोधसे उपस्थित जिस कालमें मायाका क्षय करता है, उसी कालमें ही मायासे उपस्थित मायाका क्षय करता है। यहांसे लेकर लोभका क्षय करनेवालेके कोई विशेषता नहीं है।

लोभसे उपस्थित हुए पुरुषवेदककी विशेषताको कहते हैं। जब तक अन्तर नहीं करता है, तब तक कोई विशेषता नहीं है। अन्तरको करनेवाला लोभकी प्रथमस्थितिको स्थापित करता है।

शंका—वह लोभकी प्रथमस्थिति कितने प्रमाणरूप है?

समाधान—जितनी क्रोधके उदयसे उपस्थित क्षपकके क्रोधकी प्रथमस्थिति, तथा क्रोध, मान एवं मायाका क्षपणकाल है, उतनीमात्र लोभसे उपस्थित क्षपकके लोभकी प्रथमस्थिति है। क्रोधसे उपस्थित हुआ क्षपक जिस कालमें अश्वकर्णकरणको

---

१ प्रतिषु 'तज्जही' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उवट्ठिदो तम्हि कोधं खवेदि । कोधेण उवट्ठिदो जम्हि किट्टीओ करेदि, लोभेण उवट्ठिदो तम्हि माणं खवेदि । कोधेण उवट्ठिदो जम्हि कोधं खवेदि, लोभेण उवट्ठिदो तम्हि मायं खवेदि । कोधेण उवट्ठिदो जम्हि माणं खवेदि, लोभेण उवट्ठिदो तम्हि अस्सकण्णकरणं करेदि । कोधेण उवट्ठिदो जम्हि मायं खवेदि लोभेण उवट्ठिदो तम्हि किट्टीओ करेदि । कोधेण उवट्ठिदस्स जम्हि लोभं खवेदि, तम्हि चेव लोभेण उवट्ठिदो लोभं खवेदि । एसा सव्वा सण्णियासपरूवणा पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स ।

इत्थिवेदेण उवट्ठिदस्स खवयस्स णाणत्तं वत्तइस्सामो । तं जहा– जाव अंतरं ण करेदि ताव णत्थि णाणत्तं । अंतरं करेमाणो इत्थिवेदस्स पढमट्ठिदिं ट्ठवेदि । जद्देही पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स इत्थिवेदस्स खवणद्धा, तद्देही इत्थिवेदेण उवट्ठिदस्स इत्थिवेदस्स पढमट्ठिदी । णवुंसयवेदं खवेमाणस्स णत्थि णाणत्तं । णवुंसयवेदे खीणे इत्थिवेदं खवेदि । जम्महंती पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स इत्थिवेदखवणद्धा, तम्महंती इत्थिवेदेण उवट्ठिदस्स इत्थिवेदस्स खवणद्धा । तदो अवगदवेदो सत्त कम्मंसे खवेदि[1] । सत्तण्हं हि कम्माणं तुल्ला

करता है, उस समयमें लोभसे उपस्थित क्षपक क्रोधका क्षय करता है। क्रोधसे उपस्थित क्षपक जिस कालमें कृष्टियोंको करता है, लोभसे उपस्थित क्षपक उस कालमें मानका क्षय करता है। क्रोधसे उपस्थित जिस कालमें क्रोधका क्षय करता है, लोभसे उपस्थित उस कालमें मायाका क्षय करता है। क्रोधसे उपस्थित जिस कालमें मानका क्षय करता है, लोभसे उपस्थित उस कालमें अश्वकर्णकरणको करता है। क्रोधसे उपस्थित जिस कालमें मायाका क्षय करता है, लोभसे उपस्थित उस कालमें कृष्टियोंको करता है। क्रोधसे उपस्थित जिस कालमें लोभका क्षय करता है, लोभसे उपस्थित भी उस कालमें लोभका क्षय करता है। यह सब सादृश्यप्ररूपणा पुरुषवेदसे उपस्थित क्षपककी है।

स्त्रीवेदसे उपस्थित क्षपककी विशेषता को कहते हैं। वह इस प्रकार है— जब तक अन्तर नहीं करता तब तक कोई भेद नहीं है। अन्तरको करता हुआ स्त्रीवेदकी प्रथमस्थितिको स्थापित करता है। जितनामात्र पुरुषवेदसे उपस्थित क्षपकके स्त्रीवेदका क्षपणाकाल है, उतनीमात्र स्त्रीवेदसे उपस्थित क्षपकके स्त्रीवेदकी प्रथमस्थिति है। नपुंसकवेदका क्षय करनेवालेके कोई विशेषता नहीं है। नपुंसकवेदके क्षीण होनेपर स्त्रीवेदका क्षय करता है। जितने प्रमाणरूप पुरुषवेदसे उपस्थित क्षपकके स्त्रीवेदका क्षपणाकाल है उतने प्रमाणरूप स्त्रीवेदसे उपस्थित क्षपकके स्त्रीवेदका क्षपणाकाल है। स्त्रीवेदकी प्रथमस्थितिके क्षीण होनेपर अपगतवेद होकर सात (हास्यादिक छह और पुरुषवेद) कर्मोंका क्षय करता है। सातों ही कर्मोंका क्षपणाकाल तुल्य है। शेष

१ पुरिसोदएण चडिदस्सित्थीखवणद्धउत्ति पढमठिदी। इत्थिस्स सत्त कम्मं अवगदवेदो समं विणासेदि ॥ लब्धि. ६०६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खवणद्धा। सेसेसु पदेसु णत्थि णाणत्तं।

एत्तो णवुंसयवेदेण उवट्ठिदस्स खवगस्स णाणत्तं वत्तइस्सामो– जाव अंतरं ण करेदि ताव णत्थि णाणत्तं। अंतरं करेमाणो णवुंसयवेदस्स पढमट्ठिदिं ठवेदि। जम्महं-(ती इत्थीवेदेण उवट्ठिदस्स इत्थीवेदस्स पढमट्ठिदी, तम्महंती णवुंसयवेदेण उवट्ठिदस्स णवुंसय-वेदस्स पढमट्ठिदी। तदो अंतरदुसमयकदे णवुंसयवेदं खवेदुमाढत्तो। जद्देही पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स णवुंसयवेदस्स खवणद्धा तद्देही णवुंसयवेदेण उवट्ठिदस्स णवुंसयवेदस्स खवणद्धा गदा ण ताव) णवुंसयवेदो खीयदि। तदो से काले इत्थिवेदं खवेदुमाढत्तो[1], णवुंसयवेदं हि खवेदि। जम्हि पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स इत्थिवेदो खीणो तम्हि चेव णवुं-सयवेदेण उवट्ठिदस्स इत्थिवेदो णवुंसयवेदो च दो वि सह खीयंति।

तदो अवगदवेदो सत्त कम्मंसे खवेदि। सत्तण्हं हि कम्माणं तुल्ला खवणद्धा। सेसेसु पदेसु जहा पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स उत्तं तधा वत्तव्वं[2]। जाधे चरिमसमयसुहुम-सांपराइयो जादो ताधे णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो अट्ठ मुहुत्ता। वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो बारस

पदोंमें कोई विशेषता नहीं है।

यहांसे आगे नपुंसकवेदसे उपस्थित क्षपककी विशेषताको कहते हैं— जब तक अन्तरको नहीं करता है तब तक कोई विशेषता नहीं है। अन्तरको करता हुआ नपुंसक-वेदकी प्रथमस्थितिको स्थापित करता है। (स्त्रीवेदसे उपस्थित क्षपकके जितनी बड़ी स्त्रीवेदकी प्रथमस्थिति है, उतनी ही नपुंसकवेदसे उपस्थित क्षपकके नपुंसकवेदकी प्रथमस्थिति है। पश्चात् अन्तर करनेके दूसरे समयमें नपुंसकवेदका क्षय करना प्रारम्भ करता है। पुरुषवेदसे उपस्थित क्षपकके जितना नपुंसकवेदका क्षपणाकाल है उतना नपुंसकवेदसे उपस्थित क्षपकके नपुंसकवेदका क्षपणाकाल बीत जाता है, किन्तु तब तक नपुंसकवेद क्षीण नहीं होता।) पश्चात् अनन्तर समयमें स्त्रीवेदका क्षय करना प्रारम्भ करके नपुंसकवेदका निश्चयसे क्षय करता है। पुरुषवेदसे उपस्थित क्षपकका जिस समयमें स्त्रीवेद क्षीण होता है उसी समयमें ही नपुंसकवेदसे उपस्थित क्षपकके स्त्रीवेद और नपुंसकवेद दोनों ही एक साथ क्षयको प्राप्त होते हैं।

तदनन्तर अपगतवेद होकर सात नोकषायोंका क्षय करता है। सातों ही नोकषायोंका क्षपणाकाल तुल्य है। शेष पदोंमें जैसी विधि पुरुषवेदसे उपस्थित क्षपककी कही गई है, वैसी यहां भी कहना चाहिये। जिस समय अन्तिमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक होता है, उस समयमें नाम व गोत्र कर्मोंका स्थितिबन्ध आठ मुहूर्त, वेदनीयका स्थितिबन्ध

---

१ प्रतिषु ' खवेदिमाढत्तो ' इति पाठः।

२ थीपढमट्ठिदिमेत्ता संढस्स वि अंतरादु संढक्क। तस्सद्धाति तदुवरिं संढा इच्छि व्व खवदि थीचरिमे ॥ अवगयवेदो संतो सत्त कसाये खवेदि कोहुदये। पुरिसुदये चडणविही सेसुदयाणं तु हेट्ठुवरिं ॥ लब्धि. ६०७-६०८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुहुत्ता। तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तं[1]। तेसिं चेव तिण्हं ट्ठिदिसंतकम्मं पि अंतोमुहुत्तं। णामा-गोद-वेदणीयाणं ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जाणि वस्साणि[2]। मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं तत्थ णस्सदि।

तदो से काले पढमसमयखीणकसाओ जादो। ताधे चेव ट्ठिदि-अणुभागाणमबंधगो[3]। एवं जाव चरिमसमयाहियावलियछदुमत्थो ताव तिण्हं घादिकम्माणमुदीरगो। तदो दुचरिमसमए णिद्दा-पयलाणमुदयसंतवोच्छेदो[4]। तदो णाणावरण-दंसणावरण-अंत-

बारह मुहूर्त, और तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्तमात्र होता है। इन्हीं तीन घातिया कर्मोंका स्थितिसत्व भी अन्तर्मुहूर्तमात्र होता है। नाम, गोत्र व वेदनीय, इनका स्थितिसत्व असंख्यात वर्षप्रमाण होता है। मोहनीयका स्थितिसत्व वहां नष्ट हो जाता है।

चारित्रमोहनीयके क्षयके अनन्तर समयमें प्रथमसमयवर्ती क्षीणकषाय होता है। उसी समयमें ही सब कर्मोंकी स्थिति और अनुभागका अबन्धक होता है।

विशेषार्थ—कर्मोंकी स्थिति और अनुभागके बन्धका कारण कषाय है। अत एव कषायके क्षीण हो जानेपर कारणके अभावमें कार्याभावके न्यायानुसार, उक्त दोनों बन्धोंका भी अभाव हो जाता है। किन्तु प्रकृतिबन्ध केवल योगके निमित्तसे होता है, और क्षीणकषाय हो जानेपर भी योगकी प्रवृत्ति रहती ही है। अत एव यहां प्रकृति-बन्धका निषेध नहीं किया गया। जयधवलानुसार प्रदेशबन्धका भी व्युच्छेद स्थिति व अनुभागके बन्धव्युच्छेदके साथ ही हो जाता है।

इस प्रकार एक समय अधिक आवलिमात्र छद्मस्थकालके शेष रहने तक तीन घातिया कर्मोंका उदीरक होता है। इसके पश्चात् द्विचरम समयमें निद्रा और प्रचलाके उदय व सत्वकी व्युच्छित्ति हो जाती है। तदनन्तर एक समयमें ज्ञानावरण, दर्शना-

१ णामदुगे वेयणीये अडवारसमुहुत्तयं तिघादीणं। अंतोमुहुत्तमेत्तं ठिदिबंधो चरिमसुहुमम्हि॥ लब्धि. ५९८.

२ तिण्हं घादीणं ठिदिसंतो अंतोमुहुत्तमेत्तं तु। तिण्हमघादीणं ठिदिसंतमसंखेज्जवस्साणि॥ लब्धि. ५९९.

३ ताधे चेव ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसस्स अबंधगो। तदवस्थायामेव सर्वकर्मणां स्थित्यनुभवप्रदेशानामबन्धक इत्युक्तं भवति। कषायो हि स्थित्यादिबन्धकारणं, तस्य तदन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वात्ततः कषायपरिणामसंक्लेशापगमान्नास्य स्थित्यादिबन्धसम्भव इति सुनिरूपितमेतत्। पयडिबंधो पुण जोगमेत्तणिबंधणो खीणकसाये वि संभवदि त्ति ण तस्स पडिसेहो एत्थ कदो। जयध. अ. प. १२३०. ठिदिअणुभागाणं पुण बंधो सुहुमो त्ति होदि णियमेण। बंधपदेसाणं पुण संकमणं सुहुमरागो त्ति॥ गो. क. ४२९. तत्र योगनिमित्तौ प्रकृति-प्रदेशौ, कषायनिमित्तौ स्थित्यनुभवौ। तत्प्रकर्षाप्रकर्षभेदात्तद्बन्धविचित्रभावः। तथा चोक्तं- जोगा पयडि-पदेसा ठिदि-अणुभागा कसायदो कुणदि। अपरिणदुच्छिण्णेसु य बंध-ट्ठिदिकारणं णत्थि॥ स. सि. ८, ३., गो. क. २५७. से काले सो खीणकसाओ ठिदि-रसगबंधपरिहीणो॥ लब्धि. ६००.

४ चरिमे खंडे पडिदे कदकरणिज्जो त्ति भण्णदे एसो। तस्स दुचरिमे णिद्दा पयला सत्तुदयवोच्छिण्णा॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राइयाणमेगसमएण संतोदयवोच्छेदो । तदो अणंतकेवलणाण-दंसण-वीरियजुत्तो जिणो केवली सव्वण्हू सव्वदरिसी सजोगिजिणो[1] असंखेज्जगुणाए सेडीए पदेसग्गं[2] णिज्जरेमाणो विहरदि त्ति ।

तदो अंतोमुहुत्ते आउगे सेसे केवलिसमुग्घादं करेदि[3] । पढमसमए दंडं करेदि[4] । तम्हि ट्ठिदीए असंखेज्जे भागे हणदि । सेसस्स च अणुभागस्स अप्पसत्थाणमणंते भागे हणदि ।

वरण और अन्तराय, इनके उदय व सत्वकी व्युच्छित्ति होती है । पश्चात् अनन्तर समयमें अनन्त केवलज्ञान, केवलदर्शन और अनन्त वीर्यसे युक्त जिन, केवली, सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी होकर सयोगिजिन प्रतिसमय असंख्यातगुणित श्रेणीसे कर्मप्रदेशाग्रकी निर्जरा करते हुए धर्मप्रवर्तनके लिये विहार करते हैं ।

पश्चात् अन्तर्मुहूर्तमात्र आयुके शेष रहनेपर केवलिसमुद्घातको करते हैं । इसमें प्रथम समयमें दण्डसमुद्घातको करते हैं । उस दण्डसमुद्घातमें वर्तमान होते हुए आयुको छोड़कर शेष तीन अघातिया कर्मोंकी स्थितिके असंख्यात बहुभागको नष्ट करते हैं । इसके अतिरिक्त क्षीणकषायके अन्तिम समयमें घातनेसे शेष रहे अप्रशस्त प्रकृति-सम्बन्धी अनुभागके अनन्त बहुभागको भी नष्ट करते हैं । द्वितीय समयमें कपाटसमु-

---

लब्धि. ६०३. खीणकसायदुचरिमे णिद्दा पयला य उदयवोच्छिण्णा । णाणंतरायदसयं दंसणचत्तारि चरिमम्हि ॥ गो. क. २७०. खीणे सोलसऽजोगे बायत्तरि तेरुवंतंते ॥ गो. क. ३३७.

१ असहायणाणदंसणसहिओ इदि केवली हु जोगेण । जुत्तो त्ति सजोगो इदि अणाइणिहणारिसे वुत्तो ॥ जयध. अ. प. १२३४. गो. जी. ६४. चरिमे पढमं विग्घं चउदंसण उदयसत्तवोच्छिण्णा । से काले जोगिजिणो सव्वण्हू सव्वदरसी य ॥ लब्धि. ६०९.

२ अ-आप्रत्योः ' सेडीए पढमसग्गं ', कप्रतौ ' सेडीए पढमसमए पदेसग्गं ' इति पाठः ।

३ अंतोमुहुत्तमाऊ परिसेसे केवली समुग्घादं । दंड कवाटं पदरं लोगस्स य पूरणं कुणई ॥ लब्धि. ६२०. को केवलिसमुग्घादो णाम ? वुच्चदे– उद्गमनमुद्घातः जीवप्रदेशानां विसर्पणमित्यर्थः, समीचीन उद्घातः समुद्घातः, केवलिनां समुद्घातः केवलिसमुद्घातः । अघातिकर्मस्थितिसमीकरणार्थं केवलिजीवप्रदेशानां समयाविरोधेन ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्च विसर्पणं केवलिसमुद्घात इत्युक्तं भवति । जयध. अ. प. १२३८. सम्यक् अपुनर्भावेन उत्प्राबल्येन घातो वेदनीयादिकर्मणां विनाशो यस्मिन् क्रियाविशेषे स समुद्घातः । पंचसंग्रह १, पृ. २९. स यदान्तर्मुहूर्तशेषायुष्कस्तत्तुल्यस्थितिवेद्यनामगोत्रश्च भवति, तदा सर्वं वाङ्मानसयोगं बादरकाययोगं च परिहाप्य सूक्ष्मकाययोगलम्बनः सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिध्यानमास्कन्दितुमर्हतीति । यदा पुनरन्तर्मुहूर्तशेषायुष्कस्ततोऽधिकस्थितिशेषकर्मत्रयो भवति सयोगी तदाऽऽत्मोपयोगातिशयस्य सामायिकसहायस्य विशिष्टकरणस्य महासंवरस्य लघुकर्मपरिपाचनस्याशेषकर्मरेणुपरिसातन-शक्तिस्वाभाव्याद्दण्डकपाटप्रतरलोकपूरणानि स्वात्मप्रदेशविसर्पणतश्चतुर्भिः समयैः कृत्वा समुपहृतप्रदेशविसरणः समी-कृतस्थितिशेषकर्मचतुष्टयः पूर्वशरीरप्रमाणो भूत्वा सूक्ष्मकाययोगेन सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिध्यानं ध्यायते । स. सि. ९, ४४.

४ किंलक्षणो सो दंडसमुद्घात इति चेदुच्यते– अंतोमुहुत्ताउगे सेसे केवलीसमुग्घादं करेमाणो पुव्वाहिमुहो उत्तराहिमुहो वा होदूण काउसग्गेण वा करेदि पलियंकासणेण वा । तत्थ काओसग्गेण दंडसमुग्घादं कुणमाणस्स मूलसरीर-परिणाहेण देसूणचोद्दसरज्जुआयामेण दंडायारेण जीवपदेसाणं विसप्पणं दंडसमुग्घादो णाम । जयध. अ. प. १२३८.

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

विदियसमए कवाडं करेदि[1]। तम्हि सेसिगाए ट्ठिदीए असंखेज्जे भागे हणदि। सेसस्स च अणुभागस्स अप्पसत्थाणमणंते भागे हणदि। तदो तदियसमए मंथं करेदि[2]। ट्ठिदि-अणुभागे तहेव णिज्जरयदि। तदो चउत्थसमए लोगमावूरेदि[3]। लोगे पुण्णे एक्का वग्गणा जोगस्स[4] समजोगजादसमए। ट्ठिदि-अणुभागे तहेव णिज्जरयदि[5]। लोगे पुण्णे

....

द्घातको करते हैं। उस कपाटसमुद्घातमें वर्तमान रहकर शेष स्थितिके असंख्यात बहुभागको नष्ट करते हैं, तथा अप्रशस्त प्रकृतियोंके शेष अनुभागके भी अनन्त बहुभागको नष्ट करते हैं। पश्चात् तृतीय समयमें प्रतरसंज्ञित मंथसमुद्घातको करते हैं। इस समुद्घातमें भी स्थिति व अनुभागको पूर्वके समान ही नष्ट करते हैं। तत्पश्चात् चतुर्थ समयमें अपने सब आत्मप्रदेशोंसे सब लोकको पूर्ण करके लोकपूरणसमुद्घातको प्राप्त होते हैं। लोकपूरणसमुद्घातमें समयोग हो जानेपर योगकी एक वर्गणा हो जाती है।

विशेषार्थ—लोकपूरणसमुद्घातमें वर्तमान केवलीके लोकप्रमाण समस्त जीवप्रदेशोंमें योगके अविभागप्रतिच्छेद वृद्धि-हानिसे रहित होकर सदृश हो जाते हैं। अत एव सब जीवप्रदेशोंके परस्परमें समान होनेसे उन जीवप्रदेशोंकी एक वर्गणा हो जाती है।

इस अवस्थामें भी स्थिति और अनुभागको पूर्वके ही समान नष्ट करते हैं।

....

१ कपाटमिव कपाटम्। क उपमार्थः? यथा कपाटं बाहल्येन स्तोकमेव भूत्वा विष्कंभायामाभ्यां परिवर्धते एवमयमपि जीवप्रदेशावस्थाविशेषः मूलशरीरबाहल्येन तत्त्रिगुणबाहल्येन वा देसूणचोद्दसरज्जुआयामेण सत्तरज्जुविक्खंभेण वड्ढिहाणिगदविक्खंभेण वा वड्ढिदूण चिट्ठदि त्ति कवाडसमुग्घादो त्ति भण्णदे, परिप्फुडमेवेत्थ कवाडसंठाणोवलंभादो। जयध. अ. प. १२३८.

२ मथ्यतेऽनेन कर्मेति मन्थः, अघादिकम्माणं ट्ठिदिअणुभागणिम्महणट्ठो केवलिजीवपदेसाण मवत्थाविसेसो पदरसण्णिदो मंथो त्ति वुत्तं होई। जयध. अ. प. १२३८.

३ वादवलयावरुद्धलोगागासपदेसेसु वि जीवपदेसेसु समंतदो णिरंतरं पविट्ठेसु लोगपूरणसण्णिदं चउत्थं केवलिसमुग्घादमेसो तदवत्थाए पडिवज्जदि त्ति भणिदं होदि। जयध. अ. प. १२३९.

४ लोगे पुण्णे एक्का वग्गणा जोगस्स त्ति समजोगो णायव्वो। लोगपूरणसमुग्घादे वट्टमाणस्सेदस्स केवलिणो लोगमेत्तासेसजीवपदेसेसु जोगाविभागपलिच्छेदा वड्ढीहाणीहि विणा सरिसा चेव होदूण परिणमंति। तेण सव्वे जीवपदेसा अण्णोण्णं सरिसधणियसरूवेण परिणदा संता एया वग्गणा जादा। तदो समजोगो त्ति एसो तदवत्थाए णायव्वो, जोगसत्तीए सव्वजीवपदेसेसु सरिसभावं मोत्तूण विसरिसभावाणुवलंभादो त्ति वुत्तं होई॥ जयध. अ. प. १२३९.

५ ठिदिखंडमसंखेज्जे भागे रसखंडमप्पसत्थाणं। हणदि अणंता भागा दंडादी चउसु समएसु॥ लब्धि. ६२४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतोमुहुत्तट्ठिदिं ठवेदि संखेज्जगुणमाउआदो[1]। एदेसु चदुसु समएसु अप्पसत्थकम्मंसाणमणुभागस्स अणुसमयओवट्टणा, एगसमइयो ट्ठिदिखंडयस्स घादो[2]। एत्तो सेसियाए ट्ठिदीए संखेज्जे भागे हणदि। सेसस्स च अणुभागस्स अणंते भागे हणदि। एत्तो पाए ट्ठिदिखंडयस्स अणुभागखंडयस्स च अंतोमुहुत्तिया उक्कीरणद्धा।

एत्तो अंतोमुहुत्तं गंतूण बादरकायजोगेण बादरमणजोगं णिरुंभदि। तदो अंतोमुहुत्तेण बादरकायजोगेण बादरवचिजोगं णिरुंभदि। तदो अंतोमुहुत्तेण बादरकायजोगेण बादरउस्सासणिस्सासं णिरुंभदि। तदो अंतोमुहुत्तेण बादरकायजोगेण तमेव बादरकायजोगं णिरुंभदि[3]। तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण सुहुमकायजोगेण सुहुममणजोगं णिरुंभदि। तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण सुहुमवचिजोगं णिरुंभदि। तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण सुहुमकायजोगेण

लोकपूरणसमुद्घातमें आयुसे संख्यातगुणी अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थितिको स्थापित करता है। इन चार समयोंमें अप्रशस्त कर्मोंके अनुभागकी प्रतिसमय अपवर्तना होती है। एक एक समयमें एक एक स्थितिकांडकका घात होता है। उतरनेके प्रथम समयसे लेकर शेष स्थितिके संख्यात बहुभागको, तथा शेष अनुभागके अनन्त बहुभागको भी नष्ट करता है। लोकपूरणसमुद्घातके अनन्तर समयसे लेकर स्थितिकांडक और अनुभागकांडकका अन्तर्मुहूर्तमात्र उत्कीरणकाल प्रवर्तमान रहता है।

यहांसे अन्तर्मुहूर्त जाकर बादर काययोगसे बादर मनोयोगका निरोध करता है। तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्तसे बादर वचनयोगका निरोध करता है। पुनः अन्तर्मुहूर्तसे बादर काययोगसे बादर उच्छ्वास निच्छ्वासका निरोध करता है। पुनः अन्तर्मुहूर्तसे बादर काययोगसे उसी बादर काययोगका निरोध करता है। तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त जाकर सूक्ष्म काययोगसे सूक्ष्म मनोयोगका निरोध करता है। पुनः अन्तर्मुहूर्त जाकर सूक्ष्म वचनयोगका निरोध करता है। पुनः अन्तर्मुहूर्त जाकर सूक्ष्म काययोगसे सूक्ष्म

---

१ जगपूरणम्हि एक्का जोगस्स य वग्गणा ठिदी तस्स। अंतोमुहुत्तमेत्ता संखगुणा आउआ होदि॥ लब्धि. ६२६.

२ चउसमएसु रसस्स य अणुसमओवट्टणा असत्थाणं। ठिदिखंडस्सिगिसमयिगघादो अंतोमुहुत्तुवरिं॥ लब्धि. ६२५.

३ योगनिरोधं कुर्वन् प्रथमतो बादरकाययोगबलादन्तर्मुहूर्तमात्रेण बादरवाग्योगं निरुणद्धि, तन्निरोधानंतरं चान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा बादरकाययोगोपष्टम्भादेव बादरमनोयोगमन्तर्मुहूर्तमात्रेण निरुणद्धि। ××× बादरमनोयोगनिरोधानन्तरं च पुनरप्यन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा तत उच्छ्वासनिःश्वासावन्तर्मुहूर्तमात्रेण निरुणद्धि। ततः पुनरप्यन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा सूक्ष्मकाययोगबलाद्बादरकाययोगं निरुणद्धि, बादरयोगे सति सूक्ष्मयोगस्य निरोद्धुमशक्यत्वात्। ××× केचिदाहुः– बादरकायबलाद्बादरकाययोगं निरुणद्धि। युक्तिं चात्र वदन्ति– यथा कारपत्रिकः स्तम्भोपरिस्थितस्तमेव स्तम्भं छिनत्ति, तथा बादरकाययोगोपष्टम्भाद् बादरकाययोगं निहंतीति, तदत्र तत्त्वमतिशायिनो विदन्ति॥ पंचसंग्रह १, पृ. ३०–३१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुहुमउस्सासं णिरुंभदि ।

तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण सुहुमकायजोगेण सुहुमकायजोगं णिरुंभमाणो[1] इमाणि करणाणि करेदि[2]– पढमसमए अपुव्वफद्दयाणि करेदि पुव्वफद्दयाण हेट्ठादो। आदि-वग्गणाए अविभागपडिच्छेदाणमसंखेज्जदिभागमोकड्डदि, जीवपदेसाणं च असंखेज्जदि-भागमोकड्डदि । एवमंतोमुहुत्तमपुव्वफद्दयाणि करेदि[3] । असंखेज्जगुणहीणाए सेडीए जीवपदेसाणं च असंखेज्जगुणाए सेडीए[4] । अपुव्वफद्दयाणि सेडीए असंखेज्जदि-भागो, सेडीवग्गमूलस्स वि असंखेज्जदिभागो, पुव्वफद्दयाणं पि असंखेज्जदिभागो

उच्छ्वासका निरोध करता है ।

पुनः अन्तर्मुहूर्त जाकर सूक्ष्म काययोगसे सूक्ष्म काययोगका निरोध करता हुआ इन करणोंको करता है— प्रथम समयमें पूर्वस्पर्द्धकोंके नीचे अपूर्वस्पर्द्धकोंको करता है। पूर्वस्पर्द्धकोंसे जीवप्रदेशोंका अपकर्षण करके अपूर्वस्पर्द्धकोंको करता हुआ पूर्वस्पर्द्धकोंकी प्रथम वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदोंके असंख्यातवें भागका अपकर्षण करता है, जीव-प्रदेशोंके भी असंख्यातवें भागका अपकर्षण करता है। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्तकाल तक अपूर्वस्पर्द्धकोंको करता है । इन अपूर्वस्पर्द्धकोंको प्रतिसमय असंख्यातगुणी हीन श्रेणीके क्रमसे करता है । परन्तु जीवप्रदेशोंका अपकर्षण असंख्यातगुणित श्रेणीके क्रमसे होता है। ये सब अपूर्वस्पर्द्धक जगश्रेणीके असंख्यातवें भाग, श्रेणिवर्गमूलके भी असंख्यातवें

---

१ ततोऽनंतरसमये सूक्ष्मकाययोगोपष्टम्भादन्तर्मुहूर्तमात्रेण सूक्ष्मवाग्योगं निरुणद्धि। ततो निरुद्धसूक्ष्म-वाग्योगोऽन्तर्मुहूर्तमास्ते, नान्यसूक्ष्मयोगनिरोधं प्रति प्रयत्नवान् भवति। ततोऽनन्तरसमये सूक्ष्मकाययोगोपष्टम्भात् सूक्ष्ममनोयोगमन्तर्मुहूर्तमात्रेण निरुणद्धि। ततः पुनरपि अन्तर्मुहूर्तमास्ते। ततः सूक्ष्मकाययोगबलात्सूक्ष्मकाययोग-मन्तर्मुहूर्तेन निरुणद्धि। पंचसंग्रह १, पृ. ३२.

२ बादरमण वचि उस्सास कायजोगं तु सुहुमचउक्कं। रुंभदि कमसो बादरसुहुमेण य कायजोगेण ॥ एक्केक्कस्स णिरुंभणकालो अंतोमुहुत्तमेत्तो हु। सुहुमं देहणिमाणमाणं हियमाणि करणाणि ॥ लब्धि. ६२८, ६३०.

३ सुहुमस्स य पढमादो मुहुत्तअंतो त्ति कुणदि हु अपुव्वे। पुव्वगफड्डगहेट्ठा सेढिस्स असंखभागमिदो ॥ पुव्वादिवग्गणाणं जीवपदेसा विभागपिंडादो। होदि असंखं भागं अपुव्वपढमम्हि ताण दुगं ॥ लब्धि. ६३१-६३२. बादरं च काययोगं निरुंधानः पूर्वस्पर्द्धकानामधस्तादपूर्वस्पर्द्धकानि करोति। ××× तत्र पूर्वस्पर्द्धकानामधस्तन्यो याः प्रथमादिवर्गणाः सन्ति, तासां ये वीर्याविभागपरिच्छेदास्तेषामसंख्येयान् भागानाकर्षति, एकमसंख्येयभागं मुञ्चति। जीवप्रदेशानामपि चैकमसंख्येयं भागमाकर्षति, शेषं सर्वं स्थापयति । एष बादरकाययोगनिरोधप्रथम-समयव्यापारः। ××× द्वितीयसमये प्रथमसमयाकृष्टजीवप्रदेशासंख्येयभागादसंख्येयगुणं भागं जीवप्रदेशानामाकर्षति, भावतोऽसंख्येयान् भागानाकर्षतीत्यर्थः। वीर्याविभागपरिच्छेदानामपि प्रथमसमयाकृष्टाद् भागादसंख्येयगुणहीनं भागमा-कर्षति। एवं प्रतिसमयं समाकृष्य तावदपूर्वस्पर्द्धकानि करोति यावदन्तर्मुहूर्तचरमसमयः। पंचसंग्रह १, पृ. २१.

४ उक्कट्टदि पडिसमयं जीवपदेसे असंखगुणियकमे। कुणदि अपुव्वफड्डयं तग्गुणहीणक्कमेणेव ॥ लब्धि. ६३३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वाणि अपुव्वफद्दयाणि[1] ।

एत्तो अंतोमुहुत्तं किट्टीओ करेदि । अपुव्वफद्दयाणमादिवग्गणाए अविभाग-पडिच्छेदाणमसंखेज्जदिभागमोकड्डदि । जीवपदेसाणं असंखेज्जदिभागमोकड्डदि[2] । एत्थ अंतोमुहुत्तं किट्टीओ करेदि असंखेज्जगुणहीणाए सेडीए । जीवपदेसाणमसंखेज्जगुणाए सेडीए ओकड्डदि[3] । किट्टीगुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । किट्टीओ सेडीए असंखेज्जदिभागो, अपुव्वफद्दयाणं पि असंखेज्जदिभागो[4] । किट्टीकरणे णिट्ठिदे तदो से काले पुव्वफद्दयाणि अपुव्वफद्दयाणि च णासेदि । अंतोमुहुत्तं किट्टीगदजोगो होदि[5] । सुहुम-किरियं अप्पडिवादि ज्झाणं ज्झायदि । किट्टीणं च चरिमसमए असंखेज्जे भागे णासेदि[6] ।

भाग, और पूर्वस्पर्द्धकोंके भी असंख्यातवें भागमात्र होते हैं ।

अपूर्वस्पर्द्धकोंको करनेके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त काल तक कृष्टियोंको करता है । अपूर्व-स्पर्द्धकोंकी प्रथम वर्गणासम्बन्धी अविभागप्रतिच्छेदोंके असंख्यातवें भागका अपकर्षण करता है । कृष्टियोंको करनेवाला जीवप्रदेशोंके असंख्यातवें भागका अपकर्षण करता है । यहां अन्तर्मुहूर्त काल तक असंख्यातगुणी हीन श्रेणीके क्रमसे कृष्टियोंको करता है । किन्तु जीवप्रदेशोंका अपकर्षण असंख्यातगुणित श्रेणीसे करता है । कृष्टिगुणकार पल्योपमका असंख्यातवां भाग है । ये कृष्टियां श्रेणीके असंख्यातवें भाग और अपूर्वस्पर्द्धकोंके भी असंख्यातवें भागप्रमाण होती हैं । कृष्टिकरणके समाप्त होनेपर उसके अनन्तर समयमें पूर्वस्पर्द्धकों और अपूर्वस्पर्द्धकोंको नष्ट करता है । अन्तर्मुहूर्त काल तक कृष्टिगत योगवाला होता है । उस समय केवली भगवान् सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती शुक्लध्यानको ध्याते हैं । सयोगि-गुणस्थानके अन्तिम समयमें कृष्टियोंके असंख्यात बहुभागोंको नष्ट करते हैं । योगका निरोध

---

१ सेढिपदस्स असंखं भागं पुव्वाण फड्डयाणं वा । सव्वे होंति अपुव्वा हु फड्डया जोगपडिबद्धा ॥ लब्धि. ६३४. कियन्ति पुनः स्पर्द्धकानि करोतीति चेत्, उच्यते– श्रेणिवर्गमूलस्यासंख्येयभागमात्राणि, पूर्वस्पर्द्धकानाम-संख्येयभागमात्राणीति यावत् । पंचसंग्रह १, पृ. ३१.

२ एत्तो करेदि किट्टिं मुहुत्त अंतोत्ति ते अपुव्वाणं । हेट्ठादु फड्डयाणं सेढिस्स असंखभागमिदं ॥ अपुव्वादि-वग्गणाणं जीवपदेसाविभागपिंडादो । होंति असंखं भागं किट्टीपढमम्हि ताण दुगं ॥ लब्धि. ६३५–६३६.

३ उक्कट्टदि पडिसमयं जीवपदेसे असंखगुणियकमे । तग्गुणहीणकमेण य करेदि किट्टिं तु पडिसमए ॥ लब्धि. ६३७.

४ सेढिपदस्स असंखं भागमपुव्वाण फड्डयाणं व । सव्वाओ किट्टीओ पल्लस्स असंखभागगुणिदकमा ॥ लब्धि. ६३८.

५ किट्टीकरणे चरमे से काले उभयफड्डये सव्वे । णासेइ मुहुत्तं तु किट्टीगदवेदगो जोगी ॥ लब्धि. ६४०.

६ किट्टिगजोगी झाणं झायदि तदियं खु सुहुमकिरियं तु । चरिमे असंखभागे किट्टीणं णासदि सजोगी ॥ लब्धि. ६४३.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

जोगम्हि णिरुद्धम्हि आउसमाणि कम्माणि भवंति ।

तदो अंतोमुहुत्तं जोगाभावेण णिरुद्धासवत्तादो सेलेसिं पडिवज्जदि[1], समुच्छिण्ण-किरियं अणियट्टिसुक्कज्झाणं झायदि[2] । देवगदीए पंचण्हं सरीराणं पंचसरीरबंधणाणं पंचसरीरसंघादाणं छण्हं संठाणाणं तिण्णमंगोवंगाणं छण्हं संघडणाणं पंचण्हं वण्णाणं दोण्हं गंधाणं पंचण्हं रसाणं अट्ठण्हं पासाणं मणुस-देवगदिपाओग्गाणुपुव्वीए अगुरुगलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासाणं पसत्थापसत्थविहायगदीणं पत्तेयसरीर-अपज्जत्ताणं थिराथिर-सुभासुभ-सुस्सरदुस्सराणं दुभग-अणादेज्जाणं अजसकित्ति-णिमिण-णीचागोदाणं अण्णदर-वेदणीयाणं संतस्स सेलेसिअद्धाए दुचरिमसमए वोच्छेदो । अण्णदरवेदणीय-मणुसगदि-मणुसाउ-पंचिंदियजादि-तस-बादर-पज्जत्त-सुभग-आदेज्ज-जसकित्ति-तित्थयर-उच्चागोदं ति एदाओ पयडीओ सेलेसिं चरिमसमए वोच्छिण्णाओ । सव्वकम्मविप्पमुक्को एगसमएण

हो जानेपर नाम, गोत्र व वेदनीय, ये तीन अघातिया कर्म आयुके सदृश हो जाते हैं ।

तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त काल तक अयोगिकेवलीके योगका अभाव हो जानेसे आस्रवका निरोध हो जाता है, अत एव वे शैलेश्य अर्थात् अठारह सहस्र शीलोंके ऐकाधिपत्यको प्राप्त होते हैं। उस समय वे अयोगी भगवान् समुच्छिन्नक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यानको ध्याते हैं। देवगति, पांच शरीर, पांच शरीरबन्धन, पांच शरीरसंघात, छह संस्थान, तीन आंगोपांग, छह संहनन, पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस, आठ स्पर्श, मनुष्य-गत्यानुपूर्वी, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्त विहायोगति, प्रत्येकशरीर, अपर्याप्त, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुस्वर-दुस्वर, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र और दोनों वेदनीयोंमेंसे अनुदयप्राप्त एक वेदनीय, इन तिहत्तर प्रकृतियोंके सत्वकी व्युच्छित्ति अयोगिकालके द्विचरम समयमें हो जाती है । शेष एक वेदनीय, मनुष्यगति, मनुष्यायु, पंचेन्द्रियजाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यशःकीर्ति, तीर्थंकर और उच्चगोत्र, ये बारह प्रकृतियां अयोगिकालके अन्तिम समयमें व्युच्छिन्न हो जाती हैं । तब सर्व कर्मोंसे वियुक्त होकर

१ सीलेसिं संपत्तो णिरुद्धणिस्सेसआसओ जीवो । बंधरयविप्पमुक्को गयजोगो केवली होइ ॥ लब्धि. ६४७. अष्टादशसहस्रशीलाधिपत्यं प्राप्तः । गो. जी. ६५ जी. प्र. टीका. शीलेशः सर्वसंवररूपचरणप्रभुस्तस्येयमवस्था । शैलेशो वा मेरुस्तस्येव याऽवस्था स्थिरतासाधर्म्यात् सा शैलेशी । सा च सर्वथा योगनिरोधे पंचह्रस्वाक्षरोच्चार-कालमाना । व्याख्याप्रज्ञप्ति १, ८, ७२ अभयदेवीया वृत्तिः ।

२ ततस्तदनन्तरं समुच्छिन्नक्रियानिवर्तिध्यानमारभते । समुच्छिन्नप्राणापानप्रचारसर्वकायवाङ्मनोयोगसर्व-प्रदेशपरिस्पन्दक्रियाव्यापारत्वात्समुच्छिन्नक्रियानिवर्तीत्युच्यते । स. सि. ९,४४. से काले जोगिजिणो ताहे आउगसमा हि कम्माणि । तुरियं तु समुच्छिण्णं किरियं झायदि अयोगिजिणो ॥ लब्धि. ६४६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धिं गच्छदि[1]।

एवं दोहि सुत्तेहि सूइदत्थस्स परूवणाए कदाए संपुण्णं चारित्तप्पडिवज्जण-विहाणं परूविदं होदि।

एवं अट्ठमी महल्लचूलिया समत्ता

णवमी चूलिया

संपहि वासद्दसूइयं णवमं चूलियं वत्तइस्सामो। तत्थ ताव पुव्वपरूविदस्स अत्थस्स संभालणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

णेरइया मिच्छाइट्ठी पढमसम्मत्तमुप्पादेंति ॥ १ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो, चदुसु वि गदीसु पढमसम्मत्तमुप्पादेंति त्ति पुव्वं परूविदत्तादो।

आत्मा एक समयमें सिद्धिको प्राप्त करता है।

इस प्रकार दो सूत्रोंसे सूचित अर्थकी प्ररूपणा करनेपर सम्पूर्ण चरित्रकी प्राप्तिका विधान प्ररूपित होता है।

इस प्रकार आठवीं महती चूलिका समाप्त हुई।

अब हम (प्रथम चूलिकान्तर्गत प्रथम सूत्रमें) 'वा' शब्दके द्वारा सूचित (देखो पृ. १ और ४) गति-आगति नामक नौमी चूलिकाको कहेंगे। इस प्रकरणमें पूर्वप्ररूपित अर्थका स्मरण करानेके लिये आचार्य आगेका सूत्र कहते हैं—

नारकी मिथ्यादृष्टि जीव प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ॥ १ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है, क्योंकि पूर्वमें यह प्ररूपित किया जा चुका है कि चारों ही गतियोंमें जीव प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं।

---

१ स. सि. १०. २. बाहत्तरिपयडीओ दुचरिमगे तेरसं च चरिमम्हि। झाणजलणेण कवलिय सिद्धो सो होदि से काले ॥ लब्धि. ६४८. देहादीफस्संता थिरसुहसरसुरविहायदुग दुभगं। णिमिणाजसऽणादेज्जं पत्तेयापुण्ण अगुरुचऊ ॥ अणुदयतदियं णीचमजोगिदुचरिमम्मि सत्तवोच्छिण्णा ॥ गो. क. ३४०-३४१. तस्मिंश्च द्विचरमसमये देवगतिदेवानुपूर्वी ... ... द्विसप्ततिसंख्यानि स्वरूपसत्तामधिकृत्य क्षयमुपगच्छन्ति। ××× चरमसमये च सातासातान्यतरवेदनीयमनुष्यगतिमनुष्यानुपूर्वीमनुष्यायुःपंचेन्द्रियजातित्रससुभगादेययशःकीर्तिपर्याप्तबादरतीर्थकरोच्चैर्गोत्ररूपाणां त्रयोदशप्रकृतीनां सत्ताव्यवच्छेदः। अन्ये पुनराहुः— मनुष्यानुपूर्व्या द्विचरमसमये व्यवच्छेदः, उदयाभावात्। ××× इति तन्मतेन द्विचरमसमये त्रिसप्ततिप्रकृतीनां सत्ताव्यवच्छेदः, चरमसमये द्वादशानामिति। पंचसंग्रह १, पृ. ३२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उप्पादेंता कम्हि उप्पादेंति ? ॥ २ ॥

आसंकाए कारणाभावा णेदं सुत्तं वत्तव्वं। कुदो ? 'णेरइएसु पढमसम्मत्तमुप्पाएंता पज्जत्ता चे उप्पाएंति, णो अपज्जत्तेसु' त्ति पुव्वं पडिसिद्धत्तादो ? ण एस दोसो। अपज्जत्तणामकम्मोदएण अपज्जत्ता भण्णंति। णेरइया पुण पज्जत्ता चेय, तत्थ अपज्जत्तणामकम्मस्सुदयाभावा। ते च णेरइया पज्जत्तणामकम्मोदयं पडुच्च पज्जत्ता वि संता पज्जत्तणिव्वत्तिं पडुच्च पज्जत्ता य होंति। एत्थ किं पज्जत्तकाले पढमसम्मत्तमुप्पादेंति, आहो अपज्जत्तकाले उप्पादेंति त्ति पुच्छा कदा। तदो णिच्छयसमुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

पज्जत्तएसु उप्पादेंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ ३ ॥

सुगममेदं।

पज्जत्तएसु उप्पादेंता अंतोमुहुत्तप्पहुडि जाव तप्पाओग्गंतोमुहुत्तं उवरिमुप्पादेंति, णो हेट्ठा ॥ ४ ॥

प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले नारकी जीव किस अवस्थामें उसे उत्पन्न करते हैं ? ॥ २ ॥

शंका—आशंकाका कोई कारण न होनेसे यह सूत्र नहीं कहना चाहिये, क्योंकि "नारकियोंमें प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले जीव पर्याप्त अवस्थामें ही उत्पन्न करते हैं, अपर्याप्तोंमें नहीं" इस प्रकार अपर्याप्त अवस्थामें प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका पहले ही प्रतिषेध किया जा चुका है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है। अपर्याप्त नाम कर्मके उदयसे जीव अपर्याप्त कहलाते हैं। किन्तु नारकी तो पर्याप्त ही होते हैं, क्योंकि नरकोंमें अपर्याप्त नामकर्मके उदयका अभाव है। और वे नारकी पर्याप्त नामकर्मके उदयकी अपेक्षा पर्याप्त होते हुए भी निर्वृत्त्यपर्याप्तकी अपेक्षा अपर्याप्त भी होते हैं। अतएव यहां सूत्रमें यह प्रश्न किया गया है कि नारकी पर्याप्त कालमें प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं, अथवा अपर्याप्त कालमें उत्पन्न करते हैं। अतः इस शंकाके उत्पन्न होनेपर निश्चय उत्पन्न करानेके लिये आचार्य आगेका सूत्र कहते हैं—

नारकी जीव पर्याप्तकोंमें ही प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं ॥ ३ ॥

यह सूत्र सुगम है।

पर्याप्तकोंमें प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करनेवाले अन्तर्मुहूर्तसे लगाकर अपने योग्य अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं, उससे नीचे नहीं ॥ ४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पज्जत्ताणं सव्वत्थ सम्मत्तुप्पत्तीए पत्ताए तप्पडिसेहट्ठमेदं सुत्तमागदं । तं जहा– पज्जत्तपढमसमयप्पहुडि जाव तप्पाओग्गंतोमुहुत्तं ताव णिच्छएण पढमसम्मत्तं णो उप्पादेंति, अंतोमुहुत्तेण विणा पढमसम्मत्तपाओग्गविसोहीणमुप्पत्तीए अभावादो । आउए अंतोमुहुत्तावसेसे वि णेरइया पढमसम्मत्तं ण पडिवज्जंति, तेण तत्थ पडिसेहो वत्तव्वो ? ण, पज्जवट्ठियणयावलंबणेण पडिसमयं पुध पुध सम्मत्तभावे जीविददुचरिमसमओ त्ति पडिवज्जंतस्स तदुवलंभा । चरिमसमए वि ण पडिसेहो वत्तव्वो, दंसणमोहोदएण विणा उप्पण्णचरिमसमयसासणभावस्स वि उवयारेण पढमसम्मत्तववदेसादो । अथवा देसामासियसुत्तमेदं, तेण अवसाणे वि पढमसम्मत्तगहणस्स पडिसेहो सिद्धो होदि ।

एवं जाव सत्तसु पुढवीसु णेरइया ॥ ५ ॥

सुगममेदं सुत्तं । किंतु पुव्विल्लसुत्तं सत्तमपुढवीए देसामासियं चेव, सत्तमपुढविम्हि पढमवक्खाणस्स अणुववत्तीए ।

पूर्वोक्त सूत्रसे पर्याप्तकोंके सर्वकाल सम्यक्त्वोत्पत्तिका प्रसंग प्राप्त होता है, उसीके प्रतिषेधके लिये यह सूत्र आया है । वह इस प्रकार है– पर्याप्त होनेके प्रथम समयसे लगाकर तत्प्रायोग्य अन्तर्मुहूर्त तक निश्चयसे जीव प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं करते, क्योंकि अन्तर्मुहूर्तकालके विना प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करनेके योग्य विशुद्धिकी उत्पत्तिका अभाव है ।

शंका—आयुके अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर भी नारकी जीव प्रथम सम्यक्त्वको प्राप्त नहीं करते हैं, इसलिये उस कालमें भी सम्यक्त्वोत्पत्तिका अभाव कहना चाहिये ?

समाधान—नहीं, पर्यायार्थिक नयके अवलम्बनसे प्रत्येक समय पृथक् पृथक् सम्यक्त्वकी उत्पत्ति होनेपर जीवनके द्विचरिम समय तक भी सम्यक्त्वकी उत्पत्ति पायी जाती है । चरिम समयमें भी सम्यक्त्वोत्पत्तिका प्रतिषेध नहीं कहा जा सकता, क्योंकि दर्शनमोहनीय कर्मके उदयके विना उत्पन्न होनेवाले चरमसमयवर्ती सासादनभावकी भी उपचारसे प्रथमसम्यक्त्व संज्ञा मानी जा सकती है । अथवा, यह सूत्र देशामर्षक है, जिससे जीवनके अवसान कालमें भी प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणका प्रतिषेध सिद्ध हो जाता है ।

इस प्रकार एकसे लगाकर सातों पृथिवियोंमें नारकी जीव प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं ॥ ५ ॥

यह सूत्र सुगम है । किन्तु पूर्वोक्त सूत्र सप्तम पृथिवीके सम्बन्धमें देशामर्षक ही है, क्योंकि सातवीं पृथिवीमें प्रथम व्याख्यानकी उपपत्ति ठीक नहीं बैठती ।

विशेषार्थ—पूर्व सूत्र नं. ४ के प्रथम व्याख्यानमें जो पर्यायार्थिकनयसे जीवितके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णेरइया मिच्छाइट्ठी कदिहिं[1] कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेंति ? ॥ ६ ॥

उप्पज्जमाणं सव्वं हि कज्जं कारणादो चेव उप्पज्जदि, कारणेण विणा कज्जुप्पत्तिविरोहादो। एवं णिच्छिदकारणस्स तस्संखाविसयमिदं पुच्छासुत्तं।

तीहिं कारणेहिं पढमसम्मत्तमुप्पादेंति ॥ ७ ॥

कधमेयं कज्जं तीहि कारणेहि समुप्पज्जदि ? ण, अविरुद्धेहि मोग्गर-लउडि-डंगा[2]-थंभ-सिला-भूमि-घडेहिंतो उप्पज्जमाणखप्पराणमुवलंभा। काणि ताणि तिण्णि कारणाणि त्ति उत्ते उत्तरसुत्तं भणदि —

द्विचरम समय तक सम्यक्त्वका प्रादुर्भाव बतलाया है वह सप्तम पृथिवीमें लागू नहीं होता, क्योंकि वहां केवल एक मिथ्यात्व गुणस्थानके साथ ही मरण होता है। (देखो आगे सूत्र नं. ५२) अत एव सप्तम पृथिवीके विषयमें उक्त सूत्रका देशामर्षकरूप द्वितीय व्याख्यान ही स्वीकार करना चाहिये, अन्यथा सप्तम पृथिवीमें भी जीवितके द्विचरम समय तक व उपचारसे अन्तिम समयमें भी सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका प्रसंग आवेगा, जो सूत्रसे विरुद्ध होगा।

नारकी मिथ्यादृष्टि जीव कितने कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं ? ॥६॥

उत्पन्न होनेवाला सभी कार्य कारणसे ही उत्पन्न होता है, क्योंकि कारणके विना कार्यकी उत्पत्तिका विरोध है। इस प्रकार निश्चित कारणकी संख्याविषयक यह पृच्छासूत्र है।

तीन कारणोंसे नारकी मिथ्यादृष्टि जीव प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ॥ ७॥

शंका—यह प्रथम सम्यक्त्वोत्पत्तिरूप कार्य तीन कारणोंसे किस प्रकार उत्पन्न होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि मुद्गर, लकडी, दंड, स्तम्भ, शिला, भूमि व घट रूप अविरुद्ध करणोंके द्वारा खप्पड़ोंका उत्पन्न होना पाया जाता है।

नरकोंमें सम्यक्त्वोत्पत्तिके वे तीन कारण कौनसे हैं, ऐसा पूछनेपर आचार्य आगेका सूत्र कहते हैं—

---

१ अ-क प्रत्योः ' कदाहि ' आप्रतौ ' कंहि ' इति पाठः।

२ अ-आप्रत्योः ' लउदिदंगा ' कप्रतौ ' लउदिदंग ' इति पाठः।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण, केइं वेदणाहिभूदा[1] ॥ ८ ॥

सव्वे णेरइया विभंगणाणेण एक्क-दो-तिण्णिआदिभवग्गहणाणि जेण जाणंति तेण सव्वेसिं जाईभरत्तमत्थि त्ति सव्वणेरइएहि सम्मादिट्ठीहि होदव्वमिदि ? ण एस दोसो, भवसामण्णसरणेण सम्मत्तुप्पत्तीए अणब्भुवगमादो। किंतु धम्मबुद्धीए पुव्वभवम्हि कयाणुट्ठाणाणं विहलत्तदंसणस्स पढमसम्मत्तुप्पत्तीए कारणत्तमिच्छिज्जदे, तेण ण पुव्वुत्तदोसो ढुक्कदि त्ति। ण च एवंविहा बुद्धी सव्वणेरइयाणं होदि, तिव्वमिच्छत्तो-दएण ओट्टद्धणेरइयाणं जाणंताणं पि एवंविहउवजोगाभावादो। तम्हा जाइस्सरणं पढम-सम्मत्तुप्पत्तीए कारणं।

कधं तेसिं धम्मसुणणं संभवदि, तत्थ रिसीणं गमणाभावा ? ण, सम्माइट्ठिदेवाणं

....

कितने ही नारकी जीव जातिस्मरणसे, कितने ही धर्मोपदेश सुनकर, और कितने ही वेदनासे अभिभूत होकर सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ॥ ८ ॥

शंका—चूंकि सभी नारकी जीव विभंग ज्ञानके द्वारा एक, दो, या तीन आदि भवग्रहण जानते हैं, इसलिये सभीके जातिस्मरण होता है, अतएव सभी नारकी जीव सम्यग्दृष्टि होना चाहिये ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, सामान्यरूपसे भवस्मरणके द्वारा सम्यक्त्वकी उत्पत्ति नहीं होती। किन्तु धर्मबुद्धिसे पूर्वभवमें किये गये अनुष्ठानोंकी विफलताके दर्शनसे ही प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका कारणत्व इष्ट है जिससे पूर्वोक्त दोष प्राप्त नहीं होता। और इस प्रकारकी बुद्धि सब नारकी जीवोंके होती नहीं है, क्योंकि तीव्र मिथ्यात्वके उदयसे वशीभूत नारकी जीवोंके पूर्वभवोंका स्मरण होते हुए भी उक्त प्रकारके उपयोगका अभाव है। इस प्रकार जातिस्मरण प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका कारण है।

शंका—नारकी जीवोंके धर्मश्रवण किस प्रकार संभव है, क्योंकि वहां तो ऋषियोंके गमनका अभाव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, अपने पूर्वभवके सम्बन्धी जीवोंके धर्म उत्पन्न

....

१ धम्मादीखिदितिदये णारइया मिच्छभावसंजुत्ता। जाइभरणेण केई केई दुव्वारवेदणाभिहदा॥ केई देवाहिंतो धम्मणिबद्धा कहा बसोदूणं। गिण्हंते सम्मत्तं अणंतभवचूरणणिमित्तं॥ ति. प. २, ३५९–३६०. बाह्यं नारकाणां प्राक्चतुर्थ्याः सम्यग्दर्शनस्य साधनं केषाञ्चिज्जातिस्मरणं केषाञ्चिद्धर्मश्रवणं केषाञ्चिद्वेदनाभिभवः। स. सि. १, ७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुव्वभवसंबंधीणं धम्मपदुप्पायणे[1] वावदाणं सयलबाधाविरहियाणं तत्थ गमणदंसणादो।

वेयणाणुहवणं सम्मत्तुप्पत्तीए कारणं ण होदि, सव्वणेरइयाणं साहारणत्तादो। जइ होइ, तो सव्वे णेरइया सम्माइट्ठिणो होंति। ण चेवं, अणुवलंभा? परिहारो वुच्चदे– ण वेयणासामण्णं सम्मत्तुप्पत्तीए कारणं। किंतु जेसिमेसा वेयणा एदम्हादो मिच्छत्तादो इमादो असंजमादो (वा) उप्पण्णेत्ति उवजोगो जादो, तेसिं चेव वेयणा सम्मत्तुप्पत्तीए कारणं, णावरजीवाणं वेयणा, तत्थ एवंविहउवजोगाभावा।

एवं तिसु उवरिमासु पुढवीसु णेरइया ॥ ९ ॥

सुगममेदं।

चदुसु हेट्ठिमासु पुढवीसु णेरइया मिच्छाइट्ठी कदिहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेंति ॥ १० ॥

करानेमें प्रवृत्त और समस्त बाधाओंसे रहित सम्यग्दृष्टि देवोंका नरकोंमें गमन देखा जाता है।

शंका— वेदनाका अनुभवन सम्यक्त्वोत्पत्तिका कारण नहीं हो सकता, क्योंकि वह अनुभवन तो सब नारकियोंके साधारण होता है। यदि वह अनुभवन सम्यक्त्वोत्पत्तिका कारण हो तो सब नारकी जीव सम्यग्दृष्टि होंगे। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि वैसा पाया नहीं जाता?

समाधान— पूर्वोक्त शंकाका परिहार कहते हैं। वेदना-सामान्य सम्यक्त्वोत्पत्तिका कारण नहीं है। किन्तु जिन जीवोंके ऐसा उपयोग होता है कि अमुक वेदना अमुक मिथ्यात्वके कारण या अमुक असंयमसे उत्पन्न हुई, उन्हीं जीवोंकी वेदना सम्यक्त्वोत्पत्तिका कारण होती है। अन्य जीवोंकी वेदना नरकोंमें सम्यक्त्वोत्पत्तिका कारण नहीं होती, क्योंकि उसमें उक्त प्रकारके उपयोग का अभाव होता है।

इस प्रकार ऊपरकी तीन पृथिवियोंमें नारकी जीव सम्यक्त्वकी उत्पत्ति करते हैं ॥ ९ ॥

यह सूत्र सुगम है।

नीचेकी चार पृथिवियोंमें नारकी मिथ्यादृष्टि जीव कितने कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं? ॥ १० ॥

---

१ प्रतिषु ' दव्वपदुप्पायणे ' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुगममेदं हि पुच्छासुत्तं ।

दोहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेंति ॥ ११ ॥

एदं पि सुत्तं सुगमं ।

केइं जाइस्सरा, केइं वेयणाहिभूदा[1] ॥ १२ ॥

धम्मसवणादो पढमसम्मत्तस्स तत्थ उप्पत्ती णत्थि, देवाणं तत्थ गमणाभावा । तत्थतणसम्माइट्ठिधम्मसवणादो पढमसम्मत्तस्स उप्पत्ती किण्ण होदि त्ति वुत्ते ण होदि, तेसिं भवसंबंधेण पुव्ववेरसंबंधेण वा परोप्परविरुद्धाणं अणुगेज्झणुग्गाहयभावाणमसंभवादो ।

तिरिक्खमिच्छाइट्ठी पढमसम्मत्तमुप्पादेंति ॥ १३ ॥

तत्थ पढमसम्मत्तकारणतिविहकरणाणं संभवादो । सेसं सुगमं ।

यह पृच्छासूत्र सुगम है ।

नीचेकी चार पृथिवियोंमें नारकी मिथ्यादृष्टि जीव दो कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ॥ ११ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

कितने ही जीव जातिस्मरणसे और कितने ही वेदनासे अभिभूत होकर सम्यक्त्वकी उत्पत्ति करते हैं ॥ १२ ॥

नीचेकी चार पृथिवियोंमें धर्मश्रवणके द्वारा प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्ति नहीं होती, क्योंकि वहां देवोंके गमनका अभाव है ।

शंका—नीचेकी चार पृथिवियोंमें विद्यमान सम्यग्दृष्टियोंसे धर्मश्रवणके द्वारा प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्ति क्यों नहीं होती ?

समाधान—ऐसा पूछनेपर उत्तर देते हैं कि नहीं होती, क्योंकि भवसम्बन्धसे या पूर्व वैरके सम्बन्धसे परस्पर विरोधी हुए नारकी जीवोंके अनुगृह्य-अनुग्राहक भाव उत्पन्न होना असंभव है ।

तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीव प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं ॥ १३ ॥

क्योंकि तिर्यंचोंमें प्रथम सम्यक्त्वके कारणभूत तीनों प्रकारके करण संभव हैं । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

---

१ पंकपहापहुदीणं णारइया तिदसबोहणेण विणा । सुमरिदजाइदुक्खप्पहदा गेण्हंति सम्मत्तं ॥ ति. प. २, ३६१. चतुर्थीमारभ्य आ सप्तम्या नारकाणां जातिस्मरणं वेदनाभिभवश्च । स. सि. १, ७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उप्पादेंता कम्हि उप्पादेंति ? ॥ १४ ॥

किमेइंदिएसु किं वा बादरेइंदिएसु किं सुहुमेइंदिएसु किं वि-ति-चउ-पंचिंदिएसु त्ति वुत्तं होदि ।

पंचिंदिएसु उप्पादेंति, णो एइंदिय-विगलिंदिएसु ॥ १५ ॥

कुदो ? एइंदिय-विगलिंदिएसु तिविहकरणपरिणामाभावा । किमट्ठं तेसिमभावो ? सहावदो ।

पंचिंदिएसु उप्पादेंता सण्णीसु उप्पादेंति, णो असण्णीसु ॥ १६ ॥

किमट्ठमसण्णिणो पढमसम्मत्तं णो उप्पादेंति ? ण, अच्चंताभावेण कयणिसेहादो ।

सण्णीसु उप्पादेंता गब्भोवक्कंतिएसु उप्पादेंति, णो सम्मुच्छिमेसु ॥ १७ ॥

प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करनेवाले तिर्यंच किस अवस्थामें उत्पन्न करते हैं ? ॥ १४ ॥

क्या एकेन्द्रियोंमें, क्या बादरएकेन्द्रियोंमें, क्या सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें, अथवा क्या द्वि, त्रि, चतुर् या पंच इन्द्रियोंमें तिर्यंच जीव सम्यक्त्वकी उत्पत्ति करते हैं, यह इस सूत्रके द्वारा पूछा गया है ।

तिर्यंच जीव पंचेन्द्रियोंमें ही प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं, एकेन्द्रियों और विकलेन्द्रियोंमें नही ॥ १५ ॥

क्योंकि, एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियोंमें त्रिविध करणयोग्य परिणामोंका अभाव है ।

शंका—एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियोंमें त्रिविध करणके योग्य परिणामोंका अभाव क्यों है ?

समाधान—उक्त जीवोंमें स्वभावसे ही त्रिविध करणयोग्य परिणामोंका अभाव है ।

पंचेन्द्रियोंमें भी प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करनेवाले तिर्यंच जीव संज्ञी जीवोंमें ही उत्पन्न करते हैं, असंज्ञियोंमें नही ॥ १६ ॥

शंका—असंज्ञी तिर्यंच प्रथम सम्यक्त्व क्यों नही उत्पन्न करते ?

समाधान—नही करते, क्योंकि असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका अत्यन्ताभावरूपसे निषेध किया गया है ।

संज्ञी तिर्यंचोंमें भी प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करनेवाले जीव गर्भोपक्रान्तिक जीवोंमें ही उत्पन्न करते हैं, सम्मूर्च्छिमोंमें नही ॥ १७ ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

एत्थ वि अच्चंताभावो चेव, पढमसम्मत्तुप्पत्तीए पडिसेहादो ।

गब्भोवक्कंतिएसु उप्पादेंता पज्जत्तएसु उप्पादेंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ १८ ॥

एत्थ वि तं चेव कारणं। को अच्चंताभावो? करणपरिणामाभावो । सेसं सुगमं।

पज्जत्तएसु उप्पादेंता दिवसपुधत्तप्पहुडि जावमुवरिमुप्पादेंति, णो हेट्ठादो ॥ १९ ॥

दिवसपुधत्तमिदि वुत्ते सत्तट्ठ दिवसा एत्थ ण घेप्पंति । एसो पुधत्तसद्दो वइपुल्लियवायओ त्ति बहुएसु दिवसपुधत्तेसु गदेसु पढमसम्मत्तमुप्पादेंति त्ति वत्तव्वं।

एवं जाव सव्वदीव-समुद्देसु ॥ २० ॥

णत्थि मच्छा वा मगरा वा त्ति जेण तसजीवपडिसेहो भोगभूमिपडिभागिएसु

यहां अर्थात् सम्मूर्च्छिम जीवोंमें भी प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका प्रतिषेध होनेसे अत्यन्ताभाव ही है।

गर्भोपक्रान्तिक तिर्यंचोंमें भी प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करनेवाले जीव पर्याप्तकोंमें ही उत्पन्न करते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं ॥ १८ ॥

यहां अर्थात् अपर्याप्तकोंमें भी पूर्वोक्त प्रतिषेधरूप कारण होनेसे प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका अत्यन्ताभाव है।

शंका—अत्यन्ताभाव क्या है?

समाधान—करणपरिणामोंका अभाव ही प्रकृतमें अत्यन्ताभाव कहा गया है।

शेष सूत्रार्थ सुगम है।

पर्याप्तक तिर्यंचोंमें भी प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करनेवाले जीव दिवसपृथक्त्वसे लगाकर उपरिम कालमें उत्पन्न करते हैं, नीचेके कालमें नहीं ॥ १९ ॥

दिवसपृथक्त्व कहनेसे यहां केवल सात-आठ दिनका ही ग्रहण नहीं करना चाहिये। क्योंकि यह पृथक्त्व शब्द वैपुल्यवाचक है, अतः बहुतसे दिवसपृथक्त्व व्यतीत हो जानेपर पूर्वोक्त जीव प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं, ऐसा कथन करना चाहिये।

इस प्रकार सब द्वीप-समुद्रोंमें तिर्यंच प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं ॥ २० ॥

शंका— चूंकि 'भोगभूमिके प्रतिभागी समुद्रोंमें मत्स्य या मगर नहीं हैं' ऐसा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समुद्देसु कदो, तेण तत्थ पढमसम्मत्तस्स उप्पत्ती ण जुज्जदि त्ति ? ण एस दोसो, पुव्ववइरियदेवेहि खित्तपंचिंदियतिरिक्खाणं तत्थ संभवादो ।

तिरिक्खा मिच्छाइट्ठी कदिहि कारणेहि पढमसम्मत्तं उप्पादेंति ? ॥ २१ ॥

पुव्विल्लसुत्तेहि पंचिंदियतिरिक्खेसु पढमसम्मत्तस्स उप्पत्तीए णिच्छिदाए उप्पत्तिकारणाणं संखापुच्छा अणेण कदा ।

तीहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेंति– केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण, केइं जिणबिंबं दट्ठूण[1] ॥ २२ ॥

कधं जिणबिंबदंसणं पढमसम्मत्तुप्पत्तीए कारणं ? जिणबिंबदंसणेण णिधत्त-

....

वहां त्रस जीवोंका प्रतिषेध किया गया है, इसलिये उन समुद्रोंमें प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्ति मानना उपयुक्त नहीं है ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, पूर्वभवके वैरी देवोंके द्वारा उन समुद्रोंमें डाले गये पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंकी संभावना है ।

तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीव कितने कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ? ॥ २१ ॥

पूर्वोक्त सूत्रोंद्वारा पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके निश्चित हो जानेपर उसके उत्पत्तिकारणोंकी संख्यासम्बन्धी पृच्छा इस सूत्रद्वारा की गई है ।

पूर्वोक्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच तीन कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं– कितने ही तिर्यंच जातिस्मरणसे, कितने ही धर्मोपदेश सुनकर, और कितने ही जिनबिम्बोंके दर्शन करके ॥ २२ ॥

शंका — जिनबिम्बका दर्शन प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका कारण किस प्रकार होता है ?

समाधान — जिनबिम्बके दर्शनसे निधत्त और निकाचित रूप भी मिथ्यात्वादि

....

[1] केइ पडिबोहणेण य केइ सहाविण तासु भूमीसुं । दट्ठूणं सुहदुक्खं केइ तिरिक्खा बहुपयारं ॥ जाइभरणेण केई केइ जिणिंदस्स महिमदंसणदो । जिणबिंबदंसणेण य पढमुवसम वेदगं च गेण्हंति ॥ ति. प. ५, ३०८–३०९. तिरश्चां केषाञ्चिज्जातिस्मरणं केषाञ्चिद्धर्मश्रवणं केषाञ्चिज्जिनबिम्बदर्शनम् । स. सि. १, ७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णिकाचिदस्स वि मिच्छत्तादिकम्मकलावस्स खयदंसणादो । तथा चोक्तं—

दर्शनेन जिनेन्द्राणां पापसंघातकुंजरम् ।
शतधा भेदमायाति गिरिर्वज्रहतो यथा ॥ १ ॥

सेसं सुगमं ।

मणुस्सा मिच्छादिट्ठी पढमसम्मत्तमुप्पादेंति ॥ २३ ॥

मणुसेसु पढमसम्मत्तुप्पत्तीणिमित्ततिविहकरणपरिणामाणं संभवादो । सेसं सुगमं ।

उप्पादेंता कम्हि उप्पादेंति ? ॥ २४ ॥

गब्भोवक्कंतियादिभेदमवेक्खिय एदस्स पुच्छासुत्तस्स अवयारो ।

गब्भोवक्कंतिएसु पढमसम्मत्तमुप्पादेंति, णो सम्मुच्छिमेसु ॥ २५ ॥

पढमसम्मत्तस्स अच्चंताभावस्स अवट्ठाणादो । सेसं सुगमं ।

गब्भोवक्कंतिएसु उप्पादेंता पज्जत्तएसु उप्पादेंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ २६ ॥

कर्मकलापका क्षय देखा जाता है, जिससे जिनबिम्बका दर्शन प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका कारण होता है । कहा भी है —

जिनेन्द्रोंके दर्शनसे पापसंघातरूपी कुंजरके सौ टुकड़े हो जाते हैं, जिस प्रकार कि वज्रके आघातसे पर्वतके सौ टुकड़े हो जाते हैं ॥ १ ॥

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

मिथ्यादृष्टि मनुष्य प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ॥ २३ ॥

क्योंकि, मनुष्योंमें प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके निमित्तभूत तीन प्रकारके करण-परिणामोंका होना संभव है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले मिथ्यादृष्टि मनुष्य किस अवस्थामें उत्पन्न करते हैं ? ॥ २४ ॥

गर्भोपक्रान्तिकादि भेदकी अपेक्षा करके इस पृच्छासूत्रका अवतार हुआ है ।

मिथ्यादृष्टि मनुष्य गर्भोपक्रान्तिकोंमें प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं, सम्मूर्छिमोंमें नहीं ॥ २५ ॥

क्योंकि, सम्मूर्छिम जीवोंमें प्रथम सम्यक्त्वके अत्यन्ताभावका नियम है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

गर्भोपक्रान्तिकोंमें प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले मिथ्यादृष्टि मनुष्य पर्याप्तकोंमें ही उत्पन्न करते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं ॥ २६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुदो ? अपज्जत्तभावस्स पढमसम्मत्तुप्पत्तीए अच्चंताभावादो ।

पज्जत्तएसु उप्पादेंता अट्ठवासप्पहुडि जाव उवरिमुप्पादेंति, णो हेट्ठादो ॥ २७ ॥

कुदो ? पज्जत्तपढमसमयप्पहुडि जाव अट्ठ वस्साणि त्ति ताव एदिस्से अवत्थाए पढमसम्मत्तुप्पत्तीए अच्चंताभावस्स अवट्ठाणादो

एवं जाव अड्डाइज्जदीव-समुद्देसु ॥ २८ ॥

सुगममेदं ।

मणुस्सा मिच्छाइट्ठी कदिहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेंति ? ॥ २९ ॥

एदं कारणसंखाविसयं पुच्छासुत्तं सुगमं ।

तीहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेंति– केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण, केइं जिणबिंबं दट्ठूण[१] ॥ ३० ॥

क्योंकि, अपर्याप्त अवस्थामें प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका अत्यन्ताभाव है ।

पर्याप्तकोंमें प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले गर्भोपक्रान्तिक मिथ्यादृष्टि मनुष्य आठ वर्षसे लेकर ऊपर किसी समय भी उत्पन्न करते हैं, उससे नीचेके कालमें नहीं ॥ २७ ॥

इसका कारण यह है कि पर्याप्तिकालके प्रथम समयसे लगाकर आठ वर्ष पर्यन्तकी अवस्थामें प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके अत्यान्ताभाव का नियम है ।

इस प्रकार अढ़ाई द्वीप-समुद्रोंमें मिथ्यादृष्टि मनुष्य प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ॥ २८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मिथ्यादृष्टि मनुष्य कितने कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ? ॥ २९ ॥

मिथ्यादृष्टि मनुष्योंमें प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके कारणोंकी संख्यासम्बन्धी यह पृच्छासूत्र सुगम है ।

मिथ्यादृष्टि मनुष्य तीन कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं– कितने ही मनुष्य जातिस्मरणसे, कितने ही धर्मोपदेश सुनकर, और कितने ही जिन-बिम्बके दर्शन करके ॥ ३० ॥

---

१ केइ पडिबोहणेणं केइ सहावेण तासु भूमीसुं । दट्ठूणं सुहदुक्खं केइ मणुस्सा बहुपयारं ॥ जादिसरणेण

जिणमहिमं दट्ठूण वि केइं पढमसम्मत्तं पडिवज्जंता अत्थि तेण चदुहि कारणेहि पढमसम्मत्तं पडिवज्जंति त्ति वत्तव्वं ? ण एस दोसो, एदस्स जिणबिंबदंसणे अंतब्भावादो। अधवा मणुसमिच्छाइट्ठीणं गयणगमणविरहियाणं चउव्विहदेवणिकाएहि णंदीसर-जिणवर[1]-पडिमाणं कीरमाणमहामहिमावलोयणे संभवाभावा। मेरुजिणवरमहिमाओ विज्जाधरमिच्छादिट्ठिणो पेच्छंति त्ति एस अत्थो ण वत्तव्वओ त्ति केइं भणंति। तेण पुव्वुत्तो चेव अत्थो घेत्तव्वो। लद्धिसंपण्णरिसिदंसणं पि पढमसम्मत्तुप्पत्तीए कारणं होदि, तमेत्थ पुध किण्ण भण्णदे ? ण, एदस्स वि जिणबिंबदंसणे अंतब्भावादो। उज्जंत-चंपा-पावाणयरादिदंसणं पि एदेणेव घेत्तव्वं। कुदो ? तत्थतणजिणबिंबदंसण-जिणणिव्वुइ-गमणकहणेहि विणा पढमसम्मत्तगहणाभावा। णइसग्गियमवि पढमसम्मत्तं तच्चट्ठे

शंका — जिनमहिमाको देखकर भी कितने ही मनुष्य प्रथम सम्यक्त्वको प्राप्त करते हैं, इसलिये चार कारणोंसे मनुष्य प्रथम सम्यक्त्वको प्राप्त करते हैं, ऐसा कहना चाहिये ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि जिनमहिमादर्शनका जिनबिम्बदर्शनमें अन्तर्भाव हो जाता है। अथवा, मिथ्यादृष्टि मनुष्योंके आकाशमें गमन करनेकी शक्ति न होनेसे उनके चतुर्विध देवनिकायोंके द्वारा किये जानेवाले नंदीश्वर द्वीपवर्ती जिनेन्द्र-प्रतिमाओंके महामहोत्सवका देखना संभव नहीं है, इसलिये उनके जिनमहिमादर्शनरूप कारणका अभाव है। किन्तु मेरूपर्वतपर किये जानेवाले जिनेन्द्रमहोत्सवोंको विद्याधर मिथ्यादृष्टि देखते हैं, इसलिये उपर्युक्त अर्थ नहीं कहना चाहिये, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं। अतएव पूर्वोक्त अर्थ ही ग्रहण करना योग्य है।

शंका — लब्धिसम्पन्न ऋषियोंका दर्शन भी तो प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका कारण होता है, अतएव इस कारणको यहां पृथक् रूपसे क्यों नहीं कहा ?

समाधान — नहीं कहा, क्योंकि लब्धिसम्पन्न ऋषियोंके दर्शनका भी जिनबिम्ब-दर्शनमें ही अन्तर्भाव हो जाता है।

ऊर्जयन्त पर्वत तथा चम्पापुर व पावापुर आदिके दर्शनका भी जिनबिम्बदर्शनके भीतर ही ग्रहण कर लेना चाहिये, क्योंकि, उक्त प्रदेशवर्ती जिनबिम्बोंके दर्शन तथा जिनभगवान्के मोक्षगमनके कथनके विना प्रथम सम्यक्त्वका ग्रहण नहीं हो सकता।

तत्त्वार्थसूत्रमें नैसर्गिक प्रथम सम्यक्त्वका भी कथन किया गया है, उसका भी

केई केद जिणिंदस्स महिमदंसणादो। जिणबिंबदंसणेणं उवसमपहुदीणि केइ गेण्हंति॥ ति. प. ४, २९५५-२९५६. मनुष्याणामपि तथैव। स. सि. १, ७.

१ प्रतिषु 'जिणहर' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तं[2], तं हि एत्थेव दट्ठव्वं, जाइस्सरण-जिणबिंबदंसणेहि विणा उप्पज्जमाणणइसग्गिय-पढमसम्मत्तस्स असंभवादो ।

देवा मिच्छाइट्ठी पढमसम्मत्तमुप्पादेंति ॥ ३१ ॥

कुदो ? तत्थ पढमसम्मत्तजोग्गतिविहकरणपरिणामाणमुवलंभा ।

उप्पादेंता कम्हि उप्पादेंति ? ॥ ३२ ॥

सुगममेदं पुच्छासुत्तं ।

पज्जत्तएसु उप्पादेंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ ३३ ॥

कुदो ? अपज्जत्तएसु पढमसम्मत्तुप्पत्तीए अच्चंताभावेसु तदुप्पत्तिविरोहादो ।

पज्जत्तएसु उप्पाएंता अंतोमुहुत्तप्पहुडि जाव उवरि उप्पाएंति, णो हेट्ठदो ॥ ३४ ॥

पूर्वोक्त कारणोंसे उत्पन्न हुए सम्यक्त्वमें ही अन्तर्भाव कर लेना चाहिये, क्योंकि, जातिस्मरण और जिनबिम्बदर्शनके विना उत्पन्न होनेवाला नैसर्गिक प्रथम सम्यक्त्व असंभव है ।

देव मिथ्यादृष्टि प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं ॥ ३१ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि देवोंमें प्रथम सम्यक्त्वके योग्य तीन प्रकारके करण-परिणाम पाये जाते हैं ।

प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करनेवाले मिथ्यादृष्टि देव किस अवस्थामें उत्पन्न करते हैं ? ॥ ३२ ॥

यह पृच्छासूत्र सुगम है ।

प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करनेवाले मिथ्यादृष्टि देव पर्याप्तकोंमें उत्पन्न करते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं ॥ ३३ ॥

क्योंकि, अपर्याप्तकोंमें प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका अत्यन्ताभाव है, और इसलिये उनमें उसकी उत्पत्ति माननेमें विरोध आता है ।

पर्याप्तकोंमें प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करनेवाले मिथ्यादृष्टि देव अन्तर्मुहूर्तकालसे लेकर ऊपर उत्पन्न करते हैं, उससे नीचेके कालमें नहीं ॥ ३४ ॥

---

२ तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् । तन्निसर्गादधिगमाद्वा ॥ तत्त्वार्थसूत्र १, २-३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुदो ? पज्जत्तपढमसमयप्पहुडि अंतोमुहुत्तम्हि तिविहकरणपरिणामाभावादो ।

एवं जाव उवरिमउवरिमगेवज्जविमाणवासियदेवा त्ति ॥ ३५ ॥

सुगममेदं ।

देवा मिच्छाइट्ठी कदिहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेंति ? ॥ ३६ ॥

पढमसम्मत्तं कज्जं । कुदो ? अण्णहा तस्सुप्पत्तिविरोहादो । कज्जं च कारणादो उप्पज्जदि, णिक्कारणस्स उप्पत्तिविरोहादो । तं च कारणादो उप्पज्जमाणं पढमसम्मत्तं कदिहि कारणेहि उप्पज्जदि त्ति पुच्छा कदा ।

चदुहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पाएंति— केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण, केइं जिणमहिमं दट्ठूण, केइं देविद्धिं दट्ठूण ॥ ३७ ॥

जिणबिंबदंसणं पढमसम्मत्तस्स कारणत्तेण एत्थ किण्ण उत्तं ? ण एस दोसो, जिणमहिमदंसणम्मि तस्स अंतब्भावादो, जिणबिंबेण विणा जिणमहिमाए अणुववत्तीदो ।

....

क्योंकि, पर्याप्तकालके प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्तकाल तक तीन प्रकारके करणपरिणामोंका अभाव पाया जाता है ।

इस प्रकार ऊपर ऊपर ग्रैवेयकविमानवासी देव तक प्रथम सम्यक्त्व ग्रहण करते हैं ॥ ३५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मिथ्यादृष्टि देव कितने कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ? ॥ ३६ ॥

प्रथम सम्यक्त्व कार्य है, क्योंकि, अन्यथा उसकी उत्पत्ति माननेमें विरोध आता है । और कार्य कारणसे ही उत्पन्न होता है, क्योंकि कारणके विना कार्यकी उत्पत्ति माननेमें विरोध आता है । अतएव कारणसे उत्पन्न होनेवाला वह प्रथम सम्यक्त्व कितने कारणोंसे उत्पन्न होता है, ऐसा प्रश्न इस सूत्रमें किया गया है ।

मिथ्यादृष्टि देव चार कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं— कितने ही जातिस्मरणसे, कितने ही धर्मोपदेश सुनकर, कितने ही जिनमहिमा देखकर और कितने ही देवोंकी ऋद्धि देखकर ॥ ३७ ॥

शंका—यहां जिनबिम्बदर्शनको प्रथम सम्यक्त्वके कारणरूपसे क्यों नहीं कहा ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि जिनबिम्बदर्शनका जिनमहिमादर्शनमें ही अन्तर्भाव हो जाता है, कारण कि जिनबिम्बके विना जिनमहिमाकी उपपत्ति बनती नहीं है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सग्गोयरण-जम्माहिसेय-परिणिक्खमणजिणमहिमाओ जिणबिंबेण विणा कीरमाणीओ दिस्संति त्ति जिणबिंबदंसणस्स अविणाभावो णत्थि त्ति णासंकणिज्जं, तत्थ वि भावि-जिणबिंबस्स दंसणुवलंभा। अधवा एदासु महिमासु उप्पज्जमाणपढमसम्मत्तं ण जिण-बिंबदंसणणिमित्तं, किंतु जिणगुणसवणणिमित्तमिदि।

देविद्धिदंसणं जाइस्सरणम्मि किण्ण पविसदि ? ण पविसदि, अप्पणो अणिमादि-रिद्धीओ[1] दट्ठूण एदाओ रिद्धीओ[1] जिणपण्णत्तधम्माणुट्ठाणादो जादाओ त्ति पढमसम्मत्त-पडिवज्जणं जाइस्सरणणिमित्तं। सोहम्मिदादिदेवाणं महिड्ढीओ दट्ठूण एदाओ सम्मदंसण-संजुत्तसंजमफलेण जादाओ, अहं पुण सम्मत्तविरहिददव्वसंजमफलेण वाहणादिणीच-देवेसु उप्पण्णो त्ति णादूण पढमसम्मत्तग्गहणं देविद्धिदंसणणिबंधणं। तेण ण दोण्हमेयत्त-मिदि। किं च जाइस्सरणमुप्पण्णपढमसमयप्पहुडि अंतोमुहुत्तकालब्भंतरे चेव होदि।

शंका—स्वर्गावतरण, जन्माभिषेक और परिनिष्क्रमणरूप जिनमहिमायें जिन-बिम्बके विना की गयी देखी जाती हैं, इसलिये जिनमहिमादर्शनमें जिनबिम्बदर्शनका अविनाभावीपना नहीं है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करना चाहिये, क्योंकि स्वर्गावतरण, जन्मा-भिषेक और परिनिष्क्रमणरूप जिनमहिमाओंमें भी भावी जिनबिम्बका दर्शन पाया जाता है। अथवा, इन महिमाओंमें उत्पन्न होनेवाला प्रथम सम्यक्त्व जिनबिम्बदर्शन-निमित्तक नहीं है, किन्तु जिनगुणश्रवण-निमित्तक है।

शंका—देवर्धिदर्शनका जातिस्मरणमें समावेश क्यों नहीं होता ?

समाधान—नहीं होता, क्योंकि अपनी अणिमादिक ऋद्धियोंको देखकर जब यह विचार उत्पन्न होता है कि ये ऋद्धियां जिन भगवान् द्वारा उपदिष्ट धर्मके अनुष्ठानसे उत्पन्न हुई हैं, तब प्रथम सम्यक्त्वकी प्राप्ति जातिस्मरणनिमित्तक होती है। किन्तु जब सौधर्मेन्द्रादिक देवोंकी महा ऋद्धियोंको देखकर यह ज्ञान उत्पन्न होता है कि ये ऋद्धियां सम्यग्दर्शनसे संयुक्त संयमके फलसे प्राप्त हुई हैं, किन्तु मैं सम्यक्त्वसे रहित द्रव्यसंयमके फलसे वाहनादिक नीच देवोंमें उत्पन्न हुआ हूं, तब प्रथम सम्यक्त्वका ग्रहण देवर्धिदर्शननिमित्तक होता है। इससे जातिस्मरण और देवर्धिदर्शन, ये प्रथम सम्यक्त्वोत्पत्तिके दोनों कारण एक नहीं हो सकते। तथा जातिस्मरण, उत्पन्न होनेके प्रथम समयसे लगाकर अन्तर्मुहूर्तकालके भीतर ही होता है। किन्तु देवर्धिदर्शन, उत्पन्न

---

१ प्रतिषु ' ड्डिदीओ ' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देविद्धिदंसणं पुण कालंतरे चेव होदि, तेण ण दोण्हमेयत्तं । एसो अत्थो णेरइयाणं जाइस्सरण-वेयणाभिभवणाणं पि वत्तव्वो ।

एवं भवणवासियप्पहुडि जाव सदर-सहस्सार-कप्पवासियदेवा त्ति ॥ ३८ ॥

सुगममेदं ।

आणद-पाणद-आरण-अच्चुदकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठी कदिहि कारणेहिं पढमसम्मत्तमुप्पादेंति ? ॥ ३९ ॥

सुगममेदं पुच्छासुत्तं ।

तीहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेंति– केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण, केइं जिणमहिमं दट्ठूण[2] ॥ ४० ॥

होनेके समयसे अन्तर्मुहूर्तकालके पश्चात् ही होता है । इसलिये भी उन दोनों कारणोंमें एकत्व नहीं है । यही अर्थ नारकियोंके जातिस्मरण और वेदनाभिभवन रूप कारणोंमें विवेकके लिये भी कहना चाहिये ।

इस प्रकार भवनवासी देवोंसे लगाकर शतार-सहस्रार कल्पवासी देव प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ॥ ३८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पोंके निवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि कितने कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ? ॥ ३९ ॥

यह पुच्छासूत्र सुगम है ।

पूर्वोक्त आनतादि चार कल्पोंके देव तीन कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं– कितने ही जातिस्मरणसे, कितने ही धर्मोपदेश सुनकर और कितने ही जिनमहिमाको देखकर ॥ ४० ॥

---

१ भवणेसु समुप्पण्णा पज्जत्तिं पाविदूण छब्भेयं । जिणमहिमदंसणेणं केई देविद्धिदंसणदो ॥ जादीए सुमरणेणं वरधम्मप्पबोहणावलद्धीए । गेण्हंते सम्मत्तं दुरंतसंसारणासकरं ॥ ति. प. ३, २३९–२४०. देवानां केषाञ्चिज्जातिस्मरणं केषाञ्चिद्धर्मश्रवणं केषाञ्चिज्जिनमहिमदर्शनं केषाञ्चिद्देवर्द्धिदर्शनम् । एवं प्रागानतात् । स. सि. १,७.

२ आनतप्राणतारणाच्युतदेवानां देवर्द्धिदर्शनं मुक्त्वाऽन्यत्रितयमप्यस्ति । स. सि. १, ७. देवा भवन-

देविद्धिदंसणेण चत्तारि कारणाणि किण्ण वुत्ताणि ? तत्थ महिद्धिसंजुत्तुवरिम-देवाणमागमाभावा । ण तत्थट्ठिददेवाणं महिद्धिदंसणं पढमसम्मत्तुप्पत्तीए णिमित्तं, भूयो-दंसणेण तत्थ विम्हयाभावा, सुक्कलेस्साए महिद्धिदंसणेण संकिलेसाभावादो वा । सोऊण जं जाइसरणं, देविद्धिं दट्ठूण जं च जाइस्सरणं, एदाणि दो वि जदि वि पढमसम्मत्तुप्पत्तीए णिमित्तं होंति, तो वि तं सम्मत्तं जाइस्सरणणिमित्तमिदि एत्थ ण घेप्पदि, देविद्धिदंसण-सुणणपच्छायदजाइस्सरणणिमित्तत्तादो । किंतु सुणण-देविद्धिदंसणणिमित्तमिदि घेत्तव्वं ।

णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठी कदिहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेंति ? ॥ ४१ ॥

सुगममेदं पुच्छासुत्तं ।

शंका—यहांपर देवर्धिदर्शन सहित चार कारण क्यों नहीं कहे ?

समाधान—आनतादि चार कल्पोंमें महर्धिसे संयुक्त ऊपरके देवोंका आगमन नहीं होता, इसलिये वहां महर्द्धिदर्शनरूप प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका कारण नहीं पाया जाता। और उन्हीं कल्पोंमें स्थित देवोंकी महर्द्धिका दर्शन प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका निमित्त हो नहीं सकता, क्योंकि उसी ऋद्धिको बार बार देखनेसे विस्मय नहीं होता। अथवा, उक्त कल्पोंमें शुक्ललेश्याके सद्भावके कारण महर्द्धिके दर्शनसे कोई संक्लेशभाव उत्पन्न नहीं होते।

धर्मोपदेश सुनकर जो जातिस्मरण होता है और देवर्द्धिको देखकर जो जाति-स्मरण होता है, ये दोनों ही जातिस्मरण यद्यपि प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके निमित्त होते हैं, तथापि उनसे उत्पन्न सम्यक्त्व यहां जातिस्मरणनिमित्तक नहीं माना गया है, क्योंकि यहां देवर्द्धिके दर्शन व धर्मोपदेशके श्रवणके पश्चात् ही उत्पन्न हुए जाति-स्मरणका निमित्त प्राप्त हुआ है। अतएव यहां धर्मोपदेशश्रवण और देवर्द्धिदर्शनको ही निमित्त मानना चाहिये।

नौ ग्रैवेयकविमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि देव कितने कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं ? ॥ ४१ ॥

यह पृच्छासूत्र सुगम है।

भवनवास्यादयः आसहस्रारकल्पाच्चतुर्भिः कारणैः प्रथमसम्यक्त्वं लभन्ते— केचिज्जातिस्मरणेन, इतरे धर्मश्रवणेन, अपरे जिनमहिमावेक्षणेनान्ये देवर्द्धिनिरीक्षणेन । आनत-प्राणतारणाच्युतेषु तैरेव देवर्द्धिविरहितैः । नवसु ग्रैवेयकेषु द्वाभ्यां कारणाभ्यां— जातिस्मरणाद्धर्मश्रवणाच्च । उपरि देवा नियमेन सम्यग्दृष्टयः । तत्त्वार्थराजवार्तिक २, ३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेंति— केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण[1] ॥ ४२ ॥

एत्थ महिद्धिदंसणं णत्थि, उवरिमदेवाणमागमाभावा। जिणमहिमदंसणं पि णत्थि, णंदीसरादिमहिमाणं तेसिमागमणाभावा। ओहिणाणेण तत्थट्ठिया चेव जिणमहिमाओ पेच्छंति त्ति जिणमहिमादंसणं वि[2] तेसिं सम्मत्तुप्पत्तीए णिमित्तमिदि किण्ण उच्चदे? ण, तेसिं वीयरायाणं जिणमहिमादंसणेण विंभयाभावा[3]। कधं तेसिं धम्मसुणणसंभवो? ण- तेसिं अण्णोण्णसल्लावे संते अहमिंदत्तस्स विरोहाभावा।

नौ ग्रैवेयकविमानवासी मिथ्यादृष्टि देव दो कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं— कितने ही जातिस्मरणसे और कितने ही धर्मोपदेश सुनकर ॥ ४२ ॥

नौ ग्रैवेयकोंमें महर्द्धिदर्शन नहीं है, क्योंकि यहां ऊपरके देवोंके आगमनका अभाव है। यहां जिनमहिमादर्शन भी नहीं है, क्योंकि ग्रैवेयकविमानवासी देव नन्दीश्वरादिके महोत्सव देखने नहीं आते।

शंका—ग्रैवेयक देव अपने विमानोंमें रहते हुए ही अवधिज्ञानसे जिनमहिमाओंको देखते तो हैं, अतएव जिनमहिमाका दर्शन भी उनके सम्यक्त्वकी उत्पत्तिमें निमित्त होता है, ऐसा क्यों नहीं कहा?

समाधान—नहीं, क्योंकि ग्रैवेयकविमानवासी देव वीतराग होते हैं, अतएव जिनमहिमाके दर्शनसे उन्हें विस्मय उत्पन्न नहीं होता।

शंका—ग्रैवेयकविमानवासी देवोंके धर्मश्रवण किस प्रकार संभव होता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि उनमें परस्पर संलाप होनेपर अहमिन्द्रत्वसे विरोध नहीं आता। (अतएव वह संलाप ही धर्मोपदेश रूपसे सम्यक्त्वोत्पत्तिका कारण हो जाता है)।

विशेषार्थ—तिलोयपण्णत्तिमें सामान्यसे समस्त कल्पवासी देवोंके सम्यक्त्वोत्पत्तिके चारों ही कारणोंका प्रतिपादन किया गया है, और नौ ग्रैवेयकोंमें देवर्द्धिदर्शनको छोड़कर शेष कारणोंका।

१ नवग्रैवेयकवासिनां केषाञ्चिज्जातिस्मरणं केषाञ्चिद्धर्मश्रवणम्। स. सि. १, ७.

२ प्रतिषु 'जिण वि महिमादंसणं' इति पाठः।

३ प्रतिषु 'विमयाभावा' इति पाठः।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

अणुदिस जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा सव्वे ते णियमा सम्माइट्ठि त्ति पण्णत्ता[1] ॥ ४३ ॥

सुगममेदं ।

णेरइया मिच्छत्तेण अधिगदा केइं मिच्छत्तेण णींति[2] ॥ ४४ ॥

अधिगदा पइट्ठा गदा इदि एयट्ठा। णींति णिस्सरंति णिग्गच्छंति णिप्पीडंति इदि एयट्ठो। केइं केचिदित्यर्थः। मिच्छत्तेण सह णिरयगदिं पइसिसय पुणो तत्थ मिच्छत्तेण वा सम्मत्तेण वा अच्छिय अवसाणे मिच्छत्तेण सह केइं णिप्पीडंति त्ति[3] उत्तं होई।

केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णींति[4] ॥ ४५ ॥

अनुदिशोंसे लगाकर सर्वार्थसिद्धि तकके विमानवासी देव सभी नियमसे सम्यग्दृष्टि ही होते हैं, ऐसा उपदेश पाया जाता है ॥ ४३ ॥

यह सूत्र सुगम है।

नारकी जीव मिथ्यात्व सहित नरकमें जाते हैं और उनमेंसे कितने मिथ्यात्व सहित ही नरकसे निकलते हैं ॥ ४४ ॥

अधिगत, प्रविष्ट और गत, ये शब्द एकार्थक ही हैं। णींति अर्थात् निस्सरण करते हैं, निर्गमन करते हैं, निष्पीडन करते हैं, इन सबका एक ही अर्थ होता है। 'केइं' का अर्थ है केचित् याने कितने ही। मिथ्यात्वके साथ नरकगतिमें प्रवेश करके पुनः वहां मिथ्यात्व सहित अथवा सम्यक्त्व सहित रहकर अन्तमें मिथ्यात्व सहित ही कितने ही जीव वहांसे निकलते हैं, इस प्रकारका अर्थ यहां कहा गया है।

कितने ही जीव मिथ्यात्व सहित नरकमें जाकर सासादनसम्यक्त्व सहित वहांसे निकलते हैं ॥ ४५ ॥

---

१ जिणमहिमदंसणेणं केई जादीसुमरणादो वि। देवद्धिदंसणेण य ते देवा देसणवसेणं ॥ गेण्हंते सम्मत्तं णिव्वाणब्भुदयसाहणणिमित्तं। दुव्वारगहिरसंसारजलहिणोत्तारणोवायं ॥ णवरि हु णवगेवज्जा एदे देवड्ढिवज्जिदा होंति। उवरिमचोद्दसठाणे सम्माइट्ठी सुरा सव्वे ॥ ति. प. ८, ६७६–६७८. अनुदिशानुत्तरविमानवासिनामियं कल्पना न संभवति, प्रागेव गृहीतसम्यक्त्वानां तत्रोत्पत्तेः। स. सि. १, ७.

२ प्रथमायामुत्पद्यमाना नारका मिथ्यात्वेनाधिगताः केचिन्मिथ्यात्वेन निर्यान्ति। त. रा. ३, ६.

३ अप्रतौ 'णिप्पीडंति इदि एयट्ठो त्ति' इति पाठः।

४ मिथ्यात्वेनाधिगताः केचित् सासादनसम्यक्त्वेन निर्यान्ति। त. रा. ३, ६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुदो ? मिच्छत्तेण णिरयगदिं पविस्सिय सगट्ठिदिमणुपालिय पुणो अवसाणे पढमसम्मत्तं पडिवज्जिय आसाणं गंतूण णिप्फीडमाणजीवाणमुवलंभा[1]।

केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णींति[2] ॥ ४६ ॥

कुदो ? मिच्छत्तेण सह णिरयगदिं गंतूण तत्थ सम्मत्तं पडिवज्जिय तेण सम्मत्तेण सह णिप्पीडमाणजीवाणमुवलंभा।

सम्मत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण चेव णींति[3] ॥ ४७ ॥

कुदो ? तत्थुप्पण्णखइयसम्माइट्ठीणं कदकरणिज्जवेदगसम्माइट्ठीणं वा गुणंतरसंकमणाभावा। सासणसम्माइट्ठीणं च णिरयगदिम्हि पवेसो णत्थि, एत्थ पवेसापदुप्पायणअण्णहाणुववत्तीदो[4]।

क्योंकि, मिथ्यात्वके सहित नरकगतिमें प्रवेश करके और वहां अपनी स्थिति पूरी करके पुनः अन्तमें प्रथम सम्यक्त्वको प्राप्त कर व सासादन गुणस्थानमें जाकर नरकसे निकलनेवाले जीव पाये जाते हैं।

कितने ही जीव मिथ्यात्व सहित नरकमें जाकर सम्यक्त्व सहित वहांसे निकलते हैं ॥ ४६ ॥

क्योंकि, मिथ्यात्वसहित नरकगतिमें जाकर और वहां सम्यक्त्व प्राप्त करके उसी सम्यक्त्वके साथ वहांसे निकलनेवाले जीव पाये जाते हैं।

सम्यक्त्व सहित नरकमें जानेवाले जीव सम्यक्त्व सहित ही वहांसे निकलते हैं ॥ ४७ ॥

क्योंकि, नरकमें उत्पन्न हुए क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंके अथवा कृतकृत्य वेदकसम्यग्दृष्टियोंके अन्य गुणस्थानमें संक्रमण नहीं होता। और सासादनसम्यग्दृष्टियोंका नरकगतिमें प्रवेश ही नहीं है, क्योंकि यहां प्रवेशके प्रतिपादन न करनेकी अन्यथा उपपत्ति नहीं बनती।

---

१ आप्रतौ ' णिप्पीडमाण-' कप्रतौ ' णिप्फडिमाण-' इति पाठः।

२ मिथ्यात्वेनाधिगता केचित् सम्यक्त्वेन। त. रा. ३, ६.

३ केचित्सम्यक्त्वेनाधिगताः सम्यक्त्वेनैव निर्यान्ति क्षायिकसम्यग्दृष्टयपेक्षया। त. रा. ३, ६.

४ न सासादनगुणवतां तत्रोत्पत्तिस्तद्गुणस्य तत्रोत्पत्त्या सह विरोधात् ॥ षट्खं. १, १, २५. भाग १, पृ. २०५. ण सासणो णारयापुण्णे। गो. जी. १२८. णिरयं सासणसम्मो ण गच्छदि त्ति। गो. क. २६२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं पढमाए पुढवीए णेरइया ॥ ४८ ॥

सुगममेदं ।

विदियाए जाव छट्ठीए पुढवीए णेरइया मिच्छत्तेण अधिगदा केइं मिच्छत्तेण (णींति)[1] ॥ ४९ ॥

णिरयगदिगयाणं[2] मिच्छत्तेण सह णिस्सरणे विरोहाभावा ।

मिच्छत्तेण अधिगदा केइं सासणसम्मत्तेण णींति[3] ॥ ५० ॥

कुदो ? मिच्छत्तेण सह विदियादिपंचपुढवीउववगयाणं अवसाणे पढमसम्मत्तं पडिवज्जिय आसाणं गंतूण णिप्पीडणे विरोहाभावा ।

मिच्छत्तेण अधिगदा केइं सम्मत्तेण णींति[4] ॥ ५१ ॥

इस प्रकार प्रथम पृथिवीमें नारकी जीव प्रवेश करते और वहांसे निकलते हैं ॥ ४८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

दूसरी पृथिवीसे लगाकर छठवीं पृथिवी तकके नारकी जीव मिथ्यात्व सहित जाकर कितने ही मिथ्यात्व सहित ही निकलते हैं ॥ ४९ ॥

क्योंकि, नरकगतिको जानेवाले जीवोंके वहांसे मिथ्यात्वसहित निकलनेमें तो कोई विरोध ही नहीं आता ।

मिथ्यात्व सहित द्वितीयादि नरकमें जाकर कितने ही जीव सासादन सम्यक्त्वके साथ वहांसे निकलते हैं ॥ ५० ॥

क्योंकि, मिथ्यात्वके साथ द्वितीयादि पांच पृथिवियोंमें जाकर अन्तमें प्रथम सम्यक्त्वको प्राप्त कर और फिर आसादन गुणस्थानमें जाकर नरकसे निकलनेमें कोई विरोध नहीं आता ।

मिथ्यात्व सहित द्वितीयादि नरकमें जाकर कितने ही जीव सम्यक्त्व सहित वहांसे निकलते हैं ॥ ५१ ॥

---

१ द्वितीयादिषु पंचसु नारका मिथ्यात्वेनाधिगताः केचिन्मिथ्यात्वेन निर्यान्ति । त. रा ३, ६.

२ आप्रतौ ' णिरयगदिणेरइयाणं ' अ-कप्रत्योः ' णिरयगदिरयाणं ' इति पाठः ।

३ मिथ्यात्वेनाधिगताः केचित्सासादनसम्यक्त्वेन निर्यान्ति । त. रा. ३, ६.

४ मिथ्यात्वेन प्रविष्टाः केचित् सम्यक्त्वेन निर्यान्ति । त. रा. ३, ६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुदो ? मिच्छत्तेण णिरयगइं गयाणं तत्थ सम्मत्तं पडिवज्जिय तेण सम्मत्तेण सह णिग्गमणे विदियादिपंचसु पुढवीसु विरोहाभावा । सम्मामिच्छादिट्ठि-आसाणाणं सम्मादिट्ठीणं व विदियादिपंचसु पुढवीसु अधिगमो णत्थि । कुदो ? तेसिमेत्थ अधिगमापदुप्पायणादो ।

सत्तमाए पुढवीए णेरइया मिच्छत्तेण चेव णींति[१] ॥ ५२ ॥

कुदो ? सम्मत्त-सासण-सम्मामिच्छत्ताइं गयाणं पि तत्थतणजीवाणं णियमेण मरणकाले मिच्छत्तपडिवज्जणादो । किं कारणं ? तत्थ तेसिं अच्चंताभावस्स अवट्ठाणादो ।

तिरिक्खा केइं मिच्छत्तेण अधिगदा मिच्छत्तेण णींति ॥ ५३ ॥

सुगममेदं ।

केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णींति ॥ ५४ ॥

एदं पि सुगमं ।

क्योंकि, मिथ्यात्वके साथ नरकगतिमें जानेवाले जीवोंका वहां सम्यक्त्व प्राप्त करके उसी सम्यक्त्व सहित निकलनेमें द्वितीयादि पांच पृथिवियोंमें कोई विरोध नहीं आता। सम्यग्मिथ्यादृष्टि और आसादनगुणस्थानवर्ती जीवोंका सम्यग्दृष्टि जीवोंके समान द्वितीयादि पांच पृथिवियोंमें प्रवेश नहीं होता, क्योंकि यहां उनके प्रवेशका प्रतिपादन नहीं किया गया है।

सातवीं पृथिवीसे नारकी जीव मिथ्यात्व सहित ही निकलते हैं ॥ ५२ ॥

क्योंकि, सम्यक्त्व, सासादन व सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानोंको प्राप्त हुए भी सातवीं पृथिवीके नारकी जीवोंके मरणकालमें नियमसे मिथ्यात्व उत्पन्न हो जाता है। इसका कारण यह है कि सातवीं पृथिवीमें मरणकालमें उक्त तीनों गुणस्थानोंके अत्यन्ताभावका नियम है।

तिर्यंच जीव कितने ही मिथ्यात्व सहित तिर्यंचगतिमें आकर मिथ्यात्व सहित ही उस गतिसे निकलते हैं ॥ ५३ ॥

यह सूत्र सुगम है।

कितने ही जीव मिथ्यात्व सहित तिर्यंचगतिमें आकर सासादनसम्यक्त्वके साथ वहांसे निकलते हैं ॥ ५४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

---

१ सप्तम्यां नारका मिथ्यात्वेनाधिगता मिथ्यात्वेनैव निर्यान्ति । त. रा. ३, ६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णींति ॥ ५५ ॥

केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा मिच्छत्तेण णींति ॥ ५६ ॥

केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णींति ॥५७॥

केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णींति ॥ ५८॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

सम्मत्तेण अधिगदा णियमा सम्मत्तेण चेव णींति ॥ ५९ ॥

खइयसम्माइट्ठीणं कदकरणिज्जवेदगसम्माइट्ठीणं वा तिरिक्खगइगयाणं गुणंतर-संकमणाभावा ।

(एवं) पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता ॥ ६० ॥

सुगममेदं ।

कितने ही जीव मिथ्यात्व सहित तिर्यंचगतिमें आकर सम्यक्त्वके साथ वहांसे निकलते है ॥ ५५ ॥

कितने ही जीव सासादनसम्यक्त्व सहित तिर्यंचगतिमें आकर मिथ्यात्वके साथ वहांसे निकलते हैं ॥ ५६ ॥

कितने ही जीव सासादनसम्यक्त्व सहित तिर्यंचगतिमें आकर सासादन-सम्यक्त्वके साथ वहांसे निकलते हैं ॥ ५७ ॥

कितने ही जीव सासादनसम्यक्त्व सहित तिर्यंचगतिमें आकर सम्यक्त्वके साथ वहांसे निकलते हैं ॥ ५८ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

सम्यक्त्व सहित तिर्यंचगतिमें आनेवाले जीव नियमसे सम्यक्त्वके साथ ही वहांसे निकलते हैं ॥ ५९ ॥

क्योंकि, क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका व कृतकृत्य वेदकसम्यग्दृष्टियोंका तिर्यंचगतिमें जानेपर अन्य गुणस्थानमें संक्रमण नहीं होता ।

इस प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच और पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त जीव तिर्यंचगतिमें प्रवेश और निष्क्रमण करते हैं ॥ ६० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीयो[1] मणुसिणीयो भवणवासिय-वाण-वेंतर-जोदिसियदेवा देवीओ सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवीओ च मिच्छत्तेण अधिगदा केइं मिच्छत्तेण णींति ॥ ६१ ॥

केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णींति ॥ ६२ ॥

केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णींति ॥ ६३ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि । सव्वत्थ सम्मामिच्छत्तेण णिग्गमो पवेसो वा णत्थि, तस्स मरणुप्पत्तीणमसंभवादो ।

केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा मिच्छत्तेण णींति ॥ ६४ ॥

केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णींति ॥ ६५ ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनी, मनुष्यनी, भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देव तथा देवियां एवं सौधर्म-ईशानकल्पवासिनी देवियां मिथ्यात्व सहित अपनी अपनी गतिमें प्रवेश करके कितने ही मिथ्यात्व सहित ही वहांसे निकलते हैं ॥ ६१ ॥

कितने ही मिथ्यात्व सहित प्रवेश करके अपनी गतिसे सासादन सम्यक्त्वके साथ निकलते हैं ॥ ६२ ॥

कितने ही मिथ्यात्व सहित प्रवेश करके सम्यक्त्वके साथ उस गतिसे निकलते हैं ॥ ६३ ॥

ये सूत्र सुगम हैं । सब गतियोंमें सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानके साथ न निर्गमन होता है और न प्रवेश, क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्वके साथ मरण और उत्पत्ति दोनों असंभव हैं ।

कितने ही जीव सासादनसम्यक्त्वके साथ पूर्वोक्त गतियोंमें आकर मिथ्यात्व सहित वहांसे निकलते हैं ॥ ६४ ॥

कितने ही जीव सासादनसम्यक्त्वके साथ पूर्वोक्त गतियोंमें आकर सम्यक्त्व सहित वहांसे निकलते हैं ॥ ६५ ॥

---

१ अ-आप्रत्योः '-जोणीयो ' इति पाठः ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि । एदेसु सम्मत्तेण अधिगमो णत्थि । कुदो ? एदस्स अच्चंताभावादो ।

मणुसा मणुसपज्जत्ता सोधम्मीसाणप्पहुडि जाव णवगेवज्ज-विमाणवासियदेवेसु केइं मिच्छत्तेण अधिगदा मिच्छत्तेण[1] णींति ॥ ६६ ॥

केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णींति॥ ६७ ॥

केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णींति ॥ ६८ ॥

केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा मिच्छत्तेण णींति ॥ ६९ ॥

केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णींति ॥ ७० ॥

ये सूत्र सुगम हैं। इन गतियोंमें सम्यक्त्वके साथ प्रवेश नहीं होता, क्योंकि सम्यक्त्व अवस्थामें इन गतियोंकी प्राप्तिका अत्यन्ताभाव है।

मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त तथा सौधर्म-ईशानसे लगाकर नौ ग्रैवेयक विमानवासी देवोंमें कितने ही जीव मिथ्यात्व सहित जाकर मिथ्यात्वके साथ ही वहांसे निकलते हैं ॥ ६६ ॥

कितने ही जीव मिथ्यात्व सहित पूर्वोक्त गतियोंमें जाकर सासादनसम्यक्त्वके साथ वहांसे निकलते हैं ॥ ६७ ॥

कितने ही जीव मिथ्यात्व सहित पूर्वोक्त गतियोंमें जाकर सम्यक्त्वके साथ वहांसे निकलते हैं ॥ ६८ ॥

कितने ही जीव सासादनसम्यक्त्व सहित जाकर मिथ्यात्व सहित निकलते हैं ॥ ६९ ॥

कितने ही जीव सासादनसम्यक्त्व सहित जाकर सासादनसम्यक्त्वके साथ ही निकलते हैं ॥ ७० ॥

---

१ अप्रतौ ' समिच्छत्तेण ' आ-कप्रत्योः ' सम्मामिच्छत्तेण ' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णींति ॥ ७१ ॥

केइं सम्मत्तेण अधिगदा मिच्छत्तेण णींति ॥ ७२ ॥

केइं सम्मत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णींति ॥ ७३ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

मणुस-मणुसपज्जत्तएसु संखेज्जवस्साउएसु सम्मत्तेण पविट्ठदेव-णेरइयाणं कधं सासणसम्मत्तेण णिग्गमो होदि त्ति उत्ते उच्चदे । तं जहा– देव-णेरइयसम्मादिट्ठीणं मणुसेसुप्पज्जिय उवसमसेडिमारुहिय पुणो हेट्ठा ओयरिय सासणं गंतूण मदाणं सासण-गुणेण णिग्गमो होदि । एवं सासणसम्मागुणेण मणुस्सेसु पविसिय सासणगुणेण णिग्गमो वत्तव्वो, अण्णहा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण कालेण विणा सासण-गुणाणुप्पत्तीदो । एदं पाहुडसुत्ताभिप्पाएण भणिदं[1] । जीवट्ठाणाभिप्पाएण पुण संखेज्ज-

कितने ही जीव सासादनसम्यक्त्व सहित जाकर सम्यक्त्व सहित निकलते हैं ॥ ७१ ॥

कितने ही जीव सम्यक्त्व सहित जाकर मिथ्यात्वके साथ निकलते हैं ॥ ७२ ॥

कितने ही जीव सम्यक्त्व सहित जाकर सासादनसम्यक्त्वके साथ निकलते हैं ॥ ७३ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

शंका—संख्यात वर्षकी आयुवाले मनुष्य व मनुष्य पर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व सहित प्रवेश करनेवाले देव और नारकी जीवोंका वहांसे सासादनसम्यक्त्वके साथ किस प्रकार निर्गमन होता है ?

समाधान—इस शंकाका समाधान किया जाता है । वह इस प्रकार है— देव और नारकी सम्यग्दृष्टि जीवोंका मनुष्योंमें उत्पन्न होकर, उपशमश्रेणीका आरोहण करके, और फिर नीचे उतरकर सासादन गुणस्थानमें जाकर मरनेपर सासादन गुणस्थान सहित निर्गमन होता है ।

इसी प्रकार सासादन गुणस्थान सहित मनुष्योंमें प्रवेश कर सासादन गुण-स्थानके साथ ही निर्गमन भी कहना चाहिये, अन्यथा पल्योपमके असंख्यातवें भाग-प्रमाण कालके विना सासादन गुणस्थानकी उपपत्ति बन नहीं सकती । यह बात प्राभृतसूत्र (कषायप्राभृत) के अभिप्रायानुसार कही गई है । परंतु जीवस्थानके अभिप्रायसे संख्यात वर्षकी आयुवाले मनुष्योंमें सासादन गुणस्थान सहित निर्गमन

१ तस्सम्मत्तद्धाए असंजमं देससंजमं वापि । गच्छेज्जावलिछक्के सेसे सासणगुणं वापि ॥ लब्धि. ३४५.

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

वस्साउएसु ण संभवदि, उवसमसेडीदो ओदिण्णस्स सासणगुणगमणाभावा[1]। एत्थ पुण संखेज्जासंखेज्जवस्साउए मोत्तूण[2] जेण भणिदं तेणेदं घडदे।

....

संभव नहीं होता, क्योंकि उपशमश्रेणीसे उतरे हुए मनुष्यका सासादन गुणस्थानमें गमन नहीं माना गया। किन्तु यहांपर अर्थात् सूत्रमें चूंकि संख्यात व असंख्यात वर्षकी आयुका उल्लेख छोड़कर कथन किया गया है इससे वह कथन घटित हो जाता है।

विशेषार्थ—अन्तरप्ररूपणाके सूत्र ७ में बतलाया जा चुका है कि सासादनसम्यग्दृष्टिका जघन्य अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है। इसका कारण धवलाकारने यह बतलाया है कि सासादनसे मिथ्यात्वमें आये हुए जीवके जब तक सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियोंकी उद्वेलनघात द्वारा सागरोपम या सागरोपमपृथक्त्वमात्र स्थिति नहीं रह जाती तब तक वह जीव पुनः उपशम सम्यक्त्व प्राप्त नहीं कर सकता जहांसे कि सासादनभावकी पुनः उत्पत्ति हो सके। और उद्वेलनघात द्वारा उक्त क्रियाके होनेमें कमसे कम पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण काल लगता ही है। अतएव यही कालप्रमाण सासादनसम्यक्त्वका जघन्य अन्तर होता है। प्रस्तुत प्रकरणमें प्रश्न यह है कि जो जीव देव या नरक गतिसे मनुष्यभवमें सासादन गुणस्थान सहित आया है वह सासादन गुणस्थान सहित ही मनुष्यगतिसे किस प्रकार निर्गमन कर सकता है। धवलाकारने वह इस प्रकार बतलाया है कि देवगतिसे सासादन गुणस्थान सहित मनुष्यगतिमें आकर व पल्योपमके असंख्यातवें भागका अन्तरकाल समाप्त कर उपशमसम्यक्त्वी हो सासादन गुणस्थानमें आकर मरण करनेवाले जीवके उक्त बात घटित हो जाती है। पर यह बनेगा केवल असंख्यात वर्षकी आयुवाले मनुष्योंमें, क्योंकि संख्यात वर्षकी आयुवाले मनुष्योंमें उक्त उद्वेलनघातके लिये आवश्यक पल्योपमका असंख्यातवां भाग काल प्राप्त ही नहीं हो सकेगा। यह व्यवस्था भूतबलि आचार्यके मतानुसार है। किन्तु कषायप्राभृतके चूर्णिसूत्रोंके कर्ता यतिवृषभाचार्यके मतानुसार सासादनसम्यक्त्व सहित मनुष्यगतिमें आया हुआ जीव मिथ्यादृष्टि होकर पुनः द्वितीयोपशमसम्यक्त्वी हो उपशमश्रेणी चढ़ पुनः सासादन होकर मर सकता है और इसलिये यह बात संख्यात वर्षकी आयुवाले मनुष्योंमें भी घटित हो सकती है। किन्तु उपशमश्रेणीसे उतरकर सासादन गुणस्थानमें जाना भूतबलि आचार्य नहीं मानते और इसलिये उनके मतसे सम्यक्त्व सहित आकर सासादन सहित व सासादन सहित आकर सासादन सहित मनुष्यगतिसे निर्गमन करना संख्यात वर्षायुष्कोंमें संभव नहीं।

....

१ उवसमसेढीदो पुण ओदिण्णो सासणं ण पाउणदि। भूदबलिणाहणिम्मलसुत्तस्स फुडोवदेसेण ॥ लब्धि. ३४७.

२ अ-कप्रत्योः 'सोत्तूण' इति पाठः।

केइं सम्मत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णींति ॥ ७४ ॥

सुगममेदं ।

अणुदिस जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु सम्मत्तेण अधिगदा णियमा सम्मत्तेण चेव[1] णींति ॥ ७५ ॥

सुगममेदं । पंचिंदियतिरिक्ख-मणुसअपज्जत्ताणं किमट्ठं णिग्गमण-पवेसा ण उत्ता ? ण, मिच्छादिट्ठी मोत्तूण अण्णेसिं तत्थ णिग्गम-पवेसाभावादो । तस्स वि उत्तेण[2] विणा अवगमादो ।

णेरइयमिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी णिरयादो उव्वट्टिदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥ ७६ ॥

कितने ही मनुष्य और मनुष्य पर्याप्तक एवं उक्त सौधर्मादिक स्वर्गोंके जीव सम्यक्त्व सहित जाकर सम्यक्त्वके साथ ही वहांसे निकलते हैं ॥ ७४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अनुदिश विमानोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवों तकमें सम्यक्त्वके साथ प्रवेश करनेवाले जीव नियमसे सम्यक्त्व सहित ही निकलते हैं ॥ ७५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

शंका—अपर्याप्तक पंचेन्द्रिय तिर्यंच और अपर्याप्तक मनुष्य, इन दोके निर्गम और प्रवेशका कथन क्यों नहीं किया गया ।

समाधान—नहीं, क्योंकि उन दोनों जीवसमासोंमें मिथ्यादृष्टियोंके सिवाय अन्य जीवोंका न निर्गमन होता है और न प्रवेश । और यह बात विना कहे भी जानी जा सकती है ।

नारकी मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीव नरकसे निकलकर कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥ ७६ ॥

---

१ प्रतिषु ' चेण ' इति पाठः ।

२ अप्रतौ ' जंतेण ' आ-कप्रत्योः ' ज्जत्तेण ' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुगममेदं ।

दो गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगदिं चेव मणुसगदिं चेव[1] ॥ ७७ ॥

देव-णेरइयगदीओ ण गच्छंति[2] । किं कारणं ? सभावादो । सो वि तेसिं सहाओ कुदो णव्वदे ? एदम्हादो चेव सुत्तादो ।

तिरिक्खेसु आगच्छंता पंचिंदिएसु आगच्छंति, णो एइंदिय-विगलिंदिएसु[3] ॥ ७८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त नारकी जीव दो गतियोंमें आते हैं— तिर्यंचगतिमें भी और मनुष्य गतिमें भी ॥ ७७ ॥

नरकसे निकले हुए जीव देव व नरक गतिको नहीं आते ।

शंका—नरकसे निकले हुए जीवोंका देव या नरक गतिमें न जानेका कारण क्या है ?

समाधान—ऐसा स्वभाव ही है ।

शंका—ऐसा उनका स्वभाव ही है यह बात भी कहांसे जानी जाती है ।

समाधान—प्रस्तुत सूत्रसे ही यह बात जानी जाती है कि नरकसे निकले हुए जीवोंका देव या नरक गतिमें न जाना स्वाभाविक है ।

तिर्यंचोंमें आनेवाले नारकी जीव पंचेन्द्रियोंमें आते हैं, एकेन्द्रियों या विकलेन्द्रियोंमें नहीं आते ॥ ७८ ॥

---

१ णिक्कंता णिरयादो गब्भेसुं कम्मसण्णिपज्जत्ते । णरतिरिएसुं जम्मदि ॥ ति. प. २, २८९. षड्भ्य उपरिपृथिवीभ्यो मिथ्यात्व-सासादनसम्यक्त्वाभ्यामुद्वर्तिताः केचित्तिर्यङ्मनुष्यगतिमायान्ति । तिर्यक्ष्वायाताः पंचेन्द्रिय-गर्भजसंज्ञिपर्याप्तकसंख्येयवर्षायुःषूत्पद्यन्ते नेतरेषु । त. रा. ३, ६. सुरणिरया णरतिरियं छम्मासवसिट्ठगे सगाउस्स । णरतिरिया सव्वाउं तिभागसेसम्मि उक्कस्सं ॥ भोगभुमा देवाउं छम्मासवसिट्ठगे य बंधंति । इगिविगला णरतिरियं तेउदुगा सत्तगा तिरियं ॥ गो. क. ६३९–६४०.

२ नारकाणां सुराणां च विरुद्धः संक्रमो मिथः । नारको न हि देवः स्यान्न देवो नारको भवेत् ॥ तत्त्वार्थसार, २, १५५.

३ प्रतिषु ' णो इंदियविगलिंदिएसु ' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एइंदिया वियलिंदिया चेव, पंचण्हमिंदियाणं संपुण्णत्ताभावादो। तदो विगलिंदियग्गहणमेव पहुप्पदि, एइंदियग्गहणं ण कायव्वमिदि ? ण, विगलिंदियग्गहणेण एइंदियाणं गहणे कीरमाणे उवरि देवगदिम्हि बीइंदियादीणं पुध पुध पडिसेहो कायव्वो होदि। एवं कीरमाणे गंथबहुत्तं पावेदि। तेण पुध एइंदियणिद्देसो कदो। सेसं सुगमं।

पंचिंदिएसु आगच्छंता सण्णीसु आगच्छंति, णो असण्णीसु ॥ ७९ ॥

कुदो ? सहावदो। ण सहावो परपज्जणिओगजोगो।

सण्णीसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ॥ ८० ॥

केण कारणेण सम्मुच्छिमेसु णागच्छंति ? चक्खिंदिएण सद्दो किण्ण घेप्पदि ?

शंका – पांचों इन्द्रियोंकी सम्पूर्णताके अभावसे एकेन्द्रिय जीव विकलेन्द्रिय ही हैं। इसलिये सूत्रमें केवल विकलेन्द्रियका ग्रहण पर्याप्त है, एकेन्द्रियका ग्रहण नहीं करना चाहिये ?

समाधान – नहीं, क्योंकि यदि विकलेन्द्रियके ग्रहणसे एकेन्द्रियका भी ग्रहण किया जाय तो आगे देवगतिके कथनमें द्वीन्द्रियादिकोंका पृथक् पृथक् प्रतिषेध करना आवश्यक हो जायगा। और ऐसा करनेपर ग्रंथका विस्तार बढ़ जाता है। इसलिये सूत्रमें एकेन्द्रियोंका पृथक् निर्देश किया गया है।

शेष सूत्रार्थ सुगम है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें आनेवाले नारकी जीव संज्ञियोंमें आते हैं, असंज्ञियोंमें नहीं ॥ ७९ ॥

क्योंकि, ऐसा उनका स्वभाव है और स्वभाव दूसरोंके द्वारा प्रश्नके विषय नहीं हुआ करते।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच संज्ञियोंमें आनेवाले नारकी जीव गर्भोपक्रान्तिकोंमें आते हैं, सम्मूर्च्छिमोंमें नहीं ॥ ८० ॥

शंका—नरकसे आनेवाले जीव सम्मूर्च्छिम तिर्यंचोंमें क्यों नहीं आते ?

प्रतिशंका—चक्षुइन्द्रियसे शब्दका ग्रहण क्यों नहीं होता ?

प्रतिशंकाका समाधान—स्वभावसे ही चक्षुइन्द्रिय द्वारा शब्दका ग्रहण नहीं होता ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सहावदो चेव । एत्थ वि सहावदो चेव णागच्छंति त्ति किण्ण इच्छिज्जदि । किं च सुत्तं णाम पमाणं बाहाइक्कंतं, इंदिय णोइंदियणाणं व । ण च इंदिएहि बाहाइक्कंतेहि दिट्ठत्थम्मि पमाणाणुसारिणो संदेहं कुणंता अत्थि ? सच्चं पमाणेण दिट्ठत्थम्हि पमाणंतरेण ण परिक्खा पयट्टइ, किंतु एदस्स वयणस्स पमाणत्तं ण णव्वदि त्ति चे ण, असच्च-कारणसव्वविजुत्तजिणवयणविणिग्गयस्स वयणस्स अप्पमाणत्तविरोहादो[1][2] । तदो पमाणमेदं । तेणेव कारणेण ण पमाणंतरेण परिक्खणिज्जमिदि ।

गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ ८१ ॥

सुगममेदं ।

पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवस्साउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवस्साउएसु ॥ ८२ ॥

शंकाका समाधान — तो फिर यहां भी नारकी जीव सम्मूर्च्छिम तिर्यंचोंमें स्वभावसे ही नहीं आते हैं, ऐसा क्यों नहीं अभीष्ट मान लेते ? तथा, सूत्र स्वयं इन्द्रिय और नोइन्द्रियजनित ज्ञानोंके सदृश बाधारहित प्रमाण है। बाधारहित इन्द्रियों द्वारा देखे गये पदार्थमें प्रमाणानुसारी विद्वान् सन्देह नहीं करते।

शंका—यह सत्य है कि प्रमाणसे देखे गये पदार्थमें प्रमाणान्तर द्वारा परीक्षा नहीं की जाती, किन्तु प्रस्तुत वचनका तो प्रमाणत्व ज्ञात नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि असत्यके समस्त कारण (रागद्वेषादि) से रहित जिनेन्द्रके मुखसे निकले हुए वचनका अप्रमाणत्वसे विरोध है। अतः यह सूत्र प्रमाण है और इसी कारणसे प्रमाणान्तर द्वारा उसकी परीक्षा उचित नहीं है।

पंचेन्द्रिय संज्ञी गर्भोपक्रान्तिक तिर्यंचोंमें आनेवाले नारकी जीव पर्याप्तकोंमें ही आते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं ॥ ८१ ॥

यह सूत्र सुगम है।

पंचेन्द्रिय संज्ञी गर्भोपक्रान्तिके पर्याप्त तिर्यंचोंमें आनेवाले नारकी जीव संख्यात वर्षकी आयुवाले जीवोंमें ही आते हैं, असंख्यात वर्षकी आयुवालोंमें नहीं ॥८२॥

---

१ आ-कप्रत्योः ' सव्वाविजुत्तिण ', अप्रतौ ' सव्वाविजुत्तिण ' इति पाठः ।

२ अणुवकयपराणुग्गहपरायणा जं जिणा जुगप्पवरा । जियरागदोसमोहा य णण्णहावाइणो तेणं ॥ व्याख्याप्रज्ञप्तेरभयदेवीयवृत्तौ उद्धृता गाथा. १, ३, ३८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किमट्ठमसंखेज्जवासाउएसु णागच्छंति त्ति ? णेरइएसु दाण-दाणाणुमोदाणमभावादो ।

मणुस्सेसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ॥ ८३ ॥

गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ ८४ ॥

पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवस्साउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवस्साउएसु ॥ ८५ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

णेरइया सम्मामिच्छाइट्ठी सम्मामिच्छत्तगुणेण णिरयादो णो उव्वट्टिंति ॥ ८६ ॥

शंका—नरकसे आनेवाले जीव असंख्यात वर्षकी आयुवाले अर्थात् भोगभूमिके तिर्यंचोंमें क्यों नहीं आते ?

समाधान—नारकी जीवोंमें दान और दानका अनुमोदन इन दोनों भोगभूमिमें उत्पन्न होनेके कारणोंके अभावसे वे जीव असंख्यात वर्षकी आयुवाले तिर्यंचोंमें नहीं उत्पन्न होते ।

मनुष्योंमें आनेवाले नारकी जीव गर्भोपक्रान्तिकोंमें आते हैं, सम्मूर्च्छिमोंमें नहीं ॥ ८३ ॥

गर्भोपक्रान्तिक मनुष्योंमें आनेवाले नारकी जीव पर्याप्तकोंमें आते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं ॥ ८४ ॥

गर्भोपक्रान्तिक पर्याप्त मनुष्योंमें आनेवाले नारकी जीव संख्यात वर्षकी आयुष्यवालोंमें आते हैं, असंख्यात वर्षकी आयुष्यवालोंमें नहीं ॥ ८५ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकी जीव सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान सहित नरकसे नहीं निकलते ॥ ८६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुदो ? सहावदो। एदेण अधिगमो वि पडिसिद्धो, उव्वट्टणपडिसेहस्स अधिगम-पडिसेहाविणाभावादो।

णेरइया सम्माइट्ठी णिरयादो उव्वट्टिदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥ ८७ ॥

सुगममेदं पुच्छासुत्तं।

एक्कं मणुसगदिं चेव आगच्छंति ॥ ८८ ॥

कुदो ? णेरइयसम्माइट्ठीणं मणुस्साउअं मोत्तूण अण्णाउवसंतकम्मियाणं सम्मत्तेणुव्वट्टणाभावा।

मणुसेसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ॥ ८९ ॥

गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ ९० ॥

क्योंकि, ऐसा उनका स्वभाव है। इसी सूत्रसे नरकमें सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान सहित आनेका भी निषेध कर दिया गया है, क्योंकि उद्वर्तनप्रतिषेधका अधिगमप्रतिषेधके साथ अविनाभाव संबंध है, अर्थात्, जिस गतिसे जिस गुणस्थान सहित निकलना नहीं होता, उस गतिमें उस गुणस्थान सहित आना भी नहीं हो सकता।

सम्यग्दृष्टि नारकी जीव नरकसे निकलकर कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥८७॥

यह पृच्छासूत्र सुगम है।

सम्यग्दृष्टि नारकी जीव नरकसे निकलकर एक मनुष्यगतिमें ही आते हैं ॥८८॥

क्योंकि, मनुष्यायुको छोड़कर अन्य आयुकर्मकी सत्ता रखनेवाले नारकी सम्यग्दृष्टियोंके सम्यक्त्व सहित नरकसे निकलनेका अभाव है।

मनुष्योंमें आनेवाले सम्यग्दृष्टि नारकी जीव गर्भोपक्रान्तिकोंमें आते हैं, सम्मूर्च्छिमोंमें नहीं ॥ ८९ ॥

गर्भोपक्रान्तिक मनुष्योंमें आनेवाले सम्यग्दृष्टि नारकी जीव पर्याप्तकोंमें आते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं ॥ ९० ॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवासाउएसु ॥ ९१ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एवं छसु उवरिमासु पुढवीसु णेरइया ॥ ९२ ॥

एदं पि सुगमं ।

अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइया मिच्छाइट्ठी णिरयादो उव्वट्टिद-समाणा कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥ ९३ ॥

सुगममेदं पुच्छासुत्तं ।

एक्कं तिरिक्खगदिं चेव आगच्छंति[१] ॥ ९४ ॥

कुदो ? तेसिं तिरिक्खाउअं मोत्तूण सेसाउआणं बंधाभावादो ।

गर्भोपक्रान्तिक पर्याप्तक मनुष्योंमें आनेवाले सम्यग्दृष्टि नारकी जीव संख्यात वर्षकी आयुवालोंमें आते हैं, असंख्यात वर्षकी आयुवालोंमें नहीं ॥ ९१ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

इस प्रकार ऊपरकी छह पृथिवियोंके नारकी जीव निर्गमन करते हैं ॥ ९२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

नीचे सातवीं पृथिवीमेंके मिथ्यादृष्टि नारकी जीव निकलकर कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥ ९३ ॥

यह पृच्छासूत्र सुगम है ।

सातवीं पृथिवीसे निकले हुए नारकी जीव केवल एक तिर्यंचगतिमें ही आते हैं ॥ ९४ ॥

क्योंकि, सातवीं पृथिवीके नारकी जीवोंमें तिर्यंचायुको छोड़ शेष तीन आयुओंके बंधका अभाव है ।

---

१ सप्तम्यां नारका मिथ्यादृष्टयो नरकेभ्य उद्वर्तिता एकामेव तिर्यग्गतिमायान्ति । तिर्यक्ष्वायाताः पंचेन्द्रियगर्भजपर्याप्तकसंख्येयवर्षायुःषूत्पद्यन्ते नेतरेषु । त. रा. ३, ६. न लभन्ते मनुष्यत्वं सप्तम्या निर्गताः क्षितेः । तिर्यक्त्वे च समुत्पद्य नरकं यान्ति ते पुनः ॥ तत्त्वार्थसार २, १४७. णेरइयाणं गमणं सण्णीपज्जत्तकम्मतिरियणरे । चरिमचऊ तित्थूणे तेरिच्छे चेव सत्तमिया ॥ गो. क. ५३८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिरिक्खेसु आगच्छंता पंचिंदिएसु आगच्छंति णो एइंदिय-विगलिंदिएसु ॥ ९५ ॥

पंचिंदिएसु आगच्छंता सण्णीसु आगच्छंति, णो असण्णीसु ॥ ९६ ॥

सण्णीसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ॥ ९७ ॥

गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ ९८ ॥

पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवस्साउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवासाउएसु ॥ ९९ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

तिर्यंचोंमें आनेवाले सातवीं पृथिवीके नारकी जीव पंचेन्द्रियोंमें ही आते हैं, एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियोंमें नहीं ॥ ९५ ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें आनेवाले सातवीं पृथिवीके नारकी जीव संज्ञियोंमें आते हैं, असंज्ञियोंमें नहीं ॥ ९६ ॥

पंचेन्द्रिय संज्ञी तिर्यंचोंमें आनेवाले सातवीं पृथिवीके नारकी जीव गर्भोपक्रान्तिकोंमें आते हैं, सम्मूर्च्छिमोंमें नहीं ॥ ९७ ॥

पंचेन्द्रिय संज्ञी गर्भोपक्रान्तिक तिर्यंचोंमें आनेवाले सातवीं पृथिवीके नारकी जीव पर्याप्तकोंमें आते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं ॥ ९८ ॥

पंचेन्द्रिय संज्ञी गर्भोपक्रान्तिक पर्याप्त तिर्यंचोंमें आनेवाले सातवीं पृथिवीके नारकी जीव संख्यात वर्षकी आयुवालोंमें आते हैं, असंख्यात वर्षकी आयुवालोंमें नहीं ॥ ९९ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्तमाए पुढवीए णेरइया सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी अप्पप्पणो गुणेण णिरयादो णो उव्वट्टिंति ॥ १०० ॥

कुदो ? सहावदो ।

तिरिक्खा सण्णी मिच्छाइट्ठी पंचिंदियपज्जत्ता संखेज्जवासाउआ[1] तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥ १०१ ॥

ओवयारियतिरिक्खपडिसेहट्ठं विदियतिरिक्खगहणं । तिरिक्खेहि तिरिक्खपज्जाएहि, कालगदसमाणा विणट्ठा संता त्ति घेत्तव्वं । सेसं सुगमं ।

चत्तारि गदीओ गच्छंति णिरयगदिं तिरिक्खगदिं मणुसगदिं देवगदिं चेदि ॥ १०२ ॥

सुगममेदं ।

णिरएसु गच्छंता सव्वणिरएसु गच्छंति ॥ १०३ ॥

सातवीं पृथिवीके सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीव अपने अपने गुणस्थान सहित नरकसे नहीं निकलते ॥ १०० ॥

क्योंकि, ऐसा उनका स्वभाव है ।

तिर्यंच संज्ञी मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय पर्याप्त संख्यातवर्षायुवाले तिर्यंच जीव तिर्यंचपर्यायोंसे मरण करके कितनी गतियोंमें जाते हैं ? ॥ १०१ ॥

औपचारिक तिर्यंचोंके प्रतिषेधके लिये दूसरी वार तिर्यंच शब्दका ग्रहण किया गया है । ‘ तिर्यंचोंसे ’ का अर्थ है ‘ तिर्यंचपर्यायोंसे ’, और ‘ कालगतसमान ’ का अर्थ है ‘ विनष्ट हुए ’ ऐसा ग्रहण करना चाहिये । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

उपर्युक्त तिर्यंच जीव चारों गतियोंमें गमन करते हैं– नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति ॥ १०२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

नरकोंमें जानेवाले उपर्युक्त तिर्यंच जीव सभी अर्थात् सातों नरकोंमें जाते हैं ॥ १०३ ॥

---

१ अप्रतौ ‘ संखेज्जवासाउअ- ’ इति पाठः

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

कुदो ? विरोहाभावा ।

तिरिक्खेसु गच्छंता सव्वतिरिक्खेसु गच्छंति ॥ १०४ ॥

मणुसेसु गच्छंता सव्वमणुसेसु गच्छंति ॥ १०५ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

देवेसु गच्छंता भवणवासियप्पहुडि जाव सयार-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु गच्छंति[1] ॥ १०६ ॥

कुदो ? तत्तो उवरि सम्मत्ताणुव्वएहि विणा गमणाभावा ।

पंचिंदियतिरिक्खअसण्णिपज्जत्ता तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥ १०७ ॥

सुगममेदं पुच्छासुत्तं ।

चत्तारि गदीओ गच्छंति णिरयगदिं तिरिक्खगदिं मणुसगदिं देवगदिं चेदि[2] ॥ १०८ ॥

क्योंकि, उनके सातों नरकोंमें जानेसे कोई विरोध नहीं आता ।

तिर्यंचोंमें जानेवाले उपर्युक्त तिर्यंच जीव सभी तिर्यंचोंमें जाते हैं ॥ १०४ ॥

मनुष्योंमें जानेवाले उपर्युक्त तिर्यंच जीव सभी मनुष्योंमें जाते हैं ॥ १०५ ॥

ये दोनों सूत्र सुगम हैं ।

देवोंमें जानेवाले उपर्युक्त तिर्यंच जीव भवनवासियोंसे लगाकर शतार-सहस्रार तकके कल्पवासी देवोंमें जाते हैं ॥ १०६ ॥

क्योंकि, शतार-सहस्रार कल्पके ऊपर सम्यक्त्व और अणुव्रतोंके विना गमन नहीं होता ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच असंज्ञी पर्याप्त तिर्यंच जीव तिर्यंचपर्यायोंसे मरणकर कितनी गतियोंमें जाते हैं ? ॥ १०७ ॥

यह पृच्छासूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त तिर्यंच जीव चारों गतियोंमें जाते हैं— नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति ॥ १०८ ॥

---

१ जे पंचिंदियतिरिया सण्णी हु अकामणिज्जरेण जुदा । मंदकसाया केई जाव सहस्सारपरियंतं ॥ ति. प. ८, ५६२.

२ पूर्णासंज्ञितिरश्चामविरुद्धं जन्म जातुचित् । नारकामरतिर्यक्षु नृषु वा न तु सर्वतः ॥ तत्त्वार्थसार, २, १५८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुगममेदं ।

णिरएसु गच्छंता पढमाए पुढवीए णेरइएसु गच्छंति[1] ॥ १०९ ॥

कुदो ? हेट्ठिमणेरइएसु उप्पत्तिणिमित्तपरिणामाभावा ।

तिरिक्ख-मणुस्सेसु गच्छंता सव्वतिरिक्ख-मणुस्सेसु गच्छंति, णो असंखेज्जवासाउएसु गच्छंति ॥ ११० ॥

कुदो ? असण्णीसु दाण-दाणाणुमोदाणमभावादो ।

देवेसु गच्छंता भवणवासिय-वाणवेंतरदेवेसु गच्छंति[2] ॥ १११ ॥

कुदो ? असण्णीणं तत्तो उवरिमदेवेसु उप्पत्तिणिमित्तपरिणामाभावा ।

यह सूत्र सुगम है ।

नरकोंमें जानेवाले उपर्युक्त तिर्यंच प्रथम पृथिवीके नारकी जीवोंमें जाते हैं ॥ १०९ ॥

क्योंकि, पंचेन्द्रिय तिर्यंच असंज्ञी पर्याप्तक जीवोंमें प्रथम पृथिवीसे नीचे द्वितीयादि पृथिवियोंके नारकियोंमें उत्पन्न होनेके निमित्तभूत परिणामोंका अभाव पाया जाता है ।

तिर्यंच और मनुष्योंमें जानेवाले उपर्युक्त तिर्यंच सभी तिर्यंच और मनुष्योंमें जाते हैं, किन्तु असंख्यात वर्षकी आयुवाले तिर्यंच और मनुष्योंमें नहीं जाते ॥ ११० ॥

क्योंकि, असंज्ञी जीवोंमें दान और दानके अनुमोदनका अभाव है ।

देवोंमें जानेवाले उपर्युक्त तिर्यंच जीव भवनवासी और वानव्यन्तर देवोंमें जाते हैं ॥ १११ ॥

क्योंकि, असंज्ञी जीवोंमें भवनवासी और वानव्यन्तर देवोंसे ऊपरके देवोंमें उत्पत्तिके निमित्तभूत परिणामोंका अभाव पाया जाता है ।

---

१ पढमधरंतमसण्णी । ति. प. २, २८४. प्रथमायामसंज्ञिन उत्पद्यन्ते । त. रा. ३, ६. घर्मामसंज्ञिनो यान्ति । तत्त्वार्थसार २, १६६.

२ सण्णि-असण्णी जीवा मिच्छाभावेण संजुदा केई । जायंति भावणेसुं दंसणसुद्धा ण कइया वि ॥ ति. प. ३, २००. तैर्यग्योनेषु असंज्ञिनः पर्याप्ताः पंचेन्द्रियाः संख्येयवर्षायुषः अल्पशुभपरिणामवशेन पुण्यबंधमनुभूय भवनवासिषु व्यन्तरेषु च उत्पद्यन्ते । त. रा. ४, २१. ये मिथ्यादृष्टयो जीवाः संज्ञिनोऽसंज्ञिनोऽथवा । व्यन्तरास्ते प्रजायन्ते तथा भवनवासिनः ॥ तत्त्वार्थसार २, १६२.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

पंचिंदियतिरिक्खसण्णी असण्णी अपज्जत्ता पुढवीकाइया आउ-काइया वा वणप्फइकाइया णिगोदजीवा बादरा सुहुमा बादरवणप्फदि-काइया पत्तेयसरीरा पज्जत्ता अपज्जत्ता बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पज्जत्तापज्जत्ता तिरिक्खा तिरिक्खेहिं कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति? ॥ ११२ ॥

सुगममेदं पुच्छासुत्तं ।

दुवे गदीओ गच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेदि[1] ॥ ११३ ॥

कुदो ? देव-णिरयगदिगमणपरिणामाभावा ।

तिरिक्ख-मणुस्सेसु गच्छंता सव्वतिरिक्ख-मणुस्सेसु गच्छंति, णो असंखेज्जवस्साउएसु गच्छंति[2] ॥ ११४ ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंच संज्ञी व असंज्ञी अपर्याप्त, पृथिवीकायिक या जलकायिक या वनस्पतिकायिक, निगोद जीव बादर या सूक्ष्म, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त या अपर्याप्त, और द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय पर्याप्त व अपर्याप्त तिर्यंच तिर्यंचपर्यायोंसे मरण करके कितनी गतियोंमें जाते हैं ? ॥ ११२ ॥

यह पृच्छासूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त तिर्यंच जीव दो गतियोंमें जाते हैं— तिर्यंचगति और मनुष्य-गति ॥ ११३ ॥

क्योंकि, उन तिर्यंच जीवोंके देव और नरक गतिमें जाने योग्य परिणामोंका अभाव है ।

तिर्यंच और मनुष्योंमें जानेवाले उपर्युक्त तिर्यंच सभी तिर्यंच और मनुष्योंमें जाते हैं, किन्तु असंख्यात वर्षकी आयुवाले तिर्यंचों और मनुष्योंमें नहीं जाते ॥ ११४ ॥

---

१ पुढविप्पहुदि वणप्फदिअंतं वियला य कम्मणरतिरिए । ति. प. ५, ३१०. त्रयाणां खलु कायानां विकलानामसंज्ञिनाम् । मानवानां तिरश्चां वाऽविरुद्धः संक्रमो मिथः ॥ तत्त्वार्थसार २, १५४.

२ बत्तीसभेदतिरिया ण होंति कइयाइ भोगसुरणिरए । सेढिघणमेत्तलोए सव्वे पक्खेसु जायंति ॥ ति. प. ५, ३११.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुदो ? तेसिं दाण-दाणाणुमोदाणमभावादो ।

तेउकाइया वाउकाइया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥ ११५ ॥

सुगममेदं ।

एक्कं चेव तिरिक्खगदिं गच्छंति[1] ॥ ११६ ॥

कुदो ? सव्वतेउ-वाउकाइयाणं संकिलिट्ठाणं सेसगइजोग्गपरिणामाभावा ।

तिरिक्खेसु गच्छंता सव्वतिरिक्खेसु गच्छंति, णो असंखेज्जवस्साउएसु गच्छंति ॥ ११७ ॥

सुगममेदं ।

तिरिक्खसासणसम्माइट्ठी संखेज्जवस्साउआ तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥ ११८ ॥

क्योंकि, उक्त तिर्यंच जीवोंके दान और दानानुमोदनका अभाव पाया जाता है ।

अग्निकायिक और वायुकायिक बादर व सूक्ष्म पर्याप्तक व अपर्याप्तक तिर्यंच तिर्यंचपर्यायोंसे मरण करके कितनी गतियोंमें जाते हैं ? ॥ ११५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त तिर्यंच एकमात्र तिर्यंचगतिमें ही जाते हैं ॥ ११६ ॥

क्योंकि, समस्त अग्निकायिक और वायुकायिक संक्लिष्ट जीवोंके शेष गतियोंमें जाने योग्य परिणामोंका अभाव पाया जाता है ।

तिर्यंचोंमें जानेवाले उपर्युक्त तिर्यंच जीव सभी तिर्यंचोंमें जाते हैं, किन्तु असंख्यात वर्षकी आयुवाले तिर्यंचोंमें नहीं जाते ॥ ११७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि संख्यात वर्षकी आयुवाले तिर्यंच तिर्यंचपर्यायोंसे मरण करके कितनी गतियोंमें जाते हैं ? ॥ ११८ ॥

---

१ तेउदुगं तेरिच्छे सेसेगअपुण्णवियलगा य तहा । तित्थूणणरे वि तहाऽसण्णी घम्मे य देवदुगे ॥ सण्णी वि तहा सेसे णिरये भोगे वि अच्चुदंते वि । गो. क. ५४०-५४१. ण लहंति तेउवाऊ मणुवाउमणंतरे जम्मे ॥ ति. प. ५, ३१०. सर्वेऽपि तैजसा जीवाः सर्वे चानिलकायिकाः । मनुजेषु न जायन्ते ध्रुवं जन्मन्यनन्तरे ॥ तत्त्वार्थसार २, १५७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुगममेदं ।

तिण्णि गदीओ गच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं देवगदिं चेदि ॥ ११९ ॥

णिरयगदी णत्थि । कुदो ? तिरिक्ख-मणुससासणाणं णिरयगइगमणपरिणामाभावा ।

तिरिक्खेसु गच्छंता एइंदिय-पंचिंदिएसु गच्छंति, णो विगलिंदिएसु ॥ १२० ॥

जदि एइंदिएसु सासणसम्माइट्ठी उप्पज्जदि तो पुढवीकायादिसु दो गुणट्ठाणाणि होंति त्ति चे ण, छिण्णाउअपढमसमए सासणगुणविणासादो[1] ।

यह सूत्र सुगम है।

उपर्युक्त तिर्यंच जीव तीन गतियोंमें जाते हैं— तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति ॥ ११९ ॥

उपर्युक्त तिर्यंचोंकी नरकमें गति नहीं होती, क्योंकि सासादनगुणस्थानवर्ती तिर्यंच और मनुष्योंके नरकगतिमें गमन करने योग्य परिणामोंका अभाव पाया जाता है।

तिर्यंचोंमें जानेवाले संख्यात वर्षकी आयुवाले सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच एकेन्द्रिय और पंचेन्द्रियोंमें जाते हैं, विकलेन्द्रियोंमें नहीं ॥ १२० ॥

शंका – यदि एकेन्द्रियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न होते हैं, तो पृथिवीकायादिक जीवोंमें मिथ्यात्व और सासादन ये दो गुणस्थान होना चाहिये ?

समाधान—नहीं, क्योंकि आयु क्षीण होनेके प्रथम समयमें ही सासादन गुणस्थानका विनाश हो जाता है ।

---

१ इन्द्रियानुवादेन एकेन्द्रियादिषु चतुरिन्द्रियपरियन्तेषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम् । ××× कायानुवादेन पृथिवीकायादिषु वनस्पतिकायान्तेषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम् । (स्पर्शने) लेश्यानुवादेन ... ...अथवा येषां मते सासादन एकेन्द्रियेषु नोत्पद्यते तन्मतापेक्षया द्वादश भागा न दत्ताः । स. सि. १, ८. एक-द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिया-संज्ञिपंचेन्द्रियेषु एकमेव गुणस्थानमाद्यम् । पंचेन्द्रियेषु संज्ञिषु चतुर्दशापि सन्ति । पृथिवीकायादिषु वनस्पत्यन्तेषु एकमेव प्रथमम् । त. रा. ९, ७. सेसिंदियकाये मिच्छं गुणट्ठाणं । गो जी. ६७७. पुण्णिदरं विगिविगले तत्थुप्पण्णो हु सासणो देहे । पज्जत्तिं ण वि पावदि इदि णरतिरियाउगं णत्थि । गो. क. ११३. इगिविगलेसु जुयलं । पंचसंग्रह १, २८. बायरअसण्णिविगले अपज्जि पढमबिय । कर्मग्रंथ ४, ३. सव्व जियठाण मिच्छे सग सासणि । कर्मग्रंथ ४, ४५. सासणभावे नाणं विउव्वगाहारगे उरलमिस्सं । नेगिंदिसु सासाणो नेहाहिगयं सुयमयं पि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एइंदिएसु गच्छंता बादरपुढवीकाइय-बादरआउकाइय-बादर-वणप्फइकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्तेसु ॥१२१॥

एकेन्द्रियोंमें जानेवाले संख्यातवर्षायुष्क सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्तकोंमें ही जाते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं ॥ १२१ ॥

विशेषार्थ—सासादनसम्यक्त्वी जीव मरकर किन पर्यायोंमें उत्पन्न हो सकता है इस विषयपर जैनग्रंथकारोंमें बड़ा मतभेद पाया जाता है। ये भिन्न भिन्न मत इस प्रकार हैं-

तत्त्वार्थसूत्रके टीकाकार पूज्यपाद स्वामीने अपनी सर्वार्थसिद्धि टीकामें कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनप्रमाण बतलाते हुए एक ऐसे मतका उल्लेख किया है कि जिसके अनुसार सासादन जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न नहीं होते (देखो स. सि. १, ८ स्पर्शनप्ररूपणा)। किन्तु उन्होंने तिर्यंच, मनुष्य व देव गतिवाले सासादनसम्यग्दृष्टियोंके स्पर्शनका जो प्रमाण बतलाया है उससे स्पष्ट होता है कि उन्हें सासादनसम्यग्दृष्टियोंका एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होना स्वीकार था। (देखो श्रुतसागरी टीकासे लिये गये टिप्पण)।

तत्त्वार्थराजवार्तिक और गोम्मटसार जीवकांडमें पंचेन्द्रियोंको छोड़कर शेष समस्त एकेन्द्रियों व विकलेन्द्रियोंमें केवल एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका ही विधान पाया जाता है (त. रा. ९, ७ व गो. जी. गा. ६७७)। किन्तु कर्मकांडमें एकेन्द्रिय व विकलेन्द्रिय जीवोंकी अपर्याप्त अवस्थामें सासादनसम्यक्त्वका विधान किया गया है। पर लब्ध्यपर्याप्तक, साधारण, सूक्ष्म तथा तेज और वायुकायिक जीवोंमें उसका निषेध है (गा. ११३-११५)।

अमितगति आचार्यने अपने पंचसंग्रह ग्रंथमें (पृ. ७५) सातों अपर्याप्त और संज्ञी पर्याप्त, इन आठ जीवसमासोंमें सासादनसम्यक्त्वका विधान किया है, जिसके अनुसार विकलेन्द्रिय तथा सूक्ष्म जीवोंमें भी सासादनसम्यग्दृष्टिका उत्पन्न होना संभव है।

भगवती, प्रज्ञापना व जीवाभिगम आदि श्वेताम्बर आगम ग्रंथोंके मतानुसार एकेन्द्रिय जीवोंमें सासादन गुणस्थान नहीं होता, पर द्वीन्द्रिय आदि विकलेन्द्रियोंमें होता है। इसके विपरीत श्वेताम्बर कर्मग्रंथोंमें एकेन्द्रिय व द्वीन्द्रिय आदि बादर अपर्याप्तकोंमें सासादन गुणस्थानका विधान पाया जाता है। पर तेज और वायुकायिक जीवोंमें

कर्मग्रंथ ४, ४९. सासने तु विग्रहगत्यपेक्षया सप्तापर्याप्ताः संज्ञी पूर्णोऽष्टमः। पंचसंग्रह- अमितगति पृ. ७५. वज्जिय ठाणचउक्कं तेऊ वाऊ य णरयसुहुमं च। अण्णत्थ सव्वठाणे उववज्जदे सासणो जीवो ॥ (तत्वार्थसूत्रस्य श्रुतसागरीटीकायां उद्धृता गाथा).

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचिंदिएसु गच्छंता सण्णीसु गच्छंति, णो असण्णीसु ॥१२२॥

सण्णीसु गच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ॥ १२३ ॥

सासादन गुणस्थानका यहां भी निषेध है। (देखो कर्मग्रंथ ४ गाथा ३, ४५, ४९ व पंचसंग्रह द्वार १, गा. २८-२९)

प्रस्तुत षट्खंडागमके सूत्रोंमें व्यवस्था इस प्रकार है— सत्प्ररूपणाके सूत्र ३६ में एकेन्द्रिय आदि असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यन्त जीवोंके केवल एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही बतलाया गया है। उसी प्ररूपणाके कायमार्गणासंबंधी सूत्र ४३ में भी पृथ्वीकायादि पांचों एकेन्द्रिय जीवोंके केवल मिथ्यादृष्टि गुणस्थान कहा गया है। द्रव्यप्रमाणानुगमके सूत्र ८८ आदिमें बादर पृथ्वीकायादि जीवोंकी गुणस्थान भेदके विना ही प्ररूपणा की गई है, जिससे उनमें एक ही गुणस्थान माना जाना सिद्ध होता है। क्षेत्रादिप्ररूपणाओंके सूत्रोंमें भी एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रिय जीवोंके गुणस्थानभेदका कथन नहीं पाया जाता। किन्तु प्रस्तुत गति-आगति चूलिकाके ११९-१२३, १५१-१५५ व १७३-१७७ सूत्रोंमें क्रमशः तिर्यंच, मनुष्य व देव गतिके सासादनसम्यक्त्वियोंके वायु और तेजकायिक जीवोंको छोड़कर शेष तीनों एकेन्द्रिय बादर जीवोंमें उत्पन्न होनेका सुस्पष्ट विधान व विकलेन्द्रियों एवं असंज्ञी पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेका निषेध किया गया है।

धवलाकारने अपने आलाप अधिकारमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंके पर्याप्त व अपर्याप्त अवस्थामें केवल एक पंचेन्द्रियत्व व त्रसकायित्वका ही प्रतिपादन किया है। तथा पृथिवीकायादि स्थावर जीवोंके अपर्याप्त अवस्थामें भी केवल एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान बतलाया है। (देखो भाग २ पृ. ४२७, ४७८, ६०७) सत्प्ररूपणाके सूत्र ३६ की टीकामें धवलाकारने सासादनोंके एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होने व न होने संबंधी दोनों मतोंके संग्रह और श्रद्धान करनेपर जोर दिया है। पर स्पर्शनप्ररूपणाके सूत्र ४ की टीकामें उन्होंने यह मत प्रकट किया है कि सासादनोंका एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होना सत्प्ररूपणा और द्रव्यप्रमाण इन दोनोंके सूत्रोंके विरुद्ध है, और इसलिये उसे ग्रहण नहीं करना चाहिये। सासादनसम्यक्त्वियोंके एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होने और फिर भी एकेन्द्रियोंमें सासादनगुणस्थानके सर्वथा अभाव पाये जानेका समन्वय उन्होंने इस प्रकार किया है कि सासादनसम्यग्दृष्टि एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते हैं, किन्तु आयु छिन्न होनेके प्रथम समयमें ही उनका सासादन गुणस्थान छूट जाता है और वे मिथ्यादृष्टि हो जाते हैं, इससे एकेन्द्रियोंकी अपर्याप्त अवस्थामें भी सासादन गुणस्थान नहीं पाया जाता।

पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें जानेवाले संख्यातवर्षायुष्क सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच संज्ञी जीवोंमें जाते हैं, असंज्ञियोंमें नहीं ॥ १२२ ॥

संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें जानेवाले उपर्युक्त तिर्यंच गर्भोपक्रान्तिकोंमें जाते हैं, सम्मूर्च्छिमोंमें नहीं ॥ १२३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंता पज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ १२४ ॥

पज्जत्तएसु गच्छंता संखेज्जवासाउएसु वि गच्छंति, असंखेज्जवासाउवेसु वि ॥ १२५ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

मणुसेसु गच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ॥ १२६ ॥

गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंता पज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ १२७ ॥

पज्जत्तएसु गच्छंता संखेज्जवासाउएसु वि गच्छंति, असंखेज्जवासाउएसु वि गच्छंति॥ १२८ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

गर्भोपक्रान्तिक संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें जानेवाले उपर्युक्त तिर्यंच पर्याप्तकोंमें जाते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं ॥ १२४ ॥

पर्याप्तक गर्भोपक्रान्तिक संज्ञी पंचेन्द्रियोंमें जानेवाले उपर्युक्त तिर्यंच संख्यातवर्षकी आयुवाले जीवोंमें ही जाते हैं, असंख्यातवर्षायुष्कोंमें नहीं ॥ १२५ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

मनुष्योंमें जानेवाले संख्यातवर्षायुष्क सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच गर्भोपक्रान्तिक मनुष्योंमें ही जाते हैं, सम्मूर्च्छिमोंमें नहीं ॥ १२६ ॥

गर्भोपक्रान्तिक मनुष्योंमें जानेवाले उपर्युक्त तिर्यंच पर्याप्तकोंमें जाते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं ॥ १२७ ॥

पर्याप्तक गर्भोपक्रान्तिक मनुष्योंमें जानेवाले उपर्युक्त तिर्यंच संख्यात वर्षकी आयुवाले मनुष्योंमें भी जाते हैं, और असंख्यात वर्षकी आयुवाले मनुष्योंमें भी जाते हैं ॥ १२८ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवेसु गच्छंता भवणवासियप्पहुडि जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु गच्छंति[1] ॥ १२९ ॥

सुगममेदं ।

तिरिक्खा सम्मामिच्छाइट्ठी संखेज्जवस्साउआ सम्मामिच्छत्तगुणेण तिरिक्खा तिरिक्खेसु णो कालं करेंति ॥ १३० ॥

कुदो ? सम्मामिच्छत्तगुणम्मि चदुसु वि गदीसु आउकम्मस्स सव्वत्थ बंधाभावा[2] । ण सत्तमपुढवीअसंजदसम्मादिट्ठि-सासणसम्माइट्ठीहि विउचारो[3], तत्थ वि आउअकम्मस्स तेसिं बंधाभावा[4] । हंदि जिस्से गदीए जम्हि गुणट्ठाणे आउकम्मबंधो

देवोंमें जानेवाले संख्यातवर्षायुष्क सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच भवनवासी देवोंसे लगाकर शतार-सहस्रार तकके कल्पवासी देवोंमें जाते हैं ॥ १२९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

तिर्यंच सम्यग्मिथ्यादृष्टी संख्यातवर्षायुष्क तिर्यंच जीव तिर्यंचोंमें सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानके साथ मरण नहीं करते ॥ १३० ॥

क्योंकि, सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें चारों ही गतियोंमें आयुकर्मके बंधका सर्वत्र अभाव है । इस कथनसे सप्तम पृथिवीसंबंधी असंयतसम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंसे व्यभिचार भी नहीं उत्पन्न होता, क्योंकि सातवीं पृथिवीमें भी उक्त गुणस्थानवर्ती जीवोंके आयुकर्मके बंधका अभाव है । " जिस गतिमें जिस गुणस्थानमें

१ संखेज्जाउवसण्णी सदर-सहस्सारगो त्ति जायंति । ति. प. ५, ३१३. त एव संज्ञिनो मिथ्यादृष्टयः सासादनसम्यग्दृष्टयश्चाऽऽसहस्राराद्रुत्पद्यन्ते । त. रा. ४, २१.

२ सो संजमं ण गिण्हदि देसजमं वा ण बंधदे आउं । सम्मं वा मिच्छं वा पडिवज्जिय मरदि णियमेण ॥ गो. जी. २३. सम्मेव तित्थबंधो आहारदुगं पमादरहिदेसु । मिस्सूणे आउस्स य मिच्छादिसु सेसबंधो दु ॥ गो. क. ९२.

३ तत्थतणऽविरदसम्मो मिस्सो मणुवदुगमुच्चयं णियमा । बंधदि गुणपडिवण्णा मरंति मिच्छेव तत्थ भवा ॥ गो. क. ५३९.

४ घम्मे तित्थं बंधदि वंसामेघाण पुण्णगो चेव । छट्ठो त्ति य मणुवाऊ चरिमे मिच्छेव तिरियाऊ ॥ गो. क. १०६.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

णत्थि, ण तेण गुणेण ताए गदीए णिग्गमो[1] त्ति मोत्तूण कसायउवसामए[2]।

तिरिक्खा असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जवस्साउआ तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥ १३१ ॥

आयुकर्मका बंध नहीं होता, उस गुणस्थान सहित उस गतिसे निश्चयतः निर्गमन भी नहीं होता " ऐसा कषायउपशामकोंको छोड़ अन्य सर्व जीवोंके लिये नियम है।

विशेषार्थ—जिस गुणस्थानमें जिस गतिमें आयुकर्म बंधता नहीं है, उस गुणस्थान सहित उस गतिसे निर्गमन भी नहीं होता। यह व्यवस्था इस प्रकार है— चारों गतियोंके जीव मिथ्यात्व गुणस्थानमें आयुकर्मका बन्ध करते हैं अतएव उस गुणस्थान सहित उन गतियोंसे अन्य गतियोंमें जाते भी हैं। सातवीं पृथ्वीके नारकी जीवोंको छोड़ अन्य सब गतियोंके जीव सासादन गुणस्थानमें आयुबन्ध करते हैं और इन गतियोंसे निकलते भी हैं, यहां नरकायु नहीं बंधती। सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें आयुबन्ध किसी भी गतिमें नहीं होता और इसलिये किसी गतिसे उस गुणस्थान सहित निर्गमन भी नहीं होता। सप्तम पृथ्वीको छोड़कर शेष चारों गतियोंके अविरतसम्यग्दृष्टि जीव यथायोग्य मनुष्यायु और देवायुका बन्ध करते हैं और इसलिये उस गुणस्थान सहित निर्गमन भी उन गतियोंसे करते हैं। देशविरत गुणस्थान केवल तिर्यंच और मनुष्य इन दो गतियोंमें ही होता है। इन दोनों गतियोंमें इस गुणस्थानमें आयुबन्ध देवगतिका होता है, और निर्गमन भी होता है। प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान केवल मनुष्यगतिमें पाये जाते हैं। इन दोनों गुणस्थानोंमें भी देवायुका बन्ध तथा निर्गमन संभव है। अप्रमत्त गुणस्थानमें आयुबन्धका विच्छेद हो जाता है, अर्थात् अपूर्वकरण आदि सात गुणस्थानोंमें आयुबन्ध नहीं होता, पर उपशमश्रेणीके चारों गुणस्थानोंमें चढ़ते व उतरते हुए किसी भी गुणस्थानमें मरण संभव है, तथा अयोगि गुणस्थानसे केवलियोंका संसारसे निर्गमन होता है। इस प्रकार उपशमश्रेणी व अयोगि गुणस्थानमें तो जिस गुणस्थानमें आयुबन्ध नहीं होता उसमें भी निर्गमन संभव है, पर अन्य अवस्थामें निर्गमन उसी गुणस्थान सहित संभव है जिस गुणस्थानमें आयुबन्ध भी संभव हो।

तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि संख्यातवर्षायुष्क तिर्यंच जीव तिर्यंचपर्यायोंसे मरण कर कितनी गतियोंमें जाते हैं ? ॥ १३१ ॥

---

१ मिस्सा आहारस्स य खवगा चडमाणपढमपुव्वा य। पढमुवसम्मा तमतमगुणपडिवण्णा य ण मरंति ॥ अणसंजोजिदमिच्छे मुहुत्तअंतं तु णत्थि मरणं तु। किदकरणिज्जं जाव दु सव्वपरट्ठाण अट्ठपदा ॥ गो. क. ५६०-५६१.

२ अपमत्ते देवाऊणिट्ठवणं चेव अत्थि त्ति ॥ गो. क. ९८. उवसामगेसु मरिदो देवत्तमत्तं समल्लियई ॥ गो. क. ५५९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुगममेदं ।

एक्कं हि चेव देवगदिं गच्छंति ॥ १३२ ॥

कुदो ? देवाउअं मोत्तूण अण्णेसिमाउआणं तत्थ बंधाभावा । ण वाउवबंधेण विणा उप्पाओ अत्थि, तहाणुवलंभा ।

देवेसु गच्छंता सोहम्मीसाणप्पहुडि जाव आरणच्चुदकप्पवासियदेवेसु गच्छंति[1] ॥ १३३ ॥

उवरि किण्ण गच्छंति ? ण, तिरिक्खसम्माइट्ठीसु संजमाभावा । संजमेण विणा ण च उवरि गमणमत्थि[2] । ण मिच्छाइट्ठीहि तत्थुप्पज्जंतेहि[3] विउचारो, तेसिं पि भावसंजमेण[4] विणा दव्वसंजमस्स[5] संभवा ।

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त तिर्यंच जीव मरकर एकमात्र देवगतिको जाते हैं ॥ १३२ ॥

क्योंकि, देवायुको छोड़कर अन्य आयुओंका असंयतसम्यग्दृष्टि संख्यातवर्षायुष्क तिर्यंच जीवोंके बन्धका अभाव है । और आयुबंधके विना किसी गतिविशेषमें उत्पत्ति होती नहीं है, क्योंकि वैसा पाया नहीं जाता ।

देवोंमें जानेवाले असंयतसम्यग्दृष्टि संख्यातवर्षायुष्क तिर्यंच सौधर्म-ईशान स्वर्गसे लगाकर आरण-अच्युत तकके कल्पवासी देवोंमें जाते हैं ॥ १३३ ॥

शंका—संख्यातवर्षायुष्क असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंच मरकर आरण-अच्युत कल्पसे ऊपर क्यों नहीं जाते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, तिर्यंच सम्यग्दृष्टि जीवोंमें संयमका अभाव पाया जाता है । और संयमके विना आरण-अच्युत कल्पसे ऊपर गमन होता नहीं है । इस कथनसे आरण-अच्युत कल्पसे ऊपर उत्पन्न होनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवोंके साथ व्यभिचार दोष भी नहीं आता, क्योंकि उन मिथ्यादृष्टियोंके भी भावसंयम रहित द्रव्यसंयम होना संभव है ।

---

१ त एव सम्यग्दृष्टयः सौधर्मादिषु अच्युतान्तेषु जायन्ते । त. रा. ४, २१.

२ अस्संजयभवियदव्वदेवाणं जहण्णेणं भवणवासीसु उक्कोसेणं उवरिमगेविज्जेसु । व्याख्याप्रज्ञप्ति १, २, २६.

३ प्रतिषु ' तत्थुप्पज्जंतीहि ' इति पाठः ।

४ देहादिसंगरहिओ माणकसाएहिं सयलपरिचत्तो । अप्पा अप्पम्मि रओ स भावलिंगी हवे साहू ॥ भावप्राभृत ५६. धृत्वा निर्ग्रंथलिंगं ये प्रकृष्टं कुर्वते तपः । अन्त्यग्रैवेयकं यावदभव्याः खलु यान्ति ते ॥ तत्त्वार्थसार २, १६७.

५ जे रायसंगजुत्ता जिणभावणरहियदव्वणिग्गंथा । ण लहंति ते समाहिं बोहिं जिणसासणे विमले ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

तिरिक्खमिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंखेज्जवासाउवा तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥१३४॥

सुगममेदं ।

एक्कंहि चेव देवगदिं गच्छंति ॥ १३५ ॥

कुदो ? मंदकसायत्तादो[1], तत्थ देवाउअं मोत्तूण अण्णेसिमाउआणं बंधाभावादो वा । कधमेक्कंहि देवगइमिदि एदेसिं दोण्हं पदाणं समाणाहिअरणत्तं[2] ? ण, देवगदीए छक्कारयरूवाए समाणाहिअरणत्तस्स विरोहाभावा । अधवा एक्कं हि चेवेत्ति एत्थतण 'हि' सद्दो पुधत्थे दट्ठव्वो, ण भाए । तेणेसत्थो हवइ– एक्कं चेव हि पुधं देवगइं

तिर्यंच मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि असंख्यातवर्षायुष्क तिर्यंच तिर्यंच-पर्यायोंसे मरणकर कितनी गतियोंमें जाते हैं ? ॥ १३४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त तिर्यंच एकमात्र देवगतिमें ही जाते हैं ॥ १३५ ॥

क्योंकि, असंख्यात वर्षकी आयुवाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंके मन्दकषायपना होता है । अथवा, उन जीवोंमें देवायुको छोड़कर अन्य आयुओंके बन्धका अभाव है, अतएव वे देवगतिमें ही जाते हैं ।

शंका — सूत्रमें 'एक्कंहि' यह पद सप्तमी विभक्ति सहित है और 'देवगइं' यह पद द्वितीया विभक्ति युक्त है, अतएव इन दोनों पदोंमें समानाधिकरणत्व कैसे बन सकता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि 'देवगदिं' इस पदके छहों कारकोंमें समानरूपसे प्रयुक्त होनेके कारण दोनों पदोंमें समानाधिकरणत्वका कोई विरोध नहीं है । अर्थात् 'देवगदिं' पदको अव्ययरूप मानकर उसका सब लिङ्गों और कारकोंके साथ सामञ्जस्य बैठाया जा सकता है । अथवा, 'एक्कं हि चेव' इस वाक्यांशमें 'हि' शब्द 'स्फुट' अर्थमें जानना चाहिये, विभक्तिके अर्थमें नहीं । इससे यह अर्थ होगा कि उपर्युक्त जीव 'एक ही

भावप्राभृत ७२. जिणलिंगधारिणो जे उक्किट्ठतवस्समेण संपुण्णा । ते जायंति अभव्वा उवरिमगेवज्जपरियंतं ॥ परदो अंचतपद–(?) तवदंसणणाणचरणसंपण्णा । णिग्गंथा जायंते भव्वा सव्वट्ठसिद्धिपरियंतं ॥ ति. प. ८, ५५९–५६०.

१ संख्यातीतायुषां नूनं देवेष्वेवास्ति संक्रमः । निसर्गेण भवेत्तेषां यतो मन्दकषायता ॥ तत्त्वार्थसार २, १६०.

२ प्रतिषु 'समाणाहिआवरणत्तं', मप्रतौ 'समाणाहिअवरणत्तं' इति पाठः ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

गच्छंति । ण पुव्वुत्तदोसप्पसंगो । चेव सद्दो सेसगइणिसेहट्ठो ।

देवेसु गच्छंता भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवेसु गच्छंति ॥ १३६ ॥

किं कारणं ? सोहम्मादिउवरिमदेवेसु गमणजोग्गपरिणामाभावा ।

तिरिक्खा सम्मामिच्छाइट्ठी असंखेज्जवासाउआ सम्मामिच्छत्त-गुणेण तिरिक्खा तिरिक्खेहि णो कालं करेंति ॥ १३७ ॥

कुदो ? तत्थ आउअकम्मस्स बंधाभावादो ।

तिरिक्खा असंजदसम्माइट्ठी असंखेज्जवासाउआ तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥ १३८ ॥

सुगममेदं ।

केवल देवगतिको जाते हैं '। इस प्रकार पूर्वोक्त सामानाधिकरण्यसम्बन्धी दोषका प्रसंग नहीं आता । ' चेव ' शब्द शेष गतियोंका निषेध करनेके लिये है ।

देवोंमें जानेवाले पूर्वोक्त तिर्यंच भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जाते हैं ॥ १३६ ॥

इसका कारण यह है कि असंख्यातवर्षायुष्क मिथ्यादृष्टि और सासादन-सम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंके सौधर्मादिक उपरिम देवोंमें गमन करनेके योग्य परिणामोंका अभाव है ।

तिर्यंच सम्यग्मिथ्यादृष्टि असंख्यातवर्षायुष्क तिर्यंच जीव तिर्यंचपर्यायोंसे सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानके साथ मरण नहीं करते ॥ १३७ ॥

क्योंकि, उक्त जीवोंके सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें आयुकर्मके बन्धका अभाव है ।

तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि असंख्यातवर्षायुष्क तिर्यंच जीव तिर्यंचपर्यायोंसे मरण करके कितनी गतियोंमें जाते हैं ? ॥ १३८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

---

१ असंख्येयवर्षायुषः तिर्यङ्मनुष्याः मिथ्यादृष्टयः सासादनसम्यग्दृष्टयश्च आ ज्योतिष्केभ्य उपजायन्ते । त. रा. ४, २१.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

एक्कं हि चेव देवगदिं गच्छंति ॥ १३९ ॥

एदं पि सुगमं ।

देवेसु गच्छंता सोहम्मीसाणकप्पवासियदेवेसु गच्छंति[1] ॥१४०॥

तेसिं तदो उवरि तत्तो हेट्ठा वा उप्पज्जणपरिणामाभावा ।

मणुसा मणुसपज्जत्ता मिच्छाइट्ठी संखेज्जवासाउआ मणुसा मणुसेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥ १४१ ॥

सुगममेदं ।

चत्तारि गदीओ गच्छंति णिरयगई तिरिक्खगई मणुसगई देवगई चेदि[2] ॥ १४२ ॥

असंख्यातवर्षायुष्क असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंच मरकर एकमात्र देवगतिको ही जाते हैं ॥ १३९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

देवोंमें जानेवाले असंख्यातवर्षायुष्क असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंच सौधर्म-ईशान कल्पवासी देवोंमें जाते हैं ॥ १४० ॥

क्योंकि, उन जीवोंमें सौधर्म-ईशान स्वर्गसे ऊपर या नीचे उत्पन्न होने योग्य परिणामोंका अभाव पाया जाता है ।

मनुष्य मनुष्यपर्याप्त मिथ्यादृष्टि संख्यातवर्षायुष्क मनुष्य मनुष्यपर्यायोंसे मरणकर कितनी गतियोंको जाते हैं ? ॥ १४१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त मनुष्य चारों गतियोंमें जाते हैं— नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति ॥ १४२ ॥

---

१ संखातीदाओ जाव ईसाणं । ति. प. ५, ३१३. तापसाश्चोत्कृष्टाः, त एव सम्यग्दृष्टयः सौधर्मै-शानयोर्जन्मानुभवन्ति । त. रा. ४, २१.

२ संखेज्जाउवमाणा मणुवा णर-तिरिय-देव-णिरएसुं । सव्वेसुं जायंति सिद्धगदीओ वि पावंति ॥ ति. प. ४, २९४४. मणुवा जंति चउग्गदिपरियंतं सिद्धिठाणं च । गो. क. ५४१. एगंत बाले णं भंते, मणूसे किं नेरइयाउयं पकरेइ तिरिक्खाउयं पकरेइ मणुसाउयं पकरेइ देवाउयं पकरेइ ? नेरइयाउयं किच्चा नेरइएसु उववज्जइ,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एदं पि सुगमं ।

णिरएसु गच्छंता सव्वणिरएसु गच्छंति ॥ १४३ ॥

तिरिक्खेसु गच्छंता सव्वतिरिक्खेसु गच्छंति ॥ १४४ ॥

मणुसेसु गच्छंता सव्वमणुस्सेसु गच्छंति ॥ १४५ ॥

देवेसु गच्छंता भवणवासियप्पहुडि जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु गच्छंति ॥ १४६ ॥

एदाणि (सुत्ताणि) सुगमाणि ।

मणुसा अपज्जत्ता मणुसा मणुसेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥ १४७ ॥

सुगममेदं ।

दुवे गदीओ गच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेव ॥ १४८ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

नरकोंमें जानेवाले उपर्युक्त मनुष्य सभी नरकोंमें जाते हैं ॥ १४३ ॥

तिर्यंचोंमें जानेवाले उपर्युक्त मनुष्य सभी तिर्यंचोंमें जाते हैं ॥ १४४ ॥

मनुष्योंमें जानेवाले उपर्युक्त मनुष्य सभी मनुष्योंमें जाते हैं ॥ १४५ ॥

देवोंमें जानेवाले उपर्युक्त मनुष्य भवनवासी देवोंसे लगाकर नौ ग्रैवेयकविमानवासी देवों तकमें जाते हैं ॥ १४६ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

मनुष्य अपर्याप्तक मनुष्य मनुष्यपर्यायोंसे मरण करके कितनी गतियोंमें जाते हैं ? ॥ १४७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त मनुष्य दो गतियोंमें जाते हैं— तिर्यंचगति और मनुष्यगति ॥ १४८ ॥

तिरियाउयं किं० तिरिएसु उवव०, मणुस्साउयं किं० मणुस्से० उव०, देवाउयं० किं० देवलोएसु उववज्जइ ? गोयमा, एगंतबाले णं मणुस्से नेरइयाउयं पि पकरेइ, तिरि०, मणु०, देवाउयं पि पकरेइ । व्याख्याप्रज्ञप्ति १, ८, ६४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुदो ? मणुस्सअपज्जत्ताणं तिरिक्ख-मणुस्साउअं मोत्तूण अण्णेसिं आउआणं बंधाभावा ।

तिरिक्ख-मणुसेसु गच्छंता सव्वतिरिक्ख-मणुसेसु गच्छंति, णो असंखेज्जवासाउएसु गच्छंति ॥ १४९ ॥

कुदो ? एदेसिं दाण-दाणाणुमोदाणमभावादो ।

मणुस्ससासणसम्माइट्ठी संखेज्जवासाउआ मणुसा मणुसेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥ १५० ॥

सुगममेदं ।

तिण्णि गदीओ गच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं देवगदिं चेदि ॥ १५१ ॥

सुगममेदं ।

तिरिक्खेसु गच्छंता एइंदिय-पंचिंदिएसु गच्छंति, णो विगलिंदिएसु गच्छंति ॥ १५२ ॥

क्योंकि, अपर्याप्तक मनुष्योंके तिर्यंच और मनुष्य, इन दो आयुओंको छोड़कर अन्य आयुओंके बन्धका अभाव है ।

तिर्यंच और मनुष्योंमें जानेवाले उपर्युक्त मनुष्य सभी तिर्यंच और सभी मनुष्योंमें जाते हैं, किन्तु असंख्यात वर्षकी आयुवाले तिर्यंच और मनुष्योंमें नहीं जाते ॥ १४९ ॥

क्योंकि, अपर्याप्तक मनुष्योंके दान और दानानुमोदन इन दोनों कारणोंका अभाव है ।

मनुष्य सासादनसम्यग्दृष्टि संख्यातवर्षायुष्क मनुष्य मनुष्यपर्यायोंसे मरण करके कितनी गतियोंको जाते हैं ? ॥ १५० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त मनुष्य तीन गतियोंमें जाते हैं— तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति ॥ १५१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

तिर्यंचोंमें जानेवाले उपर्युक्त मनुष्य एकेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवोंमें जाते हैं, विकलेन्द्रिय जीवोंमें नहीं जाते ॥ १५२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जदि एइंदिएसु सासणसम्माइट्ठी उप्पज्जंति तो एइंदिएसु दोहि गुणट्ठाणेहि होदव्वमिदि । होदु चे ण, एइंदियसासणदव्वस्स दव्वाणिओगद्दारे पमाणपरूवणाभावा ? एत्थ परिहारो वुच्चदे । तं जहा— सासणसम्माइट्ठी एइंदिएसु उप्पज्जमाणा जेण अप्पणो आउअस्स चरिमसमए सासणपरिणामेण सहिया होदूण तदो उवरिमसमए मिच्छत्तं पडिवज्जंति तेण एइंदिएसु ण दोण्णि गुणट्ठाणाणि, मिच्छाइट्ठिगुणट्ठाणमेक्कं चेव ।

एइंदिएसु गच्छंता बादरपुढवी-बादरआउ-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्तेसु ॥ १५३ ॥

पंचिंदिएसु गच्छंता सण्णीसु गच्छंति, णो असण्णीसु ॥ १५४ ॥

सण्णीसु गच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ॥ १५५ ॥

शंका—यदि एकेन्द्रियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न होते हैं, तो एकेन्द्रियोंमें दो गुणस्थान होना चाहिये ? यदि कहा जाय कि एकेन्द्रियोंमें दो ही गुणस्थान होने दो सो भी नहीं बन सकता, क्योंकि द्रव्यानुयोगद्वारमें एकेन्द्रिय सासादनगुणस्थानवर्ती जीवोंके द्रव्यका प्रमाण नहीं बतलाया गया ?

समाधान—यहां उपर्युक्त शंकाका परिहार कहा जाता है। वह इस प्रकार है— चूंकि एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीव अपनी आयुके अन्तिम समयमें सासादनपरिणाम सहित होकर उससे ऊपरके समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त हो जाते हैं, इसलिये एकेन्द्रियोंमें दो गुणस्थान नहीं होते, केवल एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है।

एकेन्द्रियोंमें जानेवाले उपर्युक्त मनुष्य बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्तकोंमें जाते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं ॥ १५३ ॥

पंचेन्द्रियोंमें जानेवाले उपर्युक्त मनुष्य संज्ञियोंमें जाते हैं, असंज्ञियोंमें नहीं ॥ १५४ ॥

संज्ञियोंमें जानेवाले उपर्युक्त मनुष्य गर्भोपक्रान्तिकोंमें जाते हैं, सम्मूर्च्छिमोंमें नहीं ॥ १५५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंता पज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ १५६ ॥

पज्जत्तएसु गच्छंता संखेज्जवासाउएसु वि गच्छंति, असंखेज्जवासाउएसु वि गच्छंति ॥ १५७ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

मणुसेसु गच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ॥ १५८ ॥

मणुस्सा सण्णिणो चेव, तेण सण्णि-असण्णिवियप्पो ण कदो ।

गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंता पज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ १५९ ॥

पज्जत्तएसु गच्छंता संखेज्जवासाउएसु (वि) गच्छंति, असंखेज्जवासाउएसु वि गच्छंति ॥ १६० ॥

गर्भोपक्रान्तिकोंमें जानेवाले उपर्युक्त मनुष्य पर्याप्तकोंमें जाते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं ॥ १५६ ॥

पर्याप्तकोंमें जानेवाले उपर्युक्त मनुष्य संख्यात वर्षकी आयुवालोंमें भी जाते हैं और असंख्यात वर्षकी आयुवालोंमें भी जाते हैं ॥ १५७ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

मनुष्योंमें जानेवाले उपर्युक्त मनुष्य गर्भोपक्रान्तिकोंमें जाते हैं, सम्मूर्च्छिमोंमें नहीं ॥ १५८ ॥

मनुष्य केवल संज्ञी ही होते हैं, इसलिये उनमें संज्ञी और असंज्ञीका विकल्प नहीं किया गया ।

गर्भोपक्रान्तिकोंमें जानेवाले उपर्युक्त मनुष्य पर्याप्तकोंमें जाते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं ॥ १५९ ॥

पर्याप्तकोंमें जानेवाले उपर्युक्त मनुष्य संख्यातवर्षायुष्क मनुष्योंमें भी जाते हैं और असंख्यातवर्षायुष्क मनुष्योंमें भी जाते हैं ॥ १६० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवेसु गच्छंता भवणवासियप्पहुडि जाव णवगेवज्जविमाण-वासियदेवेसु गच्छंति ॥ १६१ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि । कधं मणुससासणसम्माइट्ठीणं सम्मत्त-संजम-रहियाणं णवगेवज्जेसु उप्पत्ती ? ण एस दोसो, दव्वसंजमस्स वि तप्फलत्तुवलंभादो[1] ।

मणुसा सम्मामिच्छाइट्ठी संखेज्जवासाउआ सम्मामिच्छत्तगुणेण मणुसा मणुसेहि णो कालं करेंति ॥ १६२ ॥

कुदो ? एदस्स सव्वाउआणं बंधाभावादो ।

मणुससम्माइट्ठी संखेज्जवासाउआ मणुस्सा मणुस्सेहि कालगद-समाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥ १६३ ॥

सुगममेदं ।

देवोंमें जानेवाले उपर्युक्त मनुष्य भवनवासी देवोंसे लगाकर नौ ग्रैवेयकविमान-वासी देवों तक जाते हैं ॥ १६१ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

शंका—सम्यक्त्व और संयमसे रहित सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्योंकी नौ ग्रैवेयकोंमें उत्पत्ति किस प्रकार होती है ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं, क्योंकि द्रव्यसंयमके भी नौ ग्रैवेयकोंमें उत्पन्न होने रूप फलकी प्राप्ति पाई जाती है ।

संख्यात वर्षकी आयुवाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्य सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान सहित मनुष्य होते हुए मनुष्यपर्यायोंसे मरण नहीं करते ॥ १६२ ॥

क्योंकि, सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें सर्व आयुओंके बन्धका अभाव है ।

मनुष्य सम्यग्दृष्टि संख्यातवर्षायुष्क मनुष्य मनुष्यपर्यायोंसे मरण कर कितनी गतियोंमें जाते हैं ? ॥ १६३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

---

१ मनुष्याः संख्येयवर्षायुषः मिथ्यादर्शनाः सासादनसम्यग्दर्शनाश्च भवनवासिप्रभृतिषूपरिमग्रैवेयकान्तेषु उपपादमास्कंदंति । त. रा. ४, २१, धृत्वा निर्ग्रंथलिंगं ये प्रकृष्टं कुर्वते तपः । अन्त्यग्रैवेयकं यावदभव्याः खलु यान्ति ते ॥ तत्त्वार्थसार २, १६७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक्कं हि चेव देवगदिं गच्छंति ॥ १६४ ॥

एत्थ चत्तारि गदीओ गच्छंति त्ति वत्तव्वं, मणुससम्माइट्ठीणं चउग्गइगमणुवलंभादो। तं जहा– देवगदिं ताव मणुससम्माइट्ठिणो गच्छंति चेव, एत्थेव सुत्ते उत्तत्तादो। णिरयगदिं पि गच्छंति, ' णेरइया सम्मत्तेण अधिगदा णियमा सम्मत्तेण चेव णींति ' त्ति सुत्तवयणादो। ण तिरिक्खसम्माइट्ठिणो णिरयगदिमधिगच्छंति, तत्थ दंसणमोहणीयस्स खवणाभावादो खइयसम्मत्ताभावा। ण तत्थतणवेदगसम्माइट्ठिणो णिरयगदिमधिगच्छंति, तेसिं मरणकाले णिरयाउअसंतस्साभावादो। ण देव-णेरइयसम्माइट्ठिणो णिरयगदिमधिगच्छंति, जिणाणाभावादो। तम्हा परिसेसादो सम्मादिट्ठिणो मणुसा चेव णिरयगदिमधिगच्छंति त्ति सिद्धं। तिरिक्खगदिं (पि गच्छंति), ' सम्मत्तेण

संख्यातवर्षायुष्क सम्यग्दृष्टि मनुष्य एकमात्र देवगतिको ही जाते हैं ॥१६४॥

शंका—यहांपर ' संख्यातवर्षायुष्क सम्यग्दृष्टि मनुष्य चारों गतियोंको जाते हैं ' ऐसा कहना चाहिये, क्योंकि सम्यग्दृष्टि मनुष्योंका चारों गतियोंमें गमन पाया जाता है। वह इस प्रकार है— सम्यग्दृष्टि मनुष्य देवगतिको तो जाते ही हैं, क्योंकि यह बात प्रस्तुत सूत्रमें ही कही गई है। और सम्यग्दृष्टि मनुष्य नरकगतिको भी जाते हैं, क्योंकि 'नारकी सम्यक्त्वसे नरकमें प्रवेश करके नियमसे सम्यक्त्व सहित ही वहांसे निकलते हैं ' ऐसा सूत्रका वचन है। तिर्यंच सम्यग्दृष्टि जीव तो नरकगतिको जाते नहीं हैं, क्योंकि उनमें दर्शनमोहनीयके क्षपणका अभाव होनेसे क्षायिक सम्यक्त्वका अभाव है। और न तिर्यंचगतिसंबंधी वेदकसम्यग्दृष्टि नरकगतिको जाते हैं, क्योंकि उनके मरणकालमें नरकायु कर्मकी सत्ताका अभाव होता है। देव और नारकी सम्यग्दृष्टि नरकगतिको जाते नहीं हैं, क्योंकि ऐसा जिन भगवान्‌का उपदेश नहीं है। इसलिये पारिशेष न्यायसे सम्यग्दृष्टि मनुष्य ही नरकगतिको जाते हैं यह बात सिद्ध हुई। सम्यग्दृष्टि मनुष्य तिर्यंचगतिको भी जाते हैं, क्योंकि ' तिर्यंचगतिको सम्यक्त्व सहित जानेवाले

१ एगंतपंडिए णं भंते, मणुस्से किं नेर० पकरेइ जाव देवाउयं किच्चा देवलोएसु उवव० ? गोयमा, एगंतपंडिए णं मणुस्से आउयं सिय पकरेइ, सिय नो पकरेइ। जइ पकरेइ नो नेरइया० पकरेइ, नो तिरि०, नो मणु०, देवाउयं पकरेइ। ×××× बालपंडिए णं भंते, मणुस्से किं नेरइयाउयं पकरेइ जाव देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जइ ? गोयमा, नो नेरइयाउयं पकरेइ जाव देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जइ, से केणट्ठेणं जाव देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जइ ? गोयमा, बालपंडिए णं मणुसे तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतिए एगमवि आयरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा निसम्म देसं उवरमइ, देसं नो उवरमइ, देसं पच्चक्खाइ, देसं णो पच्चक्खाइ। से तेणट्ठेणं देसोवरमदेसपच्चक्खाणेणं नो नेरइयाउयं पकरेइ जाव देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जइ। से तेणट्ठेणं जाव देवेसु उववज्जइ। व्याख्याप्रज्ञप्ति १, ८, ६५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अधिगदा णियमा सम्मत्तेण चेव णींति ' त्ति जिणाणादो। एत्थ ण देव-णेरइय-तिरिक्ख-सम्माइट्ठिणो उप्पज्जंति, एदेसिमेत्थुप्पत्तीए पदुप्पायणजिणाणाभावादो। तम्हा तिरिक्खेसु सम्माइट्ठिणो मणुस्सेव[1] उप्पज्जंति। एवं मणुस्सेसु मणुससम्माइट्ठीणं उप्पत्ती साहेदव्वा त्ति ?

एत्थ परिहारो उच्चदे। तं जहा– जेहि मिच्छाइट्ठीहि देवाउअं मोत्तूण अण्णमाउअं बंधिय पच्छा सम्मत्तं गहियं ते[2] एत्थ ण परिगहिया। तेण एक्कं चेव देवगदिं गच्छंति मणुससम्माइट्ठिणो त्ति भणिदं। देवगइं मोत्तूणण्णगईणमाउअं बंधिदूण जेहि सम्मत्तं पच्छा पडिवण्णं ते एत्थ किण्ण गहिदा ? ण, तेसिं मिच्छत्तं गंतूणप्पणो बंधाउअवसेण उप्पज्जमाणाणं सम्मत्ताभावा। सम्मत्तं घेत्तूण दंसणमोहणीयं खविय णिरयादिसु उप्पज्जमाणा वि मणुससम्माइट्ठिणो अत्थि, ते किण्ण गहिदा ? सम्मत्तमाहप्पपदुप्पायणट्ठं पुव्वंबद्धआउअकम्ममाहप्पपदुप्पायणट्ठं च।

....

जीव नियमसे सम्यक्त्व सहित ही वहांसे निकलते हैं ' ऐसा जिन भगवान्का उपदेश है। यहां तिर्यंचोंमें देव, नारकी और तिर्यंच सम्यग्दृष्टि जीव तो उत्पन्न होते नहीं, क्योंकि इन जीवोंके यहां उत्पन्न होनेका प्रतिपादन करनेवाला जिन भगवान्का उपदेश पाया नहीं जाता। इसलिये तिर्यंचोंमें सम्यग्दृष्टि मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार मनुष्योंमें मनुष्य सम्यग्दृष्टि जीवोंकी उत्पत्ति साध लेना चाहिये ?

समाधान—यहां उक्त शंकाका परिहार कहते हैं। वह इस प्रकार है— जिन मिथ्यादृष्टियोंने देवायुको छोड़ अन्य आयु बांधकर पश्चात् सम्यक्त्व ग्रहण किया है, उनका यहां ग्रहण नहीं किया गया। इसीलिये ऐसा कहा गया है कि सम्यग्दृष्टि मनुष्य एकमात्र देवगतिको ही जाते हैं।

शंका—देवगतिको छोड़ अन्य गतियोंकी आयु बांधकर जिन मनुष्योंने पश्चात् सम्यक्त्व ग्रहण किया है, उनका यहां ग्रहण क्यों नहीं किया गया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि पुनः मिथ्यात्वमें जाकर अपनी बांधी हुई आयुके वशसे उत्पन्न होनेवाले उन जीवोंके सम्यक्त्वका अभाव पाया जाता है।

शंका—सम्यक्त्वको ग्रहण करके और दर्शनमोहनीयका क्षपण करके नरकादिकमें उत्पन्न होनेवाले भी सम्यग्दृष्टि मनुष्य होते हैं, उनका यहां क्यों नहीं ग्रहण किया गया ?

समाधान—सम्यक्त्वका माहात्म्य दिखलाने और पूर्वमें बांधे हुए आयुकर्मका माहात्म्य उत्पन्न करनेके लिये उक्त जीवोंका यहां ग्रहण नहीं किया गया।

....

१ प्रतिषु ' मणुस्सो व ' इति पाठः। २ प्रतिषु ' गहियंति ' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवेसु गच्छंता सोहम्मीसाणप्पहुडि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाण-वासियदेवेसु गच्छंति[1] ॥ १६५ ॥

सुगममेदं ।

मणुसा मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंखेज्जवासाउआ मणुसा मणुसेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥ १६६ ॥

सुगममेदं ।

एक्कं हि चेव देवगदिं गच्छंति ॥ १६७ ॥

देवेसु गच्छंता भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवेसु गच्छंति[2] ॥ १६८ ॥

देवोंमें जानेवाले संख्यातवर्षायुष्क सम्यग्दृष्टि मनुष्य सौधर्म-ईशानसे लगाकर सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवों तकमें जाते हैं ॥ १६५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मनुष्य मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि असंख्यातवर्षायुष्क मनुष्य मनुष्य-पर्यायोंसे मरण करके कितनी गतियोंमें जाते हैं ? ॥ १६६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त मनुष्य एकमात्र देवगतिको ही जाते हैं ॥ १६७ ॥

देवोंमें जानेवाले उपर्युक्त मनुष्य भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जाते हैं ॥ १६८ ॥

---

१ परिव्राजकानां देवेषूपपादः आ ब्रह्मलोकात्, आजीविकानां आ सहस्रारात् । तत ऊर्ध्वमन्यलिंगिनां नास्त्युपपादः, निर्ग्रन्थलिंगधारिणामेव उत्कृष्टतपोनुष्ठानोपचितपुण्यबन्धानाम् । असम्यग्दर्शनानामुपरिमग्रैवेयकान्तेषु उपपादः, तत ऊर्ध्वं सम्यग्दर्शनज्ञानचरणप्रकर्षोपेतानामेव जन्म नेतरेषाम् । श्रावकाणां सौधर्मादिष्वच्युतान्तेषु जन्म, नाधो नोपरीति परिणामविशुद्धिप्रकर्षयोगादेव कल्पस्थानातिशये योगोऽवसेयः । त. रा. ४, २१. उत्पद्यन्ते सहस्रारे तिर्यञ्चो व्रतसंयुताः । अत्रैव हि प्रजायन्ते सम्यक्त्वाराधका नराः ॥ न विद्यते परं ह्यस्मादुपपादोऽन्यलिंगिनाम् । निर्ग्रंथश्रावका ये ते जायन्ते यावदच्युतम् ॥ यावत्सर्वार्थसिद्धिं तु निर्ग्रंथा हि ततः परम् । उत्पद्यन्ते तपोयुक्ता रत्नत्रयपवित्रिताः ॥ तत्त्वार्थसार २, १६५–१६६, १६८. णरतिरियदेसअयदा उक्कस्सेणच्चुदो त्ति णिग्गंथा । णरअयददेसमिच्छा गेवज्जंतो त्ति गच्छंति ॥ सव्वट्ठो त्ति सुदिट्ठी महव्वई भोगभूमिजा सम्मा । सोहम्मदुगं मिच्छा भवणतियं तावसा य वरं ॥ चरया य परिव्वाजा बम्होत्तरच्चुदपदो त्ति आजीवा । गो. क. ५४९. जी. प्र. टीका.

२ संख्यातीतायुषो मर्त्यास्तिर्यञ्चश्चाप्यसद्दृशः । उत्कृष्टास्तापसाश्चैव यान्ति ज्योतिष्कदेवताम् । तत्त्वार्थसार २, १६३.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

मणुसा सम्मामिच्छाइट्ठी असंखेज्जवासाउआ सम्मामिच्छत्तगुणेण मणुसा मणुसेहि णो कालं करेंति १६९ ॥

मणुसा सम्माइट्ठी असंखेज्जवासाउआ मणुसा मणुसेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥ १७० ॥

एक्कं हि चेव देवगदिं गच्छंति ॥ १७१ ॥

देवेसु गच्छंता सोहम्मीसाणकप्पवासियदेवेसु गच्छंति[1] ॥१७२॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

देवा मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी देवा देवेहि उवट्टिद-चुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥ १७३ ॥

सुगममेदं ।

मनुष्य सम्यग्मिथ्यादृष्टि असंख्यातवर्षायुष्क मनुष्य सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान सहित मनुष्यपर्यायोंसे मरण नहीं करते ॥ १६९ ॥

मनुष्य सम्यग्दृष्टि असंख्यातवर्षायुष्क मनुष्यपर्यायोंसे मरण कर कितनी गतियोंमें जाते हैं ? ॥ १७० ॥

उपर्युक्त मनुष्य मरण कर एकमात्र देवगतिको जाते हैं ॥ १७१ ॥

देवोंमें जानेवाले उपर्युक्त मनुष्य सौधर्म और ईशान कल्पवासी देवोंमें जाते हैं ॥ १७२ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

देव मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देव देवपर्यायोंसे उद्वर्तित व च्युत होकर कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥ १७३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

विशेषार्थ—सूत्रकार भूतबलि आचार्यने भिन्न भिन्न गतियोंसे छूटनेके अर्थमें संभवतः गतियोंकी हीनता व उत्तमताके अनुसार भिन्न भिन्न शब्दोंका प्रयोग किया है ।

---

१ ते संखातीदाऊ जायंते केइ जाव ईसाणं । ति. प. ४, २९४५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुवे गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेव[1] ॥१७४॥

कुदो ? देव-णिरयाउआणं बंधाभावादो ।

तिरिक्खेसु आगच्छंता एइंदिय-पंचिंदिएसु आगच्छंति, णो विगलिंदिएसु ॥ १७५ ॥

कुदो ? सहावदो ?

एइंदिएसु आगच्छंता बादरपुढवीकाइय-बादरआउकाइय-बादर-वणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ १७६ ॥

नरकगति व भवनवासी, वानव्यतंर और ज्योतिषी, ये तीन देवगतियां हीन हैं, अतएव इनसे निकलनेके लिये 'उद्वर्तन' अर्थात् उद्धार होना कहा है। तिर्यंच और मनुष्य गतियां सामान्य हैं, अतएव उनसे निकलनेके लिये 'काल करना' शब्दका प्रयोग किया है। और सौधर्मादिक विमानवासियोंकी गति उत्तम है, अतएव वहांसे निकलनेके लिये 'च्युत होना' इस शब्दका उपयोग किया गया है। जहां देवगतिसामान्यसे निकलनेका उल्लेख आया है वहां भवनवासी आदि व सौधर्मादि देवोंकी अपेक्षा 'उद्वर्तित' और 'च्युत' दोनों शब्दोंका उपयोग किया गया है।

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देव मरण कर तिर्यंचगति और मनुष्यगति, इन दो गतियोंमें आते हैं ॥ १७४ ॥

क्योंकि, उक्त जीवोंके देव और नारक आयुओंके बंधका अभाव है।

तिर्यंचोंमें आनेवाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देव एकेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवोंमें आते हैं, विकलेन्द्रियोंमें नहीं आते ॥ १७५ ॥

क्योंकि, ऐसा स्वभाव ही है।

एकेन्द्रियोंमें आनेवाले उपर्युक्त देव बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्तक जीवोंमें आते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं ॥ १७६ ॥

---

१ आ ईसाणं देवा जणणा एइंदिएसु भजिदव्वा। उवरि सहस्सारंतं ते भव्वा (सव्वा) सण्णितिरियमणुवत्ते ॥ ति. प. ८, ६७९. आहारगा दु देवे देवाणं सण्णिकम्मतिरियणरे। पत्तेयपुढविआऊबादरपज्जत्तगे गमणं ॥ भवण-तियाणं एवं तित्थूणणरेसु चेव उप्पत्ती। ईसाणंताणेगे सदरदुगंताण सण्णीसु ॥ गो. क. ५४२-५४३. भाज्या एकेन्द्रियत्वेन देवा ऐशानतश्च्युताः। तिर्यक्त्वमानुषत्वाभ्यामासहस्रारतः पुनः ॥ तत्त्वार्थसार २, १६९.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

पंचिंदिएसु आगच्छंता सण्णीसु आगच्छंति, णो असण्णीसु ॥ १७७ ॥

सण्णीसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ॥ १७८ ॥

गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ १७९ ॥

पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवासाउएसु ॥ १८० ॥

कुदो ? दाण-दाणाणुमोदाणमभावादो, सभावदो वा । सेसं सुगमं ।

मणुसेसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ॥ १८१ ॥

पंचेन्द्रियोंमें आनेवाले उपर्युक्त देव संज्ञी तिर्यंचोंमें आते हैं, असंज्ञियोंमें नहीं ॥ १७७ ॥

संज्ञी तिर्यंचोंमें आनेवाले उपर्युक्त देव गर्भोपक्रान्तिकोंमें आते हैं, सम्मूर्च्छिमोंमें नहीं आते ॥ १७८ ॥

गर्भोपक्रान्तिकोंमें आनेवाले उपर्युक्त देव पर्याप्तकोंमें आते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं आते ॥ १७९ ॥

पर्याप्तकोंमें आनेवाले उपर्युक्त देव संख्यातवर्षायुष्कोंमें आते हैं, असंख्यातवर्षायुष्कोंमें नहीं आते ॥ १८० ॥

क्योंकि, उपर्युक्त देवोंमें दान और दानके अनुमोदन (इन भोगभूमिमें उत्पत्तिके दो कारणों) का अभाव है। अथवा स्वभावसे ही उपर्युक्त देव असंख्यातवर्षायुष्क भोगभूमिके तिर्यंचोंमें नहीं उत्पन्न होते । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

मनुष्योंमें आनेवाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देव गर्भोपक्रान्तिकोंमें आते हैं, सम्मूर्च्छिमोंमें नहीं आते ॥ १८१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ १८२ ॥

पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवासाउएसु ॥ १८३ ॥

सव्वमेदं सुगमं ।

देवा सम्मामिच्छाइट्ठी सम्मामिच्छत्तगुणेण देवा देवेहिं णो उव्वट्टंति, णो चयंति ॥ १८४ ॥

सुगममेदं ।

देवा सम्माइट्ठी देवा देवेहि उव्वट्टिद-चुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥ १८५ ॥

एक्कं हि चेव मणुसगदिमागच्छंति ॥ १८६ ॥

कुदो ? देवसम्माइट्ठीणं मणुसाउअं मोत्तूण अण्णाउआणं बंधाभावादो ।

गर्भोपक्रान्तिक मनुष्योंमें आनेवाले उपर्युक्त देव पर्याप्तकोंमें आते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं आते ॥ १८२ ॥

पर्याप्तक मनुष्योंमें आनेवाले उपर्युक्त देव संख्यातवर्षायुष्कोंमें आते हैं, असंख्यातवर्षायुष्कोंमें नहीं आते ॥ १८३ ॥

ये सब सूत्र सुगम हैं ।

देव सम्यग्मिथ्यादृष्टि सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान सहित देवपर्यायोंसे न उद्वर्तित होते हैं और न च्युत होते हैं ॥ १८४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

देव सम्यग्दृष्टि देव देवपर्यायोंसे उद्वर्तित व च्युत होकर कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥ १८५ ॥

सम्यग्दृष्टि देव मरण कर केवल एक मनुष्यगतिमें ही आते हैं ॥ १८६ ॥

क्योंकि, सम्यग्दृष्टि देवोंके मनुष्यायुको छोड़ अन्य आयुओंके बन्धका अभाव है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणुसेसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु॥ १८७ ॥

गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ १८८ ॥

पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवस्साउएसु ॥ १८९ ॥

सव्वं सुगममेदं ।

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसिय–सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवेसु देवगदिभंगो ॥ १९० ॥

एदं पि सुगमं ।

सणक्कुमारप्पहुडि जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु पढमपुढवीभंगो । णवरि चुदा त्ति भाणिदव्वं ॥ १९१ ॥

मनुष्योंमें आनेवाले सम्यग्दृष्टि देव गर्भोपक्रान्तिकोंमें आते हैं, सम्मूर्च्छिमोंमें नहीं आते ॥ १८७ ॥

गर्भोपक्रान्तिक मनुष्योंमें आनेवाले सम्यग्दृष्टि देव पर्याप्तकोंमें आते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं आते ॥ १८८ ॥

पर्याप्तक गर्भोपक्रान्तिक मनुष्योंमें आनेवाले सम्यग्दृष्टि देव संख्यातवर्षायुष्कोंमें आते हैं, असंख्यातवर्षायुष्कोंमें नहीं आते ॥ १८९ ॥

ये सब सूत्र सुगम हैं ।

भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिषी तथा सौधर्म और ईशान कल्पवासी देवोंकी गति उपर्युक्त देवगतिके समान है ॥ १९० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

सनत्कुमारसे लगाकर शतार-सहस्रार कल्पवासी देवोंकी गति प्रथम पृथिवीके नारकी जीवोंकी गतिके समान है । केवल यहां ‘ उद्वर्तित होते हैं ’ के स्थान पर ‘ च्युत होते हैं ’ ऐसा कहना चाहिये ॥ १९१ ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

एदं पि सुगमं ।

आणदादि जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी देवा देवेहि चुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥ १९२ ॥

सुगममेदं ।

एक्कं हि चेव मणुसगदिमागच्छंति[1] ॥ १९३ ॥

कुदो ? सुक्कलेस्सियाणं तेसिं मणुसाउएण विणा अण्णाउआणं बंधाभावा ।

मणुसेसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ॥ १९४ ॥

गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ १९५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

आनतसे लगाकर नव ग्रैवेयकविमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देव देवपर्यायोंसे च्युत होकर कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥ १९२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त देव केवल एक मनुष्यगतिमें ही आते हैं ॥ १९३ ॥

क्योंकि, शुक्लेश्यावाले उपर्युक्त देवोंके मनुष्यायुको छोड़ अन्य आयुओंके बन्धका अभाव है ।

मनुष्योंमें आनेवाले उपर्युक्त देव गर्भोपक्रान्तिकोंमें आते हैं, सम्मूर्च्छिमोंमें नहीं आते ॥ १९४ ॥

गर्भोपक्रान्तिक मनुष्योंमें आनेवाले उपर्युक्त देव पर्याप्तकोंमें आते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं आते ॥ १९५ ॥

---

१ तत्तो उवरिमदेवा सव्वा सुक्काभिधाणलेस्साए । उप्पज्जंति मणुस्से णत्थि तिरिक्खेसु उववादो ॥ ति. प. ८, ६८०. ततः परं तु ये देवास्ते सर्वेऽनन्तरे भवे । उत्पद्यन्ते मनुष्येषु न हि तिर्यक्षु जातुचित् ॥ तत्त्वार्थसार २, १७०.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवासाउएसु[1] ॥ १९६ ॥

सव्वमेदं सुगमं ।

आणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवा सम्मामिच्छाइट्ठी सम्मामिच्छत्तगुणेण देवा देवेहि णो चयंति ॥ १९७ ॥

अणुदिस जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा असंजदसम्माइट्ठी देवा देवेहि चुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥ १९८ ॥

एक्कं हि मणुसगदिमागच्छंति ॥ १९९ ॥

एक्कं हि मणुसगदिमागच्छंति, सुक्कलेस्सियत्तादो सम्माइट्ठित्तादो वा ।

मणुसेसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ॥ २०० ॥

गर्भोपक्रान्तिक पर्याप्त मनुष्योंमें आनेवाले उपर्युक्त देव संख्यातवर्षायुष्कोंमें आते हैं, असंख्यातवर्षायुष्कोंमें नहीं आते ॥ १९६ ॥

ये सब सूत्र सुगम हैं ।

आनतसे लगाकर नव ग्रैवेयक तकके विमानवासी सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान सहित देवपर्यायोंसे च्युत नहीं होते ॥ १९७ ॥

अनुदिशसे लगाकर सर्वार्थसिद्धि तकके विमानवासी असंयतसम्यग्दृष्टि देव देवपर्यायोंसे च्युत होकर कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥ १९८ ॥

उपर्युक्त देव केवल एक मनुष्यगतिमें ही आते हैं ॥ १९९ ॥

उपर्युक्त देवोंके केवल एक मनुष्यगतिमें ही आनेका कारण उनका शुक्लेश्यायुक्त होना अथवा सम्यग्दृष्टि होना ही है ।

मनुष्योंमें आनेवाले उपर्युक्त देव गर्भोपक्रान्तिकोंमें आते हैं, सम्मूर्च्छिमोंमें नहीं आते ॥ २०० ॥

---

१ देवगदीदो चत्ता कम्मक्खेत्तम्मि सण्णिपज्जत्ते । गब्भभवे जायंते ण भोगभूमीण णरतिरिए ॥ ति. प. ८, ६८१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ २०१ ॥

पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवासाउएसु ॥ २०२ ॥

सव्वमेदं सुगमं ।

अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइया णिरयादो णेरइया उव्वट्टिद-समाणा कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥ २०३ ॥

एक्कं हि चेव तिरिक्खगदिमागच्छंति त्ति ॥ २०४ ॥

पुणरुत्तत्तादो णेदं सुत्तं वत्तव्वं ? ण एस दोसो, जडमइसिस्साणुग्गहहेदुत्तादो ।

तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा छण्णो उप्पाएंति— आभिणिबोहियणाणं णो उप्पाएंति, सुदणाणं णो उप्पाएंति, ओहिणाणं

गर्भोपक्रान्तिक मनुष्योंमें आनेवाले उपर्युक्त देव पर्याप्तकोंमें आते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं आते ॥ २०१ ॥

गर्भोपक्रान्तिक पर्याप्त मनुष्योंमें आनेवाले उपर्युक्त देव संख्यातवर्षायुष्कोंमें आते हैं, असंख्यातवर्षायुष्कोंमें नहीं आते ॥ २०२ ॥

ये सब सूत्र सुगम हैं ।

नीचे सातवीं पृथिवीके नारकी नरकसे निकलकर कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥ २०३ ॥

सातवीं पृथिवीसे निकले हुए नारकी जीव केवल एक तिर्यंचगतिमें ही आते हैं ॥ २०४ ॥

शंका—(सातवीं पृथिवीसे निकलनेवाले नारकी जीवोंकी गतिका निर्देश ९४ आदि सूत्रोंमें कर आये हैं, अतएव) पुनरुक्त होनेसे प्रस्तुत सूत्र नहीं कहना चाहिये ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, इस पुनरुक्तिका हेतु जड़मति शिष्योंका अनुग्रह करना है ।

तिर्यंचोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यंच इन छहकी उत्पत्ति नहीं करते— आभिनिबोधिक ज्ञानको उत्पन्न नहीं करते, श्रुतज्ञानको उत्पन्न नहीं करते, अवधि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णो उप्पाएंति, सम्मामिच्छत्तं णो उप्पाएंति, सम्मत्तं णो उप्पाएंति, संजमासंजमं णो उप्पाएंति ॥ २०५ ॥

तित्थयरादीणं पडिसेहो एत्थ किण्ण कदो ? ण, तिरिक्खेसु तेसिं संभवाभावा, सव्वस्स पडिसेहस्स पत्तिपुव्वस्सुवलंभादो। सासणगुणपडिसेहो किण्ण कदो ? ण, सम्मत्ते पडिसिद्धे तत्तो उप्पज्जमाणसासणसम्मत्तगुणपडिसेहस्स अणुत्तसिद्धीदो।

छट्ठीए पुढवीए णेरइया णिरयादो णेरइया उव्वट्टिदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥ २०६ ॥

ज्ञानको उत्पन्न नहीं करते, सम्यग्मिथ्यात्व गुणको उत्पन्न नहीं करते, सम्यक्त्वको उत्पन्न नहीं करते, और संयमासंयमको उत्पन्न नहीं करते ॥ २०५ ॥

शंका—(तिर्यंचोंमें तीर्थंकर आदि भी तो उत्पन्न नहीं होते, अतएव) तीर्थंकरादिका भी यहां प्रतिषेध क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि तीर्थंकरादिकोंका तो तिर्यंचोंमें उत्पन्न होना संभव ही नहीं है। सर्व प्रतिषेधमें पहले प्रतिषेध्य वस्तुकी उपलब्धि पाई जाती है।

शंका—उपर्युक्त तिर्यंचोंमें सासादन गुणस्थानकी प्राप्तिका प्रतिषेध क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सम्यक्त्वका प्रतिषेध कर देनेपर सम्यक्त्वसे उत्पन्न होनेवाले सासादनसम्यक्त्व गुणके प्रतिषेधकी सिद्धि बिना कहे ही हो जाती है।

विशेषार्थ—यहां सप्तम नरकसे आये हुए तिर्यंच जीवोंके सम्यक्त्वकी प्राप्तिका सर्वथा प्रतिषेध किया गया है, किन्तु तिलोयपण्णत्ति (२, २९२) तथा प्रज्ञापना (२०, १०) [1] में उनमेंसे कितने ही जीवों द्वारा सम्यक्त्वग्रहण किये जानेका विधान पाया जाता है।

छठवीं पृथिवीके नारकी नरकसे नारकी होते हुए निकलकर कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥ २०६ ॥

---

१ आतुरिमखिदी चरमंगधारिणो संजदा य धूमंते। छट्ठंतं देसवदा सम्मत्तधरा केइ चरिमंतं ॥ ति. प. २, २९२. अहेसत्तमपुढवी–पुच्छा। गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, सम्मत्तं पुण लभेज्जा। प्रज्ञापना २०, १०. सप्तम्योऽपि सदृशः ॥ लो. प्र. १४, ११.

२ सप्तम्यां नारका मिथ्यादृष्टयो नरकेभ्य उद्वर्तिता एकामेव तिर्यग्गतिमायान्ति। तिर्यक्ष्वायाताः पंचेन्द्रियगर्भजपर्याप्तकसंख्येयवर्षायुःषूत्पद्यन्ते नेतरेषु। तत्र चोत्पन्नाः सर्वे मतिश्रुतावधिसम्यक्त्वसम्यङ्मिथ्यात्वसंयमासंयमान्नोत्पादयन्ति। त. रा. ३, ६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एत्थ 'छट्ठीए पुढवीए णेरइया उव्वट्टिदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति' त्ति वत्तव्वं, ण 'णिरयादो णेरइया' त्ति, तस्स फलाभावा ? ण एस दोसो, छट्ठीए पुढवीए णेरइया णिरयादो णिरयपज्जायादो उव्वट्टिदसमाणा विणट्ठा संता णेरइया दव्वट्ठियणयावलंबणेण णेरइया होदूण कदि गदीओ आगच्छंति त्ति तदुच्चारणाए फलोवलंभा । सेसं सुगमं ।

दुवे गदीयो आगच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेव ॥ २०७ ॥

एदं पि सिस्ससंभालणट्ठं परूविदं ।

तिरिक्ख-मणुस्सेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा मणुसा केइं छ उप्पाएंति– केइं आभिणिबोहियणाणमुप्पाएंति, केइं सुदणाणमुप्पाएंति, केइमोहिणाणमुप्पाएंति, केइं सम्मामिच्छत्तमुप्पाएंति, केइं सम्मत्तमुप्पाएंति, केइं संजमासंजममुप्पाएंति[2] ॥ २०८ ॥

शंका— यहां 'छठवीं पृथिवीसे निकलकर नारकी कितनी गतियोंमें आते हैं' ऐसा सूत्र कहना चाहिये, 'नरकसे नारकी होते हुए' यह कहने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि इन पदोंका कोई फल नहीं है ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं, क्योंकि 'छठवीं, पृथिवीके नारकी, नरकसे अर्थात् नरकपर्यायसे, निकलकर अर्थात् विनष्ट होकर, नारकी अर्थात् द्रव्यार्थिक नयके अवलम्बनसे नारकी होते हुए कितनी गतियोंमें आते हैं' ऐसा सूत्रोक्त उन पदोंके उच्चारणका फल पाया जाता है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

छठवीं पृथिवीसे निकलनेवाले नारकी जीव दो गतियोंमें आते हैं– तिर्यंचगति और मनुष्यगति ॥ २०७ ॥

यह सूत्र भी (पुनरुक्त होते हुए भी) शिष्योंको स्मरण करानेके अर्थ प्ररूपित किया गया है ।

तिर्यंच और मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यंच व मनुष्य कोई छह उत्पन्न करते हैं– कोई आभिनिबोधिक ज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई श्रुतज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई अवधिज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यग्मिथ्यात्व उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं, और कोई संयमासंयम उत्पन्न करते हैं ॥ २०८ ॥

---

१ प्रतौ 'दुवे हि' इति पाठः ।

२ षष्ठ्या उद्वर्तिता नारकास्तिर्यङ्मनुष्येषु जाताः केचिन्मतिश्रुतावधिसम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वसंयमासंयमान् षडुत्पादयन्ति, न सर्वे, नान्यतोऽन्यत् । त. रा. ३. ६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सासणसम्मत्तं सम्मत्ते पविसदि त्ति पुध ण उत्तं। सेसं संजमादिं णो उप्पाएंति[1] त्ति कधं णव्वदे ? विहीए अभावादो। ण च होंतं ण भणइ[2] तित्थयरो, विरोहादो।

पंचमीए पुढवीए णेरइया णिरयादो णेरइया उव्वट्टिदसमाणा कदि गदीयो आगच्छंति ? ॥ २०९ ॥

दुवे गदीयो आगच्छंति तिरिक्खगदिं चेव मणुसगदिं चेव ॥ २१० ॥

तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा केइं छ उप्पाएंति[3] ॥२११॥

तिरिक्खभवमछंडिऊणेत्ति जाणावणट्ठं बिदियतिरिक्खगहणं। ताणि छ पुव्वं परूविदाणि त्ति णेह कहियाइं।

सासादनसम्यक्त्व सम्यक्त्वमें प्रविष्ट हो जाता है, इसलिये उसका पृथक् उल्लेख नहीं किया गया।

शंका — तिर्यंच और मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यंच और मनुष्य संयमादि शेष गुणोंको उत्पन्न नहीं करते, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान — क्योंकि उनके संयमादि उत्पन्न करनेका विधान नहीं किया गया। यदि उनमें संयमादिकी उत्पत्ति होती तो यह हो नहीं सकता था कि तीर्थंकर उसका प्रतिपादन न करें, क्योंकि ऐसा माननेमें विरोध आता है।

पांचवीं पृथिवीके नारकी जीव नरकसे नारकी होते हुए निकलकर कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥ २०९ ॥

पांचवीं पृथिवीसे निकलकर नारकी जीव दो गतियोंमें आते हैं — तिर्यंचगति और मनुष्यगति ॥ २१० ॥

तिर्यंचोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यंच कोई छह उत्पन्न करते हैं ॥ २११ ॥

'तिर्यंचभवको न छोड़कर' यह जतलानेके लिये सूत्रमें दूसरी वार 'तिर्यंच' शब्दका उपयोग किया गया है। उन छहका प्ररूपण पहले कर आये हैं इसलिये यहां उनका नामोल्लेख नहीं किया गया।

---

१ मघव्या मनुष्यलाभो न षष्ठ्या भूमेर्विनिर्गतः। संयमं तु पुनः पुण्यं नाप्नुवन्तीति निश्चयः ॥ तत्त्वार्थसार २, १४९.

२ आप्रतौ 'ण च होंतं भणइ ण' इति पाठः।

३ पंचम्या उद्वर्तितास्तिर्यक्षूत्पन्नाः केचित्षडुत्पादयन्ति, न सर्वे, नान्यतोन्यत्। त. रा. ३, ६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणुस्सेसु उववण्णल्लया मणुसा केइमट्ठमुप्पाएंति– केइमाभिणिबोहियणाणमुप्पाएंति, केइं सुदणाणमुप्पाएंति, केइमोहिणाणमुप्पाएंति, केइं मणपज्जवणाणमुप्पाएंति, केइं सम्मामिच्छत्तमुप्पाएंति, केइं सम्मत्तमुप्पाएंति, केइं संजमासंजममुप्पाएंति, केइं संजममुप्पाएंति[1] ॥ २१२ ॥

कुदो ? पंचमीए आगदस्स तिव्वसंकिलेसाभावादो । सेसं सुगमं ।

चउत्थीए पुढवीए णेरइया णिरयादो णेरइया उव्वट्टिदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥ २१३ ॥

दुवे गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगइं चेव मणुसगइं चेव ॥ २१४ ॥

सव्वमेदं सुगमं ।

मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्य कोई आठको उत्पन्न करते हैं— कोई आभिनिबोधिक ज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई श्रुतज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई अवधिज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यग्मिथ्यात्व उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं, कोई संयमासंयम उत्पन्न करते हैं, और कोई संयम उत्पन्न करते हैं ॥ २१२ ॥

क्योंकि, पांचवीं पृथिवीसे आये हुए जीवके तीव्र संक्लेशका अभाव है। शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

चौथी पृथिवीके नारकी जीव नरकसे नारकी होते हुए निकलकर कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥ २१३ ॥

चौथी पृथिवीसे निकलनेवाले नारकी जीव दो गतियोंमें आते हैं— तिर्यंचगति और मनुष्यगति ॥ २१४ ॥

ये सब सूत्र सुगम हैं ।

---

१ मनुष्येषूत्पन्नाः केचिन्मतिश्रुतावधिमनःपर्ययसम्यक्त्वसम्यङ्मिथ्यात्वसंयमासंयमसंयमानुत्पादयन्ति, न सर्वे, नाम्यतोन्यत् । त. रा. ३, ६. निर्गताः खलु पञ्चम्या लभन्ते केचन व्रतम् । प्रयान्ति न पुनर्मुक्तिं भावसंक्लेशयोगतः ॥ तत्त्वार्थसार २, १५०.

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा केइं छ उप्पाएंति[1] ॥२१५॥

ताणि वि सुपसिद्धाणि त्ति णेह परूवियाइं ।

(मणुसेसु उववण्णल्लया मणुसा केइं दस उप्पाएंति-- केइमाभिणिबोहियणाणमुप्पाएंति, केइं सुदणाणमुप्पाएंति, केइमोहिणाणमुप्पाएंति, केइं मणपज्जवणाणमुप्पाएंति, केइं केवलणाणमुप्पाएंति, केइं सम्मामिच्छत्तमुप्पाएंति, केइं सम्मत्तमुप्पाएंति, केइं संजमासंजममुप्पाएंति, केइं संजममुप्पाएंति । णो बलदेवत्तं णो वासुदेवत्तं णो चक्कवट्टित्तं णो तित्थयरत्तं । केइमंतयडा होदूण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाणयंति सव्वदुक्खाणमंतं परिविजाणंति[2] ॥ २१६ ॥)

तिर्यंचोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यंच कोई छह उत्पन्न करते हैं ॥ २१५ ॥

वे छह पूर्वोक्त होनेके कारण सुप्रसिद्ध हैं, अतएव यहां उनका प्ररूपण नहीं किया गया ।

मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्य कोई दश उत्पन्न करते हैं— कोई आभिनिबोधिक ज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई श्रुतज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई अवधिज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई केवलज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यग्मिथ्यात्व उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं, कोई संयमासंयम उत्पन्न करते हैं, और कोई संयम उत्पन्न करते हैं । वे न बलदेवत्व उत्पन्न करते, न वासुदेवत्व, न चक्रवर्तित्व, और न तीर्थंकरत्व । कोई अन्तकृत् होकर सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाणको प्राप्त होते हैं, व सर्व दुःखोंके अन्त होनेका अनुभव करते हैं ॥ २१६ ॥

---

१ चतुर्थ्या उद्वर्तितास्तिर्यक्षूत्पन्नाः केचिन्मत्यादीन् षडुत्पादयन्ति, न सर्वे, नाप्यतोऽन्यत् । त. रा. ३, ६.

२ मनुष्येषूत्पन्नाः केचिन्मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलसम्यक्त्वसम्यङ्मिथ्यात्वसंयमासंयमसंयमानुत्पादयन्ति, न च बलदेववासुदेवचक्रधरतीर्थकरत्वान्युत्पादयन्ति, केचिदन्तकृतः सिध्यन्ति । त. रा. ३, ६. लभन्ते निर्वृतिं केचिच्चतुर्थ्या निर्गताः क्षितेः । न पुनः प्राप्नुवन्त्येव पवित्रां तीर्थकर्तृताम् ॥ तत्त्वार्थसार २, १५१. मणुस्सा णं भंते ! अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति कहिं उववज्जंति । किं नेरइएसु उववज्जंति जाव देवेसु उववज्जंति ? गोयमा ! नेरइएसु वि उववज्जंति जाव देवेसु वि उववज्जंति । ××× अत्थेगतिया सिज्झंति, बुज्झंति, मुच्चंति, परिनिव्वायंति, सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति । प्रज्ञापना ६, ६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अष्टकर्मणामंतं विनाशं कुर्वन्तीति अन्तकृतः । अंतकृतो भूत्वा सिज्झंति सिद्ध्यन्ति निस्तिष्ठंति निष्पद्यन्ते स्वरूपेणेत्यर्थः । बुज्झंति त्रिकालगोचरानन्तार्थव्यंजन-परिणामात्मकाशेषवस्तुतत्त्वं बुद्ध्यन्ति अवगच्छन्तीत्यर्थः ।

केवलज्ञाने समुत्पन्नेऽपि सर्वं न जानातीति कपिलो ब्रूते । तन्न, तन्निराकरणार्थं बुद्ध्यन्त इत्युच्यते । मोक्षो हि नाम बन्धपूर्वकः, बन्धश्च[1] न जीवस्यास्ति, अमूर्तत्वा-न्नित्यत्वाच्चेति । तस्माज्जीवस्य न मोक्ष इति नैयायिक-वैशेषिक-सांख्य[2]-मीमांसकमतम् । एतन्निराकरणार्थं मुच्चंतीति प्रतिपादितम् । परिणिव्वाणयंति– अशेषबन्धमोक्षे सत्यपि न परिनिर्वान्ति, सुख-दुःखहेतुशुभाशुभकर्मणां तत्रासत्त्वादिति तार्किकयोर्मतं । तन्निराकरणार्थं परिनिर्वान्ति अनन्तसुखा भवन्तीत्युच्यते । यत्र सुखं तत्र निश्चयेन दुःखमप्यस्ति,

---

जो आठ कर्मोंका अन्त अर्थात् विनाश करते हैं वे अन्तकृत् कहलाते हैं । अन्तकृत् होकर सिद्ध होते हैं, निष्ठित होते हैं व अपने स्वरूपसे निष्पन्न होते हैं, ऐसा अर्थ जानना चाहिये । 'जानते हैं' अर्थात् त्रिकालगोचर अनन्त अर्थ और व्यंजन पर्यायात्मक अशेष वस्तुतत्त्वको जानते हैं व समझते हैं ।

कपिलका कहना है कि केवलज्ञान उत्पन्न होने पर भी सब वस्तुस्वरूपका ज्ञान नहीं होता । किन्तु ऐसा नहीं है, अतः इसीके निराकरण करनेके लिये 'बुद्ध होते हैं' यह पद कहा गया है । मोक्ष बन्धपूर्वक ही होता है, किन्तु जीवके तो बन्ध ही नहीं है, क्योंकि जीव अमूर्त है और नित्य है । अतएव जीवका मोक्ष नहीं होता । ऐसा नैयायिक, वैशेषिक, सांख्य और मीमांसकोंका मत है । इसी मतके निराकरणार्थ 'मुक्त होते हैं' ऐसा प्रतिपादित किया गया है । 'परिनिर्वाणको प्राप्त होते हैं' इस पद की सार्थकता इस प्रकार है— अशेष बन्धका मोक्ष हो जाने पर भी जीव परिनिर्वाणको प्राप्त नहीं होते, क्योंकि उस मुक्त अवस्थामें सुखके हेतु शुभकर्म और दुखके हेतु अशुभ कर्मोंका अभाव पाया जाता है, ऐसा दोनों तार्किकोंका मत है । इसी तार्किकमतके निराकरणार्थ 'परिनिर्वाणको प्राप्त होते हैं' अर्थात् अनन्त सुखका उपभोग करनेवाले होते हैं, ऐसा कहा गया है । जहां सुख है वहां निश्चयसे दुख भी है, क्योंकि सुखका दुखके साथ अविनाभावी

---

१ प्रतिषु 'बन्धकश्च' इति पाठः ।

२ स्यादेतत् पुरुषश्चेदगुणोऽपरिणामी कथमस्य मोक्षः । मुचेर्बन्धनविश्लेषार्थत्वात् सवासनक्लेशकर्माशयानाञ्च बन्धनसंज्ञितानां पुरुषे अपरिणामिन्यसम्भवात् । अतएवास्य न संसारः प्रेत्यभावापरनामास्ति, निष्क्रियत्वात् । तस्मात्पुरुषविमोक्षार्थमिति रिक्तं वचः । इतीमामाशङ्कामुपसंहारव्याजेनाभ्युपगच्छन्नपाकरोति– तस्मान्न बध्यतेऽद्धा न मुच्यते नापि संसरति कश्चित् । संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः ॥ ६२ ॥ सांख्यतत्वकौमुदी.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुःखाविनाभावित्वात्सुखस्येति तार्किकयोरेव मतं, तन्निराकरणार्थं सव्वदुःखाणमंतं परिविजाणंतीति उच्यते । सर्वदुःखानामन्तं पर्यवसानं परिविजानन्ति गच्छन्तीत्यर्थः । कुतः ? दुःखहेतुकर्मणां विनष्टत्वात्, स्वास्थ्यलक्षणस्य[1] सुखस्य जीवस्य स्वाभाविकत्वादिति)

तिसु उवरिमासु पुढवीसु णेरइया णिरयादो णेरइया उव्वट्टिद-समाणा कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥ २१७ ॥

दुवे गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेव ॥२१८॥

तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा केइं छ उप्पाएंति ॥२१९॥

सव्वमेदं सुगमं ।

सम्बन्ध है, ऐसा दोनों ही तार्किकोंका मत है। उसी मतके निराकरणार्थ 'सर्व दुखोंके अन्त होनेका अनुभव करते हैं' ऐसा कहा गया है। इसका अर्थ यह है कि वे जीव समस्त दुःखोंके अन्त अर्थात् अवसानको पहुंच जाते हैं, क्योंकि उनके दुःखके हेतुभूत कर्मोंका विनाश हो जाता है और स्वास्थ्यलक्षण सुख जो जीवका स्वाभाविक गुण है वह प्रकट हो जाता है।

ऊपरकी तीन पृथिवियोंके नारकी जीव नरकसे नारकी होते हुए निकलकर कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥ २१७ ॥

ऊपरकी तीन पृथिवियोंसे निकलनेवाले नारकी जीव दो गतियोंमें आते हैं— तिर्यंचगति और मनुष्यगति ॥ २१८ ॥

ऊपरकी तीन पृथिवियोंसे निकलकर तिर्यंचोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यंच कोई छह उत्पन्न करते हैं ॥ २१९ ॥

यह सब सुगम है।

---

१ स्वास्थ्यं यदात्यन्तिकमेष पुंसां स्वार्थो न भोगः परिभङ्गुरात्मा । तृषोऽनुषङ्गान्न च तापशान्तिरितीदमाख्यद् भगवान् सुपार्श्वः ॥ बृहत्स्वयंभूस्तोत्र ३१. आत्मोत्थमात्मना साध्यमव्याबाधमनुत्तरम् । अनन्तं स्वास्थ्यमानन्दमतृष्णमपवर्गजम् ॥ क्षत्रचूडामणि ७, १२. आत्मा ज्ञातृतया ज्ञानं सम्यक्त्वं चरितं हि सः । स्वस्थो दर्शनचारित्रमोहाभ्यामनुपप्लुतः ॥ तत्त्वार्थसार, उपसंहार, ७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणुसेसु उववण्णल्लया मणुस्सा केइमेक्कारस उप्पाएंति– केइमाभिणिबोहियणाणमुप्पाएंति, केइं सुदणाणमुप्पाएंति, केइं मणपज्जवणाणमुप्पाएंति, केइमोहिणाणमुप्पाएंति, केइं केवलणाणमुप्पाएंति, केइं सम्मामिच्छत्तमुप्पाएंति, केइं सम्मत्तमुप्पाएंति, केइं संजमासंजममुप्पाएंति, केइं संजममुप्पाएंति । णो बलदेवत्तं णो वासुदेवत्तमुप्पाएंति, णो चक्कवट्टित्तमुप्पाएंति[1] । केइं तित्थयरत्तमुप्पाएंति, केइमंतयडा होदूण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाणयंति सव्वदुःखाणमंतं परिविजाणंति ॥ २२० ॥

सुगममेदं ।

तिरिक्खा मणुसा तिरिक्ख-मणुसेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥ २२१ ॥

ऊपरकी तीन पृथिवियोंसे निकलकर मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्य कोई ग्यारह उत्पन्न करते हैं— कोई आभिनिबोधिक ज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई श्रुतज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई अवधिज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई केवलज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यग्मिथ्यात्व उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं, कोई संयमासंयम उत्पन्न करते हैं, और कोई संयम उत्पन्न करते हैं। किन्तु वे जीव न बलदेवत्व उत्पन्न करते, न वासुदेवत्व उत्पन्न करते, और न चक्रवर्तित्व उत्पन्न करते हैं। कोई तीर्थंकरत्व उत्पन्न करते हैं, कोई अन्तकृत् होकर सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाणको प्राप्त होते हैं, व सर्व दुःखोंके अन्त होनेका अनुभव करते हैं ॥ २२० ॥

यह सूत्र सुगम है।

तिर्यंच व मनुष्य, तिर्यंच व मनुष्य पर्यायोंसे मरण करके, कितनी गतियोंमें जाते हैं ? ॥ २२१ ॥

---

१ निर्गत्य नारका न स्युर्बल-केशव-चक्रिणः ॥ तत्त्वार्थसार २, १५२.

२ उपरि तिसृभ्य उद्वर्तितास्तिर्यक्षु जाताः केचित्षडुत्पादयन्ति । मनुष्येषूत्पन्नाः केचिन्मतिश्रुतावधि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चत्तारि गदीओ गच्छंति णिरयगदिं तिरिक्खगदिं मणुसगदिं देवगदिं चेदि ॥ २२२ ॥

णिरय-देवेसु उववण्णल्लया णिरय-देवा केइं पंचमुप्पाएंति— केइमाभिणिबोहियणाणमुप्पाएंति, केइं सुदणाणमुप्पाएंति, केइमोहिणाणमुप्पाएंति, केइं सम्मामिच्छत्तमुप्पाएंति, केइं सम्मत्तमुप्पाएंति ॥ २२३ ॥

सुगममेदं ।

तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा मणुसा केइं छ उप्पाएंति ॥ २२४ ॥

एदं पि सुगमं ।

मणुसेसु उववण्णल्लया तिरिक्ख-मणुस्सा जहा चउत्थपुढवीए भंगो ॥ २२५ ॥

तिर्यंच व मनुष्य मरण करके चारों गतियोंमें जाते हैं— नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति ॥ २२२ ॥

तिर्यंच व मनुष्य मरण करके नरक व देवोंमें उत्पन्न होनेवाले नारकी व देव कोई पांच उत्पन्न करते हैं— कोई आभिनिबोधिक ज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई श्रुतज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई अवधिज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यग्मिथ्यात्व उत्पन्न करते हैं, और कोई सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं ॥ २२३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

तिर्यंचोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यंच व मनुष्य कोई छह उत्पन्न करते हैं ॥२२४॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यंच व मनुष्य चतुर्थ पृथिवीसे निकलकर मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके समान गुण उत्पन्न करते हैं ॥ २२५ ॥

मनःपर्ययकेवलसम्यक्त्वसम्यङ्मिथ्यात्वसंयमासंयमसंयमानुत्पादयन्ति, न च बलदेववासुदेवचक्रधरत्वान्युत्पादयन्ति, केचित्तीर्थकरत्वमुत्पादयन्ति, अपरे कर्माष्टकान्तकराः सिध्यन्ति । त. रा. ३, ६.

१ संखेज्जाउवमाणा मणुवा णर-तिरिय-देव-णिरएसुं । सव्वेसुं जायंते सिद्धगदीओ वि पावंति ॥ ते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एदं पि सुगमं ।

देवगदीए देवा देवेहि उव्वट्टिद-चुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥ २२६ ॥

दुवे गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेदि ॥२२७॥

तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा केइं छ उप्पाएंति ॥२२८॥

सव्वमेदं सुगमं ।

मणुसेसु उववण्णल्लया मणुसा केइं सव्वं उप्पाएंति— केइमाभिणिबोहियणाणमुप्पाएंति, केइं सुदणाणमुप्पाएंति, केइमोहिणाणमुप्पाएंति, केइं मणपज्जवणाणमुप्पाएंति, केइं केवलणाणमुप्पाएंति, केइं सम्मामिच्छत्तमुप्पाएंति, केइं सम्मत्तमुप्पाएंति, केइं संजमासंजम-

---

यह सूत्र भी सुगम है ।

देवगतिमें देव देवपर्यायों सहित उद्वर्तित और च्युत होकर कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥ २२६ ॥

देवगतिसे निकले हुए जीव दो गतियोंमें आते हैं— तिर्यंचगति और मनुष्यगति ॥ २२७ ॥

देवगतिसे निकलकर तिर्यंचोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यंच कोई छह उत्पन्न करते हैं ॥ २२८ ॥

ये सब सूत्र सुगम हैं ।

देवगतिसे निकलकर मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्य कोई सर्व गुणोंको उत्पन्न करते हैं— कोई आभिनिबोधिक ज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई श्रुतज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई अवधिज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई केवलज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यग्मिथ्यात्व उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यक्त्व

संखातीदाऊ जायंते केइ जाव ईसाणं । ण हु होंति सलायणरा जम्मम्मि अणंतरे केई ॥ ति. प. २९४४-२९४५.
शलाकापुरुषा नैव सन्त्यनन्तरजन्मनि । तिर्यञ्चो मानुषाश्चैव भाज्याः सिद्धगतौ तु ते । तत्त्वार्थसार २, १६१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुप्पाएंति, केइं संजमं उप्पाएंति, केइं बलदेवत्तमुप्पाएंति, केइं वासुदेवत्तमुप्पाएंति, केइं चक्कवट्टित्तमुप्पाएंति, केइं तित्थयरत्तमुप्पाएंति, केइमंतयडा होदूण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाणयंति सव्वदुःखाणमंतं परिविजाणंति ॥ २२९ ॥

सुगममेदं ।

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवा देवीओ सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवीओ च देवा देवेहि उव्वट्टिद-चुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥ २३० ॥

दुवे गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेव ॥ २३१ ॥

उत्पन्न करते हैं, कोई संयमासंयम उत्पन्न करते हैं, कोई संयम उत्पन्न करते हैं, कोई बलदेवत्व उत्पन्न करते हैं, कोई वासुदेवत्व उत्पन्न करते हैं, कोई चक्रवर्तित्व उत्पन्न करते हैं, कोई तीर्थंकरत्व उत्पन्न करते हैं, कोई अन्तकृत् होकर सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाणको प्राप्त होते हैं, सर्व दुखोंके अन्तका अनुभव करते हैं ॥ २२९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

भवनवासी, वानव्यन्तर व ज्योतिषी देव और देवियां तथा सौधर्म और ईशान कल्पवासी देवियां, ये देव देवपर्यायोंसे उद्वर्तित और च्युत होकर कितनी गतियोंमें आते हैं ॥ २३० ॥

उक्त भवनवासी आदि देव और देवियां दो गतियोंमें आते हैं— तिर्यंचगति और मनुष्यगति ॥ २३१ ॥

---

१ संवुडे णं भंते अणगारे सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिनिव्वाइ सव्वदुक्खाणमंतं करेइ, से केणट्ठेणं सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिनिव्वाइ सव्वदुक्खाणमंतं करेइ ? गोयमा, संवुडे अणगारे आउयवज्जाओ सत्तकम्मपगडीओ घणियबंधणबद्धाओ सिढिलबंधणबद्धाओ पकरेइ, दीहकालट्ठिईयाओ हस्सकालट्ठिइयाओ पकरेइ, तिव्वाणुभावाओ मंदाणुभावाओ पकरेइ, बहुप्पएसग्गाओ अप्पपएसग्गाओ पकरेइ, आउयं च णं कम्मं ण बंधइ, अस्सायावेयणिज्जं च णं कम्मं नो भुज्जो भुज्जो उवचिणाइ, अणाइयं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतारं वीइवयइ । से एएणट्ठेणं गोयमा, एवं वुच्चइ– संवुडे अणगारे सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिनिव्वाइ सव्वदुक्खाणमंतं करेइ । व्याख्याप्रज्ञप्ति १, १, १९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा केइं छ उप्पाएंति ॥२३२॥

सव्वमेदं सुगमं ।

मणुसेसु उववण्णल्लया मणुसा केइं दस उप्पाएंति — केइमाभिणिबोहियणाणमुप्पाएंति, केइं सुदणाणमुप्पाएंति, केइमोहिणाणमुप्पाएंति, केइं मणपज्जवणाणमुप्पाएंति, केइं केवलणाणमुप्पाएंति, केइं सम्मामिच्छत्तमुप्पाएंति, केइं सम्मत्तमुप्पाएंति, केइं संजमासंजममुप्पाएंति, केइं संजममुप्पाएंति। णो बलदेवत्तं उप्पाएंति, णो वासुदेवत्तमुप्पाएंति, णो चक्कवट्टित्तमुप्पाएंति, णो तित्थयरत्तमुप्पाएंति । केइमंतयडा होदूण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाणयंति सव्वदुःखाणमंतं परिविजाणंति[१] ॥ २३३ ॥

उक्त भवनवासी आदि देव-देवियां तिर्यंचोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यंच होकर कोई छह उत्पन्न करते हैं ॥ २३२ ॥

ये सब सूत्र सुगम हैं ।

उक्त भवनवासी आदि देव-देवियां मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्य होकर कोई दश उत्पन्न करते हैं— कोई आभिनिबोधिक ज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई श्रुतज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई अवधिज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई केवलज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यग्मिथ्यात्व उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं, कोई संयमासंयम उत्पन्न करते हैं, और कोई संयम उत्पन्न करते हैं । किन्तु वे न बलदेवत्व उत्पन्न करते, न वासुदेवत्व उत्पन्न करते, न चक्रवर्तित्व उत्पन्न करते और न तीर्थंकरत्व उत्पन्न करते हैं । कोई अन्तकृत् होकर सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाणको प्राप्त होते हैं, सर्व दुखोंके अन्त होनेका अनुभव करते हैं ॥ २३३ ॥

---

१ णिक्कंता भवणादो ××× सलागपुरिसा ण होंति कइयाइं ॥ ति. प. ३, १९५-१९६. शलाकापुरुषा न स्युर्भौमज्योतिष्कभावनाः । अनन्तरभवे तेषां भाज्या भवति निर्वृतिः ॥ ततः परं विकल्प्यन्ते यावद् ग्रैवेयकं सुराः । शलाकापुरुषत्वेन निर्वाणगमनेन च ॥ तत्त्वार्थसार २, १७१-१७२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीपो यथा निर्वृतिमभ्युपेतो[1] नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्[2] ।
दिशन्न कांचिद्विदिशन्न कांचित्स्नेहक्षयात्केवलमेति शान्तिम् ॥ २ ॥

जीवस्तथा निर्वृतिमभ्युपेतो नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्[2] ।
दिशं न कांचिद्विदिशं न कांचित्क्लेशक्षयात्केवलमेति शान्तिम्[3] ॥ ३ ॥

इति स्वरूपविनाशो मोक्ष इति बौद्धैरभाणि[4], तन्मतनिरासार्थं सिद्ध्यन्तीत्युच्यते । सेसं सुगमं ।

सोहम्मीसाण जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवा जधा देवगदि-भंगो[5] ॥ २३४ ॥

सुगममेदं ।

" जिस प्रकार दीपक जब बुझता है तब वह न तो पृथिवीकी ओर जाता न आकाशकी ओर, न किसी दिशाको जाता है, न विदिशाको, किन्तु तैलके क्षय होनेसे केवल शान्त हो जाता है, उसी प्रकार निर्वृतिको प्राप्त जीव न पृथिवीकी ओर जाता न आकाशकी ओर, न किसी दिशाको जाता न विदिशाको, किन्तु क्लेशके क्षय हो जानेसे केवल शान्तिको प्राप्त होता है ॥ २–३ ॥

इस प्रकार स्वरूपके विनाशका नाम ही मोक्ष है, " ऐसा बौद्धोंका कहना है। इसी मतके निराकरणार्थ सूत्रमें 'सिद्ध होते हैं' ऐसा कहा गया है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

सौधर्म-ईशानसे लेकर शतार-सहस्रार तकके देवोंकी गति सामान्य देवगतिके समान है ॥ २३४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

---

१ अप्रतौ '-मभ्युपैति ' इति पाठः ।

२ प्रतिषु ' सान्तरिक्षम् ' इति पाठः ।

३ सौन्दरानन्द १६, २८–२९.

४ प्रदीपनिर्वाणकल्पमात्मनिर्वाणमिति च तस्य खरविषाणवत्कल्पना तैरेवाहत्य निरूपिता । स. सि. १, १. रूपवेदनासंज्ञासंस्कारविज्ञानपंचकस्कंधनिरोधादभावो मोक्षः ...तत्र । त. रा. १, १. नवानामात्मगुणानां बुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्माधर्मसंस्काराणां निर्मूलोच्छेदोऽपवर्ग इत्युक्तं भवति । ननु तस्यामवस्थायां कीदृगात्मावशिष्यते । स्वरूपैकप्रतिष्ठानः परित्यक्तोऽखिलैर्गुणैः ॥ न्यायमंजरी पृ. ५०८.

५ सोहम्मादी देवा भज्जा हु सलागपुरिसणिवहेसुं । णिस्सेयसगमणेसुं सव्वे वि अणंतरे जम्मे ॥ णवरि विसेसो सव्वट्ठसिद्धिठाणदो विच्चुदा देवा ॥ भज्जा सलागपुरिसा णिव्वाणं जंति णियमेणं ॥ ति. प. ८, ६८२–६८३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आणदादि जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवा देवेहि चुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥ २३५ ॥

एक्कं हि चेव मणुसगदिमागच्छंति ॥ २३६ ॥

सुगममेदं ।

मणुस्सेसु उववण्णल्लया मणुस्सा केइं सव्वे उप्पाएंति ॥२३७॥

कुदो ? विरोहाभावादो । सेसं सुगमं ।

अणुदिस जाव अवराइदविमाणवासियदेवा देवेहि चुदसमाणा कदि गदीयो आगच्छंति ? ॥ २३८ ॥

एक्कं हि चेव मणुसगदिमागच्छंति ॥ २३९ ॥

मणुसेसु उववण्णल्लया मणुस्सा तेसिमाभिणिबोहियणाणं सुदणाणं णियमा अत्थि, ओहिणाणं सिया अत्थि, सिया णत्थि । केइं

आनत आदिसे लगाकर नव ग्रैवेयकविमानवासी देव देवपर्यायोंसे च्युत होकर कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥ २३५ ॥

उपर्युक्त आनतादि नव ग्रैवेयकविमानवासी देव केवल एक मनुष्यगतिमें ही आते हैं ॥ २३६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आनतादि नव ग्रैवेयकविमानवासी उपर्युक्त देव च्युत होकर मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्य कोई सर्व गुण उत्पन्न करते हैं ॥ २३७ ॥

क्योंकि, उनके सर्व गुण उत्पन्न करनेमें कोई विरोध नहीं है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

अनुदिशसे लेकर अपराजित विमानवासी देव देवपर्यायोंसे च्युत होकर कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥ २३८ ॥

अनुदिशादि उपर्युक्त विमानवासी देव च्युत होकर केवल एक मनुष्यगतिमें ही आते हैं ॥ २३९ ॥

अनुदिशादि विमानोंके देव च्युत होकर मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्योंके आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान नियमसे होता है । अवधिज्ञान होता भी है और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणपज्जवणाणमुप्पाएंति, केवलणाणमुप्पाएंति । सम्मामिच्छत्तं णत्थि, सम्मत्तं णियमा अत्थि । केइं संजमासंजममुप्पाएंति, संजमं णियमा उप्पाएंति । केइं बलदेवत्तमुप्पाएंति, णो वासुदेवत्तमुप्पाएंति । केइं चक्कवट्टित्तमुप्पाएंति, केइं तित्थयरत्तमुप्पाएंति, केइमंतयडा होदूण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाणयंति सव्वदुःखाणमंतं परिजाणंति[1] ॥ २४० ॥

मदि-सुदणाणं व ओहिणाणं णियमा किण्ण होदि त्ति ? ण एस दोसो, अणणुगामिणो ओहिणाणस्स अणुगमाभावादो । ण च तत्थ सव्वेसिमोहिणाणमणुगामी चेव, अणणुगामिणो वि ओहिणाणस्स तत्थ संभवादो । देवा देवभावादो, देवेहिंतो देवणिकायादो । सेसं सुगमं ।

नहीं भी होता है । कोई मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई केवलज्ञान उत्पन्न करते हैं । उनके सम्यग्मिथ्यात्व नहीं होता, किन्तु सम्यक्त्व नियमसे होता है । कोई संयमासंयमको उत्पन्न करते हैं, संयमको नियमसे उत्पन्न करते हैं । कोई बलदेवत्व उत्पन्न करते हैं, किन्तु वासुदेवत्व उत्पन्न नहीं करते । कोई चक्रवर्तित्व उत्पन्न करते हैं, कोई तीर्थकरत्व उत्पन्न करते हैं, कोई अन्तकृत् होकर सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाणको प्राप्त होते हैं, सर्व दुखोंके अन्त होनेका अनुभव करते हैं ॥ २४० ॥

शंका—अनुदिशादि विमानोंसे च्युत होकर मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके मतिज्ञान और श्रुतज्ञानके समान अवधिज्ञान भी नियमसे क्यों नहीं होता ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, अननुगामी अवधिज्ञानके अनुगमका अभाव है । और अनुदिशादि विमानोंमें सभीका अवधिज्ञान अनुगामी होता नहीं है, क्योंकि वहां अननुगामी अवधिज्ञानका भी होना संभव है ।

सूत्रमें जो 'देवा' शब्द आया है उसका अभिप्राय है 'देवभावसे' और जो 'देवेहिंतो' शब्द आया है उसका अभिप्राय है 'देवनिकायसे'। शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

---

१ तीर्थेशरामचक्रित्वे निर्वाणगमनेन च । च्युताः सन्तो विकल्प्यन्तेऽनुदिशानुत्तरामराः ॥ तत्त्वार्थसार २, १७२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा देवेहि चुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥ २४१ ॥

एक्कं हि चेव मणुसगदिमागच्छंति ॥ २४२ ॥

मणुसेसु उववण्णल्लया मणुसा तेसिमाभिणिबोहियणाणं सुदणाणं ओहिणाणं च णियमा अत्थि, केइं मणपज्जवणाणमुप्पाएंति, केवलणाणं णियमा उप्पाएंति । सम्मामिच्छत्तं णत्थि, सम्मत्तं णियमा अत्थि । केइं संजमासंजममुप्पाएंति । संजमं णियमा उप्पाएंति । केइं बलदेवत्तमुप्पाएंति, णो वासुदेवत्तमुप्पाएंति । केइं चक्कवट्टित्तमुप्पाएंति, केइं तित्थयरत्तमुप्पाएंति । सव्वे ते णियमा अंतयडा होदूण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाणयंति सव्वदुःखाणमंतं परिविजाणंति ॥ २४३ ॥

सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देव देवपर्यायोंसे च्युत होकर कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥ २४१ ॥

सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देव च्युत होकर केवल एक मनुष्यगतिमें ही आते हैं ॥ २४२ ॥

सर्वार्थसिद्धि विमानसे च्युत होकर मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्योंके आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान नियमसे होता है । कोई मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न करते हैं । केवलज्ञान वे नियमसे उत्पन्न करते हैं । उनके सम्याग्मिथ्यात्व नहीं होता, किन्तु सम्यक्त्व नियमसे होता है । कोई संयमासंयम उत्पन्न करते हैं, किन्तु संयम नियमसे उत्पन्न करते हैं । कोई बलदेवत्व उत्पन्न करते हैं, किन्तु वासुदेवत्व उत्पन्न नहीं करते । कोई चक्रवर्तित्व उत्पन्न करते हैं, कोई तीर्थकरत्व उत्पन्न करते हैं । वे सब नियमसे अन्तकृत् होकर सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाणको प्राप्त होते हैं और सर्व दुखोंके अन्त होनेका अनुभव करते हैं ॥ २४३ ॥

---

१ भाज्यास्तीर्थेशचक्रित्वे च्युताः सर्वार्थसिद्धितः । विकल्प्या रामभावेऽपि सिद्ध्यन्ति नियमात्पुनः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किमट्ठं ण तेसिं वासुदेवत्तं ? ण, तस्स मिच्छत्ताविणाभाविणिदाणपुरंगमत्तादो । ओहिणाणं णियमा अत्थि त्ति कधं ? ण, तेसिं अणणुगामि-हायमाण-पडिवादिओहिणाणाणमभावादो[1] । सम्मत्तसयलकज्जादो पत्तप्पसरूवा सिज्झंति । अणवगयत्थाभावादो अण्णाणकणस्स वि अभावादो वा, सिद्धाणं बुद्धिअभावपदुप्पायअदुण्णयणिवारणट्ठं वा, अप्पाणं चेव जाणइ सिद्धो ण बज्झट्ठमिदि दुण्णयणिवारणट्ठं वा बुज्झंति त्ति उत्तं । अमुत्तस्स मुत्तेहि अमुत्तेहि वा बंधो णत्थि त्ति मोक्खाभावमिच्छत्तदुण्णयणिवारणट्ठं मुच्चंति त्ति उत्तं । असरीरस्स इंदियाणमभावादो विसयसेवा णत्थि तदो तेसिं सुहं णत्थि

शंका— सर्वार्थसिद्धि विमानसे च्युत होकर मनुष्य होनेवाले जीवोंके वासुदेवत्व क्यों नहीं होता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वासुदेवत्वकी उत्पत्तिमें उससे पूर्व मिथ्यात्वके अविनाभावी निदानका होना अवश्यंभावी है।

शंका - उनके अवधिज्ञान नियमसे होता है, सो कैसे ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उनके अननुगामी, हीयमान व प्रतिपाती अवधिज्ञानोंका अभाव है।

सकल कार्योंको समाप्त कर लेने अर्थात् कृतकृत्यसे हो जानेसे सर्वार्थसिद्धि विमानसे आये हुए मनुष्य आत्मस्वरूपको प्राप्त करके सिद्ध होते हैं। अनवगत पदार्थोंके अभावसे अथवा अज्ञानके कणमात्रके भी अभावसे, अथवा सिद्धोंके बुद्धि-अभावको उत्पन्न करनेवाले दुर्नयके निवारणार्थ, अथवा सिद्ध केवल आत्माको जानता है बाह्यार्थको नहीं जानता, ऐसे दुर्नयके निवारणार्थ सूत्रमें 'बुज्झंति' अर्थात् 'बुद्ध होते हैं' यह पद कहा गया है। 'अमूर्तका मूर्त अथवा अमूर्तोंके साथ बन्ध नहीं होता' ऐसा मोक्षके अभावसम्बन्धी मिथ्यात्वरूपी दुर्नयके निवारणार्थ 'मुच्चंति' अर्थात् 'मुक्त होते हैं' यह पद कहा गया है। 'जिसके शरीर नहीं है उसके इन्द्रियोंका भी अभाव होनेसे विषयसेवा नहीं हो सकती, अतएव मुक्त जीवोंके सुख नहीं है'

दक्षिणेन्द्रास्तथा लोकपाला लौकान्तिकाः शची । शक्रश्च नियमाच्च्युत्वा सर्वे ते यान्ति निर्वृतिम् ॥ तत्त्वार्थसार २, १७४-१७५.

१ प्रतिषु '-हायमाणस्स पडिवादि-' इति पाठः । वर्धमानो हीयमानः अवस्थितः अनवस्थितः अनुगामी अननुगामी अप्रतिपाती प्रतिपातीत्येतेऽष्टौ भेदा देशावधेर्भवन्ति । त. रा. १, २२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्ति भणंतदुण्णयणिवारणट्ठं परिणिव्वाणयंति त्ति उत्तं। संते सुहे दुक्खेण वि होदव्वं, अण्णहा सुहाणुववत्तीए इदि भणंतदुण्णयणिवारणट्ठं सव्वदुक्खाणमंतं परिविजाणंति त्ति उत्तं।

एवं चूलिया समत्ता।

जीवट्ठाणं समत्तं।

ऐसा कहनेवालोंके दुर्नयके निवारणार्थ 'परिणिव्वाणयंति' अर्थात् परिनिर्वाणको प्राप्त होते हैं, ऐसा कहा गया है। 'जहां सुख है, तहां दुख भी होना चाहिये, नहीं तो सुखकी उपपत्ति नहीं बन सकती' ऐसा कहनेवालोंके दुर्नयके निवारणार्थ 'सर्व दुःखोंके अन्त होनेका अनुभव करते हैं' ऐसा कहा गया है।

इस प्रकार चूलिका समाप्त हुई।

जीवस्थान समाप्त।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

परिशिष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चूलिया-सुत्ताणि

पढमा पयडिसमुक्कित्तणचूलिया

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	कदि काओ पयडीओ बंधदि, केवडि कालट्ठिदिएहि कम्मेहि सम्मत्तं लब्भदि वा ण लब्भदि वा, केवचिरेण कालेण वा कदि भाए वा करेदि मिच्छत्तं, उवसामणा वा खवणा वा केसु व खेत्तेसु कस्स व मूले केवडियं वा दंसणमोहणीयं कम्मं खवेंतस्स चारित्तं वा सपुण्णं पडिवज्जंतस्स।	१
२	कदि काओ पगडीओ बंधदि त्ति जं पदं तस्स विहासा।	४
३	इदाणिं पगडिसमुक्कित्तणं कस्सामो।	५
४	तं जहा।	६
५	णाणावरणीयं।	,,
६	दंसणावरणीयं।	९
७	वेदणीयं।	१०
८	मोहणीयं।	११
९	आउअं।	१२
१०	णामं।	१३
११	गोदं।	,,
१२	अंतरायं चेदि।	,,
१३	णाणावरणीयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ।	१४
१४	आभिणिबोहियणाणावरणीयं सुदणाणावरणीयं ओहिणाणावरणीयं मणपज्जवणाणावरणीयं केवलणाणावरणीयं चेदि।	१५
१५	दंसणावरणीयस्स कम्मस्स णव पयडीओ।	३१
१६	णिद्दाणिद्दा पयलापयला थीणणिद्धी णिद्दा पयला य, चक्खुदंसणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं ओहिदंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं चेदि।	,,
१७	वेदणीयस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ।	३४
१८	सादावेदणीयं चेव असादावेदणीयं चेव।	३५
१९	मोहणीयस्स कम्मस्स अट्ठावीसं पयडीओ।	३७
२०	जं तं मोहणीयं कम्मं तं दुविहं, दंसणमोहणीयं चारित्तमोहणीयं चेव।	,,
२१	जं तं दंसणमोहणीयं कम्मं तं बंधादो एयविहं, तस्स संतकम्मं पुण तिविहं सम्मत्तं मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं चेदि।	३८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२२	जं तं चारित्तमोहणीयं कम्मं तं दुविहं, कसायवेदणीयं चेव णोकसायवेदणीयं चेव।	४०
२३	जं तं कसायवेदणीयं कम्मं तं सोलसविहं, अणंताणुबंधिकोह-माण-माया-लोहं, अपच्चक्खाणावरणीयकोह-माण-माया-लोहं, पच्चक्खाणावरणीयकोह–माण–माया-लोहं, कोहसंजलणं, माणसंजलणं, मायासंजलणं लोहसंजलणं चेदि।	,,
२४	जं तं णोकसायवेदणीयं कम्मं तं णवविहं, इत्थिवेदं पुरिसवेदं णवुंसयवेदं हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा चेदि।	४५
२५	आउगस्स कम्मस्स चत्तारि पयडीओ।	४८
२६	णिरयाऊ तिरिक्खाऊ मणुस्साऊ देवाऊ चेदि।	,,
२७	णामस्स कम्मस्स बादालीसं पिंडपयडीणामाइं।	४९
२८	गदिणामं जादिणामं सरीरणामं सरीरबंधणणामं सरीरसंघादणामं सरीरसंठाणणामं सरीरअंगोवंगणामं सरीरसंघडणणामं वण्णणामं गंधणामं रसणामं फासणामं आणुपुव्वीणामं अगुरुअलहुवणामं उवघादणामं परघादणामं उस्सासणामं आदावणामं उज्जोवणामं विहायगदिणामं तसणामं थावरणामं बादरणामं सुहुमणामं पज्जत्तणामं अपज्जत्तणामं पत्तेयसरीरणामं साधारणसरीरणामं थिरणामं अथिरणामं सुहणामं असुहणामं सुभगणामं दूभगणामं सुस्सरणामं दुस्सरणामं आदेज्जणामं अणादेज्जणामं जसकित्तिणामं अजसकित्तिणामं णिमिणणामं तित्थयरणामं चेदि।	५०
२९	जं तं गदिणामकम्मं तं चउव्विहं, णिरयगदिणामं तिरिक्खगदिणामं मणुसगदिणामं देवगदिणामं चेदि।	६७
३०	जं तं जादिणामकम्मं तं पंचविहं, एइंदियजादिणामकम्मं बीइंदियजादिणामकम्मं तीइंदियजादिणामकम्मं चउरिंदियजादिणामकम्मं पंचिंदियजादिणामकम्मं चेदि।	,,
३१	जं तं सरीरणामकम्मं तं पंचविहं, ओरालियसरीरणामं वेउव्वियसरीरणामं आहारसरीरणामं तेयासरीरणामं कम्मइयसरीरणामं चेदि।	६८
३२	जं तं सरीरबंधणणामकम्मं तं पंचविहं, ओरालियसरीरबंधणणामं वेउव्वियसरीरबंधणणामं आहारसरीरबंधणणामं तेजासरीर-	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	बंधणणामं कम्मइयसरीरबंधणणामं चेदि ।	७०
३३	जं तं सरीरसंघादणामकम्मं तं पंचविहं, ओरालियसरीरसंघादणामं वेउव्वियसरीरसंघादणामं आहारसरीरसंघादणामं तेयासरीरसंघादणामं कम्मइयसरीरसंघादणामं चेदि ।	,,
३४	जं तं सरीरसंठाणणामकम्मं तं छव्विहं, समचउरससरीरसंठाणणामं णग्गोहपरिमंडलसरीरसंठाणणामं सादियसरीरसंठाणणामं खुज्जसरीरसंठाणणामं वामणसरीरसंठाणणामं हुंडसरीरसंठाणणामं चेदि ।	,,
३५	जं तं सरीरअंगोवंगणामकम्मं तं तिविहं, ओरालियसरीरअंगोवंगणामं वेउव्वियसरीरअंगोवंगणामं आहारसरीरअंगोवंगणामं चेदि ।	७२
३६	जं तं सरीरसंघडणणामकम्मं तं छव्विहं, वज्जरिसहवइरणारायणसरीरसंघडणणामं वज्जणारायणसरीरसंघडणणामं णारायणसरीरसंघडणणामं अद्धणारायणसरीरसंघडणणामं खीलियसरीरसंघडणणामं असंपत्तसेवट्टसरीरसंघडणणामं चेदि ।	७३
३७	जं तं वण्णणामकम्मं तं पंचविहं, किण्हवण्णणामं णीलवण्णणामं रुहिरवण्णणामं हालिद्दवण्णणामं सुक्किलवण्णणामं चेदि ।	७४
३८	जं तं गंधणामकम्मं तं दुविहं, सुरहिगंधं दुरहिगंधं चेव ।	७४
३९	जं तं रसणामकम्मं तं पंचविहं, तित्तणामं कडुवणामं कसायणामं अंबणामं महुरणामं चेदि ।	७५
४०	जं तं पासणामकम्मं तं अट्ठविहं, कक्खडणामं मउवणामं गुरुअणामं लहुअणामं णिद्धणामं लुक्खणामं सीदणामं उसुणणामं चेदि ।	,,
४१	जं तं आणुपुव्वीणामकम्मं तं चउव्विहं, णिरयगदिपाओग्गाणुपुव्वीणामं तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वीणामं मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वीणामं देवगदिपाओग्गाणुपुव्वीणामं चेदि ।	७६
४२	अगुरुअलहुअणामं उवघादणामं परघादणामं उस्सासणामं आदावणामं उज्जोवणामं ।	,,
४३	जं तं विहायगइणामकम्मं तं दुविहं, पसत्थविहायोगदी अप्पसत्थविहायोगदी चेदि ।	,,
४४	तसणामं थावरणामं बादरणामं सुहुमणामं पज्जत्तणामं, एवं जाव णिमिण-तित्थयरणामं चेदि ।	७७
४५	गोदस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ, उच्चागोदं चेव णिच्चागोदं चेव ।	,,
४६	अंतराइयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ, दाणंतराइयं लाहंतराइयं भोगंतराइयं परिभोगंतराइयं वीरियंतराइयं चेदि ।	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विदिया ठाणसमुक्कित्तणचूलिया

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	एत्तो ट्ठाणसमुक्कित्तणं वण्णइस्सामो ।	७९
२	तं जहा ।	,,
३	तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा ।	८०
४	णाणावरणीयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ, आभिणिबोधियणाणावरणीयं सुदणाणावरणीयं ओधिणाणावरणीयं मणपज्जवणाणावरणीयं केवलणाणावरणीयं चेदि ।	,,
५	एदासिं पंचण्हं पयडीणं एक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ।	८१
६	तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा ।	,,
७	दंसणावरणीयस्स कम्मस्स तिण्णि ट्ठाणाणि, णवण्हं छण्हं चदुण्हं ट्ठाणमिदि ।	८२
८	तत्थ इमं णवण्हं ट्ठाणं, णिद्दाणिद्दा पयलापयला थीणगिद्धी णिद्दा पयला य चक्खुदंसणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं ओहिदंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं चेदि ।	८३
९	एदासिं णवण्हं पयडीणं एक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ।	,,
१०	तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा ।	८४
११	तत्थ इमं छण्हं ट्ठाणं, णिद्दाणिद्दा–पयलापयला–थीणगिद्धीओ वज्ज णिद्दा य पयला य चक्खुदंसणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीं ओहिदंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं चेदि ।	,,
१२	एदासिं छण्हं पयडीणं एक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ।	८५
१३	तं सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा ।	,,
१४	तत्थ इमं चदुण्हं ट्ठाणं, णिद्दा य पयला य वज्ज चक्खुदंसणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं ओधिदंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं चेदि ।	८६
१५	एदासिं चदुण्हं पयडीणं एक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ।	,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१६	तं संजदस्स ।	८६
१७	वेदणीयस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ, सादावेदणीयं चेव असादावेदणीयं चेव ।	८७
१८	एदासिं दोण्हं पयडीणं एक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ।	,,
१९	तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा ।	८८
२०	मोहणीयस्स कम्मस्स दस ट्ठाणाणि, बावीसाए एक्कवीसाए सत्तारसण्हं तेरसण्हं णवण्हं पंचण्हं चदुण्हं तिण्हं दोण्हं एक्किस्से ट्ठाणं चेदि ।	,,
२१	तत्थ इमं बावीसाए ट्ठाणं, मिच्छत्तं सोलस कसाया इत्थिवेद-पुरिसवेद-णउंसयवेद तिण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्सरदि-अरदिसोग दोण्हं जुगलाणमेक्कदरं भय-दुगुंछा । एदासिं बावीसाए पयडीणं एक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ।	८९
२२	तं मिच्छादिट्ठिस्स ।	९०
२३	तत्थ इमं एक्कवीसाए ट्ठाणं मिच्छत्तं णवुंसयवेदं वज्ज ।	९१
२४	सोलस कसाया इत्थिवेद पुरिसवेदो दोण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्सरदि-अरदिसोग दोण्हं जुगलाणमेक्कदरं भय-दुगुंछा । एदासिं एक्कवीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ।	९१
२५	तं सासणसम्मादिट्ठिस्स ।	९२
२६	तत्थ इमं सत्तरसण्हं ट्ठाणं अणंताणुबंधिकोह-माण-माया-लोभं इत्थिवेदं वज्ज ।	,,
२७	बारस कसाय पुरिसवेदो हस्सरदि-अरदिसोग दोण्हं जुगलाणमेक्कदरं भय-दुगुंछा । एदासिं सत्तरसण्हं पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ।	,,
२८	तं सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा ।	९३
२९	तत्थ इमं तेरसण्हं ट्ठाणं अपच्चक्खाणावरणीयकोध-माण माया-लोभं वज्ज ।	,,
३०	अट्ठ कसाया पुरिसवेदो हस्सरदि-अरदिसोग दोण्हं जुगलाणमेक्कदरं भय-दुगुंछा । एदासिं तेरसण्हं पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ।	९४
३१	तं संजदासंजदस्स ।	,,
३२	तत्थ इमं णवण्हं ट्ठाणं पच्चक्खाणावरणीय कोह-माण-माया-लोहं वज्ज ।	,,
३३	चदुसंजुलणा पुरिसवेदो हस्सरदि-अरदिसोग दोण्हं जुगलाण-	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	मेक्कदरं भय-दुगुंछा । एदासिं णवण्हं पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ।	९५
३४	तं संजदस्स ।	,,
३५	तत्थ इमं पंचण्हं ट्ठाणं हस्स-रदि-अरदिसोग-भयदुगुंछं वज्ज।	,,
३६	चदुसंजलणं पुरिसवेदो। एदासिं पंचण्हं पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ।	९६
३७	तं संजदस्स।	,,
३८	तत्थ इमं चदुण्हं ट्ठाणं पुरिसवेदं वज्ज ।	,,
३९	चदुसंजलणं, एदासिं चदुण्हं पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ।	९७
४०	तं संजदस्स ।	,,
४१	तत्थ इमं तिण्हं ट्ठाणं कोध-संजलणं वज्ज ।	,,
४२	माणसंजलणं मायासंजलणं लोभ-संजलणं, एदासिं तिण्हं पयडीण-मेकम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स।	,,
४३	तं संजदस्स ।	९८
४४	तत्थ इमं दोण्हं ट्ठाणं माण-संजलणं वज्ज ।	,,
४५	मायासंजलणं लोभसंजलणं, एदासिं दोण्हं पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ।	,,
४६	तं संजदस्स ।	,,
४७	तत्थ इमं एक्किस्से ट्ठाणं माय-संजलणं वज्ज ।	९८
४८	लोभसंजलणं, एदिस्से एक्किस्से पयडीए एक्कम्हि चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ।	,,
४९	तं संजदस्स ।	,,
५०	आउअस्स कमस्स चत्तारि पय-डीओ ।	,,
५१	णिरआउअं तिरिक्खाउअं मणु-साउअं देवाउअं चेदि ।	९९
५२	जं तं णिरयाउअं कम्मं बंध-माणस्स ।	,,
५३	तं मिच्छादिट्ठिस्स ।	१००
५४	जं तं तिरिक्खाउअं कम्मं बंध-माणस्स ।	,,
५५	तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासण-सम्मादिट्ठिस्स वा ।	,,
५६	जं तं मणुसाउअं कम्मं बंध-माणस्स ।	,,
५७	तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासण-सम्मादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मा-दिट्ठिस्स वा ।	,,
५८	जं तं देवाउअं कम्मं बंधमाणस्स।	१०१
५९	तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासण-सम्मादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मा-दिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा ।	,,
६०	णामस्स कम्मस्स अट्ठ ट्ठाणाणि, एकत्तीसाए तीसाए एगूणतीसाए	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र संख्या सूत्र पृष्ठ सूत्र संख्या सूत्र पृष्ठ

अट्ठवीसाए छव्वीसाए पणुवीसाए वीसाए एक्किस्से ट्ठाणं चेदि । १०१

६१ तत्थ इमं अट्ठावीसाए ट्ठाणं, णिरयगदी पंचिंदियजादी वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीरं हुंड-संठाणं वेउव्वियसरीरअंगोवंगं वण्ण-गंध-रस-फासं णिरयगइ-पाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासं अप्पसत्थविहायगई तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-अथिर-असुह-दुहव-दुस्सर-अणादेज्ज-अजसकित्ति-णिमिणणामं । एदासिं अट्ठावीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं । १०२

६२ णिरयगइं पंचिंदिय-पज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स । १०३

६३ तिरिक्खगदिणामाए पंच-ट्ठाणाणि, तीसाए एगूणतीसाए छव्वीसाए पणुवीसाए तेवीसाए ट्ठाणं चेदि । १०४

६४ तत्थ इमं पढमतीसाए ट्ठाणं, तिरिक्खगदी पंचिंदियजादी ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीरं छण्हं संट्ठाणाणमेक्कदरं ओरालिय-सरीरअंगोवंगं छण्हं संघडणाण-मेक्कदरं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अ-गुरुवलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-उज्जोवं दोण्हं विहाय-गदीणमेक्कदरं तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुभासुभाणमेक्कदरं सुहव-दुहवाणमेक्कदरं सुस्सर-दुस्सराण-मेक्कदरं आदेज्ज-अणादेज्जाण-मेक्कदरं जसकित्ति-अजसकित्ती-णमेक्कदरं णिमिणणामं च । एदासिं पढमतीसाए पयडीणं एक्कम्हि चेव ट्ठाणं । १०४

६५ तिरिक्खगदिं पंचिंदिय-पज्जत्त-उज्जोवसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स । १०५

६६ तत्थ इमं विदियत्तीसाए ट्ठाणं, तिरिक्खगदी पंचिंयजादी ओरा-लिय-तेजा-कम्मइयसरीरं हुंड-संठाणं वज्ज पंचण्हं संठाणाण-मेक्कदरं ओरालियसरीरअंगोवंगं असंपत्तसेवट्टसंघडणं वज्ज पंचण्हं संघडणाणमेक्कदरं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगदिपाओग्गा-णुपुव्वी अगुरुवलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सास-उज्जोवं दोण्हं विहायगदीणमेक्कदरं तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराण-मेक्कदरं सुहासुहाणमेक्कदरं सुहव-दुहवाणमेक्कदरं सुस्सर-दुस्स-राणमेक्कदरं आदेज्ज-अणादे-ज्जाणमेक्कदरं जसकित्ति-अजस-कित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामं । एदासिं विदियत्तीसाए पयडीणं एक्कम्हि चेव ट्ठाणं । १०६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
६७	तिरिक्खगदिं पंचिंदिय-पज्जत्त-उज्जोवसंजुत्तं बंधमाणस्स तं सासणसम्मादिट्ठिस्स।	१०७
६८	तत्थ इमं तदियतीसाए ट्ठाणं, तिरिक्खगदी बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय तिण्हं जादीणमेक्कदरं ओरालिय--तेया--कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं ओरालियसरीरअंगोवंगं असंपत्तसेवट्टसरीरसंघडणं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सास-उज्जोवं अप्पसत्थविहायगदी तस--बादर--पज्जत्त--पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुभासुभाणमेक्कदरं दुभग-दुस्सर-अणादेज्जं जसकित्ति अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामं। एदासिं तदियतीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं।	,,
६९	तिरिक्खगदिं विगलिंदिय-पज्जत्त-उज्जोव-संजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स।	११०
७०	तत्थ इमं पढमऊणतीसाए ट्ठाणं। जधा, पढमतीसाए भंगो। णवरि उज्जोवं वज्ज। एदासिं पढमऊणतीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं।	,,
७१	तिरिक्खगदिं पंचिंदिय-पज्जत्त-संजुत्तं (बंधमाणस्स तं) मिच्छादिट्ठिस्स।	११०
७२	तत्थ इमं विदियएगूणतीसाए ट्ठाणं। जधा, विदियत्तीसाए भंगो। णवरि उज्जोवं वज्ज। एदासिं विदीए ऊणतीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं।	१११
७३	तिरिक्खगदिं पंचिंदिय-पज्जत्त-संजुत्तं बंधमाणस्स तं सासणसम्मादिट्ठिस्स।	,,
७४	तत्थ इमं तदियऊणतीसाए ठाणं। जधा, तदियतीसाए भंगो। णवरि उज्जोवं वज्ज। एदासिं तदियऊणतीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं।	,,
७५	तिरिक्खगदिं विगलिंदिय-पज्जत्त-संजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स।	,,
७६	तत्थ इमं छव्वीसाए ट्ठाणं, तिरिक्खगदी एइंदियजादी ओरालिय-तेया--कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं वण्ण-गंध--रस--फासं तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ--उवघाद--परघाद--उस्सासं आदावुज्जोवाणमेक्कदरं (थावर-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं) सुहासुहाणमेक्कदरं दुहव-अणादेज्जं जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं, णिमिणणामं। एदासिं	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	छब्वीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं।	११२
७७	तिरिक्खगदिं एइंदिय-बादर-पज्जत्त-आदाउज्जोवाणमेक्कदर-संजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स।	११३
७८	तत्थ इमं पढमपणुवीसाए ट्ठाणं, तिरिक्खगदी एइंदियजादी ओरालिय-तेजा-कम्मइय-सरीरं हुंडसंठाणं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-थावरं बादर-सुहुमाणमेक्कदरं पज्जत्तं पत्तेग-साधारणसरीराणमेक्कदरं थिराथिराणमेक्कदरं सुहासुहाणमेक्कदरं दुहव-अणादेज्जं जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामं। एदासिं पढमपणुवीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं।	,,
७९	तिरिक्खगदिं एइंदिय-पज्जत्त-बादर-सुहुमाणमेक्कदरं संजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स।	११४
८०	तत्थ इमं विदियपणुवीसाए ट्ठाणं, तिरिक्खगदी बेइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदियचदुण्हं जादीणमेक्कदरं ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं ओरालियसरीरअंगोवंगं असंपत्तसेवट्ट-सरीरसंघडणं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-तस-बादर-अपज्जत्त-पत्तेयसरीर-अथिर-असुभ-दुहव-अणादेज्ज-अजसकित्ति-णिमिणं। एदासिं विदियपणुवीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं।	११४
८१	तिरिक्खगदिं तस-अपज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स।	११५
८२	तत्थ इमं तेवीसाए ट्ठाणं, तिरिक्खगदी एइंदियजादी ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीरं हुंड-संठाणं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-थावरं बादर-सुहुमाणमेक्कदरं अपज्जत्तं पत्तेय-साधारणसरीराणमेक्कदरं अथिर-असुह-दुहव-अणादेज्ज-अजस-कित्ति-णिमिणं। एदासिं तेवीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं।	११६
८३	तिरिक्खगदिं एइंदिय-अपज्जत्त-बादर-सुहुमाणमेक्कदरसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स।	,,
८४	मणुसगदिणामाए तिण्णि ट्ठाणाणि, तीसाए एगूणतीसाए पणुवीसाए ट्ठाणं चेदि।	११७
८५	तत्थ इमं तीसाए ट्ठाणं, मणुसगदी पंचिंदियजादी ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीरं समचउरस-संठाणं ओरालियसरीरअंगोवंगं	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	वज्जरिसहसंघडणं वण्ण-गंध-रस-फासं मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहाय-गदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेय-सरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुहासुहाणमेक्कदरं सुभग-सुस्सुर-आदेज्जं जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणं तित्थयरं । एदासिं तीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ।	११७
८६	मणुसगदिं पंचिंदिय तित्थयर-संजुत्तं बंधमाणस्स तं असंजद-सम्मादिट्ठिस्स ।	११८
८७	तत्थ इमं पढमएगूणतीसाए ट्ठाणं । जधा, तीसाए भंगो । णवरि विसेसो तित्थयरं वज्ज । एदासिं पढमएगूणतीसाए पयडीण-मेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ।	,,
८८	मणुसगदिं पंचिंदिय-पज्जत्त-संजुत्तं बंधमाणस्स तं सम्मा-मिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मा-दिट्ठिस्स वा ।	११९
८९	तत्थ इमं विदियाए एगूणतीसाए ट्ठाणं, मणुसगदी पंचिंदिय-जादी ओरालिय-तेजा-कम्मइय-सरीरं हुंडसंठाणं वज्ज पंचण्हं संठाणाणमेक्कदरं ओरालिय-सरीरअंगोवंगं असंपत्तसेवट्टसंघ-डणं वज्ज पंचण्हं संघडणाण-मेक्कदरं वण्ण-गंध-रस-फासं मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वी अ-गुरुअलहु-उवघाद-परघाद-उस्सासं, दोण्हं विहायगदीण-मेक्कदरं तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुभासुभाणमेक्कदरं सुहव-दुह-वाणमेक्कदरं सुस्सर-दुस्सराण-मेक्कदरं आदेज्ज-अणादेज्जाण-मेक्कदरं जसकित्ति-अजसकित्तीण-मेक्कदरं णिमिणं । एदासिं विदियएगूणतीसाए पयडीण-मेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ।	११९
९०	मणुसगदिं पंचिंदिय-पज्जत्त-संजुत्तं बंधमाणस्स तं सासण-सम्मादिट्ठिस्स ।	१२०
९१	तत्थ इमं तदियएगुणतीसाए ट्ठाणं, मणुसगदी पंचिंदिय-जादी ओरालिय-तेजा-कम्मइय-सरीरं छण्हं संठाणाणमेक्कदरं ओरालियसरीरअंगोवंगं छण्हं संघडणाणमेक्कदरं वण्ण-गंध-रस-फासं मणुसगदिपाओग्गाणु-पुव्वी अगुरुअलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सासं दोण्हं विहाय-गदीणमेक्कदरं तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुहासुहाणमेक्कदरं सुभग-दुभगाणमेक्कदरं सुस्सर-दुस्सराण-मेक्कदरं आदेज्ज-अणादेज्जाण-	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	मेक्कदरं जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामं । एदासिं तदियएगूणतीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ।	१२०
९२	मणुसगदिं पंचिंदिय-पज्जत्त-संजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स ।	१२१
९३	तत्थ इमं पणुवीसाए ट्ठाणं, मणुसगदी पंचिंदियजादी ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीरं हुंड-संठाणं ओरालियसरीरअंगोवंगं असंपत्तसेवट्टसंघडणं वण्ण-गंध-रस-फासं मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-तस-बादर-अपज्जत्त-पत्तेयसरीर-अथिर-असुभ-दुभग-अणादेज्ज-अजसकित्ति-णिमिणं । एदासिं पणुवीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ।	,,
९४	मणुसगदिं पंचिंदियजादि-अपज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स ।	१२२
९५	देवगदिणामाए पंच ट्ठाणाणि, एक्कत्तीसाए तीसाए एगुणतीसाए अट्ठवीसाए एक्किस्से ट्ठाणं चेदि ।	,,
९६	तत्थ इमं एक्कत्तीसाए ट्ठाणं, देवगदी पंचिंदियजादी वेउव्विय-आहार-तेजा-कम्मइयसरीरं समचउरससंठाणं वेउव्विय-आहार-अंगोवंगं वण्ण-गंध-रस-फासं देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ उवघाद-परघाद-उस्सासं पसत्थविहायगदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिण-तित्थयरं । एदासिमेक्कत्तीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ।	१२३
९७	देवगदिं पंचिंदिय-पज्जत्त-आहार-तित्थयरसंजुत्तं बंधमाणस्स तं अप्पमत्तसंजदस्स वा अपुव्वकरणस्स वा ।	,,
९८	तत्थ इमं तीसाए ठाणं । जधा, एक्कत्तीसाए भंगो । णवरि विसेसो तित्थयरं वज्ज । एदासिं तीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ।	१२४
९९	देवगदिं पंचिंदिय-पज्जत्त-आहार-संजुत्तं बंधमाणस्स तं अप्पमत्त-संजदस्स वा अपुव्वकरणस्स वा ।	,,
१००	तत्थ इमं पढमएगूणतीसाए ट्ठाणं । जधा, एक्कत्तीसाए भंगो । णवरि विसेसो आहारसरीरं वज्ज । एदासिं पढमएगूणतीसाए पयडीणं एक्कम्हि चेव ट्ठाणं ।	,,
१०१	देवगदिं पंचिंदिय-पज्जत्त-तित्थयरसंजुत्तं बंधमाणस्स तं अप्प-	

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	मत्तसंजदस्स वा अपुव्वकरणस्स वा।	१२५
१०२	तत्थ इमं विदियएगुणतीसाए ट्ठाणं, देवगदी पंचिंदियजादी वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीरं समचउरससंठाणं वेउव्विय-सरीरअंगोवंगं वण्ण-गंध-रस-फासं देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासं पसत्थविहायगदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुभासुभाणमेक्कदरं सुभग-सुस्सर-आदेज्जं जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिण-तित्थयरं। एदासिमेगुणतीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं।	,,
१०३	देवगदिं पंचिंदिय-पज्जत्त-तित्थयरसंजुत्तं बंधमाणस्स तं असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा।	१२६
१०४	तत्थ इमं पढमअट्ठावीसाए ट्ठाणं, देवगदी पंचिंदियजादी वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीरं समचउरससंठाणं वेउव्विय-अंगोवंगं वण्ण-गंध-रस-फासं देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ उवघाद-परघाद-उस्सासं पसत्थविहायगदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिणणामं। एदासिं पढमअट्ठावीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं।	१२७
१०५	देवगदिं पंचिंदिय-पज्जत्त-संजुत्तं बंधमाणस्स तं अप्पमत्तसंजदस्स वा अपुव्वकरणस्स वा।	,,
१०६	तत्थ इमं विदियअट्ठावीसाए ट्ठाणं, देवगदी पंचिंदियजादी वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीरं समचउरससंठाणं वेउव्विय-सरीरअंगोवंगं वण्ण-गंध-रस-फासं देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासं पसत्थविहायगदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुभासुभाणमेक्कदरं णिमिणं। एदासिं विदियअट्ठावीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं।	१२८
१०७	देवगदिं पंचिंदिय-पज्जत्त-संजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा।	,,
१०८	तत्थ इमं एक्किस्से ट्ठाणं जस-	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	कित्तिणामं । एदिस्से पयडीए एक्कम्हि चेव ट्ठाणं ।	१२८
१०९	बंधमाणस्स तं संजदस्स ।	१२९
११०	गोदस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ, उच्चागोदं चेव णीचागोदं चेव ।	१३१
१११	जं तं णीचागोदं कम्मं ।	,,
११२	बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा ।	,,
११३	जं तं उच्चागोदं कम्मं ।	,,
११४	बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा ।	१३२
११५	अंतराइयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ, दाणंतराइयं लाहंतराइयं भोगंतराइयं परिभोगंतराइयं वीरियंतराइयं चेदि ।	,,
११६	एदासिं पंचण्हं पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ।	,,
११७	बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा ।	,,

पढममहादंडयचूलियासुत्ताणि

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	इदाणिं पढमसम्मत्ताभिमुहो जाओ पयडीओ बंधदि ताओ पयडीओ कित्तइस्सामो ।	१३३
२	पंचण्हं णाणावरणीयाणं णवण्हं दंसणावरणीयाणं सादावेदणीयं मिच्छत्तं सोलसण्हं कसायाणं पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछा । आउगं च ण बंधदि । देवगदि-पंचिंदियजादि-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीरं समचउरससंठाणं वेउव्वियअंगोवंगं वण्ण-गंध-रस-फासं देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहाय-गदि-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेय-सरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिण-उच्चागोदं पंचण्हमंतराइयाणमेदाओ पयडीओ बंधदि पढमसम्मत्ताभिमुहो सण्णिपंचिंदियतिरिक्खो वा मणुसो वा ।	१३४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विदियमहादंडयचूलियासुत्ताणि

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	तत्थ इमो विदियो महादंडओ कादव्वो भवदि ।	१४०
२	पंचण्हं णाणावरणीयाणं णवण्हं दंसणावरणीयाणं सादावेदणीयं मिच्छत्तं सोलसण्हं कसायाणं पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछा। आउअं च ण बंधदि । मणुसगदि-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरस-संठाणं ओरालियसरीरअंगोवंगं वज्जरिसहसंघडणं वण्ण-गंध-रस-फासं मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिण-उच्चागोदं पंचण्हमंतराइयाणं एदाओ पयडीओ बंधदि पढमसम्मत्ताहिमुहो अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइयं वज्ज देवो वा णेरइओ वा ।	१४१

तदियमहादंडयचूलियासुत्ताणि

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	तत्थ इमो तदिओ महादंडओ कादव्वो भवदि ।	१४२
२	पंचण्हं णाणावरणीयाणं णवण्हं दंसणावरणीयाणं सादावेदणीयं मिच्छत्तं सोलसण्हं कसायाणं पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछा । आउगं च ण बंधदि । तिरिक्खगदि--पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-ओरालियअंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुव-उवघाद-(परघाद) उस्सासं । उज्जोवं सिया बंधदि सिया ण बंधदि । पसत्थविहायगदि-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-(सुभ-) सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिण-णीचागोद-पंचण्हमंतराइयाणं एदाओ पयडीओ बंधदि पढमसम्मत्ताहिमुहो अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइओ ।	१४३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्कस्सट्ठिदिबंधचूलियासुत्ताणि

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	केवडि कालट्ठिदीएहि कम्मेहि सम्मत्तं लब्भदि वा ण लब्भदि वा, ण लब्भदि त्ति विभासा ।	१४५
२	एत्तो उक्कस्सयट्ठिदिं वण्णइस्सामो ।	,,
३	तं जहा ।	१४६
४	पंचण्हं णाणावरणीयाणं णवण्हं दंसणावरणीयाणं असादावेदणीयं पंचण्हमंतराइयाणमुक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ ।	१४६
५	तिण्णि वाससहस्साणि आबाधा ।	१४८
६	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ।	१५०
७	सादावेदणीय-इत्थिवेद-मणुसगदि-मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्विणामाणमुक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो पण्णारस सागरोवमकोडाकोडीओ ।	१५८
८	पण्णारस वाससदाणि आबाधा ।	१५९
९	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ।	,,
१०	मिच्छत्तस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो सत्तरि सागरोवमकोडाकोडीओ ।	,,
११	सत्तवाससहस्साणि आबाधा ।	१६०
१२	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ।	१६१
१३	सोलसण्हं कसायाणं उक्कस्सगो ट्ठिदिबंधो चत्तालीसं सागरोवमकोडाकोडीओ ।	,,
१४	चत्तारि वाससहस्साणि आबाधा ।	१६२
१५	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ।	,,
१६	पुरिसवेद-हस्स-रदि-देवगदि-समचउरससंठाण-वज्जरिसहसंघडण-देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी-पसत्थविहायगदि-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज जसकित्ति-उच्चागोदाणं उक्कस्सगो ट्ठिदिबंधो दससागरोवमकोडाकोडीओ ।	,,
१७	दसवाससदाणि आबाधा ।	१६३
१८	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ।	,,
१९	णउंसयवेद-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा णिरयगदी तिरिक्खगदी एइंदिय-पंचिंदियजादि-ओरालिय-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-हुंडसंठाण-ओरालिय-वेउव्वियसरीरअंगोवंग-असंपत्तसेवट्टसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-णिरयगदि-तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	उववाद-परघाद-उस्सास-आदाव-उज्जोव-अप्पसत्थविहायगदि-तस-थावर-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-अथिर-असुभ-दुब्भग-दुस्सर-अणादेज्ज-अजसकित्ति-णिमिण-णीचागोदाणं उक्कस्सगो ट्ठिदिबंधो वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ ।	१६३
२०	वे वाससहस्साणि आबाधा ।	१६५
२१	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ।	,,
२२	णिरयाउ-देवाउअस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो तेत्तीसं सागरोवमाणि ।	१६६
२३	पुव्वकोडितिभागो आबाधा ।	१६७
२४	आबाधा ।	१६८
२५	कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ।	,,
२६	तिरिक्खाउ-मणुसाउअस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो तिण्णि पलिदोवमाणि ।	१६९
२७	पुव्वकोडितिभागो आबाधा ।	१७१
२८	आबाधा ।	,,
२९	कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ।	,,
३०	बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-वामणसंठाण-खीलियसंघडण-सुहुम-अपज्जत्त-साधारणणामाणं उक्कस्सगो ट्ठिदिबंधो अट्ठारस-सागरोवमकोडाकोडीओ ।	१७२
३१	अट्ठारसवाससदाणि आबाधा ।	,,
३२	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ।	१७२
३३	आहारसरीर-आहारसरीरंगोवंग-तित्थयरणामाणमुक्कस्सगो ट्ठिदिबंधो अंतोकोडाकोडीए ।	१७४
३४	अंतोमुहुत्तमाबाधा ।	१७७
३५	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ।	,,
३६	णग्गोधपरिमंडलसंठाण-वज्जणारायणसंघडणणामाणं उक्कस्सगो ट्ठिदिबंधो बारस सागरोवमकोडाकोडीओ ।	,,
३७	बारसवाससदाणि आबाधा ।	१७८
३८	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ।	,,
३९	सादियसंठाण-णारायसंघडण-णामाणमुक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो चोद्दससागरोवमकोडाकोडीओ ।	,,
४०	चोद्दसवाससदाणि आबाधा ।	,,
४१	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ।	१७९
४२	खुज्जसंठाण-अद्धणारायणसंघडणणामाणमुक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो सोलससागरोवमकोडाकोडीओ ।	,,
४३	सोलसवाससदाणि आबाधा ।	,,
४४	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ।	,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जहण्णट्ठिदिचूलियासुत्ताणि

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	एत्तो जहण्णट्ठिदिं वण्णइस्सामो।	१८०
२	तं जहा।	,,
३	पंचण्हं णाणावरणीयाणं चदुण्हं दंसणावरणीयाणं लोभसंजलणस्स पंचण्हमंतराइयाणं जहण्णओ ट्ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तं।	१८२
४	अंतोमुहुत्तमाबाधा।	१८३
५	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो।	१८४
६	पंचदंसणावरणीय-असादावेदणीयाणं जहण्णगो ट्ठिदिबंधो सागरोवमस्स तिण्णि सत्तभागा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणया।	,,
७	अंतोमुहुत्तमाबाधा।	१८५
८	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ।	,,
९	सादावेदणीयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो बारस मुहुत्ताणि।	,,
१०	अंतोमुहुत्तमाबाधा।	१८६
११	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ।	,,
१२	मिच्छत्तस्स जहण्णगो ट्ठिदिबंधो सागरोवमस्स सत्त सत्तभागा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणिया।	,,
१३	अंतोमुहुत्तमाबाधा।	१८७
१४	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ।	१८७
१५	बारसण्हं कसायाणं जहण्णओ ट्ठिदिबंधो सागरोवमस्स चत्तारि सत्तभागा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणया।	,,
१६	अंतोमुहुत्तमाबाधा।	१८८
१७	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो।	,,
१८	कोधसंजलण-माणसंजलण-मायसंजलणाणं जहण्णओ ट्ठिदिबंधो वे मासा मासं पक्खं।	,,
१९	अंतोमुहुत्तमाबाधा।	१८९
२०	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ।	,,
२१	पुरिसवेदस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो अट्ठ वस्साणि।	,,
२२	अंतोमुहुत्तमाबाधा।	,,
२३	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ।	,,
२४	इत्थिवेद-णउंसयवेद–हस्स-रदि–अरदि-सोग-भय–दुगुंछा–तिरिक्खगइ-मणुसगइ–एइंदिय-बीइं–दिय-तीइंदिय-चउरिंदिय–पंचिं–दियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्म–	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	इयसरीरं छण्हं संट्ठाणाणं ओरालियसरीरअंगोवंगं छण्हं संघडणाणं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगइ-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-आदाउज्जोव-पसत्थविहायगदि-अप्पसत्थविहायगदि-तस-थावर-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-पत्तेय-साहारण-सरीर-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-दुभग-सुस्सर-दुस्सर-आदेज्ज-अणादेज्ज-अजसकित्ति-णिमिण-णीचागोदाणं जहण्णगो ट्ठिदिबंधो सागरोवमस्स बे-सत्तभागा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणया।	१९०
२५	अंतोमुहुत्तमाबाधा।	१९२
२६	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ।	,,
२७	णिरयाउअ-देवाउअस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो दसवाससहस्साणि।	१९३
२८	अंतोमुहुत्तमाबाधा।	,,
२९	आबाधा।	,,
३०	कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ।	,,
३१	तिरिक्खाउअ-मणुसाउअस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो खुद्दाभवग्गहणं।	,,
३२	अंतोमुहुत्तमाबाधा।	१९४
३३	आबाधा।	,,
३४	कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो।	,,
३५	णिरयगदि-देवगदि-वेउव्विय-सरीर-वेउव्वियसरीरअंगोवंग-णिणिरयगदि-देवगदिपाओग्गाणुपुव्वीणामाणं जहण्णगो ट्ठिदिबंधो सागरोवमसहस्सस्स बे-सत्तभागा पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण ऊणया।	१९४
३६	अंतोमुहुत्तमाबाधा।	१९७
३७	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो।	,,
३८	आहारसरीर-आहारसरीरअंगोवंग-तित्थयरणामाणं जहण्णगो ट्ठिदिबंधो अंतोकोडाकोडीओ।	,,
३९	अंतोमुहुत्तमाबाधा।	१९८
४०	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ।	,,
४१	जसगित्ति-उच्चागोदाणं जहण्णगो ट्ठिदिबंधो अट्ठ मुहुत्ताणि।	,,
४२	अंतोमुहुत्तमाबाधा।	,,
४३	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ।	,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्मत्तुप्पत्तिचूलियासुत्ताणि

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	एवदिकालट्ठिदिएहि कम्मेहि सम्मत्तं ण लहदि।	२०३
२	लभदि त्ति विभासा।	,,
३	एदेसिं चेव सव्वकम्माणं जावे अंतोकोडाकोडिट्ठिदिं बंधदि तावे पढमसम्मत्तं लभदि।	,,
४	सो पुण पंचिंदिओ सण्णी मिच्छाइट्ठी पज्जत्तओ सव्वविसुद्धो।	२०६
५	एदेसिं चेव सव्वकम्माणं जाधे अंतोकोडाकोडिट्ठिदिं ठवेदि संखेज्जेहि सागरोवमसहस्सेहि ऊणियं ताधे पढमसम्मत्तमुप्पादेदि।	२२२
६	पढमसम्मत्तमुप्पादेंतो अंतोमुहुत्तमोहट्टेदि।	२३०
७	ओहट्टेदूण मिच्छत्तं तिण्णि भागं करेदि सम्मत्तं मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं।	२३४
८	दंसणमोहणीयं कम्मं उवसामेदि।	२३८
९	उवसामेंतो कम्हि उवसामेदि, चदुसु वि गदीसु उवसामेदि। चदुसु वि गदीसु उवसामेंतो पंचिंदिएसु उवसामेदि, णो एइंदिय-विगलिंदिएसु। पंचिंदिएसु उवसामेंतो सण्णीसु उवसामेदि, णो असण्णीसु। सण्णीसु उवसामेंतो गब्भोवक्कंतिएसु उवसामेदि, णो सम्मुच्छिमेसु। गब्भोवक्कंतिएसु उवसामेंतो पज्जत्तएसु उवसामेदि, णो अपज्जत्तएसु। पज्जत्तएसु उवसामेंतो संखेज्जवस्साउगेसु वि उवसामेदि, असंखेज्जवस्साउगेसु वि।	२३८
१०	उवसामणा वा केसु व खेत्तेसु कस्स व मूले।	२४३
११	दंसणमोहणीयं कम्मं खवेदुमाढवेंतो कम्हि आढवेदि, अड्ढाइज्जेसु दीव-समुद्देसु पण्णारसकम्मभूमीसु जम्हि जिणा केवली तित्थयरा तम्हि आढवेदि।	,,
१२	णिट्ठवओ पुण चदुसु वि गदीसु णिट्ठवेदि।	२४७
१३	सम्मत्तं पडिवज्जंतो तदो सत्तकम्माणमंतोकोडाकोडिं ठवेदि णाणावरणीयं दंसणावरणीयं वेदणीयं मोहणीयं णामं गोदं अंतराइयं चेदि।	२६६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१४	चारित्तं पडिवज्जंतो तदो सत्तकम्माणमंतोकोडाकोडिं ट्ठिदिं ट्ठवेदि णाणावरणीयं दंसणावरणीयं वेदणीयं मोहणीयं णामं गोदं अंतराइयं चेदि।	२६७
१५	संपुण्णं पुण चारित्तं पडिवज्जंतो तदो चत्तारि कम्माणि अंतोमुहुत्तट्ठिदिं ट्ठवेदि णाणावरणीयं दंसणावरणीयं मोहणीयमंतराइयं चेदि।	३४२
१६	वेदणीयं बारसमुहुत्तं ट्ठिदिं ठवेदि, णामागोदाणमट्ठमुहुत्तट्ठिदिं ठवेदि, सेसाणं कम्माणं भिण्णमुहुत्तट्ठिदिं ठवेदि।	३४३

गदियागदियचूलियासुत्ताणि

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	णेरइया मिच्छाइट्ठी पढमसम्मत्तमुप्पादेंति।	४१८
२	उप्पादेंता कम्हि उप्पादेंति ?	४१९
३	पज्जत्तएसु उप्पादेंति, णो अपज्जत्तएसु।	,,
४	पज्जत्तएसु उप्पादेंता अंतोमुहुत्तप्पहुडि जाव तप्पाओग्गंतोमुहुत्तं उवरिमुप्पादेंति, णो हेट्ठा।	,,
५	एवं जाव सत्तसु पुढवीसु णेरइया।	४२०
६	णेरइया मिच्छाइट्ठी कदिहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेंति ?	४२१
७	तीहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेंति।	,,
८	केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण, केइं वेदणाहिभूदा।	४२२
९	एवं तिसु उवरिमासु पुढवीसु णेरइया।	४२३
१०	चदुसु हेट्ठिमासु पुढवीसु णेरइया मिच्छाइट्ठी कदिहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेंति ?	,,
११	दोहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेंति।	४२४
१२	केइं जाइस्सरा, केइं वेयणाहिभूदा।	,,
१३	तिरिक्खमिच्छाइट्ठी पढमसम्मत्तमुप्पादेंति।	,,
१४	उप्पादेंता कम्हि उप्पादेंति ?	४२५
१५	पंचिंदिएसु उप्पादेंति, णो एइंदिय-विगलिंदिएसु।	,,
१६	पंचिंदिएसु उप्पादेंता सण्णीसु उप्पादेंति, णो असण्णीसु।	,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१७	सण्णीसु उप्पादेंता गब्भोवक्कंतिएसु उप्पादेंति, णो सम्मुच्छिमेसु ।	४२५
१८	गब्भोवक्कंतिएसु उप्पादेंता पज्जत्तएसु उप्पादेंति, णो अपज्जत्तएसु ।	४२६
१९	पज्जत्तएसु उप्पादेंता दिवसपुधत्तप्पहुडि जावमुवरिमुप्पादेंति, णो हेट्ठादो ।	,,
२०	एवं जाव सव्वदीवसमुद्देसु ।	,,
२१	तिरिक्खा मिच्छाइट्ठी कदिहि कारणेहि पढमसम्मत्तं उप्पादेंति ?	४२७
२२	तीहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेंति — केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण, केइं जिणबिंबं दट्ठूण ।	४२७
२३	मणुस्सा मिच्छादिट्ठी पढमसम्मत्तमुप्पादेंति।	४२८
२४	उप्पादेंता कम्हि उप्पादेंति ?	,,
२५	गब्भोवक्कंतिएसु पढमसम्मत्तमुप्पादेंति, णो सम्मुच्छिमेसु ।	,,
२६	गब्भोवक्कंतिएसु उप्पादेंता पज्जत्तएसु उप्पादेंति, णो अपज्जत्तएसु ।	,,
२७	पज्जत्तएसु उप्पादेंता अट्ठवासप्पहुडि जाव उवरिमुप्पादेंति, णो हेट्ठादो ।	४२९
२८	एवं जाव अड्ढाइज्जदीव-समुद्देसु।	,,
२९	मणुस्सा मिच्छाइट्ठी कदिहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेंति ?	४२९
३०	तीहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेंति — केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण, केइं जिणबिंबं दट्ठूण ।	,,
३१	देवा मिच्छाइट्ठी पढमसम्मत्तमुप्पादेंति ।	४३१
३२	उप्पादेंता कम्हि उप्पादेंति ?	,,
३३	पज्जत्तएसु उप्पादेंति, णो अपज्जत्तएसु ।	,,
३४	पज्जत्तएसु उप्पाएंता अंतोमुहुत्तप्पहुडि जाव उवरि उप्पाएंति, णो हेट्ठदो ।	,,
३५	एवं जाव उवरिमउवरिमगेवज्जविमाणवासियदेवा त्ति ।	४३२
३६	देवा मिच्छाइट्ठी कदिहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेंति ?	,,
३७	चदुहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पाएंति — केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण, केइं जिणमहिमं दट्ठूण, केइं देविद्धिं दट्ठूण ।	,,
३८	एवं भवणवासियप्पहुडि जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवा त्ति ।	४३४
३९	आणद-पाणद-आरण-अच्चुद-कप्पवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठी कदिहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेंति ?	,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
४०	तीहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेंति — केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण, केइं जिणमहिमं दट्ठूण।	,,
४१	णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठी कदिहि कारणेहिं पढमसम्मत्तमुप्पादेंति ?	४३५
४२	दोहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेंति — केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण।	४३६
४३	अणुदिस जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा सव्वे ते णियमा सम्माइट्ठि त्ति पण्णत्ता।	४३७
४४	णेरइया मिच्छत्तेण अधिगदा केइं मिच्छत्तेण णींति।	,,
४५	केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णींति।	,,
४६	केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णींति।	४३८
४७	सम्मत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण चेव णींति।	,,
४८	एवं पढमाए पुढवीए णेरइया।	४३९
४९	विदियाए जाव छट्ठीए पुढवीए णेरइया मिच्छत्तेण अधिगदा केइं मिच्छत्तेण (णींति)।	४३९
५०	मिच्छत्तेण अधिगदा केइं सासणसम्मत्तेण णींति।	,,
५१	मिच्छत्तेण अधिगदा केइं सम्मत्तेण णींति।	,,
५२	सत्तमाए पुढवीए णेरइया मिच्छत्तेण चेव णींति।	४४०
५३	तिरिक्खा केइं मिच्छत्तेण अधिगदा मिच्छत्तेण णींति।	,,
५४	केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णींति।	,,
५५	केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णींति।	४४१
५६	केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा मिच्छत्तेण णींति।	,,
५७	केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णींति।	,,
५८	केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णींति।	,,
५९	सम्मत्तेण अधिगदा णियमा सम्मत्तेण चेव णींति।	,,
६०	(एवं) पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता।	,,
६१	पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीयो मणुसिणीयो भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवा देवीओ सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवीओ च मिच्छत्तेण अधिगदा केइं मिच्छत्तेण णींति।	४४२
६२	केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णींति।	,,
६३	केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णींति।	,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
६४	केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा मिच्छत्तेण णींति ।	४४२
६५	केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णींति ।	,,
६६	मणुसा मणुसपज्जत्ता सोधम्मीसाणप्पहुडि जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु केइं मिच्छत्तेण अधिगदा मिच्छत्तेण णींति ।	४४३
६७	केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णींति ।	,,
६८	केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णींति ।	,,
६९	केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा मिच्छत्तेण णींति ।	,,
७०	केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णींति ।	,,
७१	केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णींति ।	४४४
७२	केइं सम्मत्तेण अधिगदा मिच्छत्तेण णींति ।	,,
७३	केइं सम्मत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णींति ।	,,
७४	केइं सम्मत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णींति ।	४४६
७५	अणुदिस जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु सम्मत्तेण अधिगदा णियमा सम्मत्तेण चेव णींति ।	,,
७६	णेरइयमिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी णिरयादो उव्वट्टिदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ?	४४६
७७	दो गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगदिं चेव मणुसगदिं चेव ।	४४७
७८	तिरिक्खेसु आगच्छंता पंचिंदिएसु आगच्छंति, णो एइंदियविगलिंदिएसु ।	,,
७९	पंचिंदिएसु आगच्छंता सण्णीसु आगच्छंति, णो असण्णीसु ।	४४८
८०	सण्णीसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ।	,,
८१	गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ।	४४९
८२	पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवस्साउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवस्साउएसु ।	,,
८३	मणुस्सेसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ।	४५०
८४	गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ।	,,
८५	पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवस्साउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवस्साउएसु ।	,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
८६	णेरइया सम्मामिच्छाइट्ठी सम्मामिच्छत्तगुणेण णिरयादो णो उव्वट्टिंति ।	४५०
८७	णेरइया सम्माइट्ठी णिरयादो उव्वट्टिदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ?	४५१
८८	एक्कं मणुसगदिं चेव आगच्छंति ।	,,
८९	मणुसेसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ।	,,
९०	गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ।	,,
९१	पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवासाउएसु ।	४५२
९२	एवं छसु उवरिमासु पुढवीसु णेरइया ।	,,
९३	अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइया मिच्छाइट्ठी णिरयादो उव्वट्टिदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ?	,,
९४	एक्कं तिरिक्खगदिं चेव आगच्छंति ।	,,
९५	तिरिक्खेसु आगच्छंता पंचिंदिएसु आगच्छंति, णो एइंदियविगलिंदिएसु ।	४५३
९६	पंचिंदिएसु आगच्छंता सण्णीसु आगच्छंति, णो असण्णीसु ।	४५३
९७	सण्णीसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ।	,,
९८	गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ।	,,
९९	पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवस्साउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवासाउएसु ।	,,
१००	सत्तमाए पुढवीए णेरइया सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी अप्पप्पणो गुणेण णिरयादो णो उव्वट्टिंति ।	४५४
१०१	तिरिक्खा सण्णी मिच्छाइट्ठी पंचिंदियपज्जत्ता संखेज्जवासाउआ तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?	,,
१०२	चत्तारि गदीओ गच्छंति णिरयगदिं तिरिक्खगदिं मणुसगदिं देवगदिं चेदि ।	,,
१०३	णिरएसु गच्छंता सव्वणिरएसु गच्छंति ।	४५४
१०४	तिरिक्खेसु गच्छंता सव्वतिरिक्खेसु गच्छंति ।	४५५
१०५	मणुसेसु गच्छंता सव्वमणुसेसु गच्छंति ।	,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१०६	देवेसु गच्छंता भवणवासियप्पहुडि जाव सयार-सहस्सार-कप्पवासियदेवेसु गच्छंति ।	४५५
१०७	पंचिंदियतिरिक्खअसण्णिपज्जत्ता तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?	,,
१०८	चत्तारि गदीओ गच्छंति णिरयगदिं तिरिक्खगदिं मणुसगदिं देवगदिं चेदि ।	,,
१०९	णिरएसु गच्छंता पढमाए पुढवीए णेरइएसु गच्छंति ।	४५६
११०	तिरिक्ख-मणुस्सेसु गच्छंता सव्वतिरिक्ख-मणुस्सेसु गच्छंति, णो असंखेज्जवासाउएसु गच्छंति ।	,,
१११	देवेसु गच्छंता भवणवासिय-वाणवेंतरदेवेसु गच्छंति ।	,,
११२	पंचिंदियतिरिक्खसण्णी असण्णी अपज्जत्ता पुढवीकाइया आउकाइया वा वणप्फइकाइया णिगोदजीवा बादरा सुहुमा बादरवणप्फदिकाइया पत्तेयसरीरा पज्जत्ता अपज्जत्ता बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पज्जत्तापज्जत्ता तिरिक्खा तिरिक्खेहिं कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?	४५७
११३	दुवे गदीओ गच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेदि ।	४५७
११४	तिरिक्ख-मणुस्सेसु गच्छंता सव्वतिरिक्ख-मणुस्सेसु गच्छंति, णो असंखेज्जवस्साउएसु गच्छंति ।	,,
११५	तेउक्काइया वाउक्काइया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?	४५८
११६	एक्कं चेव तिरिक्खगदिं गच्छंति ।	,,
११७	तिरिक्खेसु गच्छंता सव्वतिरिक्खेसु गच्छंति, णो असंखेज्जवस्साउएसु गच्छंति ।	,,
११८	तिरिक्खसासणसम्माइट्ठी संखेज्जवस्साउआ तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?	,,
११९	तिण्णि गदीओ गच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं देवगदिं चेदि ।	४५९
१२०	तिरिक्खेसु गच्छंता एइंदिय-पंचिंदिएसु गच्छंति, णो विगलिंदिएसु ।	,,
१२१	एइंदिएसु गच्छंता बादरपुढवीकाइय-बादरआउक्काइय-बादरवणप्फइकाइयपत्तेयसरीर-	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	पज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ।	४६०
१२२	पंचिंदिएसु गच्छंता सण्णीसु गच्छंति, णो असण्णीसु ।	४६१
१२३	सण्णीसु गच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ।	,,
१२४	गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंता पज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ।	४६२
१२५	पज्जत्तएसु गच्छंता संखेज्जवासाउएसु वि गच्छंति, असंखेज्जवासाउएसु वि ।	,,
१२६	मणुसेसु गच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ।	,,
१२७	गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंता पज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ।	,,
१२८	पज्जत्तएसु गच्छंता संखेज्जवासाउएसु वि गच्छंति, असंखेज्जवासाउएसु वि गच्छंति ।	,,
१२९	देवेसु गच्छंता भवणवासियप्पहुडि जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु गच्छंति ।	४६३
१३०	तिरिक्खा सम्मामिच्छाइट्ठी संखेज्जवस्साउआ सम्मामिच्छत्तगुणेण तिरिक्खा तिरिक्खेसु णो कालं करेंति ।	४६३
१३१	तिरिक्खा असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जवस्साउआ तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?	४६४
१३२	एक्कं हि चेव देवगदिं गच्छंति ।	४६५
१३३	देवेसु गच्छंता सोहम्मीसाणप्पहुडि जाव आरणच्चुदकप्पवासियदेवेसु गच्छंति ।	,,
१३४	तिरिक्खमिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंखेज्जवासाउवा तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?	४६६
१३५	एक्कं हि चेव देवगदिं गच्छंति ।	,,
१३६	देवेसु गच्छंता भवणवासियवाणवेंतर-जोदिसियदेवेसु गच्छंति ।	४६७
१३७	तिरिक्खा सम्मामिच्छाइट्ठा असंखेज्जवासाउआ सम्मामिच्छत्तगुणेण तिरिक्खा तिरिक्खेहि णो कालं करेंति ।	,,
१३८	तिरिक्खा असंजदसम्माइट्ठी असंखेज्जवासाउआ तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?	,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१३९	एक्कं हि चेव देवगदिं गच्छंति ।	४६८
१४०	देवेसु गच्छंता सोहम्मीसाणकप्पवासियदेवेसु गच्छंति।	,,
१४१	मणुसा मणुसपज्जत्ता मिच्छाइट्ठी संखेज्जवासाउआ मणुसा मणुसेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?	,,
१४२	चत्तारि गदीओ गच्छंति णिरयगइं तिरिक्खगइं मणुसगइं देवगइं चेदि ।	,,
१४३	णिरएसु गच्छंता सव्वणिरएसु गच्छंति ।	४६९
१४४	तिरिक्खेसु गच्छंता सव्वतिरिक्खेसु गच्छंति ।	,,
१४५	मणुसेसु गच्छंता सव्वमणुस्सेसु गच्छंति ।	,,
१४६	देवेसु गच्छंता भवणवासियप्पहुडि जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु गच्छंति ।	,,
१४७	मणुसा अपज्जत्ता मणुसा मणुसेहिं कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?	,,
१४८	दुवे गदीओ गच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेव ।	,,
१४९	तिरिक्ख-मणुस्सेसु गच्छंता सव्वतिरिक्ख-मणुसेसु गच्छंति, णो असंखेज्जवासाउएसु गच्छंति ।	४७०
१५०	मणुस्ससासणसम्माइट्ठी संखेज्जवासाउआ मणुसा मणुसेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?	४७०
१५१	तिण्णि गदीओ गच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं देवगदिं चेदि ।	,,
१५२	तिरिक्खेसु गच्छंता एइंदियपंचिंदिएसु गच्छंति, णो विगलिंदिएसु गच्छंति।	,,
१५३	एइंदिएसु गच्छंता बादरपुढवी-बादरआउ-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्तेसु ।	४७१
१५४	पंचिंदिएसु गच्छंता सण्णीसु गच्छंति, णो असण्णीसु ।	,,
१५५	सण्णीसु गच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ।	,,
१५६	गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंता पज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ।	४७२
१५७	पज्जत्तएसु गच्छंता संखेज्जवासाउएसु वि गच्छंति, असंखेज्जवासाउएसु वि गच्छंति ।	,,
१५८	मणुसेसु गच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ।	,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१५९	गब्भोवक्कंतिएसु गच्छंता पज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ।	४७२
१६०	पज्जत्तएसु गच्छंता संखेज्जवासाउएसु (वि) गच्छंति, असंखेज्जवासाउएसु वि गच्छंति।	,,
१६१	देवेसु गच्छंता भवणवासियप्पहुडि जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु गच्छंति ।	४७३
१६२	मणुसा सम्मामिच्छाइट्ठी संखेज्जवासाउआ सम्मामिच्छत्तगुणेण मणुसा मणुसेहि णो कालं करेंति ।	,,
१६३	मणुससम्माइट्ठी संखेज्जवासाउआ मणुस्सा मणुस्सेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?	,,
१६४	एक्कं हि चेव देवगदिं गच्छंति।	४७४
१६५	देवेसु गच्छंता सोहम्मीसाणप्पहुडि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु गच्छंति।	४७६
१६६	मणुसा मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंखेज्जवासाउआ मणुसा मणुसेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?	,,
१६७	एक्कं हि चेव देवगदिं गच्छंति।	,,
१६८	देवेसु गच्छंता भवणवासियवाणवेंतर-जोदिसियदेवेसु गच्छंति ।	,,
१६९	मणुसा सम्मामिच्छाइट्ठी असंखेज्जवासाउआ सम्मामिच्छत्तगुणेण मणुसा मणुसेहि णो कालं करेंति ।	४७७
१७०	मणुसा सम्माइट्ठी असंखेज्जवासाउआ मणुसा मणुसेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?	,,
१७१	एक्कं हि चेव देवगदिं गच्छंति।	,,
१७२	देवेसु गच्छंता सोहम्मीसाणकप्पवासियदेवेसु गच्छंति ।	,,
१७३	देवा मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी देवा देवेहि उवट्टिदचुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ?	,,
१७४	दुवे गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेव।	४७८
१७५	तिरिक्खेसु आगच्छंता एइंदिय-पंचिंदिएसु आगच्छंति, णो विगलिंदिएसु ।	,,
१७६	एइंदिएसु आगच्छंता बादरपुढवीकाइय–बादरआउकाइय–बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ।	,,
१७७	पंचिंदिएसु आगच्छंता सण्णीसु आगच्छंति, णो असण्णीसु ।	४७९
१७८	सण्णीसु आगच्छंता गब्भो-	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	वक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ।	४७९
१७९	गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ।	,,
१८०	पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवासाउएसु ।	,,
१८१	मणुसेसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ।	,,
१८२	गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ।	४८०
१८३	पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवासाउएसु ।	,,
१८४	देवा सम्मामिच्छाइट्ठी सम्मामिच्छत्तगुणेण देवा देवेहि णो उव्वट्टंति, णो चयंति ।	,,
१८५	देवा सम्माइट्ठी देवा देवेहि उव्वट्टिद-चुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ?	,,
१८६	एक्कं हि चेव मणुसगदिमागच्छंति ।	,,
१८७	मणुसेसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ।	४८१
१८८	गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ।	४८१
१८९	पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवस्साउएसु ।	,,
१९०	भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिदिय-सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवेसु देवगदिभंगो ।	,,
१९१	सणक्कुमारप्पहुडि जाव सदरसहस्सारकप्पवासियदेवेसु पढमपुढवीभंगो । णवरि चुदा त्ति भाणिदव्वं ।	,,
१९२	आणदादि जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी देवा देवेहि चुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ?	४८२
१९३	एक्कं हि चेव मणुसगदिमागच्छंति ।	,,
१९४	मणुसेसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ।	,,
१९५	गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ।	,,
१९६	पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवासाउएसु ।	४८३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१९७	आणद जाव णवगेवज्ज-विमाणवासियदेवा सम्मामिच्छाइट्ठी सम्मामिच्छत्त-गुणेण देवा देवेहि णो चयंति।	४८३
१९८	अणुदिस जाव सव्वट्ठसिद्धि-विमाणवासियदेवा असंजद-सम्माइट्ठी देवा देवेहि चुद-समाणा कदि गदीओ आग-च्छंति ?	,,
१९९	एक्कं हि मणुसगदिमागच्छंति।	,,
२००	मणुसेसु आगच्छंता गब्भो-वक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु।	,,
२०१	गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु।	४८४
२०२	पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्ज-वासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवासाउएसु।	,,
२०३	अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइया णिरयादो णेरइया उव्वट्टिद-समाणा कदि गदीओ आग-च्छंति ?	,,
२०४	एक्कं हि चेव तिरिक्खगदि-मागच्छंति त्ति।	,,
२०५	तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा छण्णो उप्पाएंति— आभिणिबोहियणाणं णो उप्पा-एंति, सुदणाणं णो उप्पाएंति, ओहिणाणं णो उप्पाएंति, सम्मामिच्छत्तं णो उप्पाएंति, सम्मत्तं णो उप्पाएंति, संजमा-संजमं णो उप्पाएंति।	४८४
२०६	छट्ठीए पुढवीए णेरइया णिर-यादो णेरइया उव्वट्टिदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ?	४८५
२०७	दुवे गदीयो आगच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेव।	४८६
२०८	तिरिक्ख-मणुस्सेसु उववण्ण-ल्लया तिरिक्खा मणुसा केइं छ उप्पाएंति— केइं आभिणि-बोहियणाणमुप्पाएंति, केइं सुदणाणमुप्पाएंति, केइमोहि-णाणमुप्पाएंति, केइं सम्मा-मिच्छत्तमुप्पाएंति, केइं सम्मत्त-मुप्पाएंति, केइं संजमासंजम-मुप्पाएंति।	,,
२०९	पंचमीए पुढवीए णेरइया णिरयादो णेरइया उव्वट्टिद-समाणा कदि गदीयो आग-च्छंति ?	४८७
२१०	दुवे गदीयो आगच्छंति तिरिक्खगदिं चेव, मणुस-गदिं चेव।	,,
२११	तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा केइं छ उप्पाएंति।	,,
२१२	मणुस्सेसु उववण्णल्लया मणुसा केइमट्ठमुप्पाएंति— केइ-माभिणिबोहियणाणमुप्पाएंति,	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	केइं सुदणाणमुप्पाएंति, केइमोहिणाणमुप्पाएंति, केइं मणपज्जवणाणमुप्पाएंति, केइं सम्मामिच्छत्तमुप्पाएंति, केइं सम्मत्तमुप्पाएंति, केइं संजमासंजममुप्पाएंति, केइं संजममुप्पाएंति ।	४८८
२१३	चउत्थीए पुढवीए णेरइया णिरयादो णेरइया उव्वट्टिदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ?	,,
२१४	दुवे गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगइं चेव मणुसगइं चेव ।	,,
२१५	तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा केइं छ उप्पाएंति ।	४८९
२१६	मणुसेसु उववण्णल्लया मणुसा केइं दस उप्पाएंति — केइमाहिणिबोहियणाणमुप्पाएंति, केइं सुदणाणमुप्पाएंति, केइमोहिणाणमुप्पाएंति, केइं मणपज्जवणाणमुप्पाएंति, केइं केवलणाणमुप्पाएंति, केइं सम्मामिच्छत्तमुप्पाएंति, केइं सम्मत्तमुप्पाएंति, केइं संजमासंजममुप्पाएंति, केइं संजममुप्पाएंति। णो बलदेवत्तं, णो वासुदेवत्तं, णो चक्कवट्टित्तं, णो तित्थयरत्तं । केइमंतयडा होदूण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाणयंति सव्वदुक्खाणमंतं परिविजाणंति ।	४८९
२१७	तिसु उवरिमासु पुढवीसु णेरइया णिरयादो णेरइया उव्वट्टिदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ?	४९१
२१८	दुवे गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेव।	,,
२१९	तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा केइं छ उप्पाएंति।	,,
२२०	मणुसेसु उववण्णल्लया मणुस्सा केइमेक्कारस उप्पाएंति — केइमाभिणिबोहियणाणमुप्पाएंति, केइं सुदणाणमुप्पाएंति, केइं मणपज्जवणाणमुप्पाएंति, केइमोहिणाणमुप्पाएंति, केइं केवलणाणमुप्पाएंति, केइं सम्मामिच्छत्तमुप्पाएंति, केइं सम्मत्तमुप्पाएंति, केइं संजमासंजममुप्पाएंति, केइं संजममुप्पाएंति । णो बलदेवत्तं णो वासुदेवत्तमुप्पाएंति, णो चक्कवट्टित्तमुप्पाएंति । केइं तित्थयरत्तमुप्पाएंति, केइमंतयडा होदूण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाणयंति सव्वदुक्खाणमंतं परिविजाणंति ।	४९२
२२१	तिरिक्खा मणुसा तिरिक्खमणुसेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?	,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२२२	चत्तारि गदीओ गच्छंति णिरयगदिं तिरिक्खगदिं मणुसगदिं देवगदिं चेदि।	४९३
२२३	णिरय-देवेसु उववण्णल्लया णिरय-देवा केइं पंचमुप्पाएंति, केइमाभिणिबोहियणाणमुप्पाएंति, केइं सुदणाणमुप्पाएंति, केइमोहिणाणमुप्पाएंति, केइं सम्मामिच्छत्तमुप्पाएंति, केइं सम्मत्तमुप्पाएंति।	,,
२२४	तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा मणुसा केइं छ उप्पाएंति।	,,
२२५	मणुसेसु उववण्णल्लया तिरिक्खमणुस्सा जहा चउत्थपुढवीए भंगो।	,,
२२६	देवगदीए देवा देवेहि उव्वट्टिद-चुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति?	४९४
२२७	दुवे गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेदि।	,,
२२८	तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा केइं छ उप्पाएंति।	,,
२२९	मणुसेसु उववण्णल्लया मणुसा केइं सव्वं उप्पाएंति — केइमाभिणिबोहियणाणमुप्पाएंति, केइं सुदणाणमुप्पाएंति, केइमोहिणाणमुप्पाएंति, केइं मणपज्जवणाणमुप्पाएंति, केइं केवलणाणमुप्पाएंति, केइं सम्मामिच्छत्तमुप्पाएंति, केइं सम्मत्तमुप्पाएंति, केइं संजमासंजममुप्पाएंति, केइं संजमं उप्पाएंति, केइं बलदेवत्तमुप्पाएंति, केइं वासुदेवत्तमुप्पाएंति, केइं चक्कवट्टित्तमुप्पाएंति, केइं तित्थयरत्तमुप्पाएंति, केइमंतयडा होदूण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाणयंति सव्वदुक्खाणमंतं परिविजाणंति।	४९४
२३०	भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवा देवीओ सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवीओ च देवा देवेहि उव्वट्टिद-चुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति?	४९५
२३१	दुवे गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेव।	,,
२३२	तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा केइं छ उप्पाएंति।	४९६
२३३	मणुसेसु उववण्णल्लया मणुसा केइं दस उप्पाएंति— केइमाभिणिबोहियणाणमुप्पाएंति, केइं सुदणाणमुप्पाएंति, केइमोहिणाणमुप्पाएंति, केइं मणपज्जवणाणमुप्पाएंति, केइं केवलणाणमुप्पाएंति, केइं सम्मामिच्छत्तमुप्पाएंति, केइं सम्मत्तमुप्पाएंति, केइं संजमा-	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	संजममुप्पाएंति, केइं संजममुप्पाएंति। णो बलदेवत्तं उप्पाएंति, णो वासुदेवत्तमुप्पाएंति, णो चक्कवट्टित्तमुप्पाएंति, णो तित्थयरत्तमुप्पाएंति। केइमंतयडा होदूण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाणयंति सव्वदुक्खाणमंतं परिविजाणंति।	४९६
२३४	सोहम्मीसाण जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवा जधा देवगदिभंगो।	४९७
२३५	आणदादि जाव णवगेवज्ज-विमाणवासियदेवा देवेहि चुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति?	४९८
२३६	एक्कं हि चेव मणुसगदिमागच्छंति।	,,
२३७	मणुस्सेसु उववण्णल्लया मणुस्सा केइं सव्वे उप्पाएंति।	,,
२३८	अणुदिस जाव अवराइद-विमाणवासियदेवा देवेहि चुदसमाणा कदि गदीयो आगच्छंति?	,,
२३९	एक्कं हि चेव मणुसगदिमागच्छंति।	,,
२४०	मणुसेसु उववण्णल्लया मणुस्सा तेसिमाभिणिबोहियणाणं सुदणाणं णियमा अत्थि। ओहिणाणं सिया अत्थि, सिया णत्थि। केइं मणपज्जवणाणमुप्पाएंति, केवलणाणमुप्पाएंति। सम्मामिच्छत्तं णत्थि, सम्मत्तं णियमा अत्थि। केइं संजमासंजममुप्पाएंति, संजमं णियमा उप्पाएंति। केइं बलदेवत्तमुप्पाएंति, णो वासुदेवत्तमुप्पाएंति। केइं चक्कवट्टित्तमुप्पाएंति, केइं तित्थयरत्तमुप्पाएंति, केइमंतयडा होदूण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाणयंति सव्वदुक्खाणमंतं परिजाणंति।	४९८
२४१	सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा देवेहि चुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति?	५००
२४२	एक्कं हि चेव मणुसगदिमागच्छंति।	,,
२४३	मणुसेसु उववण्णल्लया मणुसा तेसिमाभिणिबोहियणाणं सुदणाणं ओहिणाणं च णियमा अत्थि। केइं मणपज्जवणाणमुप्पाएंति, केवलणाणं णियमा उप्पाएंति। सम्मामिच्छत्तं णत्थि, सम्मत्तं णियमा अत्थि। केइं संजमासंजम-	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	मुप्पाएंति । संजमं णियमा उप्पाएंति । केइं बलदेवत्त-मुप्पाएंति, णो वासुदेवत्त-मुप्पाएंति । केइं चक्कवट्टित्त-मुप्पाएंति, केइं तित्थयरत्त-मुप्पाएंति । सव्वे ते णियमा अंतयडा होदूण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाण-यंति सव्वदुक्खाणमंतं परि-विजाणंति ।	५००

२ अवतरण-गाथा-सूची

क्रम संख्या	गाथा	पृष्ठ	अन्यत्र कहां
२	असरीरा जीवघणा	१०	
२	इच्छिदणिसेयभत्तो	१७३	
१८	उदए संकम-उदए	२९५	गो. क. ४४०
२७	उदओ च अणंत-	३६२	ज. ध. १०९३
४	उवसामगो य सव्वो	२३९	,, ९५८
			लब्धि. ९९
१	एक्को मे सस्सदो	९	भावपा. ५९
			मूला. २,४८
२३	एक्कं च ठिदि-	३४७	ज. ध. १०९८
			लब्धि. ४०४
२२	ओकड्डदि जे अंसे	,,	ज. ध. १०९७
			लब्धि. ४०३
२०	ओवट्टणा जहण्णा	३४६	ज. ध. १०९६
			लब्धि. ४०१
१३	कम्माणि जस्स	२४२	ज. ध. ९६१
३२	किट्टी करेदि	३८२	,, ११३२
३४	किट्टी च ट्ठिदि-	३८३	,, ११३४
१	खयउवसमिय-	१३९, २०५	गो. जी. ६५०
			लब्धि. ३
			भ. आ. २०७६
३३	गुणसेडि अणंत-	३८२	ज. ध. ११३३
२९	गुणसेडि अणंत-	३६३	,, १०९३
२६	गुणसेडि असंखेज्जा	३६०	,, १०९४
			लब्धि. ४४२
७	जस्सोदएण जीवो	३६	
४	जारिसओ परि-	१२	
२	जीवपरिणामहेऊ	१२	समय. ८६
			कर्मप्र. पृ. १३८
३	जीवस्तथा निर्वृति-	४९७	सौ. १६, २९
१०	णलया बाहू य	५४	गो. क. २८
१	दर्शनेन जिनेन्द्राणां	४२८	
२	दीपो यथा निर्वृति-	४९७	सौ. १६, २८
१७	दंसणमोहक्खवणा-	२४५	ज. ध. ९६३
२	दंसणमोहस्सुव-	२३९	,, ९५७
६	नयोपनयैकान्तानां	२८	आ. मी. १०७
१	प्रक्षेपकसंक्षेपेण	१५८	
८	प्रतिषेधयति समस्तं	४४	
३१	बारस णव छ त्तिण्णि	३८१	ज. ध. ११३१
१९	बारस य वेदणिज्जे	३४३	
२५	बंधेण होदि उदओ	३५९	ज. ध. १०९२
			लब्धि. ४४१
२८	बंधेण होदि उदओ	३६२	ज. ध. १०९३
३०	बंधोदएहि णियमा	३६३	,, १०९४
९	भावस्तत्परिणामो	४६	
८	मिच्छत्तपच्चओ	२४०	ज. ध. ९५९
६	मिच्छत्तवेदणीयं	,,	,, ,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रम संख्या	गाथा	पृष्ठ	अन्यत्र कहां	क्रम संख्या	गाथा	पृष्ठ	अन्यत्र कहां
१५	मिच्छाइट्ठी णियमा	२४२	,, ९६२	७	सव्वम्हि ट्ठिदि-	२४०	ज. ध. ९५९
			गो. जी. १८	३५	सव्वाओ किट्टीओ	३८३	,, ११३५
११	रसाद्रक्तं ततो मांसं	६३		५	सायारे पट्ठवओ	२३९	,, ९५८
१२	सम्मत्तपढमलंभ-	२४२	ज. ध. ९६१				लब्धि. १०१
११	सम्मत्तपढमलंभो	२४१	,, ९६०	२१	संकामेदुक्कड्डदि	३४६	ज. ध. १०९६
१४	सम्माइट्ठी सद्दहदि	२४२	,, ९६१				लब्धि. ४०१
			गो. जी. २७	२४	संछुहइ पुरिसवेदे	३५९	ज. ध. १०९०
१६	सम्मामिच्छाइट्ठी	२४१	ज. ध. ९६०				लब्धि. ४३८
१४	सम्मामिच्छाइट्ठी	२४३	,, ९६२	५	हेतावेवम्प्रकारादौ	१४	धनं. ना.
३	सव्वणिरयभवणेसु	२३९	,, ९५७				मा. ३९

३ न्यायोक्तियां

क्रम संख्या	न्याय	पृष्ठ	क्रम संख्या	न्याय	पृष्ठ
१	अन्वयव्यतिरेकाभ्यां वस्तुनिर्णयः इति न्यायात् ।	९५	३	जहासंभवं विसेसणविसेसिय-भावो त्ति णायादो ।	२४४
२	जहा उद्देसो तहा णिद्देसो त्ति णायादो ।	४, ५	४	लक्खणविणासे लक्खविणा-सस्स णाइयत्तादो ।	५८

४ ग्रन्थोल्लेख

१ जीवट्ठाणं

१. भूदबलिभयवंतस्सुवएसेण उवसमसेडीदो ओदिण्णो ण सासणत्तं पडिवज्जदि । ३३१

२. जीवट्ठाणाभिप्पाएण पुण संखेज्जवस्साउएसु ण संभवदि, उपसमसेडीदो ओदिण्णस्स सासणगुणगमणाभावा । ४४४

२ दव्वाणिओगद्दार

१. होदु चे ण, पईदियसासणदव्वस्स दव्वाणिओगद्दारे पमाणपरूवणाभावा । ४७१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृष्ठ

३ पाहुडचुण्णिसुत्त

१. एदं वक्खाणं पाहुडचुण्णिसुत्तेण अपुव्वकरणपढमसमयट्ठिदिबंधस्स सागरोवमकोडीलक्खपुधत्तपमाणं परूवयंतेण विरुज्झदे त्ति णासंकणिज्जं, तस्स तंतंतरत्तादो। १७७

२. किंतु मज्झदीवयं कादूण सिस्सपडिबोहणट्ठं एसो दंसणमोहणीय-उवसामओ त्ति जइवसहेण भणिदं। २३३

३. मिच्छत्तणुभागादो सम्मामिच्छत्ताणुभागो अणंतगुणहीणो, तत्तो सम्मत्ताणुभागो अणंतगुणहीणो त्ति पाहुडसुत्ते णिद्दिट्ठादो। २३५

४. एदिस्से उवसमसम्मत्तद्धाए अब्भंतरादो असंजमं पि गच्छेज्ज, संजमासंजमं पि गच्छेज्ज, छसु आवलियासु सेसासु आसाणं पि गच्छेज्ज। आसाणं पुण गदो जदि मरदि, ण सक्को णिरयगदिं तिरिक्खगदिं मणुसगदिं वा गंतुं, णियमा देवगदिं गच्छदि। एसो पाहुडचुण्णिसुत्ताभिप्पाओ। ३३१

५. एवं सासणसम्मागुणेण मणुस्सेसु पविसिय सासणगुणेण णिग्गमो वत्तव्वो, अण्णहा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण कालेण विणा सासणगुणाणुप्पत्तीदो। एदं पाहुडसुत्ताभिप्पाएण भणिदं। ४४४

४ तत्त्वार्थसूत्र

१. णइसग्गियमवि पढमसम्मत्तं तच्चट्ठे उत्तं, तं हि एत्थेव दट्ठव्वं। ४३०

---

५ पारिभाषिक-शब्दसूची

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
अ		अतिप्रसंग	९०
अक्षरवृद्धि	२२	अतिस्थापना	२२५, २२६, २२८
अक्षरश्रुत	,,	अतिस्थापनावली	२५०, ३०९
अक्षरसमास	२३	अत्यन्ताभाव	४२६
अक्षिप्र-अवग्रह	२०	अधःप्रवृत्तकरण	२१७, २२२, २४८, २५२
अगुरुगलघु	५८	अधःप्रवृत्तकरणविशुद्धि	२१४
अचक्षुदर्शन	३३		
अचक्षुदर्शनावरणीय	३१, ३३	अधःप्रवृत्तसंक्रम	१२९, १३०, २८९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्द	पृष्ठ
अधःस्थितिगलन	१७०
अध्रुव-अवग्रह	२१
अननुगामी	४९९
अनन्तगुणवृद्धि	२२, १९९
अनन्तभागवृद्धि	,, ,,
अनन्तरोपनिधा	३७०, ३७१, ३८६, ३९८
अनन्तानुबन्ध	४२
अनन्तानुबन्धिविसंयोजनक्रिया	२३५
अनन्तानुबन्धिविसंयोजना	२८९
अनन्तानुबन्धी	४१
अनवस्था	३४, ५७, ६४, १४४, १६४, ३०३
अनाकारोपयोग	२०७
अनादिमिथ्यादृष्टि	२३१
अनादेय	६५
अनिःसृत-अवग्रह	२०
अनियोग	२४
अनियोगसमास	,,
अनिवृत्तिकरण	२२१, २२२, २२९, २४८, २५२
अनिवृत्तिकरणविशुद्धि	२१४
अनुकृष्टि	२१६
अनुगामी	४९९
अनुक्त-अवग्रह	२०
अनुभागकाण्डक	२२२
अनुभागकाण्डकघात	२०६
अनुभागकाण्डकोत्कीरणद्धा	२२८
अनुभागघात	२३०, २३४
अनुभागबन्ध	१९८, २००
अनुभागबन्धक	२१०
अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान	२००
अनुभागवृद्धि	२१३
अनुभागवेदक	,,
अनुभागसत्कार्मिक	२०९
अनुभागस्पर्धक	२२८

शब्द	पृष्ठ
अनुमान	१५१
अनेकान्त	११५
अन्तकृत्	४८९, ४९२, ४९५, ४२६
अन्तर	२३१, २३२, २९०
अन्तरकरण	२३१, ३००
अन्तरकृष्टि	३९०, ३९१
अन्तरकृतप्रथमसमय	३२५, ३५८
अन्तरघात	२३४
अन्तरद्विचरमफालि	२९१
अन्तरद्विसमयकृत	३३५, ४१०
अन्तरप्रथमसमयकृत	३०३, ३०४
अन्तरस्थिति	२३२, २३४
अन्तराय	१४
अन्वयमुख	९५
अपकर्षण	१४८, १७१
अपकर्षणभागहार	२२४, २२७
अपर्याप्त	६२, ४१९
अपवर्तनोद्वर्तनकरण	३६४
अपूर्वकरण	२२०, २२१, २४८, २५२
अपूर्वकरणविशुद्धि	२१४
अपूर्वकृष्टि	३८५
अपूर्वस्पर्द्धक	३६५, ४१५
अपूर्वस्पर्द्धकशलाका	३६८
अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमानस्थान	२७६, २७८
अप्रत्याख्यान	४३
अप्रत्याख्यानावरणीय	४४
अप्रशस्तविहायोगति	७६
अप्रशस्तोपशामना	२५४
अप्रशस्तोपशामनाकरण	२९५, ३४९
अबद्धायुष्क	२०८
अभिनिबोध	१५
अमूर्तत्व	४९०
अरति	४७
अर्थपरिणाम	४९०
अर्थापत्ति	९६, ९७
अर्थावग्रह	१६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्द	पृष्ठ
अर्धनाराचशरीरसंहनन	७४
अर्धपुद्गलपरिवर्तन	३
अवग्रह	१६, १८
अवधिज्ञान	२५, ४८४, ४८६, ४८८
अवधिज्ञानावरणीय	२६
अवधिदर्शन	३३
अवधिदर्शनावरणीय	३१, ३३
अवस्थितगुणश्रेणी	२७३
अवस्थितगुणश्रेणीनिक्षेप	,,
अवस्थितप्रक्षेप	२००
अवस्थितवेदक	३१७
अवहारकाल	३६९
अवाय	१७, १८
अविभागप्रतिच्छेदाग्र	३६६
अव्यवस्थापत्ति	१०९
अशुभनामकर्म	६४
अश्वकर्णकरण	३६४
अश्वकर्णकरणाद्धा	३७४
असातावेदनीय	३५
असंक्षेपाद्धा	१६७, १७०
असंख्येयगुणवृद्धि	२२, १९९
असंख्येयभागवृद्धि	,, ,,
असंप्राप्तसृपाटिकाशरीरसंहनन	७४
असंयतसम्यग्दृष्टि	४६४, ४६७
अस्थिर	६३
अहमिन्द्रत्व	४२६
अहोरात्र	६३
आ	
आगम	१५१
आगाल	२३३, ३०८
आतप	६०
आदिवर्गणा	३६६
आदेय	६५
आदोलकरण	३६४
आनुपूर्वी	५६
आनुपूर्वीसंक्रम	३०२, ३०७
आबाधा	१४६, १४७, १४८
आबाधाकाण्डक	१४८, १४९
आभिनिबोधिकज्ञान	१६, ४८४, ४८६, ४८८
आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय	१५, २१
आम्लनामकर्म	७५
आयु	१२
आवली	२३३, ३०८
आवारक	९
आवृतकरणउपशामक	३०३
आवृतकरणसंक्रामक	३५८
आव्रियमाण	८
आहारशरीर	६९
आहारशरीरअंगोपांग	७३
आहारशरीरबन्धन	७०
आहारशरीरसंघात	,,
ई	
ईहा	१७
उ	
उक्त-अवग्रह	२०
उच्चगोत्र	७७
उच्छ्वास	६०
उत्कर्षण	१६८, १७१
उत्कृष्ट निक्षेप	२२६
उत्तरप्रकृति	६
उत्पन्नलय	४८४, ४८६, ४८७, ४८८
उत्पादस्थान	२८३
उदय	२०१, २०२, २१३
उदयादिअवस्थितगुणश्रेणी	२५९
उदयादिगुणश्रेणी	३१८, ३२०
उदयावली	२२५, ३०८
उदयावलिप्रविशमानअनुभाग	२५९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्द	पृष्ठ
उदयावलिबाहिर	२३३
उदयावलिबाहिरसर्वह्रस्वस्थिति	२५९
उदयावलिबाहिरअनुभाग	,,
उदीरणा	२०१, २०२, २१४, ३०२
उद्योत	६०
उद्वर्तितसमान	४४६, ४५१, ४५२, ४८४, ४८५
उपघात	५९
उपरिमनिक्षेप	२२६
उपरिमस्थिति	२२५, २३२
उपशमश्रेणी	२०६, ३०५
उपशामक	२३३
उष्णनामकर्म	७५
ऋ	
ऋजुमति	२८
ए	
एकविध-अवग्रह	२०
एकान्तवृद्धावृद्धि	२७४, २७५
एकान्तानुवृद्धि	२७३, २७४
एकावग्रह	१९
एकेन्द्रियजाति	६७
औ	
औदारिकशरीर	६९
औदारिकशरीरअंगोपांग	७३
औदारिकशरीरबन्धन	७०
औदारिकशरीरसंघात	,,
क	
कटुकनामकर्म	७५
कदलीघात	१७०
कपाटसमुद्घात	४१३
कपिल	४९०

शब्द	पृष्ठ
कर्कशनामकर्म	७५
कर्मत्व	१२
कर्मभूमि	२४५
कला	६३
कषाय	४०
कषायनामकर्म	७५
काण्डकघात	२३५
कार्मणशरीर	६९
कार्मणशरीरबन्धन	७०
कार्मणशरीरसंघात	,,
कालगतसमान	४५४, ४५५
काललब्धि	२०५
काष्ठा	६३
कीलकशरीरसंहनन	७४
कुब्जकशरीरसंस्थान	७१
कृतकरणीयवेदक-सम्यग्दृष्टि	४३८, ४४१
कृतकृत्य	२४७, २६२
कृतकृत्यकाल	२६३, २६४
कृष्टि	३१३
कृष्टि-अन्तर	३७६
कृष्टिकरणद्धा	३७४, ३८२
कृष्टिवेदकाद्धा	३७४, ३८४
कृष्ण	२४७
कृष्णवर्णनामकर्म	७४
केवलज्ञान	२९, ३४, ४८९, ४९२
केवलदर्शन	३३, ३४
केवलिसमुद्घात	४१२
केवली	२४६
केशवत्व	४८९, ४९२, ४९५, ४९६
क्रोध	४१
क्षपितकर्मांशिक	२५७
क्षयोपशमलब्धि	२०४
क्षायिकसम्यग्दृष्टि	४३८, ४४१
क्षिप्र-अवग्रह	२०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्द	पृष्ठ
ग	
गति	५०
गति-आगति	३
गर्भोपक्रान्तिक	४२८
गलितशेषगुणश्रेणी	२४९, २५३, ३४५
गुणप्रत्यय-अवधि	२९
गुणश्रेणी	२२२, २२४, २२७
गुणश्रेणीनिक्षेप	२२८, २३२
गुणश्रेणीनिक्षेपाग्राग्र	२३२
गुणश्रेणीशीर्ष	,,
गुणसंक्रम	२२२, २३६, २४९
गुणहानि	१५१, १६३, १६५
गुणितकर्मांशिक	२५६, २५८
गुणित-क्षपित-घोटमान	२५७
गुरुकनामकर्म	७५
गोत्र	१३
गोपुच्छद्रव्य	२६०
गोपुच्छविशेष	१५३
गंध	५५
घ	
घोटमान	२५७
च	
चक्रवर्तित्व	४८९, ४९२, ४९५, ४९६
चक्षुदर्शन	३३
चक्षुदर्शनावरणीय	३१, ३३
चतुःस्थानिकअनुभागबन्धक	२१०
चतुःस्थानिकअनुभागवेदक	२१३
चतुःस्थानिकअनुभागसत्कर्मिक	२०९
चतुरिन्द्रियजाति	६८
चरमफालि	२९१
चरमवर्गणा	२०१
चारित्र	४०
चारित्रमोहनीय	३७, ४०
ज	
जघन्यकृष्टि-अन्तर	३७६
जघन्यवर्गणा	२०१
जघन्यस्थिति	१८०
जघन्यस्पर्द्धक	३१३
जाति	५१
जातिस्मरण	४३३
जिन	२४६
जीवविपाकित्व	३६
जीवविपाकी	११४
जीवसमास	२
जुगुप्सा	४८
ज्ञानावरणीय	६, ९
त	
तद्व्यतिरिक्तस्थान	२८३
तार्किक	४९०, ४९१
तालप्रलम्बसूत्र	२३०
तिक्तनामकर्म	७५
तिर्यग्गति	६७
तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी	७६
तिर्यगायु	४९
तीर्थंकरत्व	४८९, ४९२, ४९५, ४९६
तीर्थंकर	२४६
तीर्थंकरनामकर्म	६७
तीसिय	१८६
तृतीयसंग्रहकृष्टि-अन्तर	३७७
तैजसशरीर	६९
तैजसशरीरबन्धन	७०
तैजसशरीरसंघात	,,
त्रस	६१
त्रिकरण	२०४
त्रीन्द्रियजाति	६८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
द		द्व्यर्द्धगुणहानि	१५२
दण्डसमुद्घात	४१२	**ध**	
दर्शन	९, ३२, ३३, ३८	धारणा	१८
दर्शनमोहक्षपणानिष्ठापक	२४५	ध्रुव-अवग्रह	२१
दर्शनमोहक्षपणाप्रस्थापक	२४५	ध्रुवबन्धी	८९, ११८
दर्शनमोहनीय	३७, ३८	ध्रुवोदय	१०३
दर्शनावरणीय	१०	**न**	
दानान्तराय	७८	नपुंसक	४६
दिवसपृथक्त्व	४२६	नपुंसकवेद	४७
दुःख	३५	नरकगति	६७
दुरभिगन्ध	७५	नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी	७६
दुर्भग	६५	नानागुणहानिशलाका	१५१, १५२, १६३, १६५
दुस्वर	,,		
दूरापकृष्टि	२५१, २५५	नानात्व	३३२, ४०७
दृश्यमान द्रव्य	२६०	नाम	१३
देवगति	६७	नारकायु	४८
देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी	७६	नाराचशरीरसंहनन	७४
देवर्द्धिदर्शन	४३४	निःसृत-अवग्रह	२०
देवर्द्धिदर्शननिबन्धन	४३३	निकाचनाकरण	२९५, ३४९
देवायु	४९	निकाचित	४२८
देशघाती	२९९	निक्षेप	२२५, २२७, २२८
देशजिन	२४६	निदान	५०१
देशना	२०४	निद्रा	३१, ३२
देशावधि	२५	निद्रानिद्रा	३१
देशोपशम	२४१	निधत्त	४२७
दोगुणहानि	१५३	निधत्तिकरण	२९५, ३४९
द्रव्यसंयम	४६५, ४७३	निर्वर्गणा	३८५
द्वितीयस्थिति	२३२, २५३	निर्वर्गणाकाण्डक	२१५, २१६, २१८
द्वितीयसंग्रहकृष्टि-अन्तर	३७७	निर्वृति	४९७
द्विस्थानिकअनुभागबन्धक	२१०	निषेक	१४६, १४७, १५०
द्विस्थानिकअनुभागवेदक	२१३	निषेकभागहार	१५३
द्विस्थानिकअनुभागसत्कर्मिक	२०९	निषेकस्थिति	१६६, १६७
द्वीन्द्रियजाति	६८	नीचगोत्र	७७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्द	पृष्ठ
नीलवर्ण	७४
नैयायिक	४२०
नैसर्गिक प्रथमसम्यक्त्व	४३०
नोकषाय	४०, ४१
नोकषायवेदनीय	४५
न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान	७१
प	
पद	२३
पदनिक्षेप	१५२
पदसमास	२३
परघात	५९
परप्रकृतिसंक्रमण	१७१
परभविक नामकर्म	२९३, ३३०, ३४७
परमावधि	२५
परिणामप्रत्यय	३१७
परिभोग	७८
परिभोगान्तराय	,,
परोक्ष	२६
परंपरोपनिधा	३७८
पर्याप्त	६२, ४१९
पर्याय	२२
पर्यायसमास	,,
पिंडप्रकृति	४९
पुद्‌गलविपाकित्व	३६
पुद्‌गलविपाकी	११४
पुरुष	४६
पुरुषवेद	४७
पूर्व	२५
पूर्वसमास	,,
पंचेन्द्रियजाति	६८
प्रकृतिबन्ध	१९८, २००
प्रक्षेप	१५२

शब्द	पृष्ठ
प्रक्षेपोत्तरक्रम	१८२
प्रचला	३१, ३२
प्रचलाप्रचला	३१
प्रतिपत्ति	२४
प्रतिपत्तिसमास	,,
प्रतिपद्यमानस्थान	२७६, २७८
प्रतिपातस्थान	२८३
प्रतिपाती अवधि	५०१
प्रत्यक्ष	२६
प्रत्याख्यान	४३, ४४
प्रत्याख्यानावरणीय	४४
प्रत्यागाल	२३३, ३०८
प्रत्यावली	२३३, २३४, ३०८
प्रत्येकशरीर	६२
प्रथमनिषेक	१७३
प्रथमसमयउपशमसम्यग्दृष्टि	२३५
प्रथमसम्यक्त्व	३, २०४, २०६, २२३, ४१८
प्रथमसंग्रहकृष्टि-अन्तर	२७७
प्रथमास्थिति	२३२, २३३, ३०८
प्रदेशघात	२३०, २३४
प्रदेशबन्ध	१९८, २००
प्रदेशसंक्रम	२५६, २५८
प्रदेशाग्र	२२४, २२५
प्रशस्तविहायोगति	७६
प्राभृत	२५
प्राभृतसमास	,,
प्राभृतप्राभृत	२४
प्राभृतप्राभृतसमास	,,
प्रायोग्यलब्धि	२०४
ब	
बद्धायुष्क	२०८
बहु-अवग्रह	१९
बलदेवत्व	४८९, ४९२, ४९५, ४९६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्द	पृष्ठ
बहुविध-अवग्रह	२०
बादर	६१
बौद्ध	४९७
बंध	८३, ८५, ४९०
बंधावली	१६८, २०२
भ	
भय	४७
भवप्रत्ययअवधि	२९
भावसंयम	४६५
भुजाकारबन्ध	१८१
भुज्यमानायु	१९३
भूतपूर्व नय	१२९
भोग	७८
भोगभूमि	२४५
भोगान्तराय	७८
म	
मनःपर्ययज्ञान	२८, ४८८, ४९२, ४९५
मनःपर्ययज्ञानावरणीय	२९
मधुर नामकर्म	७५
मनुष्यगति	६७
मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी	७६
मनुष्यायु	४९
मान	४१
माया	,,
मिथ्यात्व	३९
मिथ्यादृष्टि	४४६, ४५२, ४५४
मीमांसक	४९०
मूलप्रकृति	५
मृदुक नामकर्म	७५
मोक्ष	४९०
मोहनीय	११
मंथसमुद्घात	४१३
य	
योगस्थान	२०१
र	
रति	४७
रस	५५
रुक्ष नामकर्म	७५
रुधिर नामकर्म	७४
ल	
लघुक नामकर्म	७५
लाभान्तराय	७८
लोकपूरणसमुद्घात	४१३
लोकबिन्दुसार	२५
लोभ	४१
व	
वज्रऋषभवज्रनाराचशरीरसंहनन	७३
वज्रनाराचशरीरसंहनन	,,
वर्गणा	२०१, ३७०
वर्ण	५५
वर्द्धनकुमार	२४७
वस्तु	२५
वस्तुसमास	,,
वामनशरीरसंस्थान	७२
वासुदेवत्व	४८९, ४९२, ४९५, ४९६
विधिनय	९१
विध्यातसंक्रम	२३६, २८९
विपुलमति	२८
विशुद्धि	१८०, २०४
विशुद्धिलब्धि	,,
विहायोगति	६१
वीचारस्थान	१८५, १८७, १९७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्द	पृष्ठ
वीचारस्थानत्व	१५०
वीर्यान्तराय	७८
वेदनीय	१०
वैक्रियिकशरीर	६९
वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग	७३
वैक्रियिकशरीरबन्धन	७०
वैक्रियिकशरीरसंघात	,,
वैशेषिक	४९०
व्यतिरेक नय	९२
व्यतिरेकपर्यायार्थिक नय	९१
व्यतिरेकमुख	९५
व्यभिचार	४६३, ४६५
व्यंजनपरिणाम	४९०
व्यंजनाग्रह	१६
श	
शरीर नामकर्म	५२
शरीरबन्धन	५३
शरीरसंघात	,,
शरीरसंस्थान	,,
शरीरांगोपांग	५४
शलाका	१५२
शीत	७५
शुक्ल	७४
शुभ	६४
शैलेश्य	४१७
शोक	४७
श्रुतज्ञान	१८, ४८४, ४८६
श्रुतज्ञानावरणीय	२१, २५
ष	
षट्स्थान	२००
षड्वृद्धि	२२, १९९
स	
सत्त्व	२०१
सप्तविधपरिवर्तन	३
समचतुरस्रसंस्थान	७१
समयप्रबद्ध	१४६, १४८, २५६
समुच्छिन्नक्रियानिवृत्तिशुक्लध्यान	४१७
सम्मूर्छिम	४२८
सम्यक्त्व	३९, ४८४, ४८६, ४८८
सम्यग्दृष्टि	४५१
सम्यग्मिथ्यात्व	३९, ४८५, ४८६
सम्यग्मिथ्यादृष्टि	४५०, ४६३, ४६७
सर्वविशुद्ध	२१४
सर्वविशुद्धमिथ्यादृष्टि	२६७
सर्वसंक्रम	१३०, २४९
सर्वह्रस्वस्थिति	२५९
सर्वावधि	२५
सर्वोपशम	२४१
साकारोपयुक्त	२०७
साधारणशरीर	६३
सासनगुण	४८५
सासादनसम्यक्त्व	४८७
सासादनसम्यग्दृष्टि	४४६, ४५८, ४५९, ४६६, ४७१
सुख	३५
सुभग	६५
सुरभिगन्ध	७५
सुस्वर	६५
सूक्ष्म	६२
सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिध्यान	४१६
सूक्ष्मसाम्परायिककृष्टि	३९६
संक्रमण	१६८
संक्लेश	१८०
संख्येयगुणवृद्धि	२२, १९९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्द	पृष्ठ
संख्येयभागवृद्धि	२२, १९९
संग्रहकृष्टि	३७१
संग्रहनय	९९, १०१, १०४
संघात	२३
संघातसमास	,,
संज्वलन	४४
संयम	४८८, ४९२, ४९५
संयमासंयम	४८५, ४८६, ४८८
संहनन	५४
सांख्य	४९०
स्तिबुकसंक्रमण	३११, ३१२, ३१६
स्त्यानगृद्धि	३१, ३२
स्त्री	४६
स्त्रीवेद	४७
स्थावर	६१
स्थिति	१४६
स्थितिकाण्डक	२२२, २२४
स्थितिकाण्डकघात	२०६
स्थितिकाण्डकचरमफालि	२२८, २२९
स्थितिघात	२३०, २३४
स्थितिबन्ध	१९९, २००
स्थितिबन्धस्थान	१९९
स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान	,,
स्थितिबन्धापसरण	२३०, २३४
स्थितिसंक्रम	२५६, २५८
स्थिर	६३
स्निग्ध नामकर्म	७५
स्पर्श	५५
स्वातिशरीरसंस्थान	७१
स्वास्थ्य	४९१
ह	
हायमान अवधि	५०१
हारिद्रवर्ण नामकर्म	७४
हास्य	४७
हुण्डकशरीरसंस्थान	७२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेष टिप्पण

पृ. १ पर प्रथम ही धवलाकारकी मंगलाचरणात्मक गाथाके अन्तिम चरणमें 'अमलिणगुण-चूलियं' पाठकी अपेक्षासे 'निर्मल गुणवाली चूलिका' ऐसा अर्थ किया गया है। किन्तु 'मलिणगुणचूलियं' ही पाठ लेकर भी यह अर्थ किया जा सकता है कि यहां उस "चूलिकाको कहता हूं जिसमें जीवके मलिन गुणों अर्थात् कर्मोंका विवरण दिया गया है।"

पृ. ३ पंक्ति ३ में जीवके 'सत्तविहपरियट्टेसु' अर्थात् सात प्रकारके परिवर्तनोंका उल्लेख है। आगे पृ. १४ की पंक्ति ८ में पुनः 'सत्तसु संसारेसु' अर्थात् सात प्रकारके संसारका उल्लेख है। ये सातविध परिवर्तन कौनसे है? तत्त्वार्थसूत्र (२, १०) की सर्वार्थसिद्धि टीकामें पंचविध परिवर्तन बतलाये गये हैं— द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव। पर सात परिवर्तनोंका कोई उल्लेख हमारे ध्यानमें नहीं आता। सर्वार्थसिद्धिकारने द्रव्यपरिवर्तनके दो प्रकार अलग अलग बतलाये हैं— एक नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन और दूसरा कर्मद्रव्यपरिवर्तन। यदि इन्हीं भेदोंकी अलग अलग विवक्षा ली जाय तो परिवर्तन छह हुए। पर राजवार्तिककारने उक्त पांच परिवर्तनोंका उल्लेख कर बंधके दो भेद किये हैं, एक द्रव्यबंध और दूसरा भावबंध। और फिर द्रव्यबंधके कर्मद्रव्यबंध और नोकर्मद्रव्यबंध ऐसे दो भेद सूचित किये हैं। इस प्रकार कर्मद्रव्यबंध, नोकर्मद्रव्यबंध भावबंध, क्षेत्र, काल, भव और भाव, ये सात परिवर्तन हो सकते हैं। भावबंधपरिवर्तन और भावपरिवर्तनमें भेद यह होगा कि पहला बंधसे और दूसरा उसके उदय या वेदनसे सम्बन्ध रखता है। ये ही सात परिवर्तन धवलाकारकी दृष्टिमें है या अन्य कोई यह निश्चयतः कहा नहीं जा सकता।

पृ. ५ पंक्ति ८–९ में 'अवयविणि' यह रूप प्राकृतमें असाधारण है। प्राकृतका सामान्य नियम तो यह है कि संस्कृतके हलन्त शब्दोंके अन्त हलका लोप करके शेष अजन्त रूपमें ही विभक्ति जोड़ी जाती है जिसके अनुसार संस्कृत 'अवयविन्' का प्राकृतमें सप्तमी विभक्ति सहित रूप 'अवयविम्मि' या 'अवयविम्हि' होना चाहिये। पर यहां अन्त न् का लोप न कर संस्कृतके अनुसार 'अवयविणि' रूप बनाया गया है। ऐसे उदाहरण प्रायः नहीं मिलते।

पृ. २० पं. ५ में निःसृतावग्रह और अनिःसृतावग्रहका जो एक दूसरा स्वरूप धवलाकारने बतलाया है वह जीवकांड गाथा ३१२–३१३ में बतलाये हुए स्वरूपसे ठीक विपरीत है। अर्थात् जिसे धवलाकारने निःसृतावग्रहका स्वरूप कहा है, उसे जीवकांडकार अनिःसृतावग्रहका लक्षण मानते हैं और उससे विपरीत तदनुसार ही विपरीत। यह भेद ध्यान देने योग्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ. ७२ पं. ४ में हुंडसंस्थानके ३१ भेदोंका संकेत किया गया है । हमने विशेषार्थमें समझाया है कि ये इकतीस भेद किस प्रकार हो सकते हैं । पर अन्यत्र कहीं ऐसे भेदोंका उल्लेख हमारे दृष्टिगोचर नहीं हुआ ।

पृ. ८१. यहां सूत्र ५ में जो 'एक्कम्हि चेव ट्ठा[ण]' पद आये हैं उनमें एक्कम्हि रूप सप्तम्यन्त पदकी टीकाकारने इस प्रकार उपपत्ति बैठाइ ह कि 'एक्कम्हि' से 'एक ही अवस्थाविशेषमें' ऐसा अर्थ लेना चाहिये। यही उपपत्ति उन्होंने सूत्र ९ में ग्रहण की है जहां उन्होंने एक्कम्हि का अर्थ 'भावे' ग्रहण किया है। किन्तु आगे सूत्र १५ में उन्होंने एक्कम्हि को सप्तम्यर्थक न मानकर प्रथमाके अर्थमें ग्रहण किया है और उसे 'ट्ठाणं' का विशेषण माना है, तथा उसके लिये प्रमाण भी यह दिया है कि "प्राकृतमें प्रथमाके अर्थमें षष्ठी व सप्तमी विभक्ति की प्रवृत्ति संभव है।" यहांसे आगे सूत्र १८ में उन्होंने उसे इसी अर्थमें ग्रहण किया है। पर सूत्र २१ में एक और बेढंगी परिस्थिति उत्पन्न हुई है, क्योंकि यहां 'एदासिं बावीसाए पयडीणं एक्कम्हि चेव ट्ठाणं' ऐसा विलक्षण प्रयोग आया है। यहां उन्होंने एक्कम्हि को 'बावीसाए' का विशेषण बनाया है जिसके लिये उन्हें आधार और आधेयमें एकत्वकी कल्पना करनी पड़ी है। फिर आगे सूत्र २४ में 'एक्कम्हि' को 'एक्कवीसाए' का विशेषण लेने या उसके द्वारा 'इक्कीसप्रकृतिबन्धके योग्य परिणाममें' ऐसा अर्थ लेने का विकल्प दिया गया है। आगे सूत्र २७, ३०, ३३, ३६, ३९, ४२ आदिमें भी चूलिका भरमें 'एक्कम्हि' आया है पर वहां उसका कोई स्पष्टीकरण नहीं किया, बल्कि प्रसंग टाल दिया गया है।

गत्यागति चूलिकामें १३२, १३५ आदि सूत्रोंमें यह प्रयोग फिर दिखाई देता है। सूत्र १३५ की टीकामें धवलाकारने यहां इसका दो प्रकारसे समाधान किया है कि या तो 'देवगदिं' को अव्यय रूपसे छहों कारकोंके योग्य मानकर 'एक्कम्हि' का उसके साथ समानाधिकरणत्व बैठालो, या फिर 'एक्कं' और 'हि' को अलग अलग पद मानकर 'एक्कं' को द्वितीयावाची 'देवगदिं' के साथ लो।

विचार करनेसे ज्ञात होता है कि धवलाकारका अन्तिम समाधान ही सबसे अधिक उपयुक्त है और वह सर्वत्र ठीक घटित हो सकता है। स्थानसमुत्कीर्तन चूलिकामें 'एक्कं' 'ट्ठाणं' का विशेषण बन जाता है और गत्यागति चूलिकामें वह 'गदिं' का विशेषण लिया जा सकता है। इसके समर्थनमें गत्यागति चूलिकाके सूत्र ९४ व ११६ पेश किये जा सकते हैं जहां 'हि' का प्रयोग नहीं हुआ और 'एक्कं तिरिक्खगदिं' 'एक्कं चेव तिरिक्खगदिं' ऐसे प्रयोग पाये जाते हैं। प्रतियोंमें हमें कहीं 'एक्कंहि' और कहीं 'एक्कम्हि' लिखा दिखाई दिया, इससे भी यही अनुमान होता है कि 'हि' पद अलग ही रहा है, किन्तु उसकी पूर्व पदसे सन्धि हो जानेके कारण टीकाकारको उसमें भ्रम हो गया, जिससे उन्हें बहुत खींचातानी कर अर्थसंगति बैठानी पड़ी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ. २१८ पर अधःप्रवृत्तकरणके परिणामोंकी तीव्रमंदताका जो अल्पबहुत्व बतलाया गया है वह लब्धिसार टीका तथा कर्मप्रकृतिमें बतलाये गये क्रमसे कुछ भिन्न है। लब्धिसार टीका व कर्मप्रकृतिमें द्वितीय निर्वर्गणाकांडकके प्रथम समयकी जघन्य विशुद्धिको प्रथम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे अनन्तगुणी कहा है, जबकि धवलाकार स्पष्टतः उसे प्रथम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे अनन्तगुणी नहीं, किन्तु प्रथम निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समयकी जघन्य विशुद्धिसे अनन्तगुणी बतला रहे हैं। विचार करनेसे धवलाकारका मत ही ठीक ज्ञात होता है, क्योंकि उसीके अनुसार ऊपरके भाव नीचेके भावोंसे समान हो सकते हैं। दूसरे मतके अनुसार ऐसा नहीं हो सकेगा।

पृ. २२६ पर लिखा गया विशेषार्थ अशुद्ध है। उसके स्थानपर निम्न विशेषार्थ पढ़िये—

विशेषार्थ—अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर स्थितिकांडकघात प्रारम्भ होता है। जिन प्रकृतियोंका उदय हो रहा है उनकी तो उदयावलीसे ऊपरकी स्थितियोंसे प्रदेशाग्र लेकर उदयप्राप्त स्थितिमें सबसे अधिक दिया जाता है, और उससे ऊपरके समयोंमें उदयावलीके अन्त तक उत्तरोत्तर विशेष हीन दिया जाता है। एक बारमें खंडित किये जानेवाले प्रदेशाग्रका प्रमाण अपकर्षण भागहार अर्थात् पल्योपमके असंख्यातवें भागसे भाजित एक खंडका भी असंख्यातलोक-भाजित एक भाग है। और उदयावलीमें जो उत्तरोत्तर विशेष हीन द्रव्य दिया जाता है उस विशेषका प्रमाण दो गुणहानिका प्रतिभागी है।

इस प्रकार उदयावलीमें तो केवल उदयप्राप्त प्रकृतियोंके स्थितिखंडोंका ही निक्षेप किया जा सकता है। किन्तु उससे ऊपर उदयप्राप्त व अनुदयप्राप्त दोनों प्रकारके प्रकृतियोंके स्थितिखंड निक्षिप्त किये जाते हैं। उदयावलीसे ऊपर गुणश्रेणी रहती है जिसमें असंख्यात समयप्रबद्धसे लेकर उत्तरोत्तर असंख्यातगुणित क्रमसे प्रदेशाग्र दिये जाते हैं। गुणश्रेणीसे ऊपर एकदम पहली स्थितिमें असंख्यातगुणा हीन और फिर उत्तरोत्तर विशेष हीन द्रव्य दिया जाता है, जब तक कि जहांसे द्रव्य उत्कीर्ण किया गया है वह स्थिति आवलिमात्र दूर न रह जाय।

किन्तु उदयावलीसे ठीक ऊपर और गुणश्रेणीसे ठीक नीचे असंख्यात लोकोंसे भाजित एक खंडप्रमाण स्थितियोंमें जो निक्षेप होता है उसमें कुछ विशेषता है। और वह यह कि इस स्थितिके दो भाग किये जाते हैं। उदयावलीसे ठीक ऊपर आवलीके $\frac{2}{3}$ भागसे एक समय हीन प्रमाण स्थितियां तो अतिस्थापना कहलाती हैं जिसमें खंडित द्रव्य दिया ही नहीं जाता। और उससे ऊपर आवलीके $\frac{1}{3}$ भागसे एक समय अधिक प्रमाण स्थितियां निक्षेपके योग्य होती हैं जिनमें पूर्वोक्त विशेष हीन क्रमसे द्रव्य दिया जाता है। यहां एक और विशेषता यह है कि जब इससे ऊपरकी स्थितियोंमें प्रदेशाग्र दिया जाता है तब निक्षेपका प्रमाण तो वही रहता है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर अतिस्थापना उत्तरोत्तर एक एक समय बढ़ती जाती है जब तक कि वह आवलीप्रमाण न हो जाय। इसका अभिप्राय यह है कि यही अतिस्थापना आवलीप्रमाण हो जाने एवं पूर्व उदयावलीके समाप्त हो जाने पर स्वयं उदयावली बन जाती है।

पृ. २३६-२३७ पर अल्पबहुत्वमें सातवें स्थानपर जो स्थितिकांडकके उत्कीरणका काल बतलाया गया है उसके विषयमें विशेषार्थमें कहा ही गया है कि वह लब्धिसारमें नहीं पाया जाता। उसी प्रकार वह जयधवला (अ. पत्र ९५६) पर भी नहीं पाया जाता।

पृ. ३३५ से ३४२ तक जो ९७ पदोंका अल्पबहुत्व दिया गया है वह जयधवला (अ. पत्र १०६१-१०६६) पर पाये जानेवाले चूर्णिसूत्रोंसे ठीक मिलता है, पर लब्धिसार गाथा ३६५ से ३९१ तक पाये जानेवाले अल्पबहुत्वसे कुछ स्थलोंपर भिन्न है। जैसे, १७ वें पदके आगे लब्धिसारमें श्रेणीसे उतरनेवालेके लोभकी प्रथमस्थितिका उल्लेख है, १९ वें पदके आगे उतरनेवालेका मानवेदककाल और नोकषायोंका गुणश्रेणीआयाम ये दो पद अधिक हैं, एवं ७४-७५ पद वहां नहीं हैं, तथा ८४ वें पदसे आगे मोहनीयका अन्तिम स्थितिबन्ध अधिक है।

पृ. ४१४ पर धवलाकारने जो केवलीके योगनिरोधका क्रम बतलाया है वह अन्यत्र पाये जानेवाले क्रमसे कुछ भिन्न है एवं अपनी एक विशेषता रखता है। धवलाकार द्वारा दिये गये क्रममें आठ स्थल हैं और वे इस क्रमसे पाये जाते हैं — (१) बादर कायसे बादर मनका निरोध, (२) बादर कायसे बादर वचनका निरोध, (३) बादर कायसे बादर उच्छ्वासका निरोध, (४) बादर कायसे बादर कायका निरोध, (५) सूक्ष्म कायसे सूक्ष्म मनका निरोध, (६) सूक्ष्म कायसे सूक्ष्म वचनका निरोध, (७) सूक्ष्म कायसे सूक्ष्म उच्छ्वासका निरोध, (८) सूक्ष्म कायसे सूक्ष्म कायका निरोध। भगवती-आराधनाकी गाथा २११३-२११४ में जो क्रम पाया जाता है उसमें उक्त क्रमसे तीन बातोंमें भेद पाया जाता है— एक तो वहां बादर मनसे पूर्व बादर वचनका निरोध होना पाया जाता है। दूसरे बादर कायका निरोध बादर कायसे न होकर सूक्ष्म कायसे होना कहा है। और तीसरे वहां बादर और सूक्ष्म उच्छ्वासोंका कोई उल्लेख नहीं है, जिससे वहां स्थल छह ही पाये जाते हैं। ज्ञानार्णव (प्रकरण ४२) में भी भगवती-आराधनाके अनुसार बादर मनसे पूर्व बादर वचनका निरोध कहा गया है। पर यहां स्थल पांच ही पाये जाते हैं जिनमें अन्तिम तीन स्थल इस प्रकार हैं— (३) सूक्ष्म वचन और सूक्ष्म मनसे बादर कायका निरोध, (४) सूक्ष्म कायसे सूक्ष्म वचनका निरोध, (५) सूक्ष्म कायसे सूक्ष्म मनका निरोध। यहां सूक्ष्म कायके निरोधका कोई उल्लेख ही नहीं है। पंचसंग्रह (१, पृ. ३०-३२) में स्थल सात हैं, क्योंकि सूक्ष्म उच्छ्वासका निरोध यहां नहीं बतलाया। पर भगवती-आराधना व ज्ञानार्णवके समान बादर मनसे पूर्व बादर वचनका निरोध माना है, भगवती-आराधनाके समान सूक्ष्म कायसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बादर कायका निरोध कहा है, और ज्ञानार्णवके समान सूक्ष्म मनसे पूर्व सूक्ष्म वचनके निरोधका कथन है। पर पंचसंग्रह टीकामें एक और मतान्तरका उल्लेख है जिसके अनुसार बादर कायका निरोध बादर काय द्वारा ही होता है, जो धवलाके समान है।

पृ. ४१७ पर अयोगकेवलीके द्विचरम समयमें ७३ व चरम समयमें शेष १२ प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति कही गई है। किन्तु इस विषयमें मतभेद रहा है। प्रथम भाग, सत्प्ररूपणाके सूत्र नं. २७ की टीकामें धवलाकारने द्विचरम समयमें ७२ व अन्तिम समयमें १३ प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति कहकर दूसरे मतका भी उल्लेख किया है। उस स्थलपर तथा प्रस्तुत स्थलपर टिप्पणियोंमें इस विषयपर भिन्न भिन्न मतवाले दिगम्बर व श्वेताम्बर आचार्योंके मतोंका उल्लेख किया जा चुका है। शिवार्यकृत भगवती-आराधनामें ७३ व १२ प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति-वाला मत पाया जाता है, जैसा कि उस ग्रन्थकी निम्न गाथाओंसे प्रकट है—

माणुसगदि तज्जादिं पज्जत्तादिज्जसुभगजसकित्तिं। अण्णदरवेदणीयं तसबादरमुच्चगोदं च ॥ २११७ ॥
मणुसाउगं च वेदेदि अजोगी होदूण तक्काले। तित्थयरणामसहिदो जातो जो वेदि तित्थयरो ॥ २११८ ॥
सो तेण पंचमत्ताकालेण खवेदि चरिमझाणेण। अणुदिण्णाओ दुचरिमसमए सव्वाउ पयडीओ ॥ २१२० ॥
चरिमसमयम्मि तो सो खवेदि वेदिज्जमाणपयडीओ। बारस तित्थयरजिणो एक्कारस सेससव्वण्हू ॥ २१२१ ॥

किन्तु शुभचन्द्रकृत ज्ञाणार्णवके ४२ वें प्रकरणमें ७२ व १३ प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति-वाला मत पाया जाता है। यथा—

द्वासप्ततिर्विलीयन्ते कर्मप्रकृतयो द्रुतम्। उपान्त्ये देवदेवस्य मुक्तिश्रीप्रतिबन्धकाः ॥ ५२ ॥
विलयं वीतरागस्य पुनर्यान्ति त्रयोदश। चरमे समये सद्यः पर्यन्ते या व्यवस्थिताः ॥ ५४ ॥

पृ. ४४२ पर सूत्र ६४ और ६५ के बीच एक सूत्र छूटा हुआ प्रतीत होता है जो इस प्रकार होना चाहिये—

' केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णींति '

यद्यपि यह हमारी प्रतियोंमें पाया नहीं गया, पर पूर्वापर प्रसंगको देखते हुए कोई कारण नहीं है कि प्रकृत जीव सासादन गुणस्थान सहित आकर सासादन गुणस्थान सहित निर्गमन न कर सकें।

पृ. ४९०, पंक्ति ८ में 'तार्किकद्वय' से संभवतः नैयायिक और वैशेषिक, इन दोनोंसे अभिप्राय है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन साहित्य उद्धारक फंड

कारंजा जैन ग्रंथमालाओं तथा जीवराज जैन ग्रंथमालामें

प्रो. हीरालाल जैन द्वारा आधुनिक ढंगसे सुसम्पादित होकर प्रकाशित

जैन साहित्यके अनुपम ग्रंथ

प्रत्येक ग्रंथ सुविस्तृत भूमिका, पाठभेद, टिप्पण व अनुक्रमणिकाओं आदिसे खूब सुगम और उपयोगी बनाया गया है।

१ **षट्खंडागम**—(धवलसिद्धान्त) हिन्दी अनुवाद सहित—

भाग १–६ प्रत्येक पुस्तकाकार १०), शास्त्राकार १२)

(पुस्तक १ शास्त्राकार अप्राप्य व पुस्तकाकार फुटकर अप्राप्य)

यह भगवान् महावीर स्वामीकी द्वादशांग वाणीसे सीधा संबन्ध रखनेवाला, अत्यन्त प्राचीन, जैन सिद्धान्तका खूब गहन और विस्तृत विवेचन करनेवाला सर्वोपरि प्रमाण ग्रंथ है। श्रुतपंचमीकी पूजा इसी ग्रंथकी रचनाके उपलक्ष्यमें प्रचलित हुई।

२ **यशोधरचरित**—पुष्पदंतकृत अपभ्रंश काव्य... ... ... ६

इसमें यशोधर महाराजका अत्यंत रोचक वर्णन सुन्दर काव्यके रूपमें किया गया है। इसका सम्पादन डा. पी. एल. वैद्य द्वारा हुआ है।

३ **नागकुमारचरित**—पुष्पदंतकृत अपभ्रंश काव्य... ... ... ६)

इसमें नागकुमारके सुन्दर और शिक्षापूर्ण जीवनचरित्र द्वारा श्रुतपंचमी विधानकी महिमा बतलाई गई है। यह काव्य अत्यंत उत्कृष्ट और रोचक है।

४ **करकंडुचरित**—मुनि कनकामरकृत अपभ्रंश काव्य... ... ... ६)

इसमें करकंडु महाराजका चरित्र वर्णन किया गया है, जिससे जिनपूजाका माहात्म्य प्रगट होता है। इससे धाराशिवकी जैन गुफाओं तथा दक्षिणके शिलाहार राजवंशके इतिहास पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है।

५ **श्रावकधर्मदोहा**—हिन्दी अनुवाद सहित... ... ... २॥)

इसमें श्रावकोंके व्रतों व शीलोंका बड़ा ही सुन्दर उपदेश पाया जाता है। इसकी रचना दोहा छंदमें हुई है। प्रत्येक दोहा काव्यकलापूर्ण और मनन करने योग्य है।

६ **पाहुडदोहा**—हिन्दी अनुवाद सहित... ... ... २॥)

इसमें दोहा छंदोंद्वारा अध्यात्मरसकी अनुपम गंगा बहाई गई है जो अवगाहन करने योग्य है।

७ **त्रिलोकप्रज्ञप्ति (भाग १)**—यतिवृषभाचार्यकृत भाग १, हिन्दी अनुवाद सहित ... १२)

यह जैन करणानुयोगका अद्वितीय ग्रंथ है। डॉ. उपाध्ये, प्रो. हीरालाल व पं. बालचन्द्रशास्त्री के सहयोगसे सम्पादित होकर जीवराज जैन ग्रंथमालामें प्रकाशित हुआ है.

प्रकाशक-**श्रीमन्त सेठ शितावराय लक्ष्मीचन्द,**
जैन साहित्य उद्धारक फंड, अमरावती.

मुद्रक-**टी. एम्. पाटील, मॅनेजर,**
सरस्वती प्रेस, अमरावती.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org